बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति एवं काव्य

डॉक्टर लक्ष्मीनारायण दुबे

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति एवं काव्य

[सागर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि
के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉक्टर लक्ष्मीनारायण दुबे

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण ११००, १९६४
मूल्य १५.०० रु०

मुद्रक
सरयूप्रसाद पाण्डेय,
नागरी प्रेस, दारागंज,
इलाहाबाद

समर्पण

कविवर 'नवीन' जी के सहपाठी और अनन्य मित्र
श्रद्धेय डॉक्टर द्वारकाप्रसाद मिश्र
को
सादर समर्पित

प्रकाशकीय

यह प्रथम अवसर है कि हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से किसी आधुनिक कवि के जीवन और कृतित्व पर सांगोपांग ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि यह कवि स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हैं। नवीन जी की बहुमुखी प्रतिभा से सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् परिचित है। राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका सक्रिय सहयोग बहुमूल्य रहा है। राष्ट्र के उद्‌बोधन के लिए उनके स्वरयुक्त गीत, राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हैं। यह बात निर्विवाद है कि स्वप्नद्रष्टा कवि नवीन जी की देश-भक्ति, उनका वर्चस्व, देश की संस्कृति के प्रति उनकी अगाध निष्ठा और उनकी तेजस्विनी अभिव्यंजनाशक्ति, वर्तमान और भावी पीढ़ियों का मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

इस ग्रन्थ "बालकृष्ण शर्मा 'नवीन': व्यक्ति एवं काव्य" के लेखक है, डॉक्टर लक्ष्मीनारायण दुबे। यह सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी०, उपाधि के लिए स्वीकृत उनका शोध-प्रबन्ध है। डाक्टर दुबे ने जिस परिश्रम और मनोयोग के साथ नवीन जी के सम्बन्ध में प्रायः सम्पूर्ण सामग्री का चयन कर इस शोध-ग्रन्थ को सर्वांगीण बनाने का प्रयत्न किया है, वह सर्वथा श्लाघ्य है। हमारा विश्वास है कि इस ग्रन्थ का हिन्दी संसार में स्वागत होगा और अन्य कवियों, लेखकों की जीवनी और कृतित्व के अध्ययन और अन्वेषण में यह सहायक सिद्ध होगा। सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डाक्टर नन्ददुलारे वाजपेयी के प्रयास से, डाक्टर लक्ष्मीनारायण दुबे को इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए सहायता स्वरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से ३,३५०) रुपये प्राप्त हुए हैं। एकेडेमी की ओर से हम डाक्टर वाजपेयी और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दोनों के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

२४, अप्रैल, १९६४
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

विज्ञप्ति

सागर विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत पी-एच० डी० का शोध-कार्य पिछले दस वर्षों से नियमित रूप से चल रहा है और इस समय तक प्रायः चार दर्जन शोध-कर्ता उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं। आरम्भ में कतिपय विशिष्ट कवियों और साहित्य-पुरस्कर्ताओं पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने का क्रम चला था। इस विषय में एक प्रमुख कठिनाई प्रामाणिक जीवनी के अभाव की उपस्थित हुई। स्वतन्त्र जीवनी-लेखन-कार्य अब तक हिन्दी में गम्भीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया, जिसका मुख्य कारण उपजीव्य सामग्री की विरलता ही कहा जायगा। यद्यपि हमारा शोध-कार्य कवि कर्तृत्व पर ही केन्द्रित रहकर सम्पन्न हो सकता था, परन्तु प्रामाणिक जीवनियों के अभाव में यह यथेष्ट फलप्रद नहीं हो सकता था। अतएव, हमें आंशिक रूप से अपनी शोध-दिशा बदलनी पड़ी। कुछ प्रबन्ध, युगीन भूमिकाओं पर भी लिखे गए हैं, जिनमें युग-विशेष के साहित्य-स्रष्टाओं की कृतियों का विवेचन किया गया और उनके साहित्यिक और कलात्मक प्रदेय, प्रकाश में लाए गए। यद्यपि यह काम हिन्दी के आरम्भिक साहित्यक आकलन के लिए आवश्यक और उपयोगी रहा है, पर इतने से ही सन्तोष करना हमारे लिए उचित और सम्भव न था। तब हमने आधुनिक युग के विविध साहित्यिक आन्दोलनों और उनसे निःसृत कला-शैलियों में से प्रत्येक को इकाई मानकर शोधकार्य का तृतीय अध्याय आरम्भ किया। इस सन्दर्भ में स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक विकास पर प्रायः आधे दर्जन शोध-विषय दिए गए, जिनमें से अधिकांश कार्य सम्पन्न हो गया है और कुछ शेष है। स्वच्छन्दतावादी काव्य, कथा-साहित्य, नाट्यकृतियों—समीक्षा तथा स्वच्छन्दतावाद के सैद्धान्तिक आधारों पर हमारे विभाग द्वारा अनेक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं और अब भी उसके कुछ पक्षों पर कार्य किया जा रहा है। विशुद्ध वैचारिक, सैद्धान्तिक और कला-शास्त्रीय तथ्यों के अनुशीलन के लिए भी हमारी शोध-योजना में स्थान रहा है, और कुछ विशिष्ट शोध-कर्ता इस कार्य में भी संलग्न हैं। भारतीय साहित्य-शास्त्र और कला-विवेचन के सिद्धान्तों पर स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग शोध-कृतियाँ प्रस्तुत करने की दिशा में भी हम अग्रसर हो रहे हैं, क्योंकि हमें ज्ञात है कि भारतीय कला या साहित्य-शास्त्र का अनुशीलन अब भी परम्परागत प्रणालियों से ही हो रहा है। इसमें नवीन चिन्तन और आधुनिक वैज्ञानिक उद्भावनाओं का सम्यक् योग नहीं हो पाया है। हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी इस क्षेत्र में अद्यतन नहीं है। प्राचीन साहित्य-चिन्तन को नया स्वरूप और नई शब्दावली देने की आवश्यकता है। इन सबके अतिरिक्त, कतिपय सांप्रतिक साहित्यिक समस्याओं और प्रश्नों पर भी संतुलित विचारणा की आवश्यकता है, जिन पर पी-एच० डी० के शोध-कार्य लाभप्रद हो सकते हैं। उनकी ओर भी हमारी दृष्टि गई है और कुछ कार्य आरम्भ किया गया है।

सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में डी० लिट्० के शोध सम्बन्धी कुछ विषय भी निर्धारित किए गए हैं। इनमें स्वभावतः अधिक व्यापकता और अधिक प्रशस्त विवेचन तथा आकलन की आवश्यकता प्रतीत हुई है। डी० लिट्० सम्बन्धी यह शोध-कार्य कुछ ही

समय में एक स्पष्ट रूप-रेखा ग्रहण करेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्फुट और सहसा प्रत्यागत विषयों पर आनुषंगिक कार्य करने की अपेक्षा विशिष्ट-योजना के अनुसार, सुसम्बद्ध और समग्र भूमिकाओं पर शोध-कार्य करने में हमारी अधिक रुचि है और इस रुचि को साकार रूप देने और फलप्रद बनाने में हम पिछले कुछ समय से संलग्न हैं।

डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे का शोध-प्रबन्ध पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहा है—यह हमारे लिए विशेष प्रसन्नता की बात है। उनके शोध का विषय आरम्भ में—'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवि और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का विशेष अध्ययन—रक्खा गया था और इसी रूप में वह प्रस्तुत भी किया गया था। परन्तु शोध-प्रबन्ध का प्रथम अंश जो 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के कवियों से सम्बन्धित था और जो 'नवीन' जी के काव्य को प्रशस्त पीठिका देने के आशय से तैयार किया गया था, इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया। उसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का विचार है। पुस्तक का शीर्षक अब—"बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—व्यक्ति एवं काव्य" रक्खा गया है। इसके प्रथम भाग में 'नवीन' जी की जीवनी, व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन पर खोजपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। लेखक ने इन अध्यायों में 'नवीन' जी की जीवनी का नव-निर्माण किया है जो उसके अनवरत परिश्रम और पर्यटन का परिणाम है। इसमें वे समस्त सूत्र मिल जाते हैं जिनका आधार लेकर कवि के काव्य और उसके प्रेरक उपकरणों का सम्यक् बोध किया जा सकता है।

साहित्यिक विवेचन में चार स्वतन्त्र अध्याय लगाकर लेखक ने 'नवीन' जी के काव्य पर विशद और प्रशस्त रूप से विचार किया है। 'नवीन' जी के अनेक अप्रकाशित ग्रन्थों और स्फुट रचनाओं का इसमें समग्र उपयोग किया गया है, जिससे इन अध्यायों में 'नवीन'-काव्य की सम्पूर्ण सामग्री का आकलन किया जा सका है। 'नवीन' जी के काव्य को विविध प्रवृत्तियों, काव्य-रूपों और अभिव्यंजना-शैलियों में विभाजित कर, उनकी स्वतन्त्र साहित्यिक विवेचना की गई है। शोधकर्ता ने विशेष रूप से 'नवीन' जी के 'उर्मिला' काव्य का गम्भीर अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत किया है जो इस प्रबन्ध की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

'नवीन'-काव्य का मूल्यांकन करते हुए, लेखक ने कवि के काव्य-शिल्प का विस्तृत अनुशीलन और विवेचन किया है और तुलना की भूमि पर रखकर आधुनिक युग के विशिष्ट कवियों के साथ 'नवीन'—काव्य के विशेषत्व को उद्घाटित किया है। 'उर्मिला'-काव्य को 'महाकाव्य' का महत्त्व देकर, लेखक ने जो निष्कर्ष दिये हैं, वे साहित्यिक विद्वानों द्वारा समर्थित होंगे—ऐसी आशा की जाती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अपने विषय का मौलिक शोध-प्रबन्ध है और इसमें व्यक्त किये गये विचार तर्कपूर्ण और पुष्ट हैं। प्रथम बार हिन्दी के विशिष्ट कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य का समग्र अध्ययन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। इस अभिनन्दनीय कार्य के लिये डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे हिन्दी-संसार के धन्यवाद और प्रशंसा के अधिकारी हैं। इसी विश्वास के साथ, इस शोध-प्रबन्ध को पुस्तक रूप में प्रकाशित देखकर, हम हर्ष का अनुभव करते हैं।

इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन के लिये विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग से एक समुचित

द्रव्य-राशि प्राप्त हुई है और हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, के अधिकारियों ने इसका मुद्रण और प्रकाशन किया है। इस निमित्त हम विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग और हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अधिकारियों के आभारी हैं। विशेषकर 'एकेडेमी' के वर्तमान अध्यक्ष श्री बालकृष्ण राव और उसके मन्त्री श्री विद्या भास्कर ने पुस्तक को समय पर प्रकाशित करने में जो तत्परता दिखाई है और पुस्तक के प्रकाशन में आदि से अन्त तक दिलचस्पी ली है; उसके लिये हम उनके अत्यधिक अनुगृहीत हैं।

नन्ददुलारे वाजपेयी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

सागर
महाशिवरात्रि,
सं० २०२०।

निवेदन

स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व ने हमारे काव्य-साहित्य को जो अक्षय एवं अनूठी निधि प्रदान की है, उसके विधिवत् एवं व्यवस्थित मूल्यांकन का अब समय आ गया है। इस दिशा में, प्रस्तुत-ग्रन्थ एक विनीत प्रयास है जो कि मेरे शोध-प्रबन्ध का परिवर्द्धित तथा परिमार्जित रूप है। 'नवीन' जी की रचनाओं में, प्रारम्भ से ही, मेरी अभिरुचि थी जिसने अब शोध-वृत्ति का आकार धारण कर लिया है। कवि के शारीरिक निधन के समय से ही मैंने इस विषय पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था।

यह ग्रन्थ 'नवीन' जी के सहपाठी एवं अनन्य मित्र, 'कृष्णायन'-महाकाव्य के रचयिता, सागर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप-कुलपति तथा मध्यप्रदेश के वर्तमान मुख्य-मन्त्री आदरणीय डॉ० द्वारकाप्रसाद मिश्र को सादर समर्पित किया गया है। 'नवीन' जी ने अपने जीवन-निर्माता श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के विषय में जो कहा था, वही मैं भी पूज्य मिश्र जी के लिये कह सकता हूँ—'तेरे वरद हस्त छाए हैं, अब भी मेरे मस्तक पर।' इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कर, उन्होंने मुझे चिर-उपकृत किया है। वे मेरे 'पूजनीय स्वजन' हैं, इसलिए उन्हें धन्यवाद ज्ञापित न करके, मैं उनसे मंगलाशीष की ही कामना कर सकता हूँ।

प्रस्तुत-ग्रन्थ के 'प्राक्कथन' लिखने की जो कृपा न्यायमूर्ति श्री गणेशप्रसाद भट्ट, उप-कुलपति, सागर विश्वविद्यालय, सागर ने की है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

श्रद्धेय आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने ही मुझे यह विषय सुझाया और यदि 'नवीन' जी के शब्दों में कहूँ तो उन्होंने, "घोर अन्धकार में जगायी आत्म-दीप बाती, दिशाएँ सँजोयी, किया आलोकित आसमान।" उन्हीं के ही पुनीत तथा सारगर्भित निर्देश के अनुसार, मैंने 'नवीन' जी की 'लीलाभूमि' एवं 'कर्मभूमि' से सम्बन्धित अनेक स्थानों की शोध-यात्राएँ कीं, कवि के जीवन-जगत् के विभिन्न क्षेत्रों से संलग्न व्यक्तियों से प्रत्यक्ष-भेंट की, विविध सूचनाएँ और संस्मरण एकत्र किये; विस्तृत पत्र-व्यवहार किया और अन्ततः, अपने शोध-विषय से सम्बन्धित प्रकाशित तथा अप्रकाशित और मौलिक एवं समीक्षात्मक सामग्री का संचयन किया और उसे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का सुविन्यस्त रूप प्रदान किया। सामग्री-संचयन एवं उसके समुचित उपयोग का ही नहीं, इस प्रबन्ध में प्राण-रस के संचार करने का भी सम्पूर्ण श्रेय उन्हीं को ही है। आचार्य वाजपेयी जी को आभार-प्रदर्शन के औपचारिक-सूत्र से क्या बाँधू, क्योंकि जिनसे आलोक प्राप्त किया; उन्हें आलोकित करने की धृष्टता क्या की जाय ? वे मेरे 'सर्वस्व' हैं, मैं उनके समक्ष सादर नत-मस्तक हूँ।

अपनी शोध-यात्रा, सामग्री-संकलन, पत्राचार आदि में जिन महानुभावों एवं संस्थाओं ने मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में, सामग्री, सूचना एवं सहयोग प्रदान किया है; मैं उन सब का हृदय से आभारी हूँ। विशेषकर आचार्य डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डॉक्टर श्री नगेन्द्र, डॉ० श्री भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव', श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन और श्री दामोदरदास झालानी द्वारा प्राप्त स्नेह, सूचना, सुविधा एवं सामग्री आदि अविस्मरणीय हैं

और उपर्युक्त मनीषियों के प्रति मैं अपना आत्मिक आभार एवं अकृतिम कृतज्ञता ज्ञापित करना कर्त्तव्य समझता हूँ। इस प्रबन्ध में जिन लेखकों की कृतियों आदि का उपयोग किया गया है, उनका भी मैं अनुगृहीत हूँ।

इस शुभावसर पर, मैं अपने श्रद्धास्पद पारिवारिक-जनों को भी नहीं भूल सकता हूँ जिनमें श्री महादेवप्रसाद हजारी और श्री रामनारायण दुबे प्रमुख हैं। उपर्युक्त स्वजनों और अनुज-द्वय चि० हृदयनारायण दुबे, एम० ए०, एम० एड०, 'साहित्यरत्न' एवं चि० जयप्रकाश नारायण दुबे, एम० बी० बी० एस० (प्रथम वर्ष) ने जो प्रोत्साहन और सहयोग प्रदान किया; उसके लिए मैं उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा और निःशेष स्नेह अभिव्यक्त करना, निजी धर्म समझता हूँ।

विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग, सागर विश्वविद्यालय और हिन्दुस्तानी एकेडेमी का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिनके सम्मिलित प्रयत्न से मेरा शोध-प्रबन्ध प्रकाशित ग्रन्थ में परिणत हो रहा है।

प्रस्तुत कृति में 'नवीन' जी के कवि-व्यक्तित्व को उद्घाटित करने की मेरी विनम्र चेष्टा निहित है। यदि मैं उस महत्वपूर्ण और गम्भीर व्यक्तित्व को आंशिक रूप से भी, इस ग्रन्थ में, उद्घाटित करने में सफल हुआ हूँ तो मेरी इतिकार्यता इतने से ही परितुष्ट है। यदि विद्वानों और पण्डितजनों को इसमें कुछ भी सार दिखाई दिया तो, यह मेरे लिए अतिरिक्त लाभ और परितोष का विषय होगा।

सी-१५, सागर विश्वविद्यालय,
सागर (म० प्र०)
दिनांक १ मार्च, १९६४ ई०।

लक्ष्मीनारायण दुबे

विशेषज्ञ-अभिमत

(१) "...इस प्रकार यह देखा जायगा कि अनुसंधायक ने सूचनाओं की बृहत् राशि के संचयन और उनके काव्य के प्रमुख प्रकार तथा प्रवृत्तियों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण में महत् धैर्य प्रदर्शित किया है।...अनुसन्धित्सु द्वारा जिस रूप में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है, वह मार्ग-दर्शक कार्य की प्रकृति का है।...कुछ नहीं तो शोध-प्रबन्ध स्वयं अपने आप में एक अद्भुत कृति है और इसी कारण विशेष प्रशंसा के योग्य है।"

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

(२) "...प्रबन्ध-लेखक बड़े परिश्रमी जान पड़ते हैं। उन्होंने सामग्री-संकलन का कार्य बड़ी लगन और निष्ठा के साथ किया है। वे कुछ दुर्लभ सामग्री संकलित करने में सफल भी हुए हैं। स्व० पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' बड़े मस्तमौला और फक्कड़ व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी रचनाओं की सुरक्षा की कभी चिन्ता नहीं की। उनमें अपने आपको लुटाते रहने की अपूर्व क्षमता थी। उनके घनिष्ठ मित्र भी उनकी सभी रचनाओं के बारे में नहीं जानते। ऐसे फक्कड़ कवि की रचनाओं को खोज निकालना और उन्हें कालक्रम से सजाकर साहित्यिक आलोचना का विषय बनाना, कठिन कार्य था। मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि प्रबन्ध-लेखक ने इस कठिन कार्य को धैर्य के साथ किया और सफलता प्राप्त की है। प्रस्तुत परीक्षक 'नवीन' जी के निकट सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त कर चुका है, परन्तु उसे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि प्रबन्ध-लेखक की संकलित सामग्री में उसे बहुत सी नई जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। लेखक ने 'नवीन' जी के काव्य का मूल्यांकन सहानुभूति के साथ किया किन्तु इस सहानुभूति से उनके विश्लेषण और आलोचन-कार्य में बाधा नहीं उपस्थित हुई।...परन्तु सब मिलाकर उनकी विश्लेषण-पद्धति युक्तिसंगत है और निष्कर्ष स्पष्ट और ग्राह्य हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य के भावी शोधार्थी के लिए महत्वपूर्ण सामग्री दी है।...भाषा प्रौढ़ और विषयानुकूल है।...सब मिलाकर मुझे प्रबन्ध से सन्तोष है। इसके लेखक ने अपना कार्य बहुत अच्छी तरह किया है। इस प्रबन्ध में उनकी विश्लेषण-पटुता और ठीक निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता प्रमाणित हुई है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)

(३) "... परन्तु उन्होंने शोध-प्रबन्ध में इतनी कठोर साधना की है, प्रायः समग्र उपलब्ध स्रोतों से इतनी उपादेय सामग्री एकत्रित की है कि उनका कार्य ऐतिहासिक गरिमा का चिरस्मरणीय लेखा बन गया है। शोध-प्रबन्ध, नूतन सामग्री को विपुल मात्रा में, प्रकाश में

लाता है जिसे अनुसंधित्सु ने योग्यतापूर्वक क्रमबद्ध किया और विश्लेषित किया। इस प्रकार, शोध-प्रबन्ध सफल अनुसन्धान की दो आवश्यक परिसीमाओं की परिपूर्ति करता है यथा— (क) तथ्यों का अन्वेषण (जिसका कि हम प्राचुर्य पाते हैं) और (ख) तथ्यों की अभिनव व्याख्या और लेखक के आलोचनात्मक अनुशीलन तथा परिपक्व निर्णय के सामर्थ्य को निर्दिष्ट करता है। यह स्वच्छ साहित्यिक शैली में लिखा गया है और सन्दर्भ, तालिकाएँ एवं परिशिष्ट सर्वथा पूर्ण हैं। एतदर्थ, मैं संस्तुति करता हूँ कि 'डॉक्टर आफ फिलासफी' की उपाधि से अनुसन्धायक को 'विभूषित' किया जाय जिन्होंने हिन्दी की सच्ची सेवा की है।"

डॉ० नगेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

(४) "...इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्री दुबे ने प्रत्येक प्राप्त सामग्री के आधार पर यह शोध-प्रबन्ध बड़े परिश्रम से लिखा और श्री 'नवीन' के सम्बन्ध में प्रत्येक इतिवृत्त और घटना का परिशीलन बड़े विस्तृत और व्यापक रूप से किया।...किसी भी कवि के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत समीक्षा अभी तक नहीं हुई।...जहाँ तक इसके प्रकाशन का सम्बन्ध है, यह प्रबन्ध निश्चय ही प्रकाशन के योग्य है।"

डॉ० रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग (उ० प्र०)

(५)ग्रन्थ की 'विज्ञप्ति' से उद्धरणीय अंश—"कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अपने विषय का मौलिक-शोध-प्रबन्ध है और इसमें व्यक्त किये गये विचार तर्कपूर्ण और पुष्ट हैं। प्रथम बार हिन्दी के विशिष्ट कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य का समग्र अध्ययन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। इस अभिनन्दनीय कार्य के लिये डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे हिन्दी-संसार के धन्यवाद और प्रशंसा के अधिकारी हैं।"

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

भूमिका

भूमिका

सामान्य—आधुनिक हिन्दी-काव्य का इतिहास अपने क्रोड़ में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ एवं विशिष्टताओं को समाहित किये हुए है। आधुनिक काल में हमारे हिन्दी-काव्य की सर्वतोंमुखी प्रगति हुई और उसकी उपलब्धियों का शाश्वत एवं ऐतिहासिक महत्व है।

आधुनिक युग के भारतेन्दु एवं द्विवेदी-युग में हमारी कविता धारा ने अपने नूतन शृंगार एवं विषय पाये। आधुनिक हिन्दी-काव्य की नींव जहाँ भारतेन्दु-युग में स्थापित हुई, वहाँ द्विवेदी-युग में उसकी परिपुष्टि हुई। छायावाद-युग में आकर हमारा काव्य प्रौढ़ता की ओर उन्मुख हुआ और उसकी विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में माँसलता तथा ऋजुता के दर्शन होने लगे। स्वच्छन्दतावाद की लहर ने ही द्विवेदी-युग को परवर्ती युग से विभिन्न किया। इसी सन्धि-युग में ही 'प्रसाद,' 'नवीन,' 'निराला' आदि कवियों ने अपने काव्य का समारम्भ किया।

डॉ० नगेन्द्र ने आधुनिक हिन्दी कविता की दो मुख्य चिन्ताधारा निरूपित की है—आदर्शवादी चिन्तावारा और भौतिकवादी चिन्ताधारा। आदर्शवादी चिन्ताधारा के अन्तर्गत जहाँ छायावाद तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता को सम्मिलित किया गया है, वहाँ भौतिकवादी चिन्ताधारा में प्रगतिवाद एवम् प्रयोगवाद को। वैयक्तिक कविता को आदर्शवाद और भौतिकवाद का सेतु-मार्ग माना गया है। ये ही आधुनिक हिन्दी-कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ मानी गई हैं।[1]

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को आदर्शवादी चिन्ताधारा के द्वितीय पक्ष, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता-श्रेणी में रखा जाता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने जहाँ उन्हें 'वीर-रस के स्वदेश प्रेमी कवि' कहा है,[2] वहाँ डाक्टर नगेन्द्र ने भी उन्हें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य धारा का ही कवि माना है।[3]

'नवीन' जी के व्यक्तित्व तथा काव्य का अनुशीलन करना ही इस शोध-प्रबन्ध का मुख्य ध्येय है।

शोध की विषय परिधि—'प्रभा' एवं 'प्रताप' में प्रकाशित एवं प्राप्त 'नवीन' जी के समग्र काव्य को, प्रस्तुत प्रबन्ध में अनुशीलन का विषय बनाया गया है

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के विशेष अध्ययन में, उनकी काव्य-कृतियों का ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, गद्य का नहीं। 'नवीन' जी के गद्य का उपयोग, उनकी विचार धारा, प्रेरणा स्रोत एवं यथावश्यक पुष्टि के लिए यत्र-तत्र किया गया है।

---

१. डॉ० नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ ५।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', विज्ञप्ति, पृष्ठ ३।

३. डॉक्टर नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ,' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, पृष्ठ १६-३६।

प्रस्तुत प्रबन्ध में, 'नवीन' जी की जीवनी, व्यक्तित्व एवं विचारधारा के साथ ही उनके काव्य का विस्तृत एवं गहन अनुशीलन है। काव्य में भी, न केवल प्रकाशित अपितु अप्रकाशित काव्य का प्रचुर उपयोग कर, उसे भी समान रूप से विवेचन का आधार बनाया गया है। अप्रकाशित काव्य को, किसी भी प्रकार गौणत्व या उपेक्षा का पात्र नहीं बनना पड़ा है।

इन प्रमुख परिसीमाओं तथा विशिष्टताओं के अन्तर्गत, प्रस्तुत शोध-विषय के अनुशीलन का अकिंचन प्रयास किया गया है। मानव-ज्ञान विशाल महासागर के सदृश्य है; अतएव, उस पर दावा करना अपनी मूर्खता तथा अहम्भावना का ही थोथा प्रदर्शन करना है। एतदर्थ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में यथा-सामर्थ्यानुसार अनुशीलन करने की क्षुद्र चेष्टाएँ की गई हैं।

विषय-विवेचन का दृष्टिकोण—आलोचना तथा अनुसन्धान के अन्तर को हृदयंगम करते हुए, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में वैज्ञानिक पद्धति को ही अपनत्व प्रदान किया गया है। तथ्य एवं मर्म उद्घाटन दोनों ही के समन्वित रूप को प्रश्रय प्रदान करने की चेष्टा की है। मुझे विषय के आग्रह के कारण, व्यापक क्षेत्र से सम्बद्ध रहना पड़ा है, एतदर्थ उसे भी अनुशीलन का अंग ही माना गया है।

विषय-अनुशीलन में काव्यत्व एवं उसकी विधिवत् समीक्षा को ही प्राधान्य दिया गया है और जो भी अन्य अंग, पोषक-तत्व, आनुषंगिक प्रवृत्तियाँ आदि आई हैं, उन्हें आवश्यकता तथा प्रसंगानुकूल महत्व की सीमा से अतिक्रमित नहीं होने दिया गया है। विषय की प्रायः प्रत्येक वस्तु एवं उपादान को, प्रमुख पक्ष के सापेक्ष्य रूप में ही प्रस्तुत करने की भरसक चेष्टा की गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पुनरावृत्ति से बचने का प्रयत्न किया गया है परन्तु जहाँ कहीं और प्रसंगानुकूल यह आवश्यक भी हो गया है तो सम्बन्धित तथ्यों एवं मर्म उद्घाटन को एक स्थान पर ही प्रधानता दी गई है और दूसरे स्थल पर उसको आनुषंगिक महत्व, प्रासंगिक निर्देश अथवा संकेत मात्र से ही विभूषित किया गया है। कवि-व्यक्तित्व के गुण एवं अवगुण का निस्संग-वृत्ति के साथ विवेचन किया गया है।

विषय की उपलब्ध सामग्री—प्रस्तुत शोध-विषय की सामग्री की कई स्थितियाँ एवं विशेषताएँ हैं जिनका सम्यक् उद्घाटन ही, सम्बन्धित चित्र का सांगोपांग रूप उपस्थित कर सकता है।

मौलिक सामग्री—'नवीन' जी के बिखरे हुए साहित्य की समस्या पर विचार करते हुए इसका बहुत कुछ दोषारोपण स्वयं कवि पर और कुछ अन्य व्यक्तियों पर किया जा सकता है। 'नवीन' जी जैसे अल्हड़ एवं मस्त व्यक्ति ने कभी भी अपने साहित्य का संचयन अथवा विधिवत् संग्रह नहीं किया। इसका परिणाम अब दृष्टिगोचर हो रहा है। डॉ० 'सुमन' ने लिखा है कि अपनी रचनाओं के प्रकाशन के प्रति कवि का कुछ ऐसा उपेक्षा भाव था कि आज के युग के आकलनकर्ताओं को राष्ट्रीय संघर्ष की इस वाग्धारा का अविच्छिन्न प्रवाह-सूत्र प्राप्त कर सकना कठिन हो रहा है।[1] डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी ने भी लिखा है कि पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का गद्य-साहित्य यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। उनकी प्रकाशित कहानियों

---

१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२; पृष्ठ ४७।

की अब एक कहानी ही रह गई है। उनके लिखे लेख भी कहीं ठिकाने से मिलने कठिन हैं। जब वह 'प्रताप' में काम करते थे, उनकी लेखनी का प्रसाद पाठकों को जब-तब मिला करता था किन्तु उन लेखों का भी किसी ने संग्रह आज तक नहीं किया है। उनके अनेक भाषण, जो उन्होंने भिन्न-भिन्न मौकों पर दिये थे, वे भी उपलब्ध नहीं। शायद ही कोई साहित्यकार इतना लापरवाह रहा हो, अपने बारे में और अपनी कृतियों के बारे में, जितने नवीन जी थे।[1]

यथार्थ वस्तु-स्थिति का उद्‌घाटन इस कथन से होता है—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि अभी उस दिन दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठित अध्यापक ने 'नवीन' जी की रचनाओं का जिक्र आने पर हमसे कहा था—"जिन व्यक्तियों के पास नवीन जी के गद्य और पद्य की सामग्री है, उन्होंने शायद समझ लिया है कि वह लाखों रुपये की चीज़ है, लेकिन वे एक बात भूल गये हैं वह यह कि दस वर्ष बाद उसे कोई तीन कौड़ी को भी नहीं पूछेगा।"[2] चतुर्वेदी जी ने ही लिखा है कि "यदि हम लोगों की कृतज्ञता का यही हाल रहा तो १० वर्ष के भीतर ही गणेश जी तथा नवीन जी की कृतियों को भी लोग बिलकुल भूल जायेंगे।"[3] श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे लिखा था कि सम्बन्धित व्यक्तियों से 'नवीन' जी विषयक मसाला, कुछ भी मिलना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।[4]

'नवीन' जी के सात काव्य-ग्रन्थ (कुंकुम, रश्मिरेखा, अपलक, क्वासि, विनोबा स्तवन, ऊर्म्मिला एवं 'प्राणार्पण') प्रकाशित हैं और छः ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं। ये छः काव्यकृतियाँ उनकी दार्शनिक कविताएँ ('सिरजन की ललकारें' या 'नुपुर के स्वर'), दोहों (नवीन दोहावली), लघु प्रेम कविताओं ('यौवन मदिरा' या पावस पीड़ा), राष्ट्रीय कविताओं (प्रलयंकर), प्रणय-काव्य (स्मरण-दीप) और मरण-गीत (मृत्यु धाम या सृजन झाँझ) से सम्बन्धित हैं।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका लगभग आधा काव्य-साहित्य अप्रकाशित ही पड़ा है। इस साहित्य के शीघ्र ही प्रकाशित होने की सम्भावना है। कलकत्ता में मैंने इस सम्पूर्ण अप्रकाशित काव्य-संग्रहों का, उनकी मौलिक पाण्डुलिपि में, अध्ययन तथा यथावश्यक टिप्पणी-लेखन किया है और उसका उपयोग, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है।

'नवीन' जी की कविताएँ अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं की संचिकाओं में दबी पड़ी हुई है। अभी भी, उपरिलिखित त्रयोदश काव्य-कृतियों में, कतिपय कविताएँ नहीं आ पाई है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी संचिकाओं से, इस प्रकार की कविताओं का भी मैंने संचयन एवं संकलन किया है; जिनका उपयोग भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है।

इस प्रकार, 'प्रभा' एवं 'प्रताप' की पुरानी संचिकाओं के काव्य को उनके प्रकृत और

---

१. 'आजकल,' 'नवीन' जी के गद्य-साहित्य पर एक दृष्टि, सितम्बर, १९६२, पृष्ठ ४९।

२. 'नर्मदा', अक्टूबर, १९६१ : पृष्ठ १४७।

३. वही।

४. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का मुझे लिखित दिनांक ६-९-१९६० का पत्र।

५. विस्तृत विवेचन के लिये देखिए, षष्ठ अध्याय।

तद्विषयक काव्य-संकलनों में से उपलब्ध कर, 'नवीन' जी की अप्रकाशित मौलिक काव्य सामग्री के अन्वेषण एवं प्राप्ति की दिशा में जो प्रयत्न किये गये, उनका यहाँ संक्षिप्त विवरण-मात्र ही दिया गया है।

समीक्षात्मक सामग्री—प्रस्तुत सामग्री को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(च) प्रकाशित सामग्री,

(छ) स्व-प्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री।

(च) प्रकाशित सामग्री—

'नवीन' जी पर उनकी मृत्यु के पूर्व एवं तत्पश्चात् जो सामग्री प्रकाशित हुई, उसको अपनी सुविधा के लिए, दो भागों में बाँट सकते हैं—

(१) जीवनी सम्बन्धी सामग्री,

(२) साहित्यालोचन सम्बन्धी सामग्री

(१) जीवन सम्बन्धी सामग्री—

'नवीन' जी के व्यक्तित्व एवं जीवनी के विविध पक्षों को उद्घाटित करने वाली जो सामग्री समय-समय पर प्रकाशित हुई, उसका विवरण निम्नलिखित रूप में है। जीवनी सम्बन्धी सामग्री दो रूप में प्राप्त होती है—

(क) पुस्तकों में प्राप्त सामग्री,

(ख) पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त सामग्री।

(क) पुस्तकों में प्राप्त सामग्री—

(१) 'साहित्यकारों की आत्म-कथा'—

सम्पादक—श्री देवव्रत शास्त्री, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा लिखित 'मेरी अपनी बात', पृष्ठ ८१-१०२।

(२) 'मैं इनसे मिला'—

भेंटकर्ता डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; पृष्ठ ३८-५६।

(३) 'रेखा चित्र'—

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', शीर्षक लेख।

(४) साहित्यकार-निकट से—

श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १०-१८।

(५) हिन्दी-साहित्य का विकास और कानपुर—

श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी; बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ २३७-२३८ तथा ३३६-३४६।

(६) डॉक्टर नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध—

सम्पादक—श्री भारतभूषण अग्रवाल 'दादा' स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १४७-१५५।

(७) बट-पीपल—

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' :
पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

(क) कुछ संस्मरण, पृष्ठ २७-३१; (ख) एक अभिनन्दन-पत्र, पृष्ठ ३१-३२; (ग) मिट्टी का पत्र, आकाश के नाम; पृष्ठ ३३-४०।

(८) नये-पुराने झरोखे—

डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' : 'नवीन जी' : एक संस्मरण; पृष्ठ १७-३०; 'कविवर' 'नवीन' जी, पृष्ठ ३१-३८।

(९) आकाशवाणी विविधा—(सन् १९६०)

श्री जवाहरलाल नेहरू : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ९।

(ख) पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त सामग्री—

'नवीन' जी की जीवनी एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी सामग्री उनके जीवन-काल तथा मरणोपरान्त प्राप्त होती है। यह सामग्री विशेषतया उनकी मृत्यु के पश्चात् विपुल रूप में प्रकाशित हुई। अधोलिखित, तीन वर्गों की सामग्री में, उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी सूत्र प्राप्त होते हैं :—

(१) संस्मरण,
(२) श्रद्धाञ्जलियाँ
(३) सम्पादकीय टिप्पणियाँ

उपरिलिखित वर्गों की प्राप्त सामग्री की विवरणात्मक विस्तृत तालिकाएँ इस प्रकार हैं। समग्र प्राप्त सामग्री को प्रकाशन के कालक्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है :—

(१) संस्मरण—(क) मृत्यु के पूर्व—

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री रुद्रनारायण शुक्ल	नवजीवन	पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	३०-७-५१	२-३
२	,,	,,	,,	१२-११-५१	३
३	,,	,,	,,	३०-११-५१	५
४	श्री महेश शरण जौहरी ललित	हलचल	व्यक्तिदर्शन : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१७-५-१९५५	११-१२
५	,,	,,	,,	१-६-५५	११-१२
६	,,	,,	,,	१६-६-५५	७ वा १०
७	,,	,,	,,	१-७-५५	११-१२
८	,,	,,	,,	१६-७-५५	,,
९	,,	,,	,,	३१-७-५५	४
१०	,,	,,	,,	१५-८-५५	१३
११	,,	,,	,,	३०-८-५५	१३
१२	,,	,,	,,	१४-९-५५	६ व १५

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१३	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	टंकितप्रति प्राप्त	बन्धुवर नवीन जी महामानव	५६--५७	—
१४	श्री गोपालप्रसाद व्यास	हिन्दुस्तान	तन और मन के संघर्ष में लीन पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१८-७-५८	—
१५	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	स्वतन्त्र भारत	सहृदय नवीन जी	२०-१२-५९	३ व १०
१६	श्री हमराही	नवभारत टाइम्स	आज जिनकी चर्चा है	३१-१-६०	—
१७	श्री अज्ञेय	टाइम्स आफ इण्डिया	दी न्यू एण्ड दी सेल्फ रीनीयुंग	३-४-६०	—

(ख) मृत्यु के पश्चात्

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री चन्द्रोदय	स्वतन्त्र भारत	पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१-५-६०	४-५
२	श्री श्रीनिवास गुप्त	दैनिक प्रताप	भैया बालकृष्ण	६-५-६०	३
३	श्री जगदीश गोयल	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	जीता-जागता पुरुष या सासों की धौंकनी	१५-५-६०	४-५
४	श्री श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल	सैनिक	भाई बालकृष्ण	१८-५-६०	४ व ७
५	श्री रामसरन शर्मा	राजभाषा	नवीन जी की अन्तिम यात्रा	२२-५-६०	२
६	श्री श्रीकृष्णदास	प्रयाग पत्रिका	हमारा परम श्रद्धेय भैया जो अब नहीं है।	२२-५-६०	१ व ४
७	श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	,,	दिवंगत नवीन जी : श्री चरणों में नमन	,,	,,
८	श्री गंगासहाय चौबे	,,	अवढ़र दानी : नवीन जी		२-३
९	श्री बालकृष्ण राव	,,	दादा का अन्तिम दर्शन	,,	३
१०	श्री ओंकार शरद	,,	चिरनवीन, चिर बालकृष्ण	,,	,,
११	श्री जयकृष्ण पिपलानी	,,	एक अधूरा लेख	,,	,,
१२	श्री रामनारायण सिंह मधुर	आज	नवीन जी के दो पत्र	२९-५-६०	१०
१३	श्री उपेन्द्रनाथ अश्क	कृति	महामना नवीन जी	मई ६०	५६-५९
१४	श्री नरेश मेहता	,,	डायरी के पृष्ठ और अमलतास के फूल	,,	५९-६५

क्रम	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१५	श्री मन्मथ नाथ गुप्त	कृति	मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से	मई ६०	६५-७१
१६	श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'	नवभारत टाइम्स	नवीन जी फैजाबाद जेल में	२६-६-६०	६
१७	डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी	,	श्रद्धेय शर्मा जी	२६-६-६० ,	७-८
१८	श्री रामसरन शर्मा	,,	साकार सहृदयता: बालकृष्ण शर्मा नवीन	,,	७
१९	श्री शमा महाजन	,,	बहुमुखी प्रतिभा के धनी नवीन जी	,,	७
२०	श्री विनोद	,,	जब गाँधी जी ने नवीन जी को पत्र लिखा था	,,	८
२१	श्री हँसमुखराय मेहता	साप्ताहिक प्रताप	संस्मरण	२७-६-६०	२
२२	श्री गौरीशंकर गुप्त	राष्ट्र भारती	स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	जून ६०	२९८-३००
२३	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	विशाल भारत	स्व० नवीन जी	जून ६०	४७३ व ४७६
२४	श्री मैथिलीशरण गुप्त	सरस्वती	बालकृष्ण शर्मा नवीन	जून ६०	६७७-६७८
२५	श्री माखनलाल चतुर्वेदी	,,	त्याग का दूसरा नाम : बालकृष्ण शर्मा नवीन	,,	३७९-३८२
२६	श्री वेंकटेश नारायण तिवारी	,,	श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन का निधन	,,	३८३-३९१
२७	श्री भगवतीचरण वर्मा	,,	मेरे आत्मीय नवीन	,,	३९२-३९४
२८	श्री गो० प० नेने	राष्ट्रवाणी	स्व० नवीन जी : कुछ संस्मरण	,,	६-७
२९	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	संस्कृति	स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीन का जीवन चरित	जून-जुलाई ६०	२१-२३
३०	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	नवीन जी पत्र-लेखक के रूप में	३-७-६०	१२ वा ३२-३३

क्रम	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
३१	श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	जिजीविषा के चार वर्ष : मृत्यु के साथ वीरता-पूर्ण संघर्ष की मार्मिक कहानी।	३-७-६०	६-१०
३२	श्री रामसरन शर्मा	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	फकीर बादशाह : मेरे दादा	३-७-६०	१७-१८
३३	श्री रामशरण विद्यार्थी	,,	मेरे जेल के साथी	,,	२६
३४	शुभ श्री देवव्रती शर्मा	,,	नि:स्वार्थ प्रीति का वह अमर गायक	,,	२३व३६
३५	श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी	,,	त्यागी, देशभक्त और सहृदय	,,	३७-४०
३६	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	,,	अनवरत संघर्ष के प्रतीक नवीन जी	१०-७-६०	११-१२
३७	श्री पन्नालाल त्रिपाठी	,,	नवीन जी एक विलक्षण व्यक्तित्व	,,	१७ व १६-२०
३८	श्री अवनीन्द्र कुमार	,,	वह अन्याय से लड़ते और प्रेम के आगे झुकते थे।	,,	१६
३९	श्री ब्रह्मदत्त शर्मा	,,	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसा मैंने उन्हें देखा।	,,	२६-२७
४०	श्री यशपाल जैन	,,	नवीन जी चले गये	,,	२७
४१	श्री ठाकुर प्रसाद सिंह	ग्राम्या	क्योंकि तुम जो कह गये हो, तुम हरोगे रात का भय	२४-७-६०	३
४२	श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव	सरस्वती	मुझको तो हो तुम नित नवीन	जुलाई ६०	२८-३०
४३	डॉ० प्रेमशंकर	हिमप्रस्थ	स्वर्गीय नवीन जी	जुलाई ६०	३-४ व ६
४४	श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'	ज्ञानभारती	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	जुलाई ६०	९ व १०
४५	श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'	ग्राम्या	नवीन जी रत्नाकर थे और रत्न पारखी थे	१५-८-६०	८
४६	श्री सूर्यनारायण व्यास	वीणा	बन्धुवर नवीन का पुण्य-स्मरण	अगस्त-सित० १९६०	४६१-४६५

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
४७	श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव	वीणा	नवीन जी एक सच्चे सिपाही	अगस्त-सित० १६६०	४६७-४६६
४८	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	,,	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	,,	५००-५०१
४६	श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय	,,	बन्धुवर श्री नवीन जी	,,	५०२-५०४
५०	श्री रामनारायण उपाध्याय	,,	नवीन जिनकी याद कभी पुरानी नहीं पड़ सकती।	,,	५०५-५०७
५१	स्व० कृष्णलाल श्रीधरानी	,,	मेरे संस्मरण	,,	५२६
५२	श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'	,,	संगीतमय जीवन	,,	५४०-४१
५३	श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'	ग्राम्या	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन : साहित्यकार और नेता	३०-६-६०	५
५४	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी	कल्पना	हुतात्मा	सित० ६०	२५-२८
५५	श्री गोपीनाथ शर्मा 'अमन'	प्रहरी	जेल के साथी : नवीन जी	१६-१०-६०	७-८
५६	श्री वेंकटेश नारायण तिवारी	नवनीत	नवीन जी	अक्टूबर ६०	६३-६५
५७	श्री भगवतीचरण वर्मा	कादम्बिनी	बालकृष्ण शर्मा नवीन	नवम्बर ६०	१८-२१
५८	श्री पन्नालाल त्रिपाठी	सरस्वती	नवीन जी के जीवन की कुछ अमिट घटनाएँ	दिस० ६०	३६६-४०३
५६	श्री राघवेन्द्र	नव जीवन	अतीत के कुछ चित्र : जो आज भी सजीव हैं : नवीन जी का व्यक्तित्व	सन् १६६१	—
६०	श्री पन्नालाल त्रिपाठी	त्रिपथगा	पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : जीवन की एक झलक	अप्रैल ६१	६५-६६
६१	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	आज	बालकृष्ण शर्मा नवीन : कुछ सजल स्मृतियाँ : 'मेरा श्राद्ध तुम्हें करना होगा'।	१३-५-६१	१०

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
६२	श्री वृन्दावन लाल वर्मा	चिन्तन	नवीन जी सदा नवीन रहे	जून-जुलाई ६१	२७-२८
६३	श्री कृपाशंकर तिवारी	,,	स्व० नवीन जी जब वृक्ष पर चढ़े थे	,,	५०
६४	डॉ० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित	,,	चिर नवीन पण्डित बालकृष्ण शर्मा	,,	५१-५६
६५	श्री कन्हैयालाल वैद्य	,,	मालवा के महामानव से अन्तिम भेंट	,,	५७-६२
६६	श्री भगवन्तशरण जौहरी	,,	एक अनुज के संस्मरण	,,	६३-६५
६७	श्री कृष्णकान्त व्यास	,,	वे दिन भूल नहीं पाता हूँ।	जून-जुलाई १९६१	६६-६७
६८	श्री गोवर्द्धनलाल मेहता	,,	अन्तिम मौन-तान से उथल-पुथल मचा गए।	,,	६७-६८
६९	श्री शिवप्रताप सिंह	,,	भाई नवीन : जिन्हें भूलना सदा असम्भव	,,	६८-७०
७०	श्री स्वरूपकुमार गांगेय	,,	वे चले गये लेकिन बाँसुरी गूँज रही है।	,,	७१-७३
७१	श्री हरिलक्ष्मण मसूरकर	,,	निशि दिन जिनकी याद सताती	,,	७४-८०
७२	श्री महेशनारायण तिवारी	,,	दो चित्र	,,	८१
७३	श्री कैलाश शर्मा	,,	उदारचेता नवीन जी	,,	८२-८३
७४	श्री बाबूलाल कोठारी	,,	मोह-माया त्याग-पथ पर बढ़ गए वे।	,,	८४-८५
७५	श्री चन्द्रगुप्त मयंक	,,	आकाश में उनकी स्वर लहरी गूँजेगी।	,,	८६
७६	श्री देवदत्त मिश्र	दैनिक प्रताप	नवीन प्रतापवाटिका के सुन्दर पुष्प	२९४-६२	३-४
७७	डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	पण्डित बालकृष्ण शर्मा नवीन	२० मई १९६२	८-९ व ४७-४८
७८	डॉ० गुलाब राय	व्रजभारती	पृथ्वी की विभूतिः स्वर्ग की सम्पत्ति	फाल्गुन सं० २०१६-१७	१९-२०
७९	श्री रामसरन शर्मा	,,	स्वर्गीय दादा नवीन जी	,,	२१-२३

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
८०	श्री रामनारायण अग्रवाल	व्रजभारती	बीमारी की वे रातें 'बस बस हो गया'	फाल्गुन सं० २०१६-१७	३३-३६
८१	श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'	नर्मदा	विलक्षण साधक: श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन	'नवीन' स्मृति अंक	६७-६६
८२	पं० बनारसीदास चतुर्वेदी	,,	स्व० 'नवीन' जी द्वारा पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गए महत्वपूर्ण पत्र।	,,	३-२८ व १३७-१४४
८३	श्री प्रताप भाई	दैनिक 'नवभारत'	पुण्यभूमि शाजापुर में 'नवीन' स्मृति समारोह	८-१२-६३	४

(२) श्रद्धांजलियाँ—(अ) गद्य—

क्र०	नाम	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री बाबूलाल बलदुवा	दैनिक प्रताप	नवीन नहीं रहे	३-५-६०	३
२	श्री बाबूलाल मिश्र	,,	वह पूर्ण मानव थे	,,	३
३	डॉ० मुरारीलाल रोहतगी	,,	शोकोद्गार	४-५-६०	३
४	श्री रामस्वरूप गुप्त	,,	वह भी एक समय था	५-५-६०	३
५	श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित	,,	श्रद्धांजलि	,,	३
६	श्री हरगोविन्द गुप्त	पाक्षिक राजभाषा	स्वर्गीय नवीन जी: एक श्रद्धांजलि	७-५-१६६०	२
७	श्रीमती महादेवी वर्मा	नवराष्ट्र	नवीन जी की याद में	८-५-६०	५
८	श्री अमृतराय	प्रयाग पत्रिका	श्रद्धा के दो फूल	२२-५-६०	४
६	श्री सुमित्रानन्दन पन्त	कृति	श्रद्धाञ्जलि	मई, ६०	५२
१०	श्री हंसमुखराय मेहता	साप्ताहिक प्रताप	नवीन जी	२७-६-६०	३
११	डॉ० राधाकृष्णन	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	प्रभावशाली व्यक्तित्व	३-७-६०	४
१२	श्री श्रीप्रकाश	,,	वह अपूर्व साहसी थे	,,	,,
१३	श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन	वीणा	हिन्दी और राष्ट्रीयता का ऊँचा सेवक	अग०-सि० ६०	४८७
१४	सेठ गोविन्ददास	,,	नवीन जी मर कर भी अमर हो गये।	,, ,,	४८८ व ४६६

क्र०	नाम	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१५	श्री अलगूराय शास्त्री	वीणा	मेरे चिर स्मरणीय मित्र	अग०-सि० ६०	५३५
१६	श्री कृष्णगोपाल विजय	,,	महामानव नवीन	,,	५३६
१७	श्री सादिक अली	,,	उच्च कोटि के इन्सान नवीन	,,	,,
१८	डॉ० राजेन्द्र प्रसाद	चिन्तन	श्रद्धांजलि	जून-जुलाई ६१	५
१९	श्री सम्पूर्णानन्द	,,	,,	,,	,,
२०	श्री हरिविनायक पाटस्कर	,,	,,	,,	५
२१	श्री अविनाशचन्द्र राय	,,	,,	,,	६
२२	श्री कन्हैयालाल खादीवाला	,,	,,	,,	,,
२३	श्री गोवर्द्धनदास मेहता	,,	,,	,,	,,
२४	श्री मोरसिंह	,,	,,	,,	७
२५	श्री प्रकाशचन्द्र सेठी	,,	,,	,,	,,
२६	श्री लक्ष्मीनारायण सेठ	,,	,,	,,	,,
२७	श्री मंगलीप्रसाद आजाद	,,	,,	,,	८
२८	श्री कलानिधि चंचल	,,	,,	,,	,,
२९	श्री कामता प्रसाद	,,	,,	,,	९
३०	श्री कालीचरण प्रधान	,,	,,	,,	,,
३१	श्री चन्द्रकान्त जौहरी	,,	,,	,,	१०
३२	श्री भास्कर राव आवले	,,	,,	,,	,,
३३	श्री रघुनाथसिंह गौड़	,,	,,	,,	,,

(ब) पद्य—

क्र०	नाम	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	दैनिक प्रताप	भैयादीन जन का कन्हैया कानपुर का	३-५-६०	३
२	श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी श्याम	,,	नीति अपनाई विश्व-कर्मा ने अकर्मा की	,,	,,
३	,,	,,	होके श्वेतकेशी भी नवीन जी नवीन थे।	,,	,,

क्र०	नाम	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
४	श्री श्याम सुन्दर द्विवेदी 'श्याम'	दैनिक प्रताप	आज सब भाँति से अभागा हुआ कानपुर	३-५-६०	३
५	श्री अभिराम	,,	हा ! नवीन जी	,,	,,
६	,,	,,	हा नवीन चलते बने	,,	,,
७	श्री प्रभात शुक्ल	,,	अस्त हुआ कानपुर के भाग्य का सितारा हाय	,,	,,
८	,,	,,	बालकृष्ण देश के नवीन अभिमान थे।	,,	,,
९	श्री किशोरचन्द्र कपूर किशोर	,,	अमर नवीन	,,	,,
१०	श्री श्याम सुन्दर द्विवेदी श्याम	,,	पूरी किस भाँति होगी क्षति।	४-५-६०	३
११	,,	,,	श्रद्धा के सुमन, ये	,,	,,
१२	श्री गिरिजाशंकर शास्त्री	,,	कविता	५-५-६०	३
१३	श्री देवराज दिनेश	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	चिर नवीन	१५-५-६०	५
१४	श्री बिरथरे 'सिद्ध'	नई दुनिया	स्वर्गीय श्री नवीन जी के प्रति	१६-५-६०	२
१५	श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'	ज्योत्स्ना	आनन्दं प्रयत्यभिसंविशन्ति	मई, ६०	×
१६	श्री रामावतार त्यागी	नवभारत टाइम्स	नवीन जी के प्रति दो श्रद्धा सुमन	२६-६-६०	५
१७	श्री अरुण व श्रीनिवास हार्डीकर	साप्ताहिक प्रताप	बालकृष्ण शर्मा नवीन	२७-६-६०	२
१८	श्री राजेश्वर शर्मा 'राज'	साप्ताहिक प्रताप	नवीन के प्रति टूटी-फूटी श्रद्धांजलि	२७-६-६०	२
१९	श्री विश्वमोहन पाण्डेय	,,	श्रद्धांजलि	,,	,,
२०	श्री प्रतापसिंह राठौर	,,	चिर नवीन	,,	३
२१	श्री अमृतलाल चतुर्वेदी	सरस्वती	प्रवीन सुकवीन में	जून ६०	३६१
२२	श्री मैथिलीशरण गुप्त	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	नवीन	३-७-६०	४
२३	श्री बालस्वरूप राही	,,	श्रद्धा के छन्द : सुमन	,,	३
२४	श्री देवव्रत देव	,,	राष्ट्रकवि नवीन के प्रति	,,	६

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
२५	श्री बाबूराम पालीवाल	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	मृत्यु मर कर सो गई है।	३-७-६०	१७
२६	सुश्री कमलेश सक्सेना	,,	एक बहन के उद्गार	,,	३०
२७	श्री हरगोविन्द गुप्त	,,	नवीन जी से साक्षात्कार	१०-७-६०	२६
२८	डॉ० हरिशंकर शर्मा	,,	श्रद्धांजलि	,,	२७
२९	श्री केदारनाथ कलाधर	नवराष्ट्र	हे बालकृष्ण : हे चिर नवीन	२४-७-६०	३
३०	श्री सूर्यमणि शास्त्री	,,	नवीन जी के प्रति	,,	४
३१	श्री नटवरलाल स्नेही	वीणा	श्रद्धांजलि	अगस्त सित० ६०	४६३
३२	श्री भगवतशरण जौहरी	,,	तुम कैसे नवीन मतवाले	,,	,,
३३	श्री दुलीचन्द शशि	,,	स्व० नवीन जी के प्रति	,,	४६४
३४	श्री नरेन्द्र चतुर्वेदी 'चंचल'	,,	नवीन जी के प्रति	,,	४६५
३५	श्री महेशशरण जौहरी ललित	,,	साजन तुम हो गए पराए	,,	४६६
३६	श्री जगदीश चन्द्र शर्मा	,,	नवीन जी के प्रति	,,	४६७
३७	श्री शिवशम्भु शर्मा	,,	,,	,,	,,
३८	श्री विनोदकुमार मेहरोत्रा	,,	आकाश दीप	,,	४६८
३९	श्री मन्नूलाल चौरसिया	,,	तुम किधर गये बोलो नवीन	,,	४६९
४०	श्री लक्ष्मीनारायण शोभन	,,	नवीन जी के निधन पर	,,	,,
४१	श्री शिवपूजन शर्मा	,,	नवीन	,,	४७०
४२	श्री ओमप्रकाश ठाकुर 'अवनीश'	,,	त्याग नश्वर देह को तुम	,,	,,
४३	श्री नरेन्द्र पवरा दीपक	,,	नवीन जी के प्रति	,,	४७१
४४	श्री मदनलाल जोशी	,,	श्रद्धांजलि	,,	४७२
४५	श्री लालदास वैरागी	चिन्तन	नवीन	जून-जुलाई ६१	८
४६	श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'	,,	मालवमहि ज्योतिर्धर	,,	१८

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
४६	श्री महेशप्रसाद भारती	चिन्तन	आँसू की अर्पित है माला।	जून-जुलाई ६१	१६
४७	श्री कौशल मिश्र	,,	विरह व्यथा में	,,	२१
४८	श्रीमती ज्ञानवती सक्सेना 'किरण'	,,	तुम युग-युग ही के चिर प्रतीक	,,	२२
४६	श्री रामलला	ब्रजभारती	श्रद्धांजलि	फाल्गुन सं० २०१६-१७	१

(३) सम्पादकीय टिप्पणियाँ—

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री नरेश मेहता	कृति	वैष्णव जन : नवीन जी	अप्रैल ६०	६५-६६
२	आचार्य शिवपूजन सहाय	साहित्य	श्रद्धांजलि	,,	७-८ व ६३
३	श्री देवदत्त शास्त्री	नवराष्ट्र	कविवर नवीन का निधन	१-५-६०	४
४	श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य	दैनिक प्रताप	हे अनन्त पथ-यात्री, शत-शत प्रणाम।	,,	२
५	,,	,,	श्रद्धेय पं० बालकृष्ण शर्मा : राजनीति—साहित्य-साधनारत जीवन की एक झलक	,,	,,
६	श्री गोपीनाथ गुप्त	सहयोगी	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन का शरीरांत : उनकी वाणी सदा अमर रहेगी।	२-५-६०	१
७	,,	,,	पं० बालकृष्ण शर्मा का देहावसान	,,	३
८	श्री ब्रजभूषण चतुर्वेदी	कर्मवीर	पद्मभूषण पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन : स्वर्गीय	७-५-६०	१ व ८
६	श्री देवव्रत शास्त्री	नवराष्ट्र	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	१४-५-६०	४
१०	श्री बाँकेबिहारी भटनागर	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	एक और नर-केहरी चल बसा	१५-५-६०	३
११	एन० वि० कृष्ण वारियर	युग प्रभात	नवीन जी	१६-५-६०	४

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१२	श्री हीरालाल चौबे	वासन्ती	नवीन जी : एक श्रद्धाञ्जलि	मई ६०	६-७
१३	श्री नरेश मेहता	कृति	महाप्रस्थानेर पथे	मई ६०	५०-५१
१४	श्री हरिभाऊ उपाध्याय	जीवन-साहित्य	नवीन जी गये क्या, जीवन में से नवीनता चली गई।	मई ६०	१९५
१५	श्री रामनाथ गुप्त	रामराज्य	दिव्य पथगामी श्री नवीन : आँसुओं की यह श्रद्धाञ्जलि	मई ६०	१
१६	श्री अखिल विनय	विश्व साहित्य	नवीन जी	मई ६०	२-३
१७	श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी	नई धारा	नवीन जी का निधन	मई ६०	९६
१८	श्री विश्वनाथ	नया साहित्य	स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीन	मई ६०	१
१९	श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी	सरस्वती	पं० बालकृष्ण शर्मा का स्वर्गवास	मई ६०	३०४
२०	शुभ श्री लेखा विद्यार्थी	साप्ताहिक प्रताप	बाल-गोष्ठी श्रद्धाञ्जलि परिशिष्ट	२७-६-६०	४
२१	श्री मोहनलाल भट्ट	राष्ट्र भारती	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	जून ६०	३४३-३४४
२२	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	आजकल	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	जून ६०	४५
२३	श्री सिद्धनाथ पन्त	भारतवाणी	स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीन	जून ६०	२१
२४	डॉ० आर्येन्द्र शर्मा	कल्पना	श्रद्धाञ्जलि	जून ६०	२४
२५	श्री कमलाशंकर मिश्र	वीणा	नवीन स्मृति अंक	जून ६०	४०७
२६	श्री गो० प० नेने	राष्ट्रवाणी	स्व० नवीन जी	जून ६०	२-३
२७	श्री राजेन्द्र द्विवेदी	संस्कृति	नवीन	जून-जुलाई १९६०	३५
२८	श्री बाँके बिहारी भटनागर	सा० हिन्दुस्तान	सेवा और श्रद्धा के ये थोड़े से फूल	३-७-६०	४
२९	श्री देवव्रत शास्त्री	नवराष्ट्र	नवीन परिशिष्ट	२४-७-६०	४
३०	श्री जेठालाल जोशी	राष्ट्रवीणा	स्व० नवीन जी	जुलाई ६०	२०९

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
३१	श्री रामपाल पाण्डेय	आदर्श	योद्धा बालकृष्ण शर्मा नवीन	अगस्त ६०	५
३२	श्री प्रभागचन्द्र शर्मा	वीणा	तुम गुदड़ी के लाल नहीं, तुम हो गुदड़ी के लाल सखे	अगस्त-सितम्बर ६०	४५७-४६२
३३	श्री बालकृष्ण राव	कादम्बिनी	बालकृष्ण शर्मा नवीन	नवम्बर ६०	१८
३४	डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	परिषद् पत्रिका	श्रद्धाञ्जलि	अप्रैल ६१	४
३५	श्री श्रीराम शर्मा	विशाल भारत	नवीन जी : स्मृति	,,	२४१
३६	श्री महेशशरण जोहरी ललित	चिन्तन	चिन्तन मंथन	जून-जुलाई १९६१	११५-१४२
३७	श्री रामनारायण अग्रवाल	व्रज भारती	स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	फाल्गुन सं० २०१६-१७	२-४
३८	,,	,,	व्रजभारती का यह अंक	,,	६५
३९	डॉ० बच्चन सिंह	नागरी प्रचारिणी पत्रिका	स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीन	अंक १ सं० २०१७	९०
४०	डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र	जनभारती	पद्मभूषण नवीन जी	अंक १ सं० २०१७	३३-३५
४१	पं० बनारसीदास चतुर्वेदी	नर्मदा	'नवीन' जी की स्मृति-रक्षा	अगस्त १९६३	१४५-४७

(२) साहित्यालोचन सम्बन्धी सामग्री—

नवीन जी के साहित्य और उसके विभिन्न पार्श्वों एवं सूत्रों पर प्राप्त सामग्री को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) पुस्तकों द्वारा प्राप्त सामग्री,

(ख) पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्राप्त सामग्री ।

प्रस्तुत सामग्री का यहाँ विस्तृत विवरण उपस्थित किया जाता है—

(क) पुस्तकों द्वारा प्राप्त सामग्री—'नवीन' जी पर, पुस्तकों में प्राप्त सामग्री को भी, दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्रकाशित सामग्री,

(२) अप्रकाशित सामग्री ।

(१) **प्रकाशित सामग्री**—'नवीन' जी के साहित्य पर समीक्षात्मक रूप में जो सामग्री प्रकाशित हुई है, उसका विवेचन अधोलिखित रूप में है :—

(१) **'नवीन' दर्शन**—लेखक : प्रो० केशवदेव उपाध्याय, 'नवीन' जी के व्यक्तित्व एवं काव्य के कतिपय पक्षों पर सामान्य विवेचनात्मक पुस्तक।

(२) **व्यक्ति और वाङ्मय**—लेखक डॉ० प्रभाकर माचवे, श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन : लेख, पृष्ठ ९९-१०४

(३) **साहित्य तरंग**—लेखक ; श्री सद्गुरु शरण अवस्थी; गीति-काव्य और बालकृष्ण शर्मा नवीन; लेख, पृष्ठ १२५-१२७।

(४) **हिन्दी गद्य-गाथा**—लेखक श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, बालकृष्ण शर्मा, लेख, पृष्ठ १६७-१७४।

(५) **प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ**—लेखक, डॉ० रामविलास शर्मा, साहित्य और यथार्थ, लेख, पृष्ठ ६०-१०१।

(६) **हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य**—लेखक डॉ० गोविन्दराम शर्मा, 'उर्मिला', पृष्ठ ४३५-४४५।

(२) **अप्रकाशित सामग्री**—

(१) **नवीन और उनकी कविता**—लेखिका शुभ श्री कृष्णा चतुर्वेदी, दिल्ली विश्व-विद्यालय की एम० ए० परीक्षा के हेतु प्रस्तुत प्रबन्ध, सन् १९६०; कुल पृष्ठ १६१; प्रबन्ध की टंकित प्रति दिल्ली-विश्वविद्यालय-ग्रन्थालय में उपलब्ध।

(२) **पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन का काव्य**—लेखक श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, राजकीय हमीदिया महा विद्यालय, भोपाल (म० प्र०); विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०) की एम० ए० (अंत्य) की हिन्दी की परीक्षा के आठवें प्रश्न-पत्र में निबन्ध के स्थान पर प्रस्तुत प्रबन्ध, कुल पृष्ठ २३४; प्रबन्ध की टंकित प्रति विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के ग्रन्थालय में उपलब्ध है।

(३) **श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन और उनकी काव्य-साधना**—लेखक श्री कृष्णकिशोर सक्सेना, महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर, (म० प्र०) विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०) की एम० ए० परीक्षा के लिये प्रस्तुत प्रबन्ध, कुल पृष्ठ ७७; प्रबन्ध की टंकित प्रति विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के ग्रन्थालय में उपलब्ध है।

(ख) **पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्राप्त सामग्री**—कालक्रमानुसार, उपलब्ध सामग्री की तालिका प्रस्तुत है :—

स्फुट समीक्षात्मक सामग्री की तालिका—(क) मृत्यु के पूर्व

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री सूर्यनारायण व्यास	वीणा	कविवर नवीन की कविता	मार्च १९३४	४०२ व ४०५

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
२	श्री प्रणयेश शुक्ल	वीणा	कविवर, नवीन की प्रारम्भिक रचनाएँ	मार्च १६४४	२१२-२१६
३	श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित	आगामी कल	पं० बालकृष्ण शर्मा से भेंट।	जून, १६४६	७
४	श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी	आजकल	नवीन की कविता	अक्तू० १६५०	--
५	श्री सूर्यनारायण व्यास	विक्रम	रससिद्ध कवि नवीन	अप्रैल-मई १६५१	१७-२०
६	श्री विश्वनाथ सिंह	वीणा	शृंगार-प्रिय कवि नवीन	फरवरी १६५२	१२२-२३०
७	डॉ० धर्मवीर भारती	आलोचना	'अपलक' समीक्षा	अप्रैल १६५२	८८-६२
८	श्री कृष्णकान्त दुबे	वीणा	मालवा के प्रवासी साहित्यकार : बालकृष्ण शर्मा नवीन	अप्रैल-मई १६५२	३४०-३४१
६	श्री रामवरण सिंह सार्थी	साहित्य संदेश	नवीन की पत्रकार-कला	जून १६५२	५११-५१२
१०	डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी	आजकल	हम चिर नूतन जदपि पुराने	जून १६५३	—
११	समीक्षाकार	राष्ट्र भारती	'क्वासि' समीक्षा	जुलाई १६५३	५६०-५६१
१२	श्री सुशील कुमार श्रीवास्तव 'अरुण'	युगारम्भ	श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन से एक भेंट	कार्तिक सं० २०११	१०-११
१३	श्री श्याम परमार	विक्रम	नवीन और उनकी कविताएँ।	अप्रैल १६५४	४०-४३
१४	श्री रामनारायण अग्रवाल	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन का व्रजभाषा काव्य	१६-१२-५६-	—
१५	डॉ० राजेश्वर गुरु	नवराष्ट्र	कोमल अभिव्यंजना के कवि नवीन	दीपावली विशेषांक १६५७	—
१६	श्री भगवतीचरण वर्मा	आजकल	बालकृष्ण शर्मा नवीन	दिसम्बर १६५७	७-१० वा १६

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१७	श्री बाँके बिहारी भटनागर	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	नवीन का पराजय गीत स्पष्टीकरण : 'सम्पादकीय'	६-६-५६	—

(ख) मृत्यु के पश्चात्—

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१	श्री फतेहचन्द्र शर्मा आराधक	नवभारत टाइम्स	नवीन जी की हिन्दी सेवाएँ	३०-४-६०	२
२	श्री सूर्यनारायण व्यास	नई दुनियाँ	कविवर नवीन के प्रति	१६-५-६०	२-३
३	श्री उदयनारायण सिंह	आज	राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि कवि : 'नवीन'	२६-५-६०	१०
४	डॉ० रामअवध द्विवेदी	आज	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	२६-५-६०	६
५	श्री सत्यनारायण त्रिवेदी	,,	भारती के अमर गायक नवीन	,,	,,
६	श्री कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'	,,	पत्रकार नवीन	,,	,,
७	श्री रामगोपाल चतुर्वेदी	सहयोगी	नवीन जी की काव्य-साधना	३०-५-६०	८
८	श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	कृति	महामना नवीन जी : राजनीतिज्ञ और पत्रकार	मई ६०	५४-५६
९	श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी	सरस्वती	नवीन जी की कविताएँ	जून ६०	३९५-४०१
१०	श्री देवीशंकर अवस्थी	कल्पना	'ऊर्म्मिला'	जून ६०	६२-६४
११	श्री शिवबालक शुक्ल	वीणा	नवीन जी क्वासि	जून ६०	३८६-३९४
१२	श्री पन्नालाल त्रिपाठी	त्रिपथगा	अन्तर्वेदनामय काव्य के सम्राट् नवीन	जून ६०	—
१३	श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	राजनीति के पंकज	३-७-६०	१६-२० व २५
१४	श्री जगदीश श्रीवास्तव	,,	प्राणार्पण : नवीन जी का अप्रकाशित खण्ड काव्य	,,	२६-२७
१५	श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा	,,	नवीन जी की काव्य प्रतिभा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि	१७-७-६०	२७ व ४२

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
१६	श्री रामवरणसिंह सारथी	नवराष्ट्र	क्रान्तिदर्शी कवि नवीन जी	२४-७-६०	३
१७	श्री जगदीश श्रीवास्तव	,,	नवीन जी की कविताओं के प्रेरणा-स्रोत	,,	४-५
१८	श्री कृष्णदेव शर्मा	सरस्वती संवाद	नवीन की काव्य साधना	जुलाई ६०	२६-३१
१६	श्री व्रजनारायण वाजपेयी	रामराज्य	नवीन जी का गीति काव्य	१५-८-६०	८
२०	श्री जगदीश श्रीवास्तव	हमीदिया पत्रिका	राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं का अमर गायक : नवीन	अगस्त १६६०	२१-२५
२१	श्री ईश्वरसिंह	वीणा	कलम और तलवार के धनी नवीन	अगस्त-सित० ६०	५३२-५३४
२२	श्री रूपलाल चौहान ग्रामिक	,,	कवि हृदय स्व० पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन	,,	५४२-५४३
२३	श्री अमरनाथ	वीणा	तुमने युग की माँग जानकर, अपनी वीणा के स्वर साधे	,,	५३७-५३६
२४	कुँवर रामसिंह यादव	,,	महान् एवं असाधारण व्यक्तित्व पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	,,	५४४-५४६
२५	श्री अनन्त नारायण चौबे 'अनन्त'	,,	श्रद्धेय नवीन जी क्या थे और क्या न थे ?	अगस्त-सित० १६६०	५४७-५४८
२६	श्री जुगुलकिशोर जरगर	,,	मानव जीवन का अमर गायक : नवीन	,,	५४६-५१
२७	श्री विश्वम्भर अरुण	,,	नवीन का गीति काव्य	,,	५५२-५५
२८	श्री रामप्रताप मिश्र	युगप्रभात	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन राष्ट्र और राष्ट्रीयता के महान् उपासक।	१-६-६०	६-१० व १८-१६
२६	श्री श्यामकृष्ण मिश्र	वीणा	राष्ट्रीय काव्य-धारा और नवीन जी	दिसम्बर ६०	६५-६८

क्र०	लेखक	पत्रिका	शीर्षक	तिथि	पृष्ठ
३०	डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना	ब्रजभारती	ऊर्मिला का विरह-वर्णन	फाल्गुन सं०२०१६-१७	२३-३२
३१	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी	,,	नर-केहरी नवीन जी	,,	४२-४४
३२	श्री अमरनाथ	साहित्य सन्देश	दिवंगत साहित्यकार १९६० : श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन	जनवरी-फरवरी १९६१	३४४
३३	डॉ० देवेन्द्रकुमार	सप्तसिन्धु	ऊर्मिला की प्रबन्ध-कल्पना	अप्रैल, १९६१	४१-४५
३४	श्री विपिन जोशी	चिन्तन	'कुंकुम' की भूमिका	जून-जुलाई ६१	३७-४२
३५	डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय	,,	विनोवा स्तवन एवं स्वर्गीय नवीन जी	जून जुलाई १९६१	६४-६६
३६	श्री दीनानाथ व्यास	,,	नवीन जी की महान् कृति ऊर्मिला	,,	६७-१०४
३७	प्रो० गोवर्द्धन शर्मा	ज्योत्सना	पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन	जुलाई ६१	२५-२७
३८	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	नर्मदा	नवीन जी की सद्भावना	अक्तूबर ६१	८ व १५१-१५२
३९	श्री रतनलाल परमार	मध्यप्रदेश संदेश	संस्कृति के उन्नायक : स्वर्गीय नवीन जी	२५ नवम्बर ६१	७-९ व २९
४०	श्री रामइकबालसिंह राकेश	विशाल भारत	महाकवि नवीन जी की ज्योतिर्मयी स्मृति	जनवरी १९६२	३३-३७
४१	श्री जगदीश श्रीवास्तव	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	नवीन दोहावली	८ जुलाई १९६२	७ व ४७
४२	,, ,,	रसवन्ती	स्वर्गीय नवीन जी की साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ	सितम्बर १९६२	१७-२१
४३	डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी	आजकल	नवीन जी के गद्य साहित्य पर एक दृष्टि	,,	४९-५० व ५४
४४	डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त	जनभारती	'नवीन' जी की काव्य दृष्टि	वर्ष ११, अंक २	१४-१८
४५	श्री महावीर प्रसाद वही	नर्मदा	जीवन घटता रहा : कला पनपती रही।	अगस्त ६३	१३३-३५

उपर्युक्त समीक्षात्मक सामग्री के अतिरिक्त, हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों, काव्य-समीक्षा-ग्रन्थों आदि में 'नवीन' जी का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन अथवा नामोल्लेख मात्र ही मिलता है।

सामग्री समीक्षा—'नवीन' जी पर प्रकाशित सामग्री का अध्ययन करने पर, हम कतिपय निष्कर्ष पर आ सकते हैं—

'नवीन' जी पर एक मात्र पुस्तक ही प्राप्त होती है. 'नवीन दर्शन' जो कि कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के कुछ पार्श्वों का सामान्य उद्घाटन करती है। यह सामान्य विवेचनात्मक पुस्तक है जिसमें विस्तार एवं गहनता का अभाव है। अप्रकाशित काव्य साहित्य के विश्लेषण की बात तो दूर रही, इसमें प्रकाशित साहित्य का भी पूर्ण चित्र नहीं आ पाया है। इसमें महाकाव्य 'उर्मिला' का विवेचन नहीं है। 'ऊर्मिला' तथा 'नवीन दर्शन' के प्रकाशन की तिथि एक है। प्रस्तुत पुस्तक पर श्री रुद्रनारायण शुक्ल द्वारा दैनिक 'नव जीवन', लखनऊ में, 'नवीन' जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लिखित लेख-माला का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

शोध-ग्रन्थों के रूप में जो पुस्तकें प्राप्य हैं, वे अभी तक अप्रकाशित हैं। एम० ए० परीक्षा के प्रबन्ध होने के कारण, उनकी अपनी सीमाएँ एवं स्तर है जिनका वे अतिक्रमण नहीं कर सकते।

इस प्रकार 'नवीन' जी पर जो भी साहित्य प्रकाशित हुआ, वह स्फुट लेखों में ही प्राप्त होता है। सम्बन्धित तालिकाओं को देखने पर भी यह विदित होता है कि कवि-जीवन में, उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अत्यल्प ही लिखा गया और उसकी मृत्यु के पश्चात् उस पर कुछ अधिक ध्यान दिया गया।

'नवीन' जी की मृत्यु के पश्चात् जो संस्मरणों की बाढ़ आई, उनमें से अधिकांश का प्रचारात्मक मूल्य ही अधिक है। उनके स्थायी एवं विशिष्ट उपादेय सामग्री की उपलब्धि नहीं होती। संस्मरणों में कहीं-कहीं अपने महत्व का भी प्रतिपादन मिलता है, परन्तु इन सभी वस्तुस्थितियों के होते हुए भी, कतिपय संस्मरण श्रेष्ठ कोटि के हैं जिनके लेखकों में डॉ०नगेन्द्र, श्री 'दिनकर,' डॉ० 'बच्चन,' श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री भगवतीचरण वर्मा, डॉ० 'सुमन' आदि की गणना की जा सकती है।

'नवीन' जी की जीवनी विषयक सामग्री में भी कई बातों का पूर्ण अभाव है। उनकी बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था तथा शिक्षा-दीक्षा सम्बन्धी, जीवन-काल सम्बन्धी पक्ष, प्रायः अछूते हीं रह गये। इसी प्रकार उनकी वंश-परम्परा, माता-पिता आदि की पूर्ण जानकारी अब अत्यन्त दुर्लभ हो गई है। इस क्षेत्र को भी उपेक्षित रखा गया जो कि उनकी जीवनी की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि कवि ने स्वयं अपनी लघु आत्म-कथा में कतिपय सूचनाएँ नहीं दी होती, तो आज 'नवीन' जी के समग्र व्यक्तित्व का चित्रण करना असम्भव ही हो गया होता।

'नवीन' के साहित्य पर जो समीक्षात्मक सामग्री प्रकाशित हुई, उसमें भी परिपक्वता तथा सुशृंखलता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। उनके काव्य-साहित्य की विवेचना पर

सुन्दर ग्रन्थ अथवा रचना का घोर अभाव है। मृत्यु के पश्चात्, जैसा कि इकबाल ने लिखा है—"Many a poet born after their death ?"[1]

उनके साहित्य पर जो कुछ लिखा-पढ़ा गया, वह भी सामान्य कोटि का ही है। परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि कवि की मृत्यु के पश्चात् हमारा ध्यान उनके साहित्य के प्रति आकर्षित हुआ। उनके अप्रकाशित साहित्य की भी प्रबल चर्चा, यत्र-तत्र होने लगी। हिन्दी में जब कि 'साकेत' और 'कामायनी' पर बीसियों श्रेष्ठ कोटि की समीक्षात्मक पुस्तकें प्राप्त हैं, 'ऊर्मिला' पर पुस्तक को तो छोड़िए, एक अच्छा सा, व्यवस्थित एवं सांगोपांग चित्र प्रस्तुत करने वाला, निबन्ध भी उलपब्ध नहीं है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में, गुप्त जी, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, दिनकर आदि पर जितनी पुस्तकें लिखी गईं, उतने 'नवीन' जी पर, सम्भवत: उत्तम निवन्ध भी नहीं लिखे गये। "एक भारतीय आत्मा' के व्यक्तित्व-एवं कृतित्व पर भी, जिनके काव्य-प्रकाशन तथा जीवन की कहानी 'नवीन' जी से पर्याप्त साहश्य रखती है, चार पुस्तकें लिखी गईं, परन्तु 'नवीन' के विषय में, इस दिशा में कोई प्राप्ति नहीं दिखाई पड़ती। अतएव, 'नवीन' के शोध-कर्त्ता को मौलिक तथा समीक्षात्मक, दोनों ही सामग्री की दिशा में, स्वल्प पूँजी ही प्राप्त होती है जिसे उसे अपने वरेण्य आचार्यों के मार्ग-दर्शन में विशद, समृद्ध एवं प्रशस्त करनी पड़ती है।

'नवीन' जी, समीक्षकों के द्वारा काफी उपेक्षित रहे। इसका दोष समीक्षकों पर उतना नहीं मढ़ा जा सकता, जितना स्वयं उन पर। उनके असंग्रही व्यक्तित्व, प्रकाशन के प्रति विरक्त एवं आलस्य-वृत्ति, राजनीति को अधिक महत्व एवं समय प्रदान करने और अपने को विज्ञापित करने की कला से कोसों दूर रहने के कारण, वे विपुल समीक्षा सामग्री के नायक नहीं बन सके।[2]

इन सब तथ्यों के होते हुए भी, कतिपय विद्वान-लेखकों के ग्रन्थों में 'नवीन' जी विषयक अध्ययन एवं समीक्षा के गम्भीर तथा प्रभावपूर्ण सूत्र प्राप्त हो जाते हैं जिनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी कृत, 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' तथा 'आधुनिक साहित्य,' डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य' डॉ० नगेन्द्र की 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ' तथा डॉ० 'नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध', डॉ० बच्चन की' नये पुराने भरोसे' आदि की सहर्ष गणना की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'नवीन' जी पर अभी तक स्फुट एवं सामयिक सामग्री का प्राचुर्य रहा है। ऐसा कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें उनके व्यक्तित्व एवं काव्य साहित्य का सांगोपांग, व्यवस्थित तथा स्तरीय विश्लेषण एवं प्रतिपादन हो।

स्व-प्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री—स्व-प्रयत्न द्वारा कवि के अप्रकाशित काव्य-साहित्य के अध्ययन एवं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उसके उपयोग की बात का विवेचन विगत पृष्ठों में किया ही जा चुका है। इसके अतिरिक्त, 'नवीन' जी की असंगृहीत कविताओं एवं कवि के जीवन-

---

१. 'नये पुराने झरोखे', पृष्ठ ३३ से उद्धृत।
२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिये, अध्याय ६वाँ।

दर्शन तथा काव्य-शक्ति को समझने में सहायक असंकलित गद्य-रचनाओं को भी एकत्रित करके, उनका यहाँ प्रयोग करना, वांछनीय समझा गया।

स्वप्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री को निम्नलिखित वर्गों में बाँटकर, उसका विवरण देना, समीचीन प्रतीत होता है :—

(क) शोध-यात्राएँ,
(ख) प्रत्यक्ष भेंट,
(ग) मौखिक सूचनाएँ एवं संस्मरण,
(घ) पत्राचार द्वारा प्राप्त संस्मरण,
(ङ) पत्र-व्यवहार,
(च) संकलन।

(क) शोध-यात्राएँ—अपने विषय से सम्बन्धित बिखरी पड़ी शोध-सामग्री के संचयन एवं सदुपयोगार्थ, मैंने, 'नवीन' जी से सम्बन्धित विभिन्न स्थानों एवं प्राप्त-साहित्य-स्थलों की यात्रा की। ये यात्राएँ कवि की 'लीलाभूमि' एवं 'कर्मभूमि' से सम्बद्ध रहीं।

कवि की 'लीलाभूमि' मध्यप्रदेश रही है। मध्यप्रदेश के अन्तर्गत शाजापुर, उज्जैन, इन्दौर, खण्डवा, भोपाल, जबलपुर आदि स्थानों की यात्राएँ की और वहाँ से लिखित एवं मौखिक सामग्री एकत्रित की।

कवि की 'कर्मभूमि' का सम्बन्ध उत्तर भारत से रहा है। उत्तर भारत के अन्तर्गत, मैंने कानपुर, नर्वल, लखनऊ, वाराणसी, नई दिल्ली, पटना एवं कलकत्ता की यात्राएँ की। यहाँ से भी यथा-उपलब्ध सामग्री बटोरने की चेष्टा की।

(ख) प्रत्यक्ष भेंट—अपनी शोध-यात्राओं में, अपने विषय से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियों, सूचनाओं एवं सामग्री आदि के हेतु, जिन-जिन व्यक्तियों से भेंट की, उनकी पूर्ण तालिका अधोलिखित रूप में है :—

(१) नई दिल्ली—डॉ० नगेन्द्र, श्रीमती सरला देवी शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉ० हरिवंश राय, 'बच्चन', श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', श्री बाबूराम पालीवाल, श्री क्षेमचन्द्र, 'सुमन', श्री भारतभूषण अग्रवाल, श्री रामचन्द्र शर्मा 'महारथी', डॉ० युद्धवीर सिंह, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्री रामचन्द्र टण्डन, श्री रामसरन शर्मा, श्री गोपालकृष्ण कौल, श्री चिरंजीत, श्री अशोक वाजपेयी, श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री मोहन सिंह सेगर, श्री शिवकुमार त्रिपाठी, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री रामनारायण अग्रवाल, डॉ० दशरथ ओझा, श्री सत्यदेव विद्यालंकार, तपस्वी सुन्दर लाल, श्री गोपीनाथ शर्मा 'अमन', श्री यशपाल जैन, श्री मार्तण्ड उपाध्याय, श्री बाँके बिहारी भटनागर, श्री मुकुटविहारी वर्मा, डॉ० रामधन शर्मा शास्त्री, श्री आर० प्रसाद (सह-सचिव, गृह मन्त्रालय), श्री बी० के० भार्गव (उप-सचिव, शिक्षा मन्त्रालय), श्री चाँद नारायण (उप-सचिव, लोकसभा सचिवालय), श्री सत्येन्द्र शरत्, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री गोपालप्रसाद व्यास, श्री हरिशंकर द्विवेदी, श्री महेन्द्र मेहरा, श्री विष्णु प्रभाकर, संसद्-सदस्य श्री मुन्नूलाल द्विवेदी, श्री वेंकटेश नारायण तिवारी, श्री उमाशंकर दीक्षित, डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी, श्री उमाशंकर त्रिवेदी आदि।

(२) **वाराणसी**—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री रायकृष्ण दास, डॉ० राजबली पाण्डेय।

(३) **कानपुर**—श्रीमती रमादेवी विद्यार्थी, श्री पन्नालाल त्रिपाठी, श्री अशोक विद्यार्थी, श्री गौरीशंकर त्रिवेदी, श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, प्रो० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, डॉ० मुन्शीराम शर्मा, डॉ० वृजलाल वर्मा, आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी, श्री जयदेव गुप्त, श्री रामनाथ गुप्त, डॉ० श्रीकान्त गुप्त, श्री ओंकार शंकर विद्यार्थी, श्री किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर', श्री दयाशंकर दीक्षित 'देहाती', श्री देवदत्त मित्र आदि।

(४) **नर्वल**—श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', श्री अवनिकुमार कर्ण।

(५) **लखनऊ**—श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री यशपाल, श्री सत्यदेव शर्मा, श्री बालकृष्ण अग्निहोत्री।

(६) **कलकत्ता**—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', पं० विष्णुदत्त शुक्ल, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, आदि।

(७) **पटना**—श्री देवव्रत शास्त्री (अब स्वर्गीय); आचार्य नलिनी विलोचन शर्मा (अब स्वर्गीय); डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' आदि।

(८) **शाजापुर**—श्रीरामचन्द्र बलवंत शितूत, श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र', डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन, श्री प्रताप भाई, श्री वसंती लाल माथुर, श्री रामनारायण माथुर आदि।

(९) **उज्जैन**—प्रो० गुरुप्रसाद टण्डन, श्री जमनादास झालानी, श्री गोविन्द पण्ढरी नाथ हिरवे, श्री केशव गोपाल सात्विक आदि।

(१०) **इन्दौर**—श्री युधिष्ठिर भार्गव, श्री प्रभागचन्द्र शर्मा, श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', श्री दामोदर दास झालानी आदि।

(११) **खण्डवा**—डॉ० माखनलाल चतुर्वेदी।

(१२) **जबलपुर**—डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० राजबली पाण्डेय, श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', श्री भवानीप्रसाद तिवारी, श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव, श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', श्री शालिग्राम द्विवेदी आदि।

यात्रा जिस क्रम में की गयी, उसी क्रम में नगरों के नाम दिये गये हैं। कवि की कर्म-भूमि की यात्रा प्रथमतः की गई और लीलाभूमि की तदनन्तर। कर्म-भूमि की यात्रा मई-जून, १९६१ ई० में की गई। लीला-भूमि की यात्रा दिसम्बर, १९६१ ई० एवं जनवरी, १९६२ ई० में की गई।

(ग) मौखिक रचनाएँ एवं संस्मरण—कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के समग्र चित्र पर आधृत एक 'प्रश्नावली' के आधार पर, विविध कोटि की सूचनाएँ प्राप्त की गईं। इनमें कवि के जीवन, व्यक्तित्व, काव्य-प्रेरणास्रोत, पृष्ठभूमि, अप्रकाशित साहित्य, विचारधारा, सामग्री-प्राप्ति, अभिमत आदि की जानकारियाँ ली गईं। कवि के जीवन एवं कृतित्व से सम्बन्धित संस्मरण एकत्रित किये गये। जिन महानुभावों से कवि सम्बन्धी मौखिक संस्मरण प्राप्त किये गये हैं, उनके नाम निम्नलिखित रूप में हैं। उनकी तिथियाँ भी आगे दर्शाई गईं है। इन संस्मरणों के क्रम में, लीलाभूमि से कर्मभूमि की ओर उन्मुख हुआ गया है :—

नाम एवं तिथि—

(१) आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, सागर (१४-११-६१)
(२) श्री गुरुप्रसाद टण्डन, उज्जैन (६-१२-६१)
(३) श्री जमनादास झालानी, उज्जैन (६-१२-६१)
(४) श्री गोविन्द पण्ढरी नाथ हिरवे, उज्जैन (१०-१२-६१)
(५) श्री केशव गोपाल सात्विक, उज्जैन (१०-१२-६१)
(६) श्री दामोदर दास झालानी, इन्दौर (१०-१२-६१)
(७) श्री प्रभागचन्द्र शर्मा, इन्दौर (१३-१२-६१)
(८) श्री युधिष्ठिर भार्गव, इन्दौर (११-१२-६१)
(९) श्री हरिकृष्ण प्रेमी, इन्दौर (११-१२-६१)
(१०) रामचन्द्र बलवंत शितूत, शाजापुर (८-१२-६१)
(११) श्री प्रताप भाई, शाजापुर (८-१२-६१)
(१२) श्री वसंतीलाल माथुर, शाजापुर (८-१२-६१)
(१३) डॉ० माखनलाल चतुर्वेदी, खण्डवा (१३-१२-६१)
(१४) श्री भवानीप्रसाद तिवारी, जबलपुर (७-१-६२)
(१५) श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', जबलपुर (८-१-६२)
(१६) डॉ० उदयनारायण तिवारी, जबलपुर (७-१-६२)
(१७) श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव, जबलपुर (७-१-६२)
(१८) श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', जबलपुर (७-१-६२)
(१९) श्री नरेन्द्र शर्मा, नई दिल्ली (२०-५-६१)
(२०) डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन', नई दिल्ली (२३-५-६१)
(२१) श्री उमाशंकर दीक्षित, नई दिल्ली (२२-५-६१)
(२२) श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी, नई दिल्ली (२३-५-६१)
(२३) श्री उदयशंकर भट्ट, नई दिल्ली (२४-५-६१)
(२४) श्री मन्नूलाल द्विवेदी, नई दिल्ली (२६-५-६१)
(२५) श्री अशोक वाजपेयी, नई दिल्ली (२६-५-६१)
(२६) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, नई दिल्ली (२६-५-६१)
(२७) श्री रायकृष्ण दास, वाराणसी (१०-६-६१)
(२८) श्री भगवतीचरण वर्मा, लखनऊ (१२-६-६१)
(२९) श्री सुरेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य, कानपुर (१३-६-६१)
(३०) श्री अवनिकुमार कर्ण, नर्वल (१६-६-६१)
(३१) श्री प्रो० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, कानपुर (१३-६-६१)
(३२) श्री पन्नालाल त्रिपाठी, कानपुर (१३-६-६१)
(३३) श्री जयदेव गुप्त, कानपुर (१६-६-६१)
(३४) श्री दयाशंकर दीक्षित 'देहाती', कानपुर (१६-६-६१)
(३५) डॉ० मुंशीराम शर्मा, कानपुर (१४-६-६१)

(३६) डॉ० श्रीकान्त गुप्त, कानपुर (१७-६-६१)
(३७) श्री श्यामलाल गुप्त पार्षद, नर्वल (१७-६-६१)
(३८) श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' कलकत्ता (१८-६-६१)
(३६) श्री विष्णुदत्त शुक्ल, कलकत्ता (२१-६-६१)
(४०) श्री देवव्रत शास्त्री, पटना (२६-६-६१)

उपरिलिखित व्यक्तियों के मौखिक संस्करण, मेरे पास लिपि बद्ध रूप में सुरक्षित है।

(घ) पत्राचार द्वारा प्राप्त संस्मरण—पत्रों के माध्यम से, जिन व्यक्तियों के संस्मरण मैंने प्राप्त किये, उनके नाम तथा पत्र तिथि सहित सूची निम्नलिखित रूप में है—

(१) श्री जमनादास झालानी, उज्जैन (२०-५-६१)
(२) श्री दामोदर दास झालानी, इन्दौर (२६-६-६१)
(३) श्री रामप्रसाद शर्मा, सोंनकच्छ (म०प्र०) (१५-७-६१)
(२५-७-६१)
(४) श्री काशीनाथ बलवन्त माचवे, रतलाम (२७-७-६१)
(५) श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा,' हटा (म० प्र०) (७-६-६१)
(६) डॉ० प्रभाकर माचवे, नई दिल्ली (१४-६-६१)
(७) श्री विनयचन्द्र मौद्गल्य, नई दिल्ली (१६-१२-६१)
(८) श्री चतुरसेन मालवीय, भोपाल (४-१-६२)
(६) श्री मुकुटधर पाण्डेय, रायगढ़ (६-१-६२)
(१०) श्री गंगाधर रामचन्द्र गोखले, इन्दौर (२४-१-६२)
(११) श्री दुर्गाशंकर दुबे, शाजापुर (२०-८-६२)
(१२) श्री शचीन्द्रनाथ बक्शी, वाराणसी (२४-३-६३)

प्रत्यक्ष भेंट और पत्राचार के माध्यम से, नवीन जी के प्राथमिक शाला, माध्यमिक शाला व महाविद्यालय के सहपाठी, उनके कारागृह के साथी, उनके जीवन के विविध क्षेत्र यथा राष्ट्रीय-संग्राम, राजनीति, पत्रकारिता, साहित्य, कवि-सम्मेलन, सभा-गोष्ठी, पारिवारिक एवं वाल्य क्षेत्र और जीवन-जगत् के विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों से उनके जीवन एवं साहित्य विषयक अनेक महत्वपूर्ण, अज्ञात एवं बहुमूल्य सूचनाएँ तथा संस्मरण प्राप्त हुए हैं।

(ङ) पत्र-व्यवहार—'नवीन' जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व और अन्य उपादानों के लिए उनके कई सहयोगियों, पत्रकार-मित्रों एवं साहित्य-अध्येताओं से विस्तृत पत्र-व्यवहार किया गया। यह पत्र-व्यवहार व्यक्तियों तक ही सीमित न होकर, पत्र-पत्रिकाओं एवं संस्थाओं से भी सम्बन्ध रखता है, जिनसे भी प्रस्तुत शोध-विषय की सामग्री प्राप्ति एवं अन्य पार्श्वों के विषय में सूचनाएँ ग्रहण की गई।

पत्र-व्यवहार के व्यापक क्षेत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) व्यक्तियों से पत्राचार,
(२) संस्थाओं से पत्राचार,
(३) पत्र-पत्रिकाओं से पत्राचार।

(१) **व्यक्तियों से पत्राचार**—शोध-विषय के सम्बन्ध में जिन व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार किया गया उनके कतिपय नामों का उल्लेख विगत पृष्ठों में किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त, कुछ जिन विशिष्ट विद्वानों एवं साहित्यिकों से भी पत्र-व्यवहार किया, उनके नाम एवं प्राप्त-पत्रों की तिथियाँ इस प्रकार हैं :—

(१) डॉ नगेन्द्र (२५-८-६२); (२) श्री मन्मथनाथ गुप्त (६-१-६२) तथा (१३-१-६२); (३) श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी (१३-११-६१), (५-१-६२) और (१३-२-६२); (४) श्री रुद्रनारायण शुक्ल (१०-७-६१), (२७-८-६१), (५-६-६१), (५-१०-६१), (१३-१२-६१), (२६-१-६२), (६-२-६२), (२०-२-६२) और (२०-८-६२); (५) श्री गुरुप्रसाद टण्डन (२६-१०-६१) और (१३-४-६२); (६) डॉ० रामधन शर्मा शास्त्री (२६-६-६१); (७) श्री महावीर त्यागी (६-६-६१); (८) डॉ० प्रभाकर माचवे (२१-४-६१), (१-६-६१), (६-६-६१) और (१४-१०-६१); (९) श्री भवानीप्रसाद मिश्र (१४-८-६१); (१०) श्री गोपालप्रसाद व्यास (२४-११-६०), (१२-१-६१) तथा (२४-३-६१); (११) श्री अशोक वाजपेयी (२३-११-६०), (१६-२-६१), (२४-७-६२) तथा (६-८-६२); (१२) श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी (१२-७-६१); (१३) श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन (२६-१२-६०), (१०-१-६१), (१४-३-६१), (१६-३-६१), (१५-५-६१), (२-६-६१), (३१-१-६२) एवं (१३-६-६२); (१४) डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' (१०-६-६१); (१५) श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' (६-१२-६०) एवं (६-२-६२); (१६) डॉ० गुलाबराय (१६-१०-६०); (१७) श्रीमती रमा विद्यार्थी (३१-१०-६०) तथा (३-२-६२); (१८) श्रीमती इन्दिरा गान्धी (२२-३-६१); (१९) श्री लालबहादुर शास्त्री (१६-७-६१); (२०) श्री उमाशंकर दीक्षित (७-७-६१) एवं (१४-३-६२); (२१) डॉ० माताप्रसाद गुप्त (५-२-६२); (२२) श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (२७-२-६२) आदि।

(२) **संस्थाओं से पत्राचार**--'नवीन' जी से सम्बन्धित सामग्री की सूचनाएँ प्राप्त करने के लिये विभिन्न ग्रन्थालय, हिन्दी संस्थाओं, आकाशवाणी, लोकसभा, राज्यसभा, विविध मन्त्रालय, विश्वविद्यालय आदि से विस्तृत पत्र-व्यवहार किया गया। इसकी सूची देने से कोई विशेष प्रयोजन हल नहीं होता।

(३) **पत्र-पत्रिकाओं से पत्राचार**—हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से भी सम्बन्धित सामग्री की सूचनाओं आदि के लिये विस्तृत पत्र-व्यवहार किया गया। इसकी लम्बी सूची भी कोई विशेष उपयोगी प्रतीत नहीं होती।

(च) संकलन—''नवीन' जी की स्फुट एवं असंग्रहीत कविताओं और गद्य-रचनाओं के समान, उनके पत्रों के संकलन की दिशा में भी, प्रयत्न किया गया।

पत्रों में व्यक्ति का हृदय झाँकता है। इनसे उसके व्यक्तित्व, मनोभाव, विचार-दर्शन, साहित्यिक मान्यताओं तथा विविध पक्षों पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। 'नवीन' जी के लगभग ३२ पत्र अभी तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।[1] इनके अतिरिक्त, मैंने

१—देखिये, **साप्ताहिक हिन्दुस्तान** (३-७-१९६०) व (१०-७-१९६०), **'आज'** (२९-५-१९६०), **'नवभारत' टाइम्स** (२६-६-६०), **'राष्ट्र भारती'** (जून १९६०), **कृति** (मई १९६०), वीणा (अगस्त-सितम्बर १९६०), चिन्तन (जून-जुलाई १९६१), **प्रयाग-पत्रिका** (२३-५-१९६०) आदि।

भी कवि के कतिपय मौलिक पत्र संकलित किये हैं। इनमें कवि के व्यक्तित्व की अनूठी बातें उद्‌घाटित हुई हैं। इन पत्रों में, कवि द्वारा लिखे गये निम्नलिखित पत्र हैं :—

(क) श्री दामोदर दास झालानी— (१) ४-१-१९४८, (२) २३-१-१९४८, (३) २४-१-१९४८ और (४) २४-६-५४।

(ख) श्री रामनारायण माथुर—(५) १६-६-५७।

(ग) श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव—(६) १०-१०-१९५६; (७) ८-३-१९५७; (८) २२-९-५२; (९) ४-६-५४ और (१०) १६-४-५२ आदि।

इस प्रकार स्व-प्रयत्न द्वारा प्राप्त सामग्री से कवि के साहित्य पर प्राप्त समीक्षात्मक सामग्री की कुछ अंशों में पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है। इन समस्त सूचनाओं तथा सामग्री का भी यत्र-तत्र, इस शोध प्रबन्ध में उपयोग किया गया है।

इस प्रकार समग्र उपलब्ध एवं अनुपलब्ध सामग्री के द्वारा, इस शोध-प्रबन्ध की अट्टालिका का निर्माण किया गया है। साथ ही, इस तत्व का विशेष ध्यान रखा गया है कि ये समग्र सामग्री विषयक उपादान, कवि-व्यक्तित्व के उद्‌घाटन में सहायक होकर ही आवें और उन्हें आवश्यकता से अधिक प्रमुखता या मुखरता प्राप्त न होने पावे।

शोध-प्रबन्ध की संक्षिप्त रूपरेखा—प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को तीन खण्डों एवं नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत जीवनी के विविध पक्षों का उद्‌घाटन है। द्वितीय खण्ड में काव्य समीक्षा और तृतीय खण्ड में काव्य-मूल्यांकन है।

प्रथम खण्ड में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में भूमिका शीर्षक के अन्तर्गत, प्रबन्ध के महत्व, सामग्री तथा विशेषताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में 'नवीन' जी की जीवनी का काव्य-सापेक्ष्य आकलन किया गया है। तृतीय अध्याय में कवि-व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों एवं पक्षों का उद्‌घाटन करते हुए, उसके जीवन-दर्शन, काव्य-चिन्तन एवं राष्ट्र-भाषा की सेवाओं का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत आये चतुर्थ अध्याय में 'नवीन' जी के समग्र प्रकाशित एवं अप्रकाशित काव्य-साहित्य का सांगोपांग विवरण दिया गया है। काव्य विकास के क्रमिक सोपान एवं काव्य की प्रमुख प्रवृतियों या विषयों का विश्लेषण किया गया है। काव्य परिचय एवं काव्य वर्गीकरण के अनन्तर, काव्य-परिष्कार एवं परिमार्जन का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, 'नवीन' जी के आरम्भिक काव्य एवं 'प्रभा' तथा 'प्रताप' में प्रकाशित रचनाओं की समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय में 'नवीन' जी के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य का विस्तार से विवेचन किया गया है। 'नवीन' जी के स्वातन्त्र्य-पूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-काव्य का व्यवस्थित प्रतिपादन किया गया है। 'नवीन' जी द्वारा लिखित 'प्राणार्पण' खण्ड काव्य, जो अभी तक अप्रकाशित है, उसकी विधिवत् आलोचना की गई है।

षष्ठ अध्याय में 'नवीन' जी के समग्र प्रेम-काव्य, शृङ्गारिक रचनाओं, विरहानुभूति और उसकी मार्मिकता का उद्‌घाटन किया गया है।

इसी अध्याय में ही 'नवीन' जी की आत्मपरक और रहस्यपरक रचनाओं का विशद

विश्लेषण किया गया है। कवि के दार्शनिक काव्य की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए, उसके मृत्यु-गीतों का भी विश्लेषण किया गया है, जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

सप्तम अध्याय में 'नवीन' जी की महान् उपलब्धि 'ऊर्मिला' महाकाव्य का गहनता तथा विस्तार के साथ विश्लेषण किया गया है। उसकी रचना-भूमिका, प्रेरणा-स्रोत, परिष्कार, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, प्रकृति-वर्णन, रस-योजना, मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं एवं विशेषता तथा महाकाव्यत्व आदि उपादानों की विवेचना की गई है। अन्त में 'ऊर्मिला' तथा 'साकेत' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत अष्टम अध्याय में, कवि के काव्य के शिल्प-पक्ष का विशदता के साथ उद्घाटन किया गया है तथा काव्य-शैली, भाषा-योजना, गीति-काव्य, प्रकृति-चित्रण, अलंकार एवं छन्द-योजना आदि की समीक्षा की गई है।

अन्तिम अथवा नवम अध्याय में, समग्र प्रबन्ध का सार निहित है। कवि के युग, व्यक्तित्व एवं काव्य का संक्षेप में विश्लेषण करते हुए, उसकी गरिमा तथा महिमा का अंकन किया गया है। हिन्दी-काव्य को 'नवीन' का प्रदेय, उनके द्वारा नव-प्रवर्तन, उनका प्रेरक एवं प्रभावपूर्ण कवि-व्यक्तित्व और हिन्दी-साहित्य में उनके स्थान-निर्धारण आदि की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के परिशिष्टों का भी सूचनात्मक मूल्य है। 'नवीन' जी की समग्र उपलब्ध काव्य-रचनाओं की उनके लेखन-तिथि के क्रमानुसार, विशाल वर्गीकृत-तालिका प्रस्तुत की गई है।

'नवीन' जी के समग्र वाङ्मय को भी सूची-बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। उनकी समग्र कृतियों अर्थात् काव्य-संग्रह, गद्य-कृति—निबन्ध, कहानी, गद्य-काव्य, भाषण, वक्तव्य आदि को तालिका-बद्ध किया गया है। इनमें वे सब रचनाएँ सम्मिलित हैं जो कि प्राप्त हो सकी हैं।

निष्कर्ष— इस प्रकार, 'नवीन' जी के कवि व्यक्तित्व के उद्घाटन की दिशा में जो कुछ भी अकिंचन प्रयास किये गये, उनको यहाँ अत्यन्त विनम्रता एवं सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। यह मेरा विनीत प्रयत्न ही है जिसके प्रति मुझे रञ्च-मात्र भी गर्व नहीं है। प्रस्तुत अध्याय में समग्र सामग्री के प्रस्तुतीकरण में भी, तथ्यों को समक्ष लाने एवं उनके विवरण का ही प्रतिपादन करना मेरा एक मात्र लक्ष्य रहा है। मेरे प्रयत्नों के द्वारा एक अंश ही उद्घाटित हो पाया है।

अन्त में, निवेदन है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रकाशित-अप्रकाशित, संकलित-असंकलित, अध्ययन-कार्य (टेबिल वर्क) तथा व्यवहार-भूमि (फील्ड वर्क), सभी प्रकार की सामग्री, कार्य-विधियाँ एवं प्रणालियों को अपनाकर, शोध-तत्व को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

———

द्वितीय अध्याय

जीवनी
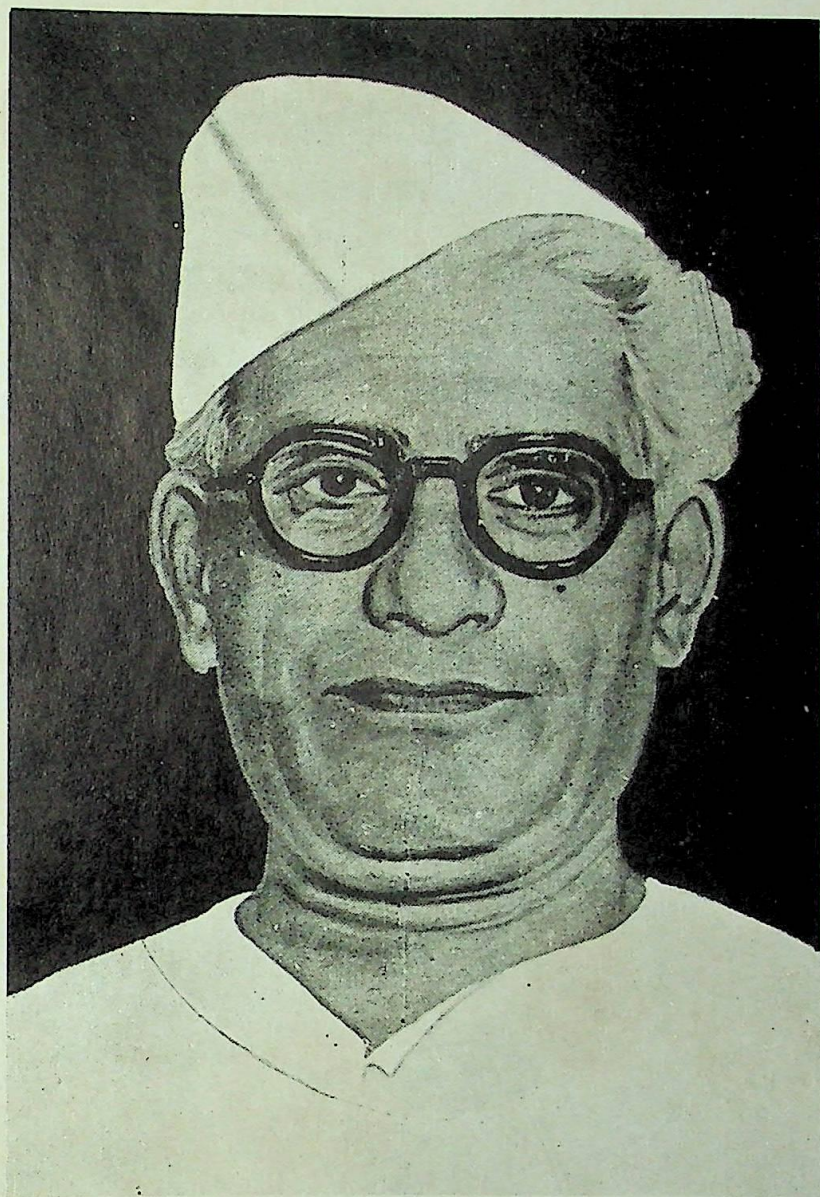
जन्म : ८ दिसम्बर १८९७] [निधन : २९ अप्रैल १९६०

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
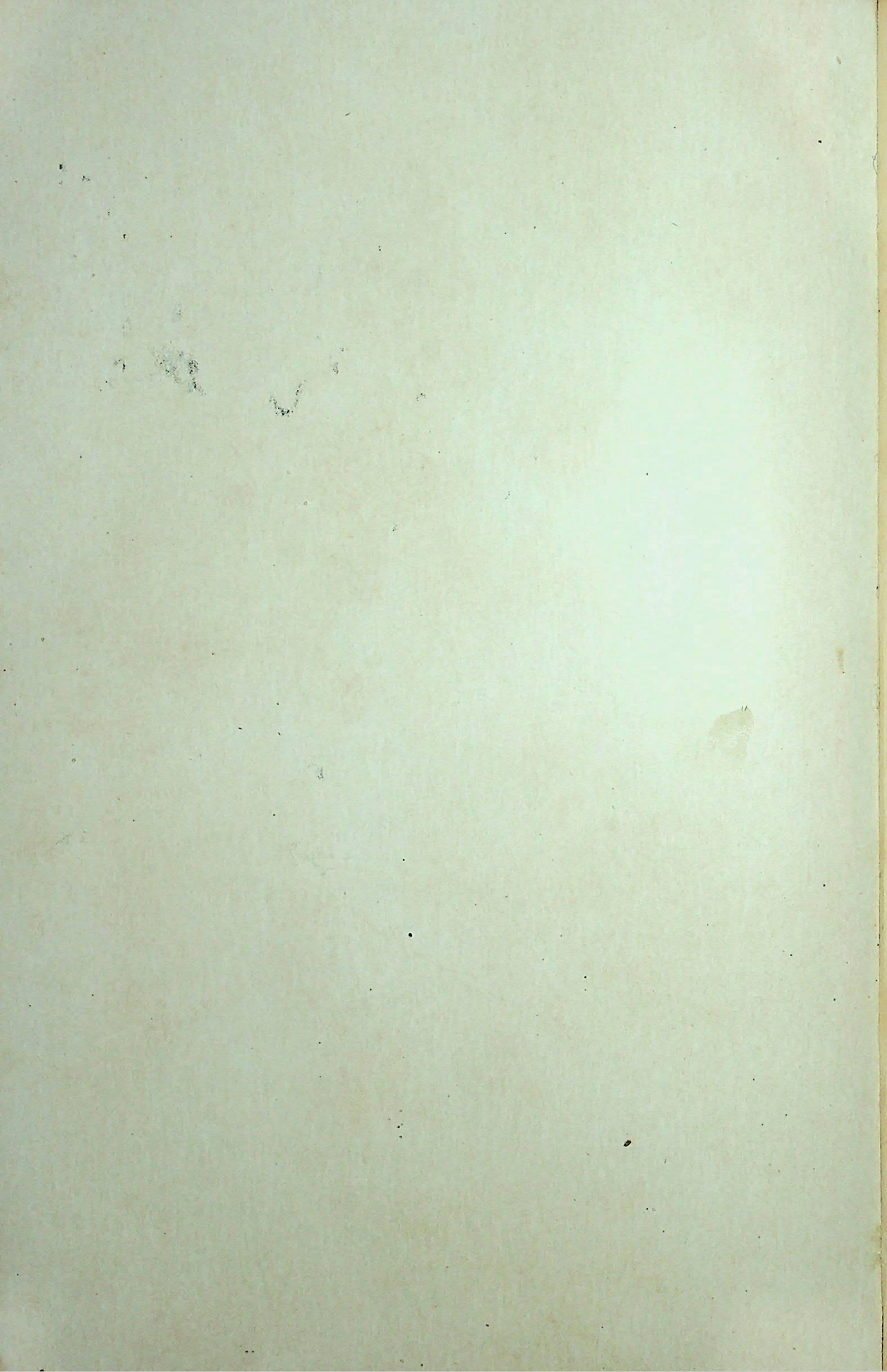
पूर्वंज एवं वंश-परम्परा

'नवीन' जी के पूर्वंज ग्वालियर जिले के परगना गिर्द के अन्तर्गत गोन्दा ग्राम के रहने वाले थे।[1] यह ग्राम दसनामी सन्यासी गुसाइँ बाबाओं की जागीर थी। वहीं पर ही इनके पूर्वंजों की जमींदारी थी। आदि पूर्वंज श्री गढू महाते और दुलारे महाते थे। यह ग्राम झाँसी की महारानी लक्ष्मी बाई का था। बाद में अँग्रेजी शासन के हस्तगत हुआ। अंग्रेजों ने इसे ग्वालियर नरेश को दे दिया। अकाल पड़ने के कारण, 'नवीन' जी के पूर्वज वहाँ से अपने पशु आदि को लेकर मालवा में आ गये। पचोर स्थान पर सब जानवर मर गये। श्री दुलारे मेहता के दो पुत्र हुए—पं० इन्द्रजीत शर्मा और पं० जमनादास शर्मा। ये दोनों 'भयाना' ग्राम में आ बसे।[2] आदि उत्पत्ति ऋषि सन्तनकुमार से मानी जाती है।[3] 'नवीन' जी पाराशर गोत्रोद्भव शुक्ल यजुर्वेदीय थे। उन्हें शाखा और आस्पद का कोई ज्ञान नहीं था।[4]

पिता—बालकृष्ण के पिता कुल दो भाई थे। इनमें पं० जमनादास शर्मा छोटे थे।[5] श्री जमनादास झालानी के कथनानुसार, पं० जमनादास शर्मा खास शुजालपुर परगने (जिला शाजापुर, मध्यप्रदेश) के रहने वाले थे। अनुमान से कहा जा सकता है कि वे इसी परगने के भयाना ग्राम के निवासी थे। वे साधारण पढ़े-लिखे थे परन्तु सत्संग से बल्लभ-सम्प्रदाय की बातें काफी जानते थे। उन्होंने कई सैद्धान्तिक बातें सुन रखी थी। इस सम्प्रदाय के अनुयायी सेठ लोग उनका बड़ा आदर करते थे। बम्बई तथा सूरत के मध्य स्थित 'उमरगाँव' स्थान के सेठ हरिभाई के यहाँ वे अक्सर जाया करते थे और काफी दिनों तक रहते थे। पोलाय ग्राम में बल्लभ-सम्प्रदायानुयायी गृहस्थ वैरागी सेठ रघुनाथदास जी रहा करते थे जो कि बड़े धनाढ्य एवं धर्म-पोषक व्यक्ति थे। इनके सत्संग से कई व्यक्ति वैष्णव सम्प्रदायानुयायी बन गये। उस युग में पोलाय की प्रसिद्धि इन्हीं के कारण थी। इन्हीं सेठ के सत्संग से जमनादास जी भी वैष्णव सम्प्रदायानुयायी बने।[6]

कवि के जन्म-स्थान 'भयाना' में उसके पिता की कुछ भूमि थी। परन्तु उससे उनका निर्वाह नहीं चलता था। इसलिए, वे वहाँ से पोलाय, नाथ द्वारा, शाजापुर आदि स्थानों में

---

१. श्री ओंकारलाल शर्मा, सोनकच्छ का मुझे लिखित २५-१२-१९६३ का पत्र।

२. श्री हजारीलाल शर्मा, तराना का मुझे लिखित दिनांक १२-८-१९६३ का पत्र।

३. वही।

४. 'नवीन' जी का श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' को लिखित १६ अक्टूबर, १९३५ का पत्र, 'नर्मदा', अगस्त १९६३, पृ० ६८।

५. श्री दामोदरदास झालानी, इन्दौर से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १०-१२-१९६१) में ज्ञात।

६. श्री जमनादास झालानी, उज्जैन से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक ९-१२-६१) में ज्ञात।

घूमते रहे। उनकी धारणा-शक्ति बहुत अच्छी थी। इसी आधार पर श्री वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त, श्रीमद्भगवद्गीता तथा भागवत के कतिपय सिद्धान्तों का उन्हें ज्ञान था। इसी के बल पर वे परदेश में पर्यटन करके, कुछ द्रव्य संग्रह, वर्ष में एक या दो मास के लिए जाकर, कर लिया करते थे तथा शेष समय शाजापुर में ही शान्तिपूर्वक व्यतीत करते थे।[१] ये प्रायः कलकत्ता, बम्बई, गुजरात आदि स्थानों में परिभ्रमण करते थे और वहाँ के धर्मनिष्ठ वैष्णव सेठ उनकी आर्थिक सहायता करते थे।[२]

पं० जमनादास शर्मा सीधे तथा सरल स्वभाव के थे, परन्तु क्रोध के बड़े तेज थे। उनमें कपट लेश-मात्र को भी नहीं था। उनका यह विश्वास था कि संसार के अन्य व्यक्ति भी उनके समान सीधे होना चाहिए।[३] जमनादास जी के स्वभाव की उग्रता कई रूपों में देखी जाती थी। धार्मिक भावनाओं या सम्प्रदाय के विरुद्ध बात कहने पर अथवा मन को ठेस पहुँचने पर, वे बड़े कुपित हो जाया करते थे; अन्यथा साधारण वृत्ति में वे हँसमुख तथा प्रसन्न चित रहा करते थे। भड़का देने पर वे उग्र रूप धारण कर लिया करते थे।[४] यही वृत्ति कवि में भी आई थी।

जमनादास जी अपनी सत्य बात पर दृढ़तापूर्वक डटे रहते थे, टिके रहते थे ; चाहे कुछ भी हो जाय। धर्म के विरुद्ध बातें सुनना वे कदापि पसन्द नहीं करते थे।[५] अपने पिता की सत्यनिष्ठा एवं दृढ़ता के गुण 'नवीन' जी में आ गये थे। जमनादास जी की उग्रता एवं निस्पृहता की एक कथा इस प्रकार है—एक बार वे बम्बई, गुजरात आदि स्थानों में गये। एक ग्राम में इनकी भेंट के लिये ८००-९०० रुपये लोगों ने एकत्रित किये परन्तु उनमें से किसी ने कुछ असत्य तथा पाखण्डपूर्ण वाक्य कह दिये। इस कारण सब द्रव्य छोड़कर, वे घर वापस आ गये।[६] जमनादास जी स्वभाव से अत्यन्त निस्पृह तथा वैराग्य-वृत्ति के व्यक्ति थे। द्रव्य-संग्रह वे यदि चाहते तो कर सकते थे परन्तु मन की निर्लोभ वृत्ति के कारण, संग्रह नहीं करते थे। अधिक द्रव्य-प्राप्ति हो जाने पर वे दीन-हीन व्यक्तियों को सहायता स्वरूप दे दिया करते थे। वे बड़े स्पष्ट वक्ता थे।[७] उनकी यह निस्पृहता, विरक्ति, असंग्रही-वृत्ति एवं स्पष्टता, बालकृष्ण शर्मा में भी आ गई थी।

जमनादास जी पाखण्ड एवं अहंकार के घोर विरोधी थे। उनकी तन्मयता भी उनके इकलौते आत्मज में आ गई थी। 'नवीन' जी ने ही यह कहानी श्री नरेन्द्र शर्मा को सुनाई थी कि एक बार उनके पिताजी भागवत कथा का पाठ कर रहे थे। कुछ भक्त श्रोता-गण भी

---

१. श्री दामोदरदास झालानी का मुझे लिखित दिनांक (२६-६-१९६१) का पत्र।

२. श्री जमनादास झालानी का मुझे लिखित दिनांक (२०-५-१९६१) का पत्र।

३. श्री दामोदरदास झालानी द्वारा ज्ञात।

४. कवि के सहपाठी एवं बाल-सखा श्री रामचन्द्र बलवन्त शितूत, शाजापुर से हुई भेंट (दिनांक ८-१२-१९६१) में ज्ञात।

५. वही।

६. श्री दामोदरदास झालानी के दिनांक (२६-६-१९६१) के पत्र द्वारा ज्ञात।

७. वही।

श्रवण कर रहे थे। भागवत-कथा के पाठ में वे पूर्ण डूब गये और इतने तल्लीन हो गये कि किसी बात की भी सुध-बुध नहीं रही। इतने में कहीं से एक शेर आ गया सो सब श्रोता-गण भाग गये; परन्तु पिता जी को अपनी तन्मयतावस्था के कारण पता ही नहीं चला। वे वहीं बैठे रहे। बाद में लोगों ने जब उन्हें बताया तब मालूम पड़ा।[१]

जमनादास जी लाल पगड़ी बाँधते थे और बन्द वाली मिर्जई पहनते थे। उनका ऊँचा व इकहरा बदन था।[२] वे श्याम वर्ण के चरित्रवान् एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। जमनादास जी भारत के प्रधान वैष्णवपीठ नाथद्वारा में भी कई वर्षों तक रहे; जहाँ कवि का शैशव-काल व्यतीत हुआ। नाथद्वारा के मन्दिर में जमनादास जी 'पेटी पर' सेवक थे। कवि अपनी बाल्यावस्था में, यहाँ, मन्दिर जाया करता था और यहीं से ही उसके वैष्णव-संस्कार एवं भक्ति उद्रेक परिपक्व होने लगा। नाथद्वारा से जमनादास जी शाजापुर आ गये और फिर यहीं मृत्यु-पर्यन्त रहे।

निस्पृहता, उत्सर्ग भाव, त्यागमय तथा कष्ट-प्रधान जीवन यही 'नवीन' के पिताजी की कहानी थी। ऐसे ही कट्टर वैष्णव ब्राह्मण परिवार में 'नवीन' ने जन्म लिया था।

कवि का परिवार धर्मप्राण, संस्कार-सम्पन्न, आत्म-तुष्ट और उच्चकुलीन रहा है। वे सनाढ्य जाति के ब्राह्मण थे।[३]

जन्म तथा नामकरण—भारत के हृदय-स्थल में स्थित मालवा की मस्तानी भूमि से ही कवि के परिवार का सम्बन्ध रहा है। मालवा की भौगोलिक सीमा को काव्य-बद्ध किया गया है :—

इत चम्बल, उत बेतवा मालव सीम सुजान,
दक्षिण दिशि है नर्मदा यह पूरी पहिचान।[४]

मालवा की विशेषता को यह मर्मपूर्ण अभिव्यक्ति मिली है—

मालव धरणी गहन गम्भीर,
डग-डग रोटी पग-पग नीर।[५]

कवि ने लिखा है—"मेरा जन्म ग्वालियर राज्य के शुजालपुर परगने के भयाना नामक गाँव में हुआ था।"[६] अब यह मध्यप्रदेश राज्य के अन्तर्गत है। शुजालपुर (शाजापुर) इसी प्रदेश का एक जिला है। सम्वत् १९५४ के 'मासानांमार्गशीर्षोऽहम्'—महीनों में श्रेष्ठ मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन, तदनुसार ८ दिसम्बर सन् १८९७ ई० को बालकृष्ण शर्मा का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में 'नवीन' जी ने अपनी एक कविता '४६वें वर्षान्त के दिन' (८ दिसम्बर, १९४३) में लिखा है :—

---

१. श्री नरेन्द्र शर्मा, नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २०-५-१९६१) में ज्ञात।
२. श्री माखनलाल चतुर्वेदी से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १३-१२-१९६१) में ज्ञात।
३. 'वीणा' सम्पादकीय, 'नवीन' स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५७।
४. 'वीणा', जून, १९५२, पृष्ठ ४३४ से उद्धृत।
५. 'वीणा', जुलाई, १९५०, पृष्ठ ५२९ से उद्धृत।
६. चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १२।

मार्गशीर्ष की ऐन पूर्णिमा को जीवन में आया,
किन्तु रही जीवन भर मेरे संग-संग तम की छाया ।[१]

कवि का जन्म अपने ताऊजी के घर के गायों के बाँधने के एक बाड़े में हुआ था । उस गोशाला में गायों ने कितने ही बछड़ों को जन्म दिया था । श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि यदि आज 'नवीन' जी में बछेड़ों जैसा कुछ नटखटपन पाया जाता है तो उसमें उनका कुछ भी अपराध नहीं ! वह तो उनके जन्म-स्थान की महिमा को ही प्रकट करता है ।[२] अपनी कृष्णानुरागी वृत्ति और बालक के गोशाला में जन्म लेने के कारण, कवि का नाम 'बालकृष्ण' रखा गया । जन्म के समय थाली बजाने के अतिरिक्ति और कुछ धूमधाम नहीं हुई । कवि ने अपने पिता का स्मरण बहुत गरीब, निःसाधन किन्तु भगवत्-भक्त ब्राह्मण के रूप में किया है ।[३] पिता का वैष्णव-तत्व तथा माता के स्नेह एवं संगीत का कवि के जीवन पर गहन प्रभाव पड़ा ।

शैशव व किशोरावस्था—'नवीन' जी ने लिखा है कि "गाँव का सीधा-सादा जीवन, गरीबी और अर्थाभाव, ये मेरे चिर परिचित मित्र हैं ।"[४] बालकृष्ण की अवस्था जब कोई साढ़े-तीन वर्ष की थी, तब उनकी माता गोद में लिटाकर लोरियाँ सुनाया करती थीं । कवि की बाल्यावस्था दैन्य व जीवन के संघर्षों में व्यतीत हुई । अनेक बार साश्रु-नयन उन्होंने अपने बाल्य-जीवन की बातें सुनाई है । कैसे वर्षा के चतुर्मास में उनकी माँ अपने लाड़ले को गोद में लेकर अपनी पीठ पर बरसात बूँद-बूँद उतारती । कैसे कच्ची मिट्टी के घरौंदे में ऊपर की छत और आसपास की दीवार से बरसता पानी अवान्तर टपकता रहता और कैसे घनानन्द की कविता गाते, गुनगुनाते वैष्णव माता अपने वात्सल्य का पीयूष बालक 'नवीन' की अबोध-चेतना में घुलाती-मिलाती रहती । यह व्यथा-कथा अनेक रूपों में उन्हीं के मुँह से सुनने को मिली है ।[५]

बालक 'नवीन' बड़ा होने पर, ग्राम के अपने समवयस्क लड़कों के साथ मक्का और ज्वार की कड़वी लेकर घूरे पर, खेतों की मेड़ों पर और चरस चलने के स्थान पर खेला करता था । खेल में वह फिसड्डी था । कम उम्र होने के कारण और 'कुछ बुद्धू' होने के कारण, वह सदा-सर्वदा अपने मित्रों का अनुकरण किया करता था ।[६]

पिताजी श्रीमद्वल्लभाचार्य के वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण, नाथद्वारा चले गये । अतएव, बालकृष्ण सहित माता भी वहीं चली गई । यहाँ बालक बालकृष्ण मन्दिरों के विशाल प्रांगणों में विचरण करता फिरता था । यहाँ इस परिवार को बड़े कष्ट के दिन व्यतीत करने पड़े । दरिद्रता तथा क्लेश ने अपना वितान तान दिया । पं० जमनादास शर्मा

---

१. 'अपलक', ४६वें वर्षान्त के दिन, पृष्ठ १६ ।

२. 'रेखाचित्र', पृष्ठ १६८ ।

३. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १२ ।

४. वही ।

५. श्री प्रयागचन्द्र शर्मा—'वीणा', 'तुम गुदड़ी के लाल नहीं, तुम हो गुदड़ी के बाल सखे', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४५७-५८ ।

६. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १२ ।

रात-दिन अपनी सेवा-पूजा के एक मात्र कार्य में ही संलग्न रहते थे। इसलिए कवि की माता को स्वयं परिश्रम करके जीविकोपार्जन करना पड़ता था। घर का काम जो कुछ मिल जाया करता था, उसी के आधार पर जीवन चलता था।

अपनी शैशवावस्था में कवि को दूध तक भी नसीब नहीं होता था। माँ का असहाय प्यार शक्ति बन हाथों में उभर आता और घण्टों चक्की पीस कर अर्जित पैसों से बालक के लिए दूध जुटता।

कवि अपनी ऊम्र के लगभग आठवें वर्ष में नाथद्वारा आया था और तीन वर्ष तक रहा। नाथद्वारा में शिक्षा का कोई व्यवस्थित क्रम नहीं था, इसलिए कवि की दूरदर्शिनी माता ने अपने आत्मज को उच्छृंखल न होने देने के लिये, शाजापुर को प्रस्थान किया और वहीं विधिवत् शिक्षा का समारम्भ हुआ।

शिक्षा-दीक्षा—बालकृष्ण की व्यवस्थित शिक्षा-दीक्षा का प्रारम्भ अपने जीवन के ग्यारहवें वर्ष में शाजापुर में हुआ। कवि की माता ने अनाज पीस-पीसकर कवि को पढ़ाया। ऊधम करना व खूब खेलना ही इस जीवन के मुख्य अंग थे। परिवार के लोग चार आने महीने के मकान में रहते थे। फिर आठ आने महीने के किराये के मकान में रहने लगे। वर्षा-ऋतु में मकान टपकता था। बालक बालकृष्ण उस समय, अपनी गरीबी के कारण, नंगे पैरों रहा करता था। किताबें कुछ खरीदी जाती थीं और कुछ माँग कर पढ़ ली जाती थीं। कवि के पिता के पुरातन मित्र सेठ भगवानदास जी झालानी के परिवार ने, 'नवीन' जी को अपने यहाँ प्रश्रय प्रदान किया। इन्हीं के मझले पुत्र श्री दामोदरदास जी झालानी की वत्सलता से कवि पढ़ लिख सका। कवि ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ इन्हें, 'मेरे कौमार्य और पौगण्ड जीवन के सखा, मार्ग-दर्शक और तत्वदीपक' के रूप में स्मरण किया है।[१]

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि उन्होंने अपने परिवार का जो चित्रण किया है, वह बहुत कुछ चन्द्रशेखर आजाद के परिवार से मिलता है, जहाँ तक अग्नि गर्म और विस्फोटक होने का सम्बन्ध है, 'नवीन' जी बिल्कुल ही दूसरे क्षेत्र के होते हुए भी चन्द्रशेखर आजाद की ही तरह जोशीले और उनकी समझ में आने पर किसी भी प्रण पर सर्वस्व न्योछावर कर देने-वाले थे।[२] 'नवीन' जी की एक बहिन भी थी जिसका देहान्त विवाहित होने पर हुआ।[३] शाजापुर में ही उनकी मस्त तबियत अपने सहपाठियों के मध्य प्रसिद्ध थी। यहीं से ही नेतृत्व के भी गुण आने लगे थे। सन् १९१३ में अंग्रेजी मिडिल स्कूल में, वार्षिक मेले के समय 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक खेला गया था, जिसमें कवि ने चन्द्रगुप्त का अभिनय किया था।[४] उज्जैन में भी, शाला में 'चन्द्रगुप्त' नाटक खेला गया था, जिसमें कवि ने राक्षस तथा उसके

---

१. **'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १३।**
२. **'कृति', मई, १९६०, पृष्ठ ६७।**
३. **'श्री शारदा', गोइजीजी, १२ अक्तूबर, १९२०, पृष्ठ २८-३३।**
४. **श्री रामचन्द्र बलवन्त शितूत द्वारा ज्ञात।**

घनिष्ठ मित्र सन्तू ने चन्द्रगुप्त का अभिनय किया था।[१] शाजापुर में कवि, चौधरी सूर्यानन्द जी माथुर नामक कट्टर आर्यसमाजी वकील से अत्यधिक प्रभावित हुआ था[२] जिनके प्रति[३] कवि के हृदय में सदैव श्रद्धा रही।[४]

शाजापुर से अंग्रेजी मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात्, बालकृष्ण शर्मा हाईस्कूल की शिक्षा ग्रहण करने के लिए उज्जैन आ गये। यहाँ के प्रसिद्ध 'माधव-महाविद्यालय' में इनकी शिक्षा हुई। यहाँ पर शर्मा जी के मुख्य कार्य थे—पढ़ना-खेलना, बड़ी-बड़ी तत्व की बातें करना और भविष्य के मनसूबे बाँधना।[५] कोई समस्या सामने नहीं थी। 'नवीन' जी ने अपने को पढ़ाई-लिखाई में निहायत साधारण और 'थर्ड क्लास' बतलाया है। स्मरण शक्ति मामूली और परिश्रम का माद्दा कम। सपने देखने और हवाई किले बनाने में अधिक डूबे रहना।[६] शर्मा जी ने सन् १९१७ में, अपने जीवन के बीसवें वर्ष में, यहीं से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। 'नवीन' जी स्कूली विद्यार्थी के नाते बड़े नटखट, शरारती और मेधावी व्यक्ति थे।[७]

सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में 'नवीन' जी को श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का सान्निध्य और स्नेह प्राप्त हो गया था। अतएव, वे मैट्रिक परीक्षोत्तीर्ण कर, जून, १९१७ में कानपुर चले गये। यहाँ पर पढ़ाई-लिखाई तथा अन्य व्यवस्था पूर्ण रूप से विद्यार्थी जी ने की। कानपुर क्राइस्ट चर्च कालेज से 'नवीन' जी ने एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण कर जब वे द्वितीय (अन्तिम) वर्ष में थे, तब महात्मा गान्धी के असहयोग आन्दोलन का ज्वार समस्त भारत में व्याप्त हो गया। अन्य सहपाठियों के साथ उन्होंने महाविद्यालयीन शिक्षा का परित्याग कर दिया और असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। यहीं से ही उनके विद्यार्थी-जीवन की इतिश्री हो गई और वे राष्ट्रीय संग्राम तथा साहित्य-सृजन की तुमुल तरंगों में अपनी नौका खेने लगे। कानपुर के शिक्षण काल में उनका जीवन सीधा-सादा व सरल रहा। इस समय 'नवीन' जी का चालीस-चालीस रोटियाँ उड़ा जाना बाएँ हाथ का खेल था। छात्रावास के सभी महाराजों के लिए

---

१. कवि के सहपाठी श्री केशवगोपाल सात्विक, उज्जैन से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १०-१२-१९६१) में ज्ञात।

२. श्री दामोदरदास झालानी द्वारा ज्ञात।

३. 'नवीन' जी का श्री रामनारायण माथुर, शाजापुर को लिखित दिनांक (१६-६-१९५७) का पत्र।

४. श्री रामनारायण माथुर—श्रद्धेय 'नवीन' जी के प्रति 'काव्याञ्जलि' (पुस्तिका), 'नवीन' जी सम्बन्धी कुछ निजी बातें, पृष्ठ ३।

५. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १०५।

६. वही, पृष्ठ १०६।

७. डॉ० प्रभाकर माचवे—'व्यक्ति और वाङ्मय' श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १११।

वे जू-जू थे ।[1] कानपुर के ही इसी जीवन-काल से उनकी राष्ट्र-प्रीति व लेखन-कला के भाव सुदृढ़ हुए ।

इस युग की विशिष्ट घटना : (लखनऊ कांग्रेस)—'नवीन' जी के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव सन् १९१६ में आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा, लखनऊ के वार्षिक अधिवेशन का पड़ा है । यह उनके जीवन की युगान्तरकारी घटना है । इस घटना ने एक ग्रामीण व दीन-हीन किन्तु नैसर्गिक प्रतिभा-सम्पन्न बालक को जीवन के खुले, विस्तृत बहुमुखी व उज्ज्वल संसार क्षेत्र में खींच लिया । लखनऊ कांग्रेस ने उनकी जीवन-धारा को ही मोड़ दिया । उस समय शर्मा जी उज्जैन में दसवीं कक्षा में पढ़ते थे और तारुण्य की लालिमा उनके मुख-मण्डल पर अपनी प्रारम्भिक लोल-किरणें विकीर्ण करने लगी थी । किशोरावस्था की चरम परिणति थी । स्वयं कवि ने इसे समूचा जीवन बदलने वाला योग कहा है ।[2] बम्बई में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने, अपने उद्बोधक भाषण में सभी को लखनऊ-कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए सस्नेह आमन्त्रित किया । उस समय राष्ट्र के महान् सेनानी तिलक कोटि-कोटि जन-मानस की भावना-तरंगों के राका-शशि थे । उनकी युग-प्रवर्तक वाणी ने भारत में क्रान्ति उपस्थित कर दी थी । एक लोटा, एक कम्बल, एक धोती, एक डण्डा और अपने संगी-साथियों से उधार लिये चन्द रुपये लेकर शर्मा जी लखनऊ के लिए प्रस्थित हो गये ।

लखनऊ में जिन व्यक्तियों से 'नवीन' जी का परिचय हुआ, उनका कवि के साहित्यिक व राजनैतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा । यहीं पर शर्मा जी की भेंट श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी और श्री मैथिलीशरण गुप्त से हुई । चतुर्वेदी जी उनके वन्दनीय के रूप में समाहृत हुए; विद्यार्थी जी ने 'नवीन' जी का निर्माण किया और गुप्त जी ने कवि के जीवन में अग्रज तथा 'दद्दा' के रूप में स्थान प्राप्त किया । गणेश जी के मित्र महाशय काशीनाथ जी और पं० शिवनारायण मिश्र का भी प्रभाव, कवि के जीवन पर पड़ा । कवि ने इस सुअवसर की महत्ता का प्रारम्भिक अंकन इस प्रकार किया है—

"मैं इस बात पर खुश था कि आज मैंने बड़ी भारी खोज की । पहली बात तो 'प्रभा'-सम्पादक का पता पाया । दूसरी बात यह कि 'भारतीय आत्मा' का घूँघट हटाया । तीसरे यह कि विद्यार्थी जी के दर्शन हुए । चौथे यह कि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के भी दर्शन हुए ।"[3]

लखनऊ कांग्रेस में शर्मा जी ने लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी, मोतीलाल नेहरू, ऐनी बेसेण्ट, जवाहरलाल नेहरू आदि लोक-नायकों के दर्शन किये । विषय-समिति से लौटते हुए तिलक के चरण-स्पर्श किये और अपने जीवन की सर्वोपरि कामना की पूर्ति की । शर्मा जी ने तिलक को 'हृदय-सम्राट्'[4] कहा है । लखनऊ कांग्रेस का महत्व सिर्फ 'नवीन' जी के जीवन के लिए ही नहीं है, अपितु भारत के आधुनिक-इतिहास में भी इसकी गरिमा अद्वितीय

---

१. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १११ ।
२. वही, पृष्ठ १०६ ।
३. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १०९ ।
४. वही, पृष्ठ १०६ ।

है। यहीं पर ही सर्वप्रथम राष्ट्र-नायक श्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी का साहचर्य प्राप्त किया था।[1]

लखनऊ कांग्रेस की होने वाली धटनाओं, प्रतिक्रियाओं तथा संस्मरणों का 'नवीन' जी ने बड़ी रोचकता व विस्तार के साथ वर्णन किया है। ये सब तथ्य उनकी 'आत्म-कथा' में सुरक्षित हैं।

निर्माण काल : एक मूल्यांकन

बीसवीं शताब्दी के महान् चिन्तक श्री खलील जिब्रान ने एक स्थान पर मर्मपूर्ण बात लिखी है :—

Children are not your children.
They donot come from you.
They come through you.
You can give your love to them
But you can not give your thoughts.
Because, they have their owe thoughts.[2]

यद्यपि बालक 'नवीन' पर अपनी पैतृक-परम्परा का प्रभाव पड़ा, परन्तु उनके स्वयं के विचार भी धीरे-धीरे अपने अनुभवों व चिन्तन से बनते चले गये। कवि की इस निर्माणावस्था की अवधि का हम संक्षिप्त मूल्यांकन, अधोलिखित उप-शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(क) बाल्य संस्कार—माता-पिता की धर्मप्राणनिष्ठा बालक 'नवीन' के जीवन में प्रतिफलित हुई और मृत्यु-पर्यन्त उनका यह श्रद्धा-आस्था से भींगा रूप अक्षुण्ण बना रहा। अपने जनक-जननी से प्राप्त वैष्णव रूप के तन्तु का उन्होंने कभी परित्याग नहीं किया। उनकी अन्तिम रुग्णावस्था के समय भी उन्हें 'वैष्णव-जन' की संज्ञा से ही विभूषित किया गया।[3] वे 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे' के प्रसिद्ध पद की समस्त विशेषताओं से मण्डित थे। शैशव की दीनता तथा दरिद्रता का भी कवि के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा। उसी के फलस्वरूप शर्मा जी पीड़ितों के प्रति हार्दिक समवेदना रखने लगे और उनके दुख-दैन्य को दूर करने के लिए सदा-सर्वदा कटिवद्ध रहा करते थे। बाल्यावस्था में जहाँ तहाँ से मांगकर व काम करके जो उनकी माता ने उनका पालन-पोषण किया; उसका भी कम प्रभाव कवि पर नहीं पड़ा।

---

१. "मैं गान्धी जी से पहले-पहल १९१६ में बड़े दिन की छुट्टियों में लखनऊ कांग्रेस में मिला।"—श्री जवाहरलाल नेहरू, 'मेरी कहानी', देश का राजनैतिक वातावरण, पृष्ठ ६२।

२. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४५८ से उद्धृत।

३. श्री नरेश मेहता 'कृति', टिप्पणी, वैष्णव जन : नवीन जी, अप्रैल, १९६०, पृष्ठ ६५-६६।

'नवीन' जी स्वयं कहा करते थे कि "मेरा शरीर भिक्षान्न पोषित है, अतः मुझे संग्रह करने का अधिकार नहीं है और इस शरीर से जो कुछ बन पड़े, सब जन हिताय, वह होता रहे, इसी में मेरा कल्याण है।"[१] इसीलिए हम देखते हैं कि कवि ने कुछ भी संग्रह नहीं किया और हमेशा दानी बना रहा। वे आजन्म घर-विहीन ही रहे। उन्होंने लिखा है—

मैं सतत अनिकेतन क्यों माँगू कि तुम इक गेह दे दो।[२]

बाल्यावस्था में प्राप्त उपेक्षा वृत्ति के कारण कवि में सहज ही फक्कड़ता, मस्ती तथा मतवालापन के अंशों का प्रादुर्भाव हो गया। हवाई किले बाँधने से कल्पना-प्रियता व भावोद्रेक के गुण भी विकसित हो गये। दुखों के सहन तथा वहन करने की शक्ति का विकास भी 'नवीन' जी ने अपनी लघु वय से किया है। 'नवीन' जी ने श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के विषय में लिखा है कि "यह बड़ी बात है कि कष्टों में जीवन-यापन करने वाले जन बहुधा कटु हो जाते हैं। भगवतीप्रसाद जी इस नियम के अपवाद हैं।"[३] इस निकष पर 'नवीन' जी को कसने पर, वे भी अपवाद ही निकलते हैं। श्री देवीदत्त मिश्र ने लिखा है कि अभावों ने उन्हें कभी कटु, विद्वेषी अथवा तुच्छ नहीं बनने दिया।[४]

(ख) साहित्यिक-संस्कार—'नवीन' जी की आत्मा में अपनी बाल्यावस्था से ही संगीत परिव्याप्त था। उनकी माता बचपन में भजनों को कभी 'सारंग' में कभी 'कान्हडा' में और कभी 'असावरी' में गाती थीं?[५] कवि ने लिखा है कि "मुझे याद है कि जब मैं कोई साढ़े-तीन वर्ष का था तब मेरी माता मुझे गोद में लिटाकर, मीठे-मीठे विहाग के स्वरों में अष्टछाप के पदों को गाकर मुझे लोरियाँ सुनाती और सुलाया करती थी।"[६] इस प्रकार माँ के लोल गीतों ने बालक बालकृष्ण के हृदय में प्रविष्ट कर, उसे काव्य-संस्कार का स्फुरण, प्रदान किया—

पौढ़ि रहौं घनश्याम बलैयां लैंहो पौढ़ि रहौ घनश्याम।
अति श्रम भयो बन गौवें चरावत धौंस परत है घास॥
बलैया लैहों पौढ़ि रहो घनश्याम।[७]

शाजापुर में, संस्कारों को, अध्ययन एवं प्रकृति ने परिपुष्ट किया। यहाँ पर वे कविता की पुस्तकें अधिक पढ़ते थे।[८] उन्होंने 'आर्यसमाज-सभा' की अनेक पुस्तकों को पढ़ डाला था।[९]

---

१. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १३।

२. 'अपलक', दान का प्रतिदान क्या प्रिय?, पृष्ठ २०।

३. श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ, मंगल कामना, पृष्ठ च।

४. दैनिक 'प्रताप', 'नवीन' प्रताप वाटिका के सुन्दर पुष्प, २९ अप्रैल, १९६२, पृष्ठ ३।

५. डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ४९।

६. 'साहित्यकारों की आत्मकथा', पृष्ठ ८३।

७. वही।

८. श्री रामचन्द्र बलवन्त शितूत द्वारा ज्ञात।

९. श्री दामोदरदास झालानी द्वारा ज्ञात।

मिल्टन ने भी दस-पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक बहुत अध्ययन कर लिया था। यूनानी और लेटिन लेखकों की एक बड़ी लम्बी तालिका प्रस्तुत की जाती है, जिसे उसने युवावस्था के पूर्व ही पढ़ लिया था।[१] 'नवीन' जी अक्सर 'सरस्वती' एवं 'प्रभा' पढ़ा करते थे।[२] उन्होंने बाल-सुलभ तुकबन्दियाँ करना भी प्रारम्भ कर दिया था जो कि वर्णनात्मक होती थीं; यथा, 'गरीब का बयान', 'नदी से लहरों का कथन' आदि। वे अपनी कविताएँ 'सरस्वती' में भी प्रकाशनार्थ भेजते थे; परन्तु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी उनका संशोधन कर, वापस भेज दिया करते थे। वे प्रायः वैष्णव-धर्म के गीत सस्वर तथा मस्त होकर गाते थे। 'मदन पड्यो केडे रे' उनका अत्यन्त प्रिय गीत था। शाजापुर की प्राकृतिक-सुषमा ने कवि को काफी प्रभावित किया।[३]

उज्जैन में, उनके अध्ययन एवं चिन्तन ने पर्याप्त विकास किया। यहाँ पर वे श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'रंग में भंग' एवं 'मौर्य-विजय' काव्य-ग्रन्थ पढ़ गये थे। वे रीति-कालीन ग्रन्थों के विरुद्ध थे, क्योंकि वे कहा करते थे कि इनमें दिमागी-अय्याशी भरी पड़ी है। वे भूषण को ही पढ़ने का परामर्श दिया करते थे और 'मौर्य विजय' में एथना तथा चन्द्रगुप्त के चरित्र से बड़े प्रभावित हुए थे, और अक्सर इसकी बात किया करते थे। वे 'एक भारतीय आत्मा' की रचनाओं से भी प्रभावित थे। 'एक भारतीय आत्मा' की यह पंक्ति उन्हें कण्ठस्थ थी—

शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहना न सकोगे ?

चतुर्वेदी जी की इन पंक्तियों के प्रति भी वे मोहित थे :—

आज जगत की राजपुस्तिका में भारत का नाम नहीं है,
वर्तमान आविष्कारों में हाय हमारा काम नहीं है।
रोता है सब देश, देश में दोनों को भी दाम नहीं है,
कविता कहते हैं सब लोग, यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है।
नाम नहीं है, काम नहीं है, दाम नहीं है, राम नहीं है,
तो फिर इन्हें प्राप्त करने तक हमको भी आराम नहीं है।[४]

उनका काव्य-चिन्तक रूप भी उभरने लगा था। गुप्त जी की इस पंक्ति की समीक्षा करते हुए, वे कहते थे कि इसमें कठोर शब्दों का प्रयोग किया गया है जो कि काव्य के लिए अशोभनीय है—

क्या न विषयोत्कृष्टता लाती विचारोत्कृष्टता।

'नवीन' जी ने अपने उज्जैन के विद्यार्थी-काल में ही 'प्रभा' के प्रकाशन की योजना बना ली थी; परन्तु द्रव्याभाव के कारण उसे वे क्रियान्वित नहीं कर सके और कानपुर में जाकर ही, गणेश जी के सहयोग से, यह स्वप्न साकार हुआ। शाला में वे कविता लिखते थे। एक

---

१. "In the art of education he performed wonders; and a formidable list is given of authors, Greek and Latin, that were read by youth."—S. Johnson, 'Lives of Fnglish poets', Vol. I., page 62.

२. श्री दामोदरदास झालानी द्वारा ज्ञात।

३. श्री रामचन्द्र बलवन्त शितूत द्वारा ज्ञात।

४. श्री युधिष्ठिर भार्गव द्वारा ज्ञात।

कविता जो उन्होंने इस समय लिखी थी, उसका शीर्षक था--'बालकृष्ण का ऊधम'। इस कविता में उन्होंने यह कल्पना की थी कि यदि बालकृष्ण आज की शाला में पढ़ते होते; तो क्या-क्या ऊधम करते ? इस कविता में एक प्रकार से उन्होंने अपने को ही चरितार्थ किया था।[1]

वे और उनके अनन्य सखा 'सन्तू' शाला में 'विद्यार्थी' शीर्षक हस्तलिखित पत्रिका भी निकालते थे।[2] इसमें भी बालकृष्ण की कविताएँ निकला करती थीं।[3] 'नवीन' उपनाम का निर्माण अभी नहीं हुआ था।[4] 'नवीन' जी को ईश्वर का रक्षक रूप ही प्रिय था। वे तुलसी की 'तुलसी मस्तक तब नवैं, धनुष बाण लेओ हाथ' पंक्ति को बहुत पसन्द करते थे। उन्हें ऋग्वेद की ऋचाएँ कण्ठस्थ थीं। वे प्रतिदिन प्रातःकाल शिव-शंकर के मन्त्र का पाठ किया करते थे। संस्कृत की ओर उनकी अधिक रुचि थी। उज्जैन में उन्होंने शाला की हिन्दी साहित्य सभा के पुस्तकालय की समस्त पुस्तकें पढ़ डाली थीं। उन्हें भूषण की 'शिवा बावनी' बड़ी प्रिय थी। 'प्रताप' तथा 'सरस्वती' नियमित रूप से पढ़ा करते थे। दर्शन-शास्त्र में भी उनकी विशेष रुचि थी।[5]

शाजापुर में कवि जहाँ स्वामी सूर्यानन्द जी महाराज के आर्यसमाजी दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ था; वहाँ उज्जैन में अपनी शाला के प्रधानाध्यापक पं० नारायणप्रसाद भार्गव से भी प्रभावित हुआ जो कि कट्टर आर्यसमाजी थे। 'नवीन' जी भी उस समय दृढ़ आर्य-समाजी बन गये थे।[6] उनके इस सूत्र का प्रभाव उनके प्रारम्भिक काव्य एवं 'ऊर्मिला' पर भी आँका जा सकता है।

'नवीन' जी उज्जैन से ही क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होने के लिए बड़े इच्छुक थे; परन्तु श्री नारायणप्रसाद भार्गव ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।[7] इस प्रकार विभिन्न सूत्रों ने उनके साहित्यिक संस्कारों के निर्माण में योगदान दिया।

ये साहित्यिक संस्कार क्रमशः समय पाकर विकसित और परिपुष्ट होते गये। शर्मा जी जब माधव-महाविद्यालय, उज्जैन में पढ़ते थे; तब उनके अनेक मित्रों में दो मित्र अनन्य व प्राण-प्यारे थे। एक थे खण्डवा के 'स्वराज्य'-सम्पादक श्री सिद्धनाथमाधव आगरकर के लघु-भ्राता जिनका घरेलू नाम 'सन्तू' था; और दूसरे थे ग्वालियर राज्य के पुस्तक-व्यवसायी और स्कूलों के इन्स्पेक्टर स्व० मुन्शी चतुरबिहारी लाल के सुपुत्र भाई हरिशरण, जिनका घरेलू नाम 'छोटे' था।[8] 'सन्तू' का वास्तविक नाम श्री विष्णुमाधव लोढ़े आगरकर) था। वे

---

१. श्री युधिष्ठिर भार्गव द्वारा ज्ञात।

२. श्री केशवगोपाल सात्विक द्वारा ज्ञात।

३. श्री काशीनाथ बलवन्त माचवे का मुझे लिखित दिनांक (१७-७-१९६१) का पत्र।

४. वही, दिनांक (११-१०-१९६१) का पत्र।

५. श्री युधिष्ठिर भार्गव द्वारा ज्ञात।

६. वही।

७. वही।

८. 'साहित्यकारों की आत्मकथा', पृष्ठ ९१।

अचानक ही प्लेग से काल-कवलित हो गये ।[1] इसका कवि के बाल्य-मन पर गहन प्रभाव पड़ा और उसने एक कहानी लिखी जिसका शीर्षक था 'सन्तू' । इस कहानी में 'नवीन' जी की भावधारा उद्दाम वेग से मानो फूट पड़ी है ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थं यह कहानी भेजी गई । कहानी पढ़कर आचार्य द्विवेदी जी ने अपने सहकारी श्री हरिभाऊ उपाध्याय से कहा— "इन्हें पत्र लिखकर पूछो कि किस बंगला कहानी का यह अनुवाद किया गया है ।" उत्तर में 'नवीन' जी ने लिखा "मैं तो बंगला जानता ही नहीं और यह कहानी मेरी अपनी लिखी हुई है, अनुवाद नहीं ।" इसके उत्तर में द्विवेदी जी ने स्वयं एक कार्ड लिखकर 'नवीन' के पास भेजा— "महोदय, कहानी मिली—छापूँगा । म० प्र० द्विवेदी ।"[2] यह कहानी फिर 'सरस्वती' के जनवरी सन् १९१८ के अंक में प्रकाशित हुई ।[3] यह कहानी 'नवीन' जी की प्रथम रचना है। इस प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि 'नवीन' जी में प्रारम्भ में ही काफी साहित्य-प्रतिभा और मेधा शक्ति थी। इसलिए, कहानी की उत्कृष्टता व भावमयता को देखकर आचार्य द्विवेदी जी को इसके बं ा कहानी के रूपान्तर होने का विभ्रम हो गया था । कवि के दूसरे बाल्य सखा 'छोटे' का भ हान्त सन् १९१८ में हो गया । ये दोनों मित्र 'नवीन' जी को दगा देकर चले गये ।[4] ' ान' जी ने 'छोटे' पर कहानी[5] तथा कविता[6] भी लिखी ।

वास्तव में माधव-कालेज, उज्जैन में पढ़ते समय उनकी काव्य-प्रतिभा से सब परिचित हो चुके थे और आशा-भरी दृष्टि से देखते थे । श्री व्यास ने लिखा है कि माधव-कालेज में ने के समय ही मित्रों ने पहचाना था कि यह हिन्दी के रवीन्द्र हैं ।[7]

(ग) कवि-उपनाम—शर्मा जी ने अपना उपनाम 'नवीन' रखा और इस नूतनता को लेकर वे काव्य-जगत् में प्रविष्ट हुए । यह उपनाम सर्वप्रथम उनकी कहानी 'सन्तू' में प्रकाशित हुआ था । 'सरस्वती' में यह कहानी सिर्फ 'नवीन' नाम से ही छपी है ।[8] प्रथम बार 'सरस्वती' में प्रकाशित कविता 'तारा' के अन्त में भी 'नवीन' उपनाम दिया गया है । इस रचना को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मुख-पृष्ठ का महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है ।[9] कवि के शक्तिशाली व्यक्तित्व और नूतन रूप-विधान का बीज इस कविता में

---

१. श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय—'वीणा', बन्धुवर श्री 'नवीन' जी, 'नवीन' स्मृति-अंक, पृष्ठ ५०२ ।

२. श्री रुद्रनारायण शुक्ल—'दैनिक नवजीवन', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', (३०-७-१९५१) ।

३. 'सरस्वती', 'सन्तू', जनवरी १९१८ (पौष १९७४), भाग १९, खण्ड १, संख्या १, पूर्ण संख्या २१७; पृष्ठ ४२-४५ ।

४. साहित्यकारों की आत्म-कथा, पृष्ठ ९१-९२ ।

५. 'प्रभा', मेरा छोटे, मार्च, १९२३, पृष्ठ १९२-१९७ ।

६. 'अर्चना', प्रवेश, पृष्ठ १-३ ।

७. 'वीणा'; स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९३ ।

८. 'सरस्वती', जनवरी, १९१८, पृष्ठ ४५ ।

९, वही; तारा कविता, अप्रैल, १९१८, पृष्ठ १९९ ।

सहज ही देखा जा सकता है। कवि की फिर अन्य रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती रहीं यथा 'विरहाकुल' आदि।[१]

हिन्दी के अन्य उपनामों के सदृश्य 'नवीन' नाम के और भी कवियों का उल्लेख प्राप्त होता है। रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि श्री ग्वाल जी के समकालीन वृन्दावन के एक कवि 'नवीन' का भी उल्लेख आया है। ये ग्वाल जी के गुरुभाई थे और उन्होंने इनके साथ ही गोस्वामी दयानिधि जी के यहाँ काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया था।[२] मिश्रबन्धुओं ने भी अपने 'मिश्र-बन्धु-विनोद' में इनका उल्लेख किया है और पद्माकर की कोटि का कवि निरूपित किया है। इनका एक ग्रन्थ 'रंग-तरंग' होना भी बतलाया गया है।[३] इसी प्रकार कानपुर के कवि श्री गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट (सं० १८६८-१९७८ वि०) का भी उपनाम 'नवीन' था। 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'उपनिषद्-प्रदीपिका', 'रामोपदेश-चन्द्रिका', 'शिव-ताण्डव', 'शिवमहिम्न-स्तोत्र', इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।[४] इसी परम्परा में, पं० केदारनाथ जी त्रिवेदी 'नवीन' का भी नाम मिलता है। इनका जन्म-सम्वत् १९५२ वि० में ग्राम कोरैयासरावाँ जिला सीतापुर में हुआ था।[५] परन्तु बालकृष्ण शर्मा ने अपना यह कवि-नाम एक युग-विशेष की काव्य-धारा से अपनी पृथकता व नव्यता प्रकट करने के लिए रखा था। उस युग में या तो अपनी नूतनता अभिव्यक्त करने वाले उपनाम रखे जाते थे अथवा काल के अनुकूल प्रवहमान राष्ट्रीयता की धारा के द्योतक यथा—'निराला', 'एक भारतीय आत्मा', 'एक राष्ट्रीय आत्मा' आदि। डॉ० बच्चन ने लिखा है कि किसी प्राचीन के साथ अपना साम्य न देखकर ही उन्होंने अपना उपनाम 'नवीन' रखा होगा। 'निराला' जी ने भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति में अपने को 'निराला' कहा होगा। वास्तव में बीसवीं सदी के नव-जागरण के साथ हिन्दी के प्रायः सभी नवयुवक कवियों ने अपने समाज में अपने को अजनबी पाया होगा। समाज से अपने को अलग करना चाहा होगा, किसी ने नया नाम लेकर, किसी ने नया रूप बनाकर, बाल बढ़ाकर, किसी ने नया परिधान धारण कर।[६] कवि सदा-सर्वदा नवीन ही रहा—

> तुम समझो हो कि अब हो चले हम नवीन, प्राचीन !
> क्यों भूलो हो कि हम अमर हैं !! हम हैं लौह शरीर !!!
> सखी री, हम हैं मस्त फकीर ![७]

'नवीन' होने के कारण ही, कवि ने जीवन में नूतन मार्ग ही बनाया। 'लीक छाँड़ि तीनों चले शायर, सिंह, सपूत,' की उक्ति उन पर चरितार्थ होती है—

१. वही, विरहाकुल कविता, दिसम्बर १९१८ पृष्ठ ३०२।

२. श्री रामनारायण अग्रवाल—'ब्रज भारती', ग्वाल जी के समकालीन अज्ञात कवि श्री 'नवीन', आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, सं० २००६ वि०, पृष्ठ ४०।

३. वही।

४. श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', ब्रजभाषा के आधुनिक कवि, पृष्ठ ११४।

५. 'काव्य कलाधर', परिचयांक, जनवरी १९३६, पृष्ठ १६१-१६२।

६. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'नये पुराने झरोखे', पृष्ठ २२।

७. 'अपलक', हम हैं मस्त फकीर, पृष्ठ ७३।

हम अलीक, बीहड़ चलै, सिरजै अपनी लीक।
हमें न भावैं अन्य को, मारग आच्छौं, नीक ॥[१]

(घ) राष्ट्रीय संस्कार—राष्ट्र प्रीति तथा राष्ट्रीयता की धुन 'नवीन' जी को अपनी किशोरावस्था से ही लग गई थी। इस सम्बन्ध के एक प्रकरण का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है। जब शर्मा जी माधव-कालेज, उज्जैन में अध्ययन कर रहे थे; तभी यह घटना घटित हुई—"एक बार सभा में मैंने एक भाषण दे डाला। साथी-संगियों ने उसे बड़ा पसन्द किया। पर शिक्षक लोगों ने काफी खबर ली। वे बोले—'शर्मा, याद रखो, देश-सेवा करने वाले बक्की नहीं होते। जरा पढ़ने-लिखने की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। भारत की जंजीर जबान से नहीं, बल्कि कठोर कर्मठ भावनाओं से ही टूटेगी। देश-सेवा के लिए अपने को तैयार करो।' उस वक्त तो यह बात जहर-जैसी कड़वी लगी, पर बाद में अक्ल आई और मैंने अपने गुरुजनों की बातों की सत्यता अनुभव की।"[२]

देश-सेवा का यह भाव विकसित होने लगा। उस समय के समाचार पत्रों के अध्ययन के द्वारा उनका विचार-क्षेत्र विस्तृत होने लगा। वे 'प्रताप' के नियमित पाठक थे।[३] साथ ही 'प्रभा' के ग्राहक भी थे।[४] ये दोनों पत्र उस युग के राष्ट्रीय आन्दोलन के वाहक के रूप में शीर्ष-स्थल पर थे। अतएव, स्वाभाविक था कि 'नवीन' जी की यह भावना बलवती होती चली गई। सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने कवि की इस भव्य-भावना की मूलभित्ति को ही सुदृढ़ कर दिया। सन् १९१७ में मैट्रिक उत्तीर्ण करने के पश्चात्, आगे शिक्षा ग्रहण करने के हेतु, उन्होंने अपनी माता से अनुमति चाही। इस घटना का संस्मरण श्री शर्मा के शब्दों में इस प्रकार है—"माँ ने कहा—बेटा अपने लोग गरीब हैं। अपने पास साधन नहीं कि तू कहीं जाकर आगे पढ़ सके। ये सब सपने की बातें अपने मन से निकाल। यहीं भगवान की झारी भर और जो कुछ प्रसाद-रूप प्रभु दे, उसी से भरण-पोषण कर। माँ की इस विवशता से दृढ़ संकल्पकृति, भविष्य-द्रष्टा, स्वप्नशील बालक नवीन घबराया नहीं; निराश नहीं हुआ। उसने निश्चय किया कि अवरोधों और अभावों के इस गिरिराज से वह टक्कर लेगा और अपना भावी मार्ग प्रशस्त करेगा। उत्तर दिया—"जीजी, भगवान की झारी तू भर, मैं तो अब भारत-माता की झारी भरूँगा और इस जीवन को देश-हित में समर्पित करूँगा। उनका यह संकल्प अन्ततः पूरा हुआ और समूचे देश ने उस संकल्प-सिद्धि का स्वयं साक्षात्कार भी किया।"[५]

कानपुर पहुँचकर और अमरशहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के मार्ग-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर, 'नवीन' जी ने हमारे भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में जो तन-मन से सहयोग दिया, वह सर्व-विदित ही है। भारत-माता की झारी भरने के लिए 'नवीन' जी ने

---

१. 'नवीन दोहावली', पिंजर बद्ध नाहर, १७ वीं रचना।

२. 'साहित्यकारों की आत्म-कथा', पृष्ठ ९३।

३. वही, पृष्ठ ९६-९७।

४. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ', एकाराधनिष्ठ मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ३५३।

५. श्री प्रभागचन्द्र शर्मा—'वीणा', सम्पादकीय, अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४५८।

अपना सर्वस्व त्याग दिया। यातनाएँ सही और गरल पान कर, ओठों पर मन्द-स्मिति की मधुर रेखा सदा-सर्वदा बिखेरते रहे। पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है कि वे अपनी माँ के कदाचित् इकलौते बेटे थे। किन्तु चिरंजीव बालकृष्ण ने मालवा की पुकार नहीं सुनी। बूढ़े पिता की भर्राई हुई आवाज भर्राकर विलीन हो हो रही। जीजी मरते समय तक बालकृष्ण को पुकारती रही। किन्तु बालकृष्ण का लौटना कैसे सम्भव हो सकता था?[1] 'नवीन' जी ने अपने को देश-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। इसीलिए उनके जीवन को 'समर्पित जीवन' कहा गया है।[2]

उत्कर्ष-काल

कानपुर के जीवन से ही 'नवीन' जी के उत्कर्ष-काल का समारम्भ होता है। इसके दो पक्ष थे—

(क) साहित्यिक जीवन,

(ख) राजनैतिक-सामाजिक जीवन।

प्रत्येक की प्रमुख एवं काव्योपयोगी घटनाओं का विवरण इस प्रकार है।

(क) साहित्यिक जीवन कवि ने अपनी सर्वप्रथम कविता भाँग पीकर लिखी थी जो कि श्री ज्वालादत्त शर्मा द्वारा सम्पादित मुरादाबाद की 'प्रतिभा' नामक मासिक-पत्रिका के मुख-पृष्ठ पर प्रकाशित हुई थी।[3] इस कविता का शीर्षक था 'जीव ईश्वर वार्तालाप पर।' पं० माखनलाल चतुर्वेदी भी इन्हीं दिनों यहीं पर ही थे। वे कानपुर स्वास्थ्य-लाभ के लिये गये थे। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि चिरंजीव बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उन दिनों माँ को आनन्दित करने के लिए उन्हें तरह-तरह की बातें सुनाया करते।[4] चतुर्वेदी जी की माता जी भी साथ में हो गई थीं। सन् १९१७ को जुलाई के बाद के किसी महीने में चतुर्वेदी जी कानपुर पहुँचे थे।[5]

धीरे-धीरे करके 'नवीन' जी 'प्रताप' में लिखने लग गये। उनकी प्रथम कविता का सम्मान भी हुआ था। मित्रों के प्रोत्साहन व प्रकाशन से उनकी यह नैसर्गिक वृत्ति प्रगति के वाहन पर आरूढ़ हो गई, वे कवि हो गये।[6] कवि ने लिखा है कि "मैंने कविता के लिए किसी से 'इसलाह' नहीं ली। छन्दों और तुकों का ज्ञान था, संगीत भी मेरे प्राणों में बसा था।"[7]

---

१. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३८१।

२. श्री भगवतीचरण वर्मा—'सरस्वती', मेरे आत्मीय 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३९३।

३. डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ४८-४९।

४. श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'—माखनलाल चतुर्वेदी : 'जीवनी', पृष्ठ ३४४।

५. वही, पृष्ठ ३४६।

६. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ४९।

७. वही।

उनके राजनीति के गुरु होने के साथ, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी साहित्य-लेखन के भी प्रेरणा-स्रोत हुए। शर्मा जी ने इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकृति देते हुए, लिखा है कि "लिखने की ओर जो मेरी प्रवृत्ति हुई उसका श्रेय भी पूज्य गणेश जी को ही है। यों तो बहुत पहले से लिखने की ओर रुचि थी; पर प्रेरणा गणेश जी की ही थी। अगर मैं यों कहूँ कि उन्होंने मुझे कलम पकड़कर लिखना सिखाया, तो अत्युक्ति न होगी।"[1]

शर्मा जी का व्यक्तित्व साहित्यिक और राजनैतिक दो रूपों में बँटा हुआ है; परन्तु परस्पर ये इतने अन्योन्याश्रित हैं कि पृथक्करण की रेखा खींचना दुष्कर कार्य है। राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं ने कवि को गहन रूप से प्रभावित किया था और उनकी कवित्व शक्ति, पत्रकारिता तथा ओजस्वी वाणी ने इस संग्राम में नव-शक्ति का संचार किया था। छायावादी अन्य कवियों के समान 'नवीन' जी भी प्रारम्भ में अपने प्रणय, रहस्य तथा विशिष्ट शैली के तत्वों को समाहित किये काव्य-प्रांगण में उतरे थे। कवि की कविताओं को ससम्मान 'सरस्वती' में स्थान मिलने लगा था। 'यथा नाम तथा गुणः' के अनुसार, नूतन युग की अवतारणा उनके काव्य में होने लगी थी।

एक दिन कानपुर में भगवानदास जी के कमर्शियल प्रेस में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि सज्जन बैठे हुए थे। बालकृष्ण शर्मा भी वहीं पर विद्यमान थे। द्विवेदी जी ने अपनी ठेठ बैसवाड़ी में कहा, "क्व हो बालकिशन ! तुहार ऊ प्रेयसी कहाँ रहत है जेकर बारे में तुह अपनी कवितायें लिखा करित हो ?" बालकृष्ण जी ने जब यह सुना तो वे उत्तर देने के बजाय बड़े भन्नाकर, उठकर चल दिये। तदनन्तर चतुर्वेदी जी ने निवेदन किया—"आपका जमाना दूसरा है और बालकृष्ण दूसरे जमाने के निर्माण में लगा है। उसे निर्माण करने का और भूलें करने का भी कृपा-पूर्वक अधिकार दीजिए।" इसके कुछ काल पश्चात् 'नवीन' जी ने 'प्रताप' में लिखित एक लेख में आचार्य द्विवेदी जी की खूब खबर ली।[2] शुक्ल जी ने लिखा कि 'नवीन' जी ने आचार्य द्विवेदी जी को तत्काल उत्तर दिया था—"अब तुम बूढ़ होय गएओ, का करिहो, इनका मरम जानिकै।" ठहाका लगाते हुए द्विवेदी जी ने 'नवीन' जी को एक घूसा लगाया और बोले—"बड़े मुरहा हो।" इस घटना का घटित होना यहाँ प्रताप प्रेस में बतलाया गया है।[3] 'नवीन' जी के इस उत्तर सहित आख्यान का वर्णन पं० बनारसीदास चतुर्वेदी[4] और श्री वेंकटेश नारायण तिवारी[5] ने भी किया है। 'द्विवेदी मीमांसा' का वर्णन माखनलाल जी के सादृश्य में है।[6]

---

१. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ४६।

२. पं० माखनलाल चतुर्वेदी—'सरस्वती', त्याग का दूसरा नाम बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ३८०, जून, १९६०।

३. 'दैनिक नवजीवन', (१२-११-१९५१)।

४. 'रेखा चित्र', पृष्ठ २०३-२०४।

५. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३८८।

६. 'एक बार द्विवेदी जी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से उन्हीं की मण्डली में पूछ बैठे—"काहे हो बालकृष्ण, ई तुम्हार, सजनी, सखी, सलौनी, प्राण को आर्य ! तुम्हार कविता माँ इनका बड़ा जिक्कर रहत है।" सब लोग हँस पड़े और 'नवीन' जी झेंप गए।—श्री प्रेमनारायण टण्डन, द्विवेदी मीमांसा, पृष्ठ २३४।

'नवीन' जी की निर्भीकता हमेशा अपने निर्द्वन्द्व रूप में अभिव्यक्त हुआ करती थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को गणेश जी अपना गुरु मानते थे और उन्हीं के ही अधीनस्थ उन्होंने अपनी पत्रकारिता का ज्वलन्त पाठ पढ़ा था। विद्यार्थी जी को अगर द्विवेदी जी की शिष्य-मण्डली में सर्वप्रधान स्थान दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी।[1] फिर भी हम देखते हैं कि 'नवीन' जी ने इस परम्परा का ख्याल, अपनी उग्र व यथातथ्य ग्रहण वृत्ति के कारण, नहीं किया। इसी प्रवृत्ति का रूप आगे जाकर विकसित हुआ और उन्होंने अपने मतभेद के समय वीर सावरकर, महात्मा गान्धी, जवाहर लाल नेहरू व पुरुषोत्तमदास टण्डन का भी यथावसर विरोध किया।

उपर्युक्त घटनाएँ कवि के स्वभाव व व्यक्तित्व की परिचायिकाएँ हैं। इनसे यह भली-भाँति विदित हो जाता है कि उठते व बढ़ते हुए कवि के कुछ अपने निश्चित मान, सिद्धान्त व विचार थे। कवि अपनी शैली को क्रमशः गढ़ रहा था और उसकी मान्यताएँ हमारे समक्ष उभर कर व खुलकर आ रही थी।

इन सब घात-प्रतिघातों के पश्चात् भी उनके हृदय में किसी प्रकार का विकार या गाँठ नहीं बँधती थी। सन् १९२२-२३ में कानपुर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने अपने भाषण का प्रारम्भिक अंश ही उसमें पढ़ा था और शेषांश का पाठ शर्मा जी ने किया था।[2]

गणेश जी एवं 'प्रताप' परिवार के अतिरिक्त, कवि कानपुर के साहित्यिक समाज से भी सदा-सर्वदा संलग्न रहा। उस समय कानपुर में दो साहित्यिक मण्डल थे—

(क) साहित्य-मण्डल

(ख) साहित्य-समिति।

साहित्य-मण्डल को 'मण्ड-मण्डल' कहते थे और श्री रामाज्ञा द्विवेदी तथा श्री राजाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा' इसके अध्यक्ष एवं मन्त्री थे। 'साहित्य-समिति' को 'सण्ड-मण्डल' कहते थे। श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' इसके अध्यक्ष थे और श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' सचिव थे। 'नवीन' जी का सम्बन्ध दोनों मण्डलों से था और दोनों पर ही उनका अगाध प्रभाव[3] था।

'नवीन' जी विशेषकर 'कौशिक मण्डली' से संलग्न थे। इस मण्डली में वे अक्सर कविता-पाठ करते थे।[4] 'नवीन' जी के प्रत्येक शब्द में वेदना, पीड़ा, निवेदन, आमन्त्रण तथा करुणा की पुकार सुनकर विनोदी कौशिक प्रायः ठहाका लगाकर कह दिया करते थे कि—

---

१. श्री देवव्रत शास्त्री—'गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रारम्भिक जीवन, पृष्ठ ९।

२. श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय—'वीणा', बन्धुवर श्री 'नवीन' जी, अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ५०२।

३. श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', जबलपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक ७-१-१९६२) में ज्ञात।

४. श्री देवीप्रसाद धवन—'सारिका', मुंशी प्रेमचन्द्र, जून, १९६१, पृष्ठ २३।

इश्क ने बेकार इनको कर दिया,
वरना ये भी आदमी थे काम के।[१]

राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम तथा उत्सर्ग की भावना का विकास उनमें प्रारम्भ से ही हो गया था। उन्होंने, उज्जैन में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के प्रचार में, अपने शालेय प्रधानाध्यापक के साथ, काफी सहयोग दिया था।[२] कानपुर में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। यह सभा सन् १९२७ में टूट गई। इसके भी 'नवीन' जी सक्रिय सदस्य रहे।[३]

पत्रकारिता के अतिरिक्त, कवि ने अध्यापन-कार्य भी किया था। कानपुर में, अन्य साहित्यिकों के साथ, उसकी मुन्शी प्रेमचन्द से भी घनिष्ठता हो गई थी।[४] 'नवीन' जी के साहित्यिक जीवन को, उनके सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन ने काफी प्रभावित किया।

(ख) राजनैतिक-सामाजिक जीवन सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन से उनका ('नवीन' जी का) राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ और तब से वे उस दिन तक परतन्त्रता के विरुद्ध संघर्ष में संलग्न रहे जब तक देश स्वाधीन नहीं हो पाया।[५]

श्री रुद्रनारायण शुक्ल ने लिखा है कि लिखने-लिखाने का सिलसिला जरा तेजी पकड़ रहा था कि गान्धी बाबा की आँधी चल पड़ी और यू० पी० के सत्याग्रहियों के पहले जत्थे में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम मौजूद था। हाँ, 'नवीन' ने निरी भावुकता में बहकर, गान्धी वर्दी के सिपाही का बाना पहिन लिया तो सो बात नहीं है। नवीन उन दिनों बी० ए० फाइनल में पढ़ते थे और उनके दो जिगरी दोस्त थे—पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र और पं० उमाशंकर दीक्षित। इन तीनों ने लगातार एक सप्ताह खूब विचार-विनिमय और तर्क-वितर्क के बाद आन्दोलन में भाग लेना स्वीकार किया था। परन्तु इस विवाद के बाद भी निर्णय की प्रेरणा ध्येय की तर्क सम्मितता ने नहीं दी थी बल्कि उनके ही शब्दों में, इस भावना ने कि—"बूढ़े गान्धी की वाणी में देश की अन्तर्ध्वनि मुखर हो उठी है और यदि अपने आपको इस आग में झोंक न दिया तो जी में यह कसक जिन्दगी भर के लिये रह जायेगी कि एक तपःपूत प्राणी ने देश की वेदी पर आह्वान किया और हम देश-द्रोहियों की तरह जान बचाये बैठे रहे।"[५] अन्त में जो घटना घटित हुई, उसकी सूचना साप्ताहिक 'प्रताप' में इस प्रकार प्रकाशित हुई—

"क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर के निम्नलिखित विद्यार्थियों ने कांग्रेस के प्रस्तावानुसार कालेज छोड़ दिया है—

---

१. 'साहित्यकार निकट से', पृष्ठ १७।

२. श्री युधिष्ठिर भार्गव द्वारा ज्ञात।

३. श्री विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा ज्ञात।

४. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'आजकल', प्रेमचन्द, एक स्मृति-चित्र, अक्तूबर १९५२।

५. दैनिक 'नवजीवन', (१२-११-१९५१)।

(१) शिवप्रसाद द्विवेदी, चतुर्थ वर्ष, (२) हनुमानप्रसाद शुक्ल, चतुर्थ वर्ष, (३) उमाशंकर दीक्षित, तृतीय वर्ष, (४) श्री बालकृष्ण, शर्मा, चतुर्थ वर्ष।''[1]

'नवीन' जी को राजनीति के विस्तृत मैदान में ला खड़े करने का सम्पूर्ण श्रेय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को है। गणेशशंकर विद्यार्थी गृहस्थी वेश में रहते हुए भी सच्चे रूप में चिता-भस्म से अपने आपको अलंकृत कर चुके थे। वे अपने मण्डल के रुद्र थे। जटाएँ बिखराकर खड़े हुए तापस के सामने वे हिमालय के समान ऊँचे व्यक्तित्व से अनेकों को अपनी ओर खींच रहे थे। 'नवीन' जी भी उनके प्रदक्षिण आवर्त में खिंच आए और जो उन्होंने एक बार उस दिगम्बर यति-मण्डल में दीक्षा ली तो कालिदास के शब्दों में जन्म पर्यन्त 'अकिंचनत्वं ...व्यनक्ति' के रूप बन गए।[2]

मालवा के एक मस्ताने तरुण को गणेश जी ने देशभक्त, साहित्यिक व लोक-नायक के प्रोज्वल रूप में परिणत कर दिया। सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस और इसके पश्चात् गणेश जी के व्यक्तित्व की मधुरिमा व आकर्षण के मोह-जाल में फँसकर, सन् १९१७ में 'नवीन' जी का कानपुर प्रस्थान कर जाना, हमारे चरित्र-नायक के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएँ प्रमाणित होती हैं। 'नवीन' जी ने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए लिखा है कि "आज मैं जब पीछे की ओर घूमकर देखता हूँ और तब यह पाता हूँ कि मेरे जीवन में लखनऊ कांग्रेस की मेरी यात्रा और परीक्षा के बाद कानपुर की वह यात्रा बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई। उन्होंने मेरे जीवन का प्रवाह एकदम बदल दिया। पहली यात्रा में गणेश जी, माखनलाल जी आदि गुरुजनों के दर्शन मिले, उनसे परिचय हुआ। दूसरी यात्रा में गणेश जी का आश्रय मिला, दुनिया को देखने का अवसर मिला और राजनीति तथा साहित्य में थोड़ा बहुत प्रवेश करने एवं कार्य करने की प्रेरणा मिली।"[3] वास्तव में इन दो यात्राओं ने शर्मा जी के राजनीति-प्रवेश की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। इस पृष्ठभूमि के बनते समय भारत की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन व सक्रियता की लहरें उठ रही थीं।

भारत के राजनीतिक रंगमंच पर महात्मा गान्धी के आविर्भाव तथा अहिंसावाद के अवतरण के पूर्व राष्ट्र-सेवा का आदर्श कुछ और था। उस समय राष्ट्रभक्तों की सेवा-साधना की कसौटी यह थी कि कौन कहाँ तक सशस्त्र राजनीतिक क्रान्ति के साथ संलग्न है। उस समय का राजनीतिक आदर्श था—हाथ में गीता लिये फाँसी के तख्ते पर हँसते हुए चढ़ जाना। ऐसे देश-भक्त राष्ट्र की मुक्ति के साधक माने जाते थे और राष्ट्र उनकी पूजा करता था। दासत्व-श्रृंखला से भारत-माता के बन्धन काटने के लिए जो लोग मारकाट के मार्ग पर अग्रसर होते थे वे राष्ट्रभक्तों में विशेष सम्मान तथा श्रद्धा के पात्र माने जाते थे। लोक-दृष्टि में राष्ट्र देवी की उपासना का एक मात्र पथ था—साहसपूर्वक धैर्य सहित संकटों का सामना करना तथा

---

१. साप्ताहिक 'प्रताप', कार्तिक कृष्ण १३, सं० १९७७, ८ नवम्बर, १९२०, भाग ८, संख्या १, पृष्ठ १।

२. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल—'विशाल भारत', स्व० 'नवीन' जी, जून, १९६०, पृष्ठ ४७३।

३. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १११।

समस्त प्रकार के बलिदानों के निमित्त सदा-सर्वदा प्रस्तुत रहना। इस पथ पर चलनेवाले साहसी वीर, धीर और महान् त्यागी माने जाते थे। ये ही लोग एक प्रकार से देश के नेता थे।[1] १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में एक अभूतपूर्व बात हुई। सौम्य दल और उग्र दल दोनों ने इसी अधिवेशन में पारस्परिक गठ-बन्धन किया। हिन्दू-मुसलमानों की एकता का मृदुल सूत्र भी यहाँ आकर परिपक्व रूप में परिवर्तित हो गया। इसी कांग्रेस में 'नवीन' जी के मस्तक को लोकमान्य तिलक ने दो बार थपथपाया[2] और एक प्रकार से उसी क्षण से शर्मा जी के मन-मस्तिष्क में उग्रता व उत्तेजना की विद्युत् चिर-काल के लिए समा गई। कांग्रेस की सौम्य व मधुर नीति के विरुद्ध तिलक जी ने अपना रुख दिखलाया और उग्र तथा वाम-पथ के पथ को गढ़ा। उन्होंने सुधार व आन्दोलनों का आधार बात नहीं, अपितु कार्य निरूपित किये। तिलक-सम्प्रदाय के अनुयायी गणेश जी थे। वे उनको अपना 'राजनैतिक गुरु'[3] मानते थे और उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलते थे। 'प्रताप' की नीति भी इसीलिए हमेशा क्रान्तिकारी, कटु समीक्षा पूर्व व उग्रदलीय रही है। अपने गुरु का अनुगमन शिष्य बालकृष्ण ने भी किया। श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने लिखा है कि नवीन जो मूलतः राजनीति में तिलक-विचार शाला के अनुगामी थे। इसलिए ब्राह्मणोचित तेज और असमझौतावादी दृष्टि-भाव उनके जीवन भर प्रोज्जवल रहा।[4]

लोकमान्य तिलक ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आधार पर राष्ट्रीयता का निर्माण किया था।[5] सन् १९१९ की अमृतसर कांग्रेस से ही तिलक का प्रभाव क्षीण होने लगा और भारत के राजनैतिक क्षितिज में 'महात्मा गान्धी की जय' का उद्घोष बुलन्द होने लगा। श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस कांग्रेस को 'पहली गान्धी कांग्रेस' कहा है।[6]

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् भारत में तीव्रगति से क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे।[7] गान्धी जी अब पूर्ण उन्मेष के साथ भारतीय राजनीतिक क्षितिज के प्रातःकालीन सूर्य बन गये थे। उन्हीं के ही राष्ट्रीय आह्वान पर 'नवीन' जी ने अपना शिक्षा-क्रम बन्द कर, अपने को राष्ट्र के पुनीत अंक में डाल दिया। इस प्रकार की युगीन परिस्थितियों में 'नवीन' जी ने राजनीति में प्रवेश किया। समाचार-पत्रों के नियमित व निष्ठावान् पाठक होने के नाते, देश

---

१. श्री लक्ष्मीशंकर व्यास—'पराड़कर जी और पत्रकारिता', जीवनी-खण्ड, पृष्ठ ३४।

२. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १०९।

३. 'गणेशशंकर विद्यार्थी, राजनैतिक जीवन, पृष्ठ १९।

४. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४६१।

५. आचार्य जावड़ेकर—'आधुनिक भारत', पृष्ठ ९८।

६. 'मेरी कहानी', गान्धी जी मैदान में, पृष्ठ ७५।

७. "Until 1919, Britain's hold on India was confident and secure. But world war I had transformed India so radically that the old attitude towards this country and its peoples was no more longer tenable"—Shri S. R. Sharma, 'the Making of modern India', page 550

की उत्तेजक तत्कालीन परिस्थितियों ने उनके युवक-हृदय का झकझोर दिया। उनकी कर्म-भूमि कानपुर में उन दिनों काफी भाषण हुआ करते थे जिनमें इस आन्दोलन के पक्ष-विपक्ष की संस्तुति अथवा समीक्षा की जाती थी। 'नवीन' जी के एक मित्र, श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने, जिन्होंने भी इसी समय कानपुर में पढ़ना छोड़ दिया था, लिखा है कि असहयोग आन्दोलन के पक्ष में कानपुर में जो लोग बोलते थे उनमें अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, मौलाना आजाद सुभानी, मौलाना हसरत मोहानी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्रीमती सत्यवती तथा स्वर्गीय रामप्रसाद मिश्र के भाषण जनता को विशेष रूप से आकर्षित करते थे। इनके भाषणों के प्रभाव में आकर कितने ही विद्यार्थियों ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया।[1] डा० भगीरथ मिश्र के मतानुसार, आन्दोलन के दिनों में अपने ओजस्वी भाषणों के कारण ये 'कानपुर के शेर' कहे जाते थे।[2]

राजनैतिक सामाजिक जीवन की प्रमुख घटनाएँ—'नवीन' जी राजनीति के प्रमुख व्यक्ति होने के साथ-साथ, प्रभावपूर्ण सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। उनका जीवन कांग्रेस अधिवेशनों तथा कारावास में ही व्यतीत हुआ है। असहयोग आन्दोलन के समय 'नवीन' जी भी अन्य नेताओं के समान कारावास में डाल दिये गये थे। यह कार्यक्रम पूर्ण उत्साह के साथ अनवरत चालू रहा।

सन् १९२० ई० में ही, असहयोग आन्दोलन के समय, साप्ताहिक 'प्रताप' का दैनिक संस्करण भी प्रारम्भ किया गया था। 'नवीन' जी ने इसमें अपने जोशीले लेख लिख-लिख कर, स्वतन्त्रता की अग्नि-शिखा को प्रोत्साहित किया। सन् १९२५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस का चालीसवाँ अधिवेशन कानपुर में सम्पन्न हुआ। इसकी अध्यक्षा थीं श्रीमती सरोजिनी नायडू। इस अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति के प्रधान मन्त्री विद्यार्थी जी ही थे। इस अधिवेशन का पूर्ण भार, दायित्व व व्यवस्था गणेश जी, 'नवीन' जो आदि ने सम्पन्न की। इस अधिवेशन के कुशल प्रबन्ध, श्रेष्ठता व सफलता की सब ने मुक्त-कण्ठ से तारीफ की।

कवि ने असहयोग के दिनों में अपनी क्रान्तिवादिता का परिचय अपने 'विप्लव गान' से दिया था जो कि 'गान्धीवादी परम्परा' के विरुद्ध उद्घोष था।[3] इसकी अभिव्यक्ति में 'राष्ट्रीय असन्तोष की भावना,[4] निहित थी। राष्ट्रीय अभियान का द्वितीय दौर भी सन् १९३० के बाद शिथिल होने लगा था। महात्मा गान्धी के पास उनकी असफलता के तार देश-विदेश से आने लगे थे।[5] ऐसे ही युग में कवि ने विध्वंसक विप्लव की कामना कर, नई स्फूर्ति व नव-निर्माण का परोक्ष ज्ञापन किया था।

२४ मार्च मंगलवार सन् १९३१ ई० को कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा शुरू हुआ। ता० २५ मार्च को गणेश जी ने साम्प्रदायिकता के गरल का पान कर लिया और अपनी आत्म-

१. 'साप्ताहिक आज', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९।
२. 'हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास', पृष्ठ २२०।
३. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५१।
४. 'आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद', पृष्ठ ३१४।
५. Ishwari prasad and Subedar—'A History of modern India' Chapter 20, Gandhian Era, page 416-34.

बलि चढ़ा दी। उस समय कराची में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। जब यह खबर वहाँ पहुँची तो यू० पी० कैम्प में शोक की घटा छा गई। ऐसा मालूम पड़ा कि उसकी शान चली गई। लेकिन फिर भी उसके दिल में यह अभिमान था कि गणेश जी ने बिना पीछे कदम उठाये मौत का मुकाबला किया और उन्हें गौरवपूर्ण मौत नसीब हुई।[1] कराची में खबर पाकर महात्मा जी और पं० जवाहरलाल जी ने तार दिया कि हम श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन जी और पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को भेज रहे हैं। 'नवीन' जी के कानपुर आ जाने पर ही २६ मार्च, १६३१ ई० को गणेश जी का शव-दाह संस्कार सम्पन्न हुआ।[2] महात्मा गान्धी ने निम्नलिलित तार विद्यार्थी जी के सम्बन्ध में पं बालकृष्ण शर्मा के नाम भेजा था—"काम में बहुत व्यस्त रहने के कारण मैं न तो कुछ लिख सका और न तार ही दे सका। यद्यपि हृदय खून के आँसू रोता है, फिर भी गणेशशंकर की जैसी शानदार मृत्यु पर समवेदना प्रकट करने को जी नहीं चाहता। यह निश्चय है कि आज नहीं तो आगे किसी दिन उनका निष्पाप खून हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को सुदृढ़ बनायेगा। इसीलिए उनका परिवार समवेदना का नहीं, बल्कि बधाई का पात्र है। ईश्वर करे, उनका यह दृष्टान्त संक्रामक साबित हो—गान्धी।"[3] गणेश जी की मृत्यु 'नवीन' जी के जीवन की सर्वाधिक शोकप्रद दुर्घटना है। उन्होंने विद्यार्थी जी की आत्माहुति को शाश्वत रखने के लिए, उसे काव्य के चिरन्तन करों में आबद्ध कर दिया है।

विद्यार्थी जी की मृत्यु के बाद उनके स्मारक के सम्बन्ध में एक समिति भी बनी थी। उसने अपने देशवासियों से धन-दान देने की अपील की थी। इसके लिए जो अपील-पत्र प्रकाशित हुआ था; उसमें जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टण्डन, सुन्दरलाल, कृष्णकान्त मालवीय, तसद्दुक अहमद शेरवानी, दामोदरस्वरूप सेठ, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, रफी अहमद किदवई, मोहनलाल सक्सेना, शिवप्रसाद गुप्त, गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री प्रकाश, डा० मुरारीलाल, कमलापति सिंघानिया आदि प्रख्यात नेताओं के हस्ताक्षर थे।[4] इस स्मारक के हेतु द्रव्य-संचय की एकान्त जिम्मेदारी 'नवीन' जी पर डाली गई। स्वयं महात्मा गान्धी ने 'हरिजन सेवक' में एक लेख लिखते हुए देश की जनता को यह कहकर आश्वस्त किया कि "जिस सम्पदा का संरक्षक बालकृष्ण हो उसके बारे में सोच-विचार ही क्या?" गान्धी जी सार्वजनिक रूप से इस प्रकार का फतवा देने के मामले में बहुत ही कृपण माने जाते थे।[5]

सन् १६३७ के चुनाव में 'नवीन' जी न तो किसी क्षेत्र से खड़े हुए और न उन्हें कोई पद ही मिला। उन्होंने स्वयं एम० एल० सी० की मजदूर सीट के लिए श्री हरिहरनाथ शास्त्री की नामजदगी के लिए, श्री गोविन्दवल्लभ पंत व रफी अहमद किदवई से अनुरोध किया था। इस दिशा में जो उनका सिद्धान्त था; उसे उन्होंने श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' को बताया

---

१. 'मेरी कहानी', कराची, पृष्ठ ३८०।
२. 'गणेशशंकर विद्यार्थी, आत्मोत्सर्ग, पृष्ठ ११०-१११।
३. वही, पृष्ठ ११४।
४. 'गणेशशंकर विद्यार्थी', आत्मोत्सर्ग, पृष्ठ ११६-११७।
५. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १६६०, पृष्ठ ४६१।

था कि गणेश जी पढ़ा गए हैं कि राजनीति नरक हो जाता है जब उसमें दे नहीं रहती, ले ही रह जाती है।[1]

'नवीन' जी के जीवन की साहस व कर्तव्य के प्रति निष्ठा की एक कहानी अपूर्व और अविस्मरणीय है। गणेश जी की पुत्री सरला पूजन करते समय आरती की लौ से अधजली-सी हो गई। उसे बचाने में 'नवीन' जी के हाथ जल गए और करतल की खाल बिलकुल निकल गई। लगभग वर्ष भर तक वह हाथों से कुछ काम नहीं ले सके थे। कपड़ा पहनना भी स्वतः सम्भव नहीं था। जब हाथ अच्छे हुए तब उनमें जलने के दाग के कारण श्वेत रंग आ गया। उनके एक विरोधी ने अपना क्रोध, उन्हें 'कोढ़ी' कहकर, अपनी मण्डली में प्रकट किया। जब यह बात श्री शर्मा विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' को विदित हुई तो उन्होंने उन महाशय को बुलाकर काफी लज्जित किया और उन हाथों को पुण्यात्मा के हाथ कहा। इस बात के विदित होने पर 'नवीन' जी ने अपने इन हाथों के कारण अपने को सौभाग्यशाली माना।[2] इस कृत्य के कारण श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने उन्हें 'प्रकृत साहसी' व 'बलिदानी' कहा है।[3] यह घटना सन् १९३९ में घटी थी। 'नवीन' जी ने 'अपलक' की 'बस बस, अब न मथो यह जीवन'[4] और 'क्यों न सुनोगे विनय हमारी'[5] एवं 'क्वासि' की 'प्रिय जीवन-नद अपार' नामक कविताओं के अन्त में स्थान व रचना-तिथि के साथ लिखा है—'अग्निदीक्षा काल'। इन तीनों रचनाओं की लेखन-तिथि ८-१-१९४०, २१-१२-१९३९ और १०-६-१९३९ दी गई है। 'अग्निदीक्षा काल' का रहस्य इसी घटना में सन्निहित है। सन् १९४२ में सरला के क्षय-रोग से पीड़ित होने के कारण, कवि कारागृह से १५ दिन के लिए पैरोल पर कानपुर गया। इस विषय में, गवर्नर के परामर्शदाता मिस्टर मार्स को लिखे अपने प्रार्थना-पत्र में 'नवीन' जी ने लिखा था कि "उस मरणासन्न बालिका के साथ मेरी वैसी रिश्तेदारी नहीं है, जैसी दुनिया में होती है, पर यदि मनुष्य की भावना का कुछ अर्थ और महत्व है तो मैं उसी परिवार का एक सदस्य हूँ और वह बालिका मेरी आत्मीय है।" सरला की मृत्यु से कवि को आघात पहुँचा था और उसकी बर्षी के पुण्य अवसर पर, एक स्मृति-अंक लेख भी लिखा था।[6]

१९३९ ई० की त्रिपुरी कांग्रेस में बात्याचक्र उत्पन्न हो गया था। श्री नेहरू ने लिखा है कि "१९३९ की शुरुआत में राष्ट्रपति के चुनाव के वक्त कांग्रेस में बहुत झगड़ा हुआ। बद-क़िस्मती से मौलाना अबुलकलाम आजाद ने चुनाव में खड़े होने से इन्कार कर दिया और चुनाव लड़ने के बाद सुभाषचन्द्र बोस चुने गये। इससे अनेक प्रकार की उलझनें और अड़ंगा पैदा हो गया था जो कई महीनों तक चलता रहा। त्रिपुरी कांग्रेस में बेहूदा दृश्य देखने में आये।"[7] चुनाव के परिणाम प्रकट होने पर गाँधी जी ने घोषणा कर दी कि "पट्टाभि की हार

१. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ ११।

२. वही, पृष्ठ २०।

३. 'साप्ताहिक सैनिक', पृष्ठ ७।

४. 'अपलक', पृष्ठ ३४-३५।

५. वही, पृष्ठ ६२-६३।

६. 'प्राभ्या', १५ अगस्त, १९६०, पृष्ठ ८।

७. 'मेरी कहानी', पांच साल के बाद, पृष्ठ ८४७।

मेरी हार है ।'' इससे देश में हलचल मच गई । जिन लोगों ने सुभाष बाबू के पक्ष में मत दिया था वे गान्धी जी और उनके नेतृत्व में विश्वास प्रकट करने लगे । इससे एक परेशान करनेवाली परिस्थिति उत्पन्न हो गई ।[१] श्री 'नवीन' जी ने इस कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए पट्टाभि के विरुद्ध सुभाष बाबू को मत दिया था । दूसरे ही दिन, गान्धी जी का वक्तव्य सुनकर, आपने सुभाष बाबू को तार देकर सूचित किया कि यदि आप गान्धी जी के विरुद्ध जीते हैं तो अपना वोट आपको मैंने गलती से दिया है ।[२] यहाँ हमें 'नवीन' जी के निर्भीक व्यवहार और स्पष्ट अनुशासन-वृत्ति के दर्शन होते हैं ।

सन् १९४२ के बम्बई अधिवेशन में भाग लेकर, लौटते समय, 'नवीन' जी जबलपुर उतर गये । 'नवीन' जी को जबलपुर से प्रयाग एक उच्च रेलवे कर्मचारी की एंग्लो-इंडियन पत्नी की संरक्षकता में भिजवाया गया । इस समय 'नवीन' जी को कोट, पतलून, टाई, कालर व हैट पहनाकर पूरे साहब के स्वांग में भेजा गया था ।[३]

उधर कानपुर में 'नवीन' जी की गिरफ्तारी का वारण्ट निकल गया था । सारे नगर में यह संवाद फैल गया था कि शर्मा जी को गोली मार देने की आज्ञा है । शर्मा जी जब कानपुर पहुँचे और जब यह संवाद उन्हें विदित हुआ तो उन्होंने स्वर्गीय गणेश जी के पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी से परामर्श कर, एक पत्र स्थानीय जिलाधीश श्री स्टिफेन्स को लिखा । उसमें उन्होंने अपने को गिरफ्तार होने के लिए सहज ही लिख दिया । पत्र-वाहक को जिलाधीश महोदय ने वहीं रोक लिया और यह आज्ञा दी कि जब तक शर्मा जी गिरफ्तार न हो जाएँ, उनको यहीं रहना होगा । शर्मा जी को पकड़ने के लिए बड़े कप्तान व इंस्पेक्टरों सहित लगभग ५० सिपाहियों के दल के फीलखाना पहुँचकर विद्यार्थी जी के निवास को घेर लिया । सभी सिपाही बन्दूकों से व थानेदार पिस्तौल से सज्जित थे । एक निहत्थे वीर को गिरफ्तार करने के लिए इतनी बड़ी सज-धज असामंजस्यपूर्ण होने पर भी सम्भवतः ब्रिटिश नीति के अनुसार एक बड़े किले पर विजय पाने के समान थी । शर्मा जी अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक मुस्कराते हुए नीचे उतर आये । गोली मारने की आवश्यकता न पड़ी और यदि पड़ती भी तो यह वीर उससे किंचित् मात्र भी भय न खाता, यह निश्चित था ।[४] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि अपने सैनिक रूप में वे सर्वथा फाणा कसे रहनेवाले योद्धा थे । उनका जुझार रूप ऊपर ही रखा रहता था । आदेश हुआ नहीं कि समर में कूद पड़े । आगा-पीछा सोचने का समय और स्वभाव ही न था । द्विविधा से ऊपर उठ गए थे । एक ही व्रत, एक ही नित्य-नियम रह गया था—समय पर आदेश का पालन । जिसे अपना गुरु या नेता चुन लिया था, उसके आदर्श और मार्ग पर अभय मन्त्र से आगे बढ़ते रहना ।[५]

---

१. श्री पट्टाभि सीतारामैय्या—कांग्रेस का इतिहास', खण्ड २, अध्याय ५, त्रिपुरी १९३९, पृष्ठ १०८ ।

२. श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', वट-पीपल, पृष्ठ ३९ ।

३. 'सरस्वती', जुलाई, १९६०, पृष्ठ २९-३० ।

४. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १७ ।

५. 'विशाल भारत', जून, १९६०, पृष्ठ ४७३ ।

सन् १९४५-४६ में 'नवीन' जी अपने एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी हिन्दू महासभा के उम्मीदवार श्री श्रीराममोहन लाल को ७५ के मुकाबले १७७९८ मतों से पराजित कर केन्द्रीय व्यवस्थापिका-सभा के सदस्य बने। उस समय उनकी अवस्था ४८ वर्ष की थी। वह तब के संयुक्त प्रान्त की प्रसिद्ध सात नगरियों की ओर से प्रतिनिधि चुने गये थे। इसके पूर्व-प्रतिनिधि के रूप में यहीं से श्री मोतीलाल नेहरू, डा० भगवानदास प्रभृति प्रसिद्ध नेता चुने गये थे। द्वितीय विश्व-युद्ध के बीच में पड़ जाने के कारण यह निर्वाचन २२ वर्ष बाद हुआ था और कांग्रेस ने मँजे हुए व निष्ठापूर्ण व्यक्ति की यहाँ से आवश्यकता महसूस की थी, जिसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति 'नवीन' जी ही प्रमाणित हुए।[1]

तत्कालीन वायसराय लॉर्ड बेवल ने, जो कि भारत में सन् १९४३ में आये थे, एक बार केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के कुछ सदस्यों को भोज के लिए आमन्त्रित किया। 'नवीन' जी भी बुलाए गए। वायसराय को संस्कृत आती थी। लॉर्ड वेवल ने जब 'नवीन' जी को यह बताया कि 'इंजीनियर' शब्द संस्कृत का है—'एजिमनौ' धातु से इंजीनियर शब्द बना है, तो 'नवीन' जी उनके संस्कृत-ज्ञान से विस्मयाभिभूत व परम आह्लादित हो गये। उसी समय से 'नवीन' जी का यह मत अटूट हो गया कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण संस्कृत से किया जाय। इसके बाद विपक्ष में दी गई युक्तियों को वह कोई महत्व नहीं देते थे।[2]

सन् १९२० से लेकर १९६० ई० तक के अपने ४० वर्ष के राजनीतिक जीवन में 'नवीन' जी लगातार कानपुर शहर कांग्रेस के सदस्य, उपसभापति, प्रदेश कांग्रेस कमेटी एवं कौंसिल के सदस्य तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य निर्वाचित होते रहे। सन् १९३६-३७ के समय में वे कानपुर शहर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। सन् १९३८ से 'नवीन' जी कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए थे।[3]

क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध—'नवीन' जी का क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध, गणेशजी एवं 'प्रताप' के माध्यम से स्थापित हुआ।

'नवीन' के सम्बन्ध शचीन्द्रनाथ सान्याल, जोगेशचन्द्र चटर्जी, अजय घोष, राजकुमार सिन्हा, विजयकुमार सिन्हा, बटुकेश्वरदत्त आदि क्रान्तिकारियों के साथ थे। चन्द्रशेखर आज़ाद तथा सरदार भगतसिंह के साथ भी उनका सम्पर्क था। 'नवीन' जी के क्रान्तिकारियों के साथ के सम्बन्ध को सक्रिय न कहकर, सामान्य ही कहा जा सकता है।[4] जिस समय कारागृह में सरदार भगतसिंह एवं उनके साथियों सुखदेव व राजगुरु ने, भूख-हड़ताल की थी; उस अवसर पर, गणेश जी ने भगतसिंह को समझाने व भूख-हड़ताल तोड़ने के लिए 'नवीन' जी को ही भेजा था। इसी समय, 'नवीन' जी के कराची के आंग्ल-पत्र 'ट्रिब्यूट' में अपना वक्तव्य भी दिया था।[5]

---

१. श्री ब्रह्मदत्त शर्मा—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—जैसे मैंने देखा, १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ २६।

२. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १९।

३. वही, ३ जुलाई १९६०, पृष्ठ ३९।

४. श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा ज्ञात।

५. श्री उदयशंकर भट्ट द्वारा ज्ञात।

'नवीन' जी ने अनेक षड्यन्त्रकारियों व क्रान्तिकारियों को प्रश्रय प्रदान किया था; उन्हें सहयोग दिया था और सदा-सर्वदा उनके प्रति सहानुभूति रखी थी।[१] प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्र सान्याल के साथ भी उनके सम्बन्ध थे।[२]

सन् १९४२ की क्रान्ति में सरदार वल्लभभाई पटेल ने स्पष्ट रूप से कहा था कि अब की बार एक सप्ताह के भीतर शासन ठप्प कर दिया जायगा। इस तोड़फोड़ की योजना का प्रचार 'नवीन' जी ने जबलपुर में भी किया था। वे उत्तर प्रदेश में अस्त्र-शस्त्रों का भी कुछ प्रबन्ध करना चाहते थे जिसके लिए वे एक सप्ताह से ऊपर भूमिगत भी रहे।[३]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपनी मातृभूमि के स्वातन्त्र्य के हेतु, सभी प्रकार के माध्यमों से कार्य किया और उसके लिए कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ी। उनके विद्रोही स्वभाव के यह सर्वथा अनुकूल था। श्री भगवतीचरण वर्मा ने उन्हें जन्मजात विद्रोही कहा है।[४]

बन्दीजीवन की गाथा—श्री बालकृष्ण शर्मा सन् १९२० से लेकर १९४७ ई० तक छः बार कारावास गये और अपने जीवन के लगभग ९ वर्ष वहीं पर ही व्यतीत किये। उनका अधिकांश साहित्य-सृजन कारावास में ही हुआ है। जेल के बाहर तो मानो वे साहित्य के आदमी रहे ही नहीं। हर समय राजनीति-राजनीति-राजनीति !!! चारों ओर वह राजनैतिक व्यक्तित्वों से घिरे रहते थे।[५]

अपने असहयोग आन्दोलन में सर्वप्रथम वे सन् १९२१ में कारागृह गये। १३ दिसम्बर, १९२१ ई० को प्रयाग में उत्तरप्रदेशीय कांग्रेस समिति की बैठक के होते समय, 'नवीन' जी सहित ५५ व्यक्ति पकड़ लिये गये थे। श्री नेहरू ने भी उक्त बैठक का उल्लेख किया है।[६] प्रयाग के जिलाधीश नाक्स ने सबको डेढ़-डेढ़ वर्ष का कारावास दण्ड दिया। 'नवीन' जी पहले बनारस केन्द्रीय कारागार में रखे गये; तदुपरान्त बनारस जिला कारागार में। इसके पश्चात् प्रान्त भर के सब उच्च श्रेणी के बन्दी लखनऊ जिला कारागार में भेज दिये गये। 'नवीन' जी भी इस प्रकार लखनऊ आ पहुँचे।[७] लखनऊ में सात बन्दी भयानक समझे गए। उनके नाम ये हैं :—जवाहरलाल नेहरू, स्वर्गीय जार्ज जाजेफ, स्वर्गीय महादेव देसाई, पुरुषोत्तमदास टण्डन, देवदास गान्धी, परमानन्दसिंह (बलिया) और बालकृष्ण शर्मा। अतः इन सब व्यक्तियों को, सबसे पृथक्, एक छोटी सी घुड़साल में बन्द कर दिया गया।[८] श्री नेहरू के विवरण से भी इस

१. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४६१।

२. वही, पृष्ठ ४६४।

३. श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव—'वीणा', नवीन जी एक सच्चे सिपाही, अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४६७।

४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३९३।

५. वही, पृष्ठ ३९३।

६. "युक्त प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के लोग सब के सब (५५ व्यक्ति), जब वे कमेटी की एक मीटिंग कर रहे थे, एक साथ गिरफ्तार कर लिये गये। 'मेरी कहानी', पहली जेल-यात्रा, पृष्ठ १२।

७. 'ऊर्म्मिला', श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ क-ख।

८. वही, पृष्ठ ख।

कथन की पुष्टि होती है।[१] लखनऊ कारागृह में नेहरू जी 'नवीन' जी व देवदास गान्धी को अंग्रेजी व भूमिति पढ़ाया करते थे। यहीं पर ही 'नवीन' जी ने नेहरू जी से शेक्सपियर की महान् कृति 'मैकबेथ' को आद्योपान्त पढ़ा।[२] श्री 'नवीन' ने अपने 'जेल-जीवन' के संस्मरण सुनाते हुए कहा है कि 'किस तरह मैं तथा देवदास जवाहर भाई के साथ शेक्सपियर पढ़ा करते थे, किस तरह हम लोग रहते थे, "किस तरह पूज्य टण्डन जी गुड़ में मूँगफली पागकर मुझे और देवदास को बड़े वात्सल्य से खिलाया करते थे। किस तरह मैं कप्तान बनकर जवाहर भाई और देवदास आदि मित्रों तथा साथियों को कवायद कराया करता था—आदि बातों का स्मरण-मात्र हृदयग्राही है।[३]

सन् १९३० में शर्मा जी को दो बार छः-छः मास का कारावास दण्ड मिला।[४] इस समय उन्हें गाजीपुर व फर्रुखाबाद के कारागृहों में रखा गया। यहाँ पर नेतागिरी ने 'नवीन' जी का पिण्ड नहीं छोड़ा। फर्रुखाबाद के कारावास में शर्मा जी का अधिकतर समय पुस्तकों के अध्ययन में ही व्यतीत होता था। यहाँ पर वे भजन भी गाया करते थे। चतुर्थ बार 'नवीन' जी को दिसम्बर, सन् १९३१ से फरवरी, १९३४ तक कारागृह में रहना पड़ा।[५] इस समय 'नवीन' जी फैजाबाद जेल में रहे। श्री रामस्वरूप गुप्त ने लिखा है—"जब सन् १९३२ के आन्दोलन में कानपुर के गंगाजी के चौराहे वाले कोने के १२ नं० बैरक में पं० बालकृष्ण शर्मा, पं० रघुवर-दयाल भट्ट, लाला गोपालदास, श्री रामरतन जी गुप्त, अजय घोष और मैं, एक साथ रहते थे; थोड़े दिनों के लिए श्री नवलकिशोर भरतिया भी वहाँ थे। शर्मा जी तो गीता के गम्भीर विचारक थे ही। श्री अजयघोष जो अब कम्युनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी हैं, आस्था न होते हुए भी, गीता के अर्थों की गहराई में उतरते थे। परस्पर खूब विचार-विमर्श होता था। उस समय जेल हमारे अध्ययन-केन्द्र बने हुए थे। लाला रामरतन गुप्त और पं० रघुवरदयाल भट्ट को

---

१. "हमारे ऊपर सख्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ने लगीं, और ज्यादा-ज्यादा सख्त क़ायदे लागू किये जाने लगे। सरकार ने हमारे आन्दोलन की नाप-जोख कर ली थी, और वह हमें यह महसूस करा देना चाहती थी कि हमारे मुकाबला करने की हिम्मत करने के सब से वह हम पर किस कदर नाराज़ है। नये क़ायदों के चालू करने या उनके अमल में लाने के तरीक़ों से जेल-अधिकारियों और राजनैतिक कैदियों के बीच झगड़े होने लगे। कई महीनों तक करीब-करीब हम सब ने—हम लोगों की संख्या उसी जेल में कई सौ थी—विरोध के तौर पर मुलाकातें करना छोड़ दिया था। जाहिर है कि यह खयाल किया गया कि हममें से कुछ झगड़ा कराने वाले हैं, इसलिए सात आदमियों को जेल के एक दूर के हिस्से में बदल दिया गया, जो ख़ास बैरकों से बिलकुल अलहदा था। इस तरह जिन लोगों को अलग किया गया उनमें से, पुरुषोत्तमदास टण्डन, महादेव देसाई, जार्ज जोसफ, बालकृष्ण शर्मा और देवदास गान्धी थे।"—'मेरी कहानी', लखनऊ जेल, पृष्ठ १४०।

२. 'ऊर्म्मिला', भूमिका, पृष्ठ ख।

३. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५०।

४. 'ऊर्म्मिला', पृष्ठ ग।

५. वही, पृष्ठ ग।

पढ़ाने और उनके सामान्य अंग्रेजी ज्ञान बढ़ाने का कार्य मेरे सुपुर्द था। शर्मा जी की उपस्थिति वहाँ आनन्द और पारिवारिक स्नेह की भावना को बढ़ाने में कितनी सहायक थी।''[१]

फैज़ाबाद कारागृह में उनके साथी श्री महावीर त्यागी, सादिक अली, लालबहादुर शास्त्री, विचित्र नारायण शर्मा, गोपीनाथ श्रीवास्तव, चौधरी चरणसिंह, मोहनलाल गौतम, केशवदेव मालवीय, मुजफ्फर हुसैन आदि थे जो कि आजकल केन्द्रीय, प्रान्तीय व अन्य शासकीय पदों पर आसीन हैं।[२] अपने कारागृह के जीवन में 'नवीन' जी ने वहाँ के अमानुषिक व्यवहार का डटकर विरोध किया। कई बार कानूनों का उल्लंघन किया जिसके फल-स्वरूप ये दण्डित भी किये गये थे। 'नवीन' जी ने अपने सहयोगियों के बीच विनोद, हास-परिहास और उत्फुल्लता का वातावरण बनाये रखा। कई हास्य-प्रधान कविताओं को बनाकर व सुनाकर, वे सभी का मनोविनोद किया करते थे।[३] वे कारागृह के अधिनायक थे। फैजाबाद जेल में वे कानपुर जेल से २५ जून, १६३२ को आये थे। यहाँ पर संगीत व कवि-गोष्ठी आपस में अक्सर हुआ करती थी जिसके प्रमुख अभिनेता 'नवीन' जी ही रहते थे। इन्हीं दिनों गान्धी जी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन कर दिया था। यह खबर जब 'नवीन' जी को लगी; तब वे रो पड़े और बहुत चिन्तित रहने लगे। अनशन के दिनों 'नवीन' जी ने भी कारागृह में सिर्फ जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं ग्रहण किया था। इन्हीं दिनों वे स्पष्ट विचार के थे कि भारत में जमींदारी प्रथा समाप्त होनी चाहिए, समाजवाद के प्रति उनका झुकाव बढ़ रहा था। अपने कारागृह-जीवन में वे बराबर पर-दुख कातर और सहयोगी बने रहे।[४]

सन् १६४१ में 'नवीन' जी ने नैनी-कारागृह में जाकर, अपनी पंचम जेलयात्रा की शृंखला जोड़ी, वे वहाँ पर गोरा बैरक के पीछे के हिस्से में रखे गये थे। वे प्रात:काल नियम से उठते और व्यायाम करते तथा दौड़ लगाते थे। व्यायाम में वे मूलर की पद्धति का अनुसरण करते थे। उनका शरीर बहुत लचीला और सुन्दर था।[५] 'नवीन' जी को स्वस्तिकासन, गोमुखासन, मयूरासन, शीर्षासन और मुक्तासन आदि का व्यावहारिक ज्ञान था।[६]

सन् १६४२ ई० की क्रान्ति में 'नवीन' जी को षष्ठ तथा अन्तिम बार कारागृह की यात्रा करनी पड़ी। इस बार वे सन् १६४२ से ४४ ई० तक केन्द्रीय कारागार बरेली और जिला-जेल उन्नाव में रखे गये। उन्नाव कारागृह में कानपुर जिले के सभी राज-बन्दियों को

---

१. दैनिक 'प्रताप', एक वह भी समय था, ५ मई, १६६०, पृष्ठ ३।

२. श्री गोपीनाथ शर्मा 'अमन'—'प्रहरी', जेल के साथी नवीन जी, १६ अक्तूबर, १६६०, पृष्ठ ८।

३. 'प्रहरी', १६ अक्तूबर, १६६०, पृष्ठ ७।

४. श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—'नवभारत टाइम्स', नवीन जी फैजाबाद जेल में, २६ जून, १६६०, पृष्ठ ६।

५. 'कृति', श्री मन्मथनाथ गुप्त, मई, १६६०, पृष्ठ ७०।

६. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', ३ जुलाई, १६६०।

रखा गया था। यहाँ पर उन्होंने बड़ी सहृदयता, उदारता तथा सहानुभूति से सब को वशीभूत कर लिया। वे सदा एकरस बने रहे। उन्नाव जेल के कुछ साम्यवादी बन्दी उन्हीं के ही सहयोग व संरक्षकता के कारण रूस का क्रान्ति-दिवस मनाने में सफल हुए थे। वे सब के साथ एक विशिष्ट सभ्यता और शिष्टाचार के साथ व्यवहार करते थे। कभी किसी में लघुता की भावना आने देने का अवसर प्रदान नहीं करते थे। यहाँ पर भी उनके भाषण देने व कविता-पाठ का सिलसिला जारी रहा जिससे काल-कोठरियों में उत्फुल्लता का वातावरण बन जाया करता था।[1]

उन्नाव जेल में उनका गीता-प्रवचन विख्यात था।[2] सन् १९४३ में, केन्द्रीय कारागार, बरेली में कवि के साथ, राजर्षि टण्डन, रफी अहमद किदवई, स्वर्गीय रणजीत सीताराम पण्डित, डॉ० सम्पूर्णानन्द, गंगाधर गणेश जोग, डॉ० मुरारीलाल, डॉ० जवाहर लाल आदि एक ही बैरक में रहते थे।[3] यहाँ कवि ने सन्त-कवियों का विशेष अध्ययन किया जिसका उसके काव्य पर गहन प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार 'नवीन' जी की कविताओं में उल्लिखित कारागृहों के नाम एवं तिथियों के आधार पर, निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है—

(१) केन्द्रीय कारागार, बनारस—दिसम्बर, १९२१ ई०।

(२) जिला कारागार, लखनऊ—जनवरी से दिसम्बर, सन् १९२२ ई०।

(३) जिला कारागृह, कानपुर—जनवरी, १९२३ ई० और नवम्बर, १९३० ई०।

(४) जिला जेल, गाजीपुर—जनवरी तथा दिसम्बर, १९३० ई० और जनवरी-मार्च, १९३१ ई०।

(५) जिला कारागृह, फैजाबाद—सितम्बर-नवम्बर, सन् १९३२ ई० और अगस्त १९३३ ई०।

(६) जिला कारागृह, अलीगढ़—जनवरी तथा फरवरी, १९३४ ई०।

(७) केन्द्रीय-कारागृह, नैनी—जुलाई-अक्तूबर, १९४१ ई०।

(८) जिला कारागृह, उन्नाव—सितम्बर-दिसम्बर, सन् १९४२ तथा जनवरी-अप्रैल, १९४३ ई०।

(९) केन्द्रीय कारागार, बरेली—जनवरी, १९३३ ई०; अप्रैल, १९३९; मई-दिसम्बर, १९४३ ई०; जनवरी-दिसम्बर, १९४४ ई० और जनवरी-फरवरी, १९४५ ई०।

'नवीन' जी के राष्ट्रोपासक रूप की वन्दना इन पंक्तियों में निहित है—

'गौरव स्वदेश का बढ़ता हो चला गया, राष्ट्र-हित राष्ट्रगीत गाता ही चला गया,
काव्य का 'नवीन' था प्रवीन राजनीति का, अन्त तक फर्ज वो निभाता ही चला गया।[1]

---

१. श्री रामशरण विद्यार्थी—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', मेरे जेल के साथी, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ २९।

२. श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित—दैनिक 'प्रताप', श्रद्धांजलि-अंक, ५ मई, १९६०, पृष्ठ ३।

३. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ६।

इस प्रकार 'नवीन' जी के जीवन का मुख्य अंश, जो कि तारुण्य व उमंगों से परिपूरित था; कारागृह की चहारदीवारियों में कटा। यहाँ उन्होंने अध्ययन व मनन किया जो कि उनके काव्य के विकास में अतीव उपादेय प्रमाणित हुआ। जेल-जीवन की यातनाओं को सहते हुए भी, उन्होंने अपने को कभी भी राष्ट्रीय कृत्यों से निराश नहीं बनने दिया। यहाँ उन्होंने चिन्तन को परिपक्व बनाया, तन-मन को स्वस्थ किया और अपनी योजनाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। अन्य राष्ट्रीय नेताओं व कवियों के सदृश, 'नवीन' जी ने भी अपने कारावास के समय को व्यर्थ विनष्ट नहीं किया।

प्रौढ़-काल

'नवीन' जी जैसे ही वीर सपूतों के बलिदानों, शहीदों की आत्माहुति व विश्ववन्द्य 'वापू' के पवित्र मार्ग-दर्शन के फलस्वरूप भारत को उसकी चिर-अभीप्सित स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् वे देश की संविधान परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए। वे संविधान-परिषद् के गृह-मन्त्रालय सम्बन्धी समिति,[२] सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय की समिति[३] और रेलवे की वित्त समिति[४] के सदस्य रहे। इसी परिषद् के सदस्य काल में भारत की ओर से भेजे गये सांस्कृतिक शिष्ट-मण्डल के सदस्य के रूप में उन्होंने इङ्गलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देश-देशान्तरों का परिभ्रमण किया। एक दूसरे शिष्ट-मण्डल के सदस्य बनाकर उन्हें चीन भेजा जा रहा था, परन्तु उसे उन्होंने कुछ कारणों से अस्वीकार कर दिया।[५]

भावुक व्यक्ति होने के कारण, वे कानपुर की राजनीति से काफी दुखी रहते थे। कानपुर के राजनैतिक जीवन में, स्पष्ट रूप से, 'नवीन' जी नितान्त असफल रहे।[६] श्री पन्नालाल त्रिपाठी ने लिखा है कि जहाँ तक उनकी योग्यता का सम्बन्ध था, उत्तरप्रदेश में राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में उनके समान दूसरा न था, किन्तु प्रान्त की पार्टी-बन्दी ने उन्हें एम० पी० बनाकर दिल्ली भेज दिया ताकि वह यहाँ की सरकार में कोई बड़ा पद न सम्हाल लें।[७] भारत के प्रथम गणतन्त्रीय कांग्रेस मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री श्री नेहरू

---

१. श्री कुन्जबिहारी बाजपेयी—'तस्वीर तुम्हारी हूँ', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', के प्रति, पृष्ठ ८७।

२. 'Constituent Assembly Debates : official Report.' Vol. 1., No. 8., 26th November, 1947, Page 704.

३. वही Vol. III., No. 1., 11th December, 1947, page 1703.

४. वही, Vol. 1., No. 4, 20th November, 1947, page 351.

५. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३९।

६. श्री परिपूर्णानन्द वर्मा—'वीणा', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५००।

७. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १७।

ने उन्हें उप-मन्त्री बनने को आमन्त्रित किया था; परन्तु 'नवीन' जी ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।[1] उन्हें संसार के भौतिकता प्रिय मानवों ने असफल दुनियादार[2] कहा।

सन् १६५२ में वे कानपुर से भारतीय लोक-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। सन् १६५७ में वे पक्षाघात से पीड़ित हो चुके थे इसलिए उन्हें इस द्वितीय निर्वाचन के अवसर परलोक सभा की अपेक्षा राज्य सभा का सदस्य चुना गया था। इसका कार्यकाल समाप्त होने पर, सन् १६६० में अपनी मृत्यु के एक मास पूर्व वे पुनः राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित किये गये थे। लोक-सभा में 'नवीन' जी ने कई बार भाषण दिये और अपने मत-वैमत्य अभिव्यक्त किये। राज्य-सभा में उन्होंने प्रायः भाषण नहीं दिये।[3] वे अक्सर कहा करते थे कि 'मेम्बरी के वजीफे से दिन काटने' में मजा नहीं आता।[4] वस्तुतः 'नवीन' जी अपने दिल्ली अधिवास काल में, जीवन व संसार के प्रति निराशा अधिक अभिव्यक्त करने लगे थे। वर्तमान सरकारी कार्य-कलापों व भारत की स्थिति से भी उन्हें सन्तोष नहीं होता था। उन्होंने अपने दिनांक ८-१०-५६ के पत्र में लिखा था कि भारत के लिए बेकारी अभिशाप है। पता नहीं सरकार शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन क्यों नहीं करती। अफ़सोस है अंग्रेज गये परन्तु हमें मानसिक ग़ुलाम बनाकर छोड़ गये। आज का भारत दासता का भारत है। यहाँ के लोगों की जिन्दगी करने के लिए नहीं खाने के लिए है; फिर भी खाना नहीं मिलता। चारों तरफ अकर्मण्यता का साम्राज्य है, काहिली का बोलबाला है। काम करना कोई नहीं चाहता, मौज उड़ाना सभी चाहते हैं।[5] निराशा व अवसाद की मात्रा वृद्धावस्था तथा रुग्णता के साथ बढ़ती ही चली गई, जिसका प्रभाव हमें उनके उत्तरकालीन काव्य के दार्शनिक रूप में देखने को मिलता है। 'नवीन' जी ने लिखा था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जैसे हमारे तुरंग की वल्गा ढीली हो गई है जैसे वह, ऊँची, गगनचुम्बी शिखर की ओर चढ़ते-चढ़ते सहसा मुड़कर पतन की खाईं की ओर दौड़ लगाने-वाली है।[6] प्लेटो के मतानुसार, उत्कृष्ट कोटि के कवि

---

१. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५२१।

२. 'दैनिक नवजीवन', (१२-११-१६५१)।

३. "I am directed to say that the Late Shri Balkrishna Sharma 'Navin' during the period of his membership of the Rajya-Sabha, did not deliver any speech on the floor of the House'—Shri M. A. Amladi, under Secretary, Rajya Sabha Secretariate, New Delhi. का मुझे लिखित (दिनांक २२-११-१६६०, पत्रांक आर० एस०।८—ई० ओ० डी०। ५६-६० का) पत्र।

४. दैनिक 'नव जीवन', (१२-११-१६५१)।

५. श्री रामनारायण सिंह 'मधुर',—'साप्ताहिक आज', नवीन जी के दो पत्र, २६ मई, १६६०, पृष्ठ १०।

६. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—साप्ताहिक 'विन्ध्य-वाणी', वर्ष १, संख्या २७, ११ अप्रैल, १६४६, 'हम किधर जा रहे हैं', पृष्ठ ३।

कला से नहीं, प्रत्युत् प्रेरणा से काव्य-निर्माण करते हैं।[1] यह कथन 'नवीन' जी पर पूर्णतः चरितार्थ होता है।

गार्हस्थिक पक्ष—'नवीन' जी का विवाह मई सन् १९१६ में, अपनी किशोरावस्था में ही हो गया था। उनकी शादी शुजालपुर के श्री रामपाल महाराज की पुत्री के साथ हुई थी।[2]

द्विरागमन के पूर्व ही हैजे के उनकी बाल-पत्नी का देहान्त मायके में ही हो गया। बहुत समय तक उन्होंने फिर विवाह नहीं किया।[3] यद्यपि वे विधुर थे; फिर भी एक प्रकार से उन्हें अविवाहित ही माना जा सकता है। उन्होंने जीवन का एक लम्बा पथ एकाकी ही व्यतीत किया। इसीलिए, उनके काव्य में तद्विषयक भावनाएँ उमड़ पड़ी हैं।[4]

फैजाबाद जेल में सन् १९३२ में जब श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'नवीन' जी से कहा था कि आप कविता लिखने वाली लड़की चाहेंगे। इस पर 'नवीन' जी ने बहुत ठण्डी और दर्द भरी लम्बी साँस लेकर उत्तर दिया था—"निरन्तर, कविताएँ लिखने को तो मैं ही काफी हूँ, वह ऐसी हो कि मुझसे कविताएँ लिखा सके।" कानपुर में ही एक लड़की से कभी उनका प्रेम हुआ था। दोनों ने विवाह करके देश-सेवा करने का संकल्प किया था, पर लड़की के पिता ने लड़की को सुख के सब्ज बाग दिखाकर एक धनी युवक से विवाह करने को राजी कर लिया था। सुनकर 'नवीन' जी उससे मिले और वायदों की याद दिलाई तो उसने कहा—"तुम तो रोज जेल काटते फिरोगे, मैं क्या घर बैठीं भाड़ झोकूँगी।" और 'नवीन' जी उल्टे पैर वहाँ से लौट आये।[5]

कवि को अपने मन का साथी आजन्म प्राप्त नहीं हुआ। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि "जीवन का भोग पक्ष उनका सूनापन जगा देता था, अपने दारुण अभाव को वे हास्य से मनोरंजक बना देते थे। वर्षों पहिले (स्वतन्त्रता के पहिले) दिल्ली में जब वे एक मित्र के यहाँ ठहरे हुए थे; तब हँसी-हँसी में उन्होंने मुझसे कहा—'केशव केसनि अस करी'।"[6] 'नवीन' जी ने अपने ४६ वें वर्षान्त के दिन लिखा था—

> वय-शृंखल में आज पड़ चुकी छियालीस ये कड़ियाँ,
> छियालीस तप-ऋतुएँ बीतीं छियालीस ही झड़ियाँ,

---

१. "All good poets compose their beautiful poems not by art, but because they are inspired (Plato)"—Selected Passages by R. W. Livingstone, page. 186.

२. श्री दुर्गाशंकर दुबे, शाजापुर का मुझे लिखित (दिनांक २०-८-१९६२ का) पत्र।

३. श्री वेंकटेश नारायण तिवारी—'नवनीत' नवीन जी, अक्तूबर १९६०, पृष्ठ ६५।

४. 'अपलक', मग में, पृष्ठ ४१।

५. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ६।

६. 'कल्पना', हुतात्मा, सितम्बर, १९६०, पृष्ठ २८।

किन्तु शून्यवत् ही बीती है मेरी जीवन-घड़ियां;
अब तो तुम निज अंक, शून्य के वाम भाग में, धर दो !
प्रियतम ! आज एक यह वर दो ।[१]

देशभक्त और राष्ट्र-योद्धा 'नवीन' जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक देश स्वतन्त्र न होगा तब तक मैं शादी नहीं करूंगा —भारत को गुलाम सन्तान की भेंट नहीं दूंगा ।[७] उन्होंने इस प्रतिज्ञा का निर्वाह किया ।

श्री रुद्रनारायण शुक्ल ने लिखा है कि चिर युवक सदा बहारी कवि की 'अनिकेतनता' के चारों ओर अपने रागांचल का आवरण डालते हुए सन् ४६ की ७ जुलाई को सरला जी 'नवीन' के जीवन में आईं । सरला जी के सम्बन्ध में क्या कहूँ ? उनके सौन्दर्य और सुरुचि की प्रशंसा तो चिर कुमारी पद्मजा नायडू (स्व० श्रीमती सरोजिनी नायडू की पुत्री) तक करती हैं, मगर हम तो उनके अन्नपूर्णा रूप के ही कायल हैं । विवाह के बाद इतना अलबत्ता हुआ कि पिछले दिनों में नवीन जी ने अपेक्षाकृत कम कविताएँ लिखी हैं ।[२]

इस विवाह का निमन्त्रण-पत्र अनूठा था । उसमें स्पष्ट लिखा था कि आने का कष्ट न करें, केवल आशीर्वाद भेज दें ।[३] विवाह के सूत्र-विकास का लेखन अप्रासंगिक नहीं होगा । 'नवीन' जी दिवंगत महात्मा गान्धी की अस्थियों का विसर्जन करने के लिए प्रयाग गये । सैनिक ट्रक पर अस्थि-कलश था व उसी में प्रधानमन्त्री श्री नेहरू भी बैठे थे । अपार भीड़ थी । जुलूस संगम की ओर बढ़ा चला जा रहा था । भीड़ के रेले को एक सुकुमार युवती सहने में असमर्थ थी । 'नवीन' जी ने उसे अपनी 'आजानु बाहु' का सहारा दे, ट्रक पर चढ़ा लिया और वहीं एक स्थान दे दिया । संगम पर 'नवीन' जी से परिचित हो, उस युवती ने कुछ दिन पश्चात् मर्म को स्पर्श करने वाला एक धन्यवाद का पत्र उन्हें दिल्ली लिखा । 'नवीन' जी ने उसे सीदा साधा पत्रोत्तर-दिया । उस युवती के दो-तीन भावमय पत्र आये । कुछ दिन के पश्चात् वह युवती अपने पिता के साथ नई दिल्ली आ पहुँची । पिताजी प्रोफ़ेसर थे और युवती एम० ए० । पिता ने विवाह का प्रस्ताव रक्खा । शादी सम्पन्न हो गई । 'नवीन' जी ने श्री 'प्रभाकर' से कहा था कि "तुम जानते हो, अपनी जिन्दगी तो औघड़-आवारा रही है; अब इन साध्वी पत्नी के पुण्य से शायद वह तर जाए ।"[४]

उनके कथन के 'शायद' का शङ्का-भाव सिद्ध हुआ । उनका दाम्पत्य जीवन सफल नहीं हुआ ।[५] उन्होंने ११ सितम्बर, सन् १६५५ को बम्बई से दिल्ली आते समय अपनी एक अन्तिम कविता में लिखा था--

---

१. 'अपलक', पृष्ठ १६ ।

२. श्री हरिभाऊ उपाध्याय —'जीवन साहित्य', सम्पादकीय, नवीन जी आ गये क्या, जीवन में से नवीनता चली गई, मई, १६६०, पृष्ठ १६५ ।

३. दैनिक 'नवजीवन'; (३०-११-१६५१) ।

४. 'साप्ताहिक आज', २६ मई, १६६०, पृष्ठ ६ ।

५. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १६६०, पृष्ठ १२ ।

६. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ४० ।

क्या मिला ? नहीं कुछ भी तो मिला यहाँ मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खो बैठे,
क्या ही विचित्र लीला है किसी खिलाड़ी की—
हम एक भले थे, किन्तु व्यर्थ दो हो बैठे।[1]

'नवीन' जी की एक मात्र पुत्री रश्मिरेखा है जो अभी छात्रा हैं और संगीत व नृत्य का अभ्यास भी करती हैं।

परिणत स्थिति तथा प्रभाव—'नवीन' जी सद्गृहस्थ नहीं बन सके। श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि "आप घूमते-घूमते गृहस्थी के दायरे में आ तो गये थे; लेकिन गृहस्थी कभी आपको बाँध नहीं सकी।"[2] १६४८ से १६६०—कुल बारह वर्ष। यह बारह वर्ष का काल ही 'नवीन' के लिए वास्तविक संघर्ष का काल रहा है। इन बारह वर्षों में एक महान् सेनानी क्रमशः टूट रहा था। भयानक कुण्ठाएँ उनके जीवन में भर गई थी।[3] उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में लड़खड़ाती जबान से कहा था—'मेरा कोई नहीं।' इन तीन शब्दों में उनके दुःखान्त जीवन की एक स्पष्ट झलक दीख पड़ती थी।[4] 'नवीन' जी ने अपने काव्य-जीवन के प्रारम्भिक काल में एक कविता में जो लिखा था, वह बाद से चरितार्थ हो गया—

नटवर ! यह वियोग का अभिनय बन्द करो है चित अशान्ति,
क्या मेरे जीवन-नाटक का अन्तिमांक होगा दुःखान्त ?[5]

कवि ने अपनी परिणत स्थिति को निम्न वाणी प्रदान की है—

मैंने तोड़ा जो फुल्ल कुसुम तो क्या देखा ?
उसके अन्तर में एक भयंकर तक्षक है।
मैंने सोचा—मैंने कब ऋषि अपमान किया ?
जो मुझको मिला परीक्षित—जीवन-भक्षक है।
मैं कितना हूँ सर्वाभिभूत कुछ मत पूछो,
मैं लहराता ही रहता हूँ प्रत्येक घड़ी;
ओ तक्षक मुझसे लपटे बैठा है ऐसे,
जैसे मैं हूँ चन्दन की कोई एक छड़ी।[6]

कवि की परिणत स्थिति एवं मनोदशा का प्रभाव उसके काव्य पर सहज ही देखा व आँका जा सकता है।

'बीत चली बासन्ती-बेला जीवन की'—

---

१. वही, पृष्ठ २३।

२. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १६६०, पृष्ठ ५।

३. श्री भगवतीचरण वर्मा—'कादम्बिनी', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्रवेशांक, पृष्ठ २०।

४. 'संस्कृति', जून-जुलाई, १६६०, पृष्ठ २२।

५. 'सरस्वती', विरहाकुल, दिसम्बर, १६१८, पृष्ठ ३०२।

६. 'रामराज्य', यों शूल-युक्त, यों अहि-आलिंगित है जीवन मेरा, १५ अगस्त, १६६०, पृष्ठ ३।

'नवीन' जी की वृद्धावस्था रुग्णता तथा निराशा में व्यतीत हुई। सन् १९५०-५१ में उन पर एक बार हृदय-रोग का आक्रमण हो चुका था। परन्तु उनका वास्तविक रोग-काल सन् १९५५ के आस-पास से प्रारम्भ होता है। इस समय से उन्हें साँस लेने में कष्ट होने लगा था और कानों के पास धध-धध सी कोई आवाज सुनाई पड़ती थी।

सन् १९५६ में उन्हें ऐसा लगने लगा था कि कोई प्रचण्ड रोग उनके घात में बैठा है। उन्होंने खाने-पीने में काफी संयम तथा रसना-निग्रह प्रारम्भ कर दिया था। इसी वर्ष उन्हें पक्षाघात का भयानक आक्रमण हुआ और वे महीनों नई दिल्ली के विलिंगडन चिकित्सालय में पड़े रहे। इस प्रकार वे दो वर्षों तक काफी रुग्ण रहे। सन् १९५८ में पुनः संसद् के केन्द्रीय भवन में पक्षाघात का द्वितीय आक्रमण हुआ। उन्हें पुन: चिकित्सालय भिजवाया गया और थोड़े स्वस्थ होने पर वे घर वापस आ गये। वर्षान्त में उनकी तबियत फिर अधिक बिगड़ गई और उन्हें चिकित्सालय में ले जाया गया।[1] श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि छप्पन से लेकर साठ ईस्वी तक रोगों से वह डटकर लड़े थे और इंच-इंच पर उन्होंने संग्राम किया था।[2]

अन्तिम समय में कवि की वाणी के साथ ही साथ उनकी स्मृति भी चली गई थी। उन्हें यह भाव नहीं रहता था कि कौन सी कविता उनकी है? उनकी खीझ, कुण्ठा, निराशा व असमर्थता बढ़ती चली गई। कवि ने अपनी अन्तिम कविता में वासन्ती-वेला के चले जाने के विषय में लिखा है।[3]

कवि की पढ़ने-लिखने की शक्ति भी चली गई थी। वह किसी का भी नाम नहीं लिख पाता था परन्तु उनके सुनने और समझने की शक्ति में कोई अन्तर नहीं आ पाया था। अन्त समय में उन्हें अध्यात्म चर्चा और हरिसंगत बहुत प्रिय लगता था। श्री व्यास ने लिखा है कि लम्बी बीमारी ने उनके शरीर को झकझोर दिया है। उनके पृथुल स्कन्ध झुक गए हैं, उनका पुष्ट वक्षस्थल धँस गया है, उनका भरा हुआ चेहरा सूख आया है और उनके लहराते हुए श्वेत केशों ने अपनी स्निग्धता छोड़ दी है। लेकिन उनकी आत्मा का तेज आज भी अक्षत है, जो रह-रहकर उनके चेहरे पर झलक मारता रहता है। वाणी गई तो जाये, लेकिन अनुभूति आज भी कार्य कर रही है। दीन-हीन अभी भी उनके पास पहुँचते हैं। आज भी वह उनकी करुणा से द्रवित होते हैं। चित्रकूट में बसे रहीम की तरह आज भी उनके संदेश श्रीमन्तों, सरकारी अफसरों और समर्थ व्यक्तियों तक पहुँचते रहते हैं। वह कह न सकें, सुनते सब हैं, समझते सब कुछ हैं।[4] रोगों व उलझनों ने शरीर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। वे नवीन से प्राचीन होने लगे थे।[5]

---

१ 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ९-१०।

२. वही, पृष्ठ १०।

३. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', नवीन जी की सात कविताएँ, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ २३।

४. श्री गोपालप्रसाद व्यास—'दैनिक हिन्दुस्तान', तन मन के संघर्ष में लीन—पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', (१८-७-१९५८)।

५. 'अपलक', पृष्ठ ३७।

आर्थिक दृष्टि से कवि के ये तीन-चार वर्ष बहुत बुरी तरह व्यतीत हुए।[१] निराशा व अवसाद की मात्रा में अधिकाधिक वृद्धि होने लगी। अपने जीवन के अन्तिम वर्षं में, अभिव्यक्ति के अभाव में, आवेश की मात्रा उनमें और भी बढ़ गई थी।[२] अपने दुःख और मानसिक पक्ष को उन्होंने श्री 'मधुर' को लिखित अपने दिनांक १२-४-५६ के पत्र द्वारा अभिव्यक्त किया है—"इधर मेरी क्या मानसिक, क्या शारीरिक दोनों की हालत अच्छी नहीं। लगता है जैसे मैं अधिक दिन तक साँसों का मुर्दा नहीं ढो पाऊँगा। जीना भी नहीं चाहता। इस जिन्दगी में मैंने जो-जो दुख झेले हैं, वे ही क्या कम हैं। इस छल और कपट की दुनिया में रहकर क्या करूँगा ? तुम सोचते होगे दिल्ली हिन्दुस्तान की राजधानी है तो यहाँ के लोग सुखी होंगे, सम्पन्न होंगे परन्तु यहाँ भी तबाही है, भुखमरी है, बेकारी है। रुपये का नंगा नाच हो रहा है, उत्थान की योजनाएँ बनायी जा रही हैं; फिर भी लगता है कि महात्मा जी के रामराज्य का सपना अधूरा ही रह जायगा।"[३] कवि के जीवन-चरण थकने लगे थे। उसका उत्साह मन्द पड़ चुका था, आशा लुप्त हो गई थी।[४]

अपने रुग्ण-काल में कवि ने रुद्राक्ष की माला पहनना शुरू कर दिया। नाम-जाप व मन्त्र-जाप करने लगे और 'ॐ नमः शिवाय' का पाठ करने लगे।[५] वे अक्सर 'हे राम !' और 'श्रीकृष्णचरणमस्तु' कहा करते थे। उनकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वैदिक, सभी ढंग से चिकित्सा की गई। शिरड़ी के साईं बाबा, कानपुर के एक सन्त और काली माता के चित्र उन्होंने घर पर लगवा लिये थे। महामत्युंजय और अथर्ववेद के मन्त्रों का जाप भी करवाया गया। श्री अलगूराय शास्त्री ने अथर्ववेद के मन्त्र का पाठ करने को कहा था सो वे स्वत: किया करते थे। धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उनकी बड़ी आस्था थी।[६]

डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि अनेक भीषण रोगों ने मिलकर उन पर प्रहार किए—हृद्रोग, रक्तचाप, पक्षाघात, अर्श और अन्त में कदाचित् फेफड़े का कैन्सर।[७] २६ दिसम्बर, १६५६ ई० को कवि को नई दिल्ली के विलिंगडन अस्पताल में भर्ती किया गया। मरण-सन्देश चार मास पश्चात् ही आ गया।

कैसा मरण-सन्देश आया—कवि का मन डोलने लगा। डॉक्टरों और मित्रों के स्वास्थ्य सुधार के आश्वासनों से भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्हें विदित हो गया कि जीवन की अन्तिम घड़ी आ गई है। वे स्वयं यमराज के शीघ्र आह्वान के लिए उत्सुक हो गये। मृत्यु का गायक कवि अब मृत्यु को अपने आलिंगन-पाश में आबद्ध करने के लिए उद्यत हो पड़ा। उनके

---

१. पं० रामशरण शर्मा—'ब्रजभारती', स्वर्गीय दादा 'नवीन' जी, पृष्ठ २२।

२. 'आजकल', मार्च, १६६१, पृष्ठ ६।

३. 'साप्ताहिक आज', २६ मई, १६६०, पृष्ठ १०।

४. 'ब्रजभारती', एक अप्रकाशित कविता—'जीवन डगरियाँ' पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', स्मृति-अंक, पृष्ठ ८।

५. श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी द्वारा ज्ञात।

६. श्री अशोक बाजपेयी द्वारा ज्ञात।

७. डॉ० नगेन्द्र के 'श्रेष्ठ निवन्ध', पृष्ठ १५२।

मुख व गात पर शोथ के लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे। किसी से भी कुछ कहने की इच्छा कवि की नहीं रह गई। उनके पास जो उस समय शब्द थे वे थे, 'बस सब हो गया'।[१] मृत्यु के दो दिन पूर्व खाना-पीना बन्द कर दिया। साँस और आहारों के लिए ट्यूबों का आश्रय था। सिर्फ धौंकनी मात्र ही चल रही थी।[२] २९ अप्रैल, सन् १९६० के अपराह्न तीन बजे कवि के चक्षु मुँद गये। कवि मरण-सन्देश सुन चुका था।

'डोला लिए चलो तुम झटपट'—उसी दिन रात्रि की आठ बजे की विशिष्ट गाड़ी से भोग और शोक की अपनी नगरी दिल्ली से कवि का शव अपनी कर्मभूमि कानपुर ले जाया गया। ३० अप्रैल, १९६० को प्रातः सवा-छः बजे कानपुर शव पहुँचा। कर्मठ कवि की कर्ममयी नगरी में कवि की निष्क्रिय देह पहुँची और मध्याह्न १२॥ बजे वह अग्नि-लपटों के अङ्क में चिर-काल के लिए विलीन हो गई। कवि का डोला 'सजन-भवन' पहुँच गया। 'हम अनिकेतन' का मस्ताना गायक कवि, आजीवन अनिकेतन ही रहा।[३]

पद और सम्मान—राजनैतिक व सामाजिक सेवाओं की दृष्टि से कवि के लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य होने के अतिरिक्त, 'नवीन' जी अनेक पदों पर अपने जीवन के उत्तरकाल में आसीन रह चुके हैं।

सन् १९५५ में श्री बालगंगाधर खेर की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने 'हिन्दी आयोग' की स्थापना की। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों के साथ 'नवीन' जी भी इस आयोग के सदस्य बनाये गये जिसके कारण हिन्दी के पक्ष को काफ़ी बल प्राप्त हुआ।

राजभाषा आयोग जब बम्बई गया; तब सन् १९५६ में उसकी एक बैठक में डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या आदि ने हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने पर राष्ट्रीय एकता में व्याघात पहुँचने की बात कही। इस पर 'नवीन' जी वनराज के सदृश्य दहाड़ उठे थे—

If Hindi ever tried to come in the way of our national unity, would burry it five fathoms deep.[४]

श्री नेने ने इसी विषय के एक संस्मरण में लिखा है कि "उनका राष्ट्र-प्रेम और स्वभाषा-प्रेम केवल साहित्य तक सीमित नहीं था। अपने आदर्श को प्रत्यक्ष जीवन के आचार-व्यवहार में लाने का प्रामाणिक यत्न करने वालों में से वे एक थे और इस काम में बड़े दक्ष रहते थे। होटलों में हम सब लोग एक ही साथ नाश्ता करते थे। दोपहर का और रात का भोजन भी साथ किया करते थे। होटल के नौकरों के अंग्रेजी नामों को हमने इतना अपना लिया है कि सब

---

१. श्री रामनारायण अग्रवाल, 'ब्रजभारती', बीमारी की वे रातें, स्मृति-अंक, पृष्ठ ३६।

२. श्री जगदीश गोयल—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', जीता-जागता पौरुष या साँसो की धौंकनी, १५ मई १९६०, पृष्ठ ४।

३. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ १२९।

४. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' से हुई कलकत्ता में प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १८-६-१९६१) में ज्ञात।

कोई उन्हें 'बैरा', 'बॉय' नाम से ही पुकारते और जानते हैं। इन सफेद कपड़े पहने हुए नौकरों को किसी दूसरे नाम से नहीं पुकारा जाता। लेकिन 'नवीन' जी को अंग्रेजी नाम से पुकारना बड़ा खटकता था। उनकी दृष्टि में अपनी भाषा का शब्द आवश्यक था। इसलिए वे कई बार 'अरे लड़के', 'ये लड़के' कहकर पुकारते। लेकिन लड़के से उन्हें सन्तोष नहीं होता क्योंकि उनके सामने जो आदमी आता वह 'लड़का' ही होता था। 'बैरा' के लिये उन्हें सार्थक शब्द नहीं सूझा था जिससे काम बनता। इसलिए वे लाचार होकर 'लड़के के साथ 'बैरा' भी जोड़ देते। ऐसे प्रसंग पर विवशता की जो मानसिक झिझक उनके चेहरे पर दिखाई पड़ती उसे मैं भूल नहीं सकता। सौम्य झिझक के साथ लड़कों को पुकारनेवाले की ओर होटल में बैठे हुए लोगों का ध्यान अवश्य खिंच जाता और वे सोचते कि राजभाषा आयोग में एक व्यक्ति ऐसा है जो हिन्दी का सच्चा, जोरदार और व्यावहारिक हिमायती है।"[१]

लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम अय्यंगर ने राज्यसभा के सभापति डॉ० राधाकृष्णन की सहमति से संसदीय विविध और प्रशासकीय शब्दों के लिए हिन्दी पर्याय निश्चित करने के उद्देश्य से संसद् सदस्यों की एक संयुक्त समिति ५ मई, १९५६ को नियुक्त की। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को इस तदर्थ समिति का सभापति बनाया गया। इस समिति के तैंतीस सदस्यों में पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी भी एक थे।[२] अस्वस्थ होने के कारण यद्यपि नवीन जी इस समिति की अधिक कार्यवाहियों में तो भाग नहीं ले सके, फिर भी समिति की कुल ११३ बैठकों में से १२ बैठकों में सम्मिलित हुए।[३]

इन्दौर में कवि के पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास के सभापतित्व में मालवा साहित्य परिषद् की ओर से अभिनन्दन का आयोजन हुआ था।[४] अपनी रुग्णावस्था में कवि को गणतन्त्र भारत के राष्ट्रपति महोदय ने, 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था। इस उपाधि का प्रमाण-पत्र और स्वर्ण-पदक कवि को अपनी मृत्यु के सिर्फ तीन दिन पूर्व (२६ अप्रैल, १९६० ई०) ही प्राप्त हुए थे।[५]

इसी प्रकार कवि के देहावसान के चार मास पूर्व, उनकी ६३वीं वर्षगाँठ पर, ८ दिसम्बर, १९५९ ई० को दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उनका जन्मोत्सव तथा अभिनन्दन समारोह मनाया गया। श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अभिनन्दन-पत्र पढ़ा व सादर समर्पित किया। 'दिनकर' ने लिखा है कि "अभिनन्दन-पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरे भीतर यह भाव

---

१. श्री गो० प्र० नेने—'राष्ट्रवाणी', स्व० नवीन जी, कुछ संस्मरण, जून १९६०। जिनकी याद कभी पुरानी नहीं पड़ सकती, स्मृति-अंक, पृष्ठ ५०५।

२. 'राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ', हिन्दी विधिक शब्दावली और टण्डन जी, श्री राजेन्द्र द्विवेदी, पृष्ठ १२२।

३. हिन्दी विधिक शब्दावली निर्मात्री समिति के सचिव श्री राजेन्द्र द्विवेदी का मुझे लिखित (दिनांक २-५-१९६१ का) पत्र।

४. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९२-४९३।

५. 'साहित्य', सम्पादकीय, श्रद्धांजलियाँ, आचार्य शिवपूजन सहाय, अप्रैल, १९६०, पृष्ठ ८।

जगा, हो न हो, देवता की आज यह अन्तिम पूजा है, अब और पूजा लेने को वह नहीं टिकेगा।"[१] उस अभिनन्दन-पत्र में कवि, योद्धा और मनीषी का एकत्र स्तवन था। तत्कालीन अवरुद्ध भावुकता फूट गई और सब की आँखें छलछला गईं। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "हिन्दी के साहित्यिक जीवन में यह एक अपूर्व घटना थी कि हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य की तीन विकास-रेखाएँ मानो एक भावबिन्दु पर आकर अनायास ही मिल गई थीं।"[२] रुग्णावस्था के कारण कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति सिर्फ 'हे राम' शब्द से कर रहा था।

इस समारोह में सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, सेठ गोविन्ददास, डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन', डॉ० नगेन्द्र, सहेल अजीमा वादी, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी एवं केन्द्रीय मन्त्री श्री राजबहादुर आदि ने भाग लिया।[3] समारोह में गुप्तजी ने अपना पद्यात्मक आशीर्वचन दिया था—

भला तुम्हारा प्रेम मधु, हो जितना प्राचीन।
रहो क्षेम से तात तुम, निज में नित्य नवीन।[४]

श्री उदयशंकर भट्ट ने भी कहा था—

हे अमर भारती के सुपुत्र, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन',
तुम जन-उपवन के मेघदूत, तुम जीवन के गायक प्रवीण।
तुम स्वयं अहं के दीप्त भाल, पर दुःख द्रवित घृत कष्टभार,
तुम अपनी चिन्ता से विरक्त, तुम सरस्वती-सुत कण्ठहार।[५]

कानपुर में भी कवि का यह जन्म-दिवस 'कानपुर लेखक संघ'[६] ने सोल्लास मनाया था। कवि का यह अन्तिम सम्मान था।

सम्बन्ध-वृत

(क) संस्थाओं से सम्बन्ध—शर्मा जी का हिन्दी की अनेकानेक संस्थाओं से आजन्म सम्बन्ध बना रहा। हिन्दी के वे महान् प्रेमी तथा प्रहरी थे और हिन्दी की उन्होंने जो सेवाएँ कीं; उनका अपना एक पृथक् इतिहास है। वे हिन्दी की अपूर्व निधि थे।

---

१. श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', जिजीविषा के चार वर्ष, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १०।

२. डॉ० नगेन्द्र—'आजकल', दादा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मार्च, १९६१, पृष्ठ ८-९।

३. दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्यसम्मेलन, वार्षिक-विवरण, सन् १९५९-६०, पृष्ठ ४।

४. दैनिक 'हिन्दुस्तान', निज में नित्य 'नवीन' (१०-१२-१९५९)।

५. वही, शुभकामना।

६. दैनिक 'जागरण' (११-१२-१९५९)।

श्री श्रीनारायण चुतर्वेदी ने लिखा है कि "हमें यह सोचकर दुख होता है कि जब हिन्दी-संसार की ओर से उन्हें सम्मानित करने का समय आया तब कुछ भले आदमियों की कृपा से साहित्य सम्मेलन समाप्त-प्राय हो गया। न हिन्दी-संसार उन्हें साहित्य सम्मेलन का सभापति बना पाया और न 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से ही उन्हें सम्मानित कर सका।"[1] फिर भी 'नवीन' जी के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ पुराने सम्बन्ध रहे हैं। गोरखपुर सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने घासलेटी-साहित्य विरोधी प्रस्ताव का विरोध किया था। यहाँ उनकी भाषण-शक्ति का अद्भुत रूप देखने को मिला था।[2] इन्दौर मध्यभारत साहित्य समिति की मुख-पत्रिका 'वीणा' में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उदयपुर अधिवेशन के लिये, सभापतित्व को, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम पेश किया गया था। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने उनके पक्ष में एक अपील निकाली थी।[3] बँटवारे के पहले कराची हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ, उसमें सभापति पद के लिए 'नवीन' जी भी एक उम्मीदवार थे। परन्तु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के सहयोग के कारण श्री वियोगी हरि निर्वाचित हुए।[4] भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन मेरठ में हुआ था। सम्मेलन की विषय-समिति में 'नवीन' जी ने यह प्रस्ताव रखा था कि भारत भर के समस्त विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम और उच्च न्यायालयों के काम-काज की भाषा अविलम्ब हिन्दी होनी चाहिए। प्रस्ताव तूफानी उत्साह और हर्ष के वातावरण में पारित हो गया। इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। टण्डन जी और राहुल जी आदि चिन्तित हो गये। अतएव, यह प्रस्ताव पुनः विचार के लिए प्रस्तुत किया गया और यह अनुरोध हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों तक ही सीमित कर दिया गया। 'नवीन' जी चुप रहे क्योंकि उनका हृदय तो पुराने प्रस्ताव के साथ संलग्न था।[5]

'नवीन' जी उत्तरप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के काशी, बस्ती व फरूंखाबाद अधिवेशन के अध्यक्ष रहे।[6] वे दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अध्यक्ष रह चुके हैं।[7]

ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के 'नवीन' जी प्राण रहे। आकाशवाणी से ब्रजभाषा का कार्यक्रम आरम्भ कराने का प्रयत्न भी उन्हीं के द्वारा, उनके सभापतित्व काल में, सम्पन्न हुआ था। वे ही उस 'शिष्ट मण्डल' के नेता थे, जिनके अनुरोध से आकाशवाणी पर ब्रजभाषा को

---

१. 'सरस्वती', सम्पादकीय, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का स्वर्गवास, मई, १९६०, पृष्ठ ३०४।

२. 'रेखा-चित्र', पृष्ठ २०७-२०८।

३. 'आगामी कल', मई, १९४४, पृष्ठ ६।

४. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ ११।

५. वही, पृष्ठ १६।

६. वही, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ४०।

७. 'राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ', दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृष्ठ ७१७।

स्थान मिला है।[१] ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा आयोजित श्रीकृष्णजन्म-महोत्सव,[२] सूर जयन्ती[३] आदि महोत्सवों में वे सम्मिलित हुए और भाषण दिये। ब्रज साहित्य मण्डल के कलकत्ता, हाथरस और मेरठ के अधिवेशनों में वे रीति-नीति के प्रमुख कर्णधारों में से रहे। सं० २००६ में आयोजित ब्रज साहित्य मण्डल के सहारनपुर के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता 'नवीन' जी ने ही की थी। इस समय का उनका अध्यक्षीय भाषण हिन्दी भाषा, लिपि व अंकों के सम्बन्ध में उनके निजी विचारों का आगार है।[४] इस सम्मेलन के स्थगित हो जाने की पूर्वरूप से घोषणा की जा चुकी थी[५] परन्तु 'नवीन' जी ने अपने विश्वासी हृदय व मिलनसारिता के कारण, सम्मेलन को अक्षुण्ण किया व उसमें प्राणों का संचार किया। यहाँ पर प्रेम व क्रोध, रस व मस्ती का सागर लहराने लगा था। हास्य और प्रफुल्लता का संचार, उनके ही कारण, इस अधिवेशन में हो सका।

मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'नवीन' जी के बड़े घनिष्ठ व पुराने सम्बन्ध रहे हैं। वे इस सम्मेलन के सन् १९३०-३१ दिसम्बर, १९५२ और जनवरी, १९५३ के सभापति रह चुके हैं। इन सम्मेलनों में अध्यक्ष-पद से दिये गये उनके भाषणों का वैचारिक व साहित्यिक दृष्टि से काफी मूल्य है। हिन्दी की वर्तमान समीक्षा-पद्धतियों और विचार-धाराओं पर उनके निजी दृष्टिकोण, इन्हीं वक्तव्यों में, अन्तर्निहित हैं। उन्होंने यह सुझाया था कि "सभी बन्धु यह जानते हैं कि हमारी साहित्यालोचन प्रणाली में इधर कुछ ऐसी धाराएँ बह निकली हैं जिनके कारण नये साहित्यिक और पुराने भी बड़ी गड़बड़ी में पड़ गये हैं। एक प्रकार का बुद्धिभ्रम फैलता जा रहा है। साहित्य सम्मेलनों का, हमारे देश की साहित्यिक संस्थाओं का, यह कर्त्तव्य है कि वे इस पर विचार करें और साहित्यकारों तथा आलोचकों को दिशा सुझाने का प्रयत्न करें।"[६] 'नवीन' जी श्री मध्यभारत हिन्दीसाहित्य समिति के उपाध्यक्ष रह चुके हैं।[७]

वंगीय हिन्दी परिषद् कलकत्ता के साथ शर्मा जी का सम्बन्ध उसके जन्म के ही साथ

---

१. 'ब्रजभारती', स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री नवीन स्मृति-अंक, फाल्गुन सं० २०१६-१७; पृष्ठ ४।

२. 'ब्रजभारती', भाद्र सं० २०१० वि०, पृष्ठ ४२।

३. वही, चैत्र-भाद्रपद सं० २००६, पृष्ठ ११।

४. 'ब्रजभारती', ब्रज साहित्य मण्डल के सहारनपुर अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण का मुख्य अंश, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आश्विन-फाल्गुन, सं० २००६, पृष्ठ २-९।

५. 'ब्रजभारती', सहारनपुर सम्मेलन अधिवेशन स्थगित, आश्विन-फाल्गुन सं० २००५, पृष्ठ ४६।

६. डॉ० रामविलास शर्मा 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं', साहित्य और यथार्थ, पृष्ठ ६५।

७. 'वीणा', जून, १९६०, पृष्ठ ४०६।

रहा है। वे परिषद् के स्थायी सदस्य थे।[१] गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति[२] और अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति[3] के साथ भी 'नवीन' जी अपने स्नेहिल सम्बन्ध बनाये रहे। वे अक्सर इनके अधिवेशनों में जाया-आया करते थे।। 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' में उनकी काफी अभिरुचि थी। सन् १९५२ में आयोजित हाथरस की अन्तरजनपदीय परिषद् में वे सम्मिलित हुए थे। इस परिषद् के वे प्रधानमन्त्री चुने गये थे और परिषद् की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'जनपद' के सम्पादक-मण्डल में भी उनका नाम रहा।

शर्मा जी का बहुमुखी जीवन होने के कारण, उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त भी, कई संस्थाओं से उनके मृदुल सम्बन्ध रहे हैं।

'नवीन' जी सन् १९५७ से १९६० ई० तक संसदीय हिन्दी परिषद् के उपाध्यक्ष रहे। वे सन् १९५४ से १९६० ई० तक इसकी कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी रहे।[४] 'परिषद्' की त्रैमासिक पत्रिका के वे सं० २०१४ से २०१८ वि० तक सम्पादक भी रहे।[५] जोधपुर के मासिक पत्र 'मतवाला' में, वे श्री गुलाबराय, श्री श्रीनारायण चुतर्वेदी आदि के साथ 'मतवाला मण्डल' के सदस्य भी रहे।[६] 'नवीन' जी 'कविताएँ : १९५४' नामक काव्य-संकलन के श्री गिरिजाकुमार माथुर के साथ परामर्शदाता रहे।[७] 'नवीन' जी 'मुन्शी अभिनन्दन ग्रन्थ' के श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री बलवन्त भट्ट और श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के साथ सम्पादक-मण्डल के सदस्य रहे।[८] इसी प्रकार 'सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादक-मण्डल में प्रो० गुलाबराय, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और डॉ० नगेन्द्र के साथ, वे भी एक सदस्य थे।[९]

'नवीन' जी नई दिल्ली के 'सरस्वती समाज' एवं बाद में, फरवरी, सन् १९५६ से लेकर जून, १९५८ तक 'गान्धर्व महाविद्यालय', नई दिल्ली के अध्यक्ष रहे। महाविद्यालय के भवन के लिये प्रशासन द्वारा जो भूमि प्राप्त हुई; उसका वास्तविक श्रेय उन्हें ही है। संस्था के

---

१. 'जनभारती', पद्मभूषण नवीन जी, अंक १, वर्ष ८, सं० २०१७, पृष्ठ ३५।

२. राष्ट्रवीणा', सम्पादक की कलम से, स्व० नवीन जी, जुलाई १९६०, पृष्ठ २०९।

३. राष्ट्रभारती', सम्पादकीय, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३४३।

४. संसद् सदस्य श्री मन्नूलाल द्विवेदी, नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २९-५-१९६१) में ज्ञात।

५. वही।

६. 'मतवाला', सन् १९५१-५२।

७. 'कविताएं : १९५४', साहित्य निकेतन, कानपुर, सन् १९५५।

८. 'मुन्शी अभिनन्दन ग्रन्थ', मुन्शी अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, नई दिल्ली, सन् १९५०।

९. 'सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ', सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समारोह, नई दिल्ली, ८ दिसम्बर, १९५६।

लिए उन्होंने जो कुछ किया, उसका पूर्णतया वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है।[1] सन् १९५१ में, 'नवीन' जी मध्यभारत पत्रकार परिषद् के अध्यक्ष हुए।[2]

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त, कवि का राजनैतिक संस्थाओं में, कांग्रेस से आजीवन सम्बन्ध रहा। शर्मा जी कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे। उनकी मृत्यु पर कांग्रेस ने भी हार्दिक शोक प्रकट किया था।[3]

(ख) व्यक्तियों से सम्बन्ध—'नवीन' जी की मृत्यु ६३ वर्ष की अवस्था में हुई थी। सन् १९६१ को लखनऊ कांग्रेस से उनका सक्रिय जीवन का समारम्भ होता है। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होने के तदुपरान्त उनके जीवन का एक निश्चित विधान बन गया था जिस पर वे सन् १९४७ तक चलते रहे। इसके पश्चात् उनका जीवन दिल्ली के राजनैतिक व साहित्यिक कार्यकलापों तथा देश के अन्य भागों से इसी प्रकार के सम्बन्ध-निर्वाह में व्यतीत हुआ। उन्होंने कितने ही कवि-सम्मेलनों की अध्यक्षता की; सभा-गोष्ठियों में भाग लिया; सहस्राधिक बार भाषण दिये। इन सब व्यापक सामाजिक व राजनैतिक कृत्यों के कारण उनका सम्बन्ध-वृत काफी व्यापक व विस्तृत था। भारत के राष्ट्रपति व प्रधानमन्त्री से लेकर सामान्य श्रमिक व कृषक से उनकी पहिचान व स्नेहिल सम्बन्ध थे। सन् १९१६ से लेकर १९६१ ई० तक के अत्यन्त सक्रिय व उदात्त जीवन के ४५ वर्षों में उनका सामाजिक सूत्र सारे देश से संलग्न हो गया। वे पैदा हुए मध्यभारत में, कार्य किये उत्तरप्रदेश में और मरण का वरण दिल्ली में किया। उनके मित्र यदि आसाम में हैं तो केरल में भी हैं। इस प्रकार इस विशाल और महान् परिवृत्त को आवेष्टित किये शर्माजी का जीवन, गुजरात के सदृश्य डील-डौल वाला दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जो कहा है 'उपजहि अनत अनत छवि लहहीं'—वह 'नवीन' जी के विस्तीर्ण जीवन के कर्म-व्याप्ति पर, पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है।

इस अथाह सम्बन्ध-वृत में से कुछ विशिष्ट सम्बन्धों का यहाँ विवरण देना उचित होगा जिनके सूत्र कवि के जीवन के सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक और धार्मिक पक्षों के अम्बार में बिखरे पड़े हैं। इनमें से अनेकों ने कवि-जीवन को बनाया है, मोड़ा है अथवा स्वत: प्रेरणा प्राप्त की है। इन सूत्रों से हमें कवि के मानसिक व चारित्रिक विकास को समझने में भी बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

कुछ प्रधान व महत्वपूर्ण सम्बन्ध सूत्रों का विश्लेषण अधोलिखित रूप में देखा जा सकता है।

---

१. महाविद्यालय के प्राचार्य श्री विनयचन्द्र मौद्गल्य का मुझे लिखित (दिनांक १९-१२-६१ का) पत्र।

२. 'विक्रम', फरवरी, १९५१, पृष्ठ १२।

३. संसदीय कांग्रेस दल, दिल्ली, वार्षिक प्रतिवेदन, सन् १९६०-६१, पृष्ठ १।

पारिवारिक सम्बन्ध—कवि-माता—कवि-माता श्रीमती राधाबाई ही कवि-जीवन की, 'नवीन'-विवाह पूर्व की, एक मात्र सम्बल थी। माता ने बड़े कष्ट सहकर अपने 'बालकृष्ण' को 'चिर नवीन' बनाया।[१] बालकृष्ण को 'कवि' व 'संगीत प्रेमी' बनाने का प्रारम्भिक श्रेय उन्हीं को ही है। बालकृष्ण शर्मा के जीवन के उषःकालीन क्षितिज का सर्वप्रथम प्रेरणाकारी और निर्माता रूप, उनकी माता का है, जिससे यह मार्तण्ड प्रकट हुआ। मीरा, नारायण स्वामी, भगवन रसिक, सूर आदि के भजन सुनाकर उन्होंने कवि के स्वर में संगीत व माधुर्य का आसव अपने दूध में मिला दिया था।[२]

'नवीन' जी की माता अत्यन्त स्नेहमयी, पतिव्रता, पवित्र आचरण वाली एवं धर्मनिष्ठ महिला थीं। वे छूत-छात का बहुत अधिक विचार करती थीं। शाजापुर आने पर, वे 'नवीन' जी को गो-मूत्र छिड़ककर, पवित्र करके, फिर चरण-स्पर्श करने देती थीं। वे रसोई को देखने भी नहीं देती थीं।[३] वे नल का पानी नहीं पीती थीं।[४] वे पादुका-ग्रहण नहीं करती थीं।[५] जब वे एक बार कानपुर गईं; तो रेलवे-स्टेशन पर गणेश जी आदि उनको लेने के लिये आये और उनका जुलूस बनाकर, बड़ी शान से, उन्हें प्रताप प्रेस ले गये।[६] वहाँ पर उनके लिए बालकृष्ण कुएँ का जल स्वतः लाते थे।[७]

बालकृष्ण अपने पिताजी को 'काका' और माता को 'जीजी' कहते थे।[८] माता-पिता दोनों उन्हें एकबार सन् १९२१ में, लखनऊ जेल में देखने गये थे। श्री श्रीनिवास गुप्त ने लिखा है—"मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि सन् १९२१ में भैया लखनऊ जिला जेल में राजबन्दी थे और मैं उनके पूज्य पिताजी और माता जी को साथ लेकर लखनऊ जिला जेल, उनसे मिलने गया। शर्मा जी के माता-पिता अनन्य वल्लभ सम्प्रदाय के एकनिष्ठ वैष्णव थे।

---

१. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' सम्पादकीय, स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', वर्ष ६५, अंक १, सं० २०१७, पृष्ठ ९१।

२. 'क्वासि' कविता उन्होंने हमें सन् १९३८ या ३९ में उरई कवि सम्मेलन के बाद एकान्त में सुनायी थी। तब तक हम यह नहीं जानते थे कि वे वैष्णव परिवार के हैं। उसे सुनकर हमने उनसे कहा—'नवीन' जी, आप तो बिल्कुल वैष्णव की तरह बोल रहे हैं। यह सिवाय वैष्णव के कौन कह सकता है? अवश्य ही आप हृदय से वैष्णव हैं। तब उन्होंने हमें बतलाया था कि "वे वैष्णव परिवार में उत्पन्न हुए थे, और बालकपन में उनकी माँ उन्हें सूर, मीरा, नारायण स्वामी, भगवान रसिक आदि के पद सुनाया करती थीं।"—श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, 'सरस्वती', नवीन जी की कविताएँ, जून, १९६०, पृष्ठ ३९५।

३. डॉ० श्रीकान्त गुप्त द्वारा ज्ञात।

४. श्री देवव्रत शास्त्री द्वारा ज्ञात।

५. श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा ज्ञात।

६. श्री प्रभागचन्द्र शर्मा द्वारा ज्ञात।

७. श्री जमनादास झालानी द्वारा ज्ञात।

८. श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७९।

पिता-माता इस सोच-विचार में व्याकुल थे कि मेरा बाल बन्दीकच्छ में भ्रष्ट हो गया होगा, किन्तु जब भैया बालकृष्ण को खद्दर का मचला लगाये, द्वादस तिलक सारबुटी धोती फहराते हुए, गले में तुलसी की माला पहने हुए, खड़ाऊओं पर चले आ रहे हैं, उनके माता-पिता ने देखा तो मेरा बाबू आस्तिक है, पूर्ण वैष्णव है, उनके प्रेमाश्रु झरने लगे। शर्मा जी बन्दीगृह के द्वार से आकर एक कैम्प में आ मिले। माता-पिता को साष्टांग कर बोले—"काका पाँव ढोक।" माता-पिता ने उन्हें हृदय से लगा लिया। पिताजी ने कहा, "बेटा धर्म और बालकृष्ण को हृदय में सदा रखिये।" शर्मा जी ने बड़ी विनम्रता से निवेदन किया—"काका तुम्हारे चरणों की कृपा से धर्म निर्वाह होगा।" अपने माता-पिता की भावनाओं और भारतीय संस्कृति की मर्यादा का ध्यान कैसे रखा जाता है, शर्मा जी उसके प्रतीक थे।[1]

कवि-माता को गुजराती भाषा के 'वल्लभाख्यान' और हिन्दी के 'भ्रमरगीत' रासपंचाध्यायी आदि कंठस्थ थे। पहले तो वे शाजापुर में किराये के मकान में रहीं; परन्तु बाद में धीरे-धीरे पैसा जोड़कर एक मकान बनवा लिया था। 'नवीन' जी भी कभी-कभी उनको पैसा भेजते थे जिसका वे अत्यन्त मितव्ययिता के साथ उपयोग करती थीं। वे अपने मकान को शाजापुर के वैष्णव मन्दिर को दान कर गईं। वे श्री दामोदरदास झालानी के यहाँ पर ही अक्सर रहती थीं।

उनकी मृत्यु की गाथा, श्री दामोदरदास झालानी के शब्दों में इस प्रकार है—'ता० २७ दिसम्बर, १९४७ को उन्होंने सायंकाल भगवान के दर्शन किये और रात्रि ८-९ बजे तक कथा-सत्संग आदि का लाभ लेकर घर पर आकर सो गईं। प्रातःकाल छः-सात बजे भगवान के दर्शन को वे नहीं आईं, तब लोगों ने जाकर इनको पुकारा परन्तु घर के किवाड़ तो दोनों तरफ से बन्द थे और अन्दर से 'माँ' ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब लोगों ने आकर मुझे खबर दी ; मैं तुरन्त वहाँ पहुँचा। बाहर से माँ को पुकारा परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में मिस्त्री को बुलवाकर और किवाड़ का कुन्दा तुड़वाकर अन्दर जाकर देखा तो 'माँ' एक कम्बल पर शयन कर रही थीं। मुख शान्त व हास्यमय था व हाथ में भगवन्नामस्मरण की माला थी। श्वास-नाड़ी बन्द थी। पहले तो माता का वियोग सहन नहीं होने से मुझे अत्यन्त दुःख हुआ—क्या करूँ ? कैसे करूँ ? कुछ भी समझ नहीं पड़ रहा था परन्तु अन्त में कर्त्तव्य का स्मरण करके चि० बालकृष्ण को उसी समय तार से खबर दी। परन्तु बालकृष्ण बहुत दूर था।"[2] माताजी का दाह-संस्कार श्री दामोदरदास झालानी के पुत्र ने किया।[3]

कवि पर पिता की अपेक्षा माता का अधिक प्रभाव था। पिता का देहान्त सन् १९२३-२४ में, ६०-७० वर्ष की अवस्था में हुआ था।[4] 'नवीन' जी ने, श्री दामोदरदास झालानी को लिखे अपने एक पत्र में अपनी माता जी के विषय में लिखा है कि "मेरे जीवन में जो

---

१. श्री श्रीनिवास गुप्त—'दैनिक 'प्रताप', भैया बालकृष्ण, ६ मई, १९६०, पृष्ठ ३।
२. श्री दामोदरदास झालानी का मुझे लिखित (दिनांक २६-६-१९६१ का) पत्र।
३. श्री दामोदरदास झालानी द्वारा ज्ञात।
४. वही।

कुछ भी यत्किंचित्, सुष्ठु, मधुर, सत् एवं शिव का अंश है; वह सब जीजी का वरदान है।''[१]

कवि-पत्नी—कवि की वर्तमान विधवा-पत्नी श्रीमती सरला शर्मा का सम्बन्ध सन् १९४९ से हुआ। विवाह-पूर्व कवि ने उनके प्रणयाकुल हृदय से यह प्रश्न किया था—''मैं तुम्हारी पिता की उम्र का हूँ—अपने भविष्य की दृष्टि से इस पर तो विचार करो!'' 'नवीन' जी के कवि-हृदय को यह उत्तर सुनकर विह्वलता प्राप्त हो गई थी—''क्या आपको विश्वास नहीं है कि यदि कोई दुर्घटना हो जाए, तो मैं एक हिन्दू-विधवा की तरह अपना शेष जीवन व्यतीत कर सकती हूँ।''[२] प्रयाग के संगम पर यह प्रेम-संगम हुआ था। 'नवीन' जी की धारा सरस्वती के समान सूख गई।

श्रीमती सरला देवी शर्मा एक प्रोफ़ेसर की आत्मजा हैं और एम० ए० हैं। सम्प्रति वे नई दिल्ली में रहती हैं।

झालानी परिवार—कवि का शाजापुर के झालानी परिवार के साथ बड़े पुराने व घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। सेठ भगवानदास जी झालानी कवि-पिता के पुरातन मित्र हैं। इन्हीं के तीन पुत्र—सर्व श्री जमनादास झालानी, दामोदरदास झालानी और गोपालदास झालानी कवि के प्रारम्भिक जीवन के अनन्य रहे हैं। श्री दामोदरदास झालानी की विशेष कृपा रही। इन्होंने कवि को पढ़ाया-लिखाया।[३] सम्प्रति श्री जमनादास झालानी उज्जैन में हैं ही, और श्री दामोदरदास झालानी एवं गोपालदास झालानी इन्दौर में हैं। जमनादास जी एवं दामोदरदास जी कवि के अध्यापक भी रह चुके हैं। कवि ने दामोदरदास जी के विषय में लिखा था कि ''श्रीयुत दामोदरदास जी हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ तथा ब्रजभाषा के पूर्ण पण्डित हैं।''[४] कवि के समूचे परिवार को यहीं पर ही प्रश्रय मिला था। 'नवीन' जी इस परिवार के प्रति आजीवन ऋणी एवं श्रद्धालु बने रहे। झालानी परिवार के ज्येष्ठ व्यक्तियों का कवि ने सदा चरणस्पर्श किया और छोटों को शुभाशीष दिया।

विद्यार्थी-परिवार—'नवीन' जी के गणेश जी और उनके कुटुम्ब के साथ पारिवारिक सम्बन्ध थे। गणेश जी ने ही बालकृष्ण को पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के रूप का कवच पहनाया। 'नवीन' जी ने उनके विषय में लिखा है कि ''मुझे पन्द्रह वर्षों तक श्रद्धेय गणेश शंकर जी विद्यार्थी के चरणों में बैठने का, उनके नेतृत्व में काम करने का, उनकी प्रेरणा से कारागार की ओर अग्रसर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे उनके सदृश दूसरा आदमी आज तक देखने को नहीं मिला। मैं इस बात पर गर्व करता हूँ कि मैं नर-पारखी हूँ। एक निगाह में लोगों को तौल लेता हूँ। गणेश जी-सा नरवर मैंने आज तक नहीं देखा।''[५] गणेश जी से हुई प्रथम भेंट का कवि ने बड़ा रोचक वर्णन दिया है।

---

१. 'नवीन' जी का नई दिल्ली से (दिनांक ४-१-१९४८ का) श्री दामोदरदास झालानी को लिखित अप्रकाशित पत्र।

२. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १२।

३. 'साहित्यकारों की आत्मकथा', पृष्ठ ८५-८६।

४. 'प्रभा', सम्पादकीय टिप्पणियाँ, अप्रैल, १९२४, पृष्ठ ३३३।

५. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १११।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने सर्वप्रथम उन्हें १६१६ ई० की लखनऊ कांग्रेस में मिलाया। कवि ने गणेश जी की यह कल्पना की थी कि वे छः-साढ़े-छः फुट ऊँचे जवान होंगे, विशाल साफा बाँधते होंगे, हाथ में एक भारी लठ रखते होंगे। मूँछें महाराणाप्रताप की तरह ऐंठी हुई होंगी। परन्तु जब उन्हें देखा तो वे निकले निहायत ही मझोले या ठिगने कद के दुबले-पतले युवक। गणेश जी ने शर्मा जी को दस रुपये दिये ताकि वे कांग्रेस का टिकट खरीद सकें। शर्मा जी ने फिर खूब कांग्रेस देखी। गणेश जी को बाद में जानकर दुःख हुआ कि शर्मा जी बिना कम्बल के ही ठण्डी रातों में सिकुड़ते रहे। प्रथम भेंट में ही गणेश जी के प्यार व ममत्व ने शर्मा जी के हृदय को पराभूत कर लिया था।[1] जब दूसरी बार सन् १६१७ में सदा के लिए शर्मा जी कानपुर गये तो गणेश जी कार्य-व्यस्त तथा दृष्टि-दोष के कारण ध्यान न दे सके। इस पर शर्मा जी को बुरा लगा। परन्तु बाद में जब गणेश जी ने पहिचाना तो छाती से चिपका लिया और फिर सन् १६३१ ई० तक वे उनके हृदय से दूर नहीं हुए। उन्होंने शर्मा जी को नेता, लेखक, पत्रकार, अगुआ, रहनुमा सब कुछ बना दिया। 'नवीन' जी ने 'प्राणार्पण', लिखकर अपने गुरु को भावभीनी अमर-श्रद्धांजलि अर्पित की। शर्मा जी आजीवन गणेश जी के लक्ष्मण बने रहे। गणेश जी की मृत्यु के पश्चात् और अपनी शादी के बाद भी, शर्मा जी ने विद्यार्थी-परिवार के प्रति अपनी समस्त श्रद्धा व सहयोगिता उड़ेली। आग की लपटों को अपने चर्ममय भौतिक करों से बुझाकर, उन्होंने उस परिवार के प्रति अपने आस्था व भक्ति की मौन-गाथा कह दी है।

अपना 'रश्मिरेखा' काव्य संग्रह कवि ने अपने परमप्रिय श्री हरिशंकर विद्यार्थी को समर्पित किया है और लिखा है कि "यह मेरा एक गीत संग्रह है। यह तुम्हें समर्पित है। तुम्हारा मेरा आत्मिक सम्बन्ध है। उसके लिए मैं क्या कहूँ? तुमसे पराजित होने की इच्छा है और वह सदा रहेगी भी। गद्य-लेखन में तुमसे पराजित होकर मैं धन्य हुआ।"[2] विद्यार्थी-परिवार के अन्य सदस्यों पर कवि का मृत्यु-पर्यन्त प्रेम बना रहा।

मित्र मण्डली—कवि ने अपनी 'आत्म-कथा' में अपने मित्रों व सहपाठियों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अन्य सूत्रों से भी इस सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त होता है। उनका विश्लेषण दो वर्गों में सहज ही किया जा सकता है :—

बाल-मण्डली—शाजापुर शिक्षा-काल में कवि के मित्रों में **दामू दादा, रामजी बलवन्त शितूत, गोविन्द त्र्यम्बक** दान्ते आदि थे।[3] इनकी बाल-क्रीड़ाओं से कवि को चिर-नवीनता व उत्फुल्लता प्राप्त हुई।

उज्जैन के अध्ययन-काल में कवि के प्रिय अनन्य मित्र 'सन्तू' व 'छोटे' रहे हैं।[4] उनकी पुण्य-स्मृति ने शर्मा जी को वेदना प्रदान की और हृदय को प्रारम्भ से दयार्द्र बना दिया। कवि ने इनको अपनी सृजनात्मक श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

---

१. 'चिन्तन' पृष्ठ ११०-१११।

२. 'रश्मिरेखा', समर्पण।

३. 'साहित्यकारों की आत्मकथा', पृष्ठ ८५-८६।

४. वही, पृष्ठ ६१-६२।

तरुण-मण्डली—अपने कानपुर प्रवास व स्थायी निवास के प्रारम्भ में कवि के अनेक मित्र व सहाध्यायी रहे। कालेज-जीवन के मित्रों में शर्मा जी ने श्री उमाशंकर दीक्षित को बड़े स्नेह से स्मरण किया है। दीक्षित जी व श्री चन्द्रभाल जौहरी ने सन् १९३० व ३२ में बम्बई में राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन किया। 'नवीन' ने उनके विषय में लिखा है कि "मेरी जिन्दगी की सबसे बेहतरीन प्राप्तियों में उमाशंकर का स्थान बहुत ऊँचा है। वह मेरे लिए सब कुछ हैं। वह मेरे मित्र हैं, सखा हैं, पथ-प्रदर्शक हैं और मेरे निज का बेहतरीन रूप हैं।"[१]

'नवीन' जी के कालेज-जीवन के अन्य सहपाठियों, मित्रों व स्नेहियों में श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र[२], श्री सद्गुरुशरण अवस्थी[३], श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी[४], श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'[५] आदि हैं। श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र—'नवीन' जी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और अपने को 'थ्री मस्केटियर्स' मानते थे।[६]

(ग) शैक्षणिक-सामाजिक-राजनैतिक सम्बन्ध—विद्या-गुरु—कवि पर उसके विद्या-गुरु प्रोफ़ेसर आर्मड व प्रिंसिपल डगलस का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।[७] इन्हीं गुरुदेवों से उसने निष्ठा, कर्त्तव्य-भावना व अनुशासन वृत्ति का पाठ ग्रहण किया जो कि उस के जीवन की त्रिवेणी है। इन दोनों गुरुओं के विषय में 'नवीन' जी ने लिखा है—

"I can, even at this distance, greatfully recall the figures of two great, good teachers who gave us what we had not. Malis Stuart Doughlas and Edwin Warring Ormerod, the two men of is coin and a postatic fervour, men of real sympathy and deep understanding are unforgetable : To sit at their feet and to try to learn from them was a priviledge. Doughlas was our Principal and teacher of English. Ormerod was our isce-Principal and taught us Ancient History and Philosophy. I cherish their memory with devotion xxx In our formative years Doughals and Ormerod gave us much that was necessary to make men of us. Forth righness, courage, devotion to duty

---

१. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ ११२।
२. 'सरस्वती', जुलाई, १९६०, पृष्ठ २८।
३. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७९।
४. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३७।
५. साप्ताहिक 'आज', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९।
६. 'सरस्वती', जुलाई १९६०, पृष्ठ २८।
७. 'आत्मकथा', पृष्ठ १११।

and upright conduct emanated from them as light from a lanys. We felt the glow. We are greatful to them."[१]

'नवीन' जी के विद्यार्थी-काल का एक संस्मरण है। दर्शन के आचार्य आर्मेंड छात्रावास के अधीक्षक थे। एक बार उन्होंने यह नियम बनाया कि जो विद्यार्थी रात में सोते समय विजली जलती छोड़ देगा, उसे पाँच रुपये का दण्ड दिया जायेगा। एक दिन, रात में 'नवीन' जी ने आर्मेंड के गृह में बिजली जलती देखी सो वे उसी समय घर में गये और स्वयं उनकी गलती पकड़ ली और स्पष्टतापूर्वक बता भी दिया।[२] यह उनकी निर्भीकता का दृष्टान्त है। डगलस गहन-चिन्तनशील व्यक्ति थे और 'नवीन' का दार्शनिक रूप बहुत कुछ उन्हीं का ही प्रदेय है।

आचार्य डगलस अच्छे खिलाड़ी थे। वे सभ्य और सुसंस्कृत थे।[३] वे विनोदी स्वभाव के भी थे। बालकृष्ण शर्मा के हस्ताक्षर खराब होने के कारण, वे अक्सर इस बात पर डाँटा करते थे।[४] 'नवीन' जी अपने प्राचार्य के विषय में लिखते हैं—"A hefty Sportsman, a shrewed administrator, a man of broad sympathy, and deep under standing with a mischievour twinkle in his benign eyes, Doughlas took us by storm. Meticulous in his choice of synonyms. Doughlas would send a thrill through us while explaining Bacon or Shakespeare or Milton or other Masters. xxxx His fund of humour of was really astoandingly limit less."[५]

प्राचार्य डगलस ने भी बालकृष्ण के विषय में लिखा था —

"B. K.—Asdent, ready of speech, skilled in debate, was already showing promise that would had to exalted, place".[६]

कानपुर-मण्डली—कानपुर के पूजनीय महाशय काशीनाथ जी का कवि पर गहरा प्रभाव पड़ा। गणेश जी भी उन्हें बहुत मानते थे। 'नवीन' जी ने लिखा है कि "महाशय काशीनाथ ने उन दिनों जिस तरह मेरे मस्तिष्क को परिपक्व करने में सहायता दी, वह

१. Christ Church College, Kanpur Diamond jublee Magazine 1952, Shri Balkrishna Sharma 'Navin, And I also ran' P. 83.

२. श्री उमाशंकर दीक्षित, नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २२-५-१९६१) में ज्ञात।

३. श्री भगवतीचरण वर्मा द्वारा ज्ञात।

४. श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी द्वारा ज्ञात।

५. Christ Church College, Kanpur Diamond Jublee Magazine, 1952, Page 85.

६. Christ Church College Magazine, 1957-58, Rev. M. S. Doughlas, 'As it was then', page 3.

आजीवन कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करने की वस्तु है।"[१] इनके अतिरिक्त श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा[२], श्री शिवनारायण मिश्र, श्री देवव्रत शास्त्री, श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, डॉ० मुरारीलाल, डॉ० जवाहरलाल रोहतगी आदि से भी 'नवीन' जी के अच्छे सम्बन्ध रहे।

महात्मा गान्धी—गान्धी जी का शर्मा जी पर काफी स्नेह था। 'नवीन' जी अपने आपको 'गान्धी जी का गधा' कहा करते थे।[३] गान्धी जी ने कवि के काव्य और जीवन को बड़ा प्रभावित किया है। अपने वैयक्तिक जीवन में शर्मा जी ने कभी-कभी अपनी प्रकृति व सिद्धान्त के अनुसार गान्धी जी का विरोध किया था, परन्तु उनकी श्रद्धा में कभी भी लेश-मात्र कमी नहीं आई। वास्तव में वे गान्धी जी के मजनूँ थे। गान्धी जी का प्रभावांकन करते हुए 'नवीन' जी ने लिखा है कि "हमारे साहित्य पर, हमारे काव्य, उपन्यास, कथा-साहित्य पर, हमारे निबन्ध एवं आलोचना-साहित्य पर, गान्धी के महामहिम व्यक्तित्व की, उनकी प्रचण्ड कर्मठता की, उनके सनातन किन्तु नित नव सिद्धान्तों की अमिट छाप पड़ी है।"[४] गान्धीवादी के सरस उद्घोषक 'नवीन' जी ने ठीक ही लिखा था कि घोड़ा पतन की खाई की ओर दौड़ा जा रहा है। गान्धी सन्देश दे गया "हे राम ! ? हम क्या समझे ? कदाचित् कुछ न समझे। पर, समझना है। गान्धी की पुकार को समझना है और स्मरण रहे—देश के प्रत्येक जन को समाज के प्रत्येक अंग को, पूँजीपति को, श्रमजीवी को, कृषक को, उन्मूलित प्रायः जमींदारों को, समाज सेवक को, राजनीतिज्ञ को, सबको गान्धी का यह सन्देश हृदयंगम करना है।"[५] कानपुर की एक सभा में गान्धी जी बोल रहे थे और माइक में गड़बड़ी आ गई। इस पर शर्मा जी के गले से माइक कार्य सम्पन्न किया गया।[६] हिन्दी के विषय में गान्धी जी के पथ का अनुगमन 'नवीन' जी ने नहीं किया।

नेहरू-परिवार—'नवीन' जी के श्री जवाहरलाल नेहरू और उनके परिवार से पुराने व घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। वे मोतीलाल नेहरू से भी बहुत परिचित थे।[७] 'नवीन' जी ने तत्कालीन भयावह राष्ट्रीय परिस्थितियों में पं० मोतीलाल नेहरू का मूल्यांकन करते हुए लिखा था "कि देशव्यापी हलचल, विकट अशान्ति, मार्ग की विस्मृति पीड़ा के वेदनामय कोड़े, समय-समय पर झंझा-वायु के झकोरे, आततायी की पैशाचिक क्रीड़ायें, रायफल की गोलियाँ और मैग्सिमगन का धुँआ, ये बातें और ये समय ऐसे होते हैं जो किसी न किसी अज्ञात हाथ को, कुचले हुए दुखी और द्रवित को सहारा और धीरज देने, उनके बहते हुए रक्त को रोकने और

---

१. 'आत्म-कथा', पृष्ठ ११२।

२. 'श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ', सन् १९५०। श्री बालकृष्ण शर्मा, पूजनीय अरोड़ा जी, पृष्ठ ४-५।

३. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३८१।

४. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन',—'साहित्य समीक्षाञ्जलि', भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है, पृष्ठ १८५।

५. वही, साप्ताहिक 'विंध्यवाणी', हम किधर जा रहे हैं ? पृष्ठ ३।

६. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', पृष्ठ ३५।

७. 'प्रहरी', १९ अक्तूबर, १९६२, पृष्ठ ८।

उनके व्यथित भाग पर शान्ति लेप लगाने के लिए आगे बढ़ाते हैं। यदि ऐसा न होता, तो निराशा, दुबले जनों को निराधार होकर नष्ट ही हो जाने का सन्देश देती; और स्वेच्छाचारी यही समझते कि जो कुचले जा सकें वे उनके द्वारा कुचले जाने ही के लिए रचे गये हैं। पंजाब में नीचता तथा रक्त की पिपासा ने न्याय और शान्ति की स्थापना का आनुषंगिक रूप धारण करके भीषण ताण्डव नृत्य किया।"[१] कहते हैं कि एक बार श्रीयुत महावीर त्यागी के साथ अन्याय होने पर उन्होंने आनन्द-भवन में पं० जवाहरलाल नेहरू को कड़ी बातें सुना दी थी और जवाहरलाल जी की माता, स्वरूपरानी नेहरू की आज्ञा पर पं० बालकृष्ण जी का गुस्सा शान्त हुआ था।[२] जयपुर कांग्रेस में और पार्लियामेण्ट में भी नेहरू जी से टकराने में 'नवीन' जी ने कोई संकोच नहीं किया।[३] फिर भी नेहरू जी शर्मा जी को बहुत चाहते थे। एक बार शर्मा जी सदन में कुछ ऐसी बातें कह गये जिनसे पक्ष का अनुशासन भंग हुआ समझा गया। दण्ड देने के प्रश्न पर विचार किया गया। दण्ड न देने से अनुशासन नहीं रहता। एक ने कहा कि यह बालकृष्ण जीवन भर हमारे लिए जूझता रहा है। अन्तिम निर्णय नेहरू जी पर छोड़ा गया। उन्होंने कहा—"बालकृष्ण को दण्ड देना ऐसा लगता है जैसे अपने आपको दण्ड देना।"उन्हें चेतावनी भर दे दी गयी।[४] नेहरू जी ने अपनी 'आत्मकथा' में शर्मा जी का उल्लेख किया है और विगत ४० वर्षों से एक-दूसरे को सहयोग प्रदान किया है। हिन्दी के प्रश्न पर 'नवीन' जी ने अपने उत्कट हिन्दी-प्रेम के कारण, नेहरू जी को अप्रसन्न कर दिया था।[५] कहते हैं, संविधान-परिषद् के समय पार्टी की एक सभा में उन्होंने प्रधानमन्त्री को यह कर निस्तब्ध कर दिया था कि 'ब्राह्मण, होकर आप यह कहते हैं कि उर्दू आप पर लादी नहीं गयी, वह आपकी मातृभाषा है? उर्दू आपके भी पूर्वजों पर लादी ही गयी थी।"[६] इन सब तथ्यों के होते हुए भी, स्वयं कवि के शब्दों में, "जवाहर से मुझे अत्यधिक प्रेम है। आप देख रहे हैं—यह स्त्री (उनकी पत्नी) कितनी सुन्दर है, पर यदि मौका आए तो वे (मैं) जवाहरलाल के लिए अपनी सुन्दर पत्नी को भी गोली मार सकते हैं।"[७] नेहरू जी ने उन्हें अपने 'छोटे भाई' तथा 'जोशीले' व्यक्ति के रूप में स्मरण किया है।[८]

कवि का सन् १९२१ में लखनऊ जेल में नेहरू जी का साथ रहा। वे नेहरू जी को 'जवाहर भाई' कहते थे और इसी शीर्षक से उन्होंने एक सुन्दर लेख भी लिखा था। 'नवीन' जी

---

१. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'प्रभा', माननीय पं० मोतीलाल नेहरू, जनवरी, १९२०, पृष्ठ ४६।

२. 'सरस्वती', जून १९६०, पृष्ठ ३८०।

३. श्री सूर्यनारायण व्यास—दैनिक 'नई दुनिया', कविवर नवीन के प्रति, १६ मई, १९६०, पृष्ठ ३।

४. श्री मैथिलीशरण गुप्त —'सरस्वती', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३७७।

५. साप्ताहिक 'सैनिक' १८ मई, १९६०, पृष्ठ ७।

६. 'वट पीपल', पृष्ठ ३०।

७. 'चिन्तन', स्मृति-अंक पृष्ठ ६७ से उद्धृत।

८. श्री जवाहरलाल नेहरू—'आकाशवाणी-विविधा', सन् १९६०, 'नवीन'।

कहते थे कि "बालकृष्ण शर्मा को तो जवाहर भाई मूर्ख समझते हैं।"[१] श्रीमती कमला नेहरू[२] एवं श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति भी कवि के मन में सद्भाव रहे हैं। कमला नेहरू कवि की 'कमला भाभी' थी।[३] श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि एक प्रीतिभोज में देश के बड़े-बड़े नेता सम्मिलित थे। विजयलक्ष्मी जी अन्य सहयोगियों सहित खिला-पिला रही थीं। नवीन जी अपने साथियों के बीच हँसी-मजाक के साथ कहकहे लगा रहे थे। इसी बीच विजयलक्ष्मी जी उधर आ निकलीं। पता नहीं, उन्होंने क्या समझा, रुकते हुए बोल उठीं—"भाई साहेब के बाल सफेद हैं, किन्तु मन रंगीन।" नवीन जी ने छूटते हीकहा, "भाई का ही नहीं, बहन का भी।" इस पर सभी समवेत स्वर से देर तक हंसते रहे।[४] श्रीमती इन्दिरा गान्धी के वे 'चाचा' थे।[५] अपनी 'इन्दु बेटी' को उन्होंने अपना 'अपलक' नामक गीत-संग्रह समर्पित किया है। उसके समर्पण में लिखा है - "जिस दिन तुम्हारा विवाह हुआ था, उस दिन अनेक जनों ने तुम्हें भेंट-उपहार समर्पित किये थे। मैं निष्कंपन मन मसोस कर रह गया। तुम्हें क्या देता? उसी दिन सोचा था, अपनी कोई कृति दूँगा। इतने दिन बीत गए। आज वह अवसर आया है। यह 'अपलक' नामक मेरा गीत संग्रह स्वीकार करो, बेटी।"[६]

आचार्य विनोबा भावे—शर्मा जी विनोबा जो के भक्त थे। उन पर सन्त विनोबा के दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा है। व्यक्तिगत रूप में भी वे विनोबा भावे के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और प्रवचन देते थे। कवि उनके बारम्बार चरण-स्पर्श को अपने जीवन की सफलता के रूप में आँकता है। उन्होंने लिखा है कि "विनोबा एक महान् नैतिक शक्तिपुंज है। मैं उन्हें जीवन्मुक्त मानता हूँ। उनकी आत्मोपलब्धि की साधना निस्सन्देह अत्यन्त प्रखर, नितान्त एकनिष्ठ, निवातस्थ दीप-शिखावत् अनिंदिता एवं तन्मय है। कर्म-सन्यास उनको सहज सिद्ध हो चुका है।"[७] कवि की यह श्रद्धा तथा अटूट भक्ति उसकी काव्य कृति 'विनोबा-स्तवन' के रूप में साकार दिखाई पड़ती है।

भाई वीरसिंह[८]—'नवीन' जी पञ्जाबी के प्रसिद्ध साहित्यकार भाई वीरसिंह से भी प्रभावित थे।[९] उनके विषय में कवि ने लिखा था कि "भाई वीरसिंह उन गुरुजनों में हैं, जिनके चरणों के समीप बैठकर मुझ जैसे मानव अपना जन्म सफल कर सकते हैं। भाई साहब वीरसिंह जी उस सन्त परम्परा के कवि हैं जो हमारे देश में शताब्दियों से चली आर ही है।"[१०]

---

१. 'वीणा', स्मृति-अंक, ४५६।

२. 'क्वासि', पृष्ठ ६८-६६।

३. 'पण्डित नेहरू', कमला भाभी, पृष्ठ २६-३०।

४. 'कृति' मई, १६६० पृष्ठ ५६।

५. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५६।

६. 'अपलक', समर्पण।

७. 'विनोबा-स्तवन'—सन्त विनोबा, पृष्ठ २।

८. 'भाई वीरसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ', पृष्ठ १७३-१८६।

६. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'आकाशवाणी-प्रसारिका', भाई वीरसिंह, अप्रैल-जून, १६५७, पृष्ठ १०-२३।

१०. 'बीर बचनावली', कवि परिचय, सन् १६५१।

अन्यान्य—स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि "यह कहना मुश्किल है कि नवीन जी को राजनीति साहित्य-क्षेत्र में ले आई या उनकी साहित्यिक प्रतिभा उन्हें राजनीति में ले आई। उनके लिए देशसेवा और साहित्य-सेवा दोनों में कोई फर्क नहीं था।"[१] डा० राधाकृष्णन भी उनके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के कायल थे। उन्होंने शर्मा जी को एक स्नेही सज्जन के रूप में स्मरण किया है।[२] राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ 'नवीन', जी सन् १९२१ में लखनऊ-जेल में रहे थे। तब से उनका परिचय क्रमशः बढ़ता गया। हिन्दी के प्रश्न पर शर्मा जी ने टण्डन जी का साथ दिया था; परन्तु अंकों के विषय में उनसे मतभेद हो गया था। टण्डन जी के साथ शर्मा जी सन् १९४३ में केन्द्रीय कारागार बरेली में भी रहे थे।[३] टण्डन जी ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा है कि "मुझे उनकी ओर सदा भातृवत् स्नेह रहा। उनका सा स्नेहमय, उदार, करुणापूर्ण और त्याग के लिए तत्पर-हृदय बहुत कम देखने में आया है।"[४]

श्री रफी अहमद किदवई के साथ शर्मा जी के बड़े अच्छे पारिवारिक व राजनैतिक सम्बन्ध रहे हैं। वे राजनीति में सदैव रफी अहमद किदवई के साथी रहे हैं। 'नवीन' जी के इस असामयिक निधन में एक कारण किदवई जी की मृत्यु भी थी। उनके देहान्त से वे एक प्रकार से टूट गये थे। मन से वे अपने आपको एकाकी अनुभव करने लगे थे। रफी साहब के सम्पर्क में कवि सन् १९२० में आया। सन् १९२१ में, लखनऊ के जिला कारागार में उनसे निकट का साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार दोनों का ३४ वर्षों का साथ रहा। उनकी मृत्यु पर कवि ने लिखा था कि "इस देश ने एक नेता खोया, एक शासक खोया। लेकिन सहस्रों जन ऐसे हैं जिन्होंने अपना आश्रय-दाता खोया और अपना अग्रज खोया। और मैं भी उन सहस्रों में से एक हूँ।"[५] दाता के नाम से वे रफी साहब को अपने से बहुत आगे पाते थे। जो काम शर्मा जी नहीं कर सकते थे सो रफी साहब से कराते थे। कानपुर के देहात के एक पुराने देशभक्त को 'नवीन' जी ने स्वयं तीन सौ रुपये और रफी साहब से पाँच सौ रुपये लेकर, इस प्रकार कुल आठ सौ रुपये, उसके भरण-पोषण के हेतु भैंस खरीदने के वास्ते दिलवा दिये थे।[६] रफी साहब के साथ शर्मा जी सन् १९४३ के अपने बरेली कारावास के अधिवास में भी रहे थे।[७]

सरदार बल्लभभाई पटेल शर्मा जी की योग्यता में आस्था रखते थे। यदि वल्लभभाई कुछ दिन और जीते तो शर्मा जी को अवश्य ही कोई उत्तरदायित्व व महत्वपूर्ण मन्त्री पद प्राप्त हो जाता। श्री गोकुलभाई भट्ट कहा करते थे कि मुक्त पक्षी बालकृष्ण से सरदार प्रसन्न रहते

---

१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १९।

२. वही, पृष्ठ ४।

३. 'विनोबा-स्तवन', भूमिका, पृष्ठ ६।

४. 'वीणा' स्मृति-अंक, पृष्ठ ४८७।

५. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'आजकल', दीन-बन्धु रफी अहमद किदवई, जनवरी १९५५, वर्ष १०, अंक ९, पृष्ठ २६-२९।

६. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५९-४६०।

७. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ८।

थे।[१] कवि के मौलाना अबुलकलाम, आजाद तथा दादा साहब मावलंकर से भी अच्छे सम्बन्ध रहे। कवि के जेल के साथी श्री श्रीकृष्णदास ने लिखा है कि 'नवीन' जी नैनी जेल के कुत्ता बैरक में मौलाना आजाद से अक्सर विभिन्न विषयों पर घुल-मिलकर चर्चा किया करते थे।[२] सन् १ ९४५ में उन्होंने 'राष्ट्रपति का दैनिक जेल जीवन' शीर्षक अपने लेख में मौलाना आजाद की दिनचर्या और सतत अध्ययन का वर्णन किया है।[३] नवीन' जी ने लोक-सभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर महोदय को दस वर्षों तक (सन् १९४६-१९५६) निकट से देखा। कवि के मतानुसार वे सुलझे, सन्तुलित और गहरे समवेदनामय सुलेखक थे। दादा साहब मावलंकर जी का जीवन एक सफल जीवन था। उच्चकोटि के वकील, जनता के विश्वास-प्राप्त, गान्धी-युगीन राजनीति के अग्रणी, दक्ष लोकसेवक, सद्गृहस्थ और रचनात्मक कार्यों के उन्नायक मावलंकर महोदय हमारे देश के बहुत ऊँचे मानवों में थे।[४]

श्री गोविन्द वल्लभ पन्त, लाल बहादुर शास्त्री, महावीर त्यागी, सादिक अली, विचित्र नारायण शर्मा, गोपीनाथ श्रीवास्तव, चौधरीचरण सिंह, मोहनलाल गौतम, कृष्णदेव मालवीय, मुजफ्फर हुसेन, रणजीत सीताराम पण्डित, डॉ० सम्पूर्णानन्द, गंगाधर गणेश जोग, हृदयनाथ कुंजरू, अलगूराय शास्त्री आदि राजनीति व समाज के गण्यमान् व्यक्तियों से उनके सम्बन्ध अपने कारावास-अधिवास या राजनैतिक कार्य-कलापों के कारण थे। अपने कारावास के जीवन में शर्मा जी सादिकअली व लालबहादुर शास्त्री की बहुत मजाक उड़ाया करते थे, क्योंकि ये क़द में सबसे छोटे थे।[५] श्री अलगूराय शास्त्री ने एक बार, 'नवीन' जी के विषय में अपने सामान्य वार्तालाप में कहा था कि "तुम्हारा शेर कैसा झूमता हुआ चल रहा है। मैं जिन्दगी भर से राजनीति में इस कम्बख्त का विरोध कर रहा हूँ और यह हमेशा मुझ पर उपकार ही लादता आ रहा है। जिस दिन यह आदमी नहीं रहेगा; मेरे प्रदेश का सबसे बड़ा फोकट फौजदार चला जायगा। हर समय दूसरे के लिए त्याग करने को तैयार!"[६] एक बार कानपुर के फूलबाग की एक सार्वजनिक सभा में शर्माजी ने श्री गोविन्द बल्लभ पन्त का स्वागत इतनी ओजस्वी व प्रभावपूर्ण वाणी में किया था कि कानपुर वालों को प्रसन्नता हुई थी कि शर्मा जी ने पन्त जी जैसे श्रेष्ठ वाग्मी के मुकाबले में नगर की लाज रख ली थी।[७] इसी प्रकार श्री हृदयनाथ कुंजरू के कानपुर में उदार-नीति के पक्ष में बोलने के बाद, शर्मा जी ने उसी सभा में भाषण दिया। इसमें उन्होंने कुंजरू जी के आत्म-त्याग, पवित्रता और विद्वत्ता की काफी प्रशंसा की, लेकिन उनके समस्त तर्कों का सुन्दरता के साथ खण्डन कर दिया।[८] इस प्रकार के कई प्रसंग शर्मा जी के जीवन में अपने व्यावहारिक सम्बन्ध-क्षेत्र में आये थे।

---

१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ २६।
२. 'प्रयाग पत्रिका', २२ मई, १९६०, पृष्ठ १।
३. 'आगामी कल', जुलाई, १९४५, पृष्ठ १५।
४. 'त्रिपथगा', मार्च, १९५६, पृष्ठ ९२-९३।
५. 'प्रहरी', १९ अक्तूबर, १९६०, पृष्ठ ९।
६. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५९।
७. 'नवनीत', अक्तूबर, १९६०, पृष्ठ ९५।
८. वही, पृष्ठ ९४।

स्वर्गीय श्री कृष्णलाल श्रीधरानी ने 'नवीन' जी की तुलना बीथोवन से की है । वे उनके सशक्त व सुन्दर व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित थे ।[१] श्री सादिक अली शर्मा जी के उदार दिल और काव्य-पाठ से बड़े प्रभावित थे ।[२] सेठ गोबिन्ददास और 'नवीन' जी हिन्दी के प्रश्न पर संसद् में सदा एकमत रहे हैं । सेठजी ने लिखा है कि 'नवीन' जी जब अपने काव्य का स्वयं पाठ करते थे तब वह दृश्य तो देवताओं के दर्शन के योग्य होता था । उनकी भावमुद्रा, वाणी का ओज, शब्दों का गाम्भीर्य तथा उनका ललित स्वर सभी नवीनता रखते थे ।[३] सन् १९२१ में लखनऊ जेल में कवि का 'दादा कृपलानी' से परिचय हुआ था ।[४] वे श्रीमती सुचेता कृपलानी को 'भाभी' कहते थे ।[५]

शर्मा जी का सम्बन्ध-वृत्त अनेकानेक संसद्-सदस्यों, प्रान्तीय मन्त्रीगण, राजकीय अधिकारीगण और राजपुरुषों को समाहित करता था । उन्होंने कितने ही व्यक्तियों को सेवा में लगाया और अनेकों को समय-समय पर मदद दी । अतएव, उनके भक्तों, श्रद्धालुओं और स्नेहियों की संख्या अगणित है ।

(घ) साहित्यिक सम्बन्ध—सामान्यतया 'नवीन' जी की रुचि साहित्यिकों में अधिक रहती थी । उनके घनिष्ठ मित्रों की संख्या में भी साहित्यिकों का अधिक स्थान था । यद्यपि वे ऊपर से राजनैतिक व्यक्ति प्रतीत होते थे परन्तु मूलतः वे साहित्यिक ही थे । उनके संस्कार राजनीति के न होकर साहित्य के ही अधिक थे । साहित्यिकों में, उनका कानपुर व नई दिल्ली के साहित्यिकों से, अधिक सम्बन्ध रहा । इसके अतिरिक्त, उनके अपने मित्रों व सुहृदों की संख्या सारे भारत में फैली हुई है । प्रत्येक साहित्यिक के लिए उनका संवेदनशील हृदय सादर समर्पित था । सबको वे सहयोग देते थे, प्रेरणा देते थे और अपना स्नेह उड़ेल दिया करते थे । सबको, इस दिशा में, पत्रोत्तर देना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे ।[६] उन्होंने कई कवियों को वेदना या

---

१. स्व० कृष्णलाल श्रीधरानी—'वीणा', मेरे संस्करण, स्मृति-अंक, पृष्ठ ५२६ ।

२. श्री सादिकअली—'वीणा', उच्चकोटि के इन्सान नवीन, स्मृति-अंक, पृष्ठ ५३६ ।

३. सेठ गोबिन्ददास—'वीणा', नवीन जी मर कर भी अमर हो गये !, स्मृति-अंक, पृष्ठ ४८८ ।

४. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५० ।

५. "मैं अपनी भाभी सुचेता से केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने किसी प्रलोभन के कारण अपने विचारों को दबाने में विश्वास नहीं किया है ।"—श्री शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ६३५७ ।

Parliamentary Debates, House of the People, official Report, llth May, 1953.

६. "क्या हुआ कि मैं तुमसे परिचित नहीं ? तुम्हारी आत्मा से तो परिचित हूँ जो मानव-मात्र में उपलब्ध होती है । तुम्हारी यह शंका निर्मूल है कि मैं शायद तुम्हें तुच्छ समझकर पत्र का उत्तर न दूँ । मेरे पास जो पत्र आते हैं, उन सबका उत्तर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।"—श्री रामनारायण सिंह 'मधुर' को लिखित 'नवीन' जी का (दिनांक ८-१०-१९५६) पत्र; साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १९६०, पृष्ठ १० ।

वियोग की अपेक्षा राष्ट्रोत्थान की कविता करने की प्रेरणा व मार्गदर्शन दिया है।[१] कई कवियों की कविता-पुस्तकों में उनके आशीर्वाद[२] एवं शुभकामनाएँ[३] भी पाई जाती हैं। इस प्रकार कवि ने अपने सर्वतोमुखी व्यक्तित्व और सहायता-स्रोत से प्रत्येक को यथासम्भव प्रफुल्ल, उत्कर्षशील बनाने का प्रयत्न किया है। सांसारिक घात-प्रतिघात, देश-समीक्षा आदि से मुक्त कवियों को उनका स्नेहांचल मुदित व सन्तुष्ट कर दिया करता था।[४] कवि के कतिपय प्रमुख साहित्यिकों के साथ सम्बन्धों का समाहार इस रूप में हैं—

कानपुर मण्डली—कानपुर के साहित्य सेवियों में पं० विश्म्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', बाबू भगवतीचरण वर्मा, पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही आदि महानुभावों से कवि का घनिष्ठ परिचय व स्नेह-सूत्र रहा है।

कवि ने कहा है कि "कानपुर में जब तक कौशिक जी जीवित थे, प्रायः उनके यहाँ बैठक जमा करती थी। अब ऐमा साधन नहीं रहा, जहाँ बैठक-बाजी हो और मित्रों की चोंचें लड़े। जीवन में व्यस्तता से भी इसकी सुविधा नहीं रही।"[५] कौशिक जी के निवास-स्थान पर कानपुर की साहित्यिक मण्डली संध्या समय जमती थी और वहाँ दूधिया छनती थी। सभी स्नेही मिलकर साहित्यिक आलाप-संलाप द्वारा मनोरंजन करके उस समय का सदुपयोग करते थे।[६] वहाँ पर हितैषी जी, सनेही जी, रमाशंकर अवस्थी, पं० चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र आदि सभी एकत्रित होते थे। इन सभी से शर्मा जी के स्वस्थ सम्बन्ध थे। कौशिक जी की मृत्यु से कवि को आघात पहुँचा था।[७]

श्री भगवतीचरण वर्मा 'नवीन जी के अत्यन्त आत्मीय थे। वर्मा जी का शर्मा जी से परिचय प्रायः ४२ वर्ष पूर्व हुआ था।[८] यह मित्रता सन् १९१८ से प्रारम्भ हुई, जब दोनों कानपुर में थे। उन दिनों 'नवीन' जी कानपुर के क्राइस्ट चर्च कालेज के इण्टर मीजिएट कक्षा

---

१. "तुम्हारी कविता पढ़ी, अच्छी है। परन्तु यदि संयोग-वियोग की कविता न लिखकर राष्ट्रोत्थान की कविता लिखते तो बड़ा अच्छा होता।"—श्री 'नवीन' जी का (दिनांक १२-४-१९५९ का) पत्र।

२. श्री बाबूराम पालीवाल—'चेतना' काव्य संग्रह, नवीन जी का आशीर्वाद।

३. श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'—'ज्वाला', 'नवीन' जी की भूमिका।

४. "आप सबके आश्रय, सबके सहायक और सबके मित्र थे और मुझे तो अपने पास केवल आपने ही बिठाया था। याद है, दंशों से आहत होकर मैं आपके सामने किस प्रकार छटपटाता था और आप मेरे व्रणों पर किस प्रेम से अपने पीयूष का लेप चढ़ाते थे।"—'दिनकर', 'नवभारत टाइम्स', मिट्टी का पत्र आकाश के नाम, २९ जून, १९६०, पृष्ठ ५।

५. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५८।

६. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५०३।

७. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', साप्ताहिक 'प्रताप', हा! विश्वम्भरनाथ, (१८-१२ १९४५) पृष्ठ २।

८. श्री भगवतीचरण वर्मा—'कादम्बिनी', बालकृष्णशर्मा 'नवीन'-प्रवेशांक, पृष्ठ १८।

में पढ़ते थे, 'प्रताप' में काम करते थे और कविता लिखते थे।[1] वर्मा जी भी क्राइस्ट स्कूल में पढ़ते थे।[2] 'नवीन' जी उम्र में वर्मा जी से प्रायः ४ या ६ साल बड़े थे। दोनों के कार्य क्षेत्र अलग-अलग रहे हैं। वर्मा जी ने लिखा है कि "अजीब प्यारा-सा उलझा हुआ व्यक्तित्व था उनका। बड़ा अक्खड़ और अल्हड़—ये दो देशज शब्द उन पर पूरी तरह लागू होते थे।"[3] वर्मा जी ने 'नवीन' जी को महान् उदार व्यक्तित्व पाया है। वे परिचित-अपरिचित सभी की संस्तुति किया करते थे।

कानपुर की मण्डली के मित्रों ने कवि के प्रोत्साहनकारी वातावरण का निर्माण किया। कवि की प्रथम कविता भी इन्हीं मित्रों की प्रेरणा से प्रकाशित हुई थी।

'प्रताप' परिवार से सम्बद्ध—कवि ने लिखा है कि "प्रताप प्रेस से सम्बद्ध होने के कारण ही पूजनीय अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त जी, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, स्व० पं० बदरीनाथ भट्ट, पं० वेंकटेश नारायण तिवारी आदि मित्रों सहित बड़ों का साक्षात्कार हुआ।[4]

श्री मैथिलीशरण गुप्त से कवि का परिचय सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में हुआ था।[5] गुप्तजी ने लिखा है कि "चालीस वर्ष से अधिक का उनसे मेरा सम्बन्ध था। हम दोनों 'प्रताप' परिवार के थे। निकटता के कारण वे उसके अविभाज्य अंग बन गये।"[6] आठ वर्षों से नित्य 'नवीन' जी सन्ध्या समय गुप्त जी के निवास स्थान पर जाया करते थे और २-३ घण्टे बैठते थे। जब सर्वप्रथम 'नवीन' जी ने गुप्तजी को देखा तो वे लाल पाग बाँधे थे।[7] श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने गुप्तजी से शर्मा जी का परिचय कराया था। उस समय चतुर्वेदी जी ने गुप्तजी के चरणस्पर्श किये थे और 'नवीन' जी को अपने 'गुरू' के रूप में बताया था।[8] यही बात 'नवीन' जी ने अपनी आत्म-कथा में भी लिखी है।[9] परन्तु माखनलाल चतुर्वेदी के

---

१. श्री भगवतीचरण वर्मा—'आजकल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिसम्बर, १९५७, पृष्ठ ८।

२. श्री भगवतीचरण वर्मा—'सरस्वती', मेरे आत्मीय 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३९२।

३. वही, पृष्ठ ३९४।

४. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १११।

५. वही, पृष्ठ १०८।

६. श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सरस्वती', बालकृष्णशर्मा 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३७७।

७. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ', एकारावनिष्ठ मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ३५३।

८. वही।

९. 'चिन्तन', पृष्ठ १०८।

जीवनीकार ने इसमें तथ्य का अभाव देखा है।[१] 'नवीन' जी 'दद्दा' के आत्मीय थे। सन् १९३५ में भारतसम्राट् पंचम जार्ज के रजत-जयन्ती-समारोह के समय, 'सरस्वती' में जब गुप्त जी को राज्य-भक्त कहा गया था, तब 'नवीन' जी ने 'प्रताप' में उसका विरोध किया था।[२] सन् १९५२ में शर्मा जी ने अपने एक संस्मरण में गुप्त जी को सनातन का पोषक और नवीन का अविरोधी कहा था।[३] 'नवीन' जी नई दिल्ली में गुप्त जी के यहाँ अपने जाने के समय, आते-जाते नियमित रूप से, चरणस्पर्श किया करते थे।[४] गुप्त जी के पुत्र ऊर्मिलाचरण का भी शर्मा जी के प्रति अबाध अनुराग था।[५] गुप्त जी ने 'नवीन' जी को अपनी श्रद्धांजलि निम्नलिखित पंक्तियों से दी है :—

> कहाँ आज वह बन्धु हमारा,
> नित 'नवीन' जिसकी रस-धारा—
> आलोड़ित करती थी हमको;
> उससे श्रद्धांजलि की आशा,
> रखती थी मेरी अभिलाषा,
> अनहोनी ही प्रिय है यम को ![६]

गुप्त जी के अनुज श्री सियारामशरण गुप्त से कवि का बड़ा स्नेह था। 'नवीन' जी ने

---

१. "राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दनग्रन्थ, के द्वितीय खण्ड की भूमिका में श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने मैथिलीशरण को माखनलाल का गुरु बतलाया है। जब माखनलाल जी लौटकर आये, उन्होंने भरे हृदय और भारी कण्ठ से मुझसे कहा, 'आज मैंने, अपने गुरु बाबू मैथिलीशरण गुप्त के चरण स्पर्श किये।' 'नवीन' जी ने जैसा स्वीकार किया है, इस संवाद में बहुत कुछ वह तथ्य नहीं हैं, जो होना चाहिए। माखनलाल जी के यदि गुरु हो सकते थे तो महावीरप्रसाद द्विवेदी, जो मैथिलीशरण जी के भी गुरु थे। पर महावीरप्रसाद जी द्विवेदी को गुरु-भाव में माखनलालजी ने कभी नहीं लिया। उनके जीवन में एक ही गुरु रहे हैं और वे हैं पूज्यवर माधवराव जी सप्रे। माखनलाल जी की ओर से मैथिलीशरण जी को अपना गुरु मानना निस्सन्देशह तुक की बात नहीं है। मैथिलीशरण जी और माखनलाल जी की आयु में केवल एक वर्ष से भी कम, कुछ मास का अन्तर है। दोनों हो इस आयु में अपना-अपना कृतित्व प्रस्तुत कर रहे थे। हम-उम्र युवकों में गुरु-शिष्य का भाव सम्भावना से भी परे होता है।"—श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ', माखनलाल चतुर्वेदी, भाग १, पृ० ३३५।

२. डॉ० कमलाकान्त पाठक—'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य', जीवनी, पृष्ठ ४५।

३. 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक, अगस्त, १९५२।

४. डॉ० नगेन्द्र के 'श्रेष्ठ निबन्ध', पृष्ठ १५३।

५. वही, पृष्ठ १५४।

६. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७८।

'प्रताप' के 'सियारामशरण गुप्त अंक' में लिखा था कि सियारामशरण जी परिहास में कच्चे हैं। इसको मनोरंजक कहानी भी दी थी।[1]

श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का मूल्यांकन करते हुए 'नवीन' जी ने लिखा था कि "बाबू, मैथिलीशरण गुप्त का काल प्राचीन और नवीन—ये प्राचीन और नवीन शब्द यहाँ सापेक्ष्य दृष्टि से व्यवहृत हुए हैं—के बीच का सन्धिकाल है और श्री गुप्त जी उस सन्धि के योजक एवं विधायक हैं। गुप्त जी जागरण-काल के प्रारम्भिक गायक हैं। उन्होंने आज के सवेरे का आह्वान किया है।"[2]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की भेंट सर्वप्रथम सन् १९१६ में रेल के एक डिब्बे में दिसम्बर महीने में लखनऊ कांग्रेस जाते समय, 'नवीन' जी से हुई थी। उस समय शर्मा जी का उघाड़ा सिर, उन्नत ललाट, साधारण और बेतरतीब पहिने कपड़े, हाथ में कान तक जाने वाली लाठी, उबाहने पैर, और जीवन की परवाह न करनेवाला शरीर था।[3] माखनलाल जी के प्रति शर्मा जी की बड़ी पूज्य भावना रही है। माखनलाल चतुर्वेदी जी से प्रथम भेंट का रोचक विवरण 'नवीन' जी ने दिया है। 'नवीन' जी इन्हीं के साथ पहले छः रुपये किराये के कमरे में एक रात ठहरे थे जो प्रतिदिन के हिसाब से देना पड़ता था। इसके पश्चात् गणेश जी के पास गये। 'प्रभा' के नियमित पाठक होने के कारण शर्मा जी को माखनलाल जी के इस रहस्य को जानने में देर नहीं लगी।[4] 'नवीन' जी फिर कई बार खण्डवा आये और कवि-सम्मेलन में काव्य-पाठ भी किया। यह सन् १९३५ की बात है। इस समय 'नवीन' जी का गला बैठा था फिर भी कविता पढ़ी।[5]

दोनों कवियों ने कारावास की यातनाएँ सहकर राष्ट्रीय काव्य के निर्माण में महान् योगदान दिया है।

अक्तूबर, सन् १९१७ में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का सर्वप्रथम परिचय 'नवीन' जी से 'प्रताप' कार्यालय में हुआ था। यह परिचय गणेश जी ने कराया था। उस समय 'नवीन' जी क्राइस्ट चर्च कालेज के एफ० ए० में पढ़ते थे। चतुर्वेदी जी ने अपने अभिमानवश प्रारम्भ में उनकी उपेक्षा की थी। फिर 'नवीन' जी अपनी रचनाएँ प्रकाशनार्थ 'विशालभारत' में चतुर्वेदी जी को भेजने लगे।[6] विगत ८ वर्षों से 'नवीन' जी (दिल्ली में) की उनके साथ बड़ी घनिष्ठता हो गई क्योंकि वे अपने अन्तिम दिनों में दो जगह संध्या समय जाते थे—या तो 'दद्दा'

---

१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ २५।

२. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'काव्यकलाधर', श्री मैथिलीशरण स्वर्णजयन्ती, अप्रैल, १९३६, पृष्ठ ३३७-३३९।

३. श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'सरस्वती', त्याग का दूसरा नाम बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३७९।

४. 'चिन्तन' स्मृति-अंक, पृष्ठ १०८।

५. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३५।

४. 'रेखाचित्र', पृष्ठ २००-२०१।

के यहाँ अथवा चतुर्वेदी जी के यहाँ।[1] यद्यपि 'नवीन' जी चतुर्वेदी जी से उम्र में पाँच वर्ष छोटे थे परन्तु फिर भी वे प्रेमपूर्ण अब स्त्री के साथ उनके अग्रग बन गये थे और उनका व्यवहार चतुर्वेदी जी के साथ वैसे ही होता था जैसे बड़े भाई का छोटे भाई के साथ। विगत ८ वर्षों में 'नवीन' जी ने चतुर्वेदी जी को शताधिक बार 'बेवकूफ' की उपाधि से विभूषित किया था।[2] शर्मा जी ने चतुर्वेदी जी को कई पत्र लिखे।[3]

श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल से भी 'नवीन' जी की घनिष्ठता रही है।[4] कानपुर में रहकर, दोनों ने पर्याप्त समय तक 'प्रभा' एवं 'प्रताप' का सम्पादन किया है।

अन्य विशिष्ट साहित्यिक गुण—स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद से 'नवीन' जी के घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उन्होंने पं० सूर्यनारायण व्यास को लिखा था कि "आपने प्रसाद जी के सम्बन्ध में जो चिन्ता प्रकट की है, उसे देखकर मैं आपके सौजन्य और सौहार्द्र का कायल हो गया हूँ।"[5] एक बार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रसाद जी के विपक्ष में लेख लिखा था तो 'नवीन' जी ने उन्हें इस विषय में अच्छी खासी डाँट बतलाई थी।[6]

'निराला जी' से कवि की प्रगाढ़ मैत्री थी। इस मित्रता का माध्यम 'प्रभा' पत्रिका रही। सन् १६२४ में 'भावों का भिड़न्त' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था; जिसमें 'निराला' की प्रारम्भिक कविताओं पर यह आक्षेप लगाया था कि ये रवि बाबू या बंग-काव्य के भावानुवाद मात्र हैं। यह लेख एक भावुक के नाम से लिखा गया था; जिसके वास्तविक लेखक मुंशी अजमेरी[7] थे। लेख के अन्त में 'निराला' के काव्य पर व्यंग्य था—

"इस प्रकार मिलान करने से यह मालूम हो गया कि हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'तट पर और क्यों हँसती हो ?', 'कहाँ देश है ?', ये दोनों

---

१. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'संस्कृति', स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जीवन-चरित, जून-जुलाई, १६६०, पृष्ठ २२।

२. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'नवभारत टाइम्स', नवीन जी के कुछ संस्मरण, २६ जून, १६६० पृष्ठ ५।

३. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नवीन जी पत्र-लेखक के रूप में, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३३।

४. "सन् १६२३—दिवंगत गणेश जी के जेल में होने से 'प्रताप' का सम्पादन पालीवाल जी ही कर रहे थे। वह कुर्सी पर बैठे थे और 'नवीन' दाहिनी तरफ खड़े। पालीवाल जी ने दोस्ताना अदा से उनसे कुछ गाने की फर्मायश की, और 'नवीन' बाएँ हाथ से उनका दाहिना कान पकड़कर गा चले। क्या गाया भाई 'नवीन' ने, मुझे याद नहीं, याद इतनी ही रह गई है कि वह शख्स कान पकड़ने वाले धृष्ट गुणवान को भी पहचानकर मान दे सकता है।"—श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', व्यक्तिगत, आदरणीय श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, ३०।

५. 'वीणा' स्मृति-अंक, पृष्ठ ४६४।

६. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १६६०, पृष्ठ ५।

७. श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का मुझे लिखित (दिनांक २-११-१६६१ का) पत्र।

कविताएँ श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'विजयनि' और 'निरुद्देश यात्रा' नाम की कविताओं की टक्कर की हैं। क्या हिन्दी संसार, हिन्दी की इस गौरव-वृद्धि के लिए, श्री त्रिपाठी जी महाराज को बधाई या धन्यवाद न देगा ? और क्या कोई भव्य भावुक इस बात का अन्वेषण न करेगा कि इसी प्रकार उनकी और कविताएँ भी रवि बाबू या अन्य किसी कवि की कविताओं से टकराती हैं या नहीं ?"[1]

इसी आधार पर, तत्कालीन 'प्रभा' सम्पादक 'नवीन' जी ने निराला जी को एक पत्र लिखा था।[2] इस पर महाप्राण 'निराला' ने भी प्रत्युत्तर दिया था जो कि 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने बताया था कि "जहाँ कहीं भी उन्होंने बंगला-काव्य का भाव लिया है या रूपान्तर किया है, उसका उल्लेख पाद-टिप्पणी में यथा-समय किया था।"[3] इसके पश्चात् दोनों कवि प्रगाढ़ मित्रता व सौजन्य-व्यवहार के आलिंगन में आबद्ध हो गये। दोनों महान् संगीत-प्रेमी थे।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी के कवि के साथ विगत ३० वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। आचार्य वाजपेयी जी मगरायर के रहनेवाले हैं जो कि कानपुर के पास ही है। अतएव, कानपुर में अक्सर 'नवीन' जी से उनकी भेंट हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त दिल्ली में आचार्य वाजपेयी जी 'नवीन' जी के यहाँ, अपने प्रवास में अवश्य ही मिलने जाया करते थे। आचार्य वाजपेयी के अतुल के यहाँ 'नवीन' जी की कानपुर में बैठक रहा करती थी।[4]

श्री रायकृष्णदास से कवि के बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। 'नवीन' जी अक्सर वाराणसी आने पर कला-भवन में ही ठहरते थे। शर्मा जी ने सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में अपने विभिन्न नूतन परिचितों में श्री रायकृष्णदास का भी उल्लेख किया है।[5] श्री केदारनाथ पाठक ने रायकृष्णदास जी को 'नवीन' जी से मिलाया था।[6] 'नवीन' जी का ध्यान जब कला-भवन की ओर गया तो कुछ नहीं तो कम से कम तीस-चालीस सहस्र रुपये उन्होंने बड़ी लगन, प्रयत्न

---

१. 'प्रभा', भावों की भिड़न्त, सितम्बर, १९२४, पृष्ठ २१४।

२. वही, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, 'निराला' बनाम 'रवीन्द्र', सितम्बर, १९२४, पृष्ठ २३६।

३. आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर।

४. आचार्य वाजपेयी जी से वार्तालाप द्वारा ज्ञात।

५. "सन् १९१६ का वर्ष, लखनऊ-कांग्रेस-अधिवेशन, दिसम्बर मास जाड़े की संध्या, कांग्रेस मण्डल के बाहर का एक शिविर-पुण्यश्लोक गणेशशंकर विद्यार्थी, स्व० बन्धुवर शिवनारायण मिश्र, रायकृष्णदास जी, दद्दा और कुछ अन्य जन।"— श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रन्थ,' पृष्ठ ३५३।

६. "इन पाठक जी से हमारा सम्पर्क सन् १९०८ में हुआ, इन्होंने ही हमारा परिचय आचार्य द्विवेदी जी, मैथिलीशरण गुप्त और नवीन जी से कराया जिसके फलस्वरूप भाई मैथिलीशरण जी और उनकी मण्डली का सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्रसाद जी से भी सन् १९०९ में उन्होंने ही मिलाया।'—श्री रायकृष्णदास, 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ २६।

एवं परिश्रम से कानपुर आदि स्थानों से एकत्रित करके, उसको दिये। यह उनका गौरवपूर्ण प्रयास था।[१]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी से कवि के बड़े गहरे सम्बन्ध थे। दोनों में विनोद व सौहार्द्र का व्यवहार क्रियाशील था। 'हिन्दी आयोग' के नाते, इनका काफी निकट का सम्बन्ध इन दिनों रहा। राजभाषा आयोग के सदस्य श्री नेने ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि "१९५६ के जून में हम लोग श्रीनगर के होटल में ठहरे थे। रात को डॉ० हजारीप्रसाद जी के कमरे में मैं बैठा था। नवीन जी भी आ पहुँचे। काव्य सम्बन्धी चर्चा छिड़ी और उनसे कविता सुनाने की प्रार्थना की गई। और फिर हम दो श्रोताओं ने घण्टे भर तक उनके कण्ठ से कविता-गान सुना। कविता के भाव विचारों में तल्लीन हो, पूरी प्रसन्नता से उन्होंने कविता सुनाई। वह रात आज भी मेरे स्मरण में स्थायी बनी हुई है।"[२] 'दिनकर जी' भी इन दिनों 'नवीन' जी के साथ रहते थे और स्वास्थ्य की चिन्ता किया करते थे। 'नवीन' जी की बैठक कभी-कभी दिनकर जी के यहाँ भी जम जाया करती थी।[३] 'दिनकर' जी को कवि से सर्वप्रथम भेंट सन् १९३५-३६ में मुंगेर (बिहार) में हुई थी।[४]

डॉ० नगेन्द्र 'नवीन' जी के प्रति श्रद्धा रखते थे। वे उनसे सन् १९४५ में 'प्रताप' कार्यालय में मिले थे और बाद में वे दिल्ली में नगेन्द्र जी के 'दादा' हो गये।[५] उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा', 'नवीन' जी को सादर समर्पित की है।[६] डॉ० बच्चन भी कवि के श्रद्धालु रहे हैं।[७]

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कवि के साथ प्रथम भेंट सन् १९२३ में 'प्रताप' कार्यालय में हुई थी। उन दिनों वे 'प्रभा' मासिक पत्रिका के सम्पादक थे।[८] स्वर्गीया श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान को कवि अपनी बहिन मानते थे और उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके घर जाकर फूट-फूट कर रोये थे।[९] पं० सूर्यनारायण व्यास से कवि के सम्बन्ध सन् १९२२ से स्थापित हुए[१०] और श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव से सन् १९३०-३१ से,[११] और फिर अधिकाधिक स्नेह की वृद्धि होती गई। इनके अतिरिक्त कवि के प्रति श्री रामशरण शर्मा, श्री प्रभागचन्द्र शर्मा, श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री अशोक बाजपेयी आदि व्यक्तियों की प्रगाढ़ श्रद्धा रही है।

---

१. श्री रायकृष्णदास से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १०-६-१९६१) में ज्ञात।
२. 'राष्ट्रवाणी', जून, १९६०।
३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ९-१०।
४. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा ज्ञात।
५. डॉ० नगेन्द्र के 'श्रेष्ठ निबन्ध', पृष्ठ १४८।
६. 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा', समर्पण।
७. डॉ० बच्चन—'नये पुराने झरोखे', पृष्ठ १८-३०।
८. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी —'कल्पना', हुतात्मा, सितम्बर, १९६०, पृष्ठ २६।
९. 'सरस्वती', जुलाई, १९६०, पृष्ठ २८।
१०. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९१।
११. 'सरस्वती', जुलाई, १९६१, पृष्ठ २८।

इन बहुमुखी सम्बन्धों ने कवि के विराट् व्यक्तित्व व जीवन के निर्माण व प्रभावित करने में बड़ी मदद पहुँचाई है। 'नवीन' जी को अपने पूज्यों से आशीर्वाद व स्नेह मिला, समवयस्कों से ममता भरी मैत्री प्राप्त हुई और कनिष्ठ व्यक्तियों से श्रद्धा और भावभीनी शुभकामनाएँ।

निष्कर्ष

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सम्पूर्ण वाङ्मय में उनका युग तथा जीवन गुंजायमान है। अनुभवों व परिस्थितियों के घात-प्रतिघात और घटनाओं के वात्याचक्रों ने उनको अपनी मान्यताएं बनाने की शिक्षा में तत्व प्रदान किये। उनका समग्र जीवन, आरोह-अवरोह की करुण कहानी से आप्लावित है। उन्होंने राग-विराग दोनों में दिन व्यतीत किये। झोंपड़ों और अट्टालिकाओं का दुःख-सुख भोगा। उनके जीवन-सूत्रों ने समस्त मध्य भारतीय जीवन-जगत् के इतिहास के साथ उन्हें पिरो दिया है।

शर्मा जी के चरित्र, आचरण तथा सिद्धान्तों में जो कतिपय विशिष्ट उपादानों ने अपना निश्चित स्थान बना लिया था, उसका कारण उनके जीवन की विस्तृत व उर्वर पीठिका है। एक वाक्य में कहा जाय कि उनकी माता व गुरु गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनके जीवन को बनाया और मोड़ा। गणेश जी के वे जीवन्त स्मारक थे। जिस समय वे अपने जीवन की प्रारम्भिक किरणें विकीर्ण कर रहे थे; उस समय उनका प्रदेश मालवा एक विचित्र प्रकार की सामन्तवादी प्रथा व व्यवस्था से आक्रान्त था। ऐसे वातावरण में चाटुकारिता या दण्ड के अतिरिक्त कोई पथ नहीं था। बालकृष्ण शर्मा प्रारम्भ से ही ऐसे वातायन के आदी नहीं थे और गणेश जी की दिव्यता के द्वारा आकर्षित होने के कारण, उन्हें अपने स्थानिक वातावरण का दास नहीं बनना पड़ा। गणेश जी के रास्ते पर वे आजन्म चलते रहे; न पीछे हटे और न विचलित हुए।

उनका सम्पूर्ण जीवन एक योद्धा का जीवन है। लड़ना, जूझना, टकराना और पराजय की भावना का उत्पन्न न होने देना ही, उनके जीवन का सार है। उनका जीवन एक युद्ध था। वे आजीवन लड़ते ही रहे। परिस्थितियों से लड़े, गौरांग महाप्रभुओं से लड़े, भारत की दासता से लड़े, कारावास में विधानों से लड़े, न्याय के प्रश्न पर वे गणेशजी से भी लड़े। गान्धी जी के 'मजनू' और 'गधा' होने पर भी उनसे लड़े। जवाहर के 'छोटे भाई' रहते हुए भी उनसे लड़े और टण्डनजी का 'भ्रातृवत् स्नेह' प्राप्त कर, उनसे भी लड़ने से नहीं चूके। अन्तिम समय में रोगों से जूझे, समाज की रूढ़ियों से जूझे, देश में आग लगाई। साहित्य में वे लड़ते हुए ही दिखलाई पड़ते हैं। नई मान्यताओं की प्रायः प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अपने इस शस्त्र का प्रयोग यत्र-तत्र सर्वत्र किया। परन्तु इस सेनानी में कहीं भी उच्छृंखलता नहीं दिखाई देती। वह कहीं भी अपनी विनम्रता की परिधि का उल्लंघन नहीं करता। जिनको माना उन्हें अन्त तक माना, लड़ाई लड़ते-लड़ते माना। जिन्हें स्नेह दिया, उन्हें आकण्ठ डुबो दिया। यही उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता रही है। ऐसा प्रेम-सम्पन्न योद्धा और सात्विक सेनानी अन्यत्र दुर्लभ है।

उनके व्यक्तित्व व काव्य के निर्माण में, उनके जीवन की अपनी स्थिति, बड़ी स्पष्ट हो जाती है। बाल्यावस्था में निरंकुश रहने के कारण और अपना प्रारम्भिक मार्ग अपने हाथों से

गढ़ने के कारण, स्वाभाविक रूप से, ऐसे व्यक्तियों में मनोविज्ञान के आधार पर विद्रोह तथा संघर्ष की शक्ति का उत्पन्न हो जाना, अपना नैसर्गिक रूप ही रखता है। संसार के अन्य महापुरुषों की भाँति, वे भी अधिकतर संसार की पाठशाला में ही, अधिक शिक्षित व दीक्षित हुए। पाठ्य-पुस्तकों की अपेक्षा उन्होंने खुले संसार का अनुभव प्राप्त किया और अपनी मान्यताएँ स्थिर कीं। आजीवन दुःख, दैन्य तथा यातनाएँ भुगतने के कारण उनमें करुणा की भावना का अत्यधिक प्रसार हो गया था। सदा सर्वदा संग्राम में तलवार कसे सेनापति के समान, उन्होंने अपने जीवन के गह्वरों, पर्वतों व नदियों को पार किया। कभी मधुवन आये और कभी बीहड़ वन। सांसारिक सुख व भोग के प्राप्त न होने के कारण और अन्त में रोगों से आक्रान्त शरीर को लिए हुए होने के कारण, उनमें निराशा की भावनाएँ भी अपने पंख खोलने लगी थीं। मानव के प्रति, मानव के सच्चे प्यार के कायल होने के कारण, उनमें भावुकता की मात्रा का अत्यधिक विकास हुआ और इस भावनोद्रेक की स्थिति ने उनके राजनीति के विकास में बड़े अवरोध उपस्थित किये।

यहाँ हमें उनकी राजनीति व साहित्य के बहुचर्चित व विवादास्पद क्षेत्र पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। उनके जीवन की कहानी राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता, राष्ट्रीय काव्य और स्वाधीनता संग्राम के ही तीन महत्वपूर्ण पथों के क्रमागत विकास का यदि किसी को अध्ययन करना है तो वह उनकी जीवनी में देख सकता है। उन्होंने देश के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। निर्भय होकर वे सिंह की भाँति दहाड़ते थे। ऐसे वीर-पुत्रों पर भारत-माता को गर्व है। उग्रदलीय नीति में आस्था रखने के कारण वे आमरण जोशीले व तीक्ष्ण बने रहे। उनके मन में मैल नाम की वस्तु नहीं थी। वे उस वट-वृक्ष के समान थे जो सब को छाया प्रदान करता है। वे सूर्य किरणों के समान, सबको प्रकाश देने वाले थे। समीर के समान उन्होंने राजा-रंक सभी को सान्त्वना प्रदान की। उनके जीवन के दो प्रखर पक्ष, राजनीति व साहित्य थे। ये दोनों आपस में टकराते रहे और समझौता करते रहे। राजनीति की मृगतृष्णा उन्हें आगे खींच ले जाती थी और साहित्य अपना आत्म-विश्लेषण करवाता रहता था। देखा जाय तो उनकी साहित्यिकता ने उन्हें सफल राजनीतिज्ञ नहीं बनने दिया और उनकी राजनीतिज्ञता ने उन्हें साहित्यिक नहीं बनने दिया। राजनीति में 'हृदय' की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ बुद्धि, कूटनीति, अवसर की उपयोगिता, युक्ति-कौशल, आदि के द्वारा अपनी गोटें बिठायी जाती हैं; मोहरें चली जाती हैं। एक अमेरिका साम्यवादी ने कहा है कि "राजनीति वह नाजुक कला है जिसके जरिये गरीबों से वोट और अमीरों से चुनाव के लिए रुपये यह कहकर लिये जाते हैं कि हम तुम्हारी एक-दूसरे से रक्षा करेंगे।"[१] परन्तु ऐसी राजनीति को शर्मा जी ने कभी आश्रय नहीं दिया, न वे स्वभावतः ऐसा कर ही सकते थे। वे एक पक्ष के ही होकर, स्पष्ट व्यक्ति बने रहते थे। मध्यम मार्ग को अपनाना, उन्हें पसन्द नहीं था। प्रत्येक समस्या पर उनका साफ व एकपक्षीय मत रहता था। उनके व्यक्तित्व में "द्विविधा को कोई स्थान नहीं था। उनमें भावना, कल्पना, आवेश, प्रेम, स्नेह, ममता, सौहार्द्र और संवेदनशीलता थी, इसलिए ये सब गुण उनकी राजनीति के पथ में कण्टक बन गये। मिथ्या व

---

१. 'मेरी कहानी', पृष्ठ १६१ से उद्धृत।

आडम्बर उन्हें पसन्द नहीं थे। राजनीति के कार्यंकलापों में व्यस्त रहने के कारण, वे साहित्य की भी उपेक्षा करते रहे। इसका प्रभाव उनके साहित्य-प्रकाशन और विधिवत् समीक्षा के पात्र न होने के रूप में दिखाई दिया। दिन-रात संघर्षों की विडम्बनाओं में साहित्यकार को, हृदय के एक कोने में ही कुलकुलाकर रह जाना पड़ा। राजनीति की चकाचौंध के समान कवि को अपने कवित्व-शक्ति से सम्पन्न दीपक का ख्याल नहीं रहा। उसने अपने कवि को हमेशा ही उपेक्षित रखा। उनके सशक्त और समक्ष कलाकार ने अपने को हिन्दी-साहित्य में आरोपित करने का भर सक प्रयत्न किया लेकिन उनके अन्दर वाली राजनीतिक मृगतृष्णा ने उस कलाकार के मार्ग में हमेशा बाधा पहुँचायी।"[1]

राजनीति के जिन आकर्षणों के पीछे कवि भागता रहा; वे स्थायी प्रमाणित नहीं हुए। वे बुदबुदे बनकर फूट गये। कवि को इस वास्तविकता का भान अपने जीवन की सन्ध्या में हो गया था, इसलिए निराशा व खीझ की भावनाएँ अधिकाधिक उसको कुण्ठित करने लगी थी। इस दुधारी तलवार पर चलकर, शर्मा जी ने अपना जीवन व्यतीत किया।

मेरा अपना मत है कि बालकृष्ण शर्मा मूलतः व प्रधानतः साहित्यिक थे; राजनीतिज्ञ नहीं। राजनीति में असफलता मिलने का प्रधान कारण भी यही रहा। उनके जीवन का क्रम भी इसी प्रकार रहा कि वे मूलतः साहित्यिक ही बनते या रहते। भावावेश, सहृदयता, प्यार, सहज विनम्रता और सात्विकता के उपादान उनके साहित्यिक पक्ष के ही परिचायक हैं न कि राजनीतिज्ञ होने के। राजनीति ने कवि को बारम्बार अपने चमकते आवरण से आच्छादित किया परन्तु उनका सहज व्यक्तित्व, जो कि साहित्य की दीप्ति से सम्पन्न था, आक्रोश व तड़फन के साथ बाहर निकल पड़ता था। उनके काव्य में भी हमें इस संघर्ष की कहानी, कमनीय तन्तुओं में बँधी दिखाई पड़ती है। राजनीति तो चंचला है, बहती नदी की धारा है। उसका अपना कोई स्थिर रूप नहीं। कभी सूख जाती है, कभी बाढ़ आ जाती है और कभी मार्ग बदल लेती है। राजनीति का रूप बालकृष्ण शर्मा के पास था और रहा परन्तु वह धीरे-धीरे तिरोहित हो जावेगा। उनके राजनीतिज्ञ रूप को कोई चिर-स्थायी महत्ता नहीं मिलने वाली है। वह क्षणभंगुर है। उनका वास्तविक व प्रकृत रूप साहित्यिक का ही रहेगा जो कि युग-युगान्तर तक अमिट रहने वाला है। संसद् सदस्य पं० बालकृष्ण शर्मा का नाम समाचार-पत्रों में परिसीमित रहा, उन पृष्ठों के साथ विगलित हो जावेगा परन्तु 'क्वासि' और 'ऊर्म्मिला' के गायक महान् कवि को सारा संसार याद करता रहेगा। राम-कथा की परम्परा की वे स्थायी एवं अभिनव कड़ी बन गये हैं।

'नवीन' जो के जीवन-चरित्र का यह सत्व युगों के कंगन खोलता रहेगा—

मैं हूँ भारत के भविष्य का, मूर्तिमान विश्वास महान्।
मैं हूँ अटल हिमांचल सम थिर, मैं हूँ मूर्तिमान् बलिदान॥

———

१. श्री भगवतीचरण वर्मा—'कादम्बिनी', प्रवेशांक, पृष्ठ २०।

तृतीय अध्याय

व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन

सामान्य व्यक्तित्व

बालकृष्ण शर्मा व्यक्तित्व-सम्पन्न कवि थे। सामान्यरूपेण ही, उनके व्यक्तित्व का प्रभाव द्रष्टा पर पड़ता था और वे सहज रूप में ही अप्रतिभ व अनूठे दिखाई पड़ते थे। 'दिनकर' जी ने लिखा है कि "मैंने जिन साहित्यकारों को देखा है, उनमें से पन्त, निराला और 'नवीन' ये तीन ही हैं जो दर्शन-मात्र से प्रभावित करते हैं। नवीन जी जब रुग्ण नहीं हुए थे, चुप रहने पर भी, उनके व्यक्तित्व से आक्रामक किरणें फूटा करती थीं।"[1] यह आभा कवि को प्रकृति-प्रदत्त थी। उनका मोहक व प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व सदा-सर्वदा आकर्षण का केन्द्र रहा है। स्वयं सुमित्रानन्दन पन्त ने शर्मा जी के व्यक्तित्व का वर्णन निम्नरूप में किया है—"एक शब्द में 'नवीन' जी का व्यक्तित्व स्फटिक के समान शुभ्र तथा मेघ के समान उदार रहा है।"[2] श्री क्रान्तिचन्द्र सौनरेक्सा ने उनके जैसा भव्य-व्यक्तित्व भारत में कहीं नहीं देखा। उनका भव्य गौर व्यक्तित्व, उन्मुक्त किन्तु रस-विदग्ध हास्य और हिमश्वेत केश-राशि ने प्रत्येक को आकृष्ट कर रखा था।[3]

इस नैसर्गिक आभा से मण्डित कवि का बादल-स्वरूप सदा दृश्य ही बना है, द्रष्टा बनने का अवसर उसे नहीं मिला। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है कि "क्या कहना है, उनके व्यक्तित्व का। क्या रूप, क्या वर्ण और क्या बोलचाल, उनका सब कुछ आकर्षक था। जैसा विनय वैसा ही अभय। जब जिस वेष में वे रहते थे, वही उन्हें फबता था।"[4]

शारीरिक संगठन—यद्यपि व्यक्तित्व का बोध सिर्फ शरीर के अनुपात व अवयवों के सन्तुलन से ही नहीं होता है फिर भी इसकी व्याप्ति में शरीर का बहुत बड़ा भाग रहता है। मुख व आँखों से हम व्यक्ति की बहुत-सी बातें व स्वभाव जान जाया करते हैं। 'नवीन' जी की प्रकृति की सबसे बड़ी देन उनकी शारीरिक सम्पदा थी। उनके विषय में, गोस्वामी तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्ति उपयुक्तता से चरितार्थ होती है—

वृषभ स्कन्ध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु विशाल।

मांस-पेशियों के सुसंगठित होने वा अपना सुदृढ़ शरीर रखने के कारण; वे महाकवि जयशंकरप्रसाद की 'कामायनी' के मनु के समान बलशाली व तेजस्वी दृष्टिगोचर होते थे—

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ स्वच्छ रक्त का होता था जिनमें संचार।[5]

---

१. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'—'श्री सुमित्रानन्दन पन्त स्मृति-चित्र', पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ १२६-१२७।

२. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १६।

३. वही।

४. 'सरस्वती' जून, १९६०, पृष्ठ ३७७।

५. 'कामायनी', चिन्ता सर्ग, पृष्ठ ४।

वे आजानु बाहु थे, इसलिए अपनी कृतियों में यह शब्द तथा गुण-निरूपण अनेक बार आया है।[१]

उनकी छाती पुष्ट व सुडौल थी। श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ने कहा था कि "नवीन जी साठ वर्ष की लगभग उम्र के हैं पर आज भी जब उसे मैं नंगे बदन देखता हूँ तो ऐसा लगता है, जैसे पौरुष का पुंज उसकी छाती में संचित कर दिया गया है। व्यक्तित्व तो इतना आकर्षक है कि व्यक्ति स्वयं उस ओर खिचता चला जाता है।"[२] ऐसी ही छाती का कवि ने वर्णन किया है—

इतनी विस्तृत, इतनी चौड़ी हो इस मानव की छाती,
जिसे निरख कर स्वयं सृजन भी कहे, लखो, मेरी छाती।[३]

श्री बेंकटेश नारायण तिवारी ने लिखा है—"नवीन जी का कद लम्बा-चौड़ा था। उनका उन्नत ललाट, सिर पर घुँघराले केशों का गुच्छा, विशाल नेत्रों में प्रतिभा की आभा, गौर वर्ण का शरीर, उनकी सादगी, उनकी चंचलता उनकी स्नेहपूर्ण बातें किसके मन को मोह न लेती थी।"[४]

उनके मस्तक की केश-राशि श्वेत रेशम के स्निग्ध छल्ले जैसी लगती थी। श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने उनके केश को 'सन्‌लाइट सोप' के विज्ञापन की तरह धोबी-धवल बताया है।[५]

आँखें रसमग्न लबालब भरे प्याले-सी दृष्टिगोचर होती थी।[६] कवि ने अपने आपको 'लौह-शरीर' सम्पन्न बतलाया है।[७]

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि 'नवीन' जी प्रारम्भ में दुबले-पतले एकहरे नवयुवक थे।[८] किशोर 'नवीन' का वर्णन करते हुए श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है कि "गौर वर्ण तेजस्वी बालकृष्ण जब अपनी बात कहते, एक वातावरण सा जागृत हो जाता, वायु-मण्डल सा प्रकम्पित हो उठता और यह स्पष्ट दीख पड़ता था कि यह तरुण जो कुछ कह रहा है, अपने विश्वासों में डूबकर कह रहा है।"[९] प्रारम्भ से ही शर्मा जी के व्यक्तित्व में एक अनुपम तेज व निराली सज-धज मिलती है। बाद में यह अपने पूर्ण उन्मेष में हमें दिखलाई

---

१. (i) 'अपलक', पृष्ठ ५५।
   (ii) 'यौवन मदिरा' या 'पावस पीड़ा', पार्थिव, ५६ वीं कविता, छन्द ८।
२. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ३६।
३. 'रश्मि रेखा', सजल नेह-घन-भीर रहें, पृष्ठ ४५।
४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३८४।
५. 'समाज', विन्दु-विन्दु विचार, अप्रैल, १९५४, पृष्ठ ५।
६. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ४१।
७. 'अपलक', हम हैं मस्त फकीर, पृष्ठ ७३।
८. 'कल्पना', सितम्बर, १९६०, पृष्ठ २६।
९. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७९।

पड़ने लगी। सभा-गोष्ठियों में जब भी उन्हें कोई हार आदि पहनाया जाता था, तो उनका व्यक्तित्व और भी अधिक खिल उठता था।[१]

वेशभूषा—अपनी बाल्यावस्था में शर्मा जी अपनी पारिवारिक दरिद्रता के कारण पैबन्द लगे कपड़े पहनते थे। दो धोती पर पूरा वर्ष चल जाया करता था। नंगे पैरों रहते थे।[२] अपनी किशोरावस्था में वे उघाड़े सिर रहते थे और बेतरतीब कपड़े पहिनते थे। हाथ में लाठी रखते थे।[३] इसीलिए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने इनको प्रथम बार देखकर, 'देहाती रँगरूट' कहा था।[४] अपने प्रौढ़काल में शर्मा जी का समग्र व्यक्तित्व इन पंक्तियों में निहित हो गया—"स्फटिक श्वेत घुँघराले बाल, भव्य ललाट, सूर्याभ मुख, विस्फारित नयन, दीर्घ नासा, आजानु-बाहु, चौड़ा वक्ष, ऊँचा पूरा दुहरी हड्डी का डील-डौल। उस पर श्वेत धवल सलीकेदार खद्दर का कुरता, पाजामा, नेहरू जाकेट, मोटा चश्मा और कभी-कभी हाथ में छड़ी और घड़ी; यह था उनका वाह्यावरण। वाणी में सम्मोहक-गर्जन, स्वर में मनोमुग्धकारी आकर्षण, चरणों में उदधि-गाम्भीर्य, अलमस्त फक्कड़, यही था उनका ऊपरी व्यक्तित्व।"[५] शर्मा जी काली शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा भी पहनते थे। घर में वे बण्डी और घुटन्ना पहनते थे।[६]

वेश-भूषा से मनुष्य के विचारों का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शर्मा जी की वेशभूषा उनके राजकीय व प्रभावपूर्ण व्यक्ति होने के नाते, उपयुक्त व समीचीन थी। उन्हें साफ कपड़े पहिनने का शौक़ था।[७] कपड़ों के प्रति शर्मा के हृदय में उत्कट लालसा नहीं थी। वेश-भूषा में भी उनकी अपनी अलमस्ती का प्रदर्शन अधिक होता था। कभी-कभी वे एकमात्र जाँघिया व गंजी पहने भी घूमने निकल जाया करते थे।[८] 'नवीन' जी की टोपी लगाने की अपनी विशेषता थी। श्री 'उग्र' ने लिखा था कि "नवीन भाई की बाँकी टोपी पर निगाहें इस तरह अड़ जाती हैं कि दूसरे कपड़ों की ओर ध्यान नहीं जाता।"[९] इसीलिए श्री गोपालप्रसाद व्यास ने उनके जीवन-काल में ही लिखा था—

> धन धन बालकृष्ण महाराज कि छैला टेढ़ी टोपी वाले,
> बताओ एक बात तो मित्त कि तुम ने कैसे लिखे कवित;
> दुखाओ मत विधुरन के चित्त जन्म जन्म के कुँआरे॥[१०]

---

१. 'नया जीवन', दिसम्बर, १९६०, पृष्ठ २६।
२. 'साहित्यकारों की आत्मकथा', पृष्ठ ८७।
३. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७९।
४. 'रश्मिरेखा चित्र', पृष्ठ २००।
५. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५७।
६. 'सरस्वती', जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३०।
७. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५८।
८. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ९।
९. 'समाज', अप्रैल, १९५४, पृष्ठ ५।
१०. दैनिक 'अर्जुन', सन् १९४३।

खान-पान—अपनी तरुणावस्था में शर्मा जी बड़े भोजन-प्रिय थे। डटकर खाते थे। चालीस-चालीस रोटियाँ खाना उनके लिए मामूली बात थी। भोजनालय के महाराज उनसे घबड़ाते थे।[1] अपनी वृद्धावस्था में रुग्णावस्था के कारण, वे खाने-पीने के मामले में काफी नियमित व संयमित हो गये थे। दूसरों को भी रोकने-टोकने लगे थे।[2] उनका रसना-निग्रह पूर्ण मात्रा में था। खाने की मेज पर सामने परोसी हुई अच्छी से अच्छी चीजों को बिना छुए, रूखा-सूखा खाकर उठ जाते थे। जीवन के अन्त में कवि अपरिग्रही हो गया था।

आचार-विचार—शर्मा जी पक्के वैष्णव थे। कलकत्ते में एक सज्जन ने काली जी के दर्शनों का प्रस्ताव किया। उन्होंने बड़ी सौम्य मुद्रा के साथ कहा, "भाई साहब, वहाँ कोई पशु-बलि हो रही हो। मैं उसे देखकर आद्या-शक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा को कम नहीं करना चाहता।"[3] शर्मा जी संस्कृति व शिष्टाचार की प्रतिमूर्ति थे। वे अपने गुरुजनों के नाम के आगे 'आर्य' लगाते थे।[4] जीवन के अन्तिमकाल में उनकी भगवद्भक्ति बढ़ गई थी। वे विनय-पत्रिका और रामायण पढ़ने का भी आदेश दिया करते थे।[5]

विचारों से वे क्रान्तिकारी और विद्रोही थे। अन्याय, कुरीतियों व कंगाली से वे डटकर जूझते थे। भारतीय समाज के दोषों के ऊपर उन्होंने बहादुर के समान आक्रमण किया और उन्हें विध्वंस करने का प्रयत्न किया। अपने समय में, कानपुर में, साहित्य में समस्यापूर्ति-प्रथा के वे बड़े विरोधी थे। उस समय 'सुकवि' नाम का एक पत्र निकलता था जिसमें शताधिक समस्याओं की पूर्ति कवि-गण किया करते थे। इसे शर्मा जी व्यर्थ की वस्तु मानते थे और इसमें उन्हें कोई लाभ दिखाई नहीं देता था।[6]

उनका व्यवहार न्यायानुकूल व समान रहता था। वे किसी के साथ पक्षपात नहीं करते थे। सब के साथ वे एक समान स्नेह करते थे। जब वे 'प्रभा' के सम्पादक थे; तब लेखकों के नाम के आधार पर नहीं अपितु, रचना की उत्कृष्टता व अपने समान बर्ताव के अनुकूल रचनाएँ प्रकाशित करते थे।

'नवीन' जी को सर्वोच्च सार्टिफिकेट एक साम्यवादी मित्र ने दिया था "नवीन जी सहृदय हैं, भोले हैं और भरमाये जा सकते हैं।" श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने कहा है कि मनुष्यता, सहृदयता, पर दुख-कातरता और उदारता की दृष्टि से नवीन जी का स्थान वर्तमान लेखकों और कवियों में सबसे ऊँचा था।[7] एक शब्द में शर्मा जी के व्यक्तित्व का चित्रण यदि किसी को करना हो तो यह उसके लिए कहना पर्याप्त होगा कि वास्तव में शब्द

---

१. 'चिन्तन', स्मृति-अंक, पृष्ठ १११।

२. 'सरस्वती', जून. १९६०, पृष्ठ ३७८।

३. डॉ० गुलाबराय—'ब्रज भारती', पृथ्वी की विभूति, स्वर्ग की सम्पत्ति, स्मृति-अंक, पृष्ठ २०।

४. वही।

५. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १०।

६. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३४।

७. 'नवभारत टाइम्स', २९ जून, १९६०, पृष्ठ ६।

के सही अर्थों में 'शर्मा जी सज्जन थे'।[१] श्री भगवतीचरण वर्मा ने 'अतिशय उदार और सहृदय' इन दो शब्दों में बालकृष्ण के व्यक्तित्व को देखा है।[२] सरल सौजन्य का नमूना ढूँढ़ना हो तो नवीन जी के स्वभाव को दृष्टान्त रूप में रखा जा सकता है। उनका व्यक्तित्व बालक के समान निर्मल और ऋजु था।[३]

डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि एक भावुक मित्र ने उनके जीवन-काल में ही कहीं लिखा था कि वे महामानव थे। इस पर एक तथ्यदर्शी आलोचक ने सव्यंग्य प्रश्न किया था कि क्या मानव-चरित्र के एक भी दोष से युक्त वे थे ? आज मैं सोचता हूँ, वस्तु-सत्य क्या है और मेरा हृदय ही नहीं, बुद्धि भी यह उत्तर देती है कि इन दोषों के अभाव में तो वे मानव ही न रहते।[४] व्यसन में वे बीड़ी[५] और सिगरेट[६] के शौकीन रहे हैं। साफ गिलास में पानी पीना, साफ बिस्तर पर सोना और सात्विक भोजन के वे प्रेमी थे।[७]

अनुशासन वृत्ति—बालकृष्ण शर्मा ने अपने एक लेख में लिखा है "उनमें (श्री बालमुकुन्द गुप्त) शिष्य-भावना (Spirit of disci pleneship) विद्यमान थी। मैं बहुधा अपने अनुजों एवं मित्रों से कहा करता हूँ 'कि जिस व्यक्ति के अन्तस् में शिष्य-भावना का तिरोधान हो जाता है, उसका विकास रुक जाता है और उसका आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक पतन प्रारम्भ हो जाता है। × × × × × स्मरण रखिये शिष्य-भावना का अर्थ आत्म-दैन्य किंवा भूमि-रिंगण नहीं है। शिष्य-भावना का अर्थ है अपने मस्तिष्क के वातायन को खुला रखना और सद्यः विचार-वायु को प्रविष्ट होने देने का अवसर देना।"[८]

इस वृत्ति के कारण वे हर-हमेशा सिपाही-ही बने रहे। सन् १६४२ की क्रान्ति में गान्धी जी का विरोध करने पर भी, वे अपने नेता के आदेश के विरुद्ध नहीं गये और अन्य साथियों के सामान राष्ट्रीय ज्वाला की लपटों में कूद पड़े। इस रूप में वे महान् आज्ञा-पालक थे। ऐसे समय उनमें सैन्य अनुशासन भाव जड़ जमा लिया करता था। एक बार आचार्य नरेन्द्रदेव के विपक्ष में कांग्रेस ने बाबा राघवदास को फैजाबाद से खड़ा किया था। आचार्य नरेन्द्रदेव के प्रति शर्मा जी की अत्यन्त सम्मान की भावना थी। परन्तु, आज्ञापालन और दल-अनुशासन के आधार पर उन्होंने नरेन्द्रदेव का डटकर विरोध किया; चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार को ही मतदान देने का प्रचार किया और आचार्य जी को हराने में कोई कसर उठा नहीं रखी।[९]

---

१. 'सरस्वती', जून, १६६०, पृष्ठ ३८५।

२. 'वही, पृष्ठ ३६३।

३. 'विशाल भारत', जून, १६६०, पृष्ठ ४७३।

४. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृष्ठ १५५।

५. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १६६०, पृष्ठ ६।

६. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ४१ व ५३।

७. वही, पृष्ठ ५८।

८. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थ', वे जिन्होंने अलख जगाया, पृष्ठ ४०५।

९. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १६६०, पृष्ठ १६।

संविधान परिषद् में उन्होंने हिन्दी के पक्ष में अपनी पूरी शक्ति लगा दी और पदों व स्वार्थों का मोह न करके, अपनी दृढ़-भावना पर डटे रहे। इस दिशा में भी वे महान् अनुशासन वाले व्यक्ति थे।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात्, रेडियो की भाषा नीति बड़ी विचित्र थी। हिन्दुस्तानी के प्रचार व शासकीय आश्रय का वह युग था। हिन्दुस्तानी के नाम पर अरबी व फ़ारसी का प्रचार किया जाता था। हमारे हिन्दी के नेताओं ने इस सम्बन्ध में आकाशवाणी कार्यक्रमों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित स्थान व आधार दिलवाने की बड़ी कोशिशें की, परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। इस स्थिति को देखकर 'नवीन' जी के हृदय में अपनी अनुशासन की भावना जाग्रत हो गई। वे उस समय आकाशवाणी की एक केंद्रीय परामर्शदात्री समिति के सदस्य थे। उन्होंने समिति से त्यागपत्र दे दिया। अन्य सदस्य श्री वियोगीहरि व श्री मौलिचन्द्र शर्मा ने भी त्याग-पत्र दे दिया। इसकी हिन्दी जगत् में अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। अन्ततोगत्वा सभी के सहयोग के कारण, आकाशवाणी को अपनी हिन्दी नीति बदलने पर विवश होना पड़ा।[1]

मैत्री भावना—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि "मित्रों के लिए वे गंगाजल थे। सौजन्य की धारा के अटूट स्रोत थे।"[2] डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है, "मुझे स्मरण है कि एक बार पण्डित नेहरू कानपुर में भाषण कर रहे थे और मंच पर उनके निकट 'नवीन' जी बैठे थे। पण्डित जी को 'कामरेड' के हिन्दी पर्यायवाची शब्द की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने घूमकर 'नवीन' जी से पूछा—'कामरेड' की हिन्दी बोलो। नवीन जी ने कहा—'सखा'। पण्डित जी ने कुछ तेज जबान में कहा—'यह संस्कृत है, हिन्दी बोलो'। नवीन जी ने उत्तर दिया—'गुइयाँ'। यह शब्द पण्डित जी को पसन्द आया और वह अपने सम्पूर्ण-भाषण में 'कामरेड' की जगह पर गुइयाँ' बोलते रहे। इस छोटी सी रोचक घटना के बाद न जाने क्यों मेरे मन में कामरेड शब्द और नवीन जी का सम्बन्ध सदा के लिए स्थापित हो गया। शायद ऐसा इसलिए हुआ कि नवीन जी में मैत्री की वह भावना, जिसे अंग्रेजी में 'कामरेडरी' कहते हैं, कूट-कूटकर भरी हुई थी। परिचितों और मित्रों से उन्मुक्त मन से मिलना, उन्हें गले से लगा लेना, सदेव उनकी सहानुभूति और समर्थन प्रदान करना, ये 'नवीन' जी के स्वाभाविक गुण थे।"[3]

मिलनसारिता और सामाजिकता के पावन उपादान, शर्मा जी में, विपुल-मात्रा में उपलब्ध होते थे। अपने कारावास-जीवन में इन्हीं गुणों से वे बड़े लोकप्रिय व सर्वं-जन हितकारी बन गये थे। श्री भगवतीचरण वर्मा ने उन्हें 'आशुतोष' की उपाधि से विभूषित किया है।[4] अपने मित्रों व स्नेह-भाजनों के प्रति उनका बड़ा ममत्व भरा व्यवहार था। वे

---

१. श्री रामप्रताप त्रिपाठी—'सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन-ग्रन्थ', श्री सेठ गोविन्ददास जी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ ७१।

२. 'विशाल भारत', जून, १९६०, पृष्ठ ४७३।

३. साप्ताहिक 'आज', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९।

४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३९३।

'दिनकर' जी का बल बढ़ाने के लिए, उन्हें 'कवि-शार्दूल' कहा करते थे। वे सब के आश्रय, सब के सहायक और सब के मित्र थे। 'दिनकर' जी ने लिखा है कि "आजकल हम जिसकी भी विनम्रता की प्रशंसा करना चाहते हैं, उसे सीधे अजातशत्रु कह डालते हैं। किन्तु, सच तो यह है कि साहित्य में, अजातशत्रु केवल 'नवीन' जी थे।"[१] उन्होंने कभी भी अपने आपको 'बड़ा आदमी' नहीं माना। उनकी मैत्री मौखिक नहीं थी। इस सम्बन्ध में लोकनायक सन्त कबीर का यह दोहा उन पर उचित अनुपात में चरितार्थ किया जा सकता है —

नेह निबाहे ही बिने, दूजी बने न आन।
तन दे, मन दे, शीश दे, नेह न दीजे जान॥[२]

अपने मित्रों के हित को वे अपना हित मानते थे। उनके पदसम्मान-प्राप्ति में उनकी आत्मिक प्रसन्नता होती थी।[३] वे अपने मित्रों की बड़ी चिन्ता करते थे।[४] उनके दैनिक जीवन के सम्बन्ध में भी वे सचिन्त व मार्गदर्शक रहते थे। वस्तुतः स्नेह व मैत्री के वे जीवन्त आगार थे।

विनोद वृत्ति—शर्मा जी की सामाजिक सफलता में उनका हास-परिहास मुख्य अंग है। वे डटकर विनोद करते थे और इसी कारण वे जल्दी ही घुल-मिल जाते थे। वे खुली तबियत के व्यक्ति थे। वे अपने को 'खुली पुस्तक' कहा करते थे।[५] इधर कुछ दिनों से उनका जीवन भी खुली पुस्तक की तरह हो गया था।[६] अपने मुक्त हास्य से अपने मण्डली या स्थान को गुञ्जायमान कर दिया करते थे।

उनके हास्य के माध्यम विभिन्न प्रकार के थे। कभी तो वे नाम बिगाड़ कर कहते या लिखते थे, यथा—मुंशी गोपीनाथ शर्मा को उलटकर उसका ब्राह्मी नाम 'शीमु पीगो थान' बना देना;[७] या 'कन्हैयालाल को' 'कान-हिलाए लाल' लिखना जिसका अर्थ 'बछड़ा या गधा' है।[८] पत्र में भी इसी का ही रूप कहीं-कहीं मिलता है यथा—

---

१. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ५।

२. 'नवनीत', अक्टूबर, १९६०, पृष्ठ ९५।

३. श्री सूर्यनारायण व्यास, 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९२।

४. "श्रीनगर में नीडो होटल के पास ही एक शिखर है, जिसपर का शिव-लिंग कहते हैं, शंकराचार्य जी का स्थापित किया हुआ है। जब श्री बाबूराम सक्सेना और हजारीप्रसाद द्विवेदी जी शिव जी का दर्शन करने को उस शिखर पर जाने लगे, नवीन जी ने मुझे उन लोगों के साथ जाने से रोक दिया। कहा—'इन सांड़ों की नकल मत करो। कहीं हार्ट स्ट्रेन कर बैठे तो हाथ मलकर रह जाओगे'।"—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ९।

५. "Don't hesitate, I am an open book." (झिझको मत, मैं एक खुली हुई पुस्तक हूँ।)—'नवीन' जी, 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५२।

६. श्री सियारामशरण गुप्त का मुझे लिखित (दिनांक १९-४-१९६१ का) पत्र।

७. 'प्रहरी', १९ अक्तूबर, १९६०, पृष्ठ ८।

८. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ ११।

"श्री पण्डित बनारसीदास जी साँड जी चतुर्वेदी की सेवा में,

महोदय,

आगरे के पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल आपके खुर दर्शनार्थ पूजनीय श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के आवास में उत्सुकतापूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

क्या आप अपना ककुद सँभालते हुए यहाँ अपने चतुष्पदों से गुप्त जी के आवास को खुर-खुरा करने की कृपा करेंगे—आपका हांकक बालकृष्ण शर्मा, ६-५२-५२। श्री पण्डित बनारसीदास जी साँड जी चतुर्वेदी, साँड-सदन, १२३, नार्थ एवेन्यू।"[1]

सामान्य वार्त्तालाप में भी वे विनोद की बात कहकर, वातावरण को उत्फुल्ल कर दिया करते थे।[2] उनकी मौलिक मजाक की कल्पना के लिए, निम्नलिखित दो पद्य स्मरणीय हैं—

पाखनस्य सु-सदने घंटाध्येकं न बैठते जो,
तेनाम्बा यदि सुतिनी बद बन्ध्या कीदृशी नाम ?

इस पद्य में महादेव ने पार्वती से कहा है—

कब्जी तोनपर: शत्रु:
नास्ति टट्टी समं सुखम्।
खुलासा टट्टि लाभस्तु।
पुण्य लभ्या वरानने।[3]

इस प्रकार वे अपनी विनोदी वृत्ति से सब का मनोविनोद किया करते थे। उनका यह विनोद कभी-कभी अपने मित्रों पर शारीरिक क्रिया-प्रक्रिया के रूप में भी उतर पड़ता था।[4] उनकी हास-परिहास की वृत्ति ने उन्हें बहुत दिनों तक स्वस्थ रखा। एक आंग्ल कवि ने कहा है कि "हँसते समय दुनिया साथ देती है, रोते समय कोई साथ नहीं देता।"[5] हास्य इसीलिए सामाजिक भाव माना गया है।

---

१. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ७।

२. ऐसे ही, एर्णाकुलम से शंकराचार्य जी के जन्म-स्थान तक जाने का जब कार्यक्रम बन रहा था, तब नवीन जी ने बड़े ही विनोद से कहा—"दिनकर, ये लोग। यानी मोतूरी श्री सत्यनारायण, हजारीप्रसाद जी (आदि) गान्धी जी के बैल हैं। ये खाएँगे तो काम भी करेंगे। मगर, अपना तो बापू के गधे ठहरे। खाया और हीचों-हीचों करके सो रहे। सो, इन्हें तो जाने दो, किन्तु तुम मत जाना।"—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ९।

३. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९१-४९२।

४. श्री सूर्यनारायण व्यास, वीणा, स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९१।

५. "Laugh and the World laughs with you,
Weep and you weep alone,
For the sad old earth must borrow its nuith.
But has trouble enough of its own"
Ella Wheeler Wiecox, 'Solitude' (1883)

भावुक और करुणाशील—'नवीन' जी मूलतः कवि थे अतएव, वे अपनी भावनाओं से अधिक परिचालित होते थे। उनमें बुद्धि-पक्ष की अपेक्षा हृदय-तत्त्व का प्रभुत्व अधिक था। भावोद्रेक व करुणा के तत्व उनके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग थे। इस प्रकार वे बहुत जल्दी आवेश में आ जाते थे और शीघ्र दयार्द्र भी हो जाते थे। बच्चों को मारना-पीटना उन्हें अच्छा नहीं लगता था और ऐसे समय उनकी करुणा उभर कर रोष का रूप भी ले लिया करती थी।[1] दीन-दुखियों को देखकर वे सहज ही द्रवित हो जाया करते थे। वे स्टेशन पर पहुँचकर टिकिट खरीदने के बजाय टिकिट के पैसे किसी जरूरतमन्द को देकर घर वापस आ जाया करते थे।[2] बीमारी के दिनों में भी शर्मा जी ने अपने पथ्य और चिकित्सा के लिए बचाये हुए पैसों का मोह नहीं किया और उसमें का भी कुछ अंश वे जरूरतमन्द व्यक्तियों को देते रहे।[3] अपनी इसी भावुकता व करुणाशीलता के कारण, वे राजनीति में भी अन्य लोगों को पद दिलाने व सहायता करने में सदा अग्रणी रहे, परन्तु खुद कभी कुछ नहीं लिया। एक बार श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "यदि वे कवि न होते तो राजनीति में बहुत आगे जाते और यदि राजनीति में न होते तो एक बहुत बड़े कवि होते।"[4]

भावुक वे इतने अधिक थे कि अक्सर रो दिया करते थे। इन्दौर के एक कवि-सम्मेलन में उन्होंने एक वेदना भरी कविता सुनी तो उस कवि के रोते हुए पैर पकड़ लिये।[5] ऐसे अवसरों पर उनका लौह पुरुष मोम के समान पिघल जाया करता था। भावावेश में वे कभी-कभी बहक भी जाया करते थे। ऐसे समय उनके भावोद्रेक के साथ उनकी अल्हड़ता भी मिल जाया करती थी।[6]

वे इतने भावुक थे कि अक्सर मिलने वाले को उनकी स्थिति का ठीक भाव भी नहीं होता था। कितनी ही बार तो वे कानपुर में गंगा के सरसैयाघाट की ओर जानेवाले रास्ते में

---

१. एक दिन हम दोनों संध्या-समय संसद् के सदस्यों की बस्ती नार्थ ऐवेन्यू में टहल रहे थे। सहसा एक ओर से एक बच्चे का चीत्कार सुनाई दिया, जिसे अपने पिता अथवा अभिभावक का कोप-भाजन बनना पड़ा था। बालकृष्ण पिटने वाले की करुण क्रन्दन सुनकर पीटनेवाले को बरजते हुए गरज उठे और उस ओर झपटे। मैं हतप्रभ-सा हो गया और उनके साथ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचा। उनका उग्र रूप देखकर ताड़क ही नहीं ताड़ित भी सहम गया। वह दृश्य देखकर मुझे आपकी एक अप्रकाशित रचना 'सान्त्वना' की दो पंक्तियाँ स्मरण आ गयीं—

बच्चों के माँ-बाप कभी यदि उनको मारें,
तो भी बच्चे उन्हें छोड़कर किसे पुकारें?"

—श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'सरस्वती' जून, १९६०, पृष्ठ ३७८-७९।

२. साप्ताहिक 'सैनिक', १८ मई, १९६०, पृष्ठ ७।

३. 'नवभारत टाइम्स', २९ जून, १९६०, पृष्ठ ६।

४. 'हिमप्रस्थ', जुलाई, १९६०, पृष्ठ ४।

५. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५३६।

६. श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५०३।

उस स्थान पर एक बिजली के खम्भे के नीचे खड़े कविता लिखते दिखलाई पड़े जिसके निकट आजकल कानपुर का गुरुनारायण खत्री इण्टर कालेज है और जहाँ पहले थियासोफिकल नेशनल कालेज और स्कूल था।[1]

अक्खड़-अल्हड़—अक्खड़ता के योग-दान से शर्मा जी के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। अल्हड़ता के रूप में वे सदा प्रसिद्ध रहे हैं। उनके काव्य में भी यह रूप दिखाई देता है। जीवन के अन्तिम दिनों में तो उन्हें किसी बात की चाह नहीं रह गई। कबीरदास का यह दोहा उन पर अक्षरशः प्रयुक्त होता था—

चाह गई, चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह।
जिन्हें कछू ना चाहिए, वे नर शाहंशाह॥

शर्मा जी के फक्कड़पन में फाँस का अभाव था। अक्खड़ता के मूल में यही भावना कार्यशील थी। मस्ती, मादकता, मतवालापन और चिन्ताविहीनता मानों घनीभूत होकर, उन पर अलसाकर बिखर गई थी। कवि ने स्वयं अपने आपको मस्त फकीर कहा है।[2]

श्री भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है कि "मैंने उस व्यक्ति को टूटते हुए देखा है लेकिन अन्तिम क्षण तक वह लड़ता रहा। उसके अन्दरवाली नेकी और ईमानदारी अन्तिम क्षण तक कायम रही—अन्तिम क्षण तक वह उदार रहा, जनों का कल्याण ही करता रहा।"[3]

उनकी अक्खड़ता के कारण ही श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है कि "जो बालकृष्ण गणेश जी, आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी तथा अपने अन्य गुरुजनों के काबू में नहीं रह सके, मुझे बार-बार सन्देह होता है कि वे अपनी मृत्यु के काबू में कैसे रह सकेंगे?"[4]

अवढर-दानी—'अवढर' शब्द गोस्वामी तुलसीदास का है जो कि अपनी अर्थ-ध्वनि के साथ शर्मा जी पर भी चरितार्थ हो गया है। इस रूप में वे 'फकीर बादशाह' और 'नीलकण्ठ' के रूप में सम्बोधित किये जाते थे।[5] अपनी रुग्णावस्था में भी वे अपने दान के मोह का संवरण नहीं कर सके।[6] राजनीति में दानी के रूप में जो ख्याति श्री रफी अहमद किदवई को मिली; वह साहित्य में 'निराला' व 'नवीन' को प्राप्त हुई। यह बात सर्वविदित थी कि शर्मा जी के मुख से 'नहीं' नहीं निकलता है। परिचित-अपरिचित सभी व्यक्ति उनके घर ठहरते थे और भोजन-नाश्ता आदि सभी का वे प्रबन्ध करते थे। शर्मा जी का रसोइया मुरली भी उन्हीं

---

१. साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १९६०, पृष्ठ ९।

२. 'अपलक', पृष्ठ ७३।

३. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३९४।

४. वही, पृष्ठ ३८२।

५. श्री रामसरन शर्मा—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', फकीर बादशाह मेरे दादा, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १७।

६. "पहली बीमारी के बाद मैंने एक दिन उनकी पत्नी से पूछा—घर के खर्च-बर्च का क्या हाल है? वह बोली—किसी तरह चल जाता है। मुश्किल सिर्फ, यह है कि बालकृष्ण का हाथ नहीं रुकता।"—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १०।

के समान भावुक व सेवा-भावी था। श्री सूर्यनारायण व्यास ने लिखा है कि श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उस पर भी एक कविता बनाई थी।[1] परन्तु यह बात ठीक नहीं है।[2]

वे विभिन्न प्रकार से सहायता किया करते थे। उन्होंने कई बार अपने स्नेहियों को मनीआर्डर से रुपये भेजे।[3] साहित्य-सेवियों के सहायतार्थ, उन्होंने खुद लेख लिखकर, उसके पारिश्रमिक का पैसा, उनके पास भिजवाना चाहा।[4] अपने पहिनने के कपड़े भी उन्होंने चटपट माँगने वालों को दे डाले थे।[5] 'नवीन' जी को तीन-सौ रुपये मासिक 'प्रताप' परिवार से मिलते थे। किन्तु कुल रकम वह किसी असहाय परिवार को दे देते थे।[6] वे इतने भोले थे कि उन्हें 'भोलेनाथ' के विशेषण से विभूषित करना अनुचित प्रतीत नहीं होता था।[7] सामने देखते, समझते, वे हँसकर बेवकूफ बन जाया करते थे। किसी ने याचना की और उनके दाता कर्ण का हाथ सहायता को बढ़ा। फिर चाहे माँगने वाला झूठा ही क्यों न हो, उनकी सज्जनता का लाभ ही क्यों न उठा रहा हो।[8]

इन प्रवृत्तियों के कारण वे अपने मन की निष्कपटता, सात्विकता व सौम्यता को जहाँ अपने समाज में बिखेर सके; वहाँ उनके काव्य में भी ये ही गुण प्रचुर-मात्रा में उपलब्ध हो सके।

निर्भीक-प्रखर—शर्मा जी जहाँ दया व करुणा के प्रश्नों पर अत्यन्त भावुक थे, वहाँ न्याय व सिद्धान्त के पीछे सिर भी कटाने के लिए तैयार थे। वे व्यक्ति का विरोध नहीं करते थे, अपितु सिद्धान्तों का विरोध करते थे। उनका उग्र व प्रखर स्वभाव बार-बार उभर आया करता था। इस मामले में वे किसी का भी भय नहीं खाते थे और अपनी बात का ही समर्थन करते।

---

१. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९२।

२. श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी का मुझे लिखित (दिनांक १६-११-१९६० का) पत्र।

३. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ ११।

४. "यह एक जरूरी पत्र है। मेरे एक मित्र हैं और साहित्य-सेवी हैं। वह बीमार रहते हैं। प्लूरसी के शिकार हैं। बहुत दुर्बल हैं और बहुत निर्धन। मैं उन्हें छः महीने तक आराम देना चाहता हूँ, मुझे २५) महीने उनके लिए चाहिए। क्या आप यह कर सकते हैं कि मैं 'विशाल भारत' के लिए छः महीने तक लगातार लेख लिखूँ और आप २५) महीना सीधे उन्हीं के पास, मेरे लेखों के पुरस्कार के रूप में, भिजवाते रहें?"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखित श्री बालकृष्ण शर्मा का (दिनांक १० जून, १९३७ का) पत्र, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ११।

५. श्री रामसरन शर्मा—'नवभारत टाइम्स', साकार सहृदयता : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ७।

६. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १९।

७. श्री रामशरन शर्मा—'ब्रजभारती', स्वर्गीय दादा नवीन जी, मार्गशीर्ष संवत् २०१६, पृष्ठ २०।

८. श्री रामसरन शर्मा, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १७।

अनुचित बात पर उन्हें एकदम क्रोध आ जाया करता था। श्री कृष्णलाल श्रीधरानी ने लिखा है कि "वे गरम मिजाज के थे। मैंने कई बार उन्हें प्रेस-गैलरी से नीचे भवन में सदन की कार्यवाही के बीच गरम होते हुए देखा था। मुझे शंका होती थी कि उनकी भावुकता राजनीति के सोपान पर चढ़ते समय अवश्य ही बाधक रही होगी। मैं नहीं जानता कि उन्हें अपनी स्पष्टवादिता की क्या कीमत चुकानी पड़ी। उन्हें अन्य बातों की अपेक्षा बाह्याडम्बर और ढोंग से अत्यन्त ही घृणा थी।"[1] वे स्पष्टवादी व्यक्ति थे। जो बात भी कहनी पड़ती; उसे बिना किसी लाग-लपेट से कह देते थे। विकार व विषमता नामक वस्तु का उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था। साफ बात मुँह पर ही कहते; बुरा लगे चाहे भला।[2] उनके व्यक्तित्व में तेजस्विता थी। वे बड़े खरे थे।[3] इस तेजस्वी पुरुष ने हिन्दी के विरोध को व्यक्तिगत रूप से भी कभी सहन नहीं किया।[4] वे इतने निर्भीक थे कि जिस बात को वे कहना चाहते, उसे कहकर ही रहते; चाहे कितना ही विरोध क्यों न हो और कोई रुष्ट भले ही हो जाय। परन्तु आज्ञा-पालन में भी यही दृढ़ता फिर उनकी दिखलाई देती थी।[5]

---

१. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५२६।

२. "एक दिन एक मान्य महज्जन के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में एक कवि महाशय कुछ पद्य लिखकर लाये और मुझे सुनाने लगे। वह रचना मुझे न उनके योग्य लगी और न उन्हीं के लिए जिनके लिए वह लिखी गई थी। फिर भी मुझे यह कहते हुए संकोच हुआ। एक पद्य के लिए अवश्य कह दिया, इसे न पढ़ा जाय तो अच्छा। उन्होंने 'हाँ' तो कह दिया परन्तु ऊपर के मन से। मैं सोचने लगा, लेखक को अपनी रचना का मोह कैसा होता है। तब तक बालकृष्ण आ गये। कवि महाशय ने मुझसे कहा – 'नवीन' जी को भी सुना दूँ और वह पद्य भी।' मैंने कहा 'जैसी आपकी इच्छा'। नवीन जी कविता सुनने के पहले ही उनकी प्रशंसा करने लगे—'अरे इनका क्या कहना, ये तो सभा-सम्मोहन हैं'। परन्तु ज्यों ही कवि महाशय अपनी रचना पढ़ने लगे, नवीन जी का भाव परिवर्तन होने लगा। उस पद्य के सुनते ही वे कठोर होकर बोल उठे 'कुछ नहीं', कुछ नहीं', दो कौड़ी की। इसे फाड़ फेंको, इसे सभा में मत पढ़ना।"—श्री मैथिलीशरण गुप्त; 'सरस्वती'; जून, १९६०, पृष्ठ ३७८।

३. श्री यशपाल जैन—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नवीन जी चले गए, १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ २७।

४. "जिस दिन श्री शंकरराव देव ने अपने भाषण में कुछ ऊल-जलूल बातें हिन्दी के विरोध में कहीं, उस दिन इस नर-केसरी ने उन्हें डाँटा और अपनी दोनों बाहें ऊपर उठा ली। उस समय कई सदस्य उन्हें समझा बुझाकर परिषद् से बाहर ले आए।" श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई १९६०, पृष्ठ २६।

५. "१९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के प्रस्ताव में शर्मा जी ने बम्बई के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ऐतिहासिक अगस्त अधिवेशन में एक संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी। वह संशोधन नहीं, अपितु उनकी अपनी भाषा में प्रस्ताव का पुनर्लेखन था। स्वभावतः अध्यक्ष महोदय ने उस संशोधन को उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी और उसे नियम-विरुद्ध घोषित किया। इस पर शर्मा जी न चिढ़े, न तिलमिलाये, उन्होंने बहुत ही

साहसिकता--डॉ० बच्चन ने 'नवीन' जी को 'जिन्दा शहीद' कहा है।[1] 'अग्निदीक्षा' वाली घटना ही प्रमाणित कर सकती है कि वे वास्तव में महान् साहसी थे। साहस के कामों में वे सबसे आगे रहते थे और ऐसे समय अपने प्राणों को हथेली पर रख लिया करते थे।[2] अपने अदम्य साहस के आधार पर वे आगा-पीछा कुछ नहीं देखते थे। कार्य करना ही उस समय उनका मुख्य लक्ष्य रहता था। ऐसे समय वे अपने चमत्कारी गुणों का प्रदर्शन करते और स्थिति को सम्हालने में सफल हो जाया करते थे।[3] शर्मा जी ने अपने आन्दोलन के युग में

शान्त भाव से पूछा कि 'क्या उन्हें बोलने का अवसर मिलेगा'। 'क्यों नहीं?' अध्यक्ष ने कहा और उन्हें बोलने का अवसर मिला। शर्मा जी ने खड़े होते ही कहा कि 'उन्हें आशा नहीं कि उनके बोलने से स्थिति में कोई अन्तर आएगा। इस पर दर्शकों ने चिल्ला कर कहा—'बैठ जाओ, बैठ जाओ।' शर्मा जी ने शान्त भाव से उत्तर दिया—'भाइयो, डरो मत, मैं अभी बैठ जाता हूँ। किन्तु बोलने का उन्हें अधिकार था और लगभग २० मिनट तक उन्होंने कांग्रेसी नेताओं की कड़ी आलोचना की। अन्त में उन्होंने अपने भाषण को इन शब्दों से समाप्त किया—'मेरे जो विचार थे, मैं प्रकट कर चुका। अब आप जो आदेश देंगे उसका मैं एक सैनिक के समान पालन करूँगा'।"—श्री रामशरण विद्यार्थी, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ २६।

१. 'नये पुराने झरोखे', पृष्ठ २६।

२. "एक बार उन्नाव जेल में कानपुर के एक प्रतिष्ठित कांग्रेस जन तथा श्री रफी अहमद किदवई उनके साथ थे। इन प्रतिष्ठित कांग्रेस जन की धर्मपत्नी को क्षय हो गया था। नजरबन्दी की अवस्था में अपनी पत्नी का हाल जानने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो इन कांग्रेस जन ने शर्मा जी व श्री रफी अहमद से किसी प्रकार संवाद मँगवाने का प्रबन्ध करने को कहा। सभी प्रकार का प्रतिबन्ध रहते हुए भी शर्मा जी ने अदम्य साहस प्रदर्शित करते हुए उनके घर से पत्र मँगवाने का प्रबन्ध किया, एक प्रयोग में न आनेवाली बरसाती नाली के मार्ग से उनके पास पत्र आने की व्यवस्था थी। पहरेदारों की निरन्तर चौकसी में नाली के मार्ग से पत्र पा सकना अत्यन्त कठिन ही नहीं वरन् बड़े खतरे का सामना करना था। किसी साथी का साहस न था कि वह इस खतरनाक कार्य को सम्पन्न करता। शर्मा जी ने स्वयं ही इस कार्य को सम्पन्न करने का निश्चय किया। नाली में दिन भर उन्हें कान लगाए लेटे रहना पड़ा और रात्रि में उन्हें पत्र मिल सका। खैर हुई कि उन्हें कोई पहरेदार न देख सका और वह बिना गोली का शिकार बने अपने मित्र की उत्सुकतापूर्ण व्यथा को दूर कर सकने में समर्थ हुए।"—श्री पन्नालाल त्रिपाठी, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १७।

३. "महात्मा गान्धी की मृत्यु के उपरान्त क्रोधित भीड़ बिड़ला भवन के सामने एकत्रित हो गई थी। जबकि महात्मा जी के मित्र, साथी, सम्बन्धी सभी वहाँ आने लगे थे और भीड़ के कारण उनका भीतर पहुँचना असम्भव था, तब 'नवीन' जी ने मुझको देखकर खोलने को कहा था। मैं नहीं चाहता था कि वे भीड़ में बाहर जाँय। वे भीड़ में गये और जोर से बोलकर अपना हाथ हिलाकर आनेवालों के लिए आखिर रास्ता बना ही लिया, जिससे देर से आनेवाले (सभी) बिड़ला-भवन में आ सकें।"—श्री कृष्णलाल श्रीधरानी, 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५२६।

काफी साहसिकता प्रदर्शित की थी। उन्होंने दिन-रात कष्ट झेले परन्तु जब फलप्राप्ति का अवसर आया, तो वे दूर ही बने रहे। तब की राजनीति प्राण-दान की राजनीति थी।[१] इसमें वे दक्ष थे और खूब जूझे। जब 'कुर्सी' व 'भोग' की राजनीति आई, वे अपनी प्रकृति के अनुकूल निरपेक्ष रहने लगे। स्वतन्त्रता के पश्चात् वे निरे देश भक्त ही बने रहे, राजनीतिज्ञ नहीं। यदि उनमें लोकपटुता होती तो वे अवश्य ही अपनी स्थिति का पूरा 'सदुपयोग' करते और राजनीति में मन्त्रिपद प्राप्त करते तथा साहित्य में प्रतिष्ठा व सम्मान के भागी होते। परन्तु वे आजीवन 'बाबा भोलानाथ' ही बने रहे।

अध्ययन—अपने बहुमुखी व व्यस्त जीवन के होते हुए भी शर्मा जी को अध्ययन का व्यसन न था। वे कारावास में किताबें ही पढ़ते रहते थे। उनको सिर्फ पुस्तकों के, अपने पास कुछ रखते भार लगता था।[२] श्रीकृष्णलाल श्रीधरानी ने लिखा है कि वे मेरी अंग्रेजी पुस्तकों, कविताओं तथा नाटकों से प्रेम रखते थे। गालिब, शेक्सपियर, पद्माकर, गोरख-वाणी आदि का उनका विशेष अध्ययन था।

अपनी माता से सीखा यह पद भी उन्हें बड़ा रुचिकर था—

अरि जाहु री लाज, ऐसी मेरे कौन काज,
आये कमल नयन नीके देखन न दीन्हें॥[3]

शर्मा जी तुलसीदास के भक्त थे। उनके ऊपर सूर, मीरा और कबीर का रंग गहरा पड़ा था।[४] उन पर उपनिषद्, गीता तथा भागवत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।[५] बालमीकिरामायण का भी उन्होंने विशेष अध्ययन किया था।[६] वे समाजवाद के ज्ञाता थे[७] और फ्योरबाख, फ्रेडरिक एंगिल्स आदि के मतों का उद्धरण देते थे।[८]

उनके काव्य पर तिलक, महात्मा गान्धी व आचार्य विनोबा भावे के दार्शनिक सिद्धान्तों व कार्य-प्रणालियों का प्रभाव देखा जा सकता है। वे हिन्दी, संस्कृत, बंगला व अंग्रेजी भाषा के साहित्य में आकण्ठ डूबे हुए थे।

'नवीन' जी का यह विश्वास था कि विज्ञान के द्वारा आत्मा की स्थिति अवश्य ही प्रमाणित होगी। वे आत्मज्ञान को ही जीवन का चरमोद्देश्य मानते थे। वे आप्टे की संस्कृत-अंग्रेजी वाली 'डिक्शनरी' हमेशा अपने पास रखते थे और उसी से शब्द देखा करते थे। उन्होंने शैली, कीट्स तथा वर्ड्सवर्थ का भी अच्छा अध्ययन किया था।[९] आस्कर वाइल्ड एवं

---

१. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५०।
२. 'प्रहरी', १९ अक्तूबर, १९६०, पृष्ठ ८।
३. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७८।
४. 'व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ ३४५।
५. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९३।
६. 'ऊर्मिला', भूमिका, पृष्ठ 'छ'।
७. 'नवभारत टाइम्स', २९ जून, १९६०, पृष्ठ ६।
८. 'क्वासि', भूमिका।
९. श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी द्वारा ज्ञात।

विक्टर ह्यूगो उनके प्रिय साहित्यिक थे ।[१] 'कबीर ग्रन्थावली' का उन्होंने गहन अध्ययन किया था ।[२] अपने यौवन-काल में वे गान्धी जी की पुस्तकें और उनका पत्र 'यंग इण्डिया' खूब पढ़ते थे । इसी प्रकार तिलक जी का साहित्य और लाला लाजपतराय के पत्र 'प्युपिल' का भी काफी अध्ययन करते थे । श्री गोखले के भाषण एवं रवि बाबू की पुस्तकों का भी उन्होंने अवगाहन किया । एच० जी० वेल्स तथा जार्ज बर्नाड शा के वाङ्मय का भी उन्होंने पारायण किया ।[3] किशोरावस्था में उन्होंने हिन्दी एवं मराठी के कई उपन्यासों का भी अध्ययन किया था । 'आनन्दमठ' उनका प्रिय उपन्यास था ।[४] 'नवीन' जी ने हर्बर्ट रीड की 'पोयट्री एण्ड अनार्किस्म'[५] और श्री मावलंकर की आत्मचरितात्मक पुस्तक,[६] रूसी उपन्यासकार फिडियोर ग्लेड कोफ, टालस्टाय व तुर्गनेव के क्रमशः 'सीमेण्ट', 'अनाकरेनिना' तथा 'लिजा'[७] के भी नाम उनकी अध्ययन-तालिका में आते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने, साहित्य, दर्शन, इतिहास, राजनीति, विज्ञान आदि समग्र क्षेत्रों का गहन अध्ययन एवं मनन किया था ।

रचना विधि – 'नवीन' जी ने कहा है—"लिखने का ढंग ऐसा कि जो कोई भी छन्द सामने आ गया उसी पर मन्थन होने लगा और उसकी प्रथम पंक्ति लिख ली । अधिकतर एक ही सीटिंग में लिखता हूँ । मैं कॉपिंग पेंसिल से लिखता हूँ ताकि मिटे नहीं । लिखने के लिए नोटबुकें खरीद लेता हूँ । फाउन्टेन पेन से इसलिए नहीं लिखता कि यदि उसे खोलूँ और बीच में सोचने लग जाऊँ तो स्याही सूख जाय और गति रुक जाय । अपनी कविता लिखकर किसी को सुनाने की इच्छा नहीं होती । हाँ, कोई प्रेमी आ जाय और कहे तो दूसरी बात है । लिखने का कोई समय भी नहीं है । जब उमंग आती है, लिख लेता हूँ । बात यह है कि मेरे जीवन में नियमितता का अभाव है, इसलिए नियमित लिखने का स्वभाव नहीं है ।"[१]

'नवीन' जी एकान्त या 'मूड' आदि के आडम्बर-प्रिय व्यक्ति नहीं थे । प्रातः स्वल्पाहार करके मेज पर बैठकर वे तत्काल साहित्यिक रचना का निर्माण कर लिया करते थे ।[९] श्री प्रभाकर ने उन्हें फैजाबाद-कारावास में 'ऊर्मिला' काव्य लिखते हुए देखा था । उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार से किया है—"एक दिन मैं बैरकों के पीछे यों ही जा निकला, तो देखा, घास पर उलटे लेटे वे कुछ लिख रहे हैं । मैं धीरे-धीरे जाकर अशोक वृक्ष के पीछे खड़ा

---

१. श्री भगवतीचरण वर्मा द्वारा ज्ञात ।

२. श्री पन्नालाल त्रिपाठी द्वारा ज्ञात ।

३. श्री देवव्रत शास्त्री द्वारा ज्ञात ।

४. कवि के सहपाठी श्री गं० रा० गोखले, इन्दौर का मुझे लिखित (दिनांक २४-१-१९६२ का) पत्र ।

५. 'विशाल भारत', जनवरी, १९६२, पृष्ठ ३५ ।

६. 'त्रिपथगा', मार्च, १९५६, पृष्ठ ६३ ।

७. 'वीणा', जून, १९५०, पृष्ठ ४६९-४७१ ।

८. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५५ ।

९. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ७ ।

हो गया। वे गुनगुनाते जाते और लिखते जाते। बीच में बीड़ी जला लेते, दो-चार कश खींचते और विचारों में खो जाते। बीड़ी बुझ जाती पर उन्हें पता न चलता और वे कश खींचते रहते, धुआँ न निकलता, पर उन्हें इसका पता ही न चलता। बाद में ध्यान टूटता, तो वे फिर बीड़ी जलाते और २-४ कश के बाद वह फिर बुझ जाती, तो नई जलाते। गुनगुनाते बराबर रहते और मन में जैसा भाव होता, चेहरे की वे रेखाएँ वैसी ही बदलती रहतीं। कभी वे उत्फुल्ल हो उठते, कभी एकदम उदास। कभी वे शून्य भाव से बहुत दूर सामने देखते रहते, तो कभी वे सिर जमीन पर रख लेते और उसे अपनी लम्बी भुजाओं में लपेट लेते। फिर सिर उठाते, कुछ सोचते, कुछ गुनगुनाते और कुछ लिखते। वे कविता लिख रहे थे। कोई ४५ मिनट बाद वे उठे और अपनी बैठक की ओर चले, तो मुझे लगा कि जैसे कोई पहलवान अपने पट्ठों को जोर करा कर अखाड़े से आ रहा हो। मुझे यह अजीब सा लगा, पर बाद में जाना कि वे अपने विशाल काव्य 'ऊर्मिला' का परिमार्जन कर रहे थे और लिखते समय अपनी नायिका के दुख में इतने डूब जाते थे कि उनका सम्पूर्ण स्नायु-जाल बोझिल हो उठता था।"[1] कवि के लेखन-विधि से उसकी एकरसता, तन्मयता व सहज प्रवृत्ति का आभास मिलता है।

काव्य-पाठ—'नवीन' जी अपने कविता-पाठ में विख्यात व प्रतिष्ठा-प्राप्त थे। रंगमंच पर इस समय उनका पूर्ण आधिपत्य हो जाया करता और वे श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर लिया करते थे। कविता पाठ करते समय ध्वनि का ऐसा उतार-चढ़ाव होता था जो भावों को नाद द्वारा मूर्तिमान् करता जाता था।[2] डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "काव्य-पाठ करते समय उनका व्यक्तित्व एक विशेष रस-दीप्ति से मण्डित हो उठता था, उनका स्वर-संधान जहाँ हृदय के कवित्व का बाहर की ओर संप्रेषण करता था; वहाँ अर्द्ध-निमीलित आँखें उस बहिर्गत रस को फिर से प्राणों की ओर खींचने का प्रयास-सा करती थी। काव्य का शब्दार्थ जैसे दूसरी बार प्राणों के रस से अभिषिक्त हो उठता था। उनके इस तन्मय काव्य-पाठ को देख-सुनकर अनायास ही संस्कृत काव्य-शास्त्र की इस मान्यता का खण्डन हो जाता था कि 'कविः करोति काव्यानि रसं जानाति पण्डितः'।"[3] उनके कविता-पाठ को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने, शुद्ध हिन्दी उच्चारण के आदर्श का नमूना माना है। शर्मा जी में मालवा के माधुर्य और उत्तरप्रदेश के पुंसत्व का अद्भुत मेल हुआ था।[4] जब वे देशभक्ति की कविता का पाठ करते थे; तो परिस्थिति को प्रकम्पित कर देते थे।[5]

डॉ० बच्चन ने उनके कविता-पाठ की समग्र स्थिति-चित्र की रेखाएँ खींचते हुए कहा है कि "आवाज ऊँची और भारी, शब्द-शब्द का उच्चारण अलग-अलग, साफ-साफ पूरी

---

१. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ६।

२. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५५।

३. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृष्ठ १५०।

४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३६५।

५. वही, पृष्ठ ३८०।

अभिव्यंजना राग से ऐसी सधी जैसे कोई पक्का गायक कविता सुना रहा है। नवीन जी आत्म-लीन होकर कविता सुनाते थे, पालथी मार, रीढ़-गर्दन सीधी कर, छाती फुलाकर, जैसे कोई साधक प्राणायाम करने को बैठा हो।[१]

संगीत-प्रेम—उनका कण्ठ मधुर था। उन्हें यह जन्मजात प्राप्त हुआ था। उन्होंने संगीत का विधिवत् अभ्यास नहीं किया था फिर भी वे मालकौंस, घनाश्री, भीमपलासी, केदारा आदि रागों में अपने गीत का गायन करते थे।[२] उनका गला भैरव राग गाने के लिए बना था, जिसके विषय में कहा गया है कि 'आठ बरद बर पावै, तब भैरव राग उठावै।' एक बार दिल्ली रेडियो के कवि-सम्मेलन में वह तानपूरे के साथ कविता-पाठ करने को बैठे थे।[३] उनकी नई कविताओं में रागों के नाम भी लिखे हुए हैं, यथा भैरवी तिताला,[४] कलिंगड़ा,[५] आसावरी, ध्रुपद[६] आदि।

एक पाश्चात्य समीक्षक ने लिखा है कि प्रायः सभी कवि गायक होते हैं।[७] 'नवीन' जी भी संगीतज्ञ थे। वे शास्त्रीय आधार पर भी काव्य-गायन करने का अभ्यास करते थे। पं० विनायक राव पटवर्द्धन जी के गायन से वे बड़े प्रभावित थे। वे छोटे-बड़े सभी कलाकारों को बहुत प्रोत्साहन देते थे। उनके प्रसिद्ध राष्ट्रीय-गीत 'जनतारिणी मन दैन्यहारिणी हे' को कवि की उपस्थिति में, नई दिल्ली के गान्धर्व महाविद्यालय के ५० कलाकारों ने सहगान के रूप में, अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर गाया था जिसे सुन कर स्वयं रचयिता भी गद्-गद् हो गया था।[८] 'नवीन' जी ओंकारनाथ ठाकुर एवं पन्नालाल घोष की संगीत-कला के भी बड़े प्रेमी थे।[९]

सन् १९४० में, वाराणसी में श्री रायकृष्णदास के आवास पर 'नवीन' तथा 'निराला' में एक बार संगीत-प्रतियोगिता-सी हो गई थी। दोनों ही संगीतज्ञ-कवियों ने अपने संगीत-ज्ञान एवं अधिकार का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रदर्शन किया। दोनों ही झूम-झूम कर मस्त होकर गाते थे।[१०] इस प्रकार 'नवीन' जी का संगीत-ज्ञान उच्चकोटि का था।

---

१. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३४।

२. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४५१।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ ३५।

४. 'रश्मिरेखा', रस-फुहियाँ, पृष्ठ ४६।

५. वही, माघ-मेघ, पृष्ठ १०९।

६. 'अपलक', अपलक चख-चमक भरो, पृष्ठ १०७।

७. "All poets are singers, more or less and the purely lyrical poet is the one possessed in the greatest degree of the quality and impulse of song. He is the natural egoist, concerned entirely with the world of himself—His thoughts and emotions'—Vernon Knowles, The exp. of Poet,

८. श्री विनयचन्द्र मौद्गल्य का मुझे लिखित (दिनांक १६-१२-१९६१ का) पत्र।

९. श्री अशोक वाजपेयी द्वारा ज्ञात।

१०. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा ज्ञात।

वक्तृत्व-कला —एक अंग्रेज पदाधिकारी ने जिसने शर्मा जी को बोलते हुए कई बार सुना था, मुझसे कहा था—"विशुद्ध हिन्दी के ठाट को यदि कोई देखना चाहे तो उसे एक बार शर्मा जी के भाषण को सुन लेना चाहिये, उनको सुनकर उसे विशुद्ध हिन्दी के लालित्य और मिठास का थोड़ा बहुत बोध हो जावेगा।" वह अंग्रेज-पदाधिकारी शर्मा जी की हिन्दी पर बेतरह लट्टू था।[१] 'नवीन' जी हमेशा तेजस्वी रूप में बोलते थे। उनका आवेश व उत्तेजना भाषण में प्रकट हो जाया करती थी। वे महान् वाग्मी थे और अवसादपूर्ण जनता में भी नई स्फूर्ति भर दिया करते थे। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है कि "वे वाणी के धनी थे। घण्टों धारा-प्रवाह बोलने की शक्ति उनमें थी।"[२] वे अंग्रेजी के भी अच्छे वक्ता थे। गौहाटी कांग्रेस में वे धारावाहिक रूप में अंग्रेजी में ही बोले थे।[३] संसद् में वे हर-हमेशा हिन्दी में ही बोलते थे परन्तु यदा-कदा अंग्रेजी में भी,[४] वह भी अत्यल्प।[५]

'नवीन' जी भावुक, उद्वेलनशील और ओजस्वी वक्ता के रूप में आते थे। वे हिन्दी के प्रथम श्रेणी के वक्ताओं की पंक्ति में आते हैं और उनकी तुलना आचार्य नरेन्द्रदेव आदि मनीषियों से की जा सकती है जो इस युग के प्रधान-वक्ता माने गये हैं।[६] डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—

"मैंने एक बार विराट सभा में हिन्दी की गरिमा पर उनका भाषण सुना था—प्रधानमन्त्री के कुछ वाक्यों से सहसा वे उत्तेजित हो उठे थे। ऐसा लगता था जैसे पाटलिपुत्र की जाह्नवी में बाढ़ आ गई हो। इस प्रकार के और भी कई चित्र मेरी स्मृति में भास्वर थे।"[७]

समग्र व्यक्तित्व : एक मूल्यांकन—डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "जिन लोगों ने 'नवीन' जी को केवल पिछले २-३ वर्षों से जाना है, जब वे पीड़ा से त्रस्त और अवसन्न थे, उनके लिए 'नवीन' जी के उस पूर्व रूप की कल्पना करना कठिन है जो मस्ती, अल्हड़पन, शौर्य तथा सहानुभूति और माधुर्य से ओत-प्रोत था। जिन लोगों ने उन्हें केवल स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ही जाना है, जब वे अपने ही कथनानुसार पार्लमेण्ट का वजीफा खा रहे थे, वे भी उनके व्यक्तित्व के सम्पूर्ण प्रभाव को समझने में असमर्थ हैं। 'नवीन' जी योद्धा और गायक थे तथा उनके ये दोनों रूप मिलकर स्वातन्त्र्य-संग्राम के दिनों में ही निखरकर

---

१. श्री वेंकटेश नारायण तिवारी—'नवनीत', अक्तूबर, १९६०, पृष्ठ ९४।

२. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३७८।

३. 'वीणा', स्मृति-अंक, पृष्ठ ४९१।

४. Parliamentary Debates, House of the People, official Report, 11th May, 1953, page 6362.

५. वही, १ मई, १९५३, पृष्ठ ५५५३।

६. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा ज्ञात।

७. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृष्ठ १५२।

सामने आये।"[१] श्री बालकृष्ण राव ने लिखा है कि "इस समय मात्र इतना ही कहने की इच्छा होती है कि यदि किसी उपन्यासकार ने नवीन जी के इतिवृत्त की कल्पना की होती, उन जैसे नायक का चित्रांकन किया होता, तो हम शायद यही कहते कि उसने अतिरंजना की है। हम कहते कि न तो कोई इतना सरल, शुद्ध, भावुक, उदार और साहसी होता है जितना उसने अपने चरितनायक को बनाया है, न ऐसे नरपुङ्गव के अन्तिम दिन इतने विषाक्त ही होते हैं। पर यह अतिरंजना किसी उपन्यासकार ने नहीं की थी—न यह अतिरंजना ही थी।"[२] श्री अमृतराय के मतानुसार, "नवीन जी को आदमी जानता बाद को था, पहिले प्यार करता था क्योंकि वह खुद आदमी को बाद को जानते थे, पहले प्यार करते थे। बड़ा कठिन है जिन्दगी में रीति को निबाह सकना मगर उन्हीं ने निबाहा और ऐसी खूबसूरती से निबाहा कि आज जब वह चले गये हैं तो ऐसा लग रहा है कि उनके साथ एक युग चला गया।"[३] श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि—"हिन्दी के उन वर्त्तमान लेखकों और कवियों में, जिनसे मेरा परिचय है, एक भी ऐसे व्यक्तित्व को नहीं जानता जो नवीन जी की जूतियों के तस्मे खोलने की भी पात्रता रखता हो।"[४]

वास्तव में 'नवीन' जी की कहानी राजनीति एवं साहित्य की गाथा है। आचार्य वाजपेयी जी ने उनके जीवन को देश-सेवा के व्यावहारिक कार्य और उससे उत्पन्न होने वाली अशान्तियों में व्यस्त बताया था।[५] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा था कि "नवीन जी राजनीतिक कार्यकर्त्ता हैं। उनका जीवन राजनीति के कशमकश में बीता है।"[६]

'नवीन' जी के व्यक्तित्व को सहज ही विरोधाभासों का इन्द्र-धनुष कहा जा सकता है। वे महान्-लघु, अक्खड़-विनयशील, आसक्त-अनासक्त, रईस-रंक की विरोधी भावनाओं को एक साथ लेकर चलते थे। उपनिषद् के 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' की जीवन्त प्रतिमा थे। 'निराला' की यह पंक्ति 'मरण को जिसने बरा है उसी ने जीवन भरा है' उन पर सटीक बैठती है। मोह यदि उन्हें था तो मैत्री, मस्ती, मुक्त दान और सहज महत्व-शून्यता से। श्रीमती महादेवी वर्मा ने उनके जीवन-चरित्र में एक क्रान्तिकारी का आत्म-त्याग, एक योद्धा का शौर्य और एक कवि की भावुकता की विशेषताओं की त्रिवेणी पाई है।[७] डॉ० गुलाबराय उनकी ओजस्वी वाणी व[८] वाक्पटुता[९] से बड़े प्रभावित थे।

---

१. साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १९६०, पृष्ठ ६।
२. 'प्रयाग पत्रिका', २२ मई, १९६०, पृष्ठ ३।
३. वही, पृष्ठ ४।
४. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का मुझे लिखित (दिनांक १३-२-१९६२ का) पत्र।
५. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', पृ० ४।
६. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ ४७६।
७. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', श्रद्धांजलि-अंक, पृष्ठ १९।
८. डॉ० गुलाबराय का मुझे लिखित (दिनांक २१-१०-१९६० का) पत्र।
९. 'ब्रजभारती', स्मृति-अंक, पृष्ठ २०।

जीवन-दर्शन

विचार-धारा या जीवन-दर्शन, व्यक्ति के जीवन-चरित्र तथा व्यक्तित्व का नवनीत है। अनुभव, अध्ययन एवं चिन्तन से मनुष्य के विचारों का निर्माण होता है और उन्हीं के द्वारा उसके जीवन का परिचालन होता है। ये विचार ही दृष्टिकोण का रूप धारण कर लिया करते हैं। कवि अपने विचार या दृष्टिकोण की अभिव्यंजना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपने काव्य में करता है। इन्हीं विचार-सूत्रों को एकत्रित कर, कवि के दृष्टिकोण और दर्शन के विषय में सम्यक् परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। 'नवीन' जी के विचार उनके काव्य, लेखों एवं भाषणों में भरे पड़े हैं। इनके आधार पर उनके सांगोपांग जीवन-दर्शन का समीचीन चित्र खींचा जा सकता है।

जीवन-दृष्टि—डॉ० प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि "उनके व्यक्तित्व में तीन सूत्र जैसे एक प्राण हो गये हैं—मर्मी आध्यात्मवादी-ब्रह्मवादी-जुझारू; आत्म-प्रगल्भ नेता और प्रणय-व्याकुल-सौन्दर्योपासक-सहृदय कलाकार।"[1] निश्चय ही उनकी जीवन-दृष्टि इन्हीं रूपों के माध्यम से हमारे समक्ष आती है। प्रत्येक मनीषी साहित्यकार का, जीवन को देखने का एक अपना दृष्टिकोण होता है। 'नवीन' का जीवन, हमारे समक्ष इस रूप में आता है—

> तुम विचार-क्रान्ति के उपासक,
> तुम नवीनता उन्नायक,
> तुम प्राचीन दम्भ के भेदक,
> तुम जड़ता के गति-दायक।[2]

कवि के जीवन को देखने की दृष्टि का एक विशेष पक्ष है। वह माटी के पुतले को बुद्धत्व प्राप्त करते देखता है। इसके विषय में उसने लिखा है—"ये इन्द्रिय उपकरण, यह पंचमहाभूतात्म का देह, यह मन, यह प्राण, ये सब भी तो मृत्तिका-संभूत ही हैं न? और इन्हीं उपकरणों के बल यह देह बद्धदेही विदेहत्व, बुद्धत्व और ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। कठोपनिषत्कार ने कहा है 'परांच कामाननुयन्ति बाला:।[3]" अर्थात् बालक गण अर्थात् निर्बुद्धिजन, बाह्य कामनाओं—केवल मात्र इन्द्रिय सुखों और भौतिक वस्तुओं का अनुगमन करते हैं; उन्हें ही पाने में अपना जीवन बिता देते हैं। किन्तु जो इस प्रकार—केवल बहिर्मुख जीवन-यापन करते हैं, उपनिषद्कार के शब्दों में 'ते मृत्योर्यान्ति विततस्यपाशम्' वे सर्वव्यापिनी मृत्यु के पाश में आ जाते हैं। आज का जग विततस्य मृत्योः पाशम्—फैली हुई, विस्तृत मृत्यु के पाश में फँसा हुआ है। बहिर्मुखी वृत्ति ने संसार की यह गति बना दी। किन्तु जो मैं कह चुका हूँ, इसी मृत्तिका के पुतले ने एक दिन बुद्धत्व, एक दिन गान्धीत्व प्राप्त किया था। वास्तव में इन्हीं पंक्तियों में कवि का जीवन-दर्शन छिपा हुआ है। राग और विराग का संघर्ष चिर-पुरातन है। राग से मानव को मुक्ति भी प्राप्त नहीं होती और 'नवीन' के मतानुसार, राग का पूर्ण

---

१. 'व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ ९९-१००।
२. 'ऊर्मिला', तृतीय सर्ग, पृष्ठ २४६।
३. 'रश्मिरेखा', परांच कामाननुयन्ति बाला:', पृष्ठ ३।

त्याग उचित भी नहीं है परन्तु हमें उसमें पूर्णरूपेण लिप्त नहीं होना चाहिए। मनुष्य को सदा ऊर्ध्वगामी बनना है।"[१]

'नवीन' जी ने संयुक्तप्रान्तीय सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि "**हम मानव को उसका मानवत्व प्रदान करने की ओर सतत अग्रसर हों। मानव से अंतस्तल-निवासी गुहा-मानव को उत्क्रमण के, विकास के मार्ग की ओर अग्रसर करने में ही सच्चा पुरुषार्थ है। यही श्रेय का मार्ग है। इसी के द्वारा प्रेय की भी सम्पूर्ति हो सकती है। इसी प्रकार योग-क्षेम का वहन हो सकता है। साहित्य-निर्माण करते समय यही प्रेरणा हमें प्रणोदित करती रहे—यह मेरा विनम्र अनुरोध और मेरी विनम्र प्रार्थना है।**"[२]

राष्ट्रीय भावना और राजनैतिक दृष्टिकोण—परतन्त्र भारत में कवि ने अपने जीवन का लक्ष्य साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह, स्वतन्त्र भारत की कामना और अन्याय व अत्याचारों का विरोध बना रहा था। इस रूप में वह सदा-सर्वदा वैण्य बना रहा है।

'नवीन' जी ने भारत को 'राष्ट्र' ही माना था। मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था कि "आर्थिक व सामाजिक विषमता, खाने पीने विषयक अनेकता, राजनैतिक एकाधिपत्य का प्रभाव आदि के रहते हुए भी हमारा यह भारतवर्ष सदा से, प्रागैतिहासिक काल से, एक राष्ट्र रहा हैं।"[३]

राष्ट्रीय आन्दोलन में 'नवीन' के दृष्टिकोण में आवेश व आवेग के मात्रा की प्रचुरता मिलती है। ऐसे समय में कवि प्रेम-गीत गाना भी उचित नहीं समझता।[४] इस युग में कवि का राष्ट्रीय-दर्शन और दृष्टिकोण असिधारा-पथ का अनुगमन करता है।

'नवीन' अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में आर्य-समाज की विचार-धारा से प्रभावित थे। उनके विचारों में उत्तेजना के अंश के आने का कारण यही था। साथ ही तारुण्य का प्रबल वेग भी फूट रहा था। देश की स्थिति उत्तेजना व वात्याचक्रों से परिप्लावित थी। इससे उनकी वाणी में भी उग्रता आ गई। इस प्रदीप्त वातावरण में कवि ने अपने आक्रोश को विप्लव के शोलों से भरे गीतों व 'प्रताप' के अग्र-लेखों के द्वारा अभिव्यक्त किया। परतन्त्र भारत में कवि की आत्मा का भैरव-हुंकार अपने प्रबल वेग से फूट पड़ा था। कवि का क्रान्तिवादी जीवन-दर्शन अपने अलमस्त रूप के साथ मिलकर आता है।[५]

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ २३।

२. 'वीणा', राष्ट्रभाषा संस्कृति का अविच्छेद्य अंग है, नवम्बर, १९४७, पृष्ठ १७-२२।

३. 'विक्रम', दिसम्बर, १९५२, पृष्ठ ९।

४. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ १००।

५. 'रश्मिरेखा', साकी, पृष्ठ ७४।

कवि की व्यापक राष्ट्रीय-भावना व राजनैतिक चेतना, विभिन्न रूप में प्रस्फुटित हुई है। सामयिक गीतों व कविताओं का भी निर्माण किया गया है। साथ ही आत्म-त्याग और बलिदान को स्वतन्त्रता-प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया है।

राजनैतिक दृष्टिकोण में कवि उग्रपन्थी है, क्योंकि वह तिलक-सम्प्रदाय की विरासत को लेकर चलता है। साथ ही उस पर अहिंसा का भी काफ़ी प्रभाव है, क्योंकि वह गान्धी जी से पराभूत रहा है। उस समय सत्य-अहिंसा को परमेश्वर के स्वरूप में ही ग्रहण किया जाता था।[1] साम्राज्यवाद के विनाश के मूल मन्त्र को कवि ने अपनी वाणी का हार बना लिया था। उसके राम भी साम्राज्य के विध्वंसक के रूप में आते हैं।[2]

इस प्रकार 'नवीन' के जीवन-दर्शन में समग्र राष्ट्रवाद का रूप समाहित है। कवि के राष्ट्रीय दृष्टिकोण को गान्धीवाद ने पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। उसने स्वयं कहा है—"मेरे लिए गीता का स्थित-प्रज्ञ, सन्यासी, त्रिगुणातीत, भक्त एवं ज्ञानी, कल्पना से परे की वस्तु थे। गान्धी के चरणदर्शन करके ही गीताकार की तत्सम्बधी मान्यता को सम्भव एवं व्यवहार्य मान सका हूँ।"[3] अपने युग साहित्य पर पड़े गान्धी जी के प्रभाव का अंकन करते हुए, 'नवीन' जी ने लिखा हैं कि "हिन्दी भाषा के साहित्य में जो आशावादिता पूर्ण विद्रोह की अभिव्यक्ति है, वह गान्धी की देन है। जिस अणोरणीयान् महतोमहीयान् परम तपस्वी नरोत्तम गान्धी ने 'जी हाँ' कहने वाले इस देश को 'कदापि नहीं?' कहने का दुर्दमनीय, साहस प्रदान करके मानव समाज के इतिहास में एक अघटित पूर्ण अद्भुत राष्ट्रीय क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित की, उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर कैसे न पड़ता? आज उस प्रभाव का विम्ब आप, अपने साहित्य के प्रत्येक अंग पर देख सकते हैं।"[4] भारत के स्वाधीन हो जाने के पश्चात् भी, कवि ने गान्धी के सन्देश को अपनाने की बात कहते हुए लिखा था, "मैं कहता हूँ भाई, यदि नैतिक आचरण को, सद्व्यवहार को, दया-दाक्षिण्य, पारस्परिक स्नेह एवं औदार्य को, आप आध्यात्मिक अर्थात् मानव को ऊँचा उठानेवाला युग-गुण नहीं मानते, तो भी, राम के नाम पर, इतना तो मानिए कि आज की परिस्थिति में जब तक आप-हम नैतिकता का आश्रय नहीं लेंगे, तब तक हम अपने राजनैतिक अस्तित्व की भी रक्षा नहीं कर सकेंगे?"[5]

स्वतन्त्रता के पश्चात् कवि के दर्शन में काफी अन्तर आ गया था। वह जनतन्त्र में विश्वास तो करता था परन्तु इस प्रगतिशील अवस्था व देश में बहुत सावधानी बरतने का पक्षपाती था। बहुमत का यह अर्थ नहीं है कि हम कोई ऐसे कार्य करें जिसका प्रभाव सारे राष्ट्र व एशिया पर पड़े और बहुमत जनतन्त्र के सिद्धान्त को भी पलट दे।[6] महत्वपूर्ण विषयों पर वह विधान

---

१. आचार्य जावड़ेकर—आधुनिक भारत, पृष्ठ ३६२।

२. 'ऊर्मिला', पृष्ठ ५५५।

३. 'वीणा', नवम्बर, १६४७, पृष्ठ २०।

४. 'साहित्य—समीक्षाञ्जलि', पृष्ठ १८६।

५. 'विन्ध्यवाणी', ११ अप्रैल, १६४६, पृष्ठ ३।

६. Parliamentary Debates, House of the People, Official Report, 11th May, 1953 page 635.

के अतिरिक्त वास्तविकता की भी आधार-शिला लेना उचित मानता था।[१] वह विषद दृष्टि का क़ायल था।[२] वह किसी भी प्रलोभन के कारण अपने विचारों के दबाने में विश्वास नहीं करता था।[३] राजनीति के विषय में वह तटस्थ रहने लगा था। उसे यह विश्वास हो गया था कि अब रामराज्य आने वाला नहीं है और महात्मा गान्धी का स्वप्न अधूरा रह जावेगा। साथ ही, वर्तमान सरकार के प्रति वह आशा भरी दृष्टि से नहीं देखता था। भारत की आधुनिक दुरवस्था से भी वह दुःखी था।[४] इसमें वैयक्तिक व समष्टिगत दोनों प्रकार के कारण निहित थे। इस महान् सेनानी ने देशभक्ति के धनादेश को भुनाने का, कभी भी, प्रयत्न नहीं किया।

मानवतावादी व सामाजिक दृष्टिकोण—'नवीन' अपनी पूरी सचाई व निष्ठा के साथ मानव के ही गायक थे। उन्होंने मानव के परतन्त्र, दुखत्रस्त व हेयरूपों की हमें झाकियाँ दिखाई हैं और उनमें आशा की किरणें विकीर्ण करने का प्रयत्न किया है।

'नवीन' मानवता का पौधा था। उसे मिट्टी की महिमा ही सर्वस्व थी। उसे हम माटी का सच्चा पहेरुआ कह सकते हैं। कवि अवसाद में लिप्त मानव को रस युक्त बनाना चाहता है, वह मानव का महान् सेवा-व्रती है। वह मानवता के आदर्श से सम्पूरित था जिसे अध्यात्मतत्व का एक अंग माना गया है।[५]

समाज में नारियों की प्रतिष्ठा का वह उपासक है। वह नारी को वीर-आर्यललना के रूप में देखता हैं।[६] इससे उसका विश्वास नारी के मुक्त होने की ओर है। वह उनके दासत्व-शृंखला का पक्षपाती नहीं।[७]

---

१. वही, पृष्ठ ६३७१।

२. वही, पृष्ठ ६३६१।

३. Parlimentary Debates, official Reports, 11 th May, 1953. P. 6357.

४. साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १६६०, पृष्ठ १०।

५. "The services of suffering humanity in the subjective outlook and attitude of worshiping Distiny is by itself an entire programme of a new form of spiritual practice that can independently lead an aspirant upto the goal of God-realisation. Surely this is an innovation and a precious acquicition in the World's store-house of religious sadhana—Ibid, Swami Vivekanand, Volume IV, Page 681.

६. 'ऊर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ४०।

७. "पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतः मुक्त होने दो, उन्हें अपने बराबर का समझो"—'श्री जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की समस्याएँ, पृष्ठ २१६।

कवि 'नारी' की अपनी भावांजलि समर्पित करता है—

सृष्टि मन्थन की पुरानी तुम पहेली गूढ़,
गहन सम्भ्रम ग्रन्थि तुम, तुम ज्ञान गति दिक्मूढ़,
तुम भ्रमित, अति थकित, विचलित, चकित भाव समूह,
सुलझ फिर फिर उलझती तुम प्रश्न वृत्ति दुरूह ।[१]

धर्म, संस्कृति और दर्शन—'नवीन' सनातन धर्म के अनुयायी थे । इसका अर्थ रूढ़ धर्म न होकर शाश्वत धर्म है ।[२] हमारे धर्म की वर्तमान कुदशा पर 'नवीन' ने दुःख प्रकट किया है—"वह यह कि हमारा धर्म भाव औपचारिक बनकर रह गया है । शंख-घंटा घड़ियाल बजाना, स्तोत्र-पाठ करना, चन्दन, अक्षत, फूल आदि मूर्ति पर चढ़ाना, आरती करना, व्रत उपवास रख लेना, गंगा-स्नान करना, बस मानो धर्म कर्म हो गया । हमारे धर्म के जो मूलतत्व हैं, उनके ऊपर न हम मनन करते हैं और न उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं ।"[३] वे विनोबा प्रणीत विचारधारा में पूर्ण आस्था रखते थे । उनके मतानुसार, परमेश्वर की पूजा याने दीन-दुखी जनों की सेवा ।[४] इसी भावना को विवेकानन्द ने भी परिचालित किया था ।[५] भारतीय-संस्कृति व पुराणों में कवि की पूर्ण आस्था है । कवि के लिए एकमात्र पूज्य वस्तु सत्य है ।[६]

संस्कृति के विषय में 'नवीन' जी ने लिखा है—"संस्कृति है आत्म-विजय, संस्कृति है राग-वशीकरण, संस्कृति है भाव उदात्तीकरण ।"[७] मूर्तरूप में संस्कृति को उन्होंने महापुरुषों में पाया है यथा गान्धी, विनोबा, कबीर, तुलसी, सूर, ज्ञानदेव, समर्थ तुकाराम, आचार्य तुलसी, महर्षि रमण आदि ।[८]

---

१. 'यौवन मदिरा' या 'पावस पीड़ा', नारी, ६वीं कविता, छन्द १ ।

२. "सन् १९२१ की सेंसस (मनुष्य गणना) हो रही थी । गिनने वाला आया । रात का वक्त था । 'प्रताप' प्रेस में पण्डित बालकृष्ण शर्मा, पं० शिवनारायण मिश्र और विद्यार्थी जी बैठे थे । गिनती की खानापूरी होने लगी । जब मजहब वाला खाना आया, तो विद्यार्थी जी ने कहा—बालकृष्ण, भाई धर्म क्या लिखाया जाय ? भाई बालकृष्ण ने कहा—गणेशजी, धर्म तो एक ही है—सनातन धर्म । इस पर गणेश जी बड़े प्रसन्न हुए ।"—श्री देवव्रत शास्त्री, गणेशशंकर विद्यार्थी, पृष्ठ ८० ।

३. 'विनोबा-स्तवन', भूमिका, पृष्ठ १० ।

४. वही, पृष्ठ ११ ।

५. 'God is here before—you in various forms, he who loves His creatures serves God—Vivekanand, The Cultural Heritage of India, Vol. 4, 718.

६. 'ऊर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५५६ ।

७. 'क्वासि', 'क्वासि' की यह टेर मेरी, पृष्ठ २५ ।

८. वही, पृष्ठ २४-२५ ।

कवि भारतीय चिन्तकों व तत्त्ववेत्ताओं द्वारा सुझायी परम्परा को ग्रहण करता है। इस दिशा में उस पर पश्चिम का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

कवि पदार्थवादी दर्शन को अग्राह्य मानता है। वह गान्धी व बुद्ध के दर्शन को वास्तविक मानव बनानेवाला दर्शन मानता है।[1] वह मस्तिष्क की सभी खिड़कियाँ खोलकर, चिन्तन करने के पक्ष में हैं—"मैं यह निवेदन अवश्य करना चाहता हूँ कि वे अपने मस्तिष्क को अचलायतन न बना दें, विचारों को मुक्त वातावरण में पलने दें और अपने को निगड़ बद्ध न कर लें।"

वे श्री वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अपनी उपासना के आराध्य देव का वर्णन ईशावास्योपनिषद् के 'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' तथा अन्य मन्त्रों से करते थे।[2] उनका साकार ब्रह्म भी उन्हें 'कन्हाई' के रूप में ही पूज्य है।[3] इस क्षेत्र में कवि, विचारों की स्वतन्त्रता को अधिक महत्व देता है, फिर भी वह भारतीय दर्शन व मनीषियों से पूर्णतः प्रभावित हैं।

कला, साहित्य और काव्यशास्त्र—महान् कलाकार श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने सदा-सर्वदा कला की उपासना व वन्दना की है। वे जीवन-सापेक्ष्य कला के पक्षपाती थे। कला में 'सुन्दर' पक्ष, उसका प्राण होता है।

कवि प्रतिभा-सम्पन्न है और काव्य-लेखन की उसे सहज प्रेरणा प्राप्त होती है—"बाज औकात कुछ धुवाँ सा मन में मँडराने लगता है और कुछ कहने की ख्वाहिश हो उठती है।"[4] और "यदा-कदा, जब कुछ भीतर से घुट-घुट हुई, लिखने बैठ गया।"[5] ऊर्मिला भी यही बात कहती है—

> कुछ भावाभिव्यक्ति बरबस ही ऐसी घड़ियों में हो जाती,
> अतिपूरित जलराशि यथा, बन सरिता, सागर में खो जाती।[6]

इस प्रकार कवि ने काव्य के सृजन में प्रतिभा को प्रधानस्थान प्रदान किया है जिसे हमारे आचार्यों ने कवित्व का बीज माना है—

> कवित्वबीजं प्रतिभानम्, जन्मान्तरागतसंस्कार-विशेषः कश्चित्।[7]

ऊर्मिला के कथन को सुनकर वर्ड्सवर्थ की उक्ति की याद हो आयी है कि "काव्य में प्रबल भावनाओं का नैसर्गिक प्रवाह रहता है।"[8] 'नवीन' जी ने ऊर्मिला से शक्ति व प्रेरणा के सहज स्रोत प्राप्ति के लिए भी प्रार्थना की है—

---

१. 'अपलक', मेरे क्या सजल गीत ?, पृष्ठ झ।
२. वही।
३. 'क्वासि', पृष्ठ ३५।
४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३६०।
५. 'क्वासि', पृष्ठ ११६।
६. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १८-१९।
७. 'ऊर्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १०२।
८. आचार्य वामन—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र, १।३।१६।
९. "Poetry is the spontaneous overflow of power feelings" The Poetical Works of William Wordsworth, page 935.

सती, मुझे वर दो कि भारती मेरी हो कल्याणी।
मैं लघुशिशु हूँ, बुद्धि हीन हूँ और निपट अज्ञानी।।[१]

दैवी-प्रेरणा और तल्लीनता की बात प्लेटो ने भी की है।[२] सत्-काव्य के लक्षण कवि ने ये माने हैं—"उपयोगिता, उपादेयता, प्रगतिशीलता, अपलायनवादिता, सामन्ती विचार-धारावरोधक, विद्रोहवादिता, औद्योगिक पूँजीवाद-जन्य संघर्षोत्तेजक झण्डोत्तोलन ले लो, खड्ग पटक दो ध्यान-मय क्रान्ति आवाहन, द्वन्द्वध्यमाना-दिग्-दिङ्-नाद-प्रेरणा, दुर्दान्ताक्रान्तक-जन्म-दन्तोत्पादन-संदेश-वहनशीलता।"[३] कवि के अनुसार साहित्य-स्रष्टा में ये गुण होने चाहिये—"स्वाध्यायात्मक कल्पना-शक्ति, शब्द-सामर्थ्य, भाव स्वभाव-अध्ययन, यथातथ्य ग्राह (Grip of Fundamentals), कला-सौष्ठव स्थिति-सृजनशक्ति (Power create situation), जीवन-चित्रण-सामर्थ्य, समाधि-सामर्थ्य (Power of mediation) और आर्जव ईमानदारी।"[४] वास्तव में यहाँ पर हमारे आचार्यों यथा—वामन, भट्टतौत, रुद्रट, भामह, अभिनव गुप्त आदि के द्वारा प्रतिपादित प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अवधान, अवेक्षण आदि काव्यहेतु के उपादानों का ही अन्य रूप प्राप्त होता है। कल्पना व सृजनशक्ति का सम्बन्ध प्रतिभा से ही है—"प्रज्ञा नवनवोल्लेखशालिनी प्रतिभा मता"[५] और "प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माण क्षमा प्रज्ञा।"[६] इस प्रकार काव्यहेतु के रूप में कवि ने, प्रतिभा, व्युत्पत्ति व दैवी आशीर्वाद को महत्ता प्रदान किया है। काव्य के तत्व के रूप में कवि ने अनुभूति पर अधिक बल दिया है। विडम्बनाविहीन अनुभूति द्वारा प्राप्त वर्णन स्वच्छ व निर्धूम होता है। स्पष्टता का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये।[७] काव्य भावना की समृद्धि के लिए अनुभूति की सहज हृदयस्पर्शिता भी आवश्यक है।[८] कवित्व गुणों का विकास प्रायः उन्हीं व्यक्तियों में होता है जो वास्तविक अनुभूति के अभाव में भी तदनुरूप भावग्रहण में सक्षम होते हैं।[९] यह कथन 'नवीन' की इस उक्ति के सादृश्य में रखा जा सकता है कि "कलाकार या तो स्वयं अपने निजी जीवन में और या फिर अपने संवेदना-युक्त हृदय की कल्पना के द्वारा बहुत से

---

१. 'ऊर्मिला', प्रथम सर्ग, प्रार्थना, पृष्ठ।

२. "All the epic Poets, the good one, after all their beautiful poems not through art but because they are devinely inspired and possessed, and the same is true of the good lyric Poets." Quoted from Dictionary of Worlds Literary Terms, page. 228.

३. 'अपलक', मेरे क्या सजल गीत ?, पृष्ठ क।

४. 'क्वासि', भूमिका, पृष्ठ १९।

५. आचार्य भट्टतौत—काव्यानुशासन, पृष्ठ ३ से उद्धृत।

६. आचार्य अभिनव गुप्त—ध्वन्यालोकलोचन, १।६।

७. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १७-१८।

८. श्री बाबूराम पालीवाल—'चेतना' काव्य संग्रह, 'नवीन' का आशीर्वाद, पृष्ठ ५।

९. "The Poetic gifts are generally found in men who can realise what they portray without actually experiencing it."—Worsfield, the Principles of Criticism, p. 169.

रागों की अनुभूति करता है और उनकी सृष्टि करता है।"[1] उनके मतानुसार—सत्यं-शिवं-सुन्दरं से युक्त काव्य ही उत्कृष्ट काव्य है—

बिना सत्य-शिव के रहत सुन्दर सदा अपूर्ण,
त्यों सुन्दर बिनु सत्य-शिव, किमि ह्वै है सम्पूर्ण ?[2]

समता-सामंजस्य स्थापित करना कलाकार का कर्त्तव्य है।[3]

मानवोत्थान और जन-कल्याण को कवि ने काव्य के प्रयोजन के रूप में ग्रहण किया है। उसका मत है—"मेरे निकट सत्साहित्य का एक ही मानदण्ड है—वह यह कि किस सीमा तक कोई साहित्यिक कृति मानव को उच्चतर, अधिक परिष्कृत एवं समर्थ बनाती है। वही साहित्य सत् है, वही साहित्य कल्याणकारी एवं सुन्दर है जो मानव को स्नेहमय, श्रद्धाभरित, विचारवान् तथा चिन्तनशील बनाता है। वही साहित्य सत् है जो मानव में निरलस एवं निस्वार्थ कर्मरति जागृत करता है। वही साहित्य सत् है जो मानव को सर्वभूत हित की ओर प्रवृत्त करता है। वही साहित्य सत् है जो मानवीय संकुचित वृत्तियों को अतिक्रमित करने तथा मानव 'स्व' को विस्तृत करने में मानव का सहायक होता है।"[4] अन्यत्र भी यही कहा है कि जो साहित्य मानव को इस ओर (अर्थात् आत्म-विजय, राग-वशीकरण और भाव-उदात्तीकरण), ले जाय, वही सत्-साहित्य है।[5] कवि के धर्मोपदेश रूप को वे पसन्द नहीं करते।[6] कवि अपनी लेखनी को ऊर्म्मिला-लक्ष्मण के गुण-गान से सार्थक मानता है।[7] उसका यह दृष्टिकोण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मिलता है।[8] इसके द्वारा कवि की भक्ति का निरूपण होता है।

---

१. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ ९।

२. 'ऊर्म्मिला', पंचम सर्ग, पृष्ठ ४४५।

३. "असत् एवं असुन्दर के प्रति विराग तथा सत् एवं सुन्दर के प्रति अनुराग उत्पन्न करना एवं जीवन में जो कुछ अनमिल है, उसका लोप करके उसमें समता एवं सामंजस्य को स्थापित करना, कलाकार का काम है।"—'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १०।

४. 'रश्मिरेखा', परांच कामाननुयन्ति बालाः, पृष्ठ ३।

५. 'क्वासि', क्वासि की यह टेर मेरी, पृष्ठ २५।

६. "मैं भी उद्देश्य लेकर, साहित्य पैदा करने के हक में नहीं हूँ। वैसा साहित्य स्वयं अपना घातक होता है। उदाहरणतया आर्य-समाज ने एक उद्देश्य को लेकर छन्द रचने की कोशिश की थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि वे केवल एक भद्दे ढंग की तुकबन्दियों तक रह गए।"—'नवीन' जी की श्री बनारसी चतुर्वेदी जी को लिखित एक पत्र, विशाल भारत, अक्तूबर, १९३७, पृष्ठ ४७१।

७. "मेरा यह काव्य-ग्रन्थ पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। यह कैसा है, इसका निर्णय वे स्वयं करें। इस व्याज से मेरी भारती सीता-राम और ऊर्म्मिला-लक्ष्मण का गुण गा सकी, इसी में मैं इसकी सार्थकता मानता हूँ।"—'ऊर्म्मिला', पृष्ठ ज।

८. जो गावहिं ब्रज भक्त सब मधुरे सुर सुभ छन्द।
रसना धावन करन को गावत सोइ हरिचन्द।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', द्वितीय भाग, पृष्ठ ७४८।

डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि 'नवीन' जी ने महाकाव्य के विषय में मौलिक दृष्टि से चिन्तन करने का प्रयास किया है।[१] "वस्तुत: अभिनवता, नवीनता, मौलिकता, बहुत अंशों में कलाकार की अनुभूति पर अवलम्बित होती है, अत: काव्य के लिए ऐतिहासिक-पौराणिक विषय, केवल मात्र चर्वित-चर्वण के तर्क के आधार पर, त्याज्य या वर्ज्य नहीं हो सकते।"[२] इस सम्बन्ध में हमारे पौरस्त्य या पाश्चात्य आचार्यों के भी अभिमत हैं कि कवि-कौशल तो उसकी पुनर्निर्माण काराविदों में निहित है[3] और कवि को अपनी रुचि व क्षमता के अनुसार वर्ण्य-विषयों का चयन करना चाहिए[४] व इनमें ग्राह्य-अग्राह्य का कोई भेद नहीं होता; वह कवि के समर्थता-असमथंता पर अधिक अवलम्बित करता है।[५]

कवि, रस को काव्य की आत्मा मानता है।[६] करुणरस की ओर उसका विशेष झुकाव है।[७] भाषा के विषय में कवि संस्कृतनिष्ठ भाषा-लेखन का अनुगामी रहा है। उसकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्राचुर्य मिलता है। इस सम्बन्ध में उसका मत यह है—"इसके विषय में मेरा अपना मत यह है कि भाषा के सम्बन्ध में साहित्य-स्रष्टाओं को आदेश देना प्रथम श्रेणी की मूर्खता है। ज्ञानदेव, तुकाराम, समर्थ, तुलसी, सूर; जायसी आदि को यदि इस प्रकार का आदेश देने वाले गुरु मिले होते तो 'सिर धुनि गिरा लागि पछितसा' के सदृश्य वे भी विचारे अपना सिर धुनते और पछताते। × × × कवि अपनी भाषा आप पा लेते हैं, प्रतिबन्ध निरर्थक है। × × × इस देश में अधिक सरलता से अन्य भाषा-भाषियों द्वारा भी जो भाषा समझी जा सकती है और समझी जाती है, वह है, संस्कृत-शब्द-प्रधान-भाषा। × × × अत: परिणाम यह निकला कि यदि हिन्दी के कवि तथा अन्य प्रकार के हिन्दी साहित्यिक देशव्यापी सुगम भाषा लिखना चाहते हैं तो उन्हें निश्चय ही अपनी भाषा को संस्कृत-निष्ठ बनाना पड़ेगा।"

---

१. डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त—आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के अन्य सिद्धान्त प्रतिपादक कवि, काव्य के भेद, पृष्ठ ३२७।

२. 'उर्म्मिला' भूमिका, पृष्ठ घ।

३. "प्रज्ञा नवनवोल्लेखशालिनी प्रतिभा मता।
तदनुप्राणनाजीवद्वर्णनानिपुण: कवि:।
तस्य कर्म स्मृतं काव्यम्॥"
—आचार्य भट्टतौत। काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) पृष्ठ ३ से उद्धृत।

४. सेंट्सबरी द्वारा होरेस के मत का उद्धरण।

"Take care that your subject suits both your style and your powers".—'A History, of criticism and Literary Taste in Europe' m Vol. 1. page 222.

५. "There are in poetry no good and bad subjects, there are only good and bad poets." Victor Hyugo-Loci Critica, page. 418.

६. "बनो रस-सिक्त सुनाओ अखिल विश्व को निज रस सिक्तातस"—'ऊर्म्मिला', छन्द २, प्रथम सर्ग, पृष्ठ २।

७. कुछ ऐसी रस-धार बहा दे अरुण-करुण रस-माती,
कि, बस जगत की सकल धीरता बहे विकल उतराती।
—'ऊर्म्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १६५

हमारी काव्य- समीक्षा के सम्बन्ध में 'नवीन' ने लिखा है कि "हमारे कुछ आलोचकों ने तौलने के लिये एक बनी-बनाई तुला और कुछ घिसे-घिसाये बाट उधार ले लिये हैं और उन्हें अपना कहकर तौल-नाप करने लगे हैं। जहाँ मानव-आत्मा वादों के बन्धनों में जकड़ दी जायगी, वहाँ वह मानो कुण्ठित हो जायगी, या फिर वह प्रतिक्रिया भयंकर हो कर उभर उठेगी। इसलिये भारतीय साहित्यकारों और आलोचकों को सावधानी बरतनी होगी।"[२] पाश्चात्य समीक्षक टी० एस० इलियट ने भी पूर्वाग्रहों व धारणाओं से विहीन निष्पक्ष समीक्षा की बात लिखी है।[३] 'नवीन' लिखते हैं कि "विज्ञान के नाम पर आज हमारे साहित्य में जो धमा-चौकड़ी मच रही है, प्रगतिवाद के नाम पर जो व्यक्ति-समष्टि सिद्धान्त प्रसारित किये जा रहे हैं, सामन्त साम्राज्य-शोषण वर्ग-विरोध के नाम पर जो चक्कर-डण्ड पेले जा रहे हैं, वे वास्तव में इतने अवैज्ञानिक हैं कि जिसकी कोई सीमा नहीं।"[४]

काव्यालोचन के सम्बन्ध में कवि ने निष्कर्ष रूप में कहा है कि किसी देश की सांस्कृतिक, साहित्यक कृतियों का मूल्यांकन, बिना उस देश की विशेषताओं को ध्यान में रखे, किया नहीं जाना चाहिये।[५] यह उचित भी है। फ्रांसीसी समीक्षक टेन ने काव्य की आलोचना के लिए रचनाकार की जातिगत मनोवृत्तियों, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों और युग को अपने ध्यान में रखने पर विशेष जोर दिया है।[६]

शर्मा जी ने अपने विचार भारतीय साहित्य और हिन्दी साहित्य पर भी यथानुकूल प्रकट किये हैं। उनके मतानुसार, मानव को मुक्ति का सन्देश देना और इसे—अर्थात् अपने को भी—बन्धन-पाश से छुड़ाने का सतत प्रयत्न करते जाना, यही भारतीय साहित्य का चरम, अन्तिम व परम उद्देश्य हैं।[७] उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि हिन्दी में जन-समूह की इच्छाओं, आकांक्षाओं, आशाओं, विकास का साहित्य-सृजन हो।[८] उन्होंने हमारे विश्व-साहित्य के सम्पर्क में आने का निर्देश प्रदान किया है।[९]

---

१. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'हिन्दी प्रचारक', हिन्दी साहित्य की समस्याएँ, अप्रैल, १९५४, पृष्ठ ६।

२. वही, पृष्ठ ५।

३. The critic should endeavour to discipline his personal prejudices and cranks.—'Selected Essays' page 25.

४. 'अपलक', भूमिका, पृष्ठ च।

५. 'क्वासि', भूमिका, पृष्ठ २०।

६. 'सिद्धान्त और अध्ययन', पृष्ठ ३०१।

७. 'क्वासि', भूमिका, पृष्ठ २४।

८. वही, पृष्ठ १८।

९. "आज की हमारी आवश्यकता यह है कि हम विश्व-साहित्य के सम्पर्क में आवें, हमारा मानस-गगन खिल उठे, नवीन विचारधारा हमें आप्लावित करे और हम नवविधानोत्प्राणित होकर, काव्यसाहित्य का निर्माण करें और इस प्रकार हम हिन्दी भाषा को विश्व-वेदना की वाणी बनाने में समर्थ हों।"—'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ ४।

पत्रकारिता

'नवीन' जी की पत्रकारिता एवं सम्पादन-कला का प्रत्यक्ष एवं प्रमुख सम्बन्ध कानपुर की मासिक पत्रिका 'प्रभा' एवं दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' से रहा है। 'प्रताप' से ही उन्हें सम्पादक के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त हुई। 'प्रभा' के जुलाई, सन् १९२३ से 'नवीन' जी और माखनलाल चतुर्वेदी सम्पादक हुए। अक्टूबर १९२३ ई० से 'नवीन' जी ही 'प्रभा' के एकमात्र सम्पादक रहे और अन्त तक बने रहे। इनके सम्पादन-काल में चित्रों के आधार पर लिखित कविताओं का क्रम क्षीण हो गया और पत्रिका में व्यंग्य-चित्रों के प्रकाशन की संख्या बढ़ गई। 'नवीन' जी के ही सम्पादन में 'झण्डा-विशेषांक'[1] प्रकाशित हुआ था जिसकी सर्वत्र प्रशंसा[2] हुई, और उस युग के पत्रों ने इसका बड़ा अभिनन्दन किया।[3] इसमें झण्डा-सत्याग्रहियों के परिचय, बलिदान की कथा और ध्वज-विषयक कविताओं का समावेश था। इसके १०८ पृष्ठों के विशाल कलेवर में विपुल सामग्री भरी पड़ी है। 'बेलगाँव कांग्रेस अंक'[4] भी अत्यन्त सुन्दर निकला था।

'प्रभा' में 'नवीन' जी ने अनेक प्रकार की सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखीं यथा 'शंख-ध्वनि', 'मध्य एशिया पर यूरोप की आखें', 'अन्यायी कानून की आँत' आदि। उनकी टिप्पणियों एवं अग्रलेखों में राष्ट्रीयता तथा निर्भीकता के प्रचुर अंश प्राप्त होते हैं। इस समय वे सामान्य भाषा का ही प्रयोग करते थे। श्री रामनाथ 'सुमन' ने 'नवीन' की 'प्रभा' सम्पादन-कला और तद्विषयक आदर्श का निरूपण करते हुए लिखा है कि, "मुश्किल से दो एक ऐसे मिलेंगे, जो 'चीज़' देखते हैं, समझते हैं कि कविता क्या चीज है और महत्वपूर्ण रचनाएँ किसे कहते हैं? जिन सम्पादकों से अभी तक मुझे काम पड़ा है, उनमें 'प्रभा' सम्पादक और नवीन स्कूल के सहृदय कवि पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मुझे इस विषय में बहुत अच्छे लगे। तुकबन्दी होने पर वे बड़े कवियों की 'कविताएँ' लौटा देते थे। मित्रता भी उन्हें लुभा न सकती थी—यों तो दोष सब में होते हैं, उनमें भी थे। उन्होंने कितनी ही बार मेरी तुकबन्दियाँ, मेरे लेख, लौटा दिये हैं। उनका यह व्यवहार समालोचकोचित न्याय पर आश्रित था, इसलिये कभी मेरे मन में कुभाव न आया, वरन् स्नेह-श्रद्धा बढ़ती गई। 'प्रभा' ने अपने जीवन में, औसतन, सब हिन्दी-पत्रिकाओं से अच्छी कविताएँ और गम्भीर लेख निकाले। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति सन्बन्धी वे विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ और सम्पादकीय गद्य-काव्य, आज भी याद आते हैं।[5]

'प्रताप' में प्रारम्भ से ही 'नवीन जी सह-सम्पादक के रूप में कार्य करते रहे। वे सर्वप्रथम साप्ताहिक 'प्रताप' के दो अंकों के सम्पादक, १७ सितम्बर १९२३ व २४ सितम्बर १९२४ ई० के बने। गणेश जी के आत्मोत्सर्ग के पश्चात् ५ अप्रैल १९३१ ई० से 'नवीन' जी 'प्रताप' के

---

१. 'प्रभा', १ अक्तूबर, १९२३।

२. श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृष्ठ १९८।

३. 'माधुरी', १५ नवम्बर, १९२३, पृष्ठ ५०७।

४. 'प्रभा', जनवरी १९२५।

५. 'विशाल भारत" जुलाई १९२८; पृष्ठ २८।

मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक हो गये। बाद में 'नवीन जी एवं श्री हरिशंकर विद्यार्थी ही 'प्रताप' के मुख्य कार्यकर्त्ता रहे। 'प्रताप' ट्रस्ट के ये दोनों महानुभाव आजन्म ट्रस्टी बने रहे।[१] ५ जुलाई १९३१ ई० के अग्रलेख 'क्या सूबे में आग लगाने का इरादा है ?' के प्रसंग में 'नवीन' जी पर धारा १२४-ए का अभियोग चला था।[२]

'नवीन'जी ने अपने जीवन का बहुत-सा भाग पत्रकार-कला की साधना में ही[३] व्यतीत किया। पत्रकारिता की शिक्षा 'नवीन' जी ने गणेश जी के चरणों में बैठकर ली। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों में युग तथा समाज को आबद्ध किया गया है। 'प्रताप' पर चले दो प्रसिद्ध मुकदमे-'रायबरेली मानहानि केस' और 'मैनपुरी अभियोग' के मूल स्रोत—'नवीन' जी के ही क्रान्तिकारी अग्रलेख थे। उनकी 'वे' शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी, सर्वोत्कृष्ट टिप्पणी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त 'पधारो देव,' 'मिर्ची की धुनी और तमाचा', 'ओल्डमेन आफ़ दी सी', 'काला साइमन बनाम गोरा साइमन', 'लंगोटी की धूम', 'विषपान' आदि प्रख्यात अग्रलेख माने गये हैं। श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है कि "उसके लेखों की धाक थी। अंग्रेजी के अच्छे-अच्छे दैनिक पत्रों में भी बालकृष्ण के लेखों की चर्चा होती थी।"[४] उनका अंग्रेजी भाषा पर भी सम्यक् आधिपत्य था और इसके भी वे पत्रकार हो सकते थे, परन्तु राष्ट्रभाषा के प्रेम ने उन्हें ऐसा नहीं बनने दिया।

गणेश जी की पत्रकारिता के आदर्श सिद्धान्त और सम्पादकीय लेखन की पद्धति से 'नवीन' जी की पत्रकारिता में साम्य एवं वैषम्य दोनों ही हैं। गणेश जी जहाँ 'जन भाषा' का प्रयोग करते थे, वहाँ 'नवीन' जी 'संस्कृति निष्ठ' हिन्दी का। गणेश जी विशुद्ध देशभक्त तथा निर्भीक पत्रकार थे परन्तु 'नवीन' जी में इन गुणों के होते हुए भी, कवि-हृदय का स्वामित्व था जो कि उनके गद्य पर भी आच्छादित है। 'नवीन' जी स्वतः आन्दोलित हो अन्यों को आन्दोलित करते थे। जब कि गणेश जी स्वयं आन्दोलित न हो, दूसरों को उत्प्रेरित कर दिया करते थे। गणेश जी के अग्रलेखों में राजनैतिक प्रखरता मिलती है जब कि 'नवीन' जी में साहित्यिक प्रशस्तता। गणेश जी की अपेक्षा 'नवीन' में भावावेश, जोश, मर्यादा के अतिक्रमण के अंश अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। 'नवीन' ने अपने पत्रकार-पथ पर सर्वदा उसी प्रदीप को प्रज्वलित रखा जिसमें से गणेश जी द्वारा प्रवर्तित मानव सेवा, तपश्चर्या, साहसशीलता तथा ओजस्विता की उज्जल किरणें निःसृत हो रही थीं। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने 'नवीन' में पाठक को उत्तेजित कर देने का सबसे बड़ा गुण पाया था[५]।

'नवीन' जी पत्रकारों तथा उनके संघों के प्रति भी सदैव सचेष्ट तथा हितकारी रहा करते थे। उनके मतानुसार, पत्रकार को अपने दिमाग़ की खिड़कियाँ सदा खुली रखना चाहिए।[६]

---

१. श्री देवदत शास्त्री—गणेशशंकर विद्यार्थी, पृष्ठ १२३।

२. वही, पृष्ठ १३६।

३. Constituent Assembly Debates, Vol. 1. No. 3, Official Report, page 265.

४. दैनिक 'नवराष्ट्र', २४ जुलाई १९६०।

५. 'कृति', मई १९६०, पृष्ठ ७०।

६. 'आगामी कल', जनवरी १९४२, पृष्ठ १२।

और फाकामस्ती में रहकर भी अपने सिद्धान्त से च्युत नहीं होना चाहिए।[१] वे सन् १९५१ में, 'मध्यभारत पत्रकार परिषद्' के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे।[२] आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा था कि "उसके ('प्रताप') कुशल सम्पादक पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अमरशहीद विद्यार्थी जी के शोचनीय अभाव में भी, उसका झण्डा पहले ही की तरह ऊँचा किये हुए हैं। उसके सम्पादकीय स्तम्भों में हृदय की ज्वाला, मस्तिष्क का तेज, आत्मा की हुंकार ध्वनि, भाषा का चमत्कार और रण-चण्डी की ललकार भरी होती है।"[३] 'नवीन' की सम्पादन-कला हिन्दी पत्रकारिता का आभूषण है।

उनका मत था कि भारत की एक भाषा का प्राचीन तथा वर्तमान साहित्य उसकी दूसरी भाषा में भी आये। हिन्दी के प्राचीन तथा आज के साहित्यकारों की रचनाओं का भी अन्य भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए।[४] वे बंग भाषा और साहित्य को आदर की दृष्टि से देखते थे और हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य पर उसके प्रभाव को आँकते थे।[५] वे आज के समाज में श्रद्धा, आस्था व विश्वास की प्राण-प्रतिष्ठा के लिये ब्रजभाषा के वैष्णव-साहित्य में पूर्ण आस्था रखते थे और उसके प्रचार-प्रसार में अपना विश्वास प्रकट करते थे।[६]

रबड़ छन्द की अतुकान्त कविता से उन्हें चिढ़ थी। प्रगतिवादी कविता व समीक्षा प्रणाली के वे भी कायल नहीं थे।[७] शब्द-सम्मार्जना और टेकनीक की दृष्टि से वे श्री सुमित्रानन्दन पन्त को पसन्द करते थे। श्री भगवतीचरण वर्मा व 'दिनकर' को प्राणवन्त कवि मानते थे। सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त व माखनलाल चतुर्वेदी की वे हिन्दी कविता के आचार्यों में गणना करते थे। इनके दान व महान् काव्य-वैभव को वे अतुलनीय मानते थे। नवीन पीढ़ी के कवियों में वे डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्री नरेन्द्र शर्मा और श्री भवानीप्रसाद मिश्र में प्रतिभा और ओज देखते थे।[८]

राष्ट्रभाषा सम्बन्धी कार्य एवं विचार—शर्मा जी राष्ट्रभाषा हिन्दी के महान् रक्षकों एवं उन्नायकों में से रहे हैं। उन्होंने हिन्दी को राजभाषा के पद पर अभिषिक्त करने के लिए जो भगीरथ प्रयत्न किये, स्वार्थ व पद-लोलुपता को ठुकराया, राजनेताओं से मुठभेड़ ली और सफलता प्राप्त की है; वह हिन्दी भाषा के लिए एक अविस्मरणीय गाथा है। संविधान-परिषद् में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कराने में उनकी प्रबल व महत्वपूर्ण कार्य भूमिका रही है। इस रूप में वे सदा-सर्वदा हिन्दी के प्यारे व प्रतिष्ठित नेता तथा अभिभावक माने गये।

---

१. 'आगामी कल', अप्रैल १९४५, पृष्ठ ५।

२. 'विक्रम' फरवरी १९५१, पृष्ठ १२।

३. 'शिवपूजन रत्नावली', तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३३३।

४. बंग सम्मेलन में हिन्दी परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण, 'साहित्य सन्देश', दिसम्बर, १९५६, पृष्ठ २५१।

५. वही, पृष्ठ २४९-२५०।

६. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'ब्रजभारती', ब्रजसाहित्य की महत्ता और उपयोगिता, मार्गशीर्ष, सं० २०१६, पृष्ठ १०।

७. 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ७।

८. 'मैं इनसे मिला', पृष्ठ ५६-५७।

राष्ट्रभाषा के अध्वर्यु 'नवीन' ने लिखा था—"यदि आप मुझसे पूछना चाहें कि हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न किस दिन प्रारम्भ हुआ तो मैं इतिहास के पृष्ठों को साक्षी बनाकर कहूँगा कि वह था आज से (सन् १६३५ ई०) २६ वर्ष ३ मास पहले का सन् १६१६ के दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह का कोई वह दिन, जिस दिन गान्धी जी के श्रीमुख से हिन्दी के लिए भारत की राष्ट्रभाषा की उपाधि विनिःसृत हुई।"[१] गान्धी जी के अनुरोध के फलस्वरूप सन् १६२५ में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में हिन्दी सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ और वह पास हो गया। प्रस्ताव इस प्रकार था: "कांग्रेस की यह सभा प्रस्ताव पास करती है कि कांग्रेस, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और वर्किंग कमेटी की कार्रवाई आमतौर पर हिन्दुस्तानी में चलेगी। अगर कोई वक्ता हिन्दुस्तानी न जानता हो या दूसरी आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी या प्रान्तीय भाषा इस्तेमाल की जा सकती है। प्रान्तीय कमेटियों की कार्रवाई आमतौर पर प्रान्तीय भाषाओं में चलेगी। हिन्दुस्तानी भी इस्तेमाल की जा सकती है।"[२]

हिन्दी के राष्ट्र भाषा प्रश्न पर, 'नवीन' जी का गान्धी व जवाहरलाल नेहरू से गहरा मतभेद हो गया था। महात्मा गान्धी 'हिन्दुस्तानी' को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे जिसे 'नवीन' जी ने कभी भाषा के रूप में भी स्वीकार नहीं किया। हिन्दुस्तानी का भारत सरकार और हिन्दुस्तानी अकादमी ने जो स्वरूप निकाला, बनाया व निर्धारित किया था, वह हिन्दी व उर्दू दोनों का मिश्रण था।[३] महात्मा गान्धी के अर्थ के लिये यह सूत्र प्रयोग में लाया जा सकता है—

"हिन्दुस्तानी—हिन्दी—उर्दू—हिन्दी—उर्दू—"[४] श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने लिखा था कि हिन्दुस्तानी नीति की भाषा हो सकती है, प्रतीति की कदापि नहीं, हिन्दुस्तानी भीति की भाषा बन सकती है, प्रीति की कदापि नहीं।[५] हिन्दुस्तानी का रूप महात्मा गान्धी के शब्दों में मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को स्थान दिया जाता है जो भाषा न फारसी-मय है न संस्कृतमयी है।"[६]

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इस दिशा में सर्वोपरि नेतृत्व किया। सेठ गोविन्ददास, बालकृष्ण शर्मा आदि ने उनको इस क्षेत्र में पूर्ण सहयोग दिया। इस विषय में टण्डन जी व गान्धी जी में मतभेद हो गया था। टण्डन जी का इस विषय में मत था—"भाषा और लिपि दोनों ही के समन्वय का प्रश्न है; क्योंकि अनुभव से दिखाई पड़ रहा है कि साधारण कामों में तो हम एक भाषा चलाकर दो लिपि में उसे लिख लें, किन्तु गहरे

---

१. 'साहित्य समीक्षांजलि', पृष्ठ १८४।
२. 'भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा', पृष्ठ १४६ से उद्धृत।
३. श्री चन्द्रबली पाण्डेय—'हिन्दी की हिमायत क्यों ?' पृष्ठ ५६।
४. वही, पृष्ठ ६०।
५. वही, हिन्दुस्तानी की हिमायत क्यों, पृष्ठ १।
६. महात्मा गान्धी का श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को लिखित (दिनांक २८-५-४५ का) पत्र, 'राजर्षि अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृष्ठ ६०।

और साहित्यिक कामों में एक भाषा और दो लिपि का सिद्धान्त चलेगा नहीं। भाषा का स्थायी समन्वय तभी होगा जब हम देश के लिए एक साधारण लिपि का विकास कर सकें। काम बहुत बड़ा अवश्य है, किन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से स्पष्ट ही बहुत महत्व का है।"[१] गान्धी जी ने इस विचार को स्वीकार नहीं किया और अपने दिनांक २५-७-१९४५ के पत्र द्वारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन से त्याग-पत्र दे दिया। इस पत्र में उन्होंने लिखा : "राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है।"[२] सेठ गोविन्ददास ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरठ अधिवेशन में सन् १९४८ में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था—"हिन्दुस्तानी कोई भाषा है ही नहीं। उसका न तो कोई व्याकरण है न साहित्य। जिस भाषा का अस्तित्व ही नहीं, वह राष्ट्रभाषा कैसे बनाई जा सकती है?"[३] इसी भाषण में उन्होंने हिन्दी के पक्ष का इतिहास निरूपण करते हुए कहा था कि "विदेशी राजभाषा अंग्रेजी को अपदस्थ करने के प्रश्न पर सब एकमत थे किन्तु दो लिपियों वाली कृत्रिम हिन्दुस्तानी को वह सिंहासन दिया जाय अथवा विश्व की एकमात्र वैज्ञानिक लिपि नागरी से मण्डिता, इस विशाल देश की स्वयंसिद्धा राष्ट्रभाषा हिन्दी को दिया जाय—इस प्रश्न को लेकर दो विचारधाराओं के समर्थक दल बन गये। एक दल में राजनीति के कर्णधारों की शक्ति और दूसरे में करोड़ों जनता की हार्दिक भावनाओं का समवेत स्वर था।"[४]

'नवीन' जी ने भी हिन्दुस्तानी का डटकर विरोध किया। उन्होंने इस दिशा में लेखनी एवं वाणी, दोनों का ही सदुपयोग किया। उन्होंने लिखा था कि "भारत की आम भाषा को फारसी और अरबी का जामा पहिना देना असंगत और अव्यावहारिक ही नहीं, बल्कि अमाननीय भी है। × × × × वर्तमान हिन्दुस्तानी में हम अपने उच्चतम भाव और भावनाओं को व्यक्त ही नहीं कर सकते। दैनिक विचार और भावपूर्ण कल्पनाएँ, रूखी प्राणहीन और दार्शनिक प्रयोग में आनेवाली भाषा द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती।"[५]

संयुक्त प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पंचम अधिवेशन, प्रयाग में, ३१ मार्च, १९४५ को डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में हुआ था जिसका उद्घाटन राजर्षि टण्डन ने किया था। इस अधिवेशन में डॉ० सम्पूर्णानन्द ने, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा सम्मेलन के वर्धा के निर्णयों के विरोध में एक प्रस्ताव रखा था जिसका समर्थन करते हुए 'नवीन' जी ने कहा था कि "यह कहना शायद अश्लील और मूर्खतापूर्ण जान पड़ेगा कि गान्धी जी हिन्दी का खतना कर रहे हैं; पर इतना तो निःसन्दिग्ध है कि उससे हिन्दी के हित की वृद्धि नहीं हो सकती। मैं बार-बार कह चुका हूँ कि संस्कृत और प्राकृत मिश्रित हिन्दी हमारे देश की

---

१. वही, (दिनांक ११-७-४५) पृष्ठ ९२।

२. श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन का महात्मा गान्धी को दिनांक ११-७-४५ को लिखित पत्र, 'राजर्षि' अभिनन्दन ग्रन्थ', पृष्ठ ९४।

३. 'सेठ अभिनन्दन ग्रन्थ', पृष्ठ ६६।

४. वही, पृष्ठ ६५।

५. 'आगामी कल', हिन्दुस्तानी का प्रचार घातक है, मई, १९४४, पृष्ठ ३२।

राष्ट्रभाषा है। यदि हम हिन्दुस्तानी के रूप में कोई नयी भाषा चलाते हैं तो वह बंगला, मराठी, गुजराती, मुसलमानों पर एक नयी चीज लाद देना होगा। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा होगी।"[१]

काशी अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में भी 'नवीन' जी ने अपनी सिंह-गर्जना में कहा था कि "मैं इस बात का घोर विरोधी हूँ कि हिन्दुस्तानी नामक किसी कपोल-कल्पित भाषा के सृजन के नाम पर हिन्दी का स्वरूप विकृत किया जाय। हिन्दुस्तानी नामक भाषा का हमारे जीवन में, हमारी संस्कृति में, हमारी जन-रुचि में, कोई स्थान नहीं है। हिन्दुस्तानी नामक कपोल-कल्पित भाषा एक ऐसा उपहासास्पद प्रयास है जो कि सांस्कृतिक सम्मेलन के नाम वास्तव में संस्कृति सांकर्य को प्राणोदित करता है। मैं समझता हूँ कि गान्धी जी हिन्दुस्तानी का उद्घोष करके देश को भ्रान्त दिशा की ओर ले जा रहे हैं।"[२] उनका यह स्पष्ट मत था कि "मेरे देश की ऐतिहासिक परिपाटी, संस्कृतिक, जनरुचि एवं जन-हित भावना का यह आदेश है कि वर्तमान आवश्यकता एवं वर्तमान विचारधारा को व्यक्त करने वाली अभिनव शब्द संस्कृत अथवा देशी भाषाओं से ही आयें।"[३]

'नवीन' जी से इस प्रस्ताव को, कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्र-लिपि देवनागरी हो, भारतीय संविधान परिषद् के कांग्रेस दल ने स्वीकृत कर लिया था।[४] डॉ० ज्ञानवती दरबार ने लिखा है कि "राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रस्ताव को लेकर संविधान सभा में जो वाद-विवाद हुआ, उसे सुझाने में और हिन्दी के पक्ष का प्रतिपादन करने में 'नवीन' जी की सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।"[५]

अन्ततोगत्वा हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा व राज-भाषा का पुनीत व महान् पद प्राप्त हुआ। श्री बालकृष्ण शर्मा के अनुसार, एक राष्ट्रभाषा व राजभाषा की हमारे देश को आवश्यकता थी। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी भारत देश ने अन्तर्प्रान्तीय आदान-प्रदान के लिए एवं केन्द्रीय शासन संचालन के लिये एक राजभाषा की आवश्यकता अनुभव की। देश भर को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए राजभाषा चाहिये थी और सर्वाधिक समझी जानेवाली भाषा होने के कारण, देश ने हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया।[६] इसके द्वारा शासकीय एकता भी हो सकती है।[७] हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर उन्होंने ब्रज साहित्य मण्डल के सहारनपुर अधिवेशन में अहिन्दी भाषा-भाषियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की

---

१. 'वीणा', अप्रैल, १९४५, पृष्ठ २२२।

२. वही, नवम्बर, १९४७, पृष्ठ १७-२२।

३. 'वीणा' नवम्बर, १९४७, पृष्ठ १७-२२।

४. वही, पृष्ठ २१।

५. 'भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा', पृष्ठ ३८०।

६. ब्रजसाहित्य मण्डल के सहारनपुर अधिवेशन के अध्यक्षीय पद से दिया गया भाषण, 'ब्रजभारती', स्मृति-अंक, पृष्ठ ६२।

७. 'साहित्य सन्देश', दिसम्बर, १९५६, पृष्ठ २५०।

थी ।[१] उनका स्पष्ट मत था कि हमारे मन में यह भाव नहीं उठता कि हम लोग हिन्दी भाषा को किसी अन्य भारतीय भाषा-भाषियों पर बलात् आरोपित करें ।[२]

हिन्दी के राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपि के राजकीय लिपि हो जाने के पश्चात् उन्होंने कुछ कर्त्तव्य, चेतावनियाँ व निर्देश भी दिये थे । वे समस्त भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी चाहते थे । उनका मत था कि विश्वविद्यालयों का शिक्षा माध्यम हिन्दी हो जाने के कारण प्रान्तीय भाषा-भाषियों के विचारों में बहुत ही स्वस्थ एवं कल्याणकारी परिवर्तन होगा । उनकी दृष्टि विस्तृत होगी, उनके विचार उदार होंगे । हिन्दी के द्वारा वे देश की व्यापक आत्मा के दर्शन कर सकेंगे ।[३] हिन्दी को एकसूत्रता के आविर्भाव के लिए वे देश के सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्चन्यायालय की भाषा भी हिन्दी चाहते थे ।[४] उन्होंने चेतावनी दी थी कि हमें अपनी भाषा को सीमित एवं संकुचित रूप में नहीं रखना चाहिये ।[५] हमारे अभीष्ट कार्यों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने सुझाया था कि शब्दों का दारिद्रय दूर करना है । शासन सम्बन्धी, विधान सम्बन्धी, न्यायालय सम्बन्धी शब्दकोशों के निर्माण की ओर ध्यान देना है । हमें शिक्षा सम्बन्धी पोथियों का निर्माण करना है ।[६]

अंकों के मामले में शर्मा जी का टण्डन जी से मतभेद हो गया था । टण्डन जी नागरी अंकों के पक्ष में थे जब कि शर्मा जी रोमन अंकों के । अंकों के सम्बन्ध में विधान-परिषद् ने यह निर्णय किया था कि भारत-राज्य संघ के राज्य-काज के लिए अंकों का जो रूप प्रयुक्त होगा, वह भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप होगा । उसी धारा में नवमुद्रित विधान के सत्रहवें भाग की ३४३ वीं धारा (३) के उपधारा में विधानपरिषद् ने यह सिद्धान्त भी स्वीकृत कर लिया है कि केन्द्रीय पार्लियामेण्ट किसी भी शासकीय कार्य के लिए अपने विधान द्वारा देवनागरी अंकों का प्रयोग चालू कर सकती है ।[७] 'नवीन' जी ने कहा था कि **"इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पन्द्रह वर्ष के उपरान्त यदि केन्द्रीय लोक सभा चाहे तो भारत-शासन के प्रत्येक विभाग में देवनागरी अंकों का प्रचलन आरम्भ कर सकती है । मुझे दुःख है कि अंकों को लेकर हम एक आन्दोलन खड़ा कर रहे हैं । इस प्रकार का व्यवहार हिन्दी की भावी प्रगति में बाधक बनेगा ।"**[८] अंकों के सम्बन्ध में 'नवीन' जी ने निवेदन किया था—**"काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सावरकर जी और विनोबा जी तथा काका कालेलकर सभी लिपि परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं । इस दशा में प्रयत्न भी आरम्भ हो गए हैं । अब सीधा सा प्रश्न यह है कि जब हम लिपि में परिवर्त्तन करने की बात सोच सकते हैं**

---

१. 'व्रजभारती', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५१ ।
२. 'साहित्य सन्देश', दिसम्बर, १९५६, पृष्ठ २५० ।
३. 'व्रजभारती', स्मृति-अंक, पृष्ठ ६३ ।
४. वही, पृष्ठ ६४ ।
५. वही, पृष्ठ ६१ ।
६. वही, पृष्ठ ६१-६२ ।
७. 'व्रजभारती', स्मृति-अंक, पृष्ठ ५२ ।
८. वही ।

तब क्या हम अंकों में परिवर्तन करने की बात का सुनना भी सहन न करेंगे? मेरा निवेदन है कि हम इस अंकों वाले विवाद को लेकर ऐसा कोई काम न करें, जिससे वही परिपाटी पूजा की भावना परिपुष्ट हो, यदि परिपाटी प्रेम बल पकड़ गया तो हम अपना स्वयं का नाश कर लेंगे।"[१] श्री अवनीन्द्र कुमार ने लिखा है कि 'नवीन' जी ने एक विचार सभा में कहा था कि "पिछले साठ साल से दक्षिण की भाषाएँ रोमन अंकों का व्यवहार कर रही हैं। हमें उनकी भावना का इस विषय में आदर करना चाहिये। यही कारण है कि 'नवीन' जी ने, टण्डन जी का नागरी अंकों के लिए कट्टर समर्थन होते हुए भी, रोमन अंक रखने का कभी विरोध नहीं किया।"[२]

वे सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि के पक्ष में थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद व आचार्य विनोबा भावे भी इसी मत के अनुयायी हैं। वे एक लिपि के रूप में देवनागरी को प्रतिष्ठित करना चाहते थे क्योंकि प्रायः बीस करोड़ के लगभग जनसंख्या देवनागरी लिपि के द्वारा अपना काम चलाने और शिक्षा ग्रहण करने की अभ्यस्त है।[३] बंग सम्मेलन में हिन्दी परिषद् में अपने अध्यक्षीय भाषण में शर्मा जी ने कहा था कि "यदि सभी भारतीय भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जा सकें तो सभी भाषाएँ हमारे लिये कुछ अधिक सुगम हो जायेंगी। एक लिपि का स्वप्न हमारे पूर्वजों ने देखा था। उन पूर्वजों में बंगाल, मद्रास और महाराष्ट्र प्रान्त के मनीषी थे और आज से अर्धशताब्दी के पूर्व उन्होंने भारतीय भाषाओं के लिए लिपि के आन्दोलन का श्रीगणेश किया था। उन मनीषियों का नाम हम आज भी श्रद्धापूर्वक लेते हैं। स्वर्गीय श्री राजेन्द्रलाल मित्र और पुण्य श्लोक लोकमान्य बालगंगाधर तिलक वे महानुभाव थे जिन्होंने प्रान्तीय भावना से ऊपर उठकर इस बात को बलपूर्वक हमारे सम्मुख रक्खा कि इस देश में सभी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जानी चाहिये।"[४]

हिन्दी के राजभाषा बन जाने के पश्चात् भी, राष्ट्रभाषा का यह केहरी और वीर सेनानी हमेशा दहाड़ता ही रहा और हिन्दी के प्रश्न पर हमेशा अग्रणी होकर जूझता रहा। ६ नवम्बर, सन् १९५४ को उत्तरप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बस्ती अधिवेशन के अध्यक्षीय पद से 'नवीन' जी ने इस बात पर जोर दिया था कि "केन्द्रीय शासन द्वारा एक हिन्दी आयोग की स्थापना शीघ्र की जाय। जब तक इस प्रकार के आयोग की स्थापना होकर व्यवस्थित रूप से हिन्दी की उन्नति की योजना नहीं बनती तब तक वास्तव में राष्ट्रभाषा का उचित प्रसार सम्भव दिखाई नहीं पड़ता।"[५] केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की राष्ट्रभाषा के प्रति तथाकथित उपेक्षा की घोर भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा था—"जो लोग हिन्दी को विकृत, कुरूप, अश्लील और असभ्य बना रहे हैं, वे केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के लाड़ले हैं। जो फारसी अरबी के शब्दों के माहिर हैं वे शिक्षा मन्त्रालय के प्यारे कोशकार हैं। जो पुरानी हिन्दी-

---

१. वही, पृष्ठ ६१।

२. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १० जुलाई, १९६०, पृष्ठ १९।

३. 'साहित्य सन्देश', दिसम्बर, १९५६, पृष्ठ २५०।

४. वही।

५. 'ब्रजभारती', सम्पादकीय, भाद्र-मार्गशीर्ष, सं० २०११, पृष्ठ ७९।

प्रचारक संस्थाओं के विरोध में खड़े हो जाते हैं, वे शिक्षा-मन्त्रालय के अनुदान के हामी हैं। जो दो प्रकार की हिन्दी की बातें करते हैं, वे उसके चहेते हैं।"[१] केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त 'हिन्दी आयोग' के वे सदस्य बनाये गये और उन्होंने अपनी गरिमापूर्ण पूर्व परम्परा के अनुसार, हिन्दी का निःसंकोच समर्थन किया। हिन्दी भारती को 'नवीन' जैसे सपूतों पर ही गर्व है।

संस्कृत निष्ठ हिन्दी के राष्ट्रभाषा रूप के उन्नायक 'नवीन' जी ने अपने जीवन, विचारधारा एवं साहित्य में संस्कृतनिष्ठता को, पूर्णतः उतार लिया था। वे विदेशी भाषाओं से वैज्ञानिक शब्द ग्रहण करने के विपक्ष में थे। इस दिशा में कवि ने विद्वद्वर डाक्टर रघुवीर का आभार माना था। 'नवीन' जी ने कहा था—"मेरा निश्चित मत है कि हमारी वैज्ञानिक शिल्पशास्त्री, वैश्वकार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैधानिक आदि शब्दावलियाँ संस्कृत तथा एतद्देशीय भाषाओं की आत्मीयता, उनके अन्तस् के आधार पर हो निर्मित होनी चाहिये।"[२] 'नवीन' जी उर्दू के विरोधी हो गये। उन्होंने इस दिशा में कहा था कि "उर्दू एक ऐसी भाषा है जो कृत्रिम है। हमारे जन-जीवन से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। वह ऐसी भावनाओं को लेकर जीवित हुई है जो हमेशा से ही अभारतीय रही है और इसीलिये उसका हमारे देश की संस्कृति से कोई मेल नहीं खाता है।"[३]

श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि "संविधान-परिषद् के समय से हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद का प्रभाव तो ऐसा गम्भीर हुआ कि 'नवीन' जी, चुन-चुनकर, अरबी-फारसी के शब्दों का बहिष्कार करने लगे। एक दिन तो बड़े प्यार से उन्होंने मुझे समझाया था, 'मित्र', कविता हमारे अन्तःपुर की भाषा है। इसमें तो अरबी-फारसी के शब्द मत रखो।"[४] कवि ने इस दिशा में अपनी ही भाषा का सर्वत्र एवं पर्याप्त परिष्कार ही नहीं किया; अपितु 'दिनकर' की 'नर्तकी' शीर्षक कविता का भी परिमार्जन कर डाला।[५]

राष्ट्रभाषा का यह प्रहरी, राष्ट्रभाषा के वाङ्मय एवं साहित्यकारों के प्रति भी सजग रहा। उनके मतानुसार, प्रगतिवादी कवियों के विचार पदार्थवादी दर्शन की भित्ति पर आधारित हैं। इसलिये हिन्दी के वर्तमान साहित्यकार जब तक उस पदार्थवादी दर्शन को स्वीकृत नहीं करते तब तक उनकी कृतियों और पदार्थवादी आलोचकों के बीच इस प्रकार का झगड़ा चलता ही रहेगा। हिन्दी में जन समूहों की इच्छाओं-आकांक्षाओं, विकास की इच्छाओं तथा नव-निर्माण की भावनाओं को लेकर ऊँचे स्तर का साहित्य सृजन हो। किसी भी साहित्य स्रष्टा की कृतियाँ यदि मानव समाज को ऊँचा उठाने वाली हैं तब तो वे अमर होंगी अन्यथा वे क्षण स्थायी रहेंगी। भारत की आत्मा ही भारतीय साहित्य की आत्मा है।

---

१. 'ब्रजभारती', सम्पादकीय, भाद्र-मार्गशीर्ष, सं० २०११, पृष्ठ ७९।

२. उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, बस्ती अधिवेशन, सं० २०११ का कार्य विवरण, सभापति बालकृष्ण शर्मा का भाषण, पृष्ठ २३-२५।

३. 'युगारम्भ', कार्तिक, सं० २०११, पृष्ठ १०-११।

४. 'वट पीपल', पृष्ठ २९।

५. वही, पृष्ठ ३०।

सच्चा साहित्य वही है जो मानव को ईमानदारी और सफलता के रास्ते पर ले जाने का आह्वान दे।[1] 'नवीन' जी का मत था—"मेरा सदा से यह विचार रहा है और आज भी है कि साहित्य किसी वाद-विशेष की सीमाओं से आबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रगतिवाद या युग धर्मवाद अथवा विचार-विशेषवाद का प्रतिपादक साहित्य ही साहित्य है—ऐसा सोचनेवाले अपने ऊपर और अन्यों पर भी अन्याय करते हैं। सत् साहित्य वह है जो मानव के कल्याण साधन में सहायक हो सके और यह कहना कि श्रेणी चेता प्रेरक साहित्य ही मानव कल्याण साधन में समर्थ है, तो वह एक ऐसा सिद्धान्त है जो मानव-कल्याण को अत्यन्त सीमित कर देगा।"[2] कवि का यह स्पष्ट मत था कि आज का मार्क्स सिद्धान्त समन्वित प्रगतिवाद भी आगामी कल को अर्धमृत रूढ़िवाद में परिणत होने को है।[3]

वाङ्मय की इतर आवश्यकताओं के प्रति भी वे सतर्क एवं चिन्तित थे। रंगमंच के विषय में उन्होंने कहा था कि "हिन्दी के रंगमंच की देश में बहुत आवश्यकता है। इस दिशा में अभी लोग कोई प्रयत्न नहीं कर रहे हैं पर देशी नाटकों को प्रोत्साहन देने के लिये रंगमंच होना अनिवार्य है। हिन्दी के रंगमंच न होने से देश की प्राचीन अभिनय-कला और भाव मुद्राओं को प्रदर्शित करने का मौका नहीं है; इसलिये वह गिरती सी जा रही है। वैसे फिल्म क्षेत्र के प्रधान अभिनेता पृथवीराज कपूर ने इस ओर कदम उठाया है पर उसमें सरकार और जनता के सहयोग की परम आवश्यकता है।"[4]

राष्ट्रभाषा के नवयुवक साहित्यकारों के लिए उनका कहना था कि "मेरी समझ में तो प्रामाणिक मार्गदर्शक यही सिद्धान्त है कि सत्साहित्य के लिये स्वाध्याय निरन्तर आवश्यक है। हमारे नवयुक साहित्य-स्रष्टाओं को सदा यह तत्व अपने सम्मुख रखना चाहिये।"[5] राष्ट्रभाषा के साहित्यकारों की स्थिति के प्रति भी वे सतर्क तथा सहकारी रहते थे। महाकवि 'निराला' के प्रति उनके हृदय में बड़ी ही सहानुभूति थी और उन्होंने कहा था कि 'निराला' गृह-निर्माण किया जाय। वे स्वयं अग्रगामी कदम बढ़ाने के लिए उद्यत थे।[6] राष्ट्रभाषा का यह महान् उपासक न केवल नवीन अपितु प्राचीन सहकर्मियों के प्रति भी श्रद्धालु रहा। राष्ट्रभाषा के शब्द-वैभव की प्रशंसा करते हुए, 'नवीन' जी ने श्री नाथूराम शर्मा 'शंकर' के विषय में एक विराट् कवि-सम्मेलन के सभापति पद से[7] कहा था कि शंकर जी, शब्दों के स्वामी, भाषा के अधीश्वर, मुहाविरों के सिरजनहार और साहित्य के अखाड़े के अक्खड़ पहलवान थे। पूजाई शंकर जी में शब्द-निर्माण की क्षमता असाधारण रूप से

---

१. 'युगारम्भ', कार्तिक, सं० २०११, पृष्ठ ११।

२. 'साहित्य-समीक्षांजलि', पृष्ठ १८६।

३. 'आगामी कल', जनवरी, १९४२, पृष्ठ १२।

४. 'युगारम्भ', कार्तिक, सं० २०११, पृष्ठ ११।

५. 'वीणा', स्वाध्याय और सत्साहित्य सृजन, जून, १९५०, पृष्ठ ४७१।

६. श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित—"आगामी कल', निराला गृह-निर्माण किया जाय : पं० बालकृष्ण शर्मा से भेंट, जून, १९४६, पृष्ठ ७।

७. डॉ० आशा गुप्ता—'खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना', पृष्ठ २७९।

विद्यमान थी। जिस वक्त वे किचकिचाकर लिखते थे, तो उनके शब्द ऐसे होते थे कि पढ़ते-पढ़ते पाठक स्वयं दाँत किटकिटाने लगता था।[1]

निष्कर्ष—गरल के पानकर्त्ता तथा अजेय सेनानी ने अपने विचारों में सदा निष्ठा, विद्रोह, राष्ट्रीयता और मानवता को चिर स्थान प्रदान किया। जीवन और साहित्य दोनों में वे एक रूप थे। उनकी समग्र चिन्तन-प्रणाली व क्षेत्र करुणा व क्रान्ति के मूल भावों से ओत-प्रोत है। जीवन की जिन्दादिली भावों की संजीदगी और विचारों की वह्नि ने हमारे कवि के काव्य में त्रिपुरी स्थापित कर ली है। उनके विचारों में यदि अपने युग का आक्रोश है तो काव्य-विमर्श की कमनीयता भी। उनका जीवन-दर्शन अपनी परिपक्वता तथा विशिष्टता को लिये हुए, अपना अनुपमेय स्थान रखता है।

---

१. 'शंकर सर्वस्व', भूमिका, पृष्ठ ६।

चतुर्थ अध्याय

विहंगावलोकन एवं वर्गीकरण

काव्य-परिचय

विषय-प्रवेश—श्री बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार थे। काव्य-लेखन के अतिरिक्त, उन्होंने निबन्ध, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, अग्र-लेख, गद्य-काव्य[1] एवं कहानियाँ[2] भी लिखीं। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'सन्तू' शीर्षक कहानी है जो कि सन् १९१८ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई।[3]

'रश्मिरेखा' (सन् १९५१) की भूमिका में 'नवीन' जी ने लिखा है कि तीस-पैंतीस वर्षों से लिख रहा हूँ।[4] इससे विदित होता है कि उन्होंने सन् १९१५-१६ से लिखना प्रारम्भ किया था। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित कविता 'जीव-ईश्वर वार्त्तालाप' विषय पर, सन् १९१८ में श्री ज्वालादत्त शर्मा द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'प्रतिभा' के मुख-पृष्ठ पर छपी थी।[5] यह कविता 'आवाहन' शीर्षक से प्रकाशित हुई।[6] स्वतः 'नवीन' जी ने अपने साहित्य-सृजन का प्रारम्भ सन् १९२० से माना है।[7] वस्तुतः सन् १९१८-१९ में उनकी कतिपय रचनाएँ ही प्रकाशित हुई थीं।[8] सन् १९२० से उनकी कविताओं का द्रुत एवं धारावाहिक प्रकाशन दृष्टिगोचर होता है।

श्री रुद्रनारायण शुक्ल ने लिखा है कि 'नवीन' जी द्वारा अब तक लिखी गई स्फुट कविताओं की संख्या एक हजार के आस-पास होगी।[9] श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने उनकी कविताओं

---

१. 'प्रभा', निशीथ चिन्ता, १ नवम्बर, १९२०, पृष्ठ ३०४; पृष्ठ ४२-४५।

२ 'सरस्वती', सन्तू, जनवरी, १९१८; 'प्रतिभा', अभिसार-वीणा, मार्च १९१९, पृष्ठ ३७२-३७६; 'श्री शारदा', गोई जीजी, १२ अक्तूबर, १९२०, पृष्ठ २८-३३; 'प्रभा', बावली, १ जून, १९२२, पृष्ठ ४२२-४२६; 'प्रभा' मेरा छोटे; मार्च, १९२३, पृष्ठ १९२-१९७; 'प्रताप', हाड़ का कंकाल, आदि।

३. 'सरस्वती', जनवरी, १९१८, पौष १९७४; भाग १९, खण्ड १, संख्या १, पूर्ण संख्या २१७, पृष्ठ ४२-४५।

४. 'रश्मिरेखा' परांचः कामाननुयन्ति बालाः, पृष्ठ १।

५. डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—मैं इनसे मिला, दूसरी किस्त, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ ४८-४९।

६. 'प्रतिभा', आवाहन, अप्रैल, १९१८, भाग २, अंक १।

७. 'युगारम्भ', श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव 'अरुण', श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से एक भेंट, कार्तिक, सं० २०११, वर्ष ३, अंक ८, पृ० १०।

८. 'प्रतिभा', आवाहन, अप्रैल, १९१८, पृष्ठ १, 'सरस्वती' तारा, अप्रैल १९१८, पृष्ठ १९९; 'प्रतिभा' दर्शन, जुलाई १९१८, पृष्ठ ९९; 'सरस्वती' विरहाकुल, दिसम्बर १९१८, पृष्ठ ३०२; 'प्रतिभा', संयोग, जून, १९१९, पृष्ठ ९५; 'प्रतिभा', मुरली की तान, अगस्त, १९१९, पृष्ठ १३४।

९. श्री रुद्रनारायण शुक्ल—'दैनिक 'नवजीवन', पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (१२-११-१९५१), पृष्ठ ३।

की कुल संख्या लगभग चार-साढ़े-चार-सहस्त्र बताई है ।[१] अपनी ४५ वर्षों—सन् १६१५-६० ई० की काव्य-साधना में, कवि की सिर्फ सात-काव्यकृतियाँ प्रकाशित हुईं । उनके जीवन-काल में उनका विपुल काव्य-साहित्य अप्रकाशित ही पड़ा रहा ।

पुस्तकाकार एवं प्रकाशन के दृष्टिकोण से, 'नवीन' जी के विशद काव्य-साहित्य को निम्नलिखित विभागों में बाँटा जा सकता है—

(क) प्रकाशित काव्य-कृतियाँ ;

(ख) अप्रकाशित काव्य-कृतियाँ ;

(ग) पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ ।

'नवीन' जी के पाँच-कविता-संग्रह तथा दो प्रबन्ध-काव्य के अतिरिक्त छः अप्रकाशित काव्य-संग्रह हैं । इसके अतिरिक्त, उनकी अनेक कविताएँ अभी भी, प्रकाशित तथा अप्रकाशित काव्यसंग्रहों में स्थान नहीं पा सकी हैं और पत्र-पत्रिकाओं की प्राचीन संचिकाओं में दबी पड़ी हैं ।

प्रकाशित काव्य-कृतियाँ—'नवीन' जी की प्रकाशित काव्य-कृतियों, उनके पाँच स्फुट काव्य-संकलन—'कुंकुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि' तथा 'विनोबा-स्वतन' और दो प्रबन्ध-काव्य—'ऊर्मिला' एवं 'प्राणार्पण' का स्थान आता है । उपर्युक्त ग्रन्थों का परिचय अधोलिखित रूप में है—

कुंकुम—कवि के आदि काव्य-संग्रह 'कुंकुम' का प्रकाशन-काल १६३६ ई० है। इसके प्रारम्भ में एक लम्बी भूमिका दी है जिसका शीर्षक है 'कुछ बातें' ।[२] नागपुर साहित्य-सम्मेलन के कवि सम्मेलन के सभापति पद से दिये गये अपने भाषण को,[३] 'नवीन' जी ने किंचित् परिवर्तित रूप में, भूमिका के रूप में, प्रस्तुत कर दिया है ।[४] प्रस्तुत भूमिका में उन्होंने कवि-सम्मेलन का स्वरूप, परिवर्तन की आवश्यकता, आधुनिक कवि तथा काव्यधारा की विशेषताएँ और आशाप्रद भविष्य के विषय में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं । २४ जनवरी, १६३६ ई० को लिखित 'नवीन' जी के विचार (सम्बन्धित समस्याओं तथा प्रश्नों पर) आज भी नवीन प्रतीत होते हैं । इस भूमिका में उन्होंने तात्विक सत्यों का निरूपण किया है। काव्य तथा कला पर 'नवीन' जी की विचारधारा से अवगत होने के लिए प्रस्तुत भूमिका अत्यन्त उपादेय तथा महत्वपूर्ण है । 'कुंकुम' की भूमिका में, साहित्य के विषय में, स्वर्गीय 'नवीन' जी के बुनियादी विचार संगृहीत हैं ।[५]

'कुंकुम' में ३८ कविताओं को संगृहीत किया गया है । अपनी परवर्ती रचनाओं के सदृश्य, इस कृति में 'नवीन' जी ने कविताओं के लेखन-तिथि का उल्लेख यथास्थान, नहीं किया है ।

---

१. श्री प्रभागचन्द्र शर्मा, इन्दौर से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १३-१२-१६६१) के आधार पर ।

२. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १-१६ ।

३. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'नये पुराने झरोखे', 'नवीन' जी : एक संस्मरण, पृष्ठ २४ ।

४. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १ ।

५. श्री विपिन जोशी—'चिन्तन', 'कुंकुम भूमिका, 'नवीन' स्मृति-अंक, पृष्ठ ८८ ।

यह संकेत अवश्य प्राप्त होता है कि "ये बहुत पहले लिखी गई थी।"[१] सम्भवतः इनका लेखन काल सन् १९२१ से १९३२ ई० की कालविधि के अन्तर्गत आता है। अनेक कविताएँ 'प्रभा'; 'प्रताप' आदि पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा ने कहा था कि "यदि 'नवीन' जी अपने प्रथम काव्य संग्रह में, अपनी चुनी हुई रचनाएँ ही प्रकाशित करते तो उसका प्रभाव हिन्दी-संसार पर अच्छा पड़ता।"[२] चतुर्वेदी जी ने भी लिखा है कि "एक शुभ मुहूर्त में 'कुंकुम' अवश्य प्रकाशित हो गया था; परन्तु उन्होंने उसमें प्राय: अपनी सर्वोत्तम रचनाएँ नहीं आने दी। शायद उनका लेखा-जोखा ही उन्होंने नहीं रखा।"[३] डॉ० बच्चन ने कहा है कि वे "प्रकाशन शास्त्र के ज्ञाता नहीं थे; इसीलिए उनकी रचनाएँ बड़े विलम्ब से प्रकाशित हुई और विधिवत् समीक्षा भी नहीं हुई। उनको अपनी रचनाओं का प्रकाशन दूसरी शैली से करना था। सर्वप्रथम अपनी उत्कृष्ट कविताओं का प्रकाशन करवाते। इसके पश्चात् साहित्यिकों में जिज्ञासा होती तो फिर क्रमशः शनैः-शनैः अपनी पुरानी रचनाओं का संग्रह निकलवाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। पहले क्रमानुसार अपनी प्रारम्भिक व पुरानी रचनाओं को प्रकाशित किया और तदनन्तर दूसरी कविताओं को।[४] सम्भवतः, 'नवीन' जी का यह विचार रहा हो कि रचना-क्रम एवं प्रकाशन क्रम में अनवरत सम्बन्ध रखना चाहिये।

'कुंकुम' में देशभक्तिपरक रचनाएँ ही, अपना प्राधान्य रखती हैं। कवि की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाएँ 'विप्लव गायन'[५] एवं 'पराजय-गीत'[६] इसी संकलन की श्रीवृद्धि करती हैं। वीर-रस से परिपूर्ण कविताओं के कारण, काव्य-श्री में द्युति आ गई है। श्री चौहान ने लिखा है कि-'कुंकुम' में संग्रहीत राष्ट्रीय आन्दोलन, गान्धीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतों में उनका व्यक्तिवाद 'दिनकर' की तरह प्रगति की इतिहास चेतना का विश्वास भरा गर्व-स्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ।[७] उनका व्यक्तिवाद राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर होता हुआ दृष्टिगोचर होता है।[८] राष्ट्रीयता के अतिरिक्त, शृंगार एवं चिन्तन-प्रधान कविताएँ भी प्राप्त होती हैं। प्रेम के संयोग एवं वियोग—दोनों पक्षों को कवि ने स्पर्श किया है।

इस संकलन में, गीत, प्रगीत तथा मुक्तक—तीनों प्रकार की काव्य-प्रणालियों को कवि ने अपनत्व प्रदान किया है। खड़ी बोली के साथ ही साथ, ब्रज-भाषा में भी कतिपय रचनाएँ

---

१. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १।

२. श्री प्रणयेश शुक्ल—'वीणा', कविवर 'नवीन' की आरम्भिक रचनाएँ, मार्च १९४४, पृष्ठ २१२।

३. 'रेखा चित्र', पृष्ठ २०१।

४. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन', नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २३-५-१९६१) के आधार पर।

५. 'कुंकुम', पृष्ठ ६-१४।

६. वही, पृष्ठ ६३-६७।

७. श्री शिवदानसिंह चौहान—'काव्यधारा', हिन्दी कविता का विकास, पृष्ठ ४०।

८. श्री शिवकुमार शर्मा—हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियां, हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, पृष्ठ ४६१।

उपलब्ध होती हैं। कवि के प्रथम संकलन से ही यह विदित हो जाता है कि उसकी काव्य-धारा दो प्रधान विभागों—राष्ट्रीयता तथा प्रणय के कूलों को स्पर्श करती प्रवाहित हो रही है। इस काव्य-संग्रह की आलोचना करते हुए, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने कई वर्ष पूर्व लिखा था कि 'कुंकुम' के प्राशन पर चाय के प्याले में एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ है।[1]

रश्मिरेखा —शर्मा जी का द्वितीय काव्य संग्रह 'रश्मिरेखा' अगस्त, १९५१ में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत गीत संग्रह को कवि ने 'आयुष्मान् हरिशंकर विद्यार्थी' को समर्पित किया है जिनका परिवार 'नवीन' जी का प्राण रहा है।

संकलन की प्रस्तावना में 'नवीन' जी ने अपने जीवन-दर्शन, सत् साहित्य सम्बन्धी आदर्श और अपनी कृतियों की मूलधारा का सुन्दर विश्लेषण किया है।[2] उनकी कृतियों में सबसे छोटी भूमिका, इसी ग्रन्थ को प्राप्त हुई है जो कि सिर्फ चार पृष्ठों में ही समा जाती है। पुस्तक की भूमिका में, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने विस्तार से 'नवीन' जी के गीति-काव्य पर सरस प्रकाश डाला है।[3] सम्बन्धित भूमिका अवस्थी जी की पुस्तक 'साहित्य-तरंग' में भी संग्रहीत हैं।[4]

'रश्मिरेखा' में ५७ कविताएँ संकलित हैं जिनका लेखन-काल सन् १९३० से १९४४ ई० के क्रोड़ में अवस्थित है। इस संग्रह की अधिकांश रचनाएँ तिथि व स्थान-युक्त हैं। सिर्फ चार कविताओं में तिथि एवं स्थान का अंकन प्राप्त नहीं होता।[5] 'नवीन' जी के तृतीय अप्रकाशित काव्य-संग्रह (संचिका क्रमांक तीन) 'यौवनमदिरा' या 'पावस पीड़ा' लघु प्रेम कविताएँ) में भी उपर्युक्त चार कविताओं को संग्रहीत किया गया है जिनमें से तीन के अन्त में तिथि-स्थान मिलता है। 'कह लेने दो' की लेखन-तिथि १४ मई, १९३५ ई० तथा स्थान, श्रीगणेश कुटीर 'प्रताप', कानपुर है।[6] 'बसन्त बहार' के अन्त में, ९ फरवरी, १९३५ ई० की तिथि और श्री गणेश कुटीर, 'प्रताप' कार्यालय, कानपुर का स्थान अंकित है।[7] 'मिल गये जीवन डगर में' शीर्षक कविता में ११ जुलाई, १९३५, ई० की तिथि और रेल-पथ कानपुर-इलाहाबाद के स्थान का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] 'वह सुप्त अश्रुत राग'[9] कविता, प्रकाशित

१. श्री विश्वनाथसिंह—'वीणा', श्रृंगारिकप्रिय कवि 'नवीन', फरवरी, १९५२, पृष्ठ ५३० से उद्धृत।

२. 'रश्मिरेखा' 'परांच कामाननुयन्ति बाला:', पृष्ठ १-४।

३. वही, गीत-काव्य और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पृष्ठ १-२६।

४. श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—'साहित्य तरंग', गीतकाव्य और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १२५-१४७।

५. 'रश्मिरेखा' (क) 'कह लेने दो' पृष्ठ ६५-६६; (ख) 'वह सुप्त अत्रुत राग', पृष्ठ ७०-७२; (ग) 'बसन्त बहार' पृष्ठ १३०-१३२ और (घ) 'मिल गये जीवन डगर में', पृष्ठ १३३-३४।

६. अप्रकाशित काव्य-संग्रह 'यौवन मदिरा' या 'पावस पीड़ा', ३७ वीं कविता।

७. वही, ४९ वीं कविता।

८. वही, ५० वीं कविता।

९. वही, ३४ वीं कविता।

एवं अप्रकाशित दोनों ही-काव्य संग्रहों में स्थान एवं तिथि विहीन है। स्थान के दृष्टिकोण से 'रश्मिरेखा' में गाजीपुर, फैजाबाद, उन्नाव, बरेली के कारागृह और कानपुर व रेलपथ में लिखित रचनाओं का संकलन है। तिथि व स्थान के अतिरिक्त, कवि ने कतिपय कविताओं में निश्चित समय का भी अंकन किया है। बरेली-कारागृह एवं सन् १९४३ की रचनाओं का प्राधान्य है।

प्रणय, विप्रलम्भ श्रृंगार रस, मधुवाद, वात्सल्य, प्रकृति-चित्रण, व्यक्तिगत मस्ती आदि उपादानों ने भी अपना प्रभाव बिखेर रखा है। कवि की अति विख्यात कविता 'हम अनिकेतन' को इसी संग्रह में स्थान प्राप्त हुआ है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस कविता की सराहना करते हुए बताया है कि 'हम अनिकेतन. 'हम अनिकेतन' वाली कविता में जो स्वारस्य था; वैयक्तिक भावनाओं को जो व्यक्त किया गया था; उससे उनकी साहित्यिक शैली में भी उत्तम काव्य लिखने की सूचना प्राप्त हुई थी। 'अनिकेतन' वाली कविता मुझे बहुत पसन्द आई थी और मैंने उन्हें इस पर पत्र भी लिखा था।''[1] समग्र काव्य में ध्वनि-सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।

अपलक—'नवीन' जी का तृतीय काव्य-संकलन 'अपलक' सितम्बर, १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ। 'मेरे क्या सजल गीत ?' शीर्षक १०-११ पृष्ठ की भूमिका में मार्क्सवादी साहित्य दर्शन तथा प्रगतिवादी साहित्य की विचारधारा से कवि ने अपना सप्रमाण मतभेद किया है। इस प्रस्तावना की प्रगतिवादी साहित्यिकों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई थी। डॉ० धर्मवीर भारती ने 'अपलक' की कटु समीक्षा की। उन्होंने लिखा था कि वास्तव में किसी समय ललकार कर विप्लव के गीत और झूम-झूमकर प्रणय के गीत लिखने वाले 'नवीन' आज कितने पिछड़े हुए, कितने 'fossilised' (पथरारे हुए) हो गये हैं; यह इस पुस्तक की 'न भूतो, न भविष्यति' भूमिका से पता लगता है जो न लिखी जाती हो तो बहुत सी बातें ढंकी-मुँदी रह जाती और कवि का हित ही होता।[2] श्री प्रभाकर माचवे ने भी लिखा है कि सिर्फ उन्हें ये सब वैज्ञानिक तक चिन्ता बहस वाली भूमिकाएँ कविता-संग्रह में नहीं लिखनी चाहिये। उनके बिना भी उनकी काव्य-रचना के आनन्द में कमी नहीं आती। फिर क्यों यह वितण्डा ?[3] कवि की 'अपलक' की भूमिका को लेकर जो अन्यत्र विवाद उठ खड़ा हुआ था; उसका प्रभाव उनके मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण पर पड़ा।[4] डॉ० कमलेश द्वारा 'अपलक' की उपर्युक्त आलोचना पर 'नवीन' जी का ध्यान आकृष्ट किये जाने पर, उन्होंने कहा था—''वह आलोचना मैंने पढ़ी है। उसके लिखे जाने का कारण 'अपलक' की भूमिका है, जिसमें मैंने विज्ञानवाद और प्रगतिवाद पर प्रहार किया है। साहित्यालोचन में इस प्रकार की जो शैली चल पड़ी है; वह साहित्य का यथार्थ मूल्यांकन करने में नितान्त असमर्थ है। इतिहास

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा ज्ञात।

२. 'आलोचना', डॉ० धर्मवीर भारती, अपलक, अप्रैल, १९५२, वर्ष १, अंक ३, पृष्ठ ९२।

३. श्री प्रभाकर माचवे—व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ ११३-११४।

४. 'विक्रम'—व्यास उवाच, दिसम्बर, १९५२, पृष्ठ १०।

की यथार्थवादिनी भाष्य-शैली और साहित्यालोचन की परिस्थितिमूलक टीका शैली एक सीमा तक हमारे ज्ञान को निखारती है। उनकी सीमाओं का ज्ञान दृष्टि के सन्निधान में हो तब तो ठीक, अन्यथा 'वानर कर करवाल' की उक्ति चरितार्थ हो जायगी। आज वही बात हो रही है। मानव के इतिहास को, मानव की संस्कृति को, मानव की अभिव्यक्ति को, जब तक हम मानववाद की दृष्टि से नहीं देखेंगे; तब तक राम न चाहेगा। यदि हम इनकी ओर पूँजीवाद या समाजवाद की दृष्टि से देखते रहें तो हमें चित्र का विकृत रूप ही दिखाई देगा। आज के आलोचक चित्र में ऐसे ही विकृत रूप को देख रहे हैं; लेकिन हमें इसकी चिन्ता नहीं है, क्योंकि कविता में प्राण है तो वह सिर चढ़े जादू की भाँति बोलती रहेगी। फिर यहाँ कुम्हड़ बतिया कोऊ नाहीं, जो तर्जनी देखि डर जाहीं।"[1]

'अपलक' में ५२ कविताएँ संगृहीत की गई हैं। वास्तव में इस संकलन में ५१ कविताएँ ही हैं क्योंकि 'कुहु की बात' शीर्षक कविता,[2] पूर्व संकलन 'रश्मिरेखा'[3] में भी आ चुकी है। संकलित काव्य-रचनाएँ सन् १९३३ सन्—१९४८ के मध्य लिखी गईं। डॉ० बच्चन ने लिखा है कि 'नवीन' जी हर रचना के साथ तिथि भी दिया करते थे। इन तिथियों की भी बड़ी महत्ता होगी। कहीं-कहीं परिस्थितियों का भी संकेत है। इनसे कविताओं की प्रेरणा, उनके वातावरण आदि को समझने में सहायता मिलेगी। 'नवीन' जी की कविताओं का मूल उनकी अनुभूतियों में मिलेगा।[4] तिथियों तथा परिस्थितियों के अतिरिक्त 'नवीन' जी ने स्थान तथा कहीं-कहीं समय का भी उल्लेख किया है। प्रस्तुत संग्रह की तीन कविताएँ तिथि-विहीन हैं।[5] इनमें से प्रथम दो कविताएँ 'श्रान्त' तथा 'भिखारी' में लेखन-स्थान का अभाव भी है। कवि के तृतीय अप्रकाशित काव्य-संग्रह (संचिका क्रमांक तीन) 'यौवन मदिरा' या 'पावस पीड़ा' (लघु प्रेम कविताएँ) में भी 'श्रान्त' तथा 'भिखारी' कविताओं को संगृहीत किया गया है; जिनके अन्त में तिथि व स्थान का उल्लेख प्राप्त होता है। 'श्रान्त' की तिथि १७ जनवरी, १९३४ और स्थान जिला जेल, अलीगढ़ है। इसी प्रकार 'भिखारी' की तिथि २९ अगस्त, १९३३ तथा स्थान, जिला जेल फैजाबाद है। प्रस्तुत संकलन की रचनाएँ उन्नाव, बरेली, अलीगढ़ तथा फैजाबाद कारागृहों और श्री गणेश कुटीर, कानपुर में लिखि गई। परिस्थितियों में, कवि ने 'अग्नि दीक्षा काल'[6] 'रोग काल'[7] व भाई रणजित सीताराम पण्डित के महाप्रयाण[8] के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

१. 'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, पृष्ठ ५६-५७।

२. 'अपलक', 'कुहू की बात', पृष्ठ ३२-३३।

३. 'रश्मिरेखा', कुहू की बात, पृष्ठ ५३-५४।

४. 'नए-पुराने झरोखे', पृष्ठ ३७।

५. 'रश्मिरेखा (क) श्रान्त, पृष्ठ २८-२९; '(ख) भिखारी, पृष्ठ ३०-३१; (ग) तुम बिन सूना होगा जीवन, पृष्ठ ३८-३९।

६. 'अपलक' (क) बस-बस, अब न मथो यह जीवन, पृष्ठ ३४, ३५; (ख) 'क्या न सुनोगे विजय हमारी', पृष्ठ ६२-६३।

७. वही, मेरी यह सतत टेर, पृष्ठ ४८-४९।

८. वही, पृष्ठ ६४-६५।

प्रस्तुत संकलन में सन् १९४३ की कविताएं अधिक संग्रहीत हैं और कवि ने प्रधानतः कारागृह-वास में ही रचनाएँ अधिक लिखी।

'अपलक' का मूल काव्य-विषय प्रेम है। प्रेम में स्मृतिजन्य वियोग एवं वेदना के चित्र अधिक उभर कर आये हैं। प्रेम-परक कविताओं के अतिरिक्त, आध्यात्मिक व्यक्तिगत अल्हड़ता तथा प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताएँ भी मिलती है। जहाँ प्रणय सम्बन्धी गीतों में निराशा-जन्य वेदना की प्रमुखता है; वहाँ चिन्तनपूर्ण रचनाओं में भी कवि अलौकिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करते-करते, भौतिकता की ओर उन्मुख हो जाता है। व्यक्तिगत अल्हड़ता की अभिव्यक्ति में, 'हम हैं मस्त फकीर' कवि की प्रतिनिधि रचना है। डॉ० द्विवेदी ने लिखा है कि "केन्द्रीय कारागार बरेली में सन् १९४३ में लिखी हुई 'हम हैं मस्त फकीर' शीर्षक कविता कवि की स्वाभाविक मनोवृत्ति का द्योतक है। युद्ध और प्रेम में फक्कड़पन सदैव मिलता है।"[१]

'अपलक' मूलतः गीतिकाव्य है। गीत तथा प्रगीत दोनों के दृष्टान्त इसमें प्रचुर-मात्रा में उपलब्ध हैं। कतिपय मुक्तक भी हैं। अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ीबोली है। संगीत की अन्तःसलिला प्रवहमान है। 'कुंकुम' में, कुंकुम शीर्षक कोई कविता प्राप्त नहीं होती; यही हाल 'रश्मिरेखा' का भी है; परन्तु 'अपलक' की अन्तिम कविता 'अपलक चख चमक भरो' शीर्षक शब्द को वहन करती है।[२]

प्रस्तुत कविता-संग्रह श्रीमती इन्दिरा गान्धी को सस्नेह समर्पित किया गया, जिनके परिवार से कवि के पुरातन एवं घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं।

वस्तुतः 'कुंकुम' या 'अपलक' ये दो प्रकाशित संग्रह उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र नहीं उपस्थित करते। उनकी अप्रकाशित रचनाओं में उनका व्यक्तित्व कहीं अधिक निखरा है।[३] गुप्त जी ने लिखा है कि "जिस प्रकार की निराशा आलोचक को उनके संकलन 'कुंकुम' से हुई थी, वही 'अपलक' से भी होती है। शायद 'नवीन' के स्वर में जो आकर्षण है; वह इन कविताओं को पढ़ने में नहीं मिलता।"[४] 'अपलक' की भूमिका और 'नवीन' जी की विचारधारा से नितान्त मतभेद होने के कारण, गुप्त जी[५] तथा अन्य प्रगतिवादी लेखकों एवं समीक्षकों ने

---

१. डॉ० रामअवध द्विवेदी—साप्ताहिक 'आज', पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ६।

२. 'अपलक', पृष्ठ १०७-८।

३. श्री प्रभाकर माचवे—व्यक्ति और वाङ्मय, पृष्ठ १००।

४. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—साहित्यधारा, अपलक, पृष्ठ १३८।

५. 'अपलक' की प्रस्तावना में 'नवीन' जी ने आधुनिक हिन्दी आलोचना के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं हैं, जो नितान्त भ्रामक हैं। 'मनुष्य रोटी मात्र है, और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है', 'तुलसी सामन्तवादी कवि थे', 'शैली पूँजीवादी थी', इस प्रकार की स्थापनाएँ हिन्दी आलोचना में आजकल कोई गम्भीर लेखक नहीं करता। शायद विद्यार्थियों के मुँह से आपने ऐसी बातें सुनी हों, या सोलह वर्ष पूर्व की प्रतिध्वनियाँ आपके कानों में गूँज रही होंगी। हम समझते हैं कि आज की हिन्दी-प्रवृतियों का गम्भीर अध्ययन करके किसी भी लेखक को कदम उठाना चाहिये।—वही, पृष्ठ १३९।

'उनकी कृतियों की कटु समीक्षाएं की हैं। वास्तव में तटस्थ दृष्टिकोण से देखने पर, 'नवीन' जी की भूमिकाओं से, उनकी काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ, विचार-दर्शन तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठा से अवगत होने की सात्विक सामग्री प्राप्त होती है।

क्वासि—कवि का चतुर्थ काव्य-संग्रह सितम्बर, १९५२ ई० में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 'नवीन' जी की अत्यन्त सारगर्भित भूमिका है जिसमें प्रगतिवाद, मार्क्सवादी दर्शन, पदार्थवादी समीक्षा, साहित्य-स्रष्टा एवं समीक्षा सम्बन्धी कवि की उपपत्तियाँ, भारतीय साहित्य की आत्मा व उसका लक्ष्य तथा संस्कृति पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया गया है। प्रगतिवाद तथा मार्क्सवादी दर्शन से कवि ने अपना पूर्ण मतभेद प्रस्तुत किया और प्रगतिवादी आलोचकों की समीक्षा का खरा एवं सोदाहरण विश्लेषण किया।[1] 'अपलक' की भूमिका के समान, इस भूमिका ने भी प्रगतिवादी-शिविर में हड़कम्प मचा दिया। प्रगतिवादियों की समीक्षा तथा विरोध के फलस्वरूप ही, 'क्वासि' की लम्बी व तथ्यपूर्ण भूमिका और मध्यभारत हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन के अध्यक्षीय वक्तव्य ने जन्म लिया था। इन दोनों की प्रतिक्रिया एवं कटु-समीक्षा डॉ० रामविलास शर्मा की 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' के 'साहित्य और यथार्थ' शीर्षक लम्बे निबन्ध में देखी जा सकती है।[2]

'क्वासि' को कवि ने 'तीसरा गीत-संग्रह' कहा है।[3] गीत-संकलन की दृष्टि से यह तृतीय कृति है; परन्तु काव्य-संग्रह के दृष्टिकोण से चतुर्थ। प्रस्तुत-संग्रह में ५५ रचनाएँ संकलित हैं। वस्तुत: इसमें ५३ कविताएँ ही हैं, क्योंकि 'मेरे मधुमय स्वप्न रंगीले' और 'प्राणों के पाहुन' शीर्षक दो कविताएँ, इस संग्रह में ही, दो बार संकलित हो गई हैं।[4] समग्र कविताओं का रचनाकाल सन् १९३०-४९ ई० का है। प्रस्तुत संग्रह में सिर्फ चार कविताओं[5] के अतिरिक्त, सभी तिथि-युक्त हैं। शर्मा जी के अप्रकाशित चतुर्थ काव्य-संग्रह (संचिका क्रमांक चतुर्थ) 'प्रलंयकर' (राष्ट्रीय कविताएँ) में, इन तिथि-विहीन कविताओं में से एक रचना 'कमला नेहरू की स्मृति में' भी संकलित की गई है; जिसके अन्त में १८ मार्च, १९३६ की तिथि तथा श्रीगणेश कुटीर, कानपुर के स्थान का उल्लेख है।[6] अन्य तीन कविताओं की लेखन-तिथि तथा स्थान अविदित है।

---

१. 'क्वासि', 'क्वासि की यह टेर मेरी', पृष्ठ १-२५।

२. डॉ० रामविलास शर्मा—'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', चतुर्थ निबन्ध, साहित्य और यथार्थ', पृष्ठ ६०-१०१।

३. 'क्वासि', 'क्वासि की यह टेर मेरी', पृष्ठ १।

४. 'क्वासि', (क) 'मेरे मधुमय स्वप्न रंगीले', पृष्ठ १६-१७ और पृष्ठ ११०-१११; (ख) 'प्राणों के पाहुन', पृष्ठ २४-२५ और पृष्ठ ११४-११५।

५. 'क्वासि', (क) 'लिख विरह के गान', पृष्ठ ३-५, (ख) 'अनिमन्त्रित', पृष्ठ ४३-४४, (ग) 'कमला नेहरू की स्मृति में', पृष्ठ ९८-९९, और (घ) 'उड़ चला', पृष्ठ १००-१०१।

६. अप्रकाशित चतुर्थ काव्य-संग्रह 'प्रलयंकर', कमला नेहरू की स्मृति में, ३९ वीं कविता।

स्थान के दृष्टिकोण से 'क्वासि' की कविताएँ, गाजीपुर, उन्नाव, बरेली के कारागृहों और श्रीगणेश कुटीर, कानपुर तथा अन्य स्थलों पर लिखी गई। परिस्थितियों के दृष्टिकोण से, 'अग्नि-दीक्षाकाल'[१] के अन्तर्गत लिखित कविताएँ मिलती हैं। कवि ने निश्चित समय, विशिष्ट अवसरों तथा पर्वों का भी, कतिपय कविताओं के अन्त में, उल्लेख किया है।

प्रस्तुत-संग्रह में कारागृह में रचित कविताएँ, अपेक्षाकृत कम, संकलित हैं और सन् १९४४ में लिखित कविताओं का प्राधान्य है।

'क्वासि' संस्कृत-शब्द है जिसका अर्थ है कहाँ हो ? संग्रह के शीर्षक के अनुसार इसमें दार्शनिक कविताओं की प्रचुरता है। ग्रन्थ के शीर्षक में, प्रतिमाद्य विषय की ओर, शर्मा जी का सबल संकेत है। 'नवीन' का जिज्ञासाकुल किन्तु अपरिचित नचिकेता अदृष्ट एवं अतीन्द्रिय सत्ता के सूक्ष्म रहस्यों से अवगत होने के लिए, काव्य-कल्पना के यान पर विराजकर, उड्डीयमान होता है। लौकिक बन्धनों से विमुक्त होने की ओर हमारा कवि गतिशील है। श्री शिवबालक शुक्ल ने लिखा है कि 'विस्मृता उर्मिला' और 'कुंकुम' में सांसारिक विषय हैं। परन्तु 'क्वासि' के उपक्रम, उपपत्ति, उपसंहार आदि षड्लिंगों के दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि 'लौकिक बिन्दिया' का प्रेमी अब चिन्तना के चैत्य पर बैठकर आध्यात्मिक विचारों की माला गूँथ रहा है। यह भी प्रगति है, कवि के अन्तर्जगत् की उत्क्रान्ति है। फिर भी यदि कोई कहे कि प्रगतिशील 'नवीन' मर गये तो 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी', से ही सन्तोष करना पड़ेगा।[२] इस संग्रह में, कवि की सर्वोत्तम रहस्यवादी रचनाएँ अपना नीड़ बनाती हैं। उनकी आध्यात्मिकता की उत्तरोत्तर वृद्धि को श्रीमन्मथनाथ गुप्त ने पसन्द नहीं किया था ; अतएव उन्होंने लिख दिया था कि कवि तो मर गया अब दार्शनिक ने उसकी जगह ले ली है।[3] वस्तुतः इस विकास का मूल-स्रोत उनकी आयु की वृद्धि, अनुभव, अध्ययनशीलता तथा सांसारिक विरक्ति में ढूँढ़ा जा सकता है।

'अपलक' और 'क्वासि' की कविताओं में प्रेम की भाव-भूमि का दार्शनिक शृंगार करने का प्रयास है।[४] प्रणय-गीतों में स्मृति-जन्य अश्रुपात की आर्द्रता विद्यमान है। मृत्यु-गीत, प्रकृति चित्रण, राष्ट्रीयता आदि तत्वों ने भी काव्यधारा में अपने चक्र बनाये हैं।

'अपलक', 'रश्मिरेखा' और 'क्वासि' के गीतों में क्रान्ति एवं विप्लव का स्वर बड़ी तीव्रता के साथ मुखरित हो उठा है।[५] प्रस्तुत संग्रह में गीति कला का सुन्दर तथा सुष्ठु निदर्शन प्राप्त होता है। गीतिकाव्य पर ब्रजभाषा, कनौजी, अवधी तथा लोकगीतों की धुन का मार्मिक प्रभाव भी आँका जा सकता है। प्रार्थनापरक रचनाएँ भी मिलती हैं।

---

१. 'क्वासि', (क) प्रिय जीवन-नद अपार, पृष्ठ ६-७, (ख) विदेह, पृष्ठ ८-९।

२. श्री शिवबालक शुक्ल—'वीणा', 'नवीन' जी की 'क्वासि', जून, १९६०, पृष्ठ ३८९।

३. 'कृति', मई, १९६०, पृष्ठ ६७।

४. श्री शिवदानसिंह चौहान—'काव्यधारा', हिन्दी कविता का विकास, पृष्ठ ४०।

५. श्री शिवकुमार शर्मा—'हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ ४६१।

प्रस्तुत-संग्रह की शीर्षकवाहिनी अन्तिम कविता 'क्वासि', संकलन की मूलभित्ति के द्वार खोलती है।[१]

विनोबा-स्तवन—कवि का पंचम एवं अन्तिम प्रकाशित काव्य-संग्रह 'विनोबा-स्तवन' है जिसमें भूदान-यज्ञ के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे को श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। यह संग्रह 'बन्धुवर सियारामशरण गुप्त' को सस्नेह समर्पित किया गया है। संग्रह का प्रकाशन-काल सं० २०१० है। 'नवीन' जी ने पुस्तक की भूमिका 'सन्त विनोबा' में विनोबा के व्यक्तित्व, प्रतिभा, तपश्चरण, ग्रन्थि शून्य जीवन, ज्ञान, सन्देश और महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।[२] अपने जीवन के उत्तरकाल में 'नवीन' जी विनोबा से अत्यधिक प्रभावित हो गये थे और उनके दर्शन का प्रभाव भी, कवि की विचारधारा पर देखा जा सकता है। विनोबा, कवि के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। सन् १९५१ में शर्मा जी अधिकतर आचार्य विनोबा भावे के सम्बन्ध में प्रवचन करते थे और पत्र-पत्रिकाओं को परामर्श देते थे कि भावे जी के सन्देश को प्रथम स्थान दें।[३] वे विनोबा जी की रचनाओं को शुद्ध साहित्य की परिधि में परिगणित करते थे।[४]

प्रस्तुत-संग्रह में 'अहो मन्त्रद्रष्टा, हे ऋषिवर !', 'उड़ान,' 'जग चुकी है वर्तिका' 'अस्थि-पंजर,' 'महाप्राण के स्वन,' 'ईशावास्योपनिषद् बाला' और 'इस धरती पर लाना है' शीर्षक सात कविताएँ संकलित हैं। सब कविताओं के अन्त में कवि ने लेखकतिथि एवं स्थान का उल्लेख किया है। समग्र कविताओं का लेखन-स्थल नई दिल्ली है और मई १९५३ में लिखी गई। सिर्फ अन्तिम कविता जून, १९५३ में लिखी गई।

वामन विनोबा की साधना एवं मानस सेवा ही इस कृति की भावना है। उनके व्यक्तित्व, सन्देश, गान्धी जी का उत्तराधिकार, प्रभावोत्पादकता, महापुरुषों की परम्परा, मानव मन का उद्वेलन, वाणी की महत्ता और जन-कल्याण के पक्षों को 'नवीन' जी ने अपनी कविता-माला में गूँथा है। समस्त साहित्यिक गुणों से परिप्लावित, यह स्तवन संस्कृति तथा आस्था का जीवित स्मारक है।

'विनोबा-स्तवन' में कवि 'नवीन' ने किसी प्राकृत जन का गुणगान कर अपनी सरस्वती की अवमानना नहीं की, वरन् भारतीय संस्कृति की समग्र चेतना को अपनी साधना में समेट कर 'बहुजन हिताय' की आकांक्षा से परिपूर्ण उस तपस्या की वन्दना की है, जिसके अन्तस् की कल्याणी वाली दानवता की दुराकांक्षाओं को चुनौती देती हुई मानवता को जीवन का सम्बल प्रदान कर रही है। वस्तुतः स्वर्गीय 'नवीन' जी का सम्पूर्ण जीवन भी तो दुर्धर्ष जीवन-संघर्षों की ज्वाला में तपकर एकनिष्ठ, अविचल और एकरस साधना में रत होकर ऋषि की एक तेजस्वी महिमा को मूर्त्त कर सका। किन्तु कवि-मनस्वी तपस्वी 'नवीन' के व्यक्तित्व के प्रति

---

१. 'क्वासि', क्वासि ?, पृष्ठ ११८।

२. 'विनोबा-स्तवन', सन्त विनोबा, पृष्ठ १-११।

३. श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव—'सरस्वती', मुझको तो हो तुम नित नवीन, जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३०।

४. श्री भारतभूषण अग्रवाल—डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, दादा : स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १५३।

हमारा हृदय उस समय श्रद्धा से परिपूर्ण भावोन्मेष की चरमस्थिति में देखते हैं।[1] कवि ने विनोबा जी को मानवीय क्रान्ति के प्रवर्तक एवं राष्ट्रीय भावनाओं के जीवन्त प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है।

राष्ट्रसन्त विनोबा जी के व्यक्तित्व एवं सन्देह पर श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर,' डॉ॰ सुधीन्द्र, सोहनलाल द्विवेदी, श्री गौरीशंकर मिश्र, पारसनाथ शर्मा, अरविन्द, परमहंस शुक्ल, रघुनाथ सिंह, विकास वाजपेयी, वार्ष्णेय आदि महानुभावों ने रचनाएँ लिखी हैं। सर्वाधिक सुन्दर काव्य-गायन एवं लेखन स्वर्गीय कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कृति 'विनोबा-स्तवन' द्वारा सम्पन्न हुआ है।[2] कवि ने पूर्ण तन्यमता, निष्ठा तथा तात्विक रूप में इस कृति का सृजन किया है।[3]

उर्मिला—'नवीन' जी का छठवाँ काव्य-ग्रन्थ 'उर्म्मिला' है जो कि उत्कृष्ट कोटि की प्रबन्ध कृति है। इसे पूज्य 'दद्दा' श्री मैथिलीशरण गुप्त को समर्पित किया गया है जिनके प्रति कवि के हृदय में श्रद्धा एवं आस्था की भावना रही है। यह काव्य सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका 'श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु' कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सूचना-प्रद है। 'उर्म्मिला' सम्बन्धी अत्यन्त बहुमूल्य तथा उपादेय सूचनाओं का स्रोत यह भूमिका ही है। 'नवीन' जी ने इसके लेखन-प्रकाशन का इतिहास, पृष्ठिभूमि, प्रेरणा तथा लक्ष्य, काव्यकथा सम्बन्धी निजी आदर्श व मान्यताएं, महाकाव्य की आवश्यकता और युगीन माँग, आदि बातों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।[4]

'उर्म्मिला' के लेखन एवं प्रकाशन का लम्बा इतिहास है। इसके लेखन का श्रीगणेश सन् १९२२ के नवम्बर अथवा दिसम्बर मास से किया गया[5] और सन् १९३४ के फरवरी मास में समाप्त हुआ।[6] इसके लेखन में लगभग सवा-बारह वर्ष लगे। यह ग्रन्थ २३ वर्ष (सन् १९३४-१९५७) तक अप्रकाशित ही पड़ा रहा। श्री नरेश मेहता ने लिखा है कि "साहित्य में उन्होंने मुचुकुन्द का आदर्श उपस्थित किया। फलस्वरूप सन् ३४ का प्रणीत उर्मिला महाकाव्य सन् ५८-५९ में प्रकाशित होता है। और जाहिर था कि उस कृति में कृतिकार की जो सामाजिक प्रतिष्ठा होती भी, वह नहीं हुई।"[7]

'गुप्त जी के 'साकेत' और 'उर्मिला' के निर्माण-काल में एक-दो साल का ही अन्तर है। 'सकेत' समाप्त हुआ १९३१ में और 'उर्म्मिला' १९३४ में। पर वह प्रकाशित हो सकी

---

१. डॉ॰ चिन्तामणि उपाध्याय—'चिन्तन', विनोबा-स्तवन' एवं स्वर्गीय 'नवीन' जी, 'नवीन स्मृति-अंक', पृष्ठ ९४।

२. लक्ष्मीनारायण दुबे, 'साहित्य के चरण', महाप्राण विनोबा और हमारे कवि, पृष्ठ ४०।

३. 'विनोबा-स्तवन', इस धरती पर लाना है, पृष्ठ ३१।

४. 'उर्म्मिला', श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु।

५. वही, पृष्ठ (ख)।

६. 'उर्म्मिला', श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ ग।

७. 'कृति', टिप्पणी, वैष्णव जन—'नवीन' जी, अप्रैल, १९६०, पृष्ठ ६६।

१९५७ में। इस देरी के लिये 'नवीन' जी ने बहुतेरे कारण दिये हैं। यथार्थ में, यह उनका कवि, आत्मप्रकाशन की दुर्बलता के प्रति विद्रोह ही था।[१] विलम्बित प्रकाशन के कुछ परिणाम भी हुए हैं। डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है कि "इस दौरान में हिन्दी-कविता काफ़ी आगे बढ़ चुकी है; अतः उसकी अभिव्यक्तियाँ एक ओर बीसवीं शती के छठे दशक से पीछे की है, उसका दृष्टिकोण आर्य-समाजी एवं राष्ट्रीय संग्राम के आरम्भिक काल का है, वहीं वे इतनी पुरानी भी नहीं हैं कि अपेक्षित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उन्हें तटस्थता-पूर्वक रखा जा सके। उसका लेखन आज भी क्रियाशील है। 'साकेत' जहाँ परम्परा की एक कड़ी बन गया, वहीं 'उर्म्मिला' धार से असम्पृक्त हो गये जल की भाँति प्रतीत होती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि सम्भवतः कुछ और दिन बीत जाने पर 'उर्म्मिला' अधिक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी ग्रन्थ होगा।"[२]

'उर्म्मिला' काव्य की कथावस्तु छः सर्गों में विभाजित तथा वर्णित है। प्रस्तुत काव्य-कथा में रचनाकार ने रामायणी कथा को नूतन दृष्टिकोण से देखने तथा प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। उर्म्मिला के चरित्र को प्रधानता देते हुए, आधुनिक युग की प्रतिक्रियाओं को भी प्रतिपादित किया गया है। आलोच्य-काव्य में विविध छंदों तथा शैलियों का प्रयोग किया गया है। कवि के यशःशरीर को जीवित रखने और कृतित्व के धनीभूत प्रतीक के हेतु 'उर्म्मिला' कृति ही पर्याप्त है।

प्राणार्पण—स्वर्गीय हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के निधन के पश्चात् (सन् १९३१) इस खण्ड-काव्य की रचना हुई। प्रस्तुत पुस्तक के 'प्रस्तावना' का गीत 'ओ तुम प्राणों के बलिदान',[३] सन् १९४२ में 'वीणा' के मुखपृष्ठ पर, गणेशजी के चित्र सहित, प्रकाशित हुआ था।[४] साथ ही, कविता के अन्त में, यह टिप्पणी भी प्रकाशित हुई थी कि 'पूज्यार्ह स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की बलिदान-स्मृति में लिखे गये 'प्राणार्पण' नामक काव्य-ग्रन्थ का प्रारम्भिक गीत। यह ग्रन्थ, लेखक ने अपनी गत जेल-यात्रा की अवधि में लिखा है। यह अभी अप्रकाशित है'।[५] इससे यह प्रमाणित होता है कि अपनी अन्य कविताओं तथा प्रबन्धकृति के समान, यह भी 'तपोभूमि' की तपस्या का पुनीत फल हैं।

'प्राणार्पण' के प्रारम्भ में प्रधान-मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की भूमिका है जो कि हुतात्मा गणेशजी तथा स्वर्गीय 'नवीव' जी के पुराने तथा घनिष्ठ मित्र रहे हैं। काव्य-विषय तथा काव्यकार दोनों की मनःस्थितियाँ तथा घटनाओं को श्री नेहरू ने निकट से जाना पहचाना है। २१ जनवरी, १९६२ को लिखित इस भूमिका में बलिदान की महिमा आँकी गई है।

---

१. डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन—'सम्मेलन पत्रिका', कवि नवीन और उनकी 'उर्म्मिला' विविध भाग ४६, संख्या, ३ आश्विन—मार्गशीर्ष १८८२ शक पृष्ठ १३०।

२. 'कल्पना' उर्म्मिला, जून, १९६०, पृष्ठ ६२।

३. 'प्राणार्पण' प्रस्तावना।

४. 'वीणा' ओ तुम प्राणों के बलिदानी, जुलाई, १९४२, पृष्ठ ७७३-७४।

५. वही, पृष्ठ ७७४।

'गणेशशंकर विद्यार्थी' पुस्तक की 'प्रस्तावना' में भी नेहरू जी ने 'जार्ज बर्नार्डशा' के प्रस्तुत उद्धरण को गणेशजी पर चरितार्थ किया है—

'This is the true joy in life, the being used for a purpose recognised by yourself as a mighty one, the being thorougly worn out before you are thrown on the Scrap heap, the being a force of nature, instead of a feverish, selfish little cold of ailments and grievances, complaining that the world will not devome itself to aking you happy."

अर्थात् "मानव जीवन का सच्चा सुख इसी में है कि जीवन का एक ऐसे उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाय जिसको आप महान् और उत्कृष्ट समझते हों। आप अच्छी तरह जीर्ण और जर्जरित हो जायें पूर्व इसके कि कूड़े के ढेर में फेंक दिये जायें और आप प्रकृति की एक शक्ति हों न कि क्लेश, शोक और उपालम्भों के ज्वरग्रस्त और क्षुद्र मृत्पिण्ड हों जो सदा यही शिकायत करता रहता है कि संसार मुझको सुखी बनाने की ओर ध्यान नहीं देता।"[1]

'भूमिका' के पश्चात् 'काव्य-कथा' में काव्यवस्तु का सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है। 'प्रस्तावना' में कवि के दो गीत हैं—'ओ, तुम प्राणों के बलिदानी' और 'वह थी एक भयानक होली।' इन गीतों में गणेश जी के व्यक्तित्व तथा कानपुर की तत्कालीन स्थिति का निरूपण प्राप्त होता है।

गणेश जी के शहीद होने की घटना का काव्यात्मक वर्णन ही इस खण्डकाव्य की विषयवस्तु का सार है। वस्तुतः इसमें कथाभाग अत्यन्त सूक्ष्म है। कथावस्तु को घटनात्मक न कह कर, भावात्मक कहा जा सकता है। मूल-काव्य में पाँच सर्ग अथवा 'आहुतियाँ' थी परन्तु प्रकाशनार्थ प्रस्तावित प्रारूप में सिर्फ चार सर्ग ही प्राप्त होते हैं।

गणेश जी की पावन-वन्दना से इस काव्य का आरम्भ होता है। 'अथ श्री प्रथम आहुति'[2] या प्रथम सर्ग में २५ छन्द हैं जिनमें समसामयिक जन-जीवन का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। 'द्वितीय आहुति'[3] के २४ छन्दों में मार्च, १६३१ के समय के कानपुर का चित्रण है। साम्प्रदायिक तत्वों का भी विश्लेषण किया गया है। 'तृतीय आहुति[4] में गणेशजी की मानसिक दशा, शारीरिक स्थिति तथा दंगे की गहन प्रतिक्रिया को निरूपित किया गया है। इस सर्ग में ४६ छन्द हैं। 'चतुर्थ आहुति'[5] में ६० छन्द हैं और यह सबसे बड़ा सर्ग है। इसमें गणेश जी के जीवन के अन्तिम क्षणों की गाथा तथा शहीद होने की गरिमा अंकित है। यहीं

---

१. 'गणेशशंकर विद्यार्थी', प्रस्तावना।
२. 'प्राणार्पण', अथ श्री प्रथम आहुति, पृष्ठ १-११।
३. वही, द्वितीय आहुति, पृष्ठ १२-१८।
४. तृतीय आहुति, पृष्ठ १६-३१।
५. वही, चतुर्थ आहुति, पृष्ठ ३२-५१।

काव्य समाप्त हो जाता है। इस काव्य में असम्मिलित 'पंचम आहुति' का नाम गीत-माला है जिसमें १६ गीत हैं। ये शोक-गीत हैं। दार्शनिकता में रंगे-लिपटे इन गीतों का सम्बन्ध मृत्यु से है। प्रस्तुत 'प्रारूप' में इस सर्ग को सम्भवतः इसलिए सम्मिलित नहीं किया गया कि इसको कथा-वस्तु के घटना-चक्र एवं प्रबन्धात्मकता से प्रत्यक्ष एवं गहरा सम्बन्ध नहीं है।[1]

इस काव्य के नायक गणेश जी हैं और ख्यातवृत्त है। अपने आराध्य एवं जीवन-निर्माता विद्यार्थी जी के प्रति कवि की भक्ति ही काव्य-प्रवाह बन कर, गतिशील हो पड़ी है।

पूर्ण विश्वास है कि कवि की इस महान् एवं नवीनतम प्रकाशित कृति का हिन्दी संसार हार्दिक स्वागत करेगा। हमारी युगीन परिस्थितियों के लिए भी यह अनुकूल तथा नवीन बनी हुई है।

अप्रकाशित काव्य-संग्रह—'सिरजन की ललकारें' या 'नुपुर के स्वन'—प्रथम अप्रकाशित काव्य-संग्रह को कवि ने दो शीर्षक 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपुर के स्वन' प्रदान किये हैं। किसी एक शीर्षक के अन्तर्गत यह संकलन प्रकाशित होगा। पाण्डुलिपि में कुल १६३ पृष्ठ हैं और ४१ कविताओं को संग्रहीत किया गया है। इस संग्रह की दो कविताएँ यथा 'नैशयाम कल्पमान'[2] और 'उड़ चला',[3] 'क्वासि'[4] में संग्रहीत हो चुकी हैं।

संग्रह के शीर्षक संकलन को दो कविताओं—'सिरजन की ललकारें मेरी'[5] तथा 'आये नुपुर के स्वन झन झन'[6] के आधार पर दिये गये हैं। 'सिरजन की ललकारें' काफी लम्बी कविता है जो कि ३८ टंकित पृष्ठों में समाहित है। इसमें ७५ छन्द तथा ६६० पंक्तियाँ हैं। इसमें महात्मा गान्धी, उनके विचार तथा हिंसा व अहिंसा के द्वन्द्व आदि को प्रस्तुत किया गया है।

लेखन-काल सन् १९३४-१९५५ है। चार तिथिविहीन एवं स्थानविहीन रचनाएँ हैं। सन् १९४३ ई० तथा बरेली कारागृह की रचनाओं को इस संग्रह में प्राधान्य प्राप्त है। कवि ने यत्र-तत्र निश्चित समय का भी उल्लेख किया है। विशेष परिस्थिति में, 'अग्नि दीक्षा काल'[7] का नामोल्लेख है। कवि की प्रख्यात अध्यात्म-परक रचनाएँ 'कस्त्वं कोऽहं ?'[8] तथा

---

१. "'प्राणार्पण' के पाँचवें सर्ग में कुछ स्फुट कविताएं थीं—इन दो सिरीज आयु मृत्यु गीत। अन्त में 'नवीन' जी ने ही यह उचित समझा कि वे १०-१२ मरण गीत (जो स्वतन्त्र ही थे) खण्डकाव्य से निकाल लिये जायें। ये गीत ज्ञानपीठ को दी गयी पाण्डुलिपियों में हैं।"

श्री रुद्रनारायण शुक्ल का मुझे लिखित (दिनांक—२०-८-१९६२ के) पत्र से उद्धृत।

२. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपुर के स्वन', ७ वीं कविता।

३. वही, ४० वीं कविता।

४. 'क्वासि', 'नैशयाम कल्पमान', पृष्ठ ९६-९७; 'उड़ चला', पृष्ठ १००-०१।

५. १९ वीं कविता।

६. ४१ वीं कविता।

७. 'बयालीसवें वर्षान्त में', प्रथम कविता।

८. ३४ वीं कविता, 'विशाल भारत', अक्तूबर. १९३७, पृष्ठ ३५३-३६५।

'यह रहस्य उद्घाटन रत मन'[१] को इसी संग्रह में स्थान प्राप्त हुआ है। कवि के बाल्यावस्था की गाथा 'बरती के पूत'[२] और वृद्धावस्था की करुण कहानी' यों शील युक्त, यों अति आलिंगित है जीवन'[३] ने भी संग्रह की सारवृद्धि की है।

प्रस्तुत कृति में दार्शनिक कविताओं को संकलित किया गया है। कवि कभी लौकिक से अलौकिक की ओर उन्मुख हुआ है और कभी अलौकिक से लौकिकता की ओर आया है। सांसारिक जीवन की अनुभूतियों को अध्यात्म की दिशा में मोड़ा गया है।

'नवीन-दोहावली'—'नवीन' जी के जीवन-काल में ही श्री रामनारायण अग्रवाल ने लिखा था कि "कवि 'नवीन' का एक और भी रूप है, जो अभी तक हिन्दी-जगत् को पूरी तरह ज्ञात नहीं हो सका है। उनका यह रूप उनके ब्रजभाषा काव्य में अभी ज्यों का त्यों लुका-छिपा है। ब्रजभाषा में सैकड़ों दोहे स्वान्तः सुखाय भाव से 'नवीन' जी ने जेल की चहारदीवारी में या अन्य अवकाश के क्षणों में लिखकर एक मोटी काली कापी में इतने भीतर रख छोड़े हैं; मानो वे उनके अन्तस्तल में ही छिपे हों। विना विशेष प्रयत्न किये कोई उन्हें सुन पाना तो दूर, कदाचित् छाँह भी नहीं छू सकता। इसका क्या कारण है, यह उनसे पूछने का हमें कभी साहस नहीं हुआ, परन्तु हम स्वयं इसका कारण यही समझते हैं कि जनता में कहने या सुनने के लिए सम्भवतः उन्होंने अपने ब्रजभाषा के दोहे नहीं लिखे। जनता के लिए, उनका जो काव्य है; वह खड़ीबोली में ही रचा गया है। परन्तु ब्रजभाषा काव्य 'नवीन' जी के उपास्य भगवान् श्रीकृष्ण की भाषा का काव्य है जो उनकी वैष्णवीय श्रद्धा का केन्द्र-विन्दु है; अतः इस भाषा में अधिकांश काव्य-रचना उन्होंने दूसरों के लिए नहीं, स्वयं अपने लिए की है। अपने इस काव्य में आत्म-चिन्तन और आत्म-दर्शन 'नवीन' जी ने विशेष रूप से किया है।"[४]

आत्म-चिन्तन तथा आत्म-मन्थन से मथित, कवि की द्वितीय अप्रकाशित काव्य-कृति 'नवीन-दोहावली' में भी प्रथम अप्रकाशित कृति के समान ही सन् १९४३ और बरेली-कारागृह की रचनाओं की प्रधानता है। बीस शीर्षकों के अन्तर्गत २५६ दोहे हैं।

'नवीन-दोहावली' का प्रधान विषय शृंगार है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिकता, दार्शनिकता तथा प्रार्थना को भी स्थान प्राप्त है। प्रथम रचना 'यह प्रवास आयास' के पाँच दोहों में प्रवासी-प्रेमी की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। 'नवीन-दोहावली' के १६ दोहों में प्रेम-भावना की प्रधानता है। 'सतत प्रवासी'[५] के १० दोहों में प्रणय का स्वर प्रमुख है। 'तुम निःसाधन' के छन्दों में प्रखरता को वाणी मिली है। 'नैना' १४ दोहों में नयन के विभिन्न रूप चित्रित हैं। 'अनुरोध' के १८ दोहों में अपने प्रिय से मार्मिक आग्रह हैं। 'संशय दैन्य' के १४ दोहों में निराशावादिता तथा तर्क-वितर्क की स्थिति को आधार प्राप्त हुआ है। 'घाव' में प्रेम

---

१. २५ वीं कविता।

२. ३६ वीं कविता।

३. १४ वीं कविता, 'आजकल', फरवरी, १९५८।

४. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का ब्रजभाषा काव्य, १६ दिसम्बर, १९५६।

५. साप्ताहिक 'प्रताप', सतत प्रवासी (२२-१-१९४६)।

तथा वेदना की प्रमुखता है। 'मेरे प्राणाधिक' के दो दोहे तथा आठ चौपाइयों में प्रार्थना का स्वर विकीर्ण है। 'अपनी-अपनी बाट' के सात दोहों में सांसारिकता अथवा नैतिकता की प्रधानता है। 'नैया' के द्वादश दोहों में प्रेम तथा भक्ति का समन्वित रूप है। 'पहेली मानव' के २७ दोहों में प्रेरक स्थिति तथा उद्बोधन को स्वर मिला है। 'अनवाप्त' के ९ दोहों में आत्माभिव्यक्ति है। 'राग-विराग' के १५ दोहों में प्रणय तथा चिन्तन की गंगा-जमुना हिलोर ले रही है। 'हंसिनि उड़ी अकास' के १९ दोहों में मृत्यु को विषय बनाया गया है। 'पिंजर बद्ध मानव' के छः दोहों में बन्दी-जीवन की सारमयी अभिव्यक्ति है। 'पै न टरे घनश्याम' के ४ दोहों में उलाहना है। 'उपालम्भ' के ५ दोहों में प्रेम भरा तथा रससिक्त उपालम्भ गुंजायमान है। 'प्रतीक्षा' के १४ दोहों में व्यक्तिपरक तथा प्रेम की रचनाएँ हैं। अन्तिम रचना 'कितै तिहारो देश' के १० दोहों में दार्शनिकता व प्रार्थना को स्वर मिला है।

इन दोहों का माध्यम ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली, दोनों है। दोहा-छन्द के अतिरिक्त, चौपाई और कुण्डलियों को भी स्थान मिला है। इन दोहों का हिन्दी के दोहा-साहित्य में विशिष्ट महत्व है।

'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा'—'नवीन' जी के तृतीय अप्रकाशित काव्य-संग्रह का शीर्षक 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा' है। द्वितीय शीर्षक कवि को पसन्द था। 'यौवन-मदिरा'[1] शीर्षक कविता इस संग्रह में अपना स्थान रखती है। इस लम्बी कविता में बारह छन्द हैं और 'कुंकुम' में पहले ही संगृहीत हो चुकी है। रचना में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का संघर्ष निरूपित है।[2]

प्रस्तुत संग्रह में १११ कविताएँ हैं। इनमें से २५ रचनाएँ पूर्व संग्रहीत हैं तथा २९ रचनाएँ लेखन तथा स्थान-विहीन हैं। 'परीक्षा के प्रश्नपत्र', 'सूखे आँसू', 'स्वगत', 'तुम्हारा पनघट', 'जाह्नवी के प्रति', 'दीपमाला', 'यौवन-मदिरा', 'जाने पर' और 'पान' शीर्षक कविताएँ 'कुंकुम' में सम्मिलित हैं। 'कह लेने दो', 'वह सुप्त अश्रुत राग', 'वसंत बहार', 'मिल गये जीवन डगर में', 'तब मृदु मुसकान प्राण' 'साकी' और 'कुहू की बात' शीर्षक रचनाएँ 'रश्मिरेखा' में संग्रहीत हैं। 'श्रान्त', 'भिखारी' व 'आज हुलसे प्राण' रचनाएं 'अपलक' में संकलित हैं। 'फागुन', 'ओ प्रवासी' 'मान कैसा', 'कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे', 'सजन मेरे सो रहे हैं, और 'लिख विरह के गान' शीर्षक रचनाएँ 'क्वासि' में सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत संग्रह का रचना-काल १९३०-३६ ई० है। इसमें सन् १९३१ तथा गाजीपुर कारागृह की कविताओं ने अपना बहुमत स्थापित किया है। कवि की प्रसिद्ध कविता 'बिन्दिया'[3] को इसी संग्रह में स्थान प्राप्त हुआ है जो कि शृंगारिक रचना है।

प्रस्तुत अप्रकाशित कृति में लघु प्रेम कविताओं को संकलित किया गया है। प्रेम में, संयोग तथा वियोग, दोनों के चित्र प्राप्त होते हैं; परन्तु प्रधानता विप्रलम्भ-शृंगार की है। प्रिय की स्मृतिजन्य वेदना ने मार्मिक सृष्टियाँ की हैं। प्रिय का रूप, अंग प्रत्यंग, साज-सज्जा आदि के साथ उलाहने, प्रतीक्षा तथा पीड़ा को भी स्वर प्रदान किया गया है।

---

१. २६ वीं कविता।

२. 'कुंकुम', १२ वाँ छन्द, पृष्ठ १०२।

३. १०१ वीं कविता।

प्रलयंकर—'नवीन' जी के चतुर्थ अप्रकाशित कविता संकलन का नाम 'प्रलयंकर' है जो अपना रूप तथा सामग्री स्वयं ही स्पष्ट करता है। संग्रह की कविता 'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर' के आधार पर इस पुस्तक का नामकरण 'प्रलयंकर' किया गया। पाँच छन्दों की इस ओजस्वी रचना में, विद्रोही अथवा क्रान्तिकारी की वन्दना करते हुए, शूल को फूल समझने का आह्वान दिया गया है।

'प्रलयंकर' में ६० कविताएं संग्रहीत हैं जिनमें से दस पूर्व संकलित, चार तिथि विहीन एवं तीन स्थान-विहीन हैं। 'पराजयगीत',[1] शिखर पर',[2] व 'विप्लव गायन'[3] रचनाएँ 'कुंकुम' में संकलित हैं। 'अक्षर'[4] शीर्षक कविता' 'मर-मर हम फिर उठ आए' शीर्षक से प्रथम अप्रकाशित काव्य-संग्रह में संकलित है। 'सतत प्रवासी' द्वितीय अप्रकाशित काव्य-संग्रह में आ चुकी है।[5] 'धरती के पूत' भी प्रथम अप्रकाशित संकलन में ली जा चुकी है।[6] 'वसन्त'[7] तथा 'अरी धधक उठ'[8] भी तृतीय अप्रकाशित संग्रह में स्थान बना चुकी हैं। 'कमला नेहरू की स्मृति में' कविता 'क्वासि' में संकलित है।[9] इस संग्रह में 'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर' तथा 'अनल गायन' शीर्षक दो कविताएँ संग्रहीत हैं जो कि वास्तव में एक ही हैं।[10] 'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर' कविता साप्ताहिक' 'सैनिक' के 'जवाहर विशेषांक' में 'अनल गायन' नाम से प्रकाशित हुई थी।[11] 'तू प्रलयंकर विद्रोह रूप' स्थान तिथि विहीन कविता है परन्तु उसकी तिथि तथा लेखन स्थल की सूचना' अनल गान' में प्राप्त हो जाती है। 'अनल गान' 'प्रताप' में भी प्रकाशित हुआ था।[12]

'प्रलयंकर' का लेखनकाल सन् १६३०-५५ ई० है। कवि की हस्तलिपि में ये कविताएँ

---

१. १० वीं कविता, कुंकुम, पृष्ठ ६३-६७।

२. १२ वीं कविता, वही, पृष्ठ ८०-८१।

३. १५ वीं कविता, वही, पृष्ठ ६-१४।

४. ६ वीं कविता, 'सिर जन की ललकारें या 'नूपुर के स्वन', ३१ वीं कविता।

५. २३ वीं कविता, 'नवीन दोहावली', तृतीय रचना।

६. २० वीं कविता, 'रिजन की ललकारें' या 'नुपुर के स्वन,' ३६ वीं कविता।

७. १६ वीं कविता, 'यौवन-मदिरा, या 'पावस पीड़ा,' ६१ वीं कविता।

८. ५८ वीं कविता, 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा,' २७ वीं कविता।

९. ३६ वीं कविता, 'क्वासि' पृ० ६८-६६।

१०. पाँचवीं कविता, २७ वीं कविता।

११. "अभी-अभी आगरा के राष्ट्रीय और तेजस्वी साप्ताहिक 'सैनिक' का 'जवाहर विशेषांक' आया है, उसमें हिन्दी के गरबोले प्रलय-गीत गायक श्री बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन' की ये पंक्तियां 'अनल गान' शीर्षक से छपी हैं। कहना नहीं होगा कि पं० जवाहरलाल जी पर चढ़ाई हुई यह पुष्पांजलि 'सैनिक' का गौरव और प्यारी वस्तु है।"—सम्पादक, कर्मवीर, पाण्डुलिपि में रखी मुद्रित-प्रकाशित कविता के पृष्ठ पर लिखित टिप्पणी।

१२. दैनिक 'प्रताप' 'अनल गान', अप्रैल, १६३६।

उपलब्ध होती हैं—'अदृष्टचरण वन्दना',[१] 'जीवन पुस्तक',[२] 'भरत खण्ड के तुम, हे जनगण'[३] व 'पराजयगीत'।[४] अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, कवि ने कतिपय कविताओं के अन्त में विशिष्ट परिस्थितियों तथा अवसरों का भी उल्लेख किया है यथा 'गान्धी आत्मयज्ञ काल'[५] 'श्री गान्धी महाव्रत सप्ताह[६] और ४८ घण्टे का उपवास काल'[७] बरेली कारागृह एवं सन् १९४३ की रचनाओं का आधिक्य है।

'प्रलयंकर' में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं की धरोहर है। कवि का प्रेम-काव्य तो पूर्व संकल्पों में बहुत आ चुका है; परन्तु, 'नवीन' जी की ख्याति का मूलाधार, राष्ट्रीय रूप, संग्रहों में अपेक्षाकृत कम ही आया है। इस संकलन के द्वारा उस अभाव की सुन्दर पूर्ति होती है।

इस संग्रह की काव्य-रचनाओं में, पराधीन तथा स्वाधीन भारत की, कवि की राष्ट्रीयता के दर्शन किये जा सकते हैं। महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व, मार्गदर्शन तथा महान् व्रत पर भी 'नवीन' जी ने अनेक कविताएँ लिखी हैं जो यहाँ संग्रहीत हैं। गान्धीवादी विचारधारा का प्रभाव भी कई कविताओं में देखा जा सकता है।

इस संग्रह की कविताओं में आक्रोश, हुंकार, ओज तथा विप्लव को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिक्रिया तथा कवि के तज्जन्य विचारों को भी आँका जा सकता है। क्रान्ति तथा विद्रोह की धारा ने भी अपना पृथक् कूल तैयार किया है। राष्ट्र-बन्दियों, बलिदेवी के उपासकों तथा काँटों पर चलने वाले देशभक्तों का कवि ने अभिनन्दन किया है और उनके पथ का अनुसरण किया है। राष्ट्र की युगीन चेतना को सर्वाधिक प्रखर वाणी इसी संग्रह की रचनाओं द्वारा प्राप्त हुई है। कवि का राजनैतिक जीवन भी इन कविताओं में मुखर हो पड़ा है।

कवि के राष्ट्रीय-काव्य तथा सम-सामयिक राष्ट्र चेतना से पूर्णरूपेण अवगत होने के लिए, इस अप्रकाशित संकलन का अप्रतिम महत्व है।

स्मरण-दीप—'नवीन' जी के अप्रकाशित पंचम काव्य-संकलन 'स्मरण-दीप'[८] का कवि के प्रेम-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। संग्रह की द्वितीय कविता 'मेरे स्मरण दीप की बाती' के आधार पर, इस संकलन का शीर्षक रखा गया है। सन् १९४६ में लिखित, छः

---

१. प्रथम कविता।

२. द्वितीय कविता।

३. तृतीय कविता।

४. १० वीं कविता।

५. २५ वीं कविता 'ओ सदियों में आने वाले', लेखन तिथि, २ मार्च १९४३ ई०।

६. २६ वीं कविता, 'हे क्षुरस्य धारा पथगामी', लेखन तिथि, २४ सितम्बर, १९३२ ई०।

७. ५१ वीं कविता, 'ऐसा क्या हमें अधिकार', रचना तिथि, १८ जून, १९४३ ई०।

८. साप्ताहिक 'प्रताप', मेरे स्मरण दीप की बाती, २४ सितम्बर, १९४६, मुखपृष्ठ।

छन्दों की इस रचना में प्रेम का मूल स्वर है और प्रियतम के वियोग में वेदना की लहरें उठती हैं ।[१]

'स्मरण-दीप' में ४५ कविताएँ संग्रहीत हैं जिनमें से ७ पूर्व संकलित तथा दो कविताएँ लेखन-तिथि एवं स्थान-विहीन हैं । इस संग्रह की 'ओ मेरे मधुराधर'[२] 'विहंस उठो प्रियतम तुम',[३] तथा 'प्रिय लो डूब चुका है सूरज'[४] 'कौन सा यह राग जागा ?'[५] और 'घनगर्जन क्षण'[६] 'अपलक' में संग्रहीत है । 'मेरे स्मरण-दीप की बाती'[७] और 'प्रिय मैं आज भरी भारी सी'[८] 'क्वासि' में संकलित हैं ।

प्रस्तुत संकलन का रचना-काल सन् १६३८-५४ ई० हैं । इस संग्रह में भी सन् १६४३ तथा बरेली कारागृह में लिखित कविताओं का आधिक्य है । संकलन की प्रथम कविता 'आओ अमराई में आज' कवि की हस्तलिपि में प्राप्य है । यह रचना सन् १६५४ में नई दिल्ली में लिखी गई । संग्रह की पाण्डुलिपि में एक दृष्टकूट भी प्राप्त होता है जिसका शीर्षक है 'कवि जी' । इस रचना पर कवि की यह टिप्पणी है कि ''जो महानुभाव बिना शब्द-कोश देखे इस कविता का अर्थ कर देंगे, उन्हें एक पैसा उपहार-रूप भेंट किया जावेगा'' सन् १६४४ में बरेली कारावास में लिखित इस रचना में पाँच छन्द हैं और कठिन एवं अव्यवहृत शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

'स्मरण दीप' के नाम से ही स्पष्ट है कि इस संकलन में वियोगावस्था से उद्भूत अनुभूतियों की प्रधानता है । संकलन में प्रेम कविताओं को स्थान दिया गया है । यह पक्ष कवि का प्रिय तथा परिपुष्ट है । कारागृह की बन्द कोठरी में, कवि ने अपने विगत जीवन का स्मरण किया है और अपने प्रिय की याद में, उसके विविध पक्षों को, काव्य की वाणी प्रदान की है । विप्रलम्भ शृंगार के सर्वतोमुखी चित्र उतारे गये हैं । कल्पना-तत्व की प्रधानता है । प्रकृति का उद्दीपक रूप प्रस्तुत किया गया है । मनुहार तथा प्रतीक्षा के तत्व सर्वत्र विद्यमान हैं ।

प्रस्तुत संकलन ने कवि के प्रेम-काव्य की श्रीवृद्धि की है । कारावास की एकान्त तथा नीरव घड़ियों में, कवि के कोमल तथा स्नेहिल-हृदय ने अश्रुओं से अपनी गाथा को सँजोया है ।

'मृत्युधाम' या 'सृजन भाँभ'—'नवीन' जी के छठवें तथा अन्तिम अप्रकाशित काव्य-संकलन 'मृत्यु धाम' या 'सृजन भाँभ' ने न केवल 'नवीन' वाङ्मय को, प्रत्युत हिन्दी काव्य-साहित्य को नूतन सामग्री एवं भूमि प्रदान की है । कवि का यह पक्ष अभी तक पूर्णतः अज्ञात

---

१. द्वितीय कविता छंद; चौथा ।
२. आठवीं कविता, 'रश्मिरेखा', पृष्ठ, १२-१३ ।
३. चौथी कविता, 'रश्मिरेखा', पृष्ठ १२०-१२२ ।
४. छठवीं कविता, 'रश्मिरेखा, पृष्ठ ५५-५६ ।
५. ६ वीं कविता, 'अपलक', पृष्ठ ५० ।
६. तृतीय कविता, वही, पृष्ठ १०५-१०६ ।
७. द्वितीय कविता, 'क्वासि', पृष्ठ ३६-४० ।
८. ७ वीं कविता, 'क्वासि, पृष्ठ २६-२८ ।

तथा उपेक्षित रहा है। प्रस्तुत संग्रह की पुस्तक का 'कैसा है मृत्युधाम' और 'सृजन झाँझ' शीर्षक कविताओं के आधार पर ही, नामकरण किया गया है। 'कैसा है मृत्यु धाम' शीर्षक गीत पाँच छन्दों में है और सन् १९४१ में लिखा गया।[1] चार छन्दों वाली रचना 'सृजन झाँझ' का लेखन भी सन् १९४१ में हुआ। इसमें नश्वरता, आत्मावलोकन तथा स्व-दर्शन को प्रमुखता प्राप्त हुई है।[2]

प्रस्तुत संग्रह में १९ रचनाएँ संकलित हैं जिनमें से एक पूर्व संग्रहीत तथा चार लेखन तिथि एवं स्थानविहीन हैं। इस संग्रह की 'पहेली' कविता, तृतीय अप्रकाशित काव्य-संग्रह में संकलित की जा चुकी है।[3] कविताओं का रचना-काल सन् १९४१-४२ ई० है। प्रमुखतम ये रचनाएँ नैनी-कारागृह में ही लिखी गयीं।

संकलन में सन् १९४१ तथा नैनी-कारावास में लिखित रचनाओं का प्राधान्य है। इस संग्रह की तिथि तथा स्थानविहीन रचनाओं के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि ये अनुमानतः तिथि सम्बन्धी बहुमत वाली श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

'मृत्यु धाम' या सृजन झाँझ' में 'मरण गीतों' को संकलित किया गया है। वास्तव में यह संकलन, कवि के 'प्राणार्पण' शीर्षक खण्डकाव्य की 'पंचम आहुति' के समग्र गीतों से सम्बन्ध रखता है, जिसे यहाँ पृथक् रूप में संग्रहाकार प्रकाशित किया जा रहा है। ये रहस्य-परक दार्शनिक गीत हैं जिनमें मृत्यु को काव्य विषय बनाया गया है। ये गीत अभी तक प्रकाश में नहीं आये। इन गीतों में जीवन की निस्सारता, लक्ष्य, आत्मचिन्तन तथा आध्यात्मिक मूल्यों को प्रश्रय दिया गया है। गीति-शिल्प की दृष्टि से भी, इनका अतीव महत्व है। कवि का अध्ययन एवं चिन्तन इन गीतों में अपनी पूर्ण निष्ठा के साथ प्रस्फुटित हो पड़ा है।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि के प्रकाशित होने पर, हिन्दी-संसार पर इसका गहन तथा व्यापक प्रभाव पड़ेगा और 'नवीन' के कवि-व्यक्तित्व का एकदम नूतन पक्ष उद्‌घाटित होकर, सबके समक्ष आवेगा। कवि की यह अनूठी धरोहर है जिसकी समकक्षता दुर्लभ प्रतीत होती है।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित काव्य—'नवीन' जी की कई रचनाएँ बिल्कुल प्रकाश में नहीं आई और अधिकांश रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र छपती रही। अनेक पत्रिकाओं की पुरानी संचिकाओं में उनकी बहुत-सी कविताएँ दबी पड़ी हैं। उन्होंने स्वयं न तो इनका कोई अभिलेखन सुरक्षित रखा और न सम्बन्धित अंक की प्रतियाँ। परिणामतः उनकी ओर अभी किसी का ध्यान नहीं गया है।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं में से अधिकांश को उपर्युक्त कृतियों में संगृहीत कर लिया गया है; परन्तु फिर भी, अभी ऐसी कविताएँ हैं जिन्हें प्रकाशित अथवा अप्रकाशित काव्य-संग्रहों में स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। ये रचनाएँ अभी भी अछूती पड़ी हुई हैं और कम से कम एक छोटा-मोटा संग्रह और भी तैयार किया जा सकता है। यद्यपि 'कुंकुम' में कवि की प्रारम्भिक रचनाओं को संकलित किया गया है; परन्तु फिर भी, उसे इस दिशा का, पूर्ण

---

१. प्रथम कविता, पाचवाँ छन्द।
२. १८ वीं कविता, चौथा छन्द।
३. १६ वीं कविता, 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', ६० वीं कविता।

संग्रह नहीं कहा जा सकता। उनके प्रारम्भिक कवि-जीवन की कई कविताएँ अभी असंग्रहीत पड़ी हैं जिनका उनकी काव्य-शैली तथा विचार-धारा के ऐतिहासिक विकास के मूल्यांकन में, महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर सन् १६१८, १६१६ तथा १६२० की कई रचनाएँ संग्रहबद्ध नहीं हो पाई हैं।[1] इसी प्रकार और भी कतिपय कविताएँ निकल सकती हैं जिनके संकलन की आवश्यकता है; जिससे कवि का समग्र व्यक्तित्व तथा कृतित्व हिन्दी-संसार के समक्ष आ सके। यह आश्चर्य की बात है कि कवि के प्रकाशित-अप्रकाशित द्वादश काव्य-संग्रहों में, उनकी प्रथम अन्तिम कविता को अभी तक स्थान प्राप्त नहीं हुआ है।[2]

फिर भी, यह प्रसन्नता तथा गरिमा की बात है कि कवि के छः काव्य-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होकर आ रहे हैं। 'हम अनिकेतन' तथा 'हम अलख निरंजन के वंशज' के गायक 'नवीन' जी की कविताओं को संकलित कर, पुस्तकाकार रूप देना, स्तुत्य एवं ऐतिहासिक प्रयत्न है। अब यह कहा जा सकता है कि उनके कृतित्व का सम्पूर्ण नहीं तो लगभग सम्पूर्ण रूप हमारे समक्ष है।

'नवीन' जी का काव्य तथा गद्य-साहित्य 'प्रताप' में बिखरा पड़ा है। 'प्रताप' कवि के कण-कण में परिव्याप्त था। इस नाते, उनकी सर्वाधिक रचनाएँ 'प्रताप' में ही प्रकाशित हुई। 'प्रताप' के तदनन्तर, उनकी कविताएँ 'प्रभा', 'वीणा', 'विक्रम', 'प्रतिभा', 'अगामी कल' और 'आजकल' पत्रिकाओं में प्रमुखतया छपी। यूँ तो प्रत्येक पत्र-पत्रिका तथा साहित्यिक-असाहित्यिक व्यक्ति के लिए उनका मानस तथा गृह-द्वार सदा-सर्वदा उन्मुक्त रहता था, फिर भी उनके जीवन के साथ सम्बन्ध रखने वाले स्थानों यथा मध्यभारत, कानपुर, दिल्ली आदि की भावनाओं तथा व्यक्तियों से विशेष अनुराग था; इसीलिए, उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं का सम्बन्ध, इन्हीं क्षेत्रों के साथ होने के कारण, उनमें रचनाएँ अधिक छपी।

उपरिलिखित पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त, कवि की रचनाएँ 'सरस्वती', 'श्री शारदा', 'त्यागभूमि', 'मतवाला', 'विश्वमित्र', वर्त्तमान 'रामराज्य', 'विशाल भारत', 'सैनिक', 'कर्मवीर', 'विश्वबन्धु', 'फक्कड़', 'युगचेतना', 'अभ्युदय', 'सुधा', 'युगान्तर', 'कौमुदी', 'अजन्ता', साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' आदि अनेक पत्रों में प्रकाशित हुईं।

निष्कर्ष—'नवीन' जी के अप्रकाशित काव्य साहित्य की विपुल मात्रा ने उनके कवि-व्यक्तित्व के सांगोपांग रूप को हिन्दी-संसार के समक्ष नहीं आने दिया। अप्रकाशित काव्य-कृतियों के प्रस्तावित प्रकाशन से हिन्दी वाङ्मय की श्रीवृद्धि हो रही है।

'नवीन' जी ने अपनी अधिकांश रचनाओं को तिथि तथा स्थान-बद्ध करके, महान् कार्य सम्पन्न किया है। साथ ही, विशिष्ट परिस्थितिओं तथा अवसरों के उल्लेख के कारण भी, उनके निर्माण तथा अनुभूतियों को समझने की सामग्री भी प्राप्त हो जाती है। इन दृष्टिकोणों से उनके साहित्य के लेखन आदि के विषय में कतिपय महत्वपूर्ण पक्ष तथा तथ्य भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

प्रकाशित काव्य-कृतियों के समान, उनकी अप्रकाशित कृतियों में मूलतः राष्ट्रीयता, प्रेम, मस्ती तथा दार्शनिकता की प्रवृत्तियाँ ही प्राप्त होती हैं। उनके अप्रकाशित संकलन इन्हीं

---

१. देखिये, परिशिष्ट।

२. वही।

स्तम्भों पर आधारित हैं। उनका 'प्राणार्पण' काव्य, कवि की प्रबन्ध-क्षमता तथा भाषाधिकार को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। युग तथा कला, दोनों ही दृष्टिकोणों से इस कृति की अपनी आभा है।

'नवीन' का अप्रकाशित साहित्य, उनकी महिमा तथा मूल्य को द्विगुणित करने में पूर्ण समर्थ तथा सक्षम है। नूतन उपलब्धियों को समाविष्ट करके, अब 'नवीन' जी के काव्य का लेखा-जोखा और महत्वांकन, उनके व्यक्तित्व के प्रकाश में, भलीभाँति किया जा सकता है। अब उनका काव्य-सौरभ उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। खलील जिब्रान का यह कथन कवि 'नवीन' पर शब्दशः चरितार्थ होता है—

"Once I said to a poet, 'We shall not know you worth until you die.'

And he answered, saying, 'yes, death is always a sevealor. And if indeed you would know any worth, it is that I have more in my heart than in my hand.

अर्थात्, 'एक बार मैंने एक कवि से कहा, 'जब तक तुम दिवंगत नहीं होते हम तुम्हारा मूल्य नहीं आँक सकेंगे'।

और उसने उत्तर दिया—'हाँ, मृत्यु सबसे बड़ी रहस्योद्घाटक है और सचमुच यदि तुम मेरी उपलब्धि की अपेक्षा मेरे अन्तःकरण में बहुत अधिक सार तत्व निहित है।'[1]

काव्य-वर्गीकरण—विपुल काव्य-स्रष्टा श्री 'नवीन' ने विविध विषयक रचनाओं का निर्माण किया है। उनकी प्रथम कविता[2] सन् १९१८ में छपी और अन्तिम कविता की रचना-तिथि सन् १९५६ है जो कि उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुई।[3] इस कालावधि में, वे अपने राष्ट्रीय तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ता के दायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते हुए, साहित्य-सृजन में भी संलग्न रहे।

डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि 'नवीन' जी को हम साहित्य-प्रेमी उनके उत्तम काव्य के लिए स्मरण करते हैं। महाकवि दांते ने लिखा है कि कविता के केवल तीन विषय हो सकते हैं—युद्ध, प्रेम और अध्यात्म। नवीन जी ने इन तीनों विषयों पर प्रचुर काव्य-रचना की जो अपनी शक्ति और सहज आकर्षण के लिए अद्वितीय है।[4]

स्पष्ट है कि 'नवीन' काव्य की त्रिपुरी राष्ट्रीयता, प्रेम तथा अध्यात्म पर उभय स्थित है। काव्य विषय से परिचित हो लेने के उपरान्त, उनके काव्य का विभिन्न दृष्टिकोणों से विभाजन किया जा सकता है। हमारे काव्य-वर्गीकरण के ये आधार हो सकते हैं—(१) काव्य रूप, (२) काव्य शैली, (३) काव्य-प्रवृति, और (४) समय-सापेक्ष्य काव्य-विभाजन। वर्गीकरण के प्रत्येक आधार का संक्षिप्त विश्लेषण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है।

---

१. श्री प्रभागचन्द्र शर्मा की इन्दौर आकाशवाणी वार्ता से उद्धृत, (दिनांक ५-१२-१९६०)।

२. 'प्रतिभा' आवाहन, अप्रैल १९१८।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', जीवन वृत्ति। १४ अगस्त १९६०, पृष्ठ २१ अ।

४. साप्ताहिक 'आज' पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २९ मई १९६०, पृष्ठ ६।

काव्य-रूप—'नवीन' जी के काव्य-साहित्य में विविध रूप की वृत्तियाँ उपलब्ध हैं जो कि उनकी काव्याधिकार की परिचायिका हैं। इस दृष्टिकोण से, उनके काव्य को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) **प्रबन्ध काव्य**—(१) महाकाव्य—उर्म्मिला; (२) खण्डकाव्य—प्राणार्पण।

(ख) **स्फुट काव्य**—(१) कुंकुम, (२) रश्मिरेखा, (३) अपलक, (४) क्वासि, (५) विनोबा-स्तवन, (६) 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', (७) नवीन दोहावली, (८) 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', (९) प्रलयंकर, (१०) स्मरण दीप, और (११) 'मृत्यु धाम' या 'सृजन-झाँझ'।

काव्य-शैली—कवि ने अपने काव्य-साहित्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है जिससे उसकी कला-कुशलता का परिचय प्राप्त होता है। प्रमुखतया, अधोलिखित शैलियों का व्यवहार दिखाई देता है—

(क) **प्रबन्धात्मक शैली**—इस शैली का प्रयोग 'उर्म्मिला' तथा 'प्राणार्पण' में किया गया है। इन दोनों कृतियों में, निश्चित कथा का आधार लेकर, विभिन्न छन्दों में काव्य की सृष्टि की गई है। 'नवीन'-काव्य में प्रबन्ध-शैली की अपेक्षा, गीति-शैली का व्यवहार, अधिक दृष्टिगोचर होता है।

(ख) **गीति-शैली**—इस शैली का प्रारूप, कवि के प्रायः समग्र स्फुट-काव्य में प्राप्त होता है। यह कवि की प्रधान शैली है। 'रश्मिरेखा', 'अपलक' 'क्वासि', 'स्मरणदीप' तथा 'मृत्यु धाम' या 'सृजन झाँझ', संकलन हैं। इस शैली के प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

(ग) **मुक्तक-शैली**—इस शैली के अन्तर्गत कवि की स्फुट रचनाएँ प्राप्त होती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं में भी इसी शैली के दर्शन होते हैं। इस शैली के अन्तर्गत कवि ने विविधमुक्तकों की सृष्टि की है यथा—राष्ट्रीय मुक्तक, दार्शनिक मुक्तक, शृंगारिक मुक्तक आदि। 'कुंकुम' इसका प्रतिनिधि संकलन है और इसके अतिरिक्त प्रायः समग्र संकलनों में इसकी इस शैलीवाहिका कविताएँ प्राप्य हैं। इस शैली की गणना भी कवि की प्रधान शैली में की जा सकती है।

(घ) **दोहा-शैली**—यह भी 'मुक्तक-शैली' का एक अंग है। हमारे पुरातन कवियों के समान, 'नवीन' जी ने पुरानी पद्धति को अपनाते हुए, दोहे, चौपाई तथा कुण्डलियाँ भी लिखी हैं। इस शैली में कवि के वैष्णव संस्कारों की पुष्टि हुई है जिसके कारण खड़ीबोली के साथ ही साथ, ब्रजभाषा का भी विपुल प्रयोग प्राप्त होता है। दोहों में कवि ने प्रणय-भावना तथा आत्मचिन्तन को स्वर प्रदान किया है। दोहों पर रीतिकालीन प्रवृतियों की भी छाप दिखाई देती है।

इस शैली का परिचायक श्रेष्ठ ग्रन्थ 'नवीन दोहावली' है जिसमें कवि की आत्माभिव्यक्ति अपनी पूर्ण ईमानदारी के साथ हुई है। साथ ही, हिन्दी की सतसई परम्परा के अन्तर्गत, 'उर्म्मिला सतसई' का भी अपना पृथक् स्थान है। 'उर्म्मिला' के ७०४ दोहे-सोरठे, में पंचम-सर्ग के अन्तर्गत उर्म्मिला का विरह-वर्णन किया गया है।

काव्य-प्रवृति 'नवीन' जी के प्रकाशित एवं अप्रकाशित काव्य-कृतियों में, काव्य विषय के अनुरूप प्रवृतियाँ प्राप्त होती हैं। ये विशेषताएँ प्रमुखतया उनके स्फुट काव्यसंग्रह की

रचनाओं में सहज द्रष्टव्य हैं। इनमें प्रधानतया चार प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं—(क) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा, (ख) प्रेममूलक काव्यधारा, (ग) दार्शनिक काव्य-धारा, और (घ) आत्मपरक काव्य-धारा।

कवि के एकादश काव्य-संकलन इन्हीं प्रवृत्तियों के अन्तर्गत परिगणित किये जा सकते हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति या काव्यधारा का संक्षिप्त विवेचन अधोलिखित रूप में है—

(क) राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा—यह कवि-व्यक्तित्व तथा कृतित्व की प्रख्यात प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के दर्शन प्रायः सभी ग्रन्थों में होते हैं परन्तु 'कुंकुम', 'प्रलयंकर', तथा 'विनोबा-स्तवन' इसके प्रमुख दिग्दर्शक हैं। 'प्राणार्पण' के मूलाधार का सिंचन भी यही प्रवृत्ति करती है। 'उर्म्मिला' पर भी सम-सामयिक राष्ट्रीयता तथा आन्दोलन का प्रभाव देखा व आंका जा सकता है।

इस प्रवृत्ति को भारतीय संस्कृति, भारतीय आदर्श, गीता, राष्ट्रीय सत्याग्रह संग्राम तथा बलिवृत्तियों ने विशेषरूपेण प्रभावित किया है। लोकमान्यतिलक, गणेशशंकर विद्यार्थी, महात्मा गान्धी, जवाहरलाल नेहरू, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, विनोबा भावे आदि भारत के कर्णधारों तथा महापुरुषों ने इस प्रवृत्ति के निर्माण, पोषण तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह किया है। पराधीन भारत की स्वाधीनता तथा अन्याय का प्रतिकार ही इस धारा का मूलोद्देश्य रहा है। इस प्रवृत्ति के क्षेत्र में, कवि की स्वातन्त्र्यपूर्व तथा स्वातन्त्र्योतर राष्ट्रीयता के विभिन्न आयाम देखे जा सकते हैं। क्रान्ति तथा विप्लव की लहरों ने भी इस प्रवृत्ति के आकार को उज्ज्वल बनाने में योगदान दिया है उत्साह की धुरी पर आधृत, शतशः देश-भक्ति के गीतों ने हिन्दी काव्य के कोष को परिपूरित किया है।

गान्धी तथा विनोबा, विप्लव तथा अनल के गीतों ने इस धारा को नूतन परिधान प्रदान किये हैं।

(ख) प्रेममूलक काव्य-धारा प्रेम से जीवन-जगत् सभी प्रेरित एवं प्रभावित होते हैं। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत कवि ने प्रेम के प्रणय रूप को ही प्रमुखता प्रदान की है। यह प्रवृत्ति कवि में आद्यन्त बनी रही।

प्रकाशित काव्य-संग्रहों की प्रायः सभी कृतियों में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। अप्रकाशित में 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा' तथा 'स्मरण-दीप', इसी प्रवृति के ही वाहक-ग्रन्थ हैं।

संयोग, वियोग, प्यार-दुलार, अनुराग, स्मृति, प्रतीक्षा आदि के बीसियों चारु चित्र, सम्बन्धित रचनाओं में, अपना अवगुण्ठन खोल रहे हैं।

कवि के काव्य-पुरुष का जहाँ एक पग राष्ट्रोपासना है वहाँ दूसरा पग है प्रणय। उसके काव्य में प्रलयंकर के ताण्डन-नृत्य के साथ ही साथ नुपूर के स्वन युक्त उमा का लास्यनृत्य भी प्राप्त होता है।

(ग) दार्शनिक काव्य-धारा—वल्लभ सम्प्रदायानुयायी होने तथा भक्ति व अध्यात्म के संस्कार प्रारम्भ से ही अपनी जनक-जननी से प्राप्त करने के कारण, यह प्रवृत्ति अन्तःसलिला के समान विद्यमान रही और संस्कृतिआस्था, अध्ययन व अनुशीलन के कारण, समय पाकर पुष्पित-पल्लवित हो गई।

इस काव्यधारा को कवि के कृतित्व रूपी सागर में, 'क्वासि', 'सिरजन की ललकारों' या 'नुपूर के स्वन' और 'मृत्युधाम' या 'सृजन भाँझ' कृति रूपी तीन देदीप्यमान् द्वीप प्राप्त हुए। इन संकलनों के अतिरिक्त, इस प्रवृत्ति की निर्देशक रचनाएँ प्रायः समग्र संग्रहों में हैं।

कवि का रहस्यवाद गूढ़ न होकर सरल तथा आस्थामय है। उसमें बुद्धि की अपेक्षा भावना को अधिक पुष्टि प्राप्त हुई है। कवि पूर्ण आस्तिक है। जीवन-जगत् के चिरन्तन प्रश्नों की जिज्ञासा तथा निदान ने ही रहस्यपरक रचनाओं की गम्भीर अभिव्यक्ति की है।

(घ) आत्मपरक काव्य-धारा—इस प्रवृत्ति के परिचायक दृष्टान्त सभी स्फुट संग्रहों में मिल जाते हैं। ये व्यक्तिपरक आत्माभिव्यंजक रचनाएँ हैं। इनमें कवि का सहज, अल्हड़ तथा फक्कड़ व्यक्तित्व निखर कर आया है। 'नवीन' के कवि ने इन कविताओं की सहजानुभूति तथा मार्मिकता को सुन्दर ढंग से निबाहा है। इन रचनाओं को, अपनी प्रकृत तथा सरस शैली और मनोहारिता के कारण, विपुल प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

आत्मपरक रचनाओं में कवि के सुख-दुख, आशा-निराशा और राग-विराग को वाणी मिली है। जीवन की नानाविध परिस्थितियों, आरोहावरोह, संघर्ष, दयनीय स्थिति, सांसारिकता, अवसर आदि की प्रतिक्रियाएँ तथा भावमय प्रभावोत्पादन को इनमें देखा जा सकता है।

(ङ) अन्य गौण प्रवृत्तियाँ—इस प्रकार हम देखते हैं कि इन चार प्रवृत्तियों ने काव्य के मूल सूत्रों को अभिव्यक्त करने में, प्रधान कृत्य सम्पन्न किया है। इन प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कतिपय अन्य गौण प्रवृत्तियों के भी दर्शन किये जा सकते हैं; यथा (क) मानवतावादी, (ख) सौन्दर्यपरक, (ग) प्रकृतिपरक, आदि। परन्तु, इनका विशिष्ट महत्व नहीं है। इनके भी दृष्टान्त यत्र-तत्र प्राप्य हैं। गौण प्रवृतियों से कवि का आनुषंगिक रूप समक्ष आता है।

काव्य-युग—अपनी ६३ वर्ष की वयः प्राप्ति तथा ४५ वर्ष के कवि-जीवन (सन् १९१५-६० ई०) में 'नवीन' जी ने कई उतार-चढ़ाव देखे, संघर्ष किये और भारत माता तथा सरस्वती की प्राणपण से उपासना तथा विह्वल वन्दना की। इन सब तत्वों का उनके कृतित्व के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

'नवीन' जी की काव्य-साधना को, विभाजन रूपी वामन द्वारा, तीन युगों के पगों के माध्यम से नापा जा सकता है। ये युग कालावधि में, पन्द्रह-पन्द्रह वर्षों के निर्धारित किये जा सकते हैं। इनकी स्थूल रूपरेखा निम्नलिखित ढंग से बनाई जा सकती है—

(क) निर्माण-काल (सन् १९१५-१९३१ ई०),

(ख) उत्कर्ष-काल (सन् १९३१-१९४६ ई०),

(ग) प्रौढ़-काल (सन् १९४६-१९६० ई०)।

प्रत्येक युग की सामान्य विवेचना नीचे प्रस्तुत की जाती है—

(क) निर्माण-काल—सन् १९१५ से १९३१ ई० की कालावधि को 'निर्माण-काल' की संज्ञा से विभूषित करने के कई कारण हैं।

इस युग में कवि की काव्य-प्रवृत्तियों ने निश्चित स्वरूप ग्रहण करने की चेष्टा की और अपने मार्ग निर्धारित किये। काव्यरूपों ने अपने आकार के निर्माण में सक्रियता दिखलाई। कवि का 'प्रतिभा', 'सरस्वती' तथा 'प्रभा' में प्रकाशित प्रारम्भिक काव्य इसी युग की उषः-बेला की सूचना देता है।

उज्जैन के अपने छात्रकाल में काव्यप्रतिभा ने अपने पंख खोलने शुरू कर दिये थे। उज्जैन का यह मेधावी विद्यार्थी जब कानपुर की साहित्यिक-मण्डली में आया, तो उसके पंख फड़फड़ाने लगे। कविताओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया और अपनी स्वच्छन्द तथा राष्ट्रीय वृत्तियों को सामग्री प्राप्त होने लगी। सन १६१८ से १६२२ तक काव्य रचनाओं के अनुपात तथा गुण में विकास की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। सन् १६२२-२३ में 'नवीन' जी ने अपनी प्रबन्ध कृति 'उर्म्मिला' का प्रथम सर्ग लिखा; जिससे प्रतीत होता है कि कवि अपने निर्माण-युग की ऊँचाई की तरफ द्रुतगति से अग्रसर हो रहा है। इसी युग में कवि को तीन बार कारागृह यात्राएँ करनी पड़ी जिनमें उसने अपनी प्रबन्ध कृति के श्रीगणेश के अतिरिक्त, प्रेम तथा राष्ट्रपरक रचनाओं के सृजन में पूर्ण सक्रियता दिखलाई। कारावास में अवकाश तथा एकान्तवास के कारण, उसने विपुल काव्य का सृजन किया। इस युग के अन्त में, सन् १६३०-३१ में, इस काल की सर्वाधिक रचनाएँ लिखी गई। परिमाण के दृष्टिकोण से, इतनी रचनाएँ विगत वर्षों में नहीं लिखी गईं।

सन् १६३०-३१ में 'नवीन' जी गाजीपुर कारागृह में रहे और उनकी इस काल खण्ड तथा स्थान की रचनाएँ 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'नवीन दोहावली', 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा' में संगृहीत हैं। कतिपय कविताएँ 'प्रलयंकर' में सम्मिलित हैं। रचनाओं में शृंगार को प्राधान्य प्राप्त हुआ है।

राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रखरता तथा उन्मेष की अवस्था के कारण, प्रतिक्रिया स्वरूप लिखे गये 'विप्लव-गायन' तथा 'पराजय गीत' भी इसी युग की सृष्टियाँ हैं। इन गीतों ने जनजागृति को स्फुरित करने में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

इस युग में कवि की काव्य-शैलियाँ निखर कर आगईं और 'नवीन' जी की ख्याति कवि के रूप में सर्वत्र परिव्याप्त होगई। निर्माणकाल में उनका साहित्य यत्र-तत्र बिखरा पड़ा रहा और उसका कोई संकलन प्रकाशित नहीं हुआ। अपने प्रथम काव्य संग्रह में उन्होंने इस युग की अनेक रचनाओं को स्थान प्रदान किया।

शैली तथा काव्य के उत्तरोत्तर विकास को क्रमागत देखते हुए, हम यह पाते हैं कि कवि की प्रबन्ध-शैली तथा गीतिशैली ने अपने अंगों की पुष्टि करना प्रारम्भ कर दिया था।

(ख) उत्कर्ष-काल— सन् १६३१ से १६४६ ई० तक का काल खण्ड कवि-जीवन के इतिहास में सर्वोपरि महत्व रखता है। इस युग की आरम्भ तथा अन्त की तिथियों का भी अपना महत्व है जो कि एक नये युग के सूत्रपात की जहाँ सूचना प्रदान करती है, वहाँ उत्कर्ष-काल की समाप्ति की ओर भी संकेत करती हैं।

द्वितीय युग अथवा उत्कर्ष-काल का प्रारम्भ उस समय से मानना चाहिये जब कवि ने अपने प्रबन्धकाव्य के अधिकांश अवशिष्ट अंग की रचना प्रारम्भ कर दी और परिपक्वावस्था की ओर उन्मुख होने लगा। सन् १६३१ तथा १६३४ ई० के मध्य कवि ने अपनी महती सृष्टि की पूर्ति की। इसी प्रकार सन् १६४६ की तिथि एक युग की समाप्ति तथा नूतन युग के समारम्भ का उपक्रम उपस्थित करती है। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की इति-श्री हो रही थी। सन् १६४२ के आन्दोलन के स्थायी, लम्बी तथा प्रभावपूर्ण पूर्णाहुति दी। देश भक्तों की कारागृहों से मुक्ति हो गई थी और पराधीनता की शृंखलाएँ टूटती दिखाई देने लगी थी। सन् १६४७ में भारतीय स्वतन्त्रता के महान् तथा चिर प्रतीक्षित विहान का अरुणोदय हुआ।

कवि की राष्ट्रपरक रचनाएँ श्लथ होने लगी और काव्यधारा दूसरी दिशा में उन्मुख होने लगी। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में ही नहीं, अपितु 'नवीन' जी के कवि-जीवन के इतिहास में भी सन् १९४६-४७ की युगसन्धि का गहन तथा अमिट स्थान है। अतएव, इन्हीं आधारों पर उत्कर्ष-काल की तिथियाँ निर्धारित की गई हैं।

सभी दृष्टियों से 'उत्कर्ष-काल' में कवि ने प्रगति की। उसकी काव्य-शैलियों ने अपना प्रांजल तथा स्थायीरूप ग्रहण कर लिया। पद रूढ़ हो गये और धाराएँ निर्धारित लक्ष्य की आराधना करने लगी। काव्यरूप माँसल होकर, गदरा उठे।

इस युग में सबसे प्रभावपूर्ण तथा महत्वशील कार्य, कवि ने 'उर्म्मिला' की रचना तथा 'प्राणार्पण' के लेखन द्वारा सम्पन्न किये। इस काल में 'उर्म्मिला' का अधिकांश भाग लिखा गया, रचना को पूर्णता प्राप्त हुई। प्रबन्ध कृति के चार सर्ग इसी काल की हैं। युग का प्रारम्भ जहाँ प्रबन्ध शैली के अपनत्व से हुआ, वहाँ अन्त का मार्ग भी इसी शैली के अनुगमन से प्रशस्त हुआ। सन् १९४१ में 'प्राणार्पण' खण्ड-काव्य लिखा गया जिसने प्रबन्ध कवि के रूप को अधिक भास्वर बनाया। इसी युग में ही कवि का राष्ट्रीयचेतनासम्पन्न रूप उभर कर आया। आन्दोलन तथा क्रान्ति के दृष्टिकोण से भी, यह युग, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सर्वाधिक सक्रिय तथा गतिशील रहा। इसी के अनुरूप कवि का काव्य भी रहा।

इस युग में, कवि का अधिकांश जीवन कारागृहों में ही व्यतीत हुआ जिसके परिणामस्वरूप साहित्य-सर्जना में भी समय तथा प्रतिभा का अधिक प्रयोग हुआ। अपने समग्र कवि-काल में, 'नवीन' जी ने परिमाण तथा परिणाम के दृष्टिकोण से, सर्वाधिक रचनाएँ इसी युग में लिखीं। इस युग में ही नहीं, अपितु समग्र जीवन में कवि ने सर्वाधिक रचनाएँ सन् १९४३-५४ के वर्षों में की। इस काल-खण्ड की रचनाओं में राष्ट्रीय दर्प तथा प्रखरता भी द्रष्टव्य है।

'नवीन' जी सन् १९३०-३१ के गाज़ीपुर कारागृह-निवास के पश्चात् अपनी तपोभूमि की यात्राओं की आगामी कड़ी के रूप में, सन् १९३२-३३ में फैजाबाद कारागृह में रहे। इस अवधि में वे बरेली कारागृह में भी रहे। इस कालखण्ड तथा कारागृहों की रचनाएँ उनकी 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा में' संग्रहीत हैं। इस संग्रह के अतिरिक्त, 'प्रलयंकर,' 'रश्मिरेखा' तथा 'अपलक' में भी कतिपय रचनाएं संकलित हैं।

कवि के सन् १९३४ के कतिपय मास, अलीगढ़ कारागृह में भी व्यतीत हुए। इस स्थान पर स्फुट रचनाओं का सृजन कम हुआ और यहाँ की स्वल्प कविताएँ 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', 'प्रलयंकर,' 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन' और 'अपलक' में स्थान पा सकीं। सन् १९३५ से १९३९ ई० की रचनाएँ कारागृह के बाहर लिखी गईं और वे 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', 'प्रलयंकर', 'सिरजन की ललकारें, या 'नुपूर के स्वन', 'अपलक', 'रश्मिरेखा', क्वासि' 'नवीन दोहावली' तथा 'स्मरण दीप' में संकलित की गईं।

सन् १९३९ से ही कारागृह जीवन का पुनः उपक्रम प्रारम्भ हो जाता है जो कि यथाविधि सन् १९४५ तक चलता है। सन् १९३९ में कवि कुछ समय तक बरेली कारागृह में रहा जहाँ कि रचनाएँ 'प्रलयंकर' में सम्मिलित हैं। सन् १९४० में कवि ने अपना सामान्य नागरिक जीवन व्यतीत किया। इस वर्ष की रचनाओं ने पाँच संग्रहों यथा—'रश्मिरेखा,'

'अपलक', 'क्वासि', 'सिरजन की ललकारें या 'नुपूर के स्वन' और 'स्मरण दीप' में अपना स्थान पाया ।

सन् १९४१ से १९४५ तक 'नवीन' जी नैनी, उन्नाव तथा बरेली के कारागारों में रहे । सन् १९४१ में, नैनी कारागृह की कृतियों में मरण गीतों की प्रधानता रही । सन् १९४२ के जिला जेल, उन्नाव की रचनाओं को 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'अपलक', 'नवीन दोहावली', 'स्मरण दीप' तथा 'प्रलयंकर' में अपना प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ । सन् १९४३ की बरेली तथा उन्नाव कारागारों की रचनाओं को 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', 'नवीन दोहावली', 'प्रलयंकर' तथा 'स्मरण दीप' में संकलित किया गया । सन् १९४४ के प्रायः समूचे वर्ष कवि, बरेली के केन्द्रीय कारागार में रहा । इस कारागृह में अत्यधिक स्फुट-काव्य सृजन हुआ । इस समय तथा स्थान की रचनाओं ने 'रश्मिरेखा', 'अपलक', क्वासि', 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', 'नवीन दोहावली', 'प्रलयंकर' और 'स्मरण दीप' में अपना स्नेह उड़ेला । सन् १९४५ तथा ४६ की रचनाएँ भी उपर्युक्त संग्रहों में स्थान प्राप्त कर चुकी हैं ।

कवि की सर्वाधिक उपलब्धि तथा प्रकर्ष का युग 'उत्कर्ष काल' है । इस युग के कवि-व्यक्तित्व तथा कृतित्व ने ही, उसका राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास तथा साहित्य में अपना विशिष्ट तथा महिमामय स्थान बना दिया । गीत, मुक्तक, दोहे तथा प्रबन्ध, चारों प्रकार की शैलियों ने अपने चरमोत्कर्ष को स्पर्श कर, अपने को कृतार्थ एवं पावन कर लिया ।

(ग) **प्रौढ़-काल**—सन् १९४६ से १९६० ई० तक की कालावधि में, काव्य ने प्रौढ़ता तथा अभिव्यंजन-कौशल प्राप्त किया । कविता में तीव्रता तथा क्षिप्रता आ गई । शैली गम्भीर, संयत तथा साधु हो गई । भाषा में पूर्ण निखार आ गया । कवि ने अपने निर्माण-काल में उर्दू को प्रश्रय प्रदान किया था । यह प्रवृति धीरे-धीरे कम होने लगी । 'उत्कर्ष-काल' में इसका आंशिक प्रभाव रहा । 'प्रौढ़काल' में आकर इस वृति से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो गई । कवि के संस्कृतनिष्ठ भाषा के संस्कार, प्रौढ़ काल में आकर, शतदल की भाँति निखर तथा बिखर पड़े । इस युग में कवि उर्दू-फारसी के शब्दों के प्रयोग का कट्टर विरोधी हो गया और संस्कृतमयी भाषा का पूर्ण समर्थन तथा संवर्द्धक । इस प्रवृत्ति के विकास तथा अन्तर की कहानी को 'कुंकुम' की भूमिका का 'क्वासि' या 'उर्म्मिला' की भूमिका के पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन से देखा व परखा जा सकता है । भाषा सम्बन्धी अन्तर, प्रौढ़काल की प्रतिनिधि विशिष्टता है ।

इस युग में दार्शनिक काव्य-धारा ने अपना प्रमुख कार्य-निर्वाह किया । कवि रहस्यवादी तथा चिन्तन परक रचनाओं के लिखने में अधिक संलग्न हो गया । डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "नवीन जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में हुई है । अपने जीवन के प्रायः अन्तिम १५ वर्षों में कवि का मन पारलौकिक तत्वों की ओर उन्मुख हुआ और उसने गम्भीर आस्था तथा रहस्य-भावना से प्रेरित मधुर गान गाये ।"[१] इन अध्यात्मपरक रचनाओं में, कवि ने रहस्य के साधना पक्ष की अपेक्षा, भावना तथा जिज्ञासा पक्ष अधिक संवर्द्धन

१. साप्ताहिक 'आज' २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९ ।

किया। इस युग के काव्य में निराशा का स्वर भी बढ़ गया। इस काल के काव्य की पृष्ठभूमि में, सांसारिक अवसाद, भौतिक दुःख, मानसिक क्लेश, वयःवृद्धि, पारिवारिक सन्ताप तथा युग व समाज के प्रति निराशामूलक भाव के अवयव सहज ही परिलक्षित हो जाते हैं।

अध्यात्म के अतिरिक्त, राष्ट्रीय तथा आत्मपरक रचनाओं का भी सृजन हुआ। 'विनोबा-स्तवन' में राष्ट्रीय काव्यधारा के सांस्कृतिक पार्श्व को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। निर्माण तथा उत्कर्ष-काल की अपेक्षा, इस युग में कविताओं का सृजन कम हुआ। कवि की जराजीर्णता, भौतिक संकट एवं शारीरिक रुग्णता ने प्रमुख कारण एकत्रित किये। सन् १९५६ के पश्चात् 'नवीन' जी का काव्य-सृजन प्रायः बन्द हो गया। चार वर्षों तक पक्षाघात तथा रुग्णता के कारण, कवि की वाणी भी प्रायः विलुप्त रही। वाणी के उपासक पर इस आघात ने, अभिव्यंजना तथा लेखन के स्रोत को ही जड़मूल से विनष्ट कर दिया। सन् १९५६ में कवि-जीवन की समाप्ति के उपरान्त, सन् १९६० में उनके पार्थिव जीवन की भी इति-श्री हो गई और 'साजन तुम हो गए पराए।'

प्रौढ़काल की रचनाओं को 'अपलक', 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', 'क्वासि', 'स्मरण दीप' तथा 'प्रलयंकर' में संकलित किया गया है। इसी कालावधि में, भारत के स्वतन्त्र होने पर रचित तथा कवि की बहुचर्जित एवं प्रशंसित रचना 'यह हिन्दुस्तान हमारा है, यह भारतवर्ष हमारा है', अभी भी किसी संग्रह में संग्रहीत नहीं की गई है। कवि की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय धारा की यह प्रतिनिधि रचना है।

उपसंहार—'नवीन' जी की काव्य-भूमि को 'निर्माण-काल' ने सिंचित किया, उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाई और बीजों ने अंकुरित होकर शनैः-शनैः पौधे का रूप धारण कर लिया। 'उत्कर्ष-काल' में, समय पाकर, यही पौधा विशाल वट-वृक्ष में परिणत हो गया और 'प्रौढ़काल' में फलान्वित तथा सर्वोपयोगी होकर, इतिहास का प्रहरी बन गया।

'नवीन' जी के उपर्युक्त युगाबद्ध, काल तथा स्थान क्रमागत काव्य का मूल्यांकन करने पर, इस दिशा के ही, कतिपय निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। कवि की प्रकाशित कृतियों, विशेषतः 'रश्मिरेखा', 'अपलक' तथा 'क्वासि', —(क्योंकि इनमें तिथियाँ प्राप्त होती हैं और अधिक काव्य संकलित हुआ है) के आधार पर—तथाकथित तिथि विहीन (रचनाओं सहित) सन् १९५४ में श्री श्याम परमार ने लिखा था कि "सन् १९३० और १९४३-४४ के काल के बीच कितना ही जल शिप्रा, चम्बल, बेतवा और नर्मदा में बह गया, पर 'नवीन' की शैली में नवीनता नहीं आई।"[1]

रचना-बहुलता के दृष्टिकोण से, सन् १९३०-३१ तथा १९४३-४४ ई० के काल-खण्डों को सर्वाधिक महत्ता प्रदान की जा सकती है। इन वर्षों में कवि ने बहुत लिखा। स्फुट काव्य-रचना का बाहुल्य ही, इन वर्षों की उपलब्धियाँ हैं। प्रारम्भ में कवि ने कम लिखा परन्तु बाद में अनुपात विकसित होता चला गया। उपर्युक्त वर्षों में लिखने की अधिकता का कारण, आन्दोलन की तीव्रता, कारागृह आवास तथा प्रबन्ध-कार्य-विहीनता ही प्रतीत होता है। स्वतन्त्र

---

१. श्री श्याम परमार—'वीणा' 'नवीन' और उनकी कविताएँ, अप्रैल १९५४ पृष्ठ ४२।

भारत की अपेक्षा, पराधीन भारत में कवि ने बहुत अधिक लिखा। कवि की स्फुट रचनाएँ उन वर्षों में स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होती हैं जब कि वह किसी प्रबन्धकृति के लेखन में व्यस्त रहा है। उदाहरणार्थ, सन् १९२२-२३ तथा सन् १९३२-३४ के वर्षों में 'उर्मिला' लेखन और सन् १९४१ के वर्ष में 'प्राणार्पण' लेखन के कारण। सन् १९३० से १९४४ ई० के मध्य कवि ने बहुत लिखा। यही कवि का 'नवनीत काल' भी रहा है। सन् १९४७ के बाद तो कवि-स्रोत सूखता एवं रचनाएँ विरल होती दिखाई देती हैं। इस कथन का आधार रचनाओं की संख्या मात्र ही है।

'नवीन' जी ने कारागृहों में बहुत लिखा और सामान्य नागरिक जीवन में, अपनी व्यस्तता तथा राजनैतिक कार्यकलापों के कारण, वे बहुत कम लिख पाते थे। सन् १९२५ से १९२९ ई० की कालावधि में कवि ने सबसे कम लिखा। काव्य-रचना के अनुपात के दृष्टिकोण से, यह 'शुष्ककाल' प्रमाणित होता है। इस काल की अल्प रचनाएँ ही प्राप्य हैं। कारागृहों में, उनकी दो प्रबन्ध-कृतियों के अतिरिक्त, स्फुटकाव्य का लगभग ६० प्रतिशत, लिखा गया। इसीलिए, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने यह प्रस्तावित किया था कि अगर वर्तमान भारत सरकार में कुछ भी साहित्यिक कल्पना-शक्ति होती तो वह नवीन जी को जेल में बन्द कर देती और यह कहती, "जब आप गणेश जी के साथ पन्द्रह वर्ष, लिखकर हमें देंगे और सौ-दो-सौ ब्रिटिश जेलों की तरह की बढ़िया कविताएँ, तब आपका छुटकारा होगा।"[१] अनेक कारागृहों में, उनकी सर्वाधिक रचनाओं के सृजन का श्रेय केन्द्रीय कारागार, बरेली को प्राप्त होता है जिसमें कारागृह साहित्य का अर्द्धांश लिखा गया। इसका कारण यह था कि कवि को इस कारागृह में तीन बार (सन् १९३३, १९३९ तथा सन् १९४३-४५ ई०) जाने का अवसर आया और दीर्घ काल तक रहना पड़ा। अनुपात के दृष्टिकोण से बरेली के पश्चात् गाजीपुर, उन्नाव, फैजाबाद, नैनी, लखनऊ, अलीगढ़ तथा कानपुर की 'तपोभूमियों' के क्रमांक आते हैं। इन सब तथ्यों में, समग्र प्रबन्ध लेखन को अनुपात में सम्मिलित नहीं किया गया है; स्फुट रचनाओं को ही आधार बनाया गया है।

सामान्य नागरिक-जीवन में सर्वाधिक रचनाएँ श्री गणेश कुटीर, प्रताप प्रेस कानपुर में लिखी गई। इसके पश्चात् नई दिल्ली का क्रमांक आता है। रेल-पथ में भी, काफी रचनाएँ (दिल्ली क्रमांक के अनन्तर) लिखी गई; जिससे भी सूचित होता है कि कवि व्यस्तता के कारण, अधिक काव्य-सृजन नहीं कर पाता था और अवकाश के क्षणों में, चाहे वे कारागृह के हों या रेल-पथ के, अपने हृदय को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगता था। कवि की कतिपय रचनाएँ, रचना-तिथि एवं लेखन-स्थान से विहीन हैं जिनका काल-स्थान निर्धारण, अनुमान तथा सन्दर्भ से किया जा सकता है। विपुल रचनाओं की तिथि तथा स्थानबद्धता को देखते हुए, इन रचनाओं की तिथि विहीनता आक्षेप का विषय नहीं बन सकतीं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'नवीन' के काव्य का आरम्भ तथा अन्त, एक ही तत्व को समाविष्ट किये हुए है। 'जीव ईश्वर वार्तालाप' विषय पर लेखनी चलाने वाला किशोर चिन्तक कवि, अन्त में प्रौढ़-दार्शनिक बनकर 'जीवन-वृत्ति' का विश्लेषण कर, शाश्वत सत्य को दिग्दर्शित कर, अपने कवि-जीवन से बिदा लेता है। प्रारम्भ तथा अन्त, दोनों ही

---

१. 'रेखाचित्र' बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ २०४।

एक सूत्र में गुँथे, कवि-जीवन-माला की सीमाएँ निर्धारित कर रहे हैं। इनके मध्य में प्रेमकाव्य का दीर्घ मोती अवस्थित है और इन सबको राष्ट्रीयता का बन्धन अपने सूत्र रूपी सुदृढ़ आलिंगन में आबद्ध किये हुए है।

काव्य-संशोधन एवं परिवर्द्धन—'नवीन' जी की किसी भी प्रकाशित कृति को द्वितीयावृत्ति का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, न तो उनके जीवन-काल में और न उनके मरणोपरान्त अभी तक। एतदर्थ, तज्जन्य परिष्कार का अवसर उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। उनमें संशोधन तथा परिवर्द्धन का यह रूप प्राप्त न होकर, दूसरा ही प्रारूप उपलब्ध होता है। उन्होंने अपनी पूर्व लिखित अथवा किसी पत्र-पत्रिका में मुद्रित प्रकाशित रचनाओं को, संग्रहाकार करने की पृष्ठभूमि में, संकलन-पूर्ण कहीं-कहीं परिष्कृत किया था। इस प्रकार के अंश अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होते। इस प्रणाली-अनुगमन के दृष्टान्त, कवि की अप्रकाशित काव्य-कृतियों के पाण्डुलिपियों में सुरक्षित हैं जहाँ कवि ने स्वतः अथवा लिपिकार को निर्देशित करके, रचना में संशोधन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के दृष्टान्त 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन',[1] 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा'[2] और 'प्रलयंकर'[3] की रचनाओं में उपलब्ध हैं।

प्रकाशित कृतियों में भी, संशोधित रूप ढूँढ़ा जा सकता है। पूर्व प्रकाशित कविता तथा उसके संग्रहीत रूप के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्थिति स्पष्ट हो सकती है। प्रबन्ध कृतियों, 'उर्म्मिला'[4] तथा 'प्राणार्पण'[5] में भी कवि ने संशोधन किये थे।

सामान्यतया, 'नवीन' जी द्वारा किये गये संशोधन-परिवर्द्धन के निम्नलिखित आधार बनाये जा सकते हैं—(क) भाव-परिष्कार, (ख) भाषा-परिष्कार, (ग) छन्द-परिष्कार, (घ) अभिव्यंजन-परिष्कार, (च) अन्य परिष्कार।

उपर्युक्त परिशोधन अथवा परिवर्द्धन के दृष्टान्त, कवि की प्रकाशित तथा अप्रकाशित कृतियों के आधार पर, यहाँ विचारणीय हैं।

(क) भाव-परिष्कार—अपने भावों तथा कथन को प्रभावपूर्ण, समीचीन तथा मर्मस्पर्शी बनाने के लिए कवि ने भावों में आंशिक परिवर्तन या संशोधन किये हैं। उदाहरणार्थ—

(१) मूल रूप—"नग्न चरण, आँखें व्याकुल, हिय विक्षिप्त, मुख अम्लान।"[6]

---

१. १। कविता क्रमांक १, 'बयालीसवें वर्षान्त में' २। ३३ वीं कविता, 'भूल-भुलैया' ३। ३४ वीं कविता, 'कस्त्वं ? कोऽहम् ?'।

२. १। ५५ वीं कविता, 'किरकिरी' २। ६० वीं कविता, 'मिलन साध यह इतनी क्यों ? ३। ६३ वीं कविता, 'मन्द ज्योति', ४। ६५ वीं कविता 'पावस-पीड़ा', ५।७२ वीं कविता, 'स्थिति वैचित्र्य', ६। ७६ वीं कविता, 'माँग', ७। ७८ वीं कविता, 'घड़ियाल बजाने वाले' ८। १०४ वीं कविता, 'निद्रोत्थित नेह'।

३. १। २९ वीं कविता, 'नरक-विधान'।

४. देखिए, अध्याय दशम।

५. देखिए, अध्याय सप्तम।

६. 'वीणा', अनजान जोगी, मार्च, १९३५, मुखपृष्ठ।

संशोधित रूप—"नग्न चरण, आँखें आकुल, हिय विक्षत् मुख अम्लान।"[१]

(२) मूल रूप—"ओ लजवन्ती, लो आये हैं हम देने हिय दान।"[२]

संशोधित रूप—"ओ लजवन्ती, ले लो आए देने हम हिय दान।"[३]

भावों को सटीक तथा स्पष्ट बनाने के लिए, ये परिवर्तन द्रष्टव्य हैं।

(ख) भाषा-परिष्कार—'नवीन' जी ने भाषा का परिष्कार प्रमुख तथा अधिक रूप में किया है। संशोधन एवं परिवर्द्धन का यह मूलाधार है। उर्दू के शब्दों के स्थान पर, हिन्दी अथवा संस्कृत के शब्दों की स्थानापत्ति की गई है। इसके अनेक दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं—

(१) मूल रूप—"ज़रा झरोखे से झुक झाँको, हुलसा दो ये प्रान।"[४]

संशोधित रूप—"तनिक झरोखे से झुक झाँको, हुलसा दो ये प्रान।"[५]

(२) मूल रूप—"घर कहने के पहले गर तुम
हिम्मत करके वहाँ पधारो,
उनमें मेहनतकश के बच्चों,
को पड़ता है दिन भर रहना।"[६]

संशोधित रूप—"घर कहने के पहले यदि तुम,
साहस करके वहाँ पधारो।
उनमें श्रमिकों के बच्चों,
को पड़ता है दिन भर रहना।"[७]

(३) मूल रूप—"है दुनिया बहुत पुरानी यह,
रच डालो दुनियाँ एक नई,
जिसमें सर ऊँचा कर विचरें,
इस दुनिया के बेताज कई।"[८]

संशोधित रूप—"यह सृष्टि पुरानी पड़ी, बन्धु,
अब तुम रच डालो सृष्टि नई।
जिसमें उन्नताशि रहे विचरें,
ये मुकुट हीन नत माथ कई॥"[९]

---

१. 'रश्मिरेखा', जोगी, पृष्ठ ४७।
२. 'वीणा', वही।
३. 'रश्मिरेखा', वही।
४. 'वीणा' मार्च, १६३५, पृष्ठ ३२३।
५. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ४७।
६. 'प्रलयंकर', २६ वीं कविता, 'नरक विधान'।
७. वही, संशोधन।
८. वही, पृष्ठ ३६५।
९. पाण्डुलिपि में संशोधन।

कवि के काव्य में, भाषा सम्बन्धी परिवर्द्धन ही सर्वाधिक रूप में पाये जाते हैं। इसका मूल कारण यह है कि कवि के भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन आ गया था और संशोधन परिष्कार के माध्यम से, दृष्टिगोचर होती है।

(ग) छन्द-परिष्कार—कवि ने कतिपय स्थानों पर, शब्दों को घटा-बढ़ाकर छन्द को मात्राओं में परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। इस क्रिया के द्वारा उसका अभिप्रेत, अर्थ की उज्ज्वलता तथा स्थिति का स्पष्टीकरण प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ—

मूल रूप—"उत्कण्ठित भावना का कैसा यह अनुचित विकल प्रयत्न।"
संशोधित रूप—"उत्कण्ठिता भावना का यह,
कैसा अनुचित, विफल प्रयत्न।"[१]

उपर्युक्त पद्यांशों में, शब्दों के क्रम तथा विन्यास में भी परिवर्तन उपस्थित किया गया है।

(घ) अभिव्यंजन-परिष्कार—कवि ने अपनी अभिव्यक्ति को उपयुक्त एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए, शब्दों को बदल कर अथवा अन्य विधियों से, अभिव्यंजन-परिष्कार उपस्थित किया है। उदाहरणार्थ—

(१) मूल रूप—"यह कठोरता इधर हृदय में बैठी हुई पसीज रही।"[२]
संशोधित रूप—"औ कठोरता इधर हृदय में,
बैठी हुई पसीज रही।"[३]

(२) मूल रूप—"खड़े हैं फिर भी हम अनजान।"[४]
संधोधित रूप "खड़े हैं हम कब से अनजान।"[५]

(३) मूल रूप—"खड़े हैं हम इसीलिए अनजान।"[६]
संशोधित रूप—"खड़े हम इसीलिए अनजान।"[७]

(४) मूल रूप—"आज बने हैं मेरे पथी, सुभ बेबस के सकल उपकरण।"[८]
संशोधित रूप—"आज बने मेरे परिपन्थी, मुझ बेबस के सकल उपकरण।"[९]

(च) अन्य परिष्कार—उपर्युक्त परिष्कारों के अतिरिक्त, कवि ने अन्य कई छोटे-मोटे परिवर्तन उपस्थित किये हैं; जिनका विशेष महत्व नहीं है। कहीं-कहीं विराम-चिह्नों का उचित प्रयोग व्यवहृत है, उदाहरणार्थ—

---

१. 'कुंकुम', पृष्ठ ८।
२. 'प्रभा', जुलाई, १९२४, पृष्ठ २६।
३. 'कुंकुम', पृष्ठ ८।
४. 'वीणा', मार्च, १९३५, पृष्ठ ३२३।
५. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ४८।
६. 'वीणा', मार्च, १९३५, पृष्ठ ३२३।
७. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ४८।
८. 'आगामी कल', गीत, मार्च, १९४६, मुखपृष्ठ।
९. 'अपलक', 'प्राण, तुम्हारे करके कंकण', पृष्ठ ७७।

मूल रूप—"दृग-गत स्मृति तो थी ही, पर अब जाग उठे ये श्रवण संस्मरण,
औ ये स्पर्श नासिका, रसना सभी, कर उठे स्मरण अनुकरण।"[१]

संशोधित रूप—"दृग-गत स्मृति तो थी ही, पर, अब जाग उठे ये श्रवण-संस्मरण,
औ' यह स्पर्श नासिका, रसना, सभी, कर उठे स्मरण-अनुकरण।"[२]

निष्कर्ष—संशोधन-परिवर्द्धन के द्वारा, कवि के काव्य-विकास, शैली तथा विचार-धाराओं के क्रमिक सोपानों का परिचय प्राप्त होता है। 'नवीन' जी के परिवर्तनों में मूलतः भाषा-परिष्कार की चेष्टा ही सर्वत्र आच्छादित है। यह उनका शुद्धवादी रूप है। उनके 'प्रौढ़ काल' का यह कलित केतन है। यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या सभी रचनाओं में परिष्कार करना उचित तथा वांछनीय प्रतीत होता है? कई कविताएँ ऐसी होती हैं जिनका ख्याति तथा काव्य-इतिहास में स्थान बन चुका होता है और ऐसी रचनाओं के भाषा परिवर्तन या अन्य परिष्कार से, एक-दूसरी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कवि की 'कस्त्वं ? कोऽहम् ?' कविता का यही स्थान है जिसका उसने भाषागत परिष्कार कर डाला है। साथ ही, कतिपय शब्द अपने प्रकृत तथा प्रयुक्त रूप में ही अच्छे लगते हैं और उनके परिष्कार से, काव्य की सहजता तथा हृदयस्पर्शिता पर भी आघात लगता है। कवि ने, 'बायें कदमों के साथ चलो' में 'कदमों' के स्थान पर चरणों का जो प्रयोग कर दिया है, वह कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। यह वृत्ति कवि के अतिशय आग्रह, मोह तथा भाव-प्रवणता की परिचायिका है।

'नवीन' जी के काव्य में परिष्कार की पर्याप्त आवश्यकता थी, परन्तु वे अपने मन-मौजीपन, अतिशय व्यस्तता तथा अन्य दायित्वों के कारण, ऐसा न कर सके। उनके व्यक्तित्व तथा कार्य-बहुलता को देखते हुए, इस आवश्यकता को आक्षेप में परिणित नहीं किया जा सकता। यह कवि की सहज, नैसर्गिक तथा युगीन परिस्थितियाँ थीं, जिनको, इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते समय, हम अपने अवधान से ओझल नहीं कर सकते। कवि का समग्र काव्य अपने प्राकृतिकरूप में बन की विस्तृत, कहीं मधुर तथा कहीं विकराल, कहीं ऊबड़-खाबड़ तो कहीं सौम्य, शिष्ट और कल-कलमयी छटाएँ तथा दृश्य-दृश्यावलियाँ उपस्थित करता है, जिसे वाटिका के कृत्रिम तथा सीमित रूप में आसिंचित करके, माली की कतरनी की आवश्यकता अनुभूत नहीं हुई। कई वस्तुएँ अपने मौलिक तथा प्राकृतिक रूप में ही भली प्रतीत होती हैं और 'नवीन' का काव्य उसका श्रेष्ठ निदर्शन है।

प्रारम्भिक काव्य : पूर्वाभास—कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के प्रारम्भिक काव्य के अन्तर्गत, हम उस काव्य-साहित्य को समाविष्ट कर सकते हैं जो कि उनके 'निर्माण-काल' (सन् १९१५-१९३१) के पूर्वार्द्ध, के कतिपय वर्षों (१९१५-१९२१) की सीमाओं में आ सकता है।

कवि 'नवीन' ने 'प्रतिभा' में प्रकाशित 'जीव-ईश्वर वार्त्तालाप' विषय पर आधृत रचना को अपनी प्रथम रचना माना है।[३] यह 'आवाहन शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।'[४] प्रकाशन के

१. 'आगामी कल', मार्च, १९४६, मुखपृष्ठ।
२. 'विशाल भारत', अक्टूबर, १९३७, पंक्ति ४४वीं, पृष्ठ ३६४, कवि द्वारा संशोधन।
३. 'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, पृष्ठ ४८-४९।
४. 'प्रतिभा', अप्रैल, १९१८, मुखपृष्ठ।

दृष्टिकोण से अप्रैल १९१२ में 'आवाहन' शीर्षक से प्रकाशित हुई, वहाँ 'नवीन' जी की 'तारा' शीर्षक कविता भी इसी तिथि में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी।[1] सम्भवतः कवि ने 'आवाहन' कविता पहले लिखी हो और इस दृष्टिकोण से, यह प्रथम कविता मानी जा सकती है।[2]

१९१८ ई० में कानपुर में अपनी 'प्रथम' कविता लिखने के पूर्व भी, 'नवीन' जी काव्य-रचना करने लगे थे। यद्यपि ये रचनाएँ कहीं प्रकाशित नहीं हुई और कवि की दृष्टि में,

---

१. 'सरस्वती', अप्रैल १९१८, मुखपृष्ठ, पृष्ठ १६६।

२. 'प्रतिभा', मासिक, के नवम्बर, १९१७ भाग १, अंक ८, पृष्ठ २४८ के अंक में श्री बालकृष्ण शर्मा के नाम से 'रे षड्पद' शीर्षक चार छन्दों वाली कविता प्रकाशित हुई थी। यह कविता 'नवीन' जी की नहीं है।—क्योंकि कवि की समग्र प्रारम्भिक मुद्रित प्रकाशित रचनाओं में सिर्फ 'नवीन' नाम ही मिलता है, इसकी शैली भी 'नवीन' शैली के साहश्यमूलक नहीं हैं और कवि द्वारा प्रदत्त सूचना के प्रकाश में, यह कविता प्रासंगिक भी नहीं ठहरती। उस युग में 'श्री बालकृष्ण शर्मा' नामक एक पृथक् लेखक भी थे जिनकी रचनाएँ छपा करती थी।—देखिए, 'नर्मदा', गणेशशंकर विद्यार्थी स्मृति-अंक, श्री बालकृष्ण शर्मा का लेख 'क्रान्तिकारी नेता के साथ एक दिन', पृष्ठ ४३-४५। इस कविता की इतनी प्रौढ़ता भी उन दिनों कवि में नहीं आ पाई। सूचनार्थ यह कविता उद्धृत है : रे षट्पद !

१

नीरजों को प्राण अर्पण किये,
गन्ध रस से मत्त हो तूने अलि,
किन्तु अविरल प्रेम की धारा कभी—
क्या अरे ! तव हृत्पटल पर है वही ?

२

रसभरित नवकंज के उर बीच ही,
पैठकर निज मधुर स्वर आलाप से,
हृदय तन्त्रीलय समन्वित गान को :
झूमकर तू गा रहा था एक दिन।

३

आर्द्र औ रसपूर्ण था जब तक कमल,
थे उसे तब प्रेम दर्शन तव सुलभ,
किन्तु जब अरविन्द शुष्कानन हुआ,
बस, तभी से तू किनारा कस गया।

४

क्यों न हो, स्वार्थान्ध नर भी क्या कभी—
दिव्य प्रेमालोक को हैं पेखते ?
आह अत्युत्कृष्ट प्रेमोद्यान में,
भ्रमर विचरण क्या अहो दुस्तर नहीं ?

इनका कोई महत्व भी नहीं था, इसीलिए उसने इन कविताओं के प्रथम सृजन की रचना होने का उल्लेख नहीं किया। कवि ने उस रचना को ही 'प्रथम' कविता की संज्ञा प्रदान की जो प्रकाशित भी हुई। परन्तु 'नवीन' काव्य के शोध तथा समीक्षा में इस कविता के पूर्व की रचनाओं का भी बड़ा महत्व है।

उज्जैन के अपने विद्यार्थी-काल में कवि की यह प्रतिभा अंकुरित होने लगी थी। 'नवीन' जी की सर्वप्रथम उपलब्ध कविता वह है जो कि उन्होंने सन १९१५ में, माधव कालेज, उज्जैन के उच्च माध्यमिक शाला विभाग की अपनी एक हस्तलिखित पत्रिका 'विद्यार्थी' में लिखी थी। यह कविता दिनांक २०-९-१९१५ को 'विद्यार्थी' पत्रिका में 'सूर्य के प्रति' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी—

हे तारकराज तुम्हें शतवार प्रणाम हमारा,
करते हो तुम दूर रात का अँधियारा।
भर देते हो सुप्रकाश से जग सारा,
है कितना विश्व पर उपकार तुम्हारा।
तुम देते हो उपदेश शीघ्र उठने का,
कर्त्तव्य भाव से आलस्य दूर करने का।
ज्ञान की प्रभा से अज्ञान-तम हरने का,
सत्कार्य-तेज से जीवन को भरने का॥[1]

ऐतिहासिक क्रम में, 'नवीन' जी की यह 'सर्वप्रथम' कविता घोषित की जा सकती है। काव्य-शैली के विकास को निरूपित करने के लिए, आदि अवस्था के काव्य की झलक प्राप्त करने और समुचित मूल्यांकन के लिए, कानपुर आने के पूर्व लिखी गई कविताओं का अपना स्थान है।

इस प्रकार सन् १९१५ से कवि काव्य का प्रारम्भ मानने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती। सन् १९१५-१९१८ ई० की मध्यावधि का काव्य अभी तक अप्रकाशित, अज्ञात तथा उपेक्षित ही रहा है। इन हस्तलिखित रचनाओं की अपनी पृथक् महत्ता है।

वर्गीकरण—'नवीन' के प्रारम्भिक काव्य (सन् १९१५-१९२१) में निम्नलिखित प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं—(क) अध्यात्म-परक रचनाएँ, (ख) राष्ट्र-परक रचनाएँ और (ग) प्रकृति-परक रचनाएँ। प्रत्येक काव्य-प्रवृत्ति का संक्षिप्त विवेचन निम्नरूपेण है।

(क) **प्रेम-भक्तिपरक रचना**—कवि की प्रेमभक्तिपरक रचनाओं में अपने प्रारम्भिक दर्शनशास्त्र के अध्ययन, पारिवारिक वैष्णव संस्कार, चिन्तन आदि का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन रचनाओं में अध्यात्म की गहनता या दुरूहता प्राप्त नहीं होती अपितु यह प्रवृत्ति धर्म के आच्छादन को लेकर हमारे समक्ष आती है। इस प्रकार की रचनाओं में भी, कवि ने भावना को ही अधिक प्रश्रय प्रदान किया है।

---

१. कवि के बाल्य सखा एवं सहपाठी श्री काशीनाथ बलवन्त माचवे : शहर सराय, रतलाम म० प्र० के (दिनांक २७-७-१९६१) पत्र के द्वारा, साभार प्राप्त।

प्रेम के कई रूप होते हैं—यथा राष्ट्रप्रेम, प्रकृति-प्रेम, वात्सल्य आदि। कवि ने वात्सल्य का भी चित्रांकन किया है।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कोटि की रचनाओं में प्रेम, भक्ति आत्मसमर्पण, वात्सल्य आदि के रूप दृष्टिगोचर होते हैं। कवि की इस श्रेणी की रचनाओं ने ही, आगे जाकर अध्याय का रूप ग्रहण कर लिया। इन रचनाओं में भावप्रवणता की प्रधानता है। इन अंकुरों ने ही स्वस्थ विकास प्राप्त किया।

(ख) राष्ट्रपरक रचनाएँ—'नवीन' जी के काव्य में राष्ट्रीयता के बीज प्रारम्भ से ही प्राप्त होते हैं। ये बीज कवि को अपने उद्दीप्त वातावरण तथा उग्र प्रवृत्तियों के द्वारा स्वतः प्राप्त हो गये। कानपुर में आकर कवि को सम्यक् वातावरण प्राप्त हुआ जिसका उनके तरुण मानस पर गहरा प्रभाव परिलक्षित हुआ। कवि के तरुण मन ने विगत भारत के गौरव के साथ ही साथ, वर्तमान भारत की दुर्दशा की ओर भी निहारा। कवि ने अपने काव्य के माध्यम से भारत-माता के चरणों में अपना उपहार अर्पित किया है—

याद कर वे दिन दुखित हो देख से हो क्षीण।
क्षोभ मन्दिर मथित इस हृत्सिन्धु से दो हीन—
सुगजमुक्ता नयन-अंजलि में लिये मीनार,
दे रहा है भरत भू के चरण में उपहार।[२]

कवि ने विगत गरिमा के साथ ही साथ, वर्तमान दीनता का भी चित्रण किया है—

यह कुतुब मीनार गौरव चिह्न, ये सामान,
कर रहे हैं बस हमारी गत-श्री का गान,
किन्तु हम? हम कर रहे हैं, दैन्य जल में स्नान॥[3]

कुतुब मीनार के माध्यम से कवि, प्राचीन एवं नवीन भारत की तुलना उपस्थित करता है—

शाह कुतुबुद्दीन की गौरव घटा की मूर्ति।
कर रही है आज क्या उस विजय की सम्पूर्ति?
कुछ नहीं! पर हाँ दिखाती है झलक प्राचीन।
देख तुलना बुद्धि रहती—'आज हम यों दीन?[४]

कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक पक्ष की ही बहुलता है। राजनैतिक रूप ने अभी अपने पंख नहीं पसारे थे। प्रारम्भिक रचनाओं में प्राप्त राष्ट्रीयता के स्वरूप ने शनैः-शनैः प्रमुख तथा विशाल रूप धारण कर लिया।

(ग) प्रकृति-परक रचना—'नवीन' जी ने अपनी आरम्भिक रचनाओं में प्रकृति के

---

१. 'प्रतिभा', मुरली की तान, अगस्त, १६१६, पृष्ठ १३४।

२. वही, कुतुब मीनार, जून, १६२०, पृष्ठ १०५।

३. वही, पृष्ठ १०४।

४. वही, जून १६२०, पृष्ठ १०५।

सुष्ठु एवं सरस रूप प्रस्तुत किये हैं। कवि ने प्रकृति को आलम्बन एवं उद्दीपन के ही रूप में ग्रहण किया है।

निष्कर्ष—'नवीन' जी के प्रारम्भिक काव्य का विधिवत् अध्ययन करने पर विदित होता है कि महाकवि 'निराला' के समान, उन्होंने भी प्रारम्भ से ही शक्तिशाली, वेगपूर्ण तथा सरस रचनाएँ लिखी। द्विवेदी-युग में अपने काव्य के समारम्भ करने के बावजूद भी, उनके काव्य पर युगीन प्रवृत्तियों के विशेष चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते।

कवि की रचनाओं का भाव-पक्ष भक्ति तथा राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं ने लावण्य की सरिता प्रवाहित की है। कला-पक्ष ने भी अपने विकास के चिह्नों को यथास्थान प्रकट किया है। कवि को संगीत का प्रारम्भ से ही ज्ञान था, इसलिए उसने शास्त्रीय रागों का भी प्रश्रय ग्रहण किया। उसकी 'कुतुब मीनार' रचना 'राग सोरठ' में लिखी गई।[१]

उनके प्रारम्भिक काव्य में गीति-तत्वों को ही प्राधान्य मिला है। डॉ० सुधीन्द्र ने उनकी 'तारा' रचना को 'पद गीत'[२] की संज्ञा से विभूषित किया है।[३] उनकी कविताएँ प्रारम्भ से ही महत्व की अधिकारिणी हो गई थीं। उनकी अनेक आरम्भिक रचनाएँ पत्र-पत्रिका में, मुखपृष्ठों पर प्रकाशित हुई यथा—'आवाहन', 'तारा', 'दर्शन', 'संयोग', 'मुरली की तान', 'मिलन', 'सूखे आँसू' आदि। कवि में रचनातिथि तथा स्थान अंकित करने के सदृश्य ही, कतिपय कविताओं में आये विशिष्ट, कठिन या सांकेतिक शब्दों के अर्थ, पाद-टिप्पणी में देने की प्रवृति आद्यन्त रही। उपर्युक्त कविता 'तारा' में 'लेकर' का अर्थ 'किरण' दिया है। 'संयोग' कविता में 'बालातप' के अर्थ रवि तथा 'जीवन' के श्लेष को 'जल तथा जीवन' के रूप में स्पष्ट किया है।[४]

कवि अपने आपको मूलतः गीतकार ही निरूपित करता था।[५] कहना न होगा कि उसका कथन, अपनी प्रारम्भिक काव्य-रचना से ही चरितार्थ होने लगता है। 'नवीन' जी के आरम्भिक काव्य में उनके काव्य विषय, शिल्प-साधना तथा शैलियों के उद्गम के स्रोतों को सरलतापूर्वक ढूँढ़ा जा सकता है। कवि के सशक्त तथा प्रभविष्णु काव्य की मूलभित्ति भी अपनी अवस्थानुसार, प्रखर तथा हृदयस्पर्शी प्रमाणित होती है।

'प्रभा' तथा 'प्रताप' में प्रकाशित रचनाएँ—'प्रभा' तथा 'प्रताप' का कवि के व्यक्तित्व तथा काव्य-निर्माण में अनुपमेय स्थान रहा है। जहाँ 'प्रभा' ने 'नवीन' जी के

१. 'प्रतिभा', कुतुब मीनार, द्वितीय छन्द, जून, १९२०, पृष्ठ १०५।

२. डॉ० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, कला समीक्षा, गीत विन्यास, पृष्ठ ३२१।

३. 'सरस्वती', तारा, अप्रैल १९१८, मुखपृष्ठ, पृष्ठ १९९।

४. 'प्रतिभा' संयोग, तृतीय छन्द, जून, १९१९, पृष्ठ ६५।

५. श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट, (दिनांक २३-५-१९६१) में ज्ञात।

साहित्यिक जीवन का निर्माण किया, वहाँ 'प्रताप' को शर्मा जी के राजनैतिक जीवन का स्वरूप गढ़ने का समग्र श्रेय प्राप्त है। इन पत्रों के सम्पादक के साथ ही साथ, 'नवीन' जी के काव्य को अभिव्यक्ति तथा प्रकाशन के क्षेत्र में भी उपर्युक्त पत्रों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'प्रताप' में कवि के विपुल साहित्य ने स्थान प्राप्त किया है; इसलिए यहाँ सिर्फ आरम्भिक रचनाओं का ही विवेचन किया गया है। 'प्रभा' में 'उर्म्मिला' के कतिपय अंश भी प्रकाशित हुए थे जिनका विस्तृत विवेचन 'महाकाव्य' सम्बन्धी अध्याय में किया गया है।[1]

'प्रारम्भिक काव्य' के वर्गीकरण के समान, 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के काव्य-साहित्य का भी, निम्नलिखित वर्गों में विभाजन किया जा सकता है—(क) प्रेम तथा भक्तिपरक रचनाएँ, (ख) राष्ट्रपरक रचनाएँ, और (ग) प्रकृतिपरक रचनाएँ।

आलोच्य-काव्य-साहित्य में भक्ति तथा राष्ट्रीयता का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है; जब कि प्रारम्भिक काव्य में प्रकृति-चित्रण को भी महत्त्व प्राप्त हुआ। प्रस्तुत काव्य-साहित्य में, राष्ट्रपरक रचनाओं में सांस्कृतिक पक्ष के साथ ही साथ, राजनैतिक तथा सामाजिक पार्श्वों को भी स्पर्श किया गया है, जब कि प्रारम्भिक काव्य की सीमाएँ संकीर्ण थीं। इस प्रकार, प्रस्तुत काव्य में सीमाओं का विस्तार तथा विकास होता, दिखाई पड़ता है।

(क) प्रेम तथा भक्तिपरक रचनाएँ—मूलत: कवि पर वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव अंकित हैं। कृष्णभक्ति की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। श्रीकृष्ण से कवि ने भवसागर-संतरण की प्रार्थना की है।[2]

प्रेम में वात्सल्य का अपना मधुर, चित्ताकर्षक एवं अनूठा स्थान है। इस प्रकार के चित्र भी काव्य में कहीं-कहीं प्राप्त हो जाते हैं। अपने वैष्णव-संस्कार से उद्भूत, यह चित्र मन्त्र-मुग्ध कर लेता है—

> यशुमति का अंचल पकड़े मचलाता जो छोटा सा श्याम,
> खीझ-खीझ कर नन्दरानी को मुग्ध किया जिसने प्रतियाम,
> वही सलोने लोने लोचन वाला लोलुप लोनी का,
> क्यों दुखियों से खेल खेलता है यह आँख मिचौनी का।[3]

इस प्रकार कवि के प्रेम-भक्ति काव्य में भक्त-हृदय की लालसाओं तथा आत्म उद्धार के साथ रागात्मिका प्रवृत्तियों का सोल्लास निरूपण है। प्रारम्भिक काव्य में जहाँ इस प्रकार की रचनाओं पर आध्यात्मिक छाया भी दिखाई पड़ती थी, वहाँ, प्रस्तुत-काव्य में, भक्ति का विशुद्ध तथा तल्लीन रूप ही दृष्टिगोचर होता है। प्रेम के क्षेत्र में, प्रणय का पक्ष अधिक उभरता-सा दिखाई पड़ने लगा है।

(ख) राष्ट्रपरक रचनाएँ—'नवीन' जी को 'प्रताप' के राजनैतिक तथा उग्र वातावरण ने प्रखर तथा प्रबल बनाने में पूर्ण योगदान प्रदान किया। कवि की दृष्टि का व्यापक प्रसार हुआ और वह राजनीति तथा समाज का गठ-बन्धन करने लगा।

---

१. देखिए, अध्याय दशम।

२. 'प्रभा', करुणा कोर की भीख, अक्टूबर, १६२२, मुखपृष्ठ, पृष्ठ २४५।

३. 'प्रभा', करुणा कोर की भीख, प्रथम छन्द, अक्टूबर, १६२२, पृष्ठ २४५।

'स्वराज्य माझा जन्मसिद्ध अधिकार आहे' के उद्घोषक महामना तिलक जी की मृत्यु पर, कवि के अश्रुसिक्त उद्गार प्रस्फुटित हो पड़े—

मेरा छोटा सा छौना था, मेरी गोदी का गोपाल।
मेरे माखन का लोभी था, मेरे वंशी वट का ग्वाल॥
फटी पुरानी साड़ी से मैंने पोंछे थे उसके गाल।
कहाँ गया मिट्टी से लथपथ मेरा नटखट प्यारा बाल?[१]

तिलक जी के वियोग में कवि ने शोक-गीति लिखी जिसमें अश्रुसिक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई थी।[२]

राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक पक्ष के साथ ही साथ, कवि की दृष्टि सामाजिक विषयों की ओर भी उन्मुख हुई। कवि ने समाज के दीन-हीन तथा ग्रस्त व्यक्तियों की अर्चना की और उनकी वेदना को अपनी काव्य-वाणी से सस्वर बनाया। 'कुली के चरणों में' में कवि का करुण-निवेदन, इस दिशा का श्रेष्ठ संकेत है—

न हो विकल ऐ कुली,
टिकट मारीशस का हम ले देंगे।
अथवा किसी क्रूर जेल की,
ट्रंक उठाने भेजेंगे।[३]

प्रस्तुत-काव्य में, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना व्यापक होती प्रतीत हो रही है और उसके विषय भी विविधमुखी हो गये हैं।

(ग) प्रकृतिपरक रचनाएँ—'प्रारम्भिक काव्य' के समान ही, प्रकृति का आलम्बन तथा उद्दीपन रूप प्राप्त होता है। कहीं प्रकृति, प्रणय आख्यान के भावना की पीठिका के रूप में आई है और कहीं वह अपना मुक्त तथा स्वच्छन्दरूप-सौष्ठव की अलकें बिखेर रही है। प्रकृति में रूपक तथा मानवीकरण अलंकारों की प्रतिष्ठा करके, कवि ने एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है—

विस्तृत अंचल फैलाये पश्चिम दिशा—
जिनकी बाट जोहने में तल्लीन थी,
वे ही उसकी ओर झुके थे प्यार से,
उस प्रेमी की तरह मोह जिसका हटा।[४]

कवि के प्रकृति-चित्रण में लाक्षणिकता का तत्व निखरकर आने लगा था। शैली भी तथानुकूल हो गई।

---

१. साप्ताहिक 'प्रताप', मेरा—कहाँ? प्रथम छन्द, श्रावण द्वितीय, कृष्ण १०, संवत् १९७७, ६ अगस्त, १९२०, भाग ७, संख्या ३६, तिलक स्मृति-अंक।

२. वही, दीप-निर्वाण, प्रथम छन्द, भाद्रपद कृष्ण ८, सं० १९७७, ६ सित० १९२०, भाग ७, संख्या ४३, पृष्ठ ८।

३. साप्ताहिक 'प्रताप', कुली के चरणों में, अगहन कृष्णपक्ष ३, सं० १९८०, २६ नवम्बर, १९२३, भाग ११, संख्या ४, पृष्ठ ८।

४. 'प्रभा', संध्या के प्रकाश में, चतुर्थ छन्द, १ दिसम्बर १९२१।

निष्कर्ष—'प्रभा' तथा 'प्रताप' (आरम्भिक) के काव्य ने कवि-जीवन के परिष्कार तथा संवर्द्धन में नये आयाम उपस्थित किये हैं। विविध विषयों की रेखाओं में रंग भरने लगा था और उत्कर्ष का प्रकर्ष दृष्टिगोचर होने लगा था। काव्य-शैली में लाक्षणिकता ने अपने चमत्कार दिखलाने शुरू कर दिये थे। आलोच्य-काव्य में छायावादी काव्यधारा के अनेक चिह्न प्राप्त होते हैं। कवि की अभिव्यंजना शक्ति तथा कलासौष्ठव में परिपुष्टता तथा प्रांजलता के खंजन दिखाई देने लगे। चित्रोपमता तथा विस्तार के अपने पल्लव थिरकने लगे थे। बहुमुखी भावों की कलियाँ तथा प्रोज्ज्वल प्रवृत्तियों के प्रसून अपने सुवास विकीर्ण करने लगे।

प्रस्तुत-काव्य में भी प्रगीत-उपादानों का प्राचुर्य प्राप्त होता है। इस युग में शोक गीतियाँ भी श्रेष्ठ रूप में लिखी गईं। 'चिता के फूल, आँसू' में कवि की सुष्ठु कला-वृत्ति का निर्देशन प्राप्त होता है।[1]

पण्डित मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' की मृत्यु पर भी कवि ने लिखा था—

मित्र वर्गों ने खो दिया—दुलारा एक,
दीन दुखिया हैं खो चुके—सहारा एक,
हास्य के भाव खो चुके हैं—प्यारा एक,
हमने भी खोया—गजपुरी, हमारा एक।[2]

काव्य तथा पत्रकारिता, दोनों ही के दृष्टिकोण से, इस युग की कविताओं को गरिमा प्राप्त हुई। उनकी कई कविताओं ने मुखपृष्ठ की शोभा-वृद्धि की, यथा—'आन्तरिक तन्त्री', 'दीप-निर्वाण', 'सन्ध्या के प्रकाश में', 'करुणा कोर की भीख', 'तुम्हारे सामने' आदि। उनकी कविताएँ सचित्र भी प्रकाशित हुईं, यथा—'दीप-निर्वाण' और 'आगमन की चाह।'

आलोच्य-काव्य में कवि के साहित्यिक एवं राजनीतिक जगत् के क्षितिज में नूतन आलोक उत्पन्न किया। कवि-मार्ग प्रशस्त तथा शालीन बन गया। काव्य पुरागामिता के वाहन पर आरूढ़ हो गया। भावी निकष सस्मित दृष्टिगोचर होने लगे।

---

१. 'प्रभा' चिता के फूल : आँसू, तीन छन्द, १ फरवरी, १६२०, पृष्ठ १३।

२. वही, स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' की मृत्यु पर, १ दिसम्बर १६२१, पृष्ठ ३०६।

पंचम अध्याय

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य

विषय-प्रवेश—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन तथा काव्य का, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं से प्रत्यक्ष एवं अटूट सम्बन्ध रहा है। 'नवीन' जी ने स्वयं, राष्ट्रीयतावाद के प्रत्येक उत्थान के समय, अपना कोई न कोई विशिष्ट कार्य, अवश्य ही सम्पन्न किया है। तिलक जी के आह्वान पर वे लखनऊ-कांग्रेस में गये और गान्धी जी के उद्घोष के समय, अपने शिक्षाक्रम को अधूरा छोड़, आन्दोलन में कूद पड़े। सन् १६२१-२२, ३१-३२ तथा ४२-४४ के राष्ट्रीयतावादी उत्थानों के समय, देश की ज्वार की स्थिति के अनुकूल, उनके काव्य-प्रकर्ष तथा अनुपात में भी जीवन आया। राष्ट्रीय कारणों से कारागृह-यात्राओं में, उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा स्वाध्याय की पुष्टि की। उन्होंने अपने युग तथा राष्ट्र की तलवार तथा लेखनी, दोनों से ही, सेवा की। मूलतः 'नवीन' जी गरम-दलीय व्यक्ति थे परन्तु महात्मा गान्धी के अनन्य भक्त बने रहे। गान्धीवाद की स्पष्ट छाप उनके कृतित्व पर आँकी जा सकती है। सांस्कृतिक-पुनरुत्थान के वे प्रेमी थे और अपने अध्ययन तथा मनन से, उन्होंने राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक पक्ष को परिपक्व बनाया।

हमारी राष्ट्रीयता ने शनैः-शनैः अपने रूप को निखारा है। गान्धी जी द्वारा आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करने के कारण, उसका उज्ज्वल तथा निर्मल रूप ही हमारे समक्ष आया। भारत के स्वतन्त्रता-इतिहास की गाथा विश्व के इतिहास में अपना अनूठा महत्व रखती है। अहिंसा, सत्य तथा आत्मा के बल पर प्राप्त विजय ने एक नूतन वातावरण की सृष्टि की। डॉ० सुधीन्द्र के शब्दों में, इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि "मुसलमानी काल में भारतीय राष्ट्र सुप्त (कलि) है, १८५७ से लेकर १८८५ तक अँगड़ाई लेता हुआ (द्वापर) है, १८८५ से १६०५ तक बैठने की चेष्टा करता हुआ (त्रेता) है और १६०५ में आगे चलता हुआ कृत (सत्) है"—

> **कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।**
> **उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृत संपद्यते चरन्॥**
>
> —ऐतरेय ब्राह्मण : 'चरैवेति'[1]

काव्य-स्वरूप—'नवीन' जी के यशस्वी रूप का प्रमुख सूत्र उनके राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में प्राप्त होता है। उन्होंने इस काव्य-धारा के अन्तर्गत, पराधीन एवं स्वाधीन भारत के, दोनों ही युगों में, रचनाएँ लिखी। उनके राष्ट्रीय काव्य के दो भेद हैं—(क) स्फुट कृति, (ख) प्रबन्ध कृति।

युग के आधार पर, उनकी स्फुट तथा प्रबन्ध रचनाएँ दो वर्गों में सहज ही बँट जाती हैं—(क) स्वातन्त्र्य पूर्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य, (ख) स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य।

---

१. डॉ० सुधीन्द्र—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृष्ठ १६७।

उपर्युक्त दोनों युगों में कवि के काव्य की मूल प्रवृत्तियों में सादृश्य भाव दृष्टिगोचर होता है; सिर्फ विषय तथा उपादान में अन्तर उपस्थित हो गया है। राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक काव्य-धारा की रचनाओं के अतिरिक्त, कवि ने, प्रबन्ध कृति के रूप में, 'प्राणार्पण' नामक खण्ड-काव्य की सृष्टि की। सर्वप्रथम, परतन्त्र एवं स्वतन्त्र भारत की स्फुट रचनाओं का विविध तत्वों एवं विभाजनों के आधार पर विवेचन करने के पश्चात्, इस प्रबन्ध-कृति की समीक्षा करना उचित प्रतीत होता है।

'हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीय-काव्य का विकास'[1]—शोध प्रबन्ध के लेखक डॉ० क्रान्तिकुमार शर्मा ने राष्ट्रीय-काव्य को निम्नलिखित धाराओं में विभाजित किया है—(१) जन्मभूमि के प्रति प्रेम; (२) स्वर्णिम अतीत का चित्रण; (३) प्रकृति-प्रेम; (४) विदेशी शासन की निन्दा; (५) जातीयता के उद्गार; (६) वर्तमान दशा-क्षोभ; (७) सामाजिक सुधार—भविष्य निर्माण; (८) वीर-पुरुषों की स्तुति; (९) पीड़ित जनता और कृषकों का चित्रण और (१०) भाषा-प्रेम।[2]

उपर्युक्त धाराओं को समन्वित एवं व्यवस्थित रूप में रखकर, 'नवीन' के राष्ट्रीय-काव्य के विवेचनार्थ, उनका उपयोग किया जा सकता है।

स्फुट-कृति—स्वातन्त्र्य-पूर्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य—'नवीन' जी ने लिखा था कि 'आज आपकी इस वृद्धा जननी-जन्मभूमि के आँगन में नई बातें, नई समस्याएँ, नई भावनाएँ, नई आकांक्षाएँ, खेल रही हैं—नहीं, ऊधम मचा रही हैं। ऐसे समय यदि हृदय में आकुलता उमड़े तो क्या आश्चर्य ?[3] राष्ट्रीय-आन्दोलन के युग में, कवि के हृदय में जो प्रतिक्रियाएँ, आक्रोश, भावावेश एवं मन्थन हुआ—उसी का ही प्रतिरूप राष्ट्रीय-काव्य के रूप में प्राप्त होता है।

'नवीन' जी का राष्ट्रीय काव्य, परिमाण तथा परिणाम, दोनों ही रूपों में, स्वातन्त्र्य-पूर्व युग की देन है। इसी युग के ही काव्य का, कला तथा प्रभाव, दोनों ही दृष्टिकोणों से सर्वोपरि महत्त्व है। कवि ने सक्रान्ति-काल[4] में जन्म लिया था; इसलिए, उनके ही मतानुसार, संक्रान्ति-काल के साहित्य में तो आपको करुणा भी मिलेगी और पराजयवाद भी मिलेगा। सक्रान्ति में आदर्श की प्राप्ति तो होती नहीं—यदि वह हो जाय तो संक्रान्ति काल क्रान्ति-युग में ही परिणत न हो जाय ? संक्रान्ति के काल में तो आदर्श प्राप्ति के प्रयत्न होते हैं और

---

१. डॉ० क्रान्तिकुमार शर्मा—'हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय-काव्य का विकास', प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध।

२. डॉ० क्रान्तिकुमार शर्मा—'नई दुनिया', दीपावली-विशेषांक राष्ट्रीय काव्य के विभिन्न स्वरूप, सं० २०१८; पृष्ठ ५८।

३. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १२।

४. "संक्रान्ति-काल क्या चीज है ? ज्योतिष-शास्त्र में संक्रान्ति-काल उस काल को कहते हैं, जब सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता होता है और पूर्णत: वह न इस ओर ही और न उस ओर ही रहता है। इसी एक अवस्था से दूसरी अवस्था में गमन करने के काल को हम संक्रान्ति-काल कहते हैं। सामाजिक संक्रान्ति-काल भी कुछ ऐसी ही सी चीज है।"—'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १३।

उन प्रयत्नों की असफलताओं की एक लम्बी सी कड़ी रहती है। क्षणिक सफलता और पुनः असफलताओं के कारण हृदय तड़पता है। आदर्श-निर्माण की लालसा हृदय-मन्थन करती है और अप्राप्ति हृदय को निराश भी करती है। अतः इस युग की अभिव्यक्ति में नवीनता की झलक, निराशा, वेदना और पराजयवाद की छाप लगी रहती है। इसलिए आज यदि हमारे साहित्य के पराजयवाद या वेदना की मात्रा है तो यह न केवल स्वाभाविक, वरन् आवश्यक एवं तत्त्वपूर्ण भी है।[1] इसी परिणाम-स्वरूप 'नवीन' जी ने अपने आपको 'संक्रान्ति-काल के प्राणी' कहा है जिन्हें सुखोपभोग प्राप्त नहीं है—

हम संक्रान्ति-काल के प्राणी,
बदा नहीं सुख भोग।
घर उजाड़कर जेल बसाने
का-है हमको रोग॥[2]

'नवीन' जी का स्वातन्त्र्य-पूर्व राष्ट्रीय-काव्य अत्यन्त विशद एवं मार्मिक है। उसे दो प्रधान धाराओं एवं अन्य उपधाराओं में सहज ही विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्फुट रचनाएँ—यथा 'कुंकुम', 'प्रलयंकर' आदि में संगृहीत राष्ट्रीय कविताएँ।

(२) प्रबन्ध रचना— 'प्राणार्पण'।

प्रवृत्यात्मक विश्लेषण अधोलिखित रूप में है—

(१) सांस्कृतिक राष्ट्रवाद—(क) वन्दना तथा प्रशस्ति गीत; (ख) जागरण तथा अभियान गीत; (ग) अतीत गौरव; (घ) वर्तमान दुर्दशा; (ङ) वीर-पूजा; (च) भविष्य-संकेत।

(२) राजनैतिक राष्ट्रवाद—(क) राष्ट्रीय- जीवन का स्पन्दन एवं प्रतिक्रियाएँ; (ख) अहिंसक राष्ट्रवाद; (ग) बल और वलि; (घ) क्रान्तिवादिता तथा विप्लव-धारा।

सर्वप्रथम, स्फुट रचनाओं का, उपर्युक्त वर्गों के आधार पर अध्ययन करना, उचित प्रतीत होता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद—राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक पार्श्व शाश्वत एवं पुष्ट होता है। यहाँ सामयिकता को अधिक स्थान प्राप्त नहीं होता और स्थायित्व प्राप्ति के लिए कवि, इसी पक्ष का अधिक अवलम्बन ग्रहण करता है। अपने राष्ट्र के सांस्कृतिक, आत्मिक तथा ऐतिहासिक तत्वों तथा विभूति का दिग्दर्शन करना, प्रत्येक राष्ट्रीय कवि, अपना ध्येय मानता है।

वन्दना तथा प्रशस्ति गीत—'नवीन' जी के कण-कण में राष्ट्र-भक्ति तथा मातृ-भक्ति प्रीति की भावना परिप्लावित थी। उन्होंने अपनी भारत-भूमि की वन्दना तथा प्रशस्ति स्वरूप कतिपय रचनाओं की ही सृष्टि की। इन रचनाओं की अधिक संख्या उपलब्ध नहीं होती। वन्दना की अपेक्षा, कवि का ध्यान प्रशस्ति की ओर अधिक गया है। भारत-भूमि की महत्ता, ज्ञान, परम्पराएँ आदि का कवि ने मुक्तकण्ठ से वर्णन किया है। कवि के ये गीत स्थूल

१. वही, पृष्ठ १४-१५।

२. 'प्रलयंकर', राखी की सुध, ३४ वीं कविता, छन्द ५।

होने की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक प्रतीत होते हैं। 'नवीन' जी ने भौतिक या प्राकृतिक रूप-वन्दना की अपेक्षा उसके आध्यात्मिक या सांस्कृतिक मूल्यों को कहीं अधिक महत्त्व प्रदान किया है और उन्हें आँका भी है।[1]

'प्रसाद' जी के 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्र मातृगुप्त के समान 'नवीन' जी भी भारत-भूमि को ज्ञानोदय की प्रथम वाहिका मानते हैं। 'नवीन' जी ने अपनी मातृभूमि का ममत्व तथा भाव-प्रवणमय कई चित्र खींचे हैं।[2]

जागरण तथा अभियान गीत—राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवि[3] 'नवीन' जी ने असहयोग आन्दोलन के समय, अनेकानेक जागरण तथा अभियान गीतों की सृष्टि की है। उनकी देशभक्ति में भी सौन्दर्य की अनुभूति है।[4] देशभक्तिपरक इन गीतों में आन्दोलन की सहज तथा सफल प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त हुई हैं।

'नवीन' जी ने अभियान की अपेक्षा जागरण के गीत अधिक लिखे हैं। आन्दोलन के उत्थान अथवा प्रखर वर्षों में कवि-कण्ठ फूट पड़ा है और उसने नाना रूपों से भारतीय जनता को सचेत एवं जागृत किया है। इन गीतों में युग का प्रतिविम्ब अन्तर्हित है। 'नवीन' जी के अभियान गीतों में 'चलो वीर पटुआखाली' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह गान्धी-युग के आरम्भिक-काल की श्रेष्ठ कृति है। इस कविता को पटुआखाली सत्याग्रह ने जन्म दिया। वे साम्प्रदायिकता के बाढ़ के दिन थे। १६२० के खिलाफत असहयोग आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो हार्दिक प्रदर्शन हुआ था, अंग्रेज अब उसका पूरा बदला ले रहे थे। गाय की खाईं हिन्दू-मुसलमानों के बीच में थी ही, अब मस्जिदों के सामने बाजा न बजाये जाने की एक ऊँची दीवार भी खड़ी कर दी गई थी और इस दीवार का पोषण अंग्रेज राजनीत ने इस ढंग से किया था कि मुसलमान खूँखार हो उठे थे और हिन्दू असहाय। इस असहायता पर पहली चोट बंगाल के पटुआखाली नगर में हुई। वहाँ सप्ताह में एक दिन निश्चित किया गया कि उस दिन कुछ लोग बाजा बजाते हुए मस्जिद के सामने से निकलेंगे; भले ही मुसलमान उन्हें मार डालें और भले ही पुलिस उन्हें गिरफ़्तार कर ले। इस सत्याग्रह को देश भर के हिन्दुओं का समर्थन मिला और कुछ दिन बाद बंगाल से बाहर के क्षेत्रों से भी सत्याग्रही स्वयं-सेवकों की माँग की गई।[5] इन्हीं परिस्थितियों में इस कविता ने जन्म लिया और यह लम्बी

---

१. 'रामराज्य', १ जून, १६४५, पृष्ठ ६, छन्द ५।

२. 'विक्रम', दिसम्बर, १६४४, छन्द ४, पृष्ठ २।

३. श्री हंसराज अग्रवाल—हिन्दी साहित्य की परम्परा, पृष्ठ ५७०।

४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डॉ० रामकुमार वर्मा—द्वारा सम्पादित, 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३६२।

५. श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—दैनिक 'नवभारत टाइम्स', 'नवीन' जी फैजाबाद जेल में, २६ जून, १६६०, पृष्ठ ६।

तथा शोलों से भरी रचना,[1] 'प्रताप' में प्रकाशित हुई थी। डॉ० रामग्रवध द्विवेदी ने 'नवीन' जी की कविताओं में गुण तथा उष्णता के तत्वों को निरूपित किया है।[2]

कवि के जागरण गीतों में चेतना तथा स्फूर्ति का जलनद उमड़ रहा है। कवि ने राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन में निराशा को स्थान नहीं दिया।[3]

राष्ट्रीय-कविताओं के क्षेत्र में, सन् १९४२ की क्रान्ति के आवर्त में कवि अधिक सचेष्ट हुआ। गान्धी जी की वाणी चहुँ ओर गूँज उठी—

जागो, जागो, अमृत सुवन तुम, जागो, जागो, सोने वालो,
जागो तुम सिंहों के छौनों, जागो, सब कुछ खोने वालो,
जागो, देशकाल-निर्माता, जागो तुम निज भाग्य विधाता,
जागो, इतिहास के ज्ञाता, जागो तत्वज्ञान के दाता।[4]

'नवीन' जी के 'सिंहों के छौनों' के समान, 'निराला' जी ने भी अपने प्रख्यात जागरण-गीत 'जागो फिर एक बार' में भारतवासियों को सिंह निरूपित किया है—

सिंहों की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रही वह रहते प्राण ?
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किन्तु क्या ?

---

१. यह कविता अभी तक असंग्रहीत है।

२. 'Pandit Makhanlal Chaturvedi, Bhartiya atma and Pandit Balkrishina Sharma have written Patriotic verses of great merit. They were intimately associated with our fight for liberation and their verse reflect their love for their country and the excitement of the struggle. Some of the Poems of Pandit Makhanlal have a devotional quality and the love. Lyrics of Pandit Balkrishna Sharma are full of warmth, with occasional mystic overtones." Or Ramawadh dwivedy, 'Hindi literature, age of Chhayavad, page 204-205.

३. 'प्रलयंकर', ४० वीं कविता, छन्द ५।

४. 'विक्रम', मेरे जन-नायक की वाणी, दिसम्बर, १९४४, छन्द १, पृष्ठ १।

योग्य जन जीता है,
परिचय की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार-बार—जागो फिर एक बार ![1]

क्रान्ति के संवेदनशील क्षणों में, कवि ने जागृति के भैरव स्वर सुनाये। शोषण की दाढ़ें तोड़ने की बात कही। शृंखलाएँ तोड़ने को उद्यत किया और जनता-जनार्दन को सुषुप्तावस्था से जागृतावस्था में ला खड़ा कर दिया।[2]

कवि ने युवकों के योवन कों ललकारा। उन्हें संघर्ष में जूझने के लिए प्रेरित किया।[3] कवि की वाणी संजीवनी बूटी के समान कार्य करती है। वह अमृत का संचार करती है। गत-आश होने की आवश्यकता नहीं है। शक्तिशाली तथा सक्रिय बनने की आवश्यकता है—

जब करोगे क्रोध तुम, तब आयगा भूडोल,
काँप उठेंगे सभी भूगोल और खगोल।[4]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अपनी 'जवानी' शीर्षक कविता में भूगोल तथा भूडोल की उन्मेषक वृत्तियाँ अभिव्यक्त की हैं—

टूटता-जुड़ता समय 'भूगोल' आया,
गोद में मणियाँ समेट, खगोल आया,
क्या जले बारूद ? हिम के प्राण पाये !
क्या मिला ? जो प्रलय के सपने न आये।[5]

हमारे राष्ट्रीय संग्राम के सैनिकों तथा क्रान्तिकारियों को भी कवि ने अपनी वन्दना अर्पित की है। सैनिक ही भैरव-छन्दों का गायक होता है और देश में नव-ज्वार का आदि-स्रोत।[6]

उनके गीतों में ओज की प्रधानता है और सहज भावाभिव्यक्ति को अपनी प्रश्रय-स्थली मिली है। श्री सुधाकर पाण्डेय ने लिखा है कि "उन्होंने अपने मन की अनुभूतियों को उसी रूप में चित्रित किया है जिस रूप में अनुभूतियाँ उत्पन्न हुई हैं। वह अपने कवि के प्रति ईमानदार रहे हैं। उनकी रचनाओं में एक प्रकार का आक्रोश वेग, गति, झंकार है किन्तु साथ ही टूटे हृदय के तार, जीवन की अस्त-व्यस्तता सभी कुछ एक स्थान पर एकत्र हो गए हैं।[7]

समसामयिकता, क्रान्तिमूलक भावनाएँ तथा प्रखरता के आधार पर ही नहीं, प्रत्युत

---

१. 'अपरा', 'जागो फिर एक बार', पृष्ठ १० ।
२. 'प्रलयंकर', सुनो सुनो ओ सोने वालो, ४५ वीं कविता, छन्द ८ ।
३. वही, ओ तुम मेरे प्यारे जवान, ४७ वीं कविता, छन्द १ ।
४. 'प्रलयंकर', अरे तुम हो काल के भी काल, ४८ वीं कविता ।
५. 'हिमकिरीटिनी', जवानी, पृष्ठ ११५ ।
६. 'प्रलयंकर', सैनिक, बोल ! ५५ वीं कविता, छन्द ६ ।
७. श्री सुधाकर पाण्डेय—'हिन्दी साहित्य और साहित्यकार', पृष्ठ २०९ ।

विगत भारत के वैभव तथा विशिष्टताओं का अनावरण करके भी, कवि ने जागरण का विहान बिखेरा है—[1]

अतीत गौरव—प्राचीन गौरव तथा संस्कृति, चिर प्रेरणास्पद तथा स्मरणीय होती है।[2] अतीत सन्देश-प्रदाता है।[3] हमारे हृदयों को उज्ज्वल बनाता है।[4] हमारे विभिन्न सांस्कृतिक आन्दोलनों के, काव्य के इस पक्ष को उत्तेजना तथा सामग्री प्रदान की। 'नवीन' जी ने भी प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति का अच्छा अध्ययन किया था। गीता तो उनके जिह्वा पर ही थी। गीता ने उनके कर्मयोगी रूप को बनाने में पर्याप्त योग-दान दिया। 'नवीन' के राजनैतिक गुरु तिलक ने भी, प्रत्येक बन्धन को तोड़कर, श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसरण का, निर्देश दिया था।[5] ऐसे उज्ज्वल अतीत का विस्मरण 'नवीन' जी नहीं कर सकते थे[6]—हमारी वृद्ध भारत-माता के महान् पुत्रों की भी याद करना, वे भूल नहीं गये हैं।

वर्तमान दुर्दशा—'अतीत गौरव' के साथ ही साथ, 'नवीन जी ने वर्तमान दशा का भी अनावरण किया। अतीत जहाँ मार्ग-दर्शन तथा ज्योति लहर प्रदान करता है; वहाँ वर्तमान चिन्ता, आक्रोश तथा निदान की ओर उन्मुख करता है।

कवि की वर्तमान दशा सम्बन्धी रचनाओं में वेग तथा तेजस्विता के दर्शन होते हैं। उसका ध्यान, हमारी राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की ओर भी गया। वैभव तथा दर्पपूर्ण विगत भारत की वर्तमान दुर्गति ने कवि के मानस को आन्दोलित एवं उद्वेलित कर दिया। इन कविताओं ने छायावाद के युग में नूतन भाव-धारा का प्रणयन किया। डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि "श्याम नारायण पाण्डेय, आनन्द मिश्र, दिनकर और 'नवीन' जी ने खड़ी बोली के 'कोमल-कोमल' युग में उग्र भावनाओं का वर्णन करके, काव्य के वैविध्य को सुरक्षित रखा है। यह दुरुह न होने के कारण और

---

१. 'प्रलयंकर', मेरे अतीत की ज्योति लहर, ४६वीं कविता, छन्द ४।

२. "जिन प्राचीन संस्कृतियों के बुझते हुए अंगारों से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हें हमें सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिये। नहीं तो हम जीवन से अखण्डनीय सत्य को नहीं समझ सकेंगे।" —श्री सुमित्रानन्दन पन्त, 'ज्योत्सना', पृष्ठ ७१।

३. 'सन्देश आज लाया अतीत, विस्मृत जीवन का विजय-गीत'
—श्री आरसीप्रसाद सिंह, 'संचयिता', पृष्ठ ६०

४. अरे भारतभू के इतिहास, अचल विद्युत रेख अनुरूप।
दिखा गौरव प्राचीन अनूप, हृदय नव उज्ज्वल करे सहास।
—श्री रामकुमार वर्मा, 'चित्तौड़ की चिता', प्रस्तावना, पृष्ठ १

५. "अपने को कुएँ के मेढ़क की भाँति बन्दी न बना दो। प्रत्येक बन्ध तोड़कर श्रीमद्भगवद्गीता का अनुसरण करो। शिवाजी ने अफजल खाँ को मारकर कोई पाप नहीं किया। वे अपनी भूमि से शत्रुओं को निकाल देना चाहते थे।"—(तिलक)।—Contemporary thought of India, page 137.

६. 'रामराज्य', मेरे अतीत की ज्योति लहर, पत्रकार-अंक, पृष्ठ ६।

'महाभारत', 'आल्हा' पढ़कर उत्साह ग्रहण करने वाली सामान्य जनता में ही नहीं, शिक्षित जनता में भी प्रचलित हुआ। इस काव्य से विदेशी साम्राज्यवाद से लड़ने में भी मदद मिली।"[१]

सर्वप्रथम हमारे कवि का ध्यान, भारतीय पराधीनता पर गया। उसको विनष्ट करने की प्रबल भावना, उसके मानस तथा काव्य में हुंकार भरने लगी। उसने नौकरशाही को ललकारते हुए नई कविताएँ लिखीं।[२]

राजनीति के अतिरिक्त, 'नवीन' जी ने अपनी अनुभवी आँखें भारतीय जन-समाज की ओर उन्मुख की। कृषक, श्रमिक, भिक्षुक, नारी आदि सामाजिक सदस्यों को कवि ने अपने प्रखर स्वर में आलिंगित किया। कवि की दृष्टि समाज के त्रस्त एवं पददलित अंगों की ओर भी गई और उसने अपने सहज स्नेह तथा उदार मन से उन्हें अंगीकृत किया।

कवि ने हमारे समाज के प्रमुख किन्तु उपेक्षित अंग--कृषक एवं श्रमजीवी—में जागृति की चेतना भरने का प्रयास किया।[3]

कवि ने अपने व्यक्तिगत-सामाजिक अनुभवों से ही वर्तमान दुर्दशा के सूत्र एकत्रित किये और उन्हें काव्य में उड़ेल दिया। पत्रकार 'नवीन' के तीन अग्रलेखों ने, कृषकों पर हुए अत्याचारों के सम्बन्ध में, उत्तरप्रदेश में आग लगा दी थी। उसका कवि भी यदि कृषक तथा श्रमिक वर्ग के हितार्थ विप्लव के गीत गाये तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि "उनकी सुजनता, सुहृदयता और वीरता के साथ कवि की आदर्शवादिता और भावुकता का चौचक्क मेल बैठ गया और एक विचित्र व्यक्तित्व उभर आया। यह काव्यगंगा हृदय की दिव्य-धारा थी, यह अमृत की प्रेरणा थी। मर्त्य सगर पुत्रों का उद्धार करने वाला स्वर्गीय प्रवाह था। बुद्धि का ठण्डा कौतूहल 'नवीन' जी के काव्य का विषय न था। उथल-पुथल या क्रान्ति के गीतों से उनका काव्य जन्मा और उसी मार्ग पर वह बढ़ा।[४]

सामाजिक नेतृत्व एवं प्रेरणा ने ही 'नवीन' जी से 'नंगे-भूखों का यह गाना' शीर्षक श्रमजीवी विषयक रचना की सर्जना कराई।[५] कवि ने मानव पक्ष को प्रधानता देते हुए लिखा—

---

१. डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—'आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा', पृष्ठ ३३५।

२. 'कुंकुम', सावधान, पृष्ठ ३-४।

३. 'प्रलयंकर', ओ मजदूर, किसान उठो, ५६ वीं कविता, छन्द ६।

४. 'विशाल भारत', जून, १९६०, पृष्ठ ४७६।

५. "जैसे मेरी कविता 'नंगे भूखों का यह गाना' है। १९३६-३७ में सूतीमिल के ५० हजार मजदूरों ने ५२ दिन की हड़ताल की थी। मैं उसका नेता था। उस समय २५-३० हजार व्यक्तियों को कानपुर की जनता से माँगकर खाना खिलाया। सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्यप्रसाद अवस्थी को हमें कुचल देने की धमकी दी थी। लेकिन हम उसमें विजयी हुए। विजयी होने पर जन-बल का गुणगान करने वाली एक भावना जागृत हुई और उसके फलस्वरूप उक्त कविता लिखी गई।"—('नवीन')—मैं इनसे मिला, दूसरी किस्त, पृष्ठ ५४।

सुन लो गर तुममें हिम्मत है,
नंगे भूखों का यह गाना,
अब तक के रोने वालों का,
यह विकट तराना मस्ताना।
जिनको तुम क्रीड़ा समझे थे,
वे तो यारों, निकले मानव,
जो रेंगा करते थे अब तक,
वे आज कर उठे हैं ताण्डव।[1]

हमारे वास्तविक धन-प्रदाता ही निर्धन होकर, येन-केन प्रकारेण जीवन व्यातीत कर रहे हैं—

जिनके हाथों में हल बक्खर,
जिनके हाड़ों में धन है।
जिनके हाथों में हंसिया है,
वे भूखे हैं निर्धन हैं।[2]

मेक्सिम गोर्की के मतानुसार, लेखक सर्वप्रथम अपने युग की उपज, उसकी घटनाओं-दुर्घटनाओं का प्रत्यक्ष द्रष्टा अथवा उनमें सक्रिय भाग लेनेवाला है।[3] 'नवीन' जी का काव्य भी, युग की धड़कन है। अपनी पूर्ववर्त्ती रचना के सदृश्य, 'जूठे पत्ते' शीर्षक अपनी प्रख्यात कविता की रचना भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हुई।[4] प्रत्यक्ष अनुभूति ने कवि को झकझोर दिया। समाज के त्रस्त-पात्र भिक्षुक ने कवि-हृदय में काव्य-रस उत्पन्न कर दिया जो कि विप्लव के माध्यम से गड़गड़ा उठा--

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे ?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आँखों में खारे फ़व्वारे ?
देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि तुम नहीं हो विप्लवकारी ?
अब तो तुम पत्थर हो, या हो, महाभयंकर अत्याचारी॥[5]

श्री 'हृदय' ने इस कविता का उत्तर देते हुए लिखा था—

रोटी हो, पानी हो, घर हो, स्वच्छ पवन, निर्मल प्रकाश हो।
नर के साधारण स्वत्वों पर तो नर का निर्भय निकास हो,

---

१. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३६८।

२. 'विशाल भारत', कस्त्वं कोऽहम्', अक्तूबर, १९३७।

३. Edith Bone—'Literature and Life' : A selection from the writings of Maxim Gorki, page 99.

४. "इसी प्रकार 'जूठे पत्ते' शीर्षक कविता है। हम लखनऊ किसी काम से गये थे। वहाँ हमने अमीनाबाद में खाना खरीदा। वहीं एक आदमी खाना खा रहा था। उसने खाकर पत्तल फेंकी ही थी कि एक नर नामधारी कंकालवत् पुरुष ने उसे उठाकर चाटा। बस 'जूठे पत्ते' कविता निकल पड़ी।"—(नवीन)—'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, पृष्ठ ५४।

५. 'विक्रम', अप्रैल १९४२, छन्द १, पृष्ठ १७।

इसके लिए लड़ो तुम, भिखमंगे बनकर न पत्तल चाटो,
प्रलय मचा दो तुम जब तक इन क्रूर अभावों का न नाश हो ।[१]

दूसरी ओर, 'निराला' का भिक्षुक शान्त तथा संयत चित्र प्रस्तुत करता है—

भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता—भाग्य विधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते ।
चाट रहे हैं जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।[२]

'नवीन' जी की कविता के वेग तथा प्रखरता को देखकर ही, आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने लिखा था कि "बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भाव-कवि हैं । बरसाती नदी की वेगवती धारा के समान सदैव असाधारण गति से ही कूलों-करोरा को ढहाते हुए चले जाते हैं, जिधर प्रवाह ले गया उधर ही चल दिये । इनकी कविता अक्षय यौवना है, वह एक अल्हड़ ग्रामीण बालिका की भाँति इठलाती, तुतलाती, शब्दों को तोड़ मरोड़कर मनमाने ढंग पर उच्चारण करती, देहाती और सुने-सुनाए विदेशी शब्दों को भी कभी-कभी गुनगुनाती, गाँव-गाँव, खेत-खेत, समथल और ऊबड़-खाबड़ वन-पर्वत, नदी-नालों को पार करती घूमती फिरती है । बहुधा उर्दू गज़ल स्पिरिट उसमें प्रकट हो जाती है, भावों के संघर्ष में वह आप ही अपने से उलझती हुई अपने से ही झगड़ती हुई कर्तव्य और दिल ले, सम्मान के झपेटों में अटकती, श्रेय और प्रेम की उलझनों में उलझती, हदय की आसक्ति के कारण हृदय ही को खोटी खरी सुनाती नजर पड़ती है ।"[३]

कवि की दृष्टि भारत के भावी नागरिक बालकों की ओर भी गई । इन सलौने नागरिकों की नारकीय-दुनिया के भी चित्र, कवि ने हमें प्रदान किये—

जिनने जग को रस-दान दिया, वे नारी के लोचन कण हैं,
जो कायर नारी को कोसे, वे पामर हैं, दुर्बल मन हैं ![४]

वीर-पूजा—'नवीन' जी के कृतित्व तथा व्यक्तित्व का एक मार्मिक अंग, श्रद्धा भी रहा है । कवि ने इस पावन भावना का पर्याप्त विस्तार किया और अन्य राष्ट्रीय कवियों के सदृश्य, अपनी वीर-पूजा की वृत्ति का प्रस्फुटन किया । 'नवीन' जी की वीर-प्रशस्तियों में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक, तीनों ही क्षेत्र के व्यक्ति समाविष्ट हो जाते हैं । कवि के जीवन के निर्माण में इन तत्वों का भी प्रमुख हाथ रहा है ।

'नवीन' जी प्रारम्भ में आर्य-समाज से भी प्रभावित थे । इसके लक्षण उनके काव्य में भी देखे जा सकते हैं । आर्य-समाज के महान् प्रवर्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की ।[५]

१. वही, अग्निकण, अप्रैल, १९४२, छन्द ६२, पृष्ठ २१ ।
२. 'अपरा', भिक्षुक, पृष्ठ ५० ।
३. आचार्य चतुरसेन शास्त्री—'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ६६८ ।
४. 'प्रलयंकर', नरक के कीड़े, ५३ वीं कविता, छन्द ८ ।
५. 'कुंकुम', ऋषि दयानन्द की पुण्य-स्मृति में, छन्द २, पृष्ठ ४१ ।

'बड़े दादा' परम पुजाई महर्षि श्री द्विजेन्द्र ठाकुर की त्रिजत्व प्राप्ति के समय[१], कवि ने अपनी भावांजलि प्रस्तुत की थी।[२]

गणेश जी के प्रति अपनी वन्दना तथा 'वीर-पूजा की भावना' कवि के 'प्राणार्पण' काव्य में घनीभूत हो उठी है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है कि "युग का गायक, युग के परिवर्तनों से आँखें मूँदकर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नहीं रख सकता।"[३] तिलक युग की उष्णता तथा दर्प को अपने रक्त में सम्मिश्रित कर, 'नवीन' जी ने गान्धी-युग के सार को अपने हृदय में स्थान दिया। 'नवीन' जी गान्धी तथा गान्धी-युग की भावमय प्रतिमूर्ति हैं। उन्होंने तिलक की तेजस्विता तथा बापू की विह्वलता, दोनों को ही अपने में आत्मसात् किया था और कभी एक पक्ष प्रबल हो पड़ता था और कभी दूसरा। डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि "नई कविता पर महात्मा गान्धी और काँग्रेस के आदर्शों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार की कविता रचने वालों में श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री बालकृष्ण 'नवीन', श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री श्री सोहनलाल द्विवेदी आदि हैं।"[४] 'नवीन' जी ने अपने यौवन के प्रारम्भ में लोकमान्य तिलक को अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की[५] और उन्मेष तथा चरमोत्कर्ष की स्थिति में बापू को अपनी भावांजलियाँ समर्पित की। कवि ने गान्धी जी तथा उनकी विचारधारा से प्रसूत अनेक कविताओं का सृजन किया। श्री सिंह ने लिखा है कि "सन् १९४०-१९४२ के आन्दोलन-काल में जिस स्फूर्ति के साथ उन्होंने गान्धीवाद के प्रति अपनी विश्वास धार उड़ेली, वह आज भी रोमांचित कर देती है। उन्हें देखकर ही यह विश्वास करना पड़ता है कि मनुष्य की देह भले ही पाँच तत्वों से बनी हो, लेकिन मनुष्य को निर्मित करने वाले तत्व कुछ और ही होते हैं। 'नवीन' जी में यह 'कुछ और' सम्भवतः सर्वप्रमुख तत्व था जो उन्हें बलिदान के लिये पागल बनाता था और सब कुछ सौंप देने की आतुरता उभारता था।"[६]

श्री गान्धी जी का ऋण स्वीकार करते हुए, 'नवीन' जी ने स्वतः लिखा है कि "मैं उन लक्षावधि नारी-नरों में एक हूँ जिनका जीवन गान्धी रूपी आकाश के तले पनपा, गान्धी रूपी सूर्य के ताप से उद्ग्रीवी हुआ, गान्धी रूपी धरित्री के ऊपर टिका और गान्धी रूपी मेघधारा से सरस हुआ।[७] गान्धीजी का महत्वांकन करते हुए, उन्होंने लिखा है कि "गान्धी निश्चय ही

---

१. 'कुंकुम' ऋषि दयानन्द की पुण्य स्मृति में, छन्द २, पृष्ठ ५६।

२. 'वीणा', ओ तुम प्राणों के बलिदानी, जुलाई, १९४२, छन्द १, पृष्ठ ७७३।

३. श्री माखनलाल चतुर्वेदी—'हिम किरीटिनी', आत्म-निवेदन, पृष्ठ २।

४. डॉ० इन्द्रनाथ मदान-द्वारा सम्पादित, 'काव्यसरोवर', आधुनिक काव्य (समालोचना), पृष्ठ ९।

५. (क) 'मेरा कहाँ', साप्ताहिक 'प्रताप', तिलक स्मृति-अंक, ९ अगस्त, १९२०, पृष्ठ ७; (ख) 'दीप निर्वाण', साप्ताहिक 'प्रताप', ६ सितम्बर, १९२०, पृष्ठ ८।

६. श्री ठाकुरप्रसाद सिंह—साप्ताहिक 'ग्राम्या', क्योंकि तुम जो कह गये हो, तुम हरोगे रात का भय, २४ जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३।

७. 'महात्मा गान्धी', गान्धी-दर्शन (भूमिका), कालम १, पृष्ठ १।

भगवत् अंशावतार था। इहलौकिक जीवन-चर्या को पारलौकिक कल्याण की साधना बनाना, उसका पुरुषार्थ था और परम कल्याण साधना का अर्थ ही गान्धी के लिए इह जीवन को उच्चतर, सुसंस्कृत, निर्वैर, पर दुःख कातर, करुण और स्नेहमय बनाना था।"[1]

चिन्तक 'नवीन' के साथ ही साथ, कवि 'नवीन' ने गान्धी जी को कई दृष्टिकोण से देखा और अपनी प्रतिक्रिया तथा भावना को सरस अभिव्यक्ति प्रदान की। काव्य-विषय के अनुकूल, कवि ने गम्भीर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, लिखा था—

अनय विजय हे अभय-निलय हे, सदन-हृदय पाप क्षय हे !
हे कृतान्त से कालकूट तुम, जीवन दायक-मधुपय हे ![2]

तिलक, गान्धी तथा नेहरू—इन तीनों के प्रति 'नवीन' जी के हृदय में श्रद्धा भाव थे। इन तीनों के युगों में कवि ने अपना राजनैतिक तथा साहित्यिक जीवन व्यतीत किया। कवि के राजनैतिक जीवन की आँखें तिलक युग में खुली, गान्धी-युग में उसमें यौवन तथा प्रगल्भता ने अपनी झाँकी दिखाई तथा नेहरू-युग में उसने अपने आँखें बन्द कर ली। तिलक तथा गान्धी के समान, 'नवीन' जी ने नेहरू जी तथा उनके परिवार के प्रति भी, अपनी सद्भावना की अभिव्यक्ति की है। वीर-प्रशस्ति में नेहरू की भी छवि आ विराजी है। कवि ने अपनी पूर्ण आभा तथा ओज के साथ श्री जवाहरलाल नेहरू पर अपनी पुष्पांजलि अर्पित की थी—

शोलों के फूलों से सज्जित सुख-शय्या हो जाने दे,
भर ले अंगारे करवट में, हूक-लूक उठ आने दे;
अरे, अकर्मण्यता शिथिलता भस्मसात् हो जाने दे;
अग्निचिता में विजित भाव को तू अब तो सो जाने दे।[3]

'नवीन' जी की ओजस्विता तथा स्वच्छन्दता को देखते हुए, श्री रामबहोरी शुक्ल व डॉ० भगीरथ मिश्र ने लिखा है कि "काव्य के क्षेत्र में 'नवीन' जी स्वच्छन्दतावादी हैं—भाषा, छन्द, भाव-सब में ये स्वच्छन्दता के प्रेमी हैं। इनकी रचनाओं में एक प्रकृत माधुर्य विद्यमान रहता है। रचनाएँ इनकी उद्गार हैं, चाहे वे दार्शनिक हों, चाहे राष्ट्रीय और चाहे शृंगारिक। इनके गीत बड़े ललित होते हैं। कुछ राष्ट्रीय गीत तो इनके अनल-गान हैं।[4] कहना नहीं होगा कि श्री जवाहरलाल जी पर चढ़ाई कवि की पुष्पांजलि वस्तुतः अनल-गान ही है। वह शोलों तथा भावोद्दीप्ति से आप्लावित है।

अपने 'जवाहर भाई' को शर्मा जी ने मुक्तक का विषय न मानकर, प्रबन्ध-काव्य का उपयुक्त विषय माना है।[5] नेहरू जी की पत्नी तथा 'नवीन' जी की 'कमला भाभी' को भी काव्य-

---

१. 'महात्मा गान्धी', गान्धी-दर्शन (भूमिका), कालम १ व २, पृष्ठ १।

२. 'गान्धी-अभिनन्दन-ग्रन्थ', हे क्षुरस्य धारा पथ गामी, छन्द ३, पृष्ठ २१।

३. 'प्रलयंकर', तू विद्रोह रूप, प्रलयंकर, ५ वीं कविता, छन्द ५।

४. श्री रामबहोरी लाल शुक्ल व डॉ० भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खण्ड, छायावादी युग, पृष्ठ २२०।

५. "लेकिन जवाहरलाल जी मुक्तक-काव्य के विषय हैं या नहीं, इस प्रश्न का निश्चित उत्तर मैं अभी तक नहीं दे सका हूँ। जवाहरलाल एक प्रबन्ध-काव्य के नायक के

श्रद्धांजलि का विषय बनाया गया है। अपनी 'कमला भाभी' के विषय में गद्यकार, 'नवीन' ने, अपनी काव्यात्मक शैली में लिखा था कि "तुमने हमारे प्रान्त को धीर, आदर्श सेवा का जो वरदान दिया है; वह तुम्हारे ही अनुरूप है। मोतीलाल नेहरू की पुत्र-वधू और जवाहरलाल की सहधर्मिणी हे देवि ! तुम महान् हो। त्याग में तुम्हारा समकक्ष तो हमें नजर नहीं आता। तुम वेदनामयी, सेवामयी, तपमयी, कल्याणमयी, मूर्तिमयी सुघड़ता हो। हमारे सूबे को तुम पर नाज है। तुम जवाहरलाल की शक्ति हो।"[1] कविवर 'नवीन' जी ने भी 'कमला नेहरू की स्मृति में' अपनी अश्रु-अंजलि समर्पित की है—

> आत्म-आहुति के ज्वलित ये खेल तुमने खूब खेले,
> हन्त ! शुचि आदर्श के हित कौन दुख तुमने न झेले ?[2]

क्रान्ति-काल में कवि ने जिस प्रकार श्री नेहरू तथा श्रीमती कमला नेहरू को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी; उसी प्रकार, भाई रणजीत सीताराम पण्डित के महाप्रयाण का समाचार पाकर,[3] सन् १९४४ में श्री पण्डित को भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी।[4]

वीर-पूजा तथा प्रशस्ति में कवि ने अपने भौतिक तथा वैचारिक-जीवन के सूत्रों से सम्बन्द्ध व्यक्तियों को अपनी सद्भावना प्रदान की है। इन व्यक्तियों के अतिरिक्त, 'नवीन' जी के पथ के साथी, अज्ञात नाम शहीदों, क्रान्तिकारियों और राष्ट्र-भक्तों के चरणों में भी, उन्होंने प्रणतिपूर्वक अपना अभिवादन प्रस्तुत किया है—

> थे तुम्ही न, जिनने सर्वप्रथम, विद्रोहों का सन्देश सुना,
> थे तुम्ही न, जिनने जीवन में, कंटकित मार्ग का क्लेश चुना।[5]

'नवीन' जी की वीर-प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि कवि को राष्ट्रीयता तथा व्यक्तित्व में विनय, कृतज्ञता, आभार-वृत्ति तथा सांस्कृतिक मूल्यों का उच्चतर सम्मिलन था।

भविष्य-संकेत—'नवीन' जी में भविष्य विषयक संकेत भी, क्रान्ति-काल के काव्य में, प्राप्त होते हैं। वे भविष्य के प्रति सजग एवं सचेत थे। आशावादी होने के कारण, भविष्य में उनकी दृढ़ आस्था थी और यह विह्वल विश्वास था कि हमारे सामूहिक प्रयत्नों से हमारा देश स्वतन्त्र होगा।

'नवीन' जी ध्येय की अपेक्षा कर्म में अधिक विश्वास करते थे। विजय-वरण करने के पूर्व हमें साहसी होना चाहिये। जीवन की बलिवेदी पर चढ़ाने पर ही ध्येय प्राप्त होता है। कायरता को हमारे राष्ट्रीय-रूप में स्थान नहीं मिलना चाहिये।

रूप में कविता का विषय हो सकते हैं, परन्तु वे दोहे ऐसे के विषय नहीं हो सकते।" (नवीन)—डॉ० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित की पुस्तक 'श्री जवाहर दोहावली' की भूमिका, पृष्ठ २-३।

१. 'पण्डित नेहरू' कमला भाभी, पृष्ठ ३०।
२. 'क्वासि', कमला नेहरू की स्मृति में, छन्द २, पृष्ठ ९८।
३. 'अपलक', पृष्ठ ६५।
४. 'अपलक', उड़ गए तुम निमिष भर में, छन्द २, पृष्ठ ६४।
५. 'प्रलयंकर', मेरे साथी अज्ञात नाम, ५२ वीं कविता, छन्द ३।

वास्तव में, 'चरैवेति-चरैवेति' का सिद्धान्त ही, भविष्य की लक्ष्य-लहर को अपनी ओर आकृष्ट करने में, सामर्थ्य तथा साहस उत्पन्न करता है—

मास, वर्ष की गिनती क्या हो वहाँ, जहाँ मन्वन्तर जूझें ?
युग-परिवर्तन करने वाले जीवन-वर्षों को क्यों बूझें ?
हम विद्रोही !! कहो, हमें क्यों अपने मग के कण्टक सूझें ?[१]

और कवि के सांस्कृतिक सूत्रधार विनोबा जी के प्रिय गीत की पंक्ति के अनुसार, 'चलता फिरता मुसाफिर ही पाता है मुकाम रे !' क्रियाशीलता, गतिशीलता तथा तप से 'नवीन' का 'पराधीन भारत', 'स्वाधीन भारत' में परिवर्तित हो गया। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि "बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का सम्बन्ध देश के असहयोग आन्दोलन से रहने के कारण, उनकी कविताओं में जीवन की सफलताओं और विफलताओं का घोर क्रन्दन और विप्लव हैं।"[२]

राजनैतिक राष्ट्रवाद—राजनैतिक राष्ट्रवाद में समसामायिक तथा तात्कालिक वृत्तियों, घटनाओं समस्याओं एवं प्रश्नों का ही प्रभाव रहा करता है। राजनति की उथल-पुथल ही मानस को उद्वेलित एवं आन्दोलित करती है। युग का इतिवृत राजनैतिक राष्ट्रवाद सम्बन्धी रचनाओं में सहज ही प्राप्त होता है।

राजनैतिक राष्ट्रवाद में राष्ट्रीय जीवन का स्पन्दन एवं प्रतिक्रियाएँ, अहिंसक राष्ट्रवाद, बल तथा बलि, क्रान्तिवादिता, विप्लव आदि के पक्षों पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। राष्ट्रीय-जीवन का स्पन्दन एवं प्रतिक्रियाएँ—कविताओं में राष्ट्रीय-जीवन का स्पन्दन अपने स्पष्टतम रूप में सुनाई पड़ता है। इसके पीछे उनकी प्रत्यक्ष, यथार्थ एवं व्यक्तिगत अनुभूतियाँ कार्यशील थी। राष्ट्रीय-आन्दोलन के सम्बद्ध युग को, कवि की वाणी से, निःसृत देखा जा सकता है। डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा ने इस पर फ्रान्सीसी क्रान्ति के प्रभाव को निरूपित किया है।[३]

पराधीनता एवं दमन के विरुद्ध संघर्ष में, कवि की वाणी का स्वर अत्यन्त प्रखर है। उस युग में भारतमाता की दासत्व की श्रृंखलाओं को तोड़ना ही एक मात्र लक्ष्य था। परतन्त्र भारत को पिञ्जर बद्ध सिंह के रूप में प्रस्तुत करके, 'नवीन' जी ने प्राचीन गौरव एवं वर्तमान दुर्गति, दोनों ही चित्रों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है—

१. 'रश्मिरेखा', हिय में सदा चाँदनी छाई, छन्द ५, पृष्ठ १६।

२. 'डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आधुनिक काल, पृष्ठ २०८।

३. 'इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रान्सीसी क्रान्ति के आदेशों का दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य और विशेषकर शेली के काव्य के माध्यम से आया है। सच तो यह है कि हम भारतवासियों ने अपने स्वतन्त्रता के युद्ध में फ्रान्सीसी क्रान्ति के मूलभूत आदर्शों से निरन्तर प्रेरणा ली है। हमारे राष्ट्रीय कवियों, उदाहरणार्थ—माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान आदि पर भी किसी न किसी रूप में फ्रान्सीसी क्रान्ति का प्रभाव पड़ा है।"—डॉ० रवीन्द्र-सहाय वर्मा, 'हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव', छायावाद-युग, पृष्ठ १७६।

मुझे याद है, वे दिन, जब मैं बना चक्रवर्ती था,
देख काँपते थे सब, ऐसा बना एक छत्री था;
अब पिंजड़े में आन पड़ा हूँ, ऐसा दिन का फेर,
कल के लौंडे मुँह बाए कहते हैं—'दे ठेक घेरा'
कभी कभी आता है जी में एक दहाड़ लगा दूँ।

डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "उनका उत्साह और उनकी उत्क्रान्ति सहज अनुभूत और जीवन्त थी। भारत के युग-जीवन में प्रवाहित विद्युत्धारा का उनको ज्वलन्त अनुभव था। अतः चाहे वे गान्धी का प्रशस्ति-गायन करें या उनकी पराजय-नीति के विरुद्ध आक्रोश की अभिव्यक्ति या उद्दाम शृंगार का उद्गीय, उनकी वाणी अनिवार्यतः प्राण-रस से अभिषिक्त रहती थी। इस प्रकार उनका काव्य सहज रसमय काव्य था—कोरा सिद्धान्तवाद नहीं।"[1]

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रत्येक उत्थान अथवा उद्दीप्ति के वर्षों में 'नवीन' का कवि बड़े पौरुष के साथ हुमक उठा है। सन् १९३० का वर्ष राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक रहा है। इस वर्ष की समाप्ति पर, ३१ दिसम्बर की मध्य रात्रि को, 'नवीन' जी ने गाजीपुर बन्दीगृह में स्वतन्त्रता के लिए की गई रावी तट की पुनीत प्रतिज्ञा, का स्मरण किया है। इस 'सुवर्ष' ने भारतीय स्वतन्त्रता के पुनीत-यज्ञ में प्रबल आहुति डाली थी —

मुझे याद है वह दिन जब तुम, आए थे हँसते मिलते,
उस निशीथ के अपरकाल में, देखा था तुमको खिलते;
शरत्कृशा रावी के तट थे, छटा तुम्हारी देखी थी।[2]

स्वतन्त्रता के इस उत्थान की झलक कवि की 'क्रान्ति'[3] एवं 'विषपान'[4] रचनाओं में मिलती है। हमारा राष्ट्रीय रथ संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर हो गया। चहुँ ओर जन जागृति परिव्याप्त थी। ऐसे ज्वारमय क्षणों में १९३१ में कवि ने क्रान्ति का आह्वान किया —

आओ क्रान्ति, बलाएँ ले लूँ,
अनाहूत आ गई भली,
वास करो मेरे घर-आँगन,
विचरो मेरी गली-गली,
सड़ी गली परिपाटी मेरी,
इसे भस्म तुम कर जाओ।[5]

---

१. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, दादा : स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १४६।

२. 'प्रलयंकर', १९३० में वर्ष की समाप्ति पर, १४ वीं कविता, छन्द २।

३. वही, विषपान, क्रान्ति, २२ वीं कविता।

४. वही, विषपान, २८ वीं कविता।

५. 'प्रलयंकर', क्रान्ति, २२ वीं, कविता, छन्द ३।

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि ''नवीन' जी की कविता में राष्ट्रवाद का क्रन्दन गहरा हो गया है और नजरुल के नाशवाद का प्राथमिक हिन्दी रूप भी हमें इन्हीं की रचना में मिलता है।''[1]

'नवीन' जी की विख्यात रचना 'पराजय गीत'[2] के रचना-काल एवं मूल ध्येय के विषय में मतैक्य नहीं है। यद्यपि यह रचना कवि की हस्तलिपि में भी उपलब्ध है; परन्तु उस पर तिथि अंकित नहीं है।[3] श्री देवीशरण रस्तोगी[4], श्री कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर',[5] श्री सूर्यनारायण व्यास[6], डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र[7], श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी[8] श्री कन्हैयालाल सहल[9] आदि ने इस गीत को सन् १९२० के सत्याग्रह के स्थगित किये जाने की प्रतिक्रिया ही माना है। श्री रुद्रनारायण शुक्ल ने इसे अनुमानतः सन् १९३०-३१ की रचना माना है।[10] डॉ० सुमन ने इसे, गान्धी इरविन ऐक्ट (१९३०) के बाद सरदार भगतसिंह तथा आन्दोलन की अन्य पराजयों से मर्माहत 'नवीन' की सजल गद्गद् अभिव्यक्ति माना है।[11] श्री दिनकर ने लिखा है कि ''सतही दृष्टि से साहित्य को देखने वाले लोग यह कह देते हैं

१. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा', छायावाद, पृष्ठ १२५।

२. 'कुंकुम', पृष्ठ ६३-६७।

३. 'प्रलयंकर', पराजय-गीत, १० वीं कविता।

४. ''सन् १९२० के सत्याग्रह के असफल हो जाने पर जो वेदना मिश्रित असन्तोष जन-मन पर छा गया था; उसका प्रतिनिधित्व उनकी 'पराजय-गीत' नामक रचना करती है।''—'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', आधुनिक काल, पृष्ठ ३२३।

५. ''जिस समय चौरी-चौरा काण्ड के पश्चात् महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया, उस समय 'नवीन' जी के भावुक हृदय को अत्यन्त धक्का लगा और आपका कवि हृदय भर उठा।''—साप्ताहिक 'आज', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९।

६. ''जिस समय राष्ट्रीयता की लहर में एक गतिरोध की परिस्थिति का अवसर आया था, तब (कानपुर काँग्रेस के समय) उनकी एक कविता (आज खड्ग की धार कुण्ठिता...) ने जो वेदना व्यक्त की है, वह अनेक हृदयों की भाषा को सफलता से व्यक्त करती है।''—दैनिक 'नई दुनिया', १६ मई, १९६०, पृष्ठ ३।

७. ''बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' विप्लव और विद्रोह के कवि हैं। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये'—यह विप्लव गायन इनकी कविताओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। १९२० के आन्दोलन की असफलता पर कवि का हृदय कितना अवसाद से भरा है।''—'सैनिक', दीपावली-विशेषांक, ७ नवम्बर, १९६१, 'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना' पृष्ठ ५३।

८. 'कल्पना', हुतात्मा, सितम्बर, १९६०, पृष्ठ २६।

९. 'हमीदिया महाविद्यालय पत्रिका', सन् १९६०, पृष्ठ २४।

१०. श्री रुद्रनारायण शुक्ल का मुझे लिखित (दिनांक ६-२-१९६२ का) पत्र।

११. डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २० मई, १९६२, पृष्ठ ९।

कि यह प्रथम विश्व युद्ध से जन्मी हुई निराशा का परिणाम था अथवा यह कि असहयोग आन्दोलन के विफल होने से देश में जो निराशा उत्पन्न हुई, उसकी अभिव्यक्ति छायावाद के रुदन-पक्ष में हुई। ये दोनों मत इसलिए खण्डित हो जाते हैं कि विश्व-युद्ध से जन्मी हुई निराशा का ज्ञान भारत को तत्क्षण नहीं, प्रत्युत् बहुत बाद को हुआ और वह भी मुख्यतः इलियट की कविताओं के द्वारा तथा असहयोग आन्दोलन की विफलता से देश में पस्ती नहीं आई थी और अगर आयी भी थी तो उसकी अभिव्यक्ति 'नवीन' जी की उस कविता में हुई जिसकी पहली पंक्ति थी, विजय पताका झुकी हुई है लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ। इस काल की राष्ट्रीय कविताओं में उमंग ही उमंग है, मस्ती या शिथिलता के भाव नहीं है।[1] डॉ० वीर भारती सिंह के मतानुसार, 'पराजय गीत' सन् १९२३ में गान्धी जी द्वारा चलाये आन्दोलन की सफलता पर लिखा गया था।[2] डॉ० मुन्शीराम शर्मा के मतानुसार, 'पराजय गीत' काँग्रेस की किसी चुनाव में, पराजय का सूचक है। 'नवीन' जी ने उस चुनाव में बड़ा कार्य किया था—दिन रात एक कर दिया था। जिस दिन काँग्रेस की पराजय घोषित हुई, उसी दिन अर्द्धरात्रि में यह गीत लिखा गया था—सन् सम्भवतः १९२९ था।[3] 'प्रताप' के विशेषांक सम्भवतः १९२९ में यह कविता निकली होगी।[4] डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है कि "सत्याग्रह संग्राम में इतनी शीघ्र सफलता नहीं मिलने वाली थी। कदाचित् स्वतन्त्रता की देवी इतने बलिदानों से संतुष्ट नहीं हुई थी। देश के नेताओं को अपनी योजना बदलनी पड़ी और काँग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन को बन्द कर दिया। आन्दोलन के बन्द होने से देश में निराशा छा गई। बहुतों ने इसे अपनी पराजय माना। वे अपने को साम्राज्यवादी शासकों द्वारा पराजित समझने लगे। बहुत से कवि इससे मर्माहत हो गये। उनके मनोभाव अभिव्यक्ति की सीमा के बाहर थे और वे मौन होकर बैठ गये। 'नवीन' के 'पराजय-गीत की'। × × × × पंक्तियों से उस समय की भावना का कुछ-कुछ संकेत मिल सकता है। × × × × काँग्रेस के मन्त्रित्व स्वीकार कर लेने से देश की निराशा बहुत कुछ हट गई। काँग्रेस के इस निर्णय से देश को कुछ शान्ति मिली। जनता के हृदय से पराजय का भाव दूर होने लगा। कवियों को देश के आशापूर्ण भविष्य पर विश्वास होने लगा। काँग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम ने दशोन्नति को प्रेरणा दी।"[5] डॉ० शुक्ल के इस विवरण तथा राजनैतिक संकेत और तृतीय उत्थान के कवियों की देश-भक्ति की भावना का चित्रण[6] होने के कारण, यह प्रतीत होता है कि इस रचना ने सन् १९३० के असहयोग आन्दोलन के स्थगित किये जाने की प्रतिक्रिया में जन्म लिया। श्री 'दिनकर' ने भी इसे 'सत्याग्रह के विफल हो जाने पर खीझ, निराशा,

---

१. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'—'संस्कृति के चार अध्याय', तीसरा अध्याय, हिन्दी साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव, पृष्ठ २७०।

२. डॉ० वीरभारतीसिंह का मुझे लिखित (दिनांक २९-८-१९६२ का) पत्र।

३. डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक ६-९-१९६२ का) पत्र।

४. डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक २२-८-१९६२ का) पत्र।

५. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्य-धारा', वर्तमान युग, पृष्ठ २६६।

६. वही, पृष्ठ २७०।

और बेचैनी' की अभिव्यक्ति माना है।[१] श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि "सन् १६२० के संग्राम में भारतीय जन शक्ति ने विदेशी पूँजीवाद से टक्कर ली और राष्ट्रीय नेतृत्व की नीति के कारण शिकस्त खाई सन् १६२० से १६३० तक हमारे राष्ट्रवाद में पराजय के स्वर आ जाते हैं। भारतीय पूँजीवाद, जो इस लड़ाई में आगे था, जनता की शक्तियों से आशंकित हो उठा था और जनता से अलग होकर उसकी लड़ाई निर्बल हो गई थी। अतएव, एक घोर निराशा, वातावरण में छा जाती है। इस निराशा की गम्भीर अभिव्यक्ति भी 'नवीन' की एक कविता में हुई है।[२] गुप्त ने अन्यत्र उस कविता को चौरी-चौरा काण्ड की पराजय की प्रतिध्वनि माना,[३] परन्तु वास्तव में डॉ० रामअवध द्विवेदी का यह मत संगत है कि स्वातन्त्र्य-संग्राम के इस बीर सेनानी के 'पराजय-गान' से भी शक्ति और पराक्रम का ही पता चलता है। कवि ने एक ऐसी सेना की हार का चित्र खींचा है जिसने डटकर वैरी का सामना किया है।[४] साथ ही, श्री गुप्त जी के प्रतिवाद में साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' की 'सम्पादकीय' में छपा था कि "लेखक (श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त) का यह कहना कि 'श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने चौरी-चौरा के बाद सत्याग्रह आन्दोलन के स्थगित किए जाने को एक राजनीतिक हार मानकर अपनी 'पराजय गीत' कविता में इस हार पर आँसू बहाये हैं 'नितान्त अशुद्ध है। निश्चय ही 'नवीन' जी की यह रचना चौरी-चौरा की दुर्घटना के अनेक वर्षों बाद की थी और उसका चौरी-चौरा की दुर्घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है।[५] श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव ने भी, अपने संस्मरण के आधार पर लिखा है कि "मैंने स्वयं इस समस्या को जब 'नवीन' जी के समक्ष प्रस्तुत किया तो उनका स्पष्ट कहना था कि इस घटना के पीछे किसी राजनैतिक हार की कोई पृष्ठभूमि नहीं है और न यह चौरी-चौरा काण्ड से अथवा २० के सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्ध रखता है।"[६]

स्पष्ट है कि 'पराजय गीत' को राजनैतिक पराजयजन्य प्रतिध्वनि नहीं माना जा सकता। उसमें स्थित प्रज्ञता[७] के भी दर्शन किये जा सकते हैं।

उनकी प्रखर रचनाओं को देखते हुए श्री 'हरिऔध' जी ने लिखा है कि "पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' छायावादी कविता करने में कुशल हैं। वे अपनी रचनाओं के लिये बहुत कुछ प्रशंसा प्राप्त कर चुके हैं। उनका मानसिक उद्गार ओजमय होता है। इसलिये उनकी रचनाओं में भी यह ओज पाया जाता है। वे कभी ऐसी रचनाएँ करते हैं। जिनसे चिनगारियाँ कढ़ती

---

१. 'वह पीपल', पृष्ठ ३५।

२. 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा', छायावाद, पृष्ठ १२६।

३. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—'Hindi Review', The Impact of Gandhi on Hindi Literature, June, 1958.

४. साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १६६०, पृष्ठ ६।

५. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', सम्पादकीय, ६ सितम्बर, १६५६।

६. 'राजकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल 'सुख पत्रिका', राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताओं का अमर गायक 'नवीन', सन् १६६०, हिन्दी-विभाग, पृष्ठ २४।

७. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी – 'कल्पना', सितम्बर, १६६०, पृष्ठ २६।

दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु जब शान्त चित्त से कविता करते हैं तो उनमें सरसता और मधुरता भी पायी जाती है। उनकी कविता भावमयी के साथ प्रवाहमयी होती है। उनमें देश-प्रेम भी है।[1] पराजय तथा नैराश्य के आक्षेपों का कवि ने उत्तर दिया है—

मत कहो कि है निपट पराजयवादी मम विश्वास,
मत कहो कि नैराश्यवादमय हैं मेरे निःश्वास।
तुम आलोचक-गण, क्या जानो विजय पराजयवाद,
मैं यथार्थवादी कर्मठ! हूँ फिर भी आज उदास।[2]

कवि का काव्य राष्ट्रीय उत्तेजना को अधिकाधिक ग्रहण करता गया। सन् १९३२ में, श्री गान्धी महाव्रत-सप्ताह के समय, कवि ने 'हे क्षुरस्य धारा पथगामी'[3] के रूप में युग-निर्माता गान्धी जी को अपनी भावांजलि अर्पित की।

गान्धी जी के प्रभाव तथा नेतृत्व में कवि की आस्था एवं भक्ति, दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। सन् १९३४ में कवि ने उस 'भैरव नटनागर' की वन्दना की—

हम जड़ भी गति चलित हो गए, उस तेरे गतिमय नर्तन से,
अवश डुला तव ताण्डव-गति से अचल राष्ट्र-निद्रा-गिरि-मन्थर,
अरे भयंकर, ओ शिवशंकर,
ओ जगती की पुण्य गन्ध तू, आ गान्धी जीवन भय हर, हर[4]

सन् १९३६ में कवि ने, राष्ट्रीय संग्राम की महान् युगल-जोड़ी श्री जवाहरलाल नेहरू[5] तथा श्रीमती कमला नेहरू[6] का अभिवन्दन किया और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। सन् १९३७ में कवि की क्रान्ति ज्वाला 'नरक-विधान'[7] तथा 'जूठे पत्ते'[8] सदृश्य रचनाओं में अपना विस्फोट करने लगी।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की अन्तिम गगनभेदी हुंकार सन् १९४२ की महान् क्रान्ति है। कवि की राष्ट्रीय-चेतना भी धीरे-धीरे विकसित होते, इस क्रान्ति के समय, कालानुसार, अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। डॉ० नगेन्द्र ने इसे 'नवीन' की कविता का पुनर्जीवन-काल

---

१. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास', वर्तमान काल, पृष्ठ ४६६।

२. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', यथार्थवादी २७ वीं कविता, छन्द ४।

३. साप्ताहिक 'प्रताप', ३१ दिसम्बर, १९३५, भाग २३, संख्या ७, मुखपृष्ठ।

४. 'प्रलयंकर', भैरव नटनागर, ७ वीं कविता।

५. 'प्रलयंकर', अनल-गान।

६. 'क्वासि', कमला नेहरू की स्मृति में, पृष्ठ ९८-९९।

७. 'प्रलयंकर', नरक विधान, २९ वीं कविता।

८. वही, जूठे पत्ते, ४४ वीं कविता।

कहा है।[१] सन् १९४२ की क्रान्ति के अवसर पर कवि ने 'गरल-पान' को ही युग-धर्म माना।[२]

सन् १९४२ की भीषण क्रान्ति तथा घोर चेतना का वर्णन कवि ने निम्नपंक्तियों में किया है—

अवाप्तव्य अनवाप्त ध्येय के इस अज्ञात अतल का मन्थन,
तुमने किया, किन्तु फैलाया जग में कैसा भीषण क्रन्दन,
हाहाकार भरा दिशि-दिशि में, नभ रक्ताक्त अश्रु रोता है,
लोहित सब दिङ्मूल हुआ है, रण-चण्डी नर्तन होता है।[३]

क्रान्ति का चेतन-काल सन् १९४२ से १९४५ तक रहा। सन् ४२ की क्रान्ति शोले उगल रही थी। 'नवीन' की कविता से भी अंगारे टपक रहे थे। काव्य की गर्जना पर्वत तथा सागर को प्रकम्पित करने लगी—

'दुर्दम रण-चण्डी चेत उठे,
कर महा-प्रलय संकेत उठे,
सर्वस्व-नाश का रुद्र रूप,
नव-नव निर्माण समेत उठे।[४]

कवि की उग्र कविताओं के आधार पर ही आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'दुस्साहसिकता'[५] तथा श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'अतिसाहसिकता'[६] के विशेषण तथा वर्ग की सीमा में, उनकी कतिपय रचनाएँ रखी हैं।

---

१. "हिन्दी कविता के इतिहास में यह वह समय था जब छायावाद का ज्वार उतर चुका था और उसके प्रति एक प्रकार का मुखर विद्रोह बल पकड़ रहा था। जीवन और साहित्य के सूक्ष्म अधिमानसिक मूल्यों के विरुद्ध बहिर्मुख राष्ट्रीय सामाजिक प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आ रही थीं। इस आन्दोलन के पीछे यद्यपि वामपन्थी विचारधारा की प्रेरणा सम्मुख थी, किन्तु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को भी अप्रत्यक्ष रूप में इससे बल मिला। 'नवीन' जैसे उग्र राष्ट्रवादी कवि की क्रान्तिमय वाणी, जो छायावाद के सौरभ-श्लथ रेशमी परिवेश में कुछ असामयिक सी प्रतीत होने लगी थी, इस उत्तेजित वातावरण में फिर से हुंकार उठी। इस प्रकार यह 'नवीन' की कविता का पुनर्जीवन-काल था"—डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध', पृष्ठ १४८-१४९।

२. साप्ताहिक 'प्रताप', ६ नवम्बर, १९४५, पृष्ठ ११।

३. 'प्रलयंकर', गरल पियो तुम! गरल पियो तुम!!, ६ वीं कविता, छन्द ९।

४. वही, गरजे मेरे सागर पहाड़, चौथी कविता, छन्द ६।

५. आचार्य चतुरसेन शास्त्री—'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ६६८।

६. "अतिसाहसिकतावाद के अन्तर्गत बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', स्नेही और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय भावनाएँ इस काल में विकसित हुई और उन्होंने एक ओर तो राष्ट्रीय-संग्राम में भाग लेने की शपथ ली और दूसरी ओर समाज के विकृत रूप के विरुद्ध संघर्ष की भावना को अधिक बल दिया। जहाँ भावना ने साहस, हर्ष, आशा का उद्रेक किया; वहीं

भावुकता, विप्लव एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों के अतिरिक्त, कवि ने अपने दृष्टिकोण को व्यापक भी बनाया है। उसमें अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं चिन्तन के पक्षों को भी सम्मिलित किया है। हिटलर के सन् ४२ के फासिस्टी आक्रमण पर सोवियत रूस के प्रति लिखी गई आपकी कविताएँ हिन्दी साहित्य को एक अमर देन है।[१] रूसी क्रान्ति एवं शोषण के विनाश के प्रति कवि अपनी वन्दना प्रस्तुत करता है—

> तू ने बन्धन के खण्डन का, मार्ग जनों को दिखलाया,
> तू ने सन्तत महाक्रान्ति का, पाठ सभी को सिखलाया।[२]

कवि ने राष्ट्रीय संग्राम को भावना के दृष्टिकोण से ही नहीं, प्रत्युत् चिन्तापरक रूप में भी परखा है। सम-सामयिक स्थिति की विषमताएँ, अनिश्चित वातावरण, आशा-निराशा के प्रति द्वन्द्व आदि की अभिव्यक्ति उनकी 'भावी की चिन्ताएँ',[३] 'चिन्ता',[४] 'गड़गड़ाहट गगन भर में',[५] 'दग्ध हो रहे हैं मेरे जन'[६] आदि रचनाओं में हुई है। कवि लिखता है—

> आज बना है मानव निरवलम्ब, अनिकेतन,
> आज निराश्रित-से हैं सब जग-जन-गण के मन।[७]

डॉ० इन्द्रपाल सिंह ने लिखा है कि "उसमें (राष्ट्रीय-काव्य) हृदय की सच्ची अनुभूतियों का अभिव्यंजन है तथा दृढ़ता एवं साहस का पूर्ण विकास है।"[८]

अहिंसक राष्ट्रवाद—'नवीन' जी ने लिखा है कि "विश्व के आज तक के जितने भी अवतारी पुरुष हुए हैं, उनमें गान्धी का बड़ा अद्भुत एवं अद्वितीय स्थान है। गान्धी से पूर्व किसी ने भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि नैतिक सिद्धान्तों को सामूहिक-सामाजिक व्यवहार में प्रयुक्त करने की बात नहीं कही थी; अर्थात् गान्धी के किसी भी पूर्वगामी मानवता के शिक्षक ने इन सिद्धान्तों का सामूहिक प्रयोग नहीं करवाया था। यह महान् कार्य गान्धी के भाग में आया कि वह लक्षावधि जनों से अहिंसा और सत्य का प्रयोग कर सका।"[९]

इसने कुछ ऐसी शब्दावली और अज्ञेय सांस्कृतिक मान्यताएँ भी दीं जिनमें केवल लड़ने और संघर्ष करने का वातावरण ही रह गया। लक्ष्य, समय, स्थान, इसका भेदभाव बिलकुल छूट ही गया।"—श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी हिन्दी कविता के प्रतिमान', प्रथम खण्ड, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ १५।

१. श्री कृष्णकान्त दुबे—'वीणा', मालवा के प्रवासी साहित्यकार—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मध्यभारत साहित्यांक, अप्रैल-मई, १९५२, पृष्ठ ३४०।

२. 'प्रलयंकर', धन्य सभी रूसी जन गण, ४३ वीं कविता, छन्द ३।

३. 'क्वासि', भावी की चिन्ताएँ, पृष्ठ ५३-५४।

४. 'प्रलयंकर', चिन्ता, ५४ वीं कविता।

५. वही, 'गड़गड़ाहट गगन भर में', ५८ वीं कविता।

६. वही, 'दग्ध हो रहे हैं मेरे जन', ५६ वीं कविता।

७. 'क्वासि', भावी की चिन्ताएँ, पृष्ठ ५३-५४, छन्द ३।

८. डॉ० इन्द्रपालसिंह—'हिन्दी साहित्य चिन्तन', पृष्ठ ११७-११८।

९. 'महात्मा गान्धी', गान्धी दर्शन, पृष्ठ ७, कालम २।

गान्धी जी के व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों ने 'नवीन' जी को काफी अंशों तक प्रभावित किया है। यह कहना तो दुष्कर है कि, वे सिद्धान्तों के विषय में, बापू के सम्पूर्ण रूप से अनुगत थे। अपने युग की विभूति की प्रभा से वे भी पर्याप्त चमत्कृत हुए। सत्याग्रह आन्दोलन के दिनों में 'नवीन' जी ने गान्धी-वाणी को ही अपने काव्य का शृंगार बनाया। सन् १९४२ के आन्दोलन में, 'भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' के उद्ग्रीव ने, भारत में भूचाल ला दिया था। कवि ने भी अपने 'जन-नायक की वाणी' से अपनी अभिव्यक्ति को अलंकृत किया था—

मानव हो तो फिर उप मानव, दानव, क्यों बनते जाते हो ?
अपनी ही कृति के दल-दल में, क्यों फँसते, सनते जाते हो ?[1]

'अरी धधक उठ' शीर्षक क्रान्तिवादी कविता में भी, श्री 'दिनकर' के मतानुसार,[2] कवि ने जो लोहू का वर्जन किया है, वह उनका अहिंसक रूप ही है—

भर, इसके खप्पर को भर
लोहू से नहीं, लपट से अा री !
जल उठ, जल उठ, अरी, धधक उठ,
महानाश की भट्टी प्यारी।[3]

अहिंसक राष्ट्रवाद के जनक महात्मा गान्धी को कवि ने युग-युगान्तर के पश्चात् आने वाली विभूति के रूप में ग्रहण किया है। सन् १९४३ में लिखित 'ओ सदियों में आने वाले' कविता में, गान्धी जी का तेजस्वी रूपांकन किया गया है[4]।

वास्तव में 'नवीन' के काव्य में तिलक तथा गान्धी, गरम दल एवं नरम दल, हिंसा एवं अहिंसा के घात-प्रतिघात एवं अन्तर्द्वन्द्व देखे जा सकते हैं। 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा' के उद्घोषक तिलक जी तथा 'करो या मरो' के प्रणेता गान्धी जी—दोनों की ही प्रबल तथा निर्मल धाराएँ कवि के व्यक्तित्व में आ विराजी हैं। वे विरोधी गुणों के जीवन्त समुच्चय थे। डॉ० इन्द्रपालसिंह ने ठीक ही लिखा है कि "कुछ कवि ऐसे भी थे जो गान्धी जी से प्रभावित होते हुए भी, अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते थे। उनके काव्य में क्रान्ति का शंखनाद है जो अहिंसात्मक होने की अपेक्षा, विद्रोह की ओर अधिक उन्मुख है। 'दिनकर' और 'नवीन' का नाम हम ऐसे ही कवियों में ले सकते हैं।"[5]

---

१. 'महात्मा गान्धी', छन्द ११, पृष्ठ ११।

२. "निराशा की व्याकुलता में ही आपका ध्यान अहिंसा के उस विकल्प की ओर गया होगा जो क्रान्तिकारियों का ध्येय था। मन की इसी व्याकुल स्थिति में उसने उस प्रचण्ड, विस्फोटक क्रान्ति-गान की रचना की, जिसका मेरी अपनी मनोदशा के निर्माण में, बहुत बड़ा हाथ था। आग के पास पहुँचकर आग की सता से आँखें फेर लेना, यह उस युग का धर्म बन गया था। आपने भी लोहू का वर्जन यहाँ इसलिए किया कि अहिंसक योद्धा के रूप में आप सारे देश में प्रसिद्ध थे, अन्यथा, हिंसक क्रान्ति का विकल्प ऐसा नहीं था जिससे आपकी घृणा रही हो।"—वट-पीपल, पृष्ठ ३६।

३. 'प्रलयंकर', 'अरी धधक उठ', ५७ वीं कविता।

४. 'प्रलयंकर', 'ओ सदियों में आनेवाले', २५ वीं कविता, छन्द १४।

५. डॉ० इन्द्रपालसिंह—हिन्दी साहित्य चिन्तन, पृष्ठ १२२।

बल और बलि—अपने युग के समानधर्मी कवियों के समान, 'नवीन' जी का भी यही विश्वास था कि बलिदान के बल से ही हमें हमारी स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। क्रान्ति एवं विप्लव में आस्था रखने के कारण; उनकी यह वृत्ति काफी सुदृढ़ रूप में हमारे समक्ष आती है। बल तथा शक्ति की कवि ने रणभेरी बजाई है—

विजय और वसुधा ये दोनों,
बड़े बाप की बेटी हैं,
कापुरुषों की नहीं सदा ये—
बलवानों की चेरी हैं।[1]

यहाँ कवि, डार्विन के 'विकासवाद' से प्रभावित होकर, 'समर्थ व्यक्ति के लिए ही जीना सम्भव' के सिद्धान्त की पुनरावृत्ति करता प्रतीत होता है। अन्य कवियों ने भी 'सामर्थ्य' सम्बन्धी बातें कही हैं।[2]

मातृभूमि के चरणों में, सर्वस्व न्यौछावर करना ही, देशभक्तों का कार्य है। स्वतन्त्रता की देवी रक्त की प्यासी है। बिना लहू-दान के फल की प्राप्ति सम्भव नहीं। यौवन के इंधन देने की, सबसे बड़ी आवश्यकता है। 'कारागृह' सम्बन्धी गीतों में, प्रकृति का भी विस्मरण नहीं है—

कोल्हू में जीवन के कण-कण,
तैल तैल हो जाते क्षण-क्षण।
प्रतिदिन चक्की के घर्म्मर में—
पिस जाता गायन का निक्वण;
फाग सुहाग भरी होली का यहाँ कहाँ रस-राज ?
अरे ओ, मुखरित फागुन मास![3]

---

१. 'वीणा', करते जाओ कूच सखे, नवम्बर, १९३७, छन्द १, पृष्ठ १।

२. (क) और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान,
'शक्तिशाली हो विजयी बनो', विश्व में गूँज रहा यह गान!
'प्रसाद'—(श्रद्धा), 'कामायनी', पृष्ठ ५७

स्पर्द्धा में उत्तम ठहरें वे रह जावें
संसृति का कल्याण करें शुभ मार्ग दिखावें!
वही, (इड़ा), 'कामायनी', पृष्ठ १९२

(ख) जो है समर्थ जो शक्तिवान है जीने का अधिकार उसे
उसकी लाठी का बैल विश्व पूजता सभ्य संसार उसे।
'पन्त'—'ज्योत्स्ना'

३. 'क्वासि', फागुन, छन्द ३, पृष्ठ ६६।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी को भी कोकिला की पंचम तान, कारागृह में विद्रोह की बीज बोती प्रतीत होती है—[१] देशभक्तों का सबसे बड़ा त्यौहार तो राष्ट्र मुक्ति है; उसके पूर्व सभी पर्व उनके लिए निरुपयोगी हैं।

कर्म-पथ रूपी खाण्डे की धार पर चलने वाले राष्ट्र-पुत्र राग-रंग के प्रति मोह उत्पन्न नहीं करते—

उनकी क्या होली-दीवाली ? उनके क्या त्योहार ?
जिनने निज मस्तक पर ओढ़ा जन-विप्लव का भार !!
कर्म पथ है खाण्डे की धार !![२]

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है कि "देशभक्ति की भावना जागरित करने के लिए इन सत्याग्रहियों के बन्दी जीवन का बड़ा मार्मिक विवरण कई कवियों की रचना में मिलता है। इस जीवन का समानुभूतिपूर्ण चित्रण हमारी भावना को उद्दीप्त करता है।"[३]

क्रान्ति तथा विप्लव-धारा—क्रान्तिवादी कविता देश-भक्ति की धारा से पृथक् चल रही है, क्योंकि क्रान्तिवादी कवि का आदर्श देशभक्त कवि से कुछ अधिक व्यापक है। देशभक्त कवि अपने देश की स्वतन्त्रता और उन्नति का इच्छुक होता है, परन्तु क्रान्तिवादी कवि सारे संसार में क्रान्ति का आवाहन करता है और किसी देश-विशेष की राजनीतिक उन्नति तथा स्वतन्त्रता की कामना न कर सारे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अत्याचारों से मुक्ति चाहता है। क्रान्तिवादी कवि ऐसी सभ्यता का विकास और नई व्यवस्था का जन्म देखना चाहता है जिसमें सारी मानवता, दासता, दरिद्रता और अन्धविश्वास के पाश से मुक्त होकर शान्त और समता का अनुभव कर सके।[४]

'नवीन' जी के व्यक्तित्व में देशभक्त तथा क्रान्तिकारी, दोनों के तत्व समन्वित थे। उनका क्रान्तिवाद निश्चय ही, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में देखा व परखा जा सकता है।

राजनैतिक क्रान्ति—'नवीन' जी की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध रचना 'विप्लव-गायन' ने क्रान्ति का शंखनाद किया था। कवि की यह रचना बहु-उद्धृत एवं बहु-चर्चित रही है। यद्यपि यह रचना 'कुंकुम'[५] एवं 'प्रलयंकर',[६] दोनों ही, संग्रहों में संकलित है; परन्तु

---

१. मिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान,
कोल्हू का चर्रक-चूँ जीवन की तान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूँआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँआ।"
—'कैदी और कोकिला', 'विशाल भारत', जुलाई, १६३२।

२. 'रश्मिरेखा', आज है होली का त्योहार, छन्द ८, पृष्ठ २७।

३. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्य-धारा', पृष्ठ २६२।

४. वही, वर्तमान-युग, क्रान्तिवादी धारा, पृष्ठ २७४।

५. 'कुंकुम', विप्लव-गायन, पृष्ठ ६-१४।

६. 'प्रलयंकर', विप्लव-गायन, १५ वीं कविता।

तिथि का अंकन अनुपलब्ध है। श्री रुद्रनारायण शुक्ल ने सन् १९५०-५१ के लेख में, इस रचना का लेखन-काल सन् १९२४-२५ में माना है[1] परन्तु अपने नवीनतम पत्र में, उन्होंने इसे सन् १९३० के अन्त या १९३१ के आरम्भ की रचना माना है।[2] 'प्रताप'-मण्डल के पुराने सदस्य एवं कवि श्री देवीदत्त मिश्र ने इसे सन् १९३० की ही रचना माना है और शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह के प्राण-दण्ड की घोषणा से उत्पन्न भारतव्यापी हड़कम्प का जीवित प्रतिध्वनि माना है।[3] डॉ० 'सुमन' ने इस रचना को 'संक्रमण युग का यौवन'

---

१. "नवीन की जोशीली और देशभक्ति के रंग में डूबी हुई रचनाओं की धूम का जमाना शुरू हो चुका था और 'विप्लव-गायन' जैसी उग्र, सशक्त और प्रभावशाली अनेक कविताएँ 'नवीन' की लेखनी से सन् २४-२५ में लिखी गईं।"—श्री रुद्रनारायण शुक्ल, दैनिक 'नवजीवन', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', (३०-११-१९५१), पृष्ठ ५।

२. श्री रुद्रनारायण शुक्ल का मुझे लिखित (दिनांक ६-२-१९६२ का) पत्र।

३. " 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ'—उनका गीत जहाँ तक मुझे स्मरण है, 'प्रताप' में सन् १९३० में सरदार भगतसिंह की फाँसी की सजा सुनाये जाने के कुछ ही दिनों पहले प्रकाशित हुआ था। सरदार भगतसिंह द्वारा दिल्ली के केन्द्रीय असेम्बली भवन में, बैठक के बीच, ब्रिटिश सरकार को चेतावनी के रूप में फेंका हुआ बम और लाहौर षड्यन्त्र केस आदि-काण्ड देश के ऊपर-ऊपर सुषुप्त परन्तु अन्दर से सुलगती हुई राजनीतिक चेतना को देश-व्यापी ढंग पर एक गहरा झटका देने वाले प्रमाणित हुए थे। बम-काण्ड घटना के शीघ्र बाद ही महात्मा जी द्वारा संचालित सन् १९३० का आन्दोलन जारी हुआ था। यद्यपि आन्दोलन देश-व्यापी और अहिंसात्मक था परन्तु सरदार भगतसिंह का नाम आन्दोलन भर में गाँव-गाँव, शहर-शहर और घर-घर, एक जबर्दस्त नारे का रूप ग्रहण कर चुका था। सभाओं में, जुलूसों में, प्रदर्शनों में, सर्वत्र 'भगतसिंह जिन्दाबाद' का नारा गगनभेदी स्वरों से 'महात्मा गान्धी की जय' और 'वन्दे मातरम्' के साथ लगाया जाता था। यहाँ तक उनका नाम देशव्यापी भावना का प्रतीक बन गया था कि ब्रिटिश सरकार से समझौते की बात के समय पं० जवाहरलाल नेहरू को यह कहना पड़ा था कि 'सरदार भगतसिंह का मृत-देह भारत और ब्रिटेन के बीच किसी भी समझौता-वार्ता के दर्मियान मौजूद रहेगा'। सरदार भगतसिंह को फाँसी की सजा सन् १९३० में शायद अप्रैल महीने या इसी के आगे-पीछे महीने में हुई थी। फाँसी का फैसला सुनाये जाने पर स्वभावतः देश भर में असाधारण रोष की लहर फैल गई थी। सर्वत्र रोष और उत्तेजनापूर्ण सभाएँ विरोध में हुईं, साथ-साथ काँग्रेस द्वारा घोषित पूर्ण हड़तालें हुईं। यह एक अत्यन्त क्षुब्धतापूर्ण वातावरण का अवसर था। कानपुर में भी एक विशाल सभा फाँसी की सजा के विरोध में हुई थी। ता० २०, २१ अथवा २२ थी। पं० बालकृष्ण शर्मा का अत्यन्त ओजस्वी भाषण उस सभा में सरकार के विरोध में और फाँसी की सजा सुनाये जाने के विरोध में हुआ था। उस भाषण का उपसंहार पं० बालकृष्ण शर्मा ने उसी गीत को अपनी गगन-गम्भीर-गिरा से गायन करके किया था। मैं भी उपस्थित था। जोश के उस प्रवाह को शायद दो रोज बाद ही ब्रिटिश सरकार ने कानपुर के सन् १९३० के भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा के रूप में मोड़ दिया था; जिसमें

कहा है।[१] डॉ० वीरभारती सिंह के मतानुसार, 'विप्लव गायन' सन् १९२१ के आन्दोलन के समय लिखा गया था।[२] डॉ० मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि "विप्लव-गायन' (रचना) १९२५ ई० दिसम्बर की है।[3] यह १९२५ के 'प्रताप' के विशेषांक (कानपुर काँग्रेस-अंक) में प्रकाशित हुआ था। वे दिन अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में व्यतीत हो रहे थे।"[४]

वास्तव में इस रचना में क्रान्तिवादी सूत्र तथा महात्मा गान्धी की प्रेरणा एकत्रित हो गई हैं। 'नवीन' जी ने स्वतः बतलाया है कि "गान्धी जी की प्रेरणा से ही वह 'विप्लय-गायन' आया है। उसका रहस्य यह है कि प्रारम्भिक क्रान्ति करने की भावना सर्वग्राही होती है। उस समय नई भावना के आवेश में विचारों पर नियन्त्रण नहीं रहता। नियन्त्रण होता तो 'माता की छाती का मधु रसमय पथ कालकूट हो जाये'—जैसी पंक्ति, जिसका सीधा अर्थ नहीं निकलता, कैसे आती। उस समय तो केवल यही भावना थी कि 'नया आकाश, नई पृथ्वी और नया मानव निकले।' इसीलिए गान्धीवादी परम्परा के विरुद्ध यह उद्घोष हुआ—यद्यपि प्रेरणा गान्धी जी की थी।"[५]

डॉ० शुक्ल ने लिखा है कि क्रान्तिवादी कवि स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाते हैं। ये स्वतन्त्रता और क्रान्ति का आवाहन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करते हैं; क्रान्ति के साथ-साथ ये कवि नाश का भी स्वागत करते हैं, क्योंकि यह भी इनके कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग है। आज की व्यवस्था को बिना मिटाये शान्ति और समता की स्थापना इन कवियों को असम्भव प्रतीत होती है। इसलिए इनके क्रान्ति प्रेम की कोई सीमा नहीं है और इनको नाश तथा प्रलय की कोई चिन्ता नहीं। उद्देश्यपूर्ण नाश की भावना अनुचित नहीं कही जा सकती, परन्तु क्रान्ति का बाना धारण किये, बहुत सी ऐसी रचनाएँ भी देखने में आती हैं जिनमें महानाश की होली के आगे कुछ नहीं है। कुछ कवियों को उद्देश्यहीन नाश की लीला में बड़ा आनन्द मिलता है। इन कवियों की रचनाएँ 'नवीन' की निम्न-लिखित पंक्तियों से मिलती जुलती है—

प्राणों के लाले पड़ जाएँ त्राहि-त्राहि रव भू में छाए।
नाश और सत्यानाशों का धुँवाधार जग में छा जाए॥
नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जाएँ।[६]

कवियों के ऐसे उद्गार क्रान्तिवादी कविता की अव्यवस्थित दशा की सूचना देते हैं।

गणेशशंकर विद्यार्थी का अभूतपूर्व बलिदान हुआ था। उपरोक्त विवरण एक पृष्ठभूमि के रूप में, मेरे सामने इस गीत के सम्बन्ध में, जागृत हो आया है।"—श्री देवीदत्त मिश्र का मुझे लिखित (दिनांक १०-२-१९६२ के) पत्र से उद्धृत।

१. डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', २० मई, १९६२, पृष्ठ ४७।

२. डॉ० वीरभारती सिंह का मुझे लिखित (दिनांक २९-८-१९६२ का) पत्र।

३. डॉ० मुंशीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक २२-८-१९६२ का) पत्र।

४. डॉ० मुंशीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक ६-९-१९६२ का) पत्र।

५. 'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, पृष्ठ ५१।

६. 'कुंकुम', पृष्ठ ११।

इसका कारण आरम्भ में ही बताया जा चुका है कि क्रान्तिवादी कविता का अभी श्रीगणेश हुआ है और अभी यह अपनी पूर्णावस्था को नहीं पहुँची है। कवि और पाठक, दोनों के सामने इसका स्पष्ट और सुलझा हुआ स्वरूप नहीं है। इसी कारण क्रान्तिवादी कविता के क्षेत्र में आग से खेलने वालों की अधिकता है और सुव्यस्थित कवियों की कमी है।[1]

इस कविता में विप्लव के किसी अराजकतामय क्रान्ति की ओर संकेत न होकर मानवोचित गुणों की प्राप्ति की ओर संकेत है। कवि सबलों की बर्बरता को कायरतापूर्ण विधि से सहन नहीं कर सकता। वह सनातन परम्परा के नाम पर अन्धविश्वासी हो समाज का नाश नहीं होने देगा। अथ च वह कहता है—

एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाये,
अन्ध मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ जाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये।[2]

और यदि यह सब न हो सके—तो जैसी विगलित अन्ध विचारों की संस्कृत-विद्रोही गतिविधि चल रही है, उससे तो यही अच्छा है कि—

नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जायें,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें।[3]

ऐसी स्थिति में यही उचित होगा कि 'शान्ति दण्ड टूटे, उस महारुद्र का आसन थर्राए' और 'नाश नाश! हाँ महानाश!!! की प्रलयंकारी आँख खुल जाये'।[4] कवि की यह कविता उनके प्रौढ़ यौवनकाल में लिखी गई थी और आज से बहुत पहले, किन्तु विचारों में ओज, गाम्भीर्य और भाषा की 'खानगी' स्वर्ण सुगन्ध का सम्मिलन उपस्थित करती है।[5]

अपने युग में यह रचना जन-जन के मानसरोवर की लहरों पर थिरक उठी थी। उत्तरभारत में ही नहीं, प्रत्युत् दक्षिण-भारत में भी यह कविता कण्ठहार बन गई थी। श्री मोहनलाल भट्ट ने लिखा है कि "उस समय हम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के कार्यक्षेत्र में बापू की आज्ञा से हिन्दी के प्रसार कार्य में जुटे हुए थे। सचमुच दक्षिण में सैकड़ों तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम भाषा-भाषी, युवक 'नवीन' की इस क्रान्तिमयी कविता की कड़ियाँ कण्ठस्थ कर बड़े जोश के साथ हमारे सामने पाठ करते थे। हम उस जोश में फूले

---

१. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्य धारा', वर्तमान युग, क्रान्तिकारी कविता, पृष्ठ २८४-८५।

२. 'कुंकुम', पृष्ठ १०।

३. वही, पृष्ठ ११।

४. वही।

५. श्री पन्नालाल त्रिपाठी—'त्रिपथगा', अन्तर्वेदनामय काव्य के साधक : महाकवि 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ २४।

नहीं समाते थे। एक दाक्षिणात्य हिन्दी विद्यार्थी ने तो गणेशशंकर विद्यार्थी के शिष्य बालकृष्ण शर्मा की वही क्रान्तिकारिणी सारी कविता कह सुनाई।[१]

डा० प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि "उनकी रचनाओं में एक विद्रोहपूर्ण अराजकता का निबन्ध स्वर भरा है (जिसे प्रगतिवादी मित्रों ने गलती से प्रगतिवादी लेख समझा था)। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में यह ध्वंसवादी, अराजकतावादी स्वर प्रायः सभी भाषाओं के कवियों मिलता है। शैले ने उसी स्वर में एशिया का गीत लिखा था (कैंकी में)। उसी स्वर से अनुप्रेरित होकर केशव सुत (मराठी कवि) ने 'साथी ना मेलेल्यांचे, साथी त्या दिल जानांचे, गाणार वण्डवाले ते' (डंका) जैसे स्वर उठाये और उसी से प्रेरित होकर जोश मलीहावादी ने 'इन्सानियत का कोरस' लिखा। उसी से प्रेरित होकर काजी नजरुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' थी। उसी ध्वंसवादी, अराजकतावादी वृत्ति के स्वर भगवतीचरण वर्मा, दिनकर और नागार्जुन तक में मिलते हैं। उन्हीं में से जैसे बचते गिरिजा-कुमार माथुर ने अपने संग्रह का नाम 'नाश और निर्माण' या शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने 'प्रलय-सृजन' रखा। इस सर्वनाशवादी स्वर का सर्वोत्तम उदाहरण उनकी आरम्भिक काल की रचना 'विप्लव गायन' और इधर उनके गद्य में 'अपलक' आदि संग्रहों की भूमिकाएँ हैं।[२] इस रचना का कवि के पथ के साथियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। श्री 'दिनकर' ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया है।[3]

वास्तव में, इस रचना में हिंसा तथा अहिंसा, क्रान्तिकारियों तथा बापू के उत्स के समन्वित रूप के दर्शन किये जा सकते हैं। श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि "गान्धी-युग में भी, महात्मा के ऐसे अनेक अनुयायी थे, जो अनजाने ही परशुराम के भी शिष्य थे, जो मन ही मन 'शापादपि शरादपि' के दोनों विकल्पों में विश्वास करते थे। क्या मेरा यह अनुमान ग़लत है कि आप भी शाप और शर दोनों की उपयोगिता में विश्वास करते थे ?"[४] डॉ० 'सुमन' ने भी लिखा है कि "पौराणिक समुद्र-मन्थन के बाद भी भारत में कई समुद्र-मन्थन हुए। हमारे युग में बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में भी यह कल्प घटित हुआ, जो अनवरत पच्चीस-तीस वर्षों तक चलता रहा। सदियों के दुर्दमनीय दमन से हीनवीर्य परवशता का विष जब फेनिल आवेश के साथ उमड़ा तो नवीन नीलकण्ठ का अवतरण हुआ गान्धी के रूप में। इस नील-कण्ठ के गणों के हिस्से में भी हलाहल की कुछ बूँदे पड़ीं, जिन्हें वे प्रसाद समझकर पी गए, जिससे भावी पीढ़ियों के लिए सुधा सुरक्षित रह सके। पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उस दुर्द्धष नीलकण्ठ के प्रमुख विषपायी गणों में से एक थे।"[५]

---

१. 'राष्ट्रभारती', सम्पादकीय, पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जून, १९६०, पृष्ठ ३४३।

२. डॉ० प्रभाकर माचवे—'व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ १०३।

३. 'वट पीपल', पृष्ठ ३५।

४. वही, पृष्ठ ३६।

५. डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई १९६२, पृष्ठ ८।

डॉ० शैलकुमारी ने, 'अनलगान' रचना के विषय में लिखा है कि "उसकी प्रतिध्वनि युग के अधिकांश कवियों के स्वरों में पाई जाती है। तव निर्माण और नव-सृजन से पूर्व इस युग का कवि क्रान्ति, ध्वंसमय परिवर्तन को अनिवार्य समझता है और प्रचलित व्यवस्थाओं, रूढ़ियों, अत्याचारों के विरुद्ध प्रत्येक प्राणी-किसान, मजदूर, पुरुष, नारी को उत्तेजित करता है।"[1]

कवि महानाश की भट्टी के अंगारों को उछेलता फिरता दृष्टिगोचर होता है—

जल थल शून्याकाल अग्नि का, कुण्ड बने विकराल भयंकर,
वर्तुल महाव्योम कक्षा यह, उने उसी की परिधि निरन्तर,
महाकाल निज माता नेत्र फिर खोलें आज लगे प्रलयंकर,
सर्वभक्षिणी लपटें उट्ठे धधके मानव का अभ्यन्तर।[2]

'नवीन' जी जीवन का जो उल्लास लेकर आए हैं, उसमें विरागात्मकता, नियम-उपनियम, जग आचार-विचार, लोकोपचार, ज्ञान-विवेक सब ढहते, बहते दिखाई देते हैं।[3] डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि "हमारे जीवन में जो वैषम्य हैं, आघात और असफलताओं का जो क्रन्दन है, संघर्ष से उभरने वाला जो विद्रोह है, वह सब 'नवीन' जी की कविताओं में ज्वालामुखी के समान फूट पड़ा है। आपकी कविताएँ राष्ट्र को जगाने वाली होती हैं। उनमें विप्लव का आवेश भरपूर पाया जाता है। स्वाभाविकता, सरलता, रस तथा प्रवाह मिलकर इनकी कविताओं में एक विचित्र ओज उत्पन्न कर देते हैं।"[4]

कवि की 'विप्लव गायन' एवं 'अनल गायन' अग्नि-प्रवाह परम्परा की चरमस्थिति, प्रचण्डतम रूप में, यहाँ उपस्थित होती है—

धधक रहा है सब भूमण्डल भूधर खौल रहे निशि बासर,
सखे, आज शोलों की बारिश नभ से होती है झर-झर कर,
घन गर्जन से भी प्रचण्डतर शतघ्नियों का गर्जन भीषण,
घर्षण करता है मानव-हिय जग में मचा घोर संघर्षण।[5]

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा एवं डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "भाव-चित्रण में 'एक भारतीय आत्मा' सिद्धहस्त हैं। इसी आदर्श का पालन 'नवीन' ने भी किया है किन्तु उनमें रहस्यवाद की अपेक्षा भावावेश का प्राधान्य है। साधारण शब्दों में जैसे ज्वालामुखी का अग्नि-प्रवाह है और वह देश-प्रेम की दिशा में प्रवाहित है। 'नवीन' कहीं-कहीं सौन्दर्य की

---

१. डॉ० शैलकुमारी—'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना', प्रगति युग की समाजवादी तथा क्रान्तिवादी नारी-भावनाएँ, पृष्ठ २१६।

२. 'प्रलयंकर', अरी धधक उठ, ५७ वीं कविता, छन्द १४।

३. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'नए-पुराने झरोखे', कविवर 'नवीन' जी, पृष्ठ ३६-३७।

४. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक तथा श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'—'हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति', नवचेतना युग, पृष्ठ १६१।

५. 'कवियों की झाकी', जगत उबारो, छन्द१, पृष्ठ ३५६।

भावना में कोमल हैं; शायद उस वीर की तरह जो युद्ध और अन्तःपुर दोनों स्थलों में उत्साह से पूर्ण है और जीवन के पहलुओं का कायल है।[१]

सामाजिक क्रान्ति—राजनैतिक क्षेत्र के साथ ही साथ, 'नवीन' जी ने क्रान्ति एवं विप्लव की धारा को सामाजिक क्षेत्र में भी प्रवहमान किया है। डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा ने उन्हें 'अहं के उपासक' बताते हुए, रूढ़ि और परम्परा का विरोधी बताया है।[२] मानव की वर्तमान स्थिति और उस पर ढाये जाने वाले अनाचारों का चित्रण, कवि की लौह-लेखनी से प्रसूत हुआ है—

> पराभूत, पददलित, प्रताड़ित, भीषण अत्याचार विमर्दित,
> दण्डित, वृण मण्डित, खण्डित तन, निरानन्द, पद-पद पर वर्जित,
> मानव को मैं देख रहा हूँ आज सतत ठुकराए जाते,
> देख रहा हूँ टूट रहे हैं मानव मन के सारे नाते![३]

मानव ही मानव के नाश पर उतारु हो गया है—

> पर, मानव ने लखी विवशता, उसने देखे बन्धन अपने,
> और लगा वह दाँत पीसने; उसके लगे ओंठ भी कँपने।[४]

कवि का मत है कि उसे पुरानी खेती की विधियाँ त्यागकर, सामूहिक कृषि को अपनाना चाहिये। निम्न पंक्तियों में कवि, सामूहिक कृषि को ही अटल ध्येय बताता है—

> बोओ, सींचो, और निराओ;
> पर, जब कौवे, कीर उड़ाओ—
> तब तुम प्रगति-गीत मिल गाओ;
> सामूहिक कृषि ध्येय अटल!
> हल! हल! हल! चलाओ हल!![५]

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के मतानुसार, 'नवीन' अपनी प्रवृत्ति में तो प्रगतिशील हैं, किन्तु सिद्धान्त में नहीं।[६]

आर्थिक क्रान्ति—आर्थिक क्षेत्र में 'नवीन' जी ने भूचाल ला दिया है। उनका रोष तथा प्रबल वेग, अपनी पूरी गहराई के साथ, फूट पड़ा है। इस क्षेत्र की समग्र विद्रोही कविताओं की प्रेरणा उन्हें समाज से ही प्राप्त हुई है।[७] प्रो० 'अनन्त' ने लिखा है कि "नवीन जी की कविताओं में एक ओर जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन और देश-प्रेम से प्रभावित विविध सामाजिक भावनाएँ हैं; वहीं दूसरी ओर रोमाण्टिक भावनाएँ भी हैं। किन्तु नवीन जी की

---

१. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', निवेदन, पृष्ठ १०-११।
२. 'हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव', छायावाद-युग, पृष्ठ १८५।
३. 'प्रलयंकर', घूँट हलाहल, ३२ वीं कविता, छन्द १।
४. वही, क्या परवश, डग मग पग मानव?, ५१ वीं कविता, छन्द ८।
५. 'क्वासि', छन्द ६-७, पृष्ठ १५।
६. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—'नया हिन्दी साहित्य', पृष्ठ १५०।
७. 'मैं इनसे मिला', दूसरी किस्त, पृष्ठ ५४।

ख्याति उन कविताओं के कारण अधिक है, जिनमें कवि ने देश की गरीबी, परतन्त्रता तथा वर्ग-संघर्ष से उत्पन्न घृणित सभ्यता का ध्वंस और नव-निर्माण की कामना की है।''[१] कवि ने समाज की आर्थिक दुरावस्था एवं दरिद्रता के भयावह रूप का नग्न चित्र, प्रस्तुत पंक्तियों में उपस्थित किया है—

सड़े भात के लिये श्वान को औ मानव को लड़ते देखा,
पति-पत्नी को इक रोटी के, हेतु नितान्त झगड़ते देखा;
मानव ने कुत्ते को मारा; कुत्ते ने मानव को काटा;
पत्नी ने पति को नोंचा औ पति ने एक जमाया चाँटा।[२]

'नवीन' जी की 'जूठे पत्ते' शीर्षक रचना भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई।[३] इसे कई पत्र-पत्रिकाओं ने उद्धृत किया। इसमें भी, प्रचण्डता तथा ओज का, बहता हुआ सोता है। इस प्रकार की रचनाओं को देखते हुए ही, श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ने लिखा है कि ''वे जिस पीढ़ी में जीवित थे; उसकी रगों में खून की जगह पिघला हुआ रोष प्रवाहित होता था, साँसों की जगह उद्वेग तपता था, आँखों में पुतलियों की जगह सपने लगे हुए थे। इस पीढ़ी के सच्चे प्रतिनिधि 'नवीन' जी थे। यदि 'नवीन' जी को देखा है तो आन्दोलनों के उस युग को न देखने की कोई शिकायत नहीं। १९२१ के आन्दोलन के बाद 'नवीन' जी का झुकाव क्रान्तिकारी आन्दोलन की तरफ हुआ और प्रौढ़ता के साथ उनके गीतों में धार भी बढ़ी।''[४]

इस कविता में, 'विसूवियस' ज्वालामुखी पर्वत विस्फोटित हो गया था जिसने हिन्दी-संसार में हड़कम्प मचा दिया था। कवि का आक्रोश तथा आवेश सीमोल्लंघन कर देता है—

भूखा देख तुझे गर उमड़े आँसू नयनों में जग-जन के!
तो तू कह दे, 'नहीं चाहिए हमको रोने वाले जनखे!'
तेरी भूख, जिहालत तेरी, यदि न उभाड़ सके क्रोधानल,
तो फिर समझूँगा कि हो गई सारी दुनिया कायर, निर्बल।[५]

कवि का ओज बढ़ता ही चला जाता है—

प्राणों को तड़पानेवाली हुंकारों से जल-थल भर दे!
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फलीताधर दे।[६]

डॉ नगेन्द्र ने लिखा है कि ''यह देश के उद्दीप्त यौवन की पुकार है। इन स्वरों में देश का आहत-अभिमान जैसे बौखला उठा है। 'नवीन' जी स्वतन्त्रता-संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उनका व्यक्तित्व निर्भीक शौर्य का प्रतीक है। उनकी वाणी तेज के स्फुल्लिग उगलती

---

१. प्रो० 'अनन्त'—'हिन्दी साहित्य के सहस्र वर्ष', स्वच्छन्दतावादी धारा पृष्ठ ३००।

२. 'प्रलयंकर', दग्ध हो रहे हैं मेरे जन, ५६ वीं कविता, छन्द २।

३. डॉ० सुमन—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२।

४. 'ग्राम्या', २४ जुलाई, १९६०।

५. 'हंस', जूठे पत्ते, कवितांक, अक्तूबर, १९४१, छन्द ६।

६. 'प्रलयंकर', जूठे पत्ते, ४४ वीं कविता, छन्द ५।

है। आत्मा की वाणी होने के कारण इन कवियों की देशभक्ति की कविताओं में अपूर्व प्रभाव-क्षमता है। देश का युवक समाज इनको सुनकर हथेली पर प्राण ले घर से निकल पड़ा था।[1]

कवि ईश्वर पर भी अपनी रोष-वृष्टि करने पर उतारू हो जाता है—

> जगपति कहाँ ? अरे सदियों से बहता हुआ राख की ढेरी,
> वरन समता संस्थापन में लग जाती क्यों इतनी देरी ?
> छोड़ आसरा अलख शक्ति का ! रे नर स्वयं जगपति तू है,
> तू गर जूठे पत्ते चाटे तो तुझ पर लानत है—थू है।[2]

डॉ० 'सुमन' ने लिखा है कि यह किसी नास्तिक की वैज्ञानिक बौद्धिकता नहीं वरन् परम आस्तिक का ग्लानिपूर्ण उपालम्भ था।[3] श्री 'राकेश' के मतानुसार यह पीड़ित मानवता के प्रति उनकी अन्तर्वेदना का सर्जन शब्दचित्र है।[4]

इस कविता की व्यापकता, प्रभाव एवं प्रतिक्रिया का प्रमाण यह है कि श्री 'हृदय'[5] ने इसका विपरीत स्वर में उत्तर दिया था।[6]

कवि की मानव-जागृति में पूर्ण आस्था है। वह वाह्य परिस्थितियों एवं अन्तस्तल पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में विश्वास करता है। मनुष्य को इस प्रकार जागृत होना

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ २४।

२. 'प्रलयंकर', जूठे पत्ते, ४४ वीं कविता, छन्द २-३।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२, पृष्ठ ८।

४. श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश'—'विशाल भारत' महाकवि 'नवीन' जी की ज्योतिर्मयी-स्मृति, जनवरी, १९६२, पृष्ठ ३२।

५. (क) 'विक्रम', अग्निकरण, अप्रैल, १९४२, कुल छन्द ८०, पृष्ठ १८-२२।

(ख) 'विक्रम', अग्निकरण,—पर भावता स्वाहा, मई, १९४२, कुल छन्द ५०, पृष्ठ १७-१९।

६. "जमाना हुआ हमारे मालवा के गौरवशील, वीरकवि पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'जूठे पत्ते' शीर्षक एक कविता लिखी थी। उस कविता में कवि का दृष्टिकोण बहुत कुछ आधुनिक पुरोगामी मित्रों से मिलता है; याने उसमें ईश्वर हीन, विश्वास हीन होकर मनुष्य अपने सहज स्निग्ध स्वरूप को खो देता है और कठोर किरकिर रूसी क्रान्तिकारी की शक्ल में प्रगट है, जिसे आप स्वयं नीचे पढ़कर देखें। 'नवीन' जी की उक्त कविता प्रकाशित होने के बाद ही जिस वक्त को गुजरे जरूर पाँच-सात साल हुए होंगे, 'हृदय' जी ने कोई सौ-सवासौ छन्द की दो कविताओं में ईश्वरवान् और आत्मविश्वासी के आसन से 'नवीन' जी को जो जवाब दिया था; वह हमारी नजर में हिन्दी-साहित्य की एकान्त मौलिक है। उक्त रचना में 'हृदय' जी का हृदय सहस्त्र-दल-कमल की तरह परिमल पराग-मय प्रस्फुटित है। हम फिर कहते हैं कि 'नवीन' जी की निम्नलिखित कविता के जवाब में 'हृदय' जी की कविता हमारे साहित्य में बिलकुल बेजोड़ वस्तु है।"—श्री सूर्यनारायण व्यास, सम्पादक, मासिक 'विक्रम', अप्रैल, १९४२, पृष्ठ १७।

चाहिये कि पुनः दुःख स्वप्न जीवन में अपने घरौंदे न बना सकें। वह समाज के आर्थिक शोषण का कटु-विरोधी है और अपनी सहज प्रचण्ड-वाणी में शोषण की जीभ उखाड़ देने की बात करता है—

जागो, एक कतार बना लो, जीभ खींच लो इस शोषण की,
तोड़ो डाढ़ें, करो इतिश्री, तुम मिलकर निज उच्छोषण की,
करो सृजन अभिनव जगती का, नव-नव सामाजिक संहतिका।[1]

सन् १९४४ में लिखित, प्रस्तुत-कविता में, आर्थिक शोषण के विरोध के साथ ही साथ, क्रान्तिकारियों को भी सचेत किया गया है और हमारे भारतीय समाज के विविध पक्षों की ओर, उनको कर्त्तव्योन्मुख किया गया है। कविता की ओजस्विता, श्री 'सारथी' के इस कथन को युक्तियुक्त सिद्ध करती है कि उनकी कविताओं में दो तरह की भावनाओं की जाह्नवी प्रवाहित होती है। एक तरह की जाह्नवी में स्वतन्त्रता के साधकों बलिपन्थियों की मस्ती, और आजादी के दीवानों की आत्मा की सिंह-गर्जना है, गरिष्ठ हुंकार है। मालूम तो ऐसा पड़ता है कि उनकी कविताओं में वीरवर भगत, अशफाक उल्ला खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव और खुदीराम बोस की आत्मा गरज रही है—हाँ, गरज रही है परवश भारत की स्वाधीनता एवं आजादी के लिए, कोटि-कोटि भुक्खड़ों, दरिद्रों की रोटी के लिये।[2] 'नवीन' जी सुधारवादी और साम्ययोगी थे और सर्वोदय के आधार पर, नूतन सृष्टि की कल्पना करते थे।

मूल्यांकन—'नवीन' जी ने सन्धि-काल[3] में जन्म लिया था और उनका अधिकांश एवं प्रभावपूर्ण कृतित्व भी इसी युग की ही उत्पत्ति बना। सन्धि-काल के समग्र तत्व, यथा आशा-निराशा, हिंसा-अहिंसा, स्नेह-रोष, मसि-असि और नुपूर-कटार के, उनके व्यक्तित्व तथा काव्य में प्रचुरता के साथ उपलब्ध हैं।

संक्रान्ति-काल की इस श्रेष्ठ सृष्टि और राष्ट्रीय-स्वाधीनता संग्राम के अनूठे वनराज ने, 'राष्ट्रीयता' को भी अपने ही रंग में सराबोर कर लिया। 'नवीन' जी की 'राष्ट्रीयता' को हम 'भावुकतामयी राष्ट्रीयता' के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। इस भावनात्मक राष्ट्रीयता का संगठन सहृदयता, आवेश, आक्रोश, नव-चेतना तथा प्रगल्भता के सुदृढ़ अवयवों द्वारा हुआ है। 'नवीन' जी ने 'राष्ट्रीयता' या 'राष्ट्रीय-चेतना' को 'राजनीतिपरक' अथवा 'तथ्यपरक' के रूप में न ग्रहण कर, उसे भावना या रागात्मक रूप में लिया है। इसीलिए, हम देखते हैं कि कवि के राष्ट्रीय-काव्य में इतिहास की घटनाओं या राजनीति के यथार्थ आरोहावरोह का वस्तुगत अंकन न होकर, भावपरक अंकन ही हो पाया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रमिक सोपानों की मानसिक प्रतिक्रिया एवं भावात्मक

---

१. 'प्रलयंकर', आज क्रान्ति का शंख बज रहा, ३३ वीं कविता, छन्द २५।

२. श्री रामवरण सिंह 'सारथी'—दैनिक 'नवराष्ट्र', क्रान्तिदर्शी कवि 'नवीन' जी, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' परिशिष्ट, २४ जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३।

३. यह क्रान्ति काल, संक्रान्ति-काल, यह सन्धि काल युग घड़ियों का,
हाँ! हमी करेंगे गठ-बन्धन, युग-जंजीरों की कड़ियों का!!
—'प्रलयंकर', विद्रोही, ३५ वीं कविता, छन्द ११

व्याख्या के लिए उनका 'राष्ट्रीय-काव्य' चिर-स्मारक है। युग की भावना तथा प्रवृत्तियों के तरल तथा सचेत प्रवाह ने उनके काव्य-सागर में अपना विश्राम-स्थल पाया है।

इन सब तत्वों के होते हुए, उनके काव्य में निराशा या पलायनवाद के चिह्नों का अन्वेषण करना, दुष्कर कार्य होगा। आवेशजन्य उद्वेग तथा प्रचण्डता के कारण, वे भले ही सीमा का अतिक्रमण कर जायँ, पराजयवाद या अनिश्चितता की अभिव्यक्ति करने लगें और नूतन-नवल-लोक की रचना की कल्पना करने लगें, परन्तु इन सब उपादानों में भी उनका पराक्रम, शौर्य, सर्वोदय-वृत्ति, 'सर्वजन सुखाय-सर्वजन हिताय' और जीवन की उत्कटता व जिन्दादिली की अन्तःसलिला ही प्रवहमान होती दृष्टिगोचर होती है। कम से कम 'नवीन' जी को तो निराशावादी या पलायनवादी कहना, उनके व्यक्तित्व, जीवन, साहित्य और अपनी निर्णयात्मिका विवेक-बुद्धि के साथ न्याय नहीं करना है।[1] उनका काव्य-व्यक्तित्व ही इस बात का जीवन्त प्रतीक है कि वे आपत्कालीन स्थिति, दुर्लभ अवसरों तथा संघर्ष-मरण के क्षणों को 'जीवन-पर्व' मानकर, दो पग और आगे बढ़कर तथा ललकार कर, जूझते और चक्रव्यूह से सोल्लास बहिर्गमित होते, दृष्टिगोचर होते हैं।

'नवीन' जी का राष्ट्रवादरूपी 'तीर्थराज' ऐसी 'त्रिवेणी' पर अवस्थित है जिसमें क्रान्तिकारियों, बलिपन्थियों, लाल-बाल-पाल तथा कांग्रेस की वामपन्थी धारा; विश्व वंद्य बापू की निष्ठा, अहिंसा तथा तन्मयता और कोटि-कोटि जन की वेदना, यथार्थ स्थिति तथा जागरण की तीन प्रबल धाराएं अपना गठ-बन्धन स्थापित करती प्रतीत हो रही हैं। राष्ट्रीय-योद्धा एवं राष्ट्रवाद के वैतालिक होने के नाते, उन्होंने विप्लव और क्रान्ति, आशा तथा आस्था, विष और अमृत के गीत गाये। क्रान्ति के दिनों में, अत्याचारों, आतंक-दमन तथा विपरीत परिस्थितियों के जीवित गरल को, वे नीलकण्ठेश्वर बनकर, पान कर गये। वे तो जन्मतः ही विषपायी थे।[2] उनके काव्य में जीवन्त तथा खरी प्रेरणाओं और अनुभूतियों ने ही अपने मण्डप बनाये हैं।

---

१. "हमें तो हिन्दी अर्थात् हिन्दी की जन-जन व्यापिनी भाषा में निर्मित सारे साहित्य में चन्दबरदाई से लेकर दिनकर तक राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। कुछ थोड़े से रीतिकालीन शृंगारी कवियों की राष्ट्रीयता कुछ दब गई है, पर उनमें क्या राष्ट्रीयता थी, इसका विचार फिर कभी किया जायगा। सर्वश्री द्विवेदी जी, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमचन्द, हरिऔध, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन', प्रसाद, निराला, पन्त, रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, दिनकर, जैनेन्द्र, जहूरबख्श, नटवर आदि क्या पलायनवादी हैं ? यदि नहीं, तब फिर हम साहित्यिक पलायनवादी क्यों ?"—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'हिन्दी का सामयिक साहित्य', साहित्यिक पलायनवादी क्यों ?, पृष्ठ २१६।

२. हम विषपायी जनम के, सहे अबोल-कुबोल,
मानत नेकु न अनख हम, जानत अपनो मोल।—'नवीन दोहावली'

काव्य के दृष्टिकोण से, उन्होंने सामयिकता के वस्तुपरक रूप को अधिक प्रश्रय प्रदान न करने के कारण, अपने काव्य-साहित्य को युग-विशेष की सामयिक धरोहर अथवा मात्र प्रतिक्रियात्मक पूँजी न बनाकर, उसे युग-युग की विभूति और शाश्वत निधि के रूप में परिणत कर दिया है। यद्यपि इस तथ्य से कदापि भी विमुख नहीं हुआ जा सकता कि उनका राष्ट्रीय-काव्य अपने युग की ऐतिहासिक चेतना तथा क्षणिक-चिरन्तन बुद्बुदों व प्रवाहों से गहराई और विस्तार के साथ प्रभावित हुआ है; परन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि उनकी रचनाएँ सामयिकता के क्रोड़ में आबद्ध होकर ही रह गईं। सामयिकता से ऊपर उठकर भी कवि ने निरखा-परखा है और अपनी हृदय-तरंगों को चिरन्तन काव्यमयी अभिव्यंजना भी प्रदान की है।

काव्य के गुणात्मक मूल्यांकन के दृष्टिकोण से, उनकी राष्ट्रीयता संकेतवाद के सामने गौण है। इसमें संदेह नहीं कि 'नवीन' ने कुछ राष्ट्रीय गीत उच्चकोटि के लिखे हैं पर ऐसे गीतों की संख्या कम है। उनकी अधिकांश कविताओं में सौन्दर्य का अन्वेषण है।[१] फिर भी उनका राष्ट्रीय काव्य-साहित्य भारतीय इतिहास तथा हिन्दी वाङ्मय की बहुमूल्य सम्पदा है। तत्कालीन युग, सत्याग्रह-आन्दोलन, राजनीति और हिन्दी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के प्रकर्ष को देखने के लिए, उनके राष्ट्रीय-काव्य का चिर महत्व है। 'नवीन' जी के राष्ट्रीय-काव्य की अवज्ञा करना अर्थात् हिन्दी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के इतिहास के एक महत्त्व-पूर्ण अध्याय से वंचित होना है जिसके बिना आधुनिक युग का समग्र तथा व्यापक व्यक्तित्व हमारे समक्ष नहीं आ सकता है।

'नवीन' जी के राष्ट्रवादी व्यक्तित्व में दुर्वासा, परशुराम के साथ ही साथ, अगस्त्य मुनि, दधीचि तथा विश्वामित्र के भी दर्शन किये जा सकते हैं। उन्होंने ध्वंस तथा निर्माण, दोनों ही के गीत गाये; परन्तु उनका ध्वंस चिर विनाश अथवा पूर्ण अनुर्वरता का परिचायक न होकर नवल-सृष्टि, अभ्युत्थान तथा मंगल-विधान का प्रतीक है।

'नवीन' जी का स्वातन्त्र्य-पूर्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य, प्रायः समग्र रूप में, कारागृह-जीवन की रचना है। इन रचनाओं का अध्ययन करने पर विदित होता है कि कवि के हृदय में प्रणय एवं राष्ट्रवाद में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है[२] और कवि अपने प्रेम-पक्ष का शमन करके,[३] राष्ट्रोन्मुख होने का प्रयास करना चाहता है।[४] अधिकांशतया यह भी देखा गया है कि कारागृह में जाकर कवि राष्ट्रीय परिस्थितियों की अपेक्षा अपने प्रणय के आलम्बन, विरह, स्मृति-जन्य वेदना आदि भावों, कल्पनाओं तथा तर्क-वितर्कों में अधिक संलग्न रहता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा एवं डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "आश्चर्य तो इस बात का है कि जो कवि देश के दुख-दर्द में भैरव हुंकार जैसी कविता लिखता है वही किसी कोमलांगी के सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है।"[५] डॉ० 'बच्चन' ने भी लिखा है कि "राजनीति में 'नवीन'

---

१. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३६२।
२. 'प्रलयंकर', क्यों रोते हो यार? ४० वीं कविता, छन्द ८।
३. वही, कारा में सातवीं श्रावणी रक्षा-पूर्णिमा, ३० वीं कविता, छन्द ४।
४. वही, चिन्ता, ५४ वीं कविता, छन्द ६।
५. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३६२।

जी का शरीर था, उनका मस्तिष्क भी हो सकता है; पर उनके हृदय की सरसतम भावना उनकी कविता में थी, उनकी कविता के लिए ही सुरक्षित थी। उनकी प्रकाशित रचनाओं को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि आकण्ठ राजनीति में डूबे रहने पर भी राजनीति-सम्बन्धी कविताएँ उनकी बहुत कम हैं। वे राजनीतिक कारणों से जेल भेजे गए थे। वहाँ चक्की चलाते, मूंज बटते हुए उनका खून खौलता, यदि वे वहाँ बैठकर ब्रिटिश सरकार पर अपना क्रोध-विरोध उगलते, देश को उत्साहित और उत्तेजित करने के लिए आवेशमयी रचनाएँ करते तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक न होता। पर वे वहाँ ऊँची दीवारों के बीच अपने 'प्राणवल्लभ', अपने 'मनभावन', अपने 'प्रीतम', अपनी 'मैना' को याद करते हैं। समय की कैसी जबरदस्त माँग थी कि इतना भावुक, इतना कोमल हृदय, इतना रससिक्त कवि, अपने को राजनीति की कवित्वहीन परिस्थितियों में झोंक देने को विवश हो गया था।"[1]

यद्यपि अप्रकाशित साहित्य (विशेषकर 'प्रलयंकर' काव्य-संग्रह) के अध्ययन करने से, कवि के राष्ट्रीय-काव्य-व्यक्तित्व को अधिक स्पष्ट, मुखर व प्रखर रूप में आने में सहायता प्राप्त होती है और तद्विषयक स्थिति कुछ सुधरती भी है; परन्तु प्रेम-काव्य भी उतनी ही प्रचुर मात्रा में आया है जितना वह पूर्व अवस्था में था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि के प्रेम-काव्य की प्रधानता पर कोई आँच नहीं आई। वास्तव में, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने ठीक कहा है कि 'नवीन' श्रृंगार और राष्ट्रीयता के ये दो विरोधी रस लेकर चले हैं किन्तु बाहर से दो विरोधी होते हुए भी दोनों वस्तुतः एक ही शारीरिकता की अभिव्यक्ति हैं। वीर-गाथा-काल के कवि जिस प्रकार एक ओर रण-संग्राम करते थे, दूसरी ओर शृङ्गार की अभ्यर्थना भी, उसी प्रकार अपनी शारीरिक अभिव्यक्ति में 'नवीन' की कृतियाँ हैं।[2]

स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य--स्वाधीन-भारत में आकर, कवि की राष्ट्रीय-भावना सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना प्रसार पा गई। इस क्षेत्र में, प्रमुखतया, चार उपादान प्राप्त होते हैं—(क) भारत-प्रेम, (ख) विश्व-प्रेम, (ग) वीर-स्तवन, और घ) विनोबा-स्तवन। उपर्युक्त अवयवों ने ही कवि के स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रवाद की प्रतिमा का गठन किया है।

भारत प्रेम—अन्य कवियों के सदृश्य, 'नवीन' जी ने भी अपनी मातृ-भूमि की वन्दना की तथा उसकी प्रशस्ति के गीत गाये। इन गीतों में भारत की महिमा और गरिमा का सुन्दर रूप से आकलन किया गया है।

भारत के स्वाधीन होने पर, हमारे कवियों ने सुन्दर राष्ट्र-गीतों का सृजन किया। इनमें 'नवीन' जी के प्रस्तुत गीत ने बड़ी ख्याति प्राप्त की—

कोटि-कोटि कण्ठों से निकली
आज यही स्वरधारा है,
भारतवर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्तान हमारा है।[3]

---

१. 'नये पुराने झरोखे', कविवर 'नवीन' जी, पृष्ठ ३३-३४।
२. 'संचारिणी', छायावाद का उत्कर्ष, पृष्ठ २१४।
३. 'आजकल', हिन्दुस्तान हमारा है, सितम्बर-अक्तूबर, १९४७।

इस कविता में, वन्दना, प्रशस्ति, वीर-पूजा तथा अतीत गौरव-गायन आदि समग्र सांस्कृतिक सोपान एकत्रित हो गये हैं। इस रचना में हमारे स्वर्णिम भूतकाल के कपाट खोले गये हैं और प्राचीन संस्कृति का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है। यह राष्ट्रीय-गीत 'वन्देमातरम' की कोटि का है और यह 'प्रसाद' के, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' तथा 'निराला' के, 'भारती जय विजय करे' की महिमा मण्डित प्रशस्त पंक्ति की शोभा को वहन कर सकता है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "श्री 'नवीन' की प्रसिद्ध कविता 'हिन्दुस्तान हमारा है' और स्कन्दगुप्त नाटक में प्रसाद के प्रसिद्ध आह्वान-गीत 'हिमालय के आँगन में जिसे प्रथम किरणों का दे उपहार' आदि में, भारतीय संस्कृति के विकास का सुन्दर पुनरावलोकन है। ये दोनों कविताएँ विषय के अनुरूप ही हैं।"[1]

कवि की वाणी, महिमा के पल्लवों का प्रस्फुटन करती है—

हमने बहुत बार सिरजी हैं
कई क्रान्तियाँ बड़ी बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही
अतिशय मान हमारा है।[2]

भारत-माता के साथ ही साथ, कवि ने अपनी एक अन्य कविता में, भारतवासियों की वन्दना करते हुए, उनका प्रशस्ति गायन किया है—

भरत-खण्ड के तुम, हे जन गण,
चमक रहे हैं तव शोणित में इस भारत-माता के रज कण,
अहंकार, मस्तिष्क, बुद्धि, मन, यह भव रूप और अभ्यंतर,
कला, काव्य, इतिहास पुरातन, ललित कलित कोमल गायन-स्वर,
तत्व-लक्ष्य एकान्त साधना, दर्शन, चिन्तन, मनन निरन्तर।[3]

विश्व-प्रेम—हमारी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, विश्व-मैत्री, पंचशील और इनसे अधिक महत्वपूर्ण, हमारी भारतीय संस्कृति की परम्पराएँ, हमारे दार्शनिक एवं पुनीत ग्रन्थों के प्रभाव के कारण, हमारे कवियों की भावना विश्व-प्रेम की ओर उन्मुख हो गई। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "हिन्दी में इस विषय (भारतवर्ष की विश्व-मैत्री नीति) पर अनेक कवियों ने अनेक रचनाएँ की और उनमें से अधिकांश का काव्य-गुण नगण्य नहीं है। फिर भी इनमें सबसे प्रबल स्वर पन्त, सियारामशरण गुप्त, 'नवीन' और दिनकर का ही रहा। पन्त और सियारामशरण में जहाँ देश की मुक्त आत्मा का पवित्र उल्लास है, वहाँ 'नवीन' और 'दिनकर' में उसका सात्विक ओज है।"[4]

स्वाधीनता प्राप्ति की पुनीत बेला में, कवि ने सर्वप्रथम भारतमाता से ही प्रार्थना की है कि वह हमें बल प्रदान कर नूतन तथा निष्कपट मानव बना दें। मानव की शुद्धि ही

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ ३१।
२. 'जागृति', सितम्बर १९६१, पृष्ठ २८।
३. 'प्रलयंकर', भरत-खण्ड के तुम हे जन-गण, तीसरी कविता, छन्द १।
४. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ८९।

मानवता तथा विश्व-प्रेम का मूलाधार है। विकारग्रस्त मानव ही विश्व में नाना प्रकार के वात्याचक्र उत्पन्न करता है। कवि की प्रार्थना है—

बल दो, मां, निष्कासित कर दें हम भीतर का गरल हलाहल,
बल दो, शान्त कर सकें हम निज अन्तर तर की शोणित-खलमल।[१]

कवि भारत-भूमि से विश्व की ओर उन्मुख होता है। वह 'ज्योतिर्मय' से प्रार्थना करता है कि विश्व-नाश का अन्धकार दूर हो जाये, वसुन्धरा का प्रांगण आलोक-पूरित हो—

वर दो, इस स्वाधीन देश के हम आबाल वृद्ध नर नारी,
तव विश्व भर रूप निहारें, करें नित्य उसका आराधन,
है ज्योतिर्मय, विश्व-नाश का तिमिर हरो, चमके वसुधांगन।[२]

कवि की इस मानवतावादी प्रवृत्ति तथा विश्व-प्रेम की भावना की चरम परिणति, सार्वभौमिक रूप में होती है। वह अशुभ को शुभ तथा असुन्दर को सुन्दर रूप में देखने के लिए लालायित हो पड़ता है—

बने असुन्दर, सुन्दर सन्मय,
क्षित्त चित बन जाए तन्मय,
रजकरण तव कर बने हिरण्मय,
यों इस क्षर को पद अक्षर दो,
मरु कण-कण में मधु रस भर दो।[३]

वीर स्तवन—कवि के श्रद्धालु मानस ने, प्रणतिपूर्वक अपने देश की विभूतियों तथा महापुरुषों के प्रति अपनी भक्ति-भावना अभिव्यक्त की है। 'नवीन' जी की एक अप्रकाशित एवं स्व-हस्तलिखित कविता में, 'अदृष्ट चरण-वन्दना' की गई है—

वंदन कर लूँ आज तुम्हारे अडिग अकम्पित उन चरणों में,
जिनकी महिमा रही अगीता जन-साहित्य के अधिकरणों में।।[४]

भारतमाता के पुत्रों के चरणों में कवि ने प्रणाम किया है—

जय जय, हे गुर्वाणि मातृ-भू जयतु, जयतु हे परम तपस्विनि,
जय हे मवितमालिके, जय, हे, जगपालिके अजस्रपयस्विनी।
राम-कृष्ण-जिनदेव-तथागत-जननि, जयतु हे गान्धी-प्रसविनि।[५]

गान्धी जी के जीवन-मरण को लेकर हिन्दी में अनेक कविताएँ लिखी गईं। प्रमुख कवियों में पन्त, सियारामशरण गुप्त, 'नवीन', दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र और सुमन आदि ने व्यवस्थित रूप से रचनाएँ की हैं। उनके बलिदान से प्रेरित होकर भी प्रायः इन्हीं कवियों ने

---

१. 'आकाशवाणी काव्य-संगम', भाग १, छन्द १, पृष्ठ ७६।
२. 'आजकल', हे ज्योतिर्मय, फरवरी, १९५६, मुखपृष्ठ २०, छन्द ३।
३. 'आकाशवाणी काव्य-संगम', भाग २, गायन-स्वन भर दो, छन्द ४, पृष्ठ ७०।
४. 'प्रलयंकर', अदृष्ट चरण-वन्दना, प्रथम कविता, छन्द १।
५. 'आकाशवाणी काव्य-संगम', भाग १, जन-तारिणि, मन-दैन्य-हारिणि हे !, छन्द १, पृष्ठ ७५।

अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की।[1] 'नवीन' जी ने अपनी 'तुम युग-परिवर्तक कालेश्वर' कविता में गान्धी जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, वर्तमान स्थिति का एक यथार्थ चित्र खींचा है—

तुम प्राण चढ़ाकर चले और,
हम मानव द्वेष-राग-रत हैं;
तुम निज शोणित दे चले, और,
हम तो ज्यों के त्यों अवनत हैं।[2]

गणतन्त्र भारत के युग में कवि ने भूदानयज्ञ के प्रणेता आचार्य विनोबाभावे को अपनी आस्था, भक्ति तथा अभिव्यक्ति का केन्द्र बनाया।

विनोबा-स्तवन—डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि प्रस्तुत कालावधि में काव्य के दो और प्रमुख विषय हमारे सामने आये—(१) भारतवर्ष की सफल अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-नीति, (२) सन्त विनोवा का भूदान, आन्दोलन। तत्वरूप में इस देश के कवि के लिए ये कोई नये विषय नहीं हैं। नेहरू की शान्ति-नीति, गान्धी की अहिंसा की राजनीतिक अभिव्यंजना है और विनोबा का भूदान-यज्ञ उसकी आर्थिक अभिव्यक्ति। काव्य-शास्त्र के शब्दों में तीनों का स्थायीभाव एक ही है। नवीन जी तथा श्री सियारामशरण आदि ने इस विषय को निष्ठा के साथ ग्रहण किया है।[3]

'नवीन' जी ने जिस प्रकार पराधीन भारत में, सन् १९४२ की क्रान्ति के समय, गान्धी जी में अपनी भक्ति उड़ेली थी; उसी प्रकार, गणतन्त्र भारत में, उनके शिष्य तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा भावे में अपनी श्रद्धा उड़ेली। उस समय कवि ने लिखा था कि "राष्ट्र की सहज बुद्धि गान्धी और विनोबा में[4] एकत्व के दर्शन कर रही है।"[5]

'नवीन' जी ने विनोबा के व्यक्तित्व की महिमा का वर्णन करते हुए, उनके सन्देशों का प्रतिपादन किया है। भूमि-दान यज्ञ का सार इन पंक्तियों में पिरोया गया है

नित्य सनातन, नित्य पुरातन,
अति करुणायन, नित्य नवीन,
'दानं समविभाजनं'—उसका
यह अद्भुत सन्देश अदीन।[6]

---

१. 'डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ९०।

२. 'आजकल', तुम युग-परिवर्तक कालेश्वर, अक्तूबर, १९५५, वर्ष ११, अंक ६, पूर्णाङ्क १३६, पृष्ठ १७।

३. डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृष्ठ ९१।

४. 'विनोबा-स्तवन', सन्त विनोबा, पृष्ठ ११।

५. वही, अहो मन्त्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर !, छन्द १६, पृष्ठ १०।

६. 'विनोबा-स्तवन', अहो मन्त्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर ! छन्द १७, पृष्ठ ९।

आचार्य विनोबा भावे ने कहा है कि जीवन-निष्ठा और साहित्य दोनों एक रूप होने चाहिए।[१] कवि 'नवीन' ने अपनी निष्ठा को, पूर्ण ईमानदारी के साथ, प्रस्तुत कृति में अभिव्यक्त किया है। आचार्य विनोबा भावे ने सामाजिक क्रान्ति एवं नूतन अर्थ व्यवस्था के आधार पर एक अभिनव परिपाटी का श्रीगणेश किया है। 'नवीन' जी की आस्था प्रारम्भ से ही गान्धी-वाद एवं सर्वोदय में रही है; अतएव, उन्हें यहाँ अपनी रागात्मिका वृत्ति को सुन्दर नीड़ प्राप्त हो गया। कवि ने वन्दनापरक शैली में इस विषय को प्रस्तुत किया है। कवि की अध्यात्मपरक चिन्तन तथा सांस्कृतिक रूप अपने प्रकर्ष के साथ यहाँ उपस्थित हुआ है।

'विनोबा स्तवन' और भूमिभाग'—श्री मैथिलीशरण गुप्त और 'नवीन' जी, दोनों ने ही, इस विषय पर अपनी-अपनी लेखनी चलाई है। गुप्त जी के भूमिभाग' नामक गीतिपुस्तिका में भूदान सम्बन्धी २१ प्रगीत संकलित हैं। दोनों कवियों की मूल प्रेरणा तथा विचारधारा में भी साम्य है। जहाँ 'नवीन' जी ने विनोबा के व्यक्तित्व को प्रमुख व प्रखर रूप में उपस्थित किया है, वहाँ गुप्त जी ने भूदान के विविध पक्षों को सरस व आख्यानपरक रूप में प्रस्तुत किया है। 'नवीन' जी ने भूदान के वैचारिक पक्ष तथा भारतीय संस्कृति के परम्परागत मूल्यों को अधिक उठाया है। गुप्त जी ने उसके व्यावहारिक पार्श्वों को स्पर्श किया है। 'भूमिभाग' में वन्दनात्मक, आशंशात्मक, व्यंग्यात्मक तथा आख्यानात्मक शैली में अपने विषय को रोचकता तथा जन-सम्यता के साथ प्रस्तुत किया है; जबकि 'नवीन' जी का 'विनोबा-स्तवन' वन्दना, ऋजुता, गाम्भीर्य तथा गीतिपरक वृत्तियों को प्रश्रय प्रदान करता है। गुप्त जी की श्रद्धा इस क्रान्ति को अत्यावश्यक मानती है—

कैसे भूमि समस्या सुलझे, नए जाल में देश न उलझे,
इसके समाधान करने में रक्षित रख निज रूप-वेश।[२]

'नवीन' जी के समान गुप्त जी भी कहते हैं—

प्रभु ने जिस दिन दिया शरीर,
दिये उसी दिन हमें दयाकर भू, नभ, पावक, नीर, समीर।[३]

कवि के प्रति कही गई व्यंग्योक्तियाँ जहाँ 'भूमिभाग' में सरसता के पल्लव थिरकाती हैं, वहाँ यह तत्व 'विनोबा-स्तवन' में अनुपलब्ध है। भूमिहीन का व्यंग्य द्रष्टव्य है—

कल्पित प्रिया विरह की बाधा,
सहते हो तुम आप अगाधा।
किन्तु यथार्थ अभावों का हम सिर पर बोझ लिया करते हैं।[४]

दोनों कवियों की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की ये प्रतिनिधि रचनाएँ, अपने-अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं। 'नवीन' ने अपना ध्यान सन्त विनोबा के

---

१. आचार्य विनोबा भावे—'साहित्यिकों से', वागीश्वर वरदान दे, पृष्ठ १।
२. श्री मैथिलीशरण गुप्त—'भूमिभाग', उत्तरप्रदेश के प्रति, पृष्ठ ३३।
३. 'भूमिभाग', भूमिहीन, पृष्ठ ६।
४. वही, पृष्ठ १४।

सांस्कृतिक एवं सन्देशप्रद व्यक्तित्व पर ही केन्द्रित किया और गुप्त जी ने उनके द्वारा प्रवर्तित आन्दोलन के सामाजिक आर्थिक पहलुओं को उठाया। स्रष्टा तथा सृष्टि को अपने विषय बनाने वाले ये दोनों कवि, एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। 'विनोबा' जी तथा उनके भूदान पर हिन्दी में विपुल कविताएँ लिखी गईं, परन्तु उपर्युक्त दो कवियों में ही उसका चिरन्तन, गम्भीर तथा संयत रूप आ पाया है।

उपसंहार—स्वतन्त्र भारत में 'नवीन' जी की राष्ट्रीयता ने सांस्कृतिक तत्वों को अपनी सीमाओं में अधिकाधिक समेट लिया। राष्ट्रवाद के राजनैतिक रूप की अपेक्षा उसका सांस्कृतिक पक्ष ही अधिक पुष्ट, स्थायी तथा प्रेरणास्पद होता है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "सामयिक प्रभाव का दूसरा नाम फैशन है और साहित्य भी फैशन से बच नहीं सकता। हिन्दी में न जाने कितने कवियों ने राष्ट्रीयता की मूलधारा में अवगाहन किये बिना प्राणों के स्फुलिंग की जगह मुंह के झाग उगले और छिछले दिल और दिमाग़ के लोगों ने झूम-झूम कर उनकी दाद दी। परन्तु गम्भीर कवियों और पाठकों को इनमें आत्माभिव्यक्ति नहीं मिली। इसीलिये भारत-भारती के कवि को साकेत और यशोधरा में आत्माभिव्यंजन खोजना पड़ा, रेणुका के कवि को कुरुक्षेत्र में आकर आत्म-साक्षात्कार हुआ, 'नवीन' को सांस्कृतिक कविताओं में अपनी आत्मा का रस उड़ेलना पड़ा और जो ऐसा नहीं कर सके वे काव्य-इतिहास के पृष्ठ से लुप्त हो गये।[1]

आलोच्य युग में कवि के राष्ट्रवाद ने मानवता, विश्व-मैत्री तथा उच्चतर जीवन-मूल्यों की ओर अपने आप को मोड़ लिया। सांस्कृतिक पार्श्व की सघनता के साथ ही साथ, आध्यात्मिकता की पुष्टि भी विकसित हो गई। कवि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में दार्शनिक रचनाओं की ओर उन्मुख होने के कारण भी, राष्ट्रीय-काव्य की ओर प्रायः वीतराग रहने लगा। इसका कारण कवि की निजी मनोदशा तथा वयःवृद्धि तो थी ही, परन्तु साथ ही अब पराधीन भारत के सदृश्य राजनैतिक उद्देश्य भी उतने स्पष्ट व आकर्षक नहीं रह गये थे।

वर्तमान-युग में 'नवीन' जी की राष्ट्रवादिता की धारा शरद् ऋतु के मन्द तथा गम्भीर प्रवाह में परिवर्तित हो गई। इस युग के राष्ट्र-परक काव्य में प्रौढ़ता तथा सघनता के दर्शन होते हैं। काव्य की इस परिपक्वावस्था में संहित का आ जाना भी स्वाभाविक ही था। भाषा तथा शिल्प-पक्ष भी प्रांजल और सुघड़ दिखाई देने लगा।

पराधीन भारत की तुलना में स्वाधीन भारत का राष्ट्रपरक काव्य-साहित्य अत्यन्त स्वल्प है परन्तु जितना भी है, वह अमरता के तत्वों से सम्मिश्रित है। सुस्थिरता, प्रौढ़ता व चिन्तन ने मिलकर आलोच्य-युग के राष्ट्रपरक काव्य को अपना अनूठा स्थान प्रदान किया है।

'नवीन' जी की ख्याति तथा साहित्यिक प्रतिष्ठा का मूलाधार उनका समग्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-व्यक्तित्व है। इसी ने ही जहाँ उन्हें भारतमाता का 'रण-बाँकुरा' बनाया, वहाँ भारत-भारती का भव्य भक्त भी दोनों की सेवा में रत, कवि का व्यक्तित्व, अपना अप्रतिम इतिहास छोड़ देता है।

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, पृष्ठ ३६।

प्रबन्ध कृति : प्राणार्पण

प्राणार्पण रचना की भूमिका—'उर्म्मिला' तथा अन्य रचनाओं के सदृश्य, 'नवीन' जी की यह स्वातन्त्र्य-पूर्व युग की कृति, स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्रकाशित हुई है। इस कृति के के प्रकाशन-रूप को, अपने स्रष्टा के मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

यह कृति अमर शहीद स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के ज्वलन्त आत्मोत्सर्ग पर आधारित है। बुधवार, ता० २५ मार्च, १९३१[1] को कानपुर में हुए साम्प्रदायिक झगड़े में गणेश जी ने अपनी आत्माहुति दी थी। कवि ने इसी घटना के आधार पर, लगभग १० वर्ष पश्चात्, सन् १९४१ में नैनी के केन्द्रीय कारागृह में, इस रचना की सृष्टि की।[2] यह घटना, कवि के लिए दस वर्ष की धरोहर न होकर, आजीवन-निधि के रूप में विद्यमान रही है।[3]

सन् १९४१ में लिखित यह कृति सन् १९६२ में, एकादश वर्ष पश्चात्, प्रकाशित हुई है। इस सम्पूर्ण कृति का अत्यल्प काव्यांश ही[4] इस बीच प्रकाशन के क्षेत्र में आ सका; और प्राय: समूचा काव्य पाण्डु लिपि के रूप में ही, पड़ा रहा।

आलोच्य-कृति के मूलांश में पाँच सर्ग अथवा पाँच 'आहुतियाँ' थीं, परन्तु प्रकाशित कृति में चार सर्ग ही हैं। पंचम सर्ग या 'पंचमाहुति' जिसका नाम 'गीतमाला' था;[5] मरण-गीतों के एक पृथक् काव्य-संग्रह के रूप में प्रकाशित हो रहा है जो कि कवि की षष्ठ अप्रकाशित काव्य-कृति है।[6]

परिशोधन-परिवर्धन—भाषा-विन्यास एवं अभिव्यक्ति कौशल की अभिवृद्धि के लिए प्राय: प्रत्येक कवि अपनी रचना का परिष्कार करते हैं। 'नवीन' जी ने इस दिशा में जो परिमार्जन किया है, वह प्रधानतया शब्द-परिवर्तन तथा भाषा-शोधन से सम्बध रखता है।

शब्द-परिवर्तन के माध्यम से कवि ने उपयुक्त शब्द-योजना, संगत रूप, क्रम-विन्यास तथा मर्मस्पर्शिता के तत्वों की अधिक संयोजना की है।

---

१. 'गणेशशंकर विद्यार्थी', आत्मोत्सर्ग, पृष्ठ १०६।

२. (क) "यह ग्रन्थ ('प्राणार्पण') लेखक ने अपनी गत जेल-यात्रा की अवधि में लिखा है। अभी अप्रकाशित है।"—'वीणा', टिप्पणी, जुलाई, १९४२, पृष्ठ ७७४।

(ख) 'प्राणार्पण' की 'पंचमाहुति' के १९ गीतों में से १२ गीतों का स्थानांकन नैनी है तथा समय के अनुसार, जुलाई-अक्तूबर, १९५१ ई० की अवधि अंकित हुई है।
—'मृत्युधाम' या 'सृजन-साँझ' के आधार पर।

३. 'प्राणार्पण', प्रस्तावना, प्रथम गीत, पृष्ठ १।

४. (क) 'वीणा', ओ तुम प्राणों के बलिदानी, जुलाई, १९४२, पृष्ठ ७७३-७७४। (ख) 'पुष्करिणी', गणेशशंकर : चतुर्थ आहुति, पृष्ठ २९७-२९८। (ग) 'नर्मदा', प्रयाण, विद्यार्थी स्मृति-अंक, पृष्ठ ११७-११८।

५. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'नवीन' स्मृति-अंक, पृष्ठ २९।

६. 'मृत्युधाम' या 'सृजन-झाँझ'—षष्ठ अप्रकाशित काव्य-संकलन।

भाषा-शोधन—

(१) मूल रूप—मानव दौड़ा लिए पलीता, हहर-हहर जल उट्ठी होली ।[१]

संशोधित रूप—मानव दौड़ा लिये अँगारे, हहर-हहर जल उट्ठी होली ।[२]

(२) मूल रूप—आर्य्य, कई बरसें बीती हैं, हम न कर सके तव गुण गायन ।

अब भी क्या मालूम कि कैसे होगा मुक्त काल वातायन ।[3]

संशोधित रूप—देव ! कई वत्सर बीते हैं, हम न कर सके तव गुण-गायन,

ज्ञात नहीं अब भी कि कौन-विधि होगा मुक्त काल-वातायन ।[४]

भाषा-शोधन के द्वारा कवि ने अपने संस्कृत-निष्ठ रुझान का परिचय दिया है और अभिव्यंजन-कौशल की श्रीवृद्धि की है । भाषा में माधुर्य गुण की वृद्धि भी हो गई है और काव्यानुकूलता की प्रगति दिखाई पड़ती है । इन परिवर्तनों से सिर्फ प्रभाव-वृद्धि में ही सहायता मिली है; काव्य के अन्य अवयवों पर इनका कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा है ।

नामकरण—'नवीन' जी ने इस कृति का नामकरण हुतात्मा गणेश जी के अमर आत्मोसर्ग के आधार पर किया है। इसमें कोई अनौचित्य दृष्टिगोचर नहीं होता । हमारे आचार्यों ने यद्यपि खण्ड-काव्य के नामकरण के लिए कोई पृथक् तथा विशिष्ट निर्देश नहीं दिये है; फिर भी आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणों का वर्णन करते हुए महाकाव्य के नाम के सम्बन्ध में लिखा है कि महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर अथवा कथावस्तु, नायक या अन्य पात्र के नाम के आधार पर आधारित हो, पर प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य-विषय के आधार पर रखा जाय ।[५] इस आधार पर, प्रस्तुत-काव्य गणेश जी के बलिदान की कथा-वस्तु को प्रस्तुत करता है; एतदर्थ उसका 'प्राणार्पण' नामकरण युक्तिसंगत है । साथ ही, इस शैली के नामकरण हिन्दी में प्रचुरमात्रा में प्रचलित भी हैं यथा, श्री सियारामशरण गुप्त ने गणेश जी के प्राणार्पण पर लिखित काव्य का नामकरण 'आत्मोत्सर्ग किया ।[६]

इसके अतिरिक्त, इस कृति का नामकरण, यदि कवि गणेश जी के नाम पर करता तो उसे उनके जीवन-वृत को भी समाहित करना पड़ता जिसके फलस्वरूप यह कृति खण्ड-काव्य की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती और कवि के अभीष्ट की सटीक पूर्ति भी नहीं हो पाती । कवि गणेश जी के जीवन के सर्वाधिक प्रभावपूर्ण तथा प्रोज्वलरूप को ही चित्रित करना चाहता था जिसके लिए प्रस्तुत विधि के अतिरिक्त, अन्य कोई श्रेष्ठ युक्ति नहीं थी । कवि ने, धनञ्जय की भाँति, समग्र चिड़िया को लक्ष्य न बनाकर, उसकी एकाक्ष को ही अपने शर-सन्धान का केन्द्र बनाया है । इस प्रकार, सर्व दृष्टिकोण से रचना का नामकरण उपयुक्त तथा सारगर्भित है ।

---

१. 'वीणा', जुलाई, १९४२, पृष्ठ ७३ ।

२. 'प्राणार्पण', पृष्ठ १ ।

३. 'वीणा', जुलाई, १९४२, पृष्ठ ७७४ ।

४. 'प्राणार्पण', पृष्ठ २ ।

५. 'साहित्य दर्पण', षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३२१ ।

६. श्री सियारामशरण गुप्त—'आत्मोत्सर्ग' ।

वस्तु-योजना—गणेश जी का बलिदान राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास की चिरस्मरणीय घटना है। इस घटना ने ऐसा ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया था कि वह अपनी सानी नहीं रखता। सत्याग्रहियों, राजनीतिज्ञों तथा राष्ट्रभक्तों को नहीं, प्रत्युत् 'कविर्मनीषियों' को भी इस घटना ने झकझोर दिया था। उनका मानस आन्दोलित हो उठा था। उसी मन्थन का अमृत, यहाँ हमें, 'नवीन' जी की इस वृत्ति के रूप में, प्राप्त होता है।

गणेश जी 'नवीन' जी के निर्माता तथा पथ-प्रदर्शक रहे हैं। उन्होंने ही 'नवीन' को गढ़ा, साजा-सँवारा और राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी प्रतिमूर्ति बनाकर गतिशील कर दिया। इस कृति से ही नहीं, अपितु पूर्वरूप से ही 'नवीन' जी ने अपने 'अग्रज',[1] 'रक्षक',[2] 'बलिदानी'[3] तथा 'आराध्य'[4] को भाव-सुमन अर्पित करने प्रारम्भ कर दिये थे। 'प्रभा' में प्रकाशित कवि की गणेश जी विषयक रचनाओं ने[5] इस प्रौढ़ तथा सुगठित काव्य-कृति की भूमिका बनाना शुरू कर दिया था। कालान्तर में, कवि के भाव-प्रसून, श्रद्धा तथा भक्ति के रसाल में परिवर्तित हो गये जिनके काव्य-रस का आस्वाद इस रचना से लिया जा सकता है।

आलोच्य-कृति की कथा-वस्तु का आधार न तो कोई कपोल-कल्पना ही है अथवा निर्जीव स्पन्दन। इसमें तो कवि की जीवन्त अनुभूतियाँ ही अपनी यथार्थवादिता तथा निष्ठा के साथ मचल कर, बिखरी हैं।[6] कवि के इस काव्य-श्रद्धा तथा भाव-तर्पण ने ही, प्रस्तुत खण्ड-काव्य का प्रभविष्णु आकार धारण कर लिया है।

वस्तु-विश्लेषण—'नवीन' जी ने अपने एक निबन्ध में,[7] पुण्यलोक गणेश जी के बलिदान की घटना के अख्यान को प्रस्तुत किया था; अतएव, उनके ही शब्दों को, इस काव्य के कथानक के विश्लेषण में, उद्धृत किया जा सकता है—

---

१. तेरा अनुज बता दे कैसे
तुझे सिखावे यों फँसना ?—'कुंकुम', पृष्ठ २।

२. तेरे वरदहस्त छाए हैं,
अब भी मेरे मस्तक पर।—'कुंकुम', पृष्ठ २।

३. बलिदानी, बलिदान प्रथाएँ
सिखलाऊँ तुझको क्यों कर ?—'कुंकुम', पृष्ठ २।

४. आंसुओं को कठिनता से रोकते—
जप रहे जो नाम तेरा ही सदा—
वे बने उन्मत्त से जो फिर रहे—
खिल उठेंगे देख अपने ढीठ को।—'प्रभा', अप्रैल, १९२३, पृष्ठ ३१९।

५. (क) 'प्रभा', आगमन की चाह, अप्रैल, १९२३, पृष्ठ ३१९। (ख) 'प्रभा', जाने पर, अप्रैल, १९२३, पृष्ठ ३२१।

६. 'प्राणार्पण', अथ श्री प्रथम आहुति, छन्द १।

७. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'आजकल', पुण्यलोक गणेश जी, मार्च, १९५५, वर्ष १०, अंक ११, पृष्ठ १४-१७।

"१६३१ का कानपुर का हिन्दू-मुसलिम तुमुल युद्ध विभीषिका पूर्ण था। तत्कालीन शासन उस तुमुलता को बढ़ाने में सहायक ही नहीं उसका प्रेरक भी था। खुले रूप में, दिन दहाड़े मार-काट, लूट-खसोट, गृह-दाह, बलात्कार, बालहत्या, सब कुछ होता रहा। अधिकारी गण हँसते-मुस्कराते रहे। वे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया। गणेशशंकर ने यह सब देखा और उनका हृदय विक्षोभ, करुणा और कुछ करने की भावना से भर गया।

अधिकारी-गण दानव हो गये। कानपुर वासी दानव हो गये। मानवता का अवशेष लुप्त हो गया। तो क्या ? एक मानव कानपुर में बच रहा था। क्यों न वह अपने सामर्थ्य भर त्रस्त, भीतिग्रस्त, मृत्यु-मुख में पड़े हुये हिन्दू-मुसलमानों को उबारने का भार अपने ऊपर ले ले ! कानपुर के बंगाली मोहाल नामक क्षेत्र में प्रायः दो-सौ मुस्लिम नर-नारी घिरे पड़े थे। रात में कुछ मार डाले गये थे। ये बचे हुए डेढ़-दो-सौ लोग उस रात को मारे जाने वाले थे। गणेशशंकर बिना खाये-पिये प्रातः घर से निकल गये। बंगाली मोहाल पहुँचे। वहाँ के आक्रान्तक हिन्दू गणेशशंकर को देखकर सहम गये। गणेशशंकर ने वहाँ के घिरे हुये मुसलमान नारी-नर बालकों को निकाला और उन्हें मुसलमान मोहल्लों में पहुँचाया। गणेशशंकर को हृदय से असीस देते हुए ये भयग्रस्त लोग सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये।

इतने में गणेश जी को समाचार मिला कि कोई दो-सौ हिन्दू कानपुर के चौबे गोला नामक मुस्लिम मोहल्ले में मौत की बाट जोह रहे हैं। बंगाली मोहल से सीधे वे चौबे गोला चल दिये। चौबे गोला तथा उसके आस-पास के क्षेत्र मुस्लिम क्षेत्र थे। वहाँ किसी हिन्दू के जाने का साहस नहीं पड़ सकता था। हिन्दू को देखते ही छुरियाँ चमक उठती और वह ढेर कर दिया जाता। यह स्थिति थी, पर गणेशशंकर चल पड़े।

वहाँ जाने का मार्ग चौकबजाजे से होकर था। यह हिन्दू-क्षेत्र था। जब गणेश जी चौक पहुँचे तो हिन्दुओं ने उन्हें धर लिया। 'नहीं जाने देंगे आपको, गणेश जी।' गणेश जी बोले, 'भाइयो, वहाँ प्रायः दो-सौ हिन्दू स्त्री-बच्चे घिरे पड़े हैं। रात होते ही वे समाप्त कर दिये जायेंगे। मैं उन्हें निकालने जा रहा हूँ।' लोग बोले, 'नहीं गणेश जी, हम नहीं जाने देंगे।' पर, वे झगड़कर आगे बढ़े। लोग चिल्लाये, 'क्यों जा रहे हो, गणेश जी ?' गणेश जी ने उत्तर दिया, मरने के लिये, तुम भी चलोगे ?' और यों कहते हुए वे आगे बढ़ गये। हाँ, इतने आगे बढ़ गये कि उत्तरप्रदेश आज तक उनके आने की बाट जोह रहा है।

चौक से चलकर वे उस मुस्लिम क्षेत्र में पहुँचे। उनके साथ एक हिन्दू और मुसलमान स्वयंसेवक था। वे एक-दो मोटर लारियाँ, घिरे हुओं को लिवा लाने के लिए लेते गए थे। वहाँ जो पहुँचे तो वहाँ के बड़े-बूढ़ों (मुसलमान) ने उनके माथ चूमे। बंगाली मोहाल में जो उन्होंने किया था; उसका समाचार वहाँ फैल चुका था। लोग बोले— 'गणेश जी, आप इन्सान नहीं, आप फरिश्ते हैं। गणेश जी ने हिन्दू स्त्री-बच्चों और पुरुषों को निकाला। लारियाँ भर गई। इतने में पास के एक अन्य मुस्लिम मोहल्ले से 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगाता हुआ और 'मारो-मारो' का घोष करता हुआ एक उन्मत्त दल जाता दिखाई दिया। गणेश जी बोले, 'तुम लारियाँ ले जाओ, मैं इन्हें रोकता हूँ।'

लारियाँ चल दी। इतने में एक मुस्लिम युवक दौड़ा आया। वह गणेश जी से बोला,

'विद्यार्थी जी आप भागिये। वे लोग अभी कुछ दूर हैं, आप अपनी जान बचाइये। वे लोग पागल हैं, आपको मार देंगे।' यों कहकर, वह गणेश जी को खींचकर भागने लगा। गणेश जी ने हाथ छुड़ा लिया और अत्यन्त शान्त स्वर में बोले, 'मैंने जीवन में कभी पीठ नहीं दिखाई है। भागकर मैं अपनी जान नहीं बचाना चाहता। मुझे यदि मारकर भी इन लोगों की खून की धारा बुझे तो भी ठीक है।'

उन्मत्त समूह ने उन्हें घेर लिया। जिन लोगों ने गणेश जी के बंगाली मोहाल के कार्यों का समाचार जान लिया था वे चिल्लाते रहे कि ये फरिश्ते हैं; इन्हें न मारो। पर, कौन सुनता? एक ने एक भाला पीछे से उनकी कमर में भोंक दिया। भाले की नोक आगे अण्ड-कोष तक निकल आई थी। वे खड़े थे। इतने में एक-दूसरे ने हुमक कर उनके सिर पर लाठी का प्रहार किया। और यों मानवता का अनन्य पुजारी खेत रहा।''[1]

प्रबन्ध-शिल्प—प्रस्तुत-कृति को चार सर्गों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक सर्ग को कवि ने 'आहुति' के नाम से सम्बोधित किया है। यह असंगत भी नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता की बलिवेदी पर गणेश जी ने अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी थी। कवि भी, इसीलिए, प्राणों के बलिदानी के जीवनान्त की कथा का आकलन करते समय, अपनी काव्य-मयी आहुतियाँ डालता चला जाता है।

'प्रस्तावना' में, कवि ने गणेश जी की वन्दना की है। काव्य के प्रारम्भ में, अपने इष्ट की स्तुति करना, हमारे काव्य तथा शास्त्र की परम्परा रही है। गणेश जी का नाम भी 'करिबर बदन' गणपति जी का स्मरण दिलाता है; एतदर्थ, इस दृष्टिकोण से भी वन्दना सार्थक ही सिद्ध होती है। 'प्रस्तावना' के द्वितीय गीत में तत्कालीन साम्प्रदायिक विद्वेष तथा उद्वेग की भयावह स्थिति की तीक्ष्ण झलक प्रदान की गई है। श्रीमद्भगवद् गीता की वाणी 'यदा-यदा हि धर्मस्य' और लोक-नायक तुलसी के कथन 'जब-जब होय धर्म की हानि' का यहाँ चित्र उपस्थित किया गया है।

संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य की भाँति खण्ड-काव्य की चर्चा में सर्गबद्धता का नियम अनिवार्य नहीं बताया। महाकाव्य के लिये सर्ग-बद्ध होना अनिवार्य तत्व है। कारण यह है कि उनमें मानव-जीवन की बहुमुखी परिस्थितियों का समावेश होता है और कवि अनेक प्रासंगिक कथाओं को भी अपने साथ लेता चलता है। फलतः कवि सम्पूर्ण कथा को इस प्रकार अनेक सर्गों में विभक्त करके चलता है जिससे प्रासंगिक कथाओं के सूत्र आधिकारिक कथा को बढ़ाने में सहायक हो सकें। अतः महाकाव्य में कथा के अविच्छिन्न प्रवाह के लिये सर्गों का बन्धान नितान्त आवश्यक हो जाता है। किन्तु खण्ड-काव्य के लिये यह नियम अनिवार्य नहीं। उसकी कथा, सर्गों में होकर भी गूँथी जा सकती है और उसके बिना भी उसका प्रणयन हो सकता है, क्योंकि जीवन के जिस विच्छिन्न अंश को अथवा घटना को लेकर कवि चलता है, उसमें विस्तार का क्षेत्र बहुत छोटा होता है। फलतः खण्ड-काव्य में कथा की धारा आद्यन्त एक रस भी चल सकती है और सर्गों में बँधकर भी।[2]

---

१. 'आजकल', मार्च, १९५५, पृष्ठ १६-१७।

२. डॉ० शकुन्तला दुबे,—'काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास', खण्ड-काव्य का स्वरूप, पृष्ठ १४६-१४७।

'नवीन' जी ने सुविधा तथा उचित प्रस्तुतीकरण के दृष्टिकोण से, 'प्राणार्पण' का सर्गों में विभाजन किया है। प्रस्तावना तथा प्रथम सर्ग में काव्य की पृष्ठभूमि अंकित है। द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में, तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति, राष्ट्रीय भावना, महात्मा गान्धी के सत्याग्रह आन्दोलन का उत्कर्ष स्वाधीनता का प्रतिज्ञा-पत्र, गान्धी-इरविन समझौता, भगतसिंह को प्राणदण्ड, गृह-युद्ध, जन-जागृति, साम्प्रदायिक झगड़ों का श्रीगणेश आदि चित्रण किया गया है। इस प्रकार प्रथम दो सर्ग, भूमिका-निर्माण में जुटाये गये हैं। जहाँ प्रथम सर्ग में तत्कालीन परिस्थितियों का भावपरक एवं उत्तेजना प्रधान वर्णन है; वहाँ द्वितीय सर्ग में उसका वस्तुपरक एवं राजनैतिक राष्ट्रवाद विषयक चित्रण है।

काव्य-कथा का वास्तविक अंश दिनांक २४ तथा २५ मार्च, १६३१ से सम्बन्ध रखता है और वह तृतीय सर्ग से प्रारम्भ होता है। तृतीय सर्ग में गणेश जी के २४ मार्च की स्थिति का वर्णन है। वे श्लथ तथा चिन्तित हैं। रात्रि भर वे विचार-विमर्श करते हैं। कवि ने इसी विचार-वीथिका में हिंसा-अहिंसा, आँग्ल-शासन की उदासीनता, विदेशियों के प्रति अपना आक्रोश आदि के दृश्यांकन किये हैं। गणेश जी दृढ़प्रतिज्ञ हो जाते हैं। जन-जन की पीड़ा-मुक्ति के लिए वे कटि-बद्ध हो जाते हैं। रात्रि, उषा में परिणत हो जाती है। चतुर्थ सर्ग में गणेश जी की जन-सेवा, वीर-भावना तथा आत्मोत्सर्ग का चित्रण है।

प्रबन्धात्मकता तथा कथा-प्रवाह के दृष्टिकोण से इस कृति का चतुर्थ सर्ग ही महत्वपूर्ण है जो सबसे अधिक सक्रिय तथा दीर्घ है। प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में कथा का प्रायः अभाव ही है और तृतीय सर्ग में कथानक की क्षीण-रेखाएँ ही आ पायी हैं। चतुर्थ सर्ग में, कथानक का उत्कर्ष, सघनता, क्रियाशीलता तथा समाप्ति, सभी कुछ, आकर एकत्रित हो जाते हैं।

कवि की गीतात्मिका वृत्ति तथा उससे बढ़कर विचार-मन्थन के उपकरणों से प्रबन्धात्मकता पर आघात पहुँचा है। कवि का दृष्टिकोण भी, इसे घटनापरक काव्य बनाने का नहीं प्रतीत होता। कवि की श्रद्धा का निर्झर होने के कारण, जहाँ इसमें भावना की प्रधानता है; वहाँ अग्रज का अर्चन होने के नाते, चरित्र तथा मनन-चिन्तन के तत्वों का प्राधान्य है।

चरित्र-चित्रण—वस्तुतः 'प्राणार्पण' चरित्र-प्रधान काव्य है। कवि ने प्रारम्भ में ही इस बात का स्पष्ट संकेत कर दिया है।[1] रचनाकार ने गणेश जी के उद्भव तथा महत्व को अलौकिक दिव्यता प्रदान की है।[2]

२५ मार्च, १६३१ के सुबह ही यह अहिंसा का पुजारी बलिदान के मार्ग पर चल पड़ा। लोगों के अनर्गल बकने पर भी, उसकी तनिक चिन्ता न कर, वे अपने असि-पथ पर अडिग रहे। उन्होंने हिन्दू बस्ती से मुसलमान नर-नारी और बालकों को उबारा। दोपहर हो

---

१. मेरे गणेश की यह गाथा, मेरे अग्रज का है अर्चन,
है कोई काव्य नहीं, यह तो है केवल मम श्रद्धा-तर्पण॥
—'प्राणार्पण', प्रथम सर्ग, छन्द २, पृष्ठ ५

२. 'प्राणार्पण', प्रस्तावना, प्रथम गीत, पृष्ठ २।

गई। गणेश जी का मुख कुम्हला गया। एक वृद्धा ने जल पीने का आग्रह किया, सो उन्होंने मना कर दिया।[१]

गणेश जी के जनहितकारी तथा निर्भय कार्यों ने उनको सर्वप्रिय मानव बना दिया। लोगों की सद्भावनाएँ इस शान्ति-दूत के प्रति बरबस ही प्रकट हो गई।[२] हिन्दू बस्ती से जब वे मुस्लिम बस्ती की ओर हिन्दू नर-नारियों के उद्धारार्थ गये तो वहाँ भी स्नेह की वृष्टि होने लगी।[३] वहाँ उन्होंने अपने कर्त्तव्य को पूरा किया। विपत्तिग्रस्त हिन्दू-नर नारियों को प्राण-दान दिया और उन्हें उस स्थल से विदा कराया। वे दृढ़चेता और वीर पुरुष थे। कापुरुषता को उन्होंने गले नहीं लगाया था। एक क्रोध-मद-मत्त, हत्या-दत्त-चित्त और रक्तपायी मुस्लिम दल को देखकर, अपने सहयोगी मुस्लिम स्वयं-सेवक के अनुरोध तथा खींचने पर भी, उन्होंने खेत छोड़कर भागना कायरता तथा पाप समझा। हत्यारों ने वहीं उनका काम तमाम कर दिया।[४]

इस प्रकार गणेश जी ने प्राणोत्सर्ग का अभूतपूर्व दृष्टान्त प्रस्तुत किया। दुनिया के इतिहास में यह घटना विरल है।[५] गणेश जी के बलिदान का महत्व विशिष्ट एवं अनूठा है। कवि ने इस आत्मोत्सर्ग को ईसा और दधीचि के आत्म-त्याग से भी एक दृष्टि से, श्रेयस्कर बतलाया है —

> **ईसा औ' दधीचि तुंग गिरि-शिखरों पे चढ़,**
> **देते हैं सन्देश नये जग-जन-गण को;**
> **इन ऋषिकल्प, देवकल्प आर्षमुनियों ने,**
> **उर्ध्व बाहु होके ललकारा है मरण को;**
> **पर ये थे साधारण जनगण से बहुत भिन्न,**
> **इनने तो सिद्ध किया ईशावतरण को।**
> **किन्तु श्रीगणेश जी जन-पंक्ति में प्रतिष्ठित हो,**
> **करने चले हैं सिद्ध मानवाचरण को।[६]**

इस प्रकार 'नवीन' जी के चरित्र-नायक में, महिमामय बलिदान, कर्तव्यपरायणता, महान् संकल्पवृत्ति, साहसिकता, सात्विकता, मानवता के प्रति निष्ठा, अहिंसा-प्रेम, सत्यवादिता तथा समन्वयवादिता के वन्दनीय गुण प्राप्त होते हैं।

युग-चेतना - आधुनिक युग की राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना की, इस काव्य में, सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टिकोण से, इस काव्य का 'नवीन' साहित्य में सर्वथा पृथक् एवं अनुपमेय स्थान है।

---

१. 'प्राणार्पण', छन्द १६, पृष्ठ ३८।
२. वही, छन्द २२, पृष्ठ ३६।
३. वही, छन्द ४६, पृष्ठ ४८।
४. वही', छन्द ५६, पृष्ठ ५१।
५. वही, छन्द ३८, पृष्ठ ४४।
६. वही', छन्द ३७, पृष्ठ ४४।

प्रथमतः, काव्य-कथा का सम्बन्ध ही आधुनिक युग से है। गणेश जी का व्यक्तित्व राष्ट्रीय-आन्दोलन के इतिहास में प्रतिष्ठित तथा ख्याति प्राप्त रहा है। वे उत्तरप्रदेश के अग्रणी नेताओं में से थे।

'नवीन' जी ने सन् १९३०-३१ की राष्ट्रीय-चेतना को इस काव्य में वाणी प्रदान की है। इस कालावधि की घटनाओं के लिये ही द्वितीय सर्ग का निर्माण किया गया है। स्वयं रचनाकार तथा उसका चरित्रनायक, दोनों ही, इस युग से घनिष्ठतम रूप में सम्बद्ध हैं। अतएव, कवि की प्रत्यक्ष अनुभूतियों को ही यहाँ स्थान प्राप्त हुआ है।

कवि ने युग-चेतना के अन्तर्गत, तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन, क्रान्तिकारियों के कार्य, गान्धी जी तथा उनका सत्याग्रह आन्दोलन, जनजागृति, ब्रिटिश सरकार की फूट की नीति और साम्प्रदायिकता के विष को फैलाने की चालों पर प्रकाश डाला है। सन् १९३१ की दो प्रमुख घटनाएँ—गान्धी जी का नमक सत्याग्रह तथा गान्धी इरविन समझौता हैं—

उस लवण-चोर की लीलाएँ अपना कुछ-कुछ रंग लायी थीं;
गान्धी इरविन समझौते ने शासन की कमर लचायी थी।

इस युग के क्षितिज पर तीन घटना रूपी नक्षत्रों का उदय हुआ था जिन्होंने तत्कालीन भारत को मथ डाला था—(क) क्रान्तिकारियों को प्राणदण्ड, (ख) गान्धी जी के सत्याग्रह आन्दोलन का नूतन उत्थान, (ग) साम्प्रदायिक-विष-वृद्धि।

देश के हेतु, अपना सर्वस्व-न्यौछावर करने वाले कतिपय क्रान्तिकारी लाहौर कारागृह में बैठे, अपनी बलिवेदी की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे और उधर समग्र भारत में क्षोभ की लहरें परिव्याप्त थीं:—

लाहौर जेलखाने में थे वे सरफरोश कुछ नौजवान,
जिनने एक सपना देखा था, जिनमें थी यौवन की उड़ान,
न्यायालय का हुक्म वे झूलेंगे अमर हिंडोले पर,
भारतवासी थे क्षुब्ध और थे विचलित उनके अन्तर तर।[२]

गान्धी-इरविन समझौते के कारण, राष्ट्रीय-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया—

राष्ट्रीय युद्ध फिर हुआ स्थगित, गान्धी इरविन का मेल हुआ,
पर नौकरशाही के लेखे यह सब फिजूल का खेल हुआ।[३]

सरकार ने समग्र रोष तथा उत्साह को साम्प्रदायिकता की ओर उन्मुख कर दिया।[४]

---

१. 'प्राणार्पण', छन्द २, पृष्ठ १२।

२. वही, छन्द ३।

३. वही, छन्द २१, पृष्ठ १७।

४. **"इस वर्ष एक घटना और घटी। कराँची-काँग्रेस अधिवेशन के लिए जो प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ, उसमें लगभग सभी स्वयंसेवक और कार्यकर्ता ही चुने गये। इससे नेताओं में क्षोभ होना स्वाभाविक था। किन्तु विद्यार्थी जी ने उस सप्ताह के 'प्रताप' में इस चुनाव की टीका करते हुए युवकों का समर्थन किया और रूठे हुए नेताओं को एक मीठी झिड़की भी दी। उनके यही सब गुण युवकों को मोह लेते थे। अन्त में २३ मार्च आया और हम लोग कराँची के लिये रवाना हो गये। उसी दिन सरदार भगतसिंह और**

फूट के बीच बो दिये। कूटनीति की परीक्षित विधि अपना ली गई। 'नवीन' जी ने लिखा है—

वे शहन्शायित के पुतले, जिनका है सब दिन यही काम,
लड़वाते हैं इन्सानों को लेकर मजहब का पाक नाम;
कारिन्देशाही ने सोचा है यही आत्म-रक्षा का पथ,
धार्मिक झगड़े होते जायें, औ' चलता जाँये जीवन-रथ।[1]

कवि का यह मत है कि जब-जब भी, इसी प्रकार राष्ट्रीय भावना उभरी है, साम्प्रादायिक विष ने भी अपने पंजे बढ़ाये हैं।[2]

साम्प्रदायिक गरल के उछलने पर, मस्जिद तथा बाजों में झगड़ा हो पड़ा। ताजिये और पीपल आपस में द्वन्द्व युद्ध करने लगे। अभिशाप नग्न रूप धारण कर आया। विषमता तथा विकार खुलकर खेल खेलने लगे। समग्र-सत्याग्रह के पुनीत वायुमण्डल को हिन्दू-मुस्लिम द्वन्द्व की विषैली आँधी ने भ्रष्ट तथा विनष्ट कर दिया।[3] इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपने युग की नब्ज को इस कृति में मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता के साथ प्रस्तुत किया है।

खण्डकाव्यत्व—हमारे आचार्यों ने खण्ड-काव्य को प्रबन्ध-काव्य का एक भेद माना है।[4] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, महाकाव्य के एक देश या अंश का अनुसरण करने वाला काव्य', खण्डकाव्य कहलाता है—

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।[5]

खण्डकाव्य में जीवन का एक पक्ष या अंश अथवा चरित्र का एक पार्श्व अभिव्यक्त होता है। उसमें मानव-जीवन की सामान्य अथवा असामान्य अनुभूति का सुन्दर रूप से प्रस्फुटन होता है। डॉ० गुलाबराय के "मतानुसार, खण्डकाव्य में प्रबन्धकाव्य होने के कारण कथा का तारतम्य तो रहता है, किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है। उसमें जीवन की वह अनेकरूपता नहीं रहती, जो महाकाव्य में होती है। उसमें कहानी और एकांकी की भाँति एक ही प्रधान घटना के लिए सामग्री जुटाई जाती है।"[6]

उनके साथी राजगुरु और सुखदेव जी को फाँसी हुई। क्रान्तिकारियों का गढ़ होने के नाते उसकी विशेष प्रतिक्रिया कानपुर में हुई। युवकों के दल के दल अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए निकल पड़े। किन्तु शासकों ने इस विप्लव को साम्प्रदायिक दंगे के रूप में बदल दिया और कराँची में २५ मार्च को हमें यह हृदय-विदारक समाचार सुनने को मिला कि विद्यार्थी जी एक स्वयंसेवक के साथ साम्प्रदायिकता की बलिवेदी पर मुक्त हो गये"—गणेश स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ १४५।

१. 'प्राणार्पण', छन्द ७, पृष्ठ १३।
२. वही, छन्द ९, पृष्ठ १४।
३. वही, छन्द १५, पृष्ठ १५।
४. श्री रामदहिन मिश्र—'काव्य-दर्पण', पृष्ठ २४६।
५. 'साहित्य दर्पण', षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३२९।
६. डॉ० गुलाबराय—'सिद्धान्त और अध्ययन', भाग २, पृष्ठ १०४।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर, 'प्राणार्पण' में गणेश जी का समग्र जीवन-वृत न गृहीत कर, उसके एक पक्ष या घटना को ही लिया गया है जिसने गान्धी जी को भी ईर्ष्यालु बना दिया। गणेशजी का आत्मोत्सर्ग ही कथावस्तु की धुरी है और गणेश जी काव्य के प्रतिष्ठित-नायक हैं। इस रचना का स्थायीभाव करुणा है और अंगीरस करुणरस है। प्रमुख रस के साथ, सहायक के रूप में वीर, रौद्र और शान्त रस भी आये हैं। कवि ने घटना को, तत्वपरक रूप में न देखकर, भाव तथा बिचारोद्दीप्त के रूप में, ग्रहण किया है। घटना की अपेक्षा चरित्र को प्राधान्य मिला है। प्रबन्धात्मकता के दृष्टिकोण से इस कृति को सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

चरित्र, रस-सृष्टि तथा प्रौढ़ काव्याभिव्यक्ति के आधार पर, इसे सफल खण्ड-काव्य माना जा सकता है।

गणेश जी विषयक अन्य काव्य—हुतात्मा गणेश जी ने अपने युग में कवियों तथा मनीषियों को प्रभावित किया था। उनका एक 'वैचारिक सम्प्रदाय' ही बन गया था जिसे 'गणेश-स्कूल' या 'प्रताप परिवार' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इस सम्प्रदाय के कवियों ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा को नूतन भूमि प्रदान की है। गणेश जी स्वयं कवियों तथा लेखकों को प्रेरित करते, प्रोत्साहन देते और मार्ग-दर्शन प्रदान किया करते थे। कवियों ने उनको अपने काव्य का विषय बनाकर, अपनी वाणी को उपकृत किया।

गणेश जी को महात्मा गान्धी ने मूर्तिमन्त्र संस्था कहा है।[१] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी उन्हें मिशनरी कहा है।[२] गुप्त जी के लीलापद्यनाट्य 'अनघ', 'काबा और कर्बला', 'अनित', 'नरमों के नाम नरक से एक पत्र' (कविता),[३] 'राजा जाता है' (कविता),[४] 'वन वैभव', 'स्वदेश संगीत', तथा 'साकेत' आदि पर गणेश जी की राजनीतिक, वैचारिक तथा परामर्शदाता का प्रभावांकन किया जा सकता है।[५] 'अनघ' का पद्य गणेश जी की ही जीवित प्रतिमूर्ति है।[६]

गणेश जी को हमारे कवियों ने स्फुट एवं प्रबन्ध, दोनों ही प्रकार के काव्यों का नायक बनाया है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'विघ्न-विजेता,-गुणी गणेश' कहकर, उनको अपनी वन्दनाञ्जलि अर्पित की है।[७] श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने गणेश जी की प्रथम गिरफ्तारी को 'बन्धनसुख'[८] (सन् १९१७), जेल-गमन को 'सन्तोष'[९] (सन् १९१८) और फतहपुर के मुकदमे की सजा काटकर, नैनी जेल से छूटने को 'लौटे'[१०] (सन् १९२४) शीर्षक कविताओं का प्रतिपाद्य

---

१. 'आत्मोत्सर्ग', पृष्ठ ३।

२. श्री मैथिलीशरण गुप्त—'सुधा', गणेश जी, नवम्बर, १९३१, पृष्ठ ४३८-४३९।

३. साप्ताहिक 'भविष्य', सन् १९२०।

४. 'नया समाज', जनवरी, १९५२, पृष्ठ १-४।

५. 'सुधा', नवम्बर, १९३१, पृष्ठ ४४०-४४७।

६. वही, पृष्ठ ४४७।

७. 'नर्मदा', अक्तूबर, १९६१, मुखपृष्ठ।

८. 'हिमकिरीटिनी', पृष्ठ ९३।

९. 'माता', पृष्ठ १२७।

१०. वही, पृष्ठ १२८।

विषय बनाया। कविवर श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने 'अमर शहीद गणेश जी'[१] शीर्षक कविता में अपनी भावांजलि अर्पित की। सन् १९२४ में गणेश जी के केन्द्रीय कारागृह, नैनी से मुक्त होने पर, उनके स्वागतार्थ श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने आठ छन्दों की एक लम्बी रचना की सृष्टि की।[२] 'पार्षद' जी ने गणेश जी की मृत्यु पर भी कविता लिखी थी।[३] मुन्शी अजमेरी ने 'विचित्र बलिदान',[४] श्री 'दिव्य' ने 'तेरी समाधि पर श्रद्धा के कुछ फूल चढ़ाने लाये हैं',[५] श्री रामनाथ गुप्त ने' 'पुण्य-स्मृति',[६] श्री सुदर्शन 'चक्र' ने 'युग देवता गणेश'[७] और श्री हरगोविन्द गुप्त ने 'हम अपात्र हैं क्योंकि कर सके कोई भी तो काम न उनका[८]' में हुतात्मा की विविध प्रकार से वन्दना की है। श्री हरगोविन्द गुप्त ने, 'गणेश जी का बलिदान' शीर्षक कतिपय स्फुट पद्यों की भी रचना की।[९] श्री करुणाशंकर शुक्ल 'करुणेश' ने भी गणेश जी के निधन पर शोकोद्गार प्रकट किये।[१०]

इन समग्र रचनाओं में, गणेश जी विषयक काव्य-साहित्य में, 'नवीन' जी के प्राणार्पण और श्री सियारामशरण गुप्त के 'आत्मोत्सर्ग' शीर्षक प्रबन्धकृतियों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। गणेश जी विषयक स्फुट रचनाओं में अमर शहीद के व्यक्तित्व तथा बलिदान के विभिन्न पक्षों को वन्दना एवं प्रशस्तिपरक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

प्राणार्पण तथा अत्मोत्सर्ग—'प्राणार्पण' तथा 'आत्मोत्सर्ग' काव्य के दोनों रचयिता ही, गणेश जी के अनुगत तथा 'प्रताप'-परिवार के सदस्य रहे हैं। दोनों की इन कृतियों के स्रोत एक ही है। जहाँ 'नवीन' जी की अनुभूति प्रत्यक्ष एवं उत्कट है; वहाँ गुप्त जी की अनुभूति परोक्ष एवं सौम्य है।[११] गुप्त जी ने इस रचना को सन् १९३१-३२ (गुरुपूर्णिमा,

---

१. 'नर्मदा', अक्तूबर, १९६१, पृष्ठ ९२।

२. 'गणेश-स्मृति ग्रन्थ', पृष्ठ १००-१०१।

३. श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' नर्वल से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक १७-६-१९६१) में ज्ञात।

४. 'नर्मदा', अक्तूबर, १९६१, पृष्ठ ११५-११६।

५. वही, पृष्ठ ९३।

६. वही, पृष्ठ १२५-१२६।

७. दैनिक 'प्रताप', ३१ मार्च, १९५४।

८. 'नर्मदा', पृष्ठ ७५।

९. वही, पृष्ठ १५१।

१०. 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृष्ठ ३३१।

११. ''एक दिन एकाएक समाचार-पत्र में पढ़ा कि कानपुर के साम्प्रदायिक उपद्रव में विद्यार्थी जी लापता हो गये हैं। हृदय पर कठोरतर आघात हुआ, परन्तु उस समय आशा ने साथ दिया। इस बात पर विश्वास करने को जी न चाहा कि विद्यार्थी जी को दुर्दैव अचानक इस प्रकार हम लोगों से विलग कर सकता है। वह दिन तो किसी तरह बीत गया, परन्तु रात को नींद न आई। उसी अनिद्रा में मुझे विद्यार्थी जी के अनेक संस्मरणों के साथ उस कथानक की भी याद आ गई। उसी समय मन में आया कि विद्यार्थी जी जिस आग को

सं० १९८८ वि०)[1] में ही लिख डाला था; वहाँ 'नवीन' जी अपनी कृति को, दस वर्ष पश्चात् सन् १९४१ में लिख सके। इसका कारण कवि की व्यस्तता, समयाभाव एवं संघर्षमय जीवन था। जहाँ 'आत्मोत्सर्ग' की चतुर्थावृत्ति हो चुकी है; वहाँ 'प्राणोत्सर्ग' कवि के जीवन-काल की तो बात ही छोड़िये, अब, सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ है।

दोनों काव्यों की कथा-वस्तु में सादृश्य है। २४ मार्च और २५ मार्च, १९३१ ई० को, दोनों ने ही अपने कथानक का मूलाधार बनाया है। गुप्त जी का कथानक अधिक विस्तृत तथा प्रशस्त है। जहाँ 'प्राणार्पण' गणेश जी की मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जाता है, वहाँ 'आत्मोत्सर्ग' में उसके पश्चात् की घटनाएँ यथा — शव का अन्वेषण, जन-प्रतिक्रियाएँ, दाह-संस्कार आदि के भी विवरण उपस्थित किये गये हैं। 'प्राणार्पण' में चार सर्ग हैं जबकि 'आत्मोत्सर्ग' तीन अंशों में विभाजित है।

कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि का जितना भव्य, प्रशस्त तथा विस्तृत अंकन 'प्राणार्पण' में हुआ है; उतना 'आत्मोत्सर्ग' में नहीं। 'नवीन' जी ने तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों तथा राष्ट्रीय चेतना का उदात्त तथा प्रखर रूप प्रस्तुत किया है। गुप्त जी ने इसके संकेत मात्र ही दिये हैं। साम्प्रदायिकता तथा हिन्दू-मुस्लिम द्वन्द्व को सांस्कृतिक तथा चिन्तन की भूमिका पर, 'प्राणार्पण' में अधिक उठाया गया है। 'प्राणार्पण' की ध्वनि में ओज, आक्रोश तथा गाम्भीर्य हैं; जबकि 'आत्मोत्सर्ग' में सौम्यता तथा सुष्ठुता को प्राधान्य मिला है। इसके लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त हैं—

(१) ओ निष्ठुर नौकरशाही, भगतसिंह को फाँसी देकर,
कर ली तूने मनचाही ?
आजीवन बन्दी रख जिसको, दुख दे सकती थी दूने,
चिर विमुक्त कर घर-घर उसको, स्वयं बिठाल दिया तूने।
—'आत्मोत्सर्ग', पृष्ठ १६

फाँसी पर झूले भगतसिंह, उनके साथी भी झूल गये,
भारतवासी हो उठे क्रुद्ध, वे अपनी सुध-बुध भूल गये;
भड़की घृणाग्नि, उमड़ी ज्वाला, आवाज लगी, हड़ताल हुई,
विद्रोह जगा, उठ पड़ा द्वेष, जनता की आँखें लाल हुई;
उन्मत्त विजातियों के प्रति उठ भड़का क्रोधानल अपार,
भारत का शान्त महासागर उफना, उसमें आ गया ज्वार।
—'प्राणार्पण', पृष्ठ १३

(२) कहा एक अधिकारी ने है—'जाओ गान्धी जी के पास!'
× × ×
चकित हो गये विद्यार्थी जी, सुन आगन्तुक की बातें;
गान्धी जी के पास-आह! वे, निपट निन्द्य, ओछी घातें,

बुझाने के लिए अपना जीवन होम सकते हैं, उसे बुझाने के लिए मुझे अपनी नगण्य स्याही का भी कुछ न कुछ उपयोग अवश्य करना चाहिये। उसी निश्चय ने मुझसे यह क्षुद्र कविता लिखवा डाली है।''—सियारामशरण गुप्त, 'आत्मोत्सर्ग; निवेदन, पृष्ठ ११-१२।

१. 'आत्मोत्सर्ग', पृष्ठ ८४।

हँसीकर रहा दुखियों से तू, ओ निष्ठुर कर्त्तव्य-भ्रष्ट;
हँसी साथ हो आवेगी, तो हो आवेगी बुद्धि विनष्ट।
—'आत्मोसर्ग', पृष्ठ २८

देख हमारी दानव लीला, वे तो करते हैं उपहास,
सुन कातर पुकार वे कहते, 'टुम जाओ गेन्डी के पास।'
गान्धी के ही पास जायँगे, मत घबराओ तानेकश!
गान्धी से हम अभी दूर हैं, इसीलिए हैं तेरे वश;
तेरी उकठ काठ की हाँड़ी, चढ़ न सकेगी बारम्बार,
खूब पका ले अपनी खिचड़ी, कर ले जी भर वचन प्रहार।
—'प्राणार्पण' : गणेशजी का चिन्तन, पृष्ठ २६

'आत्मोत्सर्ग' में सम्वाद-तत्व की बहुलता है। 'प्राणार्पण' में अलौकिक तत्वों को भी स्थान मिला है परन्तु 'आत्मोत्सर्ग' में इसका सर्वथा अभाव है। दोनों ने ही चरित्र तथा उद्देश्य की प्राण-प्रतिष्ठा सुन्दर तथा प्रभविष्णु रूप से की है। गणेश जी का व्यक्तित्व 'प्राणार्पण' में जितना उदात्त, प्रभावोत्पादक तथा आभा-मण्डित है; उतने अंशों में, वह 'आत्मोत्सर्ग' में, प्राप्त नहीं होता। खण्ड-काव्य तथा प्रबन्धात्मकता के दृष्टिकोण से 'आत्मोत्सर्ग' अधिक सफल रचना है; परन्तु काव्य-शालीनता, ओजस्विता, चिन्तन-प्रचुरता तथा विषय-प्रस्तुतीकरण के दृष्टिकोण से 'प्राणार्पण' कहीं अधिक उभर कर आई है। गणेश जी के बलिदान को जो प्रभा तथा गरिमा 'नवीन' जी की लेखनी ने प्रदान की है; वह गुप्त जी से सम्भव नहीं हो सका है। गणेश जी के बलिदान पर 'आत्मोत्सर्ग' का कवि कहता है—

पूर्णाहुति हो गई हुतात्मा, तत्क्षण दीख पड़ा भू पर,
उस शरीर के बन्दीगृह से, आत्मा वह उड्डीन हुई,
अमर ज्योति वह अमर ज्योति में, तदाकार, तल्लीन हुई!
दीन हुई दिनकर की आभा, सान्ध्य-गगन में होकन दीन
हेतु बिना जाने ही सहसा सुहृदों के मन हुए मलीन![1]

'प्राणार्पण' का कवि इसी बात को प्रस्तुत रूप में उपस्थित करता है—

दया माया रोयी, लोक रंजन बिलख उठा,
जब धराशायी हुआ वह चिर धीर श्रेष्ठ;
अम्बर का छोर कंपा; धरित्री सिहर उठी,
जब धरती पर गिरा वह वीर श्रेष्ठ;
आत्मोत्सर्ग वेदी को प्रपूर्ण द्रव्य-भाग मिला,
यज्ञ-भावना की हुई प्राप्त आहुति यथेष्ट;
लेकिन कलंकिनी सदा को हुई मानवता,
जब श्री गणेश का शरीर हो गया अचेष्ट।[2]

---

१. 'आत्मोत्सर्ग', पृष्ठ ७५।
२. 'प्राणार्पण', पृष्ठ ५१।

गुप्त जी गणेश जी का महत्वांकन करते हुए कहते हैं—

आत्मोत्सर्ग शीलता, शुचिता, दृढ़ता अपरिमिता तेरी!
निखिल विश्व में परिव्याप्त हो, मति वह सर्वहिता तेरी;
घर घर ज्ञान-प्रदीप जला दे, मरणोद्दीप्त चिता तेरी।[1]

'नवीन' जी ने इस विषय में लिखा है—

घोर अन्धकार में जगायी आत्मदीप बाती,
दिशाएँ सँजोयी, किया आलोकित आसमान;
विस्मृत, विकृत जग-मग जग-मग हुआ;
भ्रमित समाज को मिला ज्वलन्त-दीप दान।[2]

काव्याभिव्यक्ति की संहति, शैली का प्रवाह तथा भाषा की प्रौढ़ता के दृष्टिकोण से 'प्राणार्पण' श्रेष्ठतर कृति हैं। इसका कारण यह है कि 'आत्मोत्सर्ग' जहाँ गुप्त जी के काव्य-जीवन के पूर्वार्द्ध की कृति है; वहाँ 'प्राणार्पण' कवि के जीवन की उत्तरार्द्ध की रचना है। 'प्राणार्पण' में गीत तथा मुक्तक दोनों को ही स्थान प्राप्त हुए हैं; परन्तु 'आत्मोत्सर्ग' में मुक्तक का ही आधार है। भारत के अमर शहीद के चरणों में चढ़ाई गई, ये दोनों श्रद्धांजलियाँ, भारत-भारती के मन्दिर के दो महान् ज्योतिर्मय दीप-स्तम्भ हैं।

निष्कर्ष—'नवीन' जी के 'प्राणार्पण' का अनेक दृष्टियों से विशिष्ट महत्व है। कवि के बन्दी जीवन से प्रसूत काव्य-साहित्य में प्रेम-काव्य को ही शीर्ष तथा प्रमुख पद प्राप्त हुआ है; परन्तु इस रचना में कवि पूर्णतः राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के सघन पक्ष को ही अपना वर्चस्व प्रदान करता है। प्रायः कवि अपने कारावास के जीवन में राजनैतिक कारणों के प्रति उदासीन तथा वीतराग रहा है, परन्तु इस कृति में विपरीत स्थिति ही दृष्टिगोचर होती है।

आलोच्य रचना में अपनी युग-चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा समसामयिक राजनीति के प्रति कवि ने जितनी मुखरता तथा प्रमखुता के साथ अपनी वाणी की आस्था उड़ेली है, वैसी, कवि की किसी भी रचना में, दुर्लभ है। यद्यपि इस कारण से कवि को हानि भी उठानी पड़ी है और वह अपनी कृति के प्रबन्ध-शिल्प को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका है।

यहाँ कवि के राष्ट्रवाद ने वस्तु एवं चिन्तनपरक रूप ग्रहण कर लिया है। कवि ने तत्कालीन राष्ट्रीयता के विभिन्न अवयवों, उसके विकास, अवरोध तथा निराकरण पर भी, गम्भीरतापूर्वक मनन किया है। गणेश जी के बलिदान की कथा को प्रस्तुत करके न केवल उसने अपनी भक्ति की अभिव्यंजना ही की है; प्रत्युत् भारतीय इतिहास के आधुनिक युग के साम्प्रदायिकता रूपी विष को कुरेद कर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जिससे विकृत होकर, कई तद्विषयक घटनाएँ घटित हो चुकी हैं और यह विष बार-बार पैदा होकर, हमारे भारतीय समाज की नित्तियों को हिला दिया करता है। इस विष के उन्मूलन के व्यावहारिक तथा शाश्वत आदर्श के रूप में, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का भव्य व्यक्तित्व, हमारे समक्ष आता है।

---

१. 'आत्मोत्सर्ग', पृष्ठ ८४।
२. 'प्राणार्पण', पृष्ट ४५-४६।

काव्य-कला के रूप में यह कवि की प्रौढ़तम कृति है। इस रचना की प्रौढ़ि, गाम्भीर्य तथा ऋजुता ही, इसे 'नवीन' के काव्य-साहित्य में पृथक् स्थान प्रदान करती है। इसके रचना-प्रवाह तथा प्रभविष्णुता को देखकर, 'निराला' के 'तुलसीदास' या 'राम की शक्ति पूजा' का स्मरण हो आता है। आलोच्य-कृति की भाषा 'उर्म्मिला' से अधिक सशक्त तथा परिपक्व है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'प्राणार्पण' का मूल्य अत्यधिक है।

इस काव्य का, एक दूसरे दृष्टिकोण से भी मूल्यांकन अपेक्षित है। आजकल हिन्दी साहित्य में, हमारे वर्तमान युग के कर्णधारों यथा—महात्मा गान्धी[1], प्रेमचन्द[2] आदि के व्यक्तित्व तथा जीवन-चारित्रों को लेकर, जो काव्य या महाकाव्य लिखे जा रहे हैं और उनकी परिपाटी द्रुतगति से चल निकली है; उसमें, कालक्रम से, इस कृति का महत्व, गरिमा तथा मूल्य आँकने योग्य है। इस स्वस्थ-परम्परा के मूल में 'नवीन' जी की इस कृति को रखकर, परिपाटी का अध्ययन करना, समीचोन तथा सार्थक प्रतीत हो सकता है।

'प्राणार्पण' का मूल्य तथा महत्ता के सूत्र, सामयिकता से ही बँधे नहीं हैं, अपितु उनमें स्थायित्व के उपादान भी प्राप्त होते हैं। साम्प्रदायिक तत्व बार-बार अपनी डाढ़े पैनी करते हैं। 'नवीन' जी ने भी लिखा है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व और पश्चात् काल में हमने वे सब विभीषिकाएँ देखी हैं।[3] इतना सब होते हुए भी, हम भी महात्मा गान्धी के शब्दों में पूछते ही रहते हैं कि इस देश में दूसरा गणेशशंकर क्यों नहीं पैदा होता है ?[4] साहित्यिकों के दृष्टिकोण से, इस कृति का महत्त्व तथा महिमा उसके काव्य-प्रकर्ष के कारण है ; परन्तु इस के कथा की महत्ता के विषय में, हम भी 'नवीन' जी के साथ हैं—

> मानव के हिय में रहेगा द्वेष जब तक,
> जब तक रक्त की पिपासा रही आयेगी;
> जब तक अन्तर में दुबका रहेगा पशु,
> जब तक शोणित की धार बही जायेगी;
> जब तक मानव न होगा निज शुद्ध रूप,
> जब तक भावना निर्वेद नहीं पायेगी;
> तब तक गणेशशंकर की अतीत गाथा,
> जन गण हितार्य सतत कही जायेगी।[5]

---

१. (क) श्री ठाकुरप्रसाद सिंह—'महामानव' (सन् १६४६); (ख) श्री रघुवीरशरण मित्र—'जननायक' (सन् १६४६); (ग) ठाकुर गोपालशरण सिंह—'जगदालोक' (सन् १६५२)।

२. श्री परमेश्वर द्विरेफ—'युगस्रष्टा—प्रेमचन्द', (सन् १६५६)।

३. 'आजकल', मार्च, १६५५, पृष्ठ १६।

४. 'गणेशशंकर विद्यार्थी', महात्मा गान्धी और गणेशशंकर विद्यार्थी।

५. 'प्राणार्पण', चतुर्थ आहुति, छन्द ४, पृष्ठ ३३।

षष्ठ अध्याय

प्रेम एवं दार्शनिक काव्य

प्रेम-काव्य

पीठिका—प्रेम एक अतीव व्यापक शब्द है। उसे अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताया गया है।[१] उसका स्तर उदात्त तथा पवित्र होता है। कबीर ने प्रेमविहीन शरीर को मृत-तुल्य माना है। उसके सभी कवियों तथा मनीषियों ने गुण-गान गाये हैं।

डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' ने प्रेम के द्वादशरूप बताये हैं—भक्ति, प्रणय अथवा दाम्पत्य, वात्सल्य, प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम विश्व-मैत्री या मानव-प्रेम, कुटुम्ब-प्रेम, श्रद्धा, सेव्य-सेवक प्रेम, सूक्ष्म के प्रति प्रेम और स्थूल के प्रति प्रेम।[२] 'नवीन' जी के काव्य में, प्रेम के ये विविध रूप प्राप्य हैं और उनका यथास्थान विवेचन भी किया गया है। यहाँ पर प्रणय या रति अथवा श्रृंगार के ही रूप का अनुशीलन किया जा रहा है।

श्रृंगार रस में रसांगों की व्यापकता ही उसे काव्य की व्यापकता का सूत्र प्रदान करती है। उसका मूर्धन्य एवं विशाल रूप, देव की इन पंक्तियों में, अपनी महिमा की कड़ी खोलता है—

> भाव सहित सिंगार में नव रस झलक अजस्त्र।
> ज्यों कनक-मणि कनक को ताही में नव रत्न॥[3]

'नवीन' जी के काव्य में भी श्रृंगार को रसराजत्व प्राप्त हुआ है। वह कवि के काव्य की प्रमुख एवं मूलवर्तिनी धारा है। 'नवीन' के काव्य में रस-योजना को जीवन का आधार प्राप्त हुआ है। डॉ० नगेन्द्र ने ठीक लिखा है कि "रस का साहित्य एक संगठित अथवा आयोजित प्रयत्न नहीं है, वह व्यक्ति का आत्म-साक्षात्कार है, आत्माभिव्यंजन है।"[४]

अनुपात एवं प्रभाव में, 'नवीन' जी के काव्य में, प्रेम-काव्य अपना अद्वितीय स्थान रखता है। प्रेम ही दिव्य रूप धारण कर लेता है और वही वीरत्व को भी स्फुरित करता है। कविताओं तथा संकलनों में भी उसी का ही बहुमत है। कवि के काव्य में उसका महत्व भी कम नहीं है। डॉ० रामअवध द्विवेदी के मतानुसार, नवीन जी की श्रृंगारिक कविताओं का भी उतना ही महत्व है जितना उनकी देश-प्रेम विषयक रचनाओं का। उनमें भी बड़ी मस्ती का स्वर मिलता है।[५]

---

१. Love, affection, favour, kindness, kind or tender regard, sport, pastime, Joy, delight, gladness"—Shri Aptey—Sanskrit-English Dictionary, 1922, p. 380.

२. 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य', पृष्ठ ११३-१३६।

३. डॉ० नगेन्द्र—'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा', पृष्ठ ४१५।

४. डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विश्लेषण', पृष्ठ १०४।

५. डॉ० रामअवध द्विवेदी—साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १६६०, पृष्ठ ६, कालम २।

'नवीन' जी खरी तथा यथार्थ अनुभूतियों के कवि रहे हैं। उनकी शृंगारिक रचनाओं के पीछे भी, वास्तविक अनुभूति रही है। अन्य कवियों के सदृश्य, उनके प्रेम-काव्य के उत्स में, जीवन का अपूर्ण प्रेम-स्वप्न रहा है। 'प्रसाद' जी ने भी तो अपने काव्य के प्रेम तथा यौवन पक्ष के उद्गम-उपकरण की ओर, महीन संकेत किया है—

मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया,
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।[१]

'नवीन' जी ने भी लिखा है कि "आज, यदि सामाजिक बन्धनों के कारण एक नौजवान या नवयुवती अपने स्नेह-पात्र को प्राप्त नहीं कर सकते और यदि वे वियोग और विछोह के हृदयग्राही गीत गा उठते हैं, तो यह न समझिये कि यह केवल उन्हीं की वेदना है, जो यों फैल पड़ी है—यह वेदना तो समूचे संस्कृत हृदयों की चीत्कार है।[२] वास्तव में करुणतम भावना को व्यक्त करने वाले गीत ही सर्वाधिक मधुर होते हैं।[३]

डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, "शृंगार का अर्थ है कामोद्रेक। उसके आगमन अर्थात् उत्पत्ति का कारण ही शृंगार कहलाता है।"[४] प्रेम और यौवन काव्य के मेरुदण्ड हैं।[५] 'नवीन' जी का काव्य-शृंगार, प्रेम एवं यौवन से परिप्लावित हैं। उनके प्रणय-गीत तीव्र अनुमति से भरे हैं और उनमें यत्र-तत्र रहस्यात्मक संकेत भी मिलते हैं।[६]

'नवीन' जी के काव्य में प्रेम तथा शृंगार के विविध रूप प्राप्त होते हैं। उन्होंने शृंगार के संयोग तथा वियोग, दोनों ही अंगों को समेटा है; परन्तु वियोग पक्ष अधिक प्रबल एवं मुखर बन गया है। संयोग के चित्र, कम मात्रा में ही प्राप्त होते हैं। इस तथ्य के पृष्ठ में भी, कवि के जीवन की मर्मस्पर्शी अनुभूति रही है। 'नवीन' जी ने प्रेम के स्थूल तथा मांसल रूप के साथ ही साथ, उसका सूक्ष्म रूप भी प्रस्तुत किया है।

विषय विभाजन—'नवीन' जी की शृंगारिक रचनाओं अथवा प्रेम-काव्य को, उसके विषयानुकूल एवं प्रवृत्यानुसार, अधोलिखित रूपों में विभाजित किया जा सकता है—(१) प्रेम का आलम्बन; (२) रूप वर्णन; (३) प्रेमाभिव्यक्ति; (४) प्रकृति का उद्दीपक रूप; (५) प्रिय-दर्शन एवं मिलन-क्षण; (६) मान-वर्णन; (७) स्मृति-तत्व; (८) वियोग-चित्रण और (९) मांसल तथा उन्मादक प्रेम।

उपर्युक्त रूपों का विश्लेषण एवं अनुशीलन ही, प्रेम-काव्य के सांगोपांग चित्र को प्रस्तुत कर सकता है।

---

१. श्री जयशंकर प्रसाद—'लहर', पृष्ठ ११।

२. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १२-१३।

३. Our sweetest songs are those,
that tell of sadest thought—Shelley, The complete poetical works of Percy Bysshe Shelley. p. 603.

४. डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन', पृष्ठ ३७।

५. डॉ० रांगेय राघव—'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार', वासना—नारी, पृष्ठ ५२।

६. डॉ० रामअवध द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा', पृष्ठ १८१।

प्रेम का आलम्बन—'नवीन' जी का समग्र प्रेम-काव्य, अपने आलम्बन के सम्बोधन, स्मरण एवं विरह से आपूर्ण है। कवि ने पग-पग पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, निष्कपट, मार्मिक और कारुणिक प्रणयाभिव्यक्ति की है। जान पड़ता है कि कवि के जीवन में काई है जिसका आभास शत-शत रहस्यों में झाँकता है, जिसे कवि ने अपने प्राणों में पहिचाना है और जिसे पाने की बेचैनी उसके अंग-अंग में भर गई है।[1] कवि ने अपने आलम्बन की बहुमुखी झाँकियाँ प्रदान की है। अपनी प्रेयसी के लिये कवि का स्नेहिल, लाड़ला तथा आसक्तिमय सम्बोधन 'रसखान' है—

प्रिय, तुम क्यों हो इतनी अच्छी, सुघड़, सौम्य, रस-खानी ?[2]

कवि ने अपने काव्य का मूलाधार ही अपनी प्रेयसी को माना है। वह उनकी प्रेरणा-शक्ति एवं चेतना-दायिका है। वह अपनी प्रियतमा से सस्नेह अनुनय करता है—

बज उठे मीठी-मीठी पाजनियाँ,
खनका दो कविता की कड़ियाँ,
रानी, मम-हिय-आंगनियाँ[3]

डॉ० शुक्ल के अनुसार, 'नवीन' जीवन की अन्धकारमयी रजनी में भटक रहे हैं। उनकी प्रार्थना है कि प्रेमिका जीवन-पथ को अपनी दीप्ति से आलोकित कर दे।[4]

दीप-रहित जीवन-रजनी में,
भटक रहा कब से सजनी मैं ?
भूल गया हूँ अपनी नगरी,
कुहू व्याप्त है सारी डगरी।
अपनी दीप-शिखा की किरणें,
जाने दो उस पथ की ओर।[5]

अपनी सलोनी के प्रति, यह कवि की प्रीतिमयी प्रार्थना है—

मत ठुकराओ मुझे; सलोनी, मैं हूँ प्रथम प्यार का चुम्बन।
मुझे न हँस-हँस टालो, मैं हूँ मधुर-स्मृतियों का अवलम्बन।[6]

रूप-वर्णन—'नवीन' जी ने अपनी प्रियतमा के रूप तथा यौवन के अनेकों चित्र खींचे हैं। इनमें नारी-जीवन के सौन्दर्य-पक्ष के हाव-भाव तथा विलास प्रस्फुटित हो पड़े हैं। कवि के प्रेम-काव्य में नारी-चित्रों की ही सर्वप्रधानता है, पुरुष के रूप के चित्र नगण्य हैं।

---

१. डॉ० राजेश्वर गुरु—साप्ताहिक 'नवराष्ट्र', कोमल अभिव्यंजना के कवि 'नवीन', दीपावली विशेषांक, सन् १९५७।

२. 'रश्मिरेखा', स्मरण-कण्टक, पृष्ठ २१, छन्द ५।

३. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', सिंगार, १०१ वीं कविता, छन्द ५।

४. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्य धारा', वर्तमान युग, प्रेम की कविता, पृष्ठ २९३।

५. 'कुंकुम', पृष्ठ ५२।

६. 'रश्मिरेखा', प्रथम प्यार का चुम्बन, पृष्ठ ४९।

श्री सूर्यनारायण व्यास ने लिखा है--" 'नवीन' जी की कविता-बाला पूर्ण षोडशी है। अवगुण्ठन से बाहर अपनी सहज-सुलभ रूपराशि को बिखेरती हुई, पांचाल सुन्दरियों की तरह मस्ती में झूमती हुई, यौवन-मदिरा के छलकते हुए प्याले से मधुर मदस्राव करती हुई, नवीन-कविता-बाला पर जिनकी दृष्टि एक बार गयी हो, वे अवश्य ही तन्मयता में इस कामरूप देश की कामिनी के मोह-जाल में उलझे रहेंगे।"[1] कवि के हृदय में अपनी प्रेयसी के रूप का स्मरण, तूफान पैदा कर रहा है—

वह गुलाल मंडित तव मुख छवि, वे रतनारे नैन—
स्मृति में आए, मानों आया एक तूफान विशाल;
स्मरण कर बन आए हैं, बाल ![2]

कवि ने अपनी प्रियतमा का आलंकारिक चित्रण भी किया है। 'नवीन' ने अपनी प्रियतमा की बिन्दिया के बूँद में विष देखा है। श्री नगेन्द्र के भी 'नारी' के अधरों में सुधा है, अंचल में पयस्विनी तथा नेत्रों में विष—

सुधा अधर में, विष आँखों में, आँचल में पयस्विनी धार,
देखा इस छोटे से तन में, जग के सृजन और संहार।[3]

'माँग' केशों में शोभायमान है और केशों से आवृत 'कुण्डल' भी कम आकर्षक नहीं है—

केशावृत युग कर्णों में,
क्या छटा रूपहरी छिटकी ?
इस कच-निशीथ में आके—
क्यों प्रखर दुपहरी ठिटकी ?[4]

शारीरिक अवयवों के साथ ही, कवि ने उनके मादक प्रभाव की भी चर्चा की है। कुण्डल के पार्श्ववर्ती कपोलों की लाली, सहज ही मतवाली-वृत्ति उत्पन्न कर देती है—

सजनि ! तुम्हारे युग कपोल की सहज लाज की लाली—
अपना रंग चढ़ा देती है सब पर वह मतवाली।[5]

अंग-प्रत्यंगों के साथ ही, कवि ने परिधान का भी विस्मरण नहीं किया है—

पहने वह श्यामल साड़ी, पाटल कुसुमों सी फूली—
रंजिता गन्ध माला सी, आओ भग भूली-भूली।[6]

कवि अपनी प्रेयसी से संस्मृतिमूर्ति सदृश्या पधारने की विनती करता है। यहाँ उसकी 'बाँकी-झाँकी' देखने योग्य है। कवि के प्रेम की प्रसूता यह घटना, न केवल प्रेम की

---

१. 'वीणा', कविवर 'नवीन' की कविता, मार्च, १९३४, पृष्ठ ४०२।
२. 'रश्मिरेखा', स्मरण-कंटक, छन्द ४, पृष्ठ २१।
३. श्री नगेन्द्र—'वनबाला', नारी पृष्ठ २५।
४. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', कुण्डल, ७४ वीं कविता, छन्द १।
५. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', उस दिन, ११३ वीं कविता, छन्द ५।
६. 'वीणा', निमन्त्रण, छन्द ८-१०, पृष्ठ ९४०।

ललित झाँकी ही प्रस्तुत करती है; प्रत्युत् रूप तथा सौन्दर्य का सारभूत चित्र भी, हिन्दी-काव्य को प्रदान करती है—

वसन्तोत्सव के दिन तुमने, निज विद्यालय में, रानी,
बालकृष्ण लीला खेली थी, निपट नवल रस में सानी,
लम्बे सघन कुन्तलों का सखि, तुमने बाँधा था जूड़ा,
कोमल पाणि युगल में ली थी, स्वनित मुरलिका रस-गूढ़ा।
सुकुमार चूड़ियाँ तुम्हारी, कर-कंकरण बन आयी थी।[१]

इस प्रकार कवि ने अपने प्रिय के रूप, यौवन एवं सौन्दर्य के, रससिक्त एवं चित्ताकर्षक चित्र प्रदान किये हैं। इन चित्रों में कवि की वेदना एवं प्रेमाभिव्यक्ति का सुघढ़ रूप प्राप्त होता है।

प्रेमाभिव्यक्ति—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "इन कविताओं में सच्चे रोमाण्टिक कवि की भाँति वे कल्पना के पंख फैलाकर भाव के आकाश में उड़ान लेते हैं।[२]" वस्तुतः 'नवीन' जी के काव्य में रोमाण्टिक-वृत्ति की प्रधानता है। उनकी प्रेमाभिव्यक्ति सरल तथा भावपूर्ण है।

कवि के प्रणय-सागर में नाना प्रकार की तरगें उठती हैं और उनका पर्यवसान भी हो जाता है। प्रिय के प्रति, कवि ने अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। उसके पराये हो जाने पर, कवि की यह उद्भावना द्रष्टव्य है—

तुम हो गये पराये, साजन, तुम हो गये पराये,
पाकर समाचार, आँखों ने मुक्ता-कण बरसाये,
साजन तुम हो गये पराये।
जिसके अब हो गये, उसी के बने रहो मन मोहन,
होने दो मेरी श्वासों का आरोहण-अवरोहण।[३]

कवि अपनी नियति को ही दोषी ठहराता है—

भाल में मेरे लिखा है निपट सूनापन सनातन;
तब गजब क्या, जो हुआ, तब हृदय में यह अनमनापन?
बाँधते निज ग्रीव में क्या तुम पुरातन अस्थि-माला?[४]

कवि का प्रेम स्वप्न टूट गया। उसके कल्पना का संसार ढह गया।[५] कवि का जीवन-सपना पूर्ण नहीं हो पाया। उसने, उसकी स्मृति को ही, अपना चिरसंगी तथा जीवन-शृंगार बना लिया। श्री 'प्रसाद' जी ने भी कहा था कि "प्रेम को प्रकट कर देने से, उसका मूल्य समाप्त हो जाता है। हाँ, मेरे जीवन में एक मधुर स्वप्न और मनोहर कल्पना

---

१. 'वीणा', वह 'बाँकी झाँकी', अप्रैल, १६३६, पृष्ठ ६२१।
२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य', छायावाद, पृष्ठ ४७६।
३. 'स्मरण-दीप', तुम हो गए पराए, ४१ वीं कविता, छन्द १।
४. वही, विचलित विश्वास, ४२ वीं कविता, छन्द ८।
५. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', बढ़े चलो, ६१ वीं कविता।

रही है, जिसे मैंने आजीवन संजोने का प्रयत्न किया है । उस प्रीति की पवित्रता को मैंने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर भी जीवित रक्खा है ।"[१] परन्तु 'प्रसाद' जी आत्म-गोपन की कला में जितने पटु थे[२] उतने 'नवीन' जी नहीं । 'नवीन' कहते हैं—

जहाँ हुलसती बर आती हो, हिरदै की मनुहार—सखी,
चलो, चलें उस देस, जहाँ हो छिटका मंजुल प्यार सखी ।[३]

प्रसाद जी भी कहते हैं—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे ।[४]

अन्ततः कवि की यह दृढ़ कामना हो जाती है—

विचरहु पिय की डगरिया, बसहु पिया के गाँव;
पिया की ड्यौढ़ी बैठि के, रटहु पिया को नाँव ।[५]

कवि का 'उपालम्भ द्रष्टव्य है—

सोच भयो हिय, देखि के अपनी जीवन-साँझ,
दिन की घड़ियाँ रहि गईं, हाय, बाँझ की बाँझ ।
नेह दियो निष्ठा सहित, पाई घृणा अपार,
सेवा को मेवा मिल्यौ, यह कृतघ्न व्यवहार ।[६]

अन्त में कवि इस निष्कर्ष पर आ जाता है—

मौन रहहु, जनि कुछ कहहु, सहहु जगत अपवाद,
गूँगे ही तुम ह्वै रहौ, हे 'नवीन' अविवाद ।[७]

प्रकृति का उद्दीपक रूप—'नवीन' जी के प्रेम-काव्य में प्रकृति ने भी महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण योगदान दिया है । वह भावोन्मेषकारिणी है और कवि की वियोग-व्यथा को द्विगुणित करती है । प्रकृति प्रफुल्ल है परन्तु कवि उदास—

नव गुलाब बेला, चम्पक,
हंसते हैं तब मैं रोता हूँ,—
कर न सकूँगा अर्पण, यही
सोचकर विह्वल होता हूँ ।[८]

---

१. 'प्रसाद का काव्य', पृष्ठ ४० ।

२. "आत्म-गोपन की दुर्लभ कलात्मक क्षमता रखनेवाला यह विलक्षण कलाकार, आत्म-गोपन की कला में भी पूर्ण पटु हैं ।"—'जागरण', ३१ अक्तूबर, १६३२ ।

३. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', उस पार, ६३ वीं कविता, छन्द ३ ।

४. 'लहर', पृष्ठ १४ ।

५. 'नवीन-दोहावली', यह प्रवास आयास, पहली रचना, छन्द ५ ।

६. वही, उपालम्भ, १६ वीं रचना, छन्द ४-५ ।

७. वही, प्रतीक्षा, २० वीं रचना, छन्द १४ ।

८ 'कुंकुम', बेबसी, पृष्ठ ४६ ।

प्रकृति ही उत्तेजना प्रदान करती है—

लोग कहें महुआ गदराने,
हिय के घाव पके हम जाने,
अरी, कोयल, बोल बोलियो ना।[१]

घन-गर्जन के क्षणों में कवि की मन: स्थिति दर्शनीय है—

घन गरजे या फुहिया बरसे,
तेरा नही चलेगा कुछ बस !
सच कहते हो, सजन, रिक्तता ही है मेरे भाजन में,
तुम क्यों देने लगे अमी रस इस घन गर्जन के क्षण में,[२]

कवि को प्रकृति में अपनी प्रियतमा का ही रूप दृष्टिगोचर होता है—

मम मन सर में विकसित हैं तव युग नन्दन-कमल,
परिमल मिस आई तव तन-सुवास सिहर-सिहर !
ओ मेरे मधुराधर ![३]

कवि की प्रकृति भावोद्दीप्ति का सरस परिवेश सृजन करती है और कवि को प्रिय-दर्शन के लिए लालायित करती है।

प्रिय दर्शन एवं मिलन-क्षण—डॉ रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "नवीन जी की सफलता उनके देश-प्रेम की काव्यात्मक अनुभूति के साथ-साथ हृदय तरंग की झाँकियों को मिला देने में, इसी कारण प्रभविष्णुत्व उनमें बहुत है।"[४] कवि की प्रिय दर्शन की लालसा में हृदय की तरगें आ विराजी हैं। इन पंक्तियों में कवि की मनोकामना अपने पंख प्रसार रही है—

मेरे प्रिय, अब कब तक होंगे उन नयनों के मंगल दर्शन,
हुलस करोगे कब, निज जन पर, उन नयनों से मधु-रस वर्षण ?
कब फिर उन्हें निरख कर होगा मेरे रोम-रोम का हर्षण ?[५]

कवि की प्रणयानुभूति में अनुनय-विनय का प्राधान्य है। प्रिय-दर्शन के लिए लालायित कवि की प्रार्थना श्रवणीय है—

आकर इस सन्ध्या को कर दो सिन्दूर दान,
मम अंचल-ओट दीप बन विहँसो, अहो प्राण,
ग्रहण करो युग-युग का मेरा यह हिय-तम तुम,
मेरे सन्ध्या पथ में विहँस उठो, प्रियतम तुम।[६]

---

१. 'कुंकुम', गीत, पृष्ठ ८३।
२. 'स्मरण दीप', घन गर्जन क्षण, तीसरी कविता, छन्द ४।
३. वही, ओ मेरे मधुराधर, आठ वीं कविता, छन्द ४।
४. डॉ० रामकुमार वर्मा—'आधुनिक-काव्य संग्रह', पृष्ठ ६५।
५. 'रश्मिरेखा', क्या है तव नयनों के पुट में, छन्द ४, पृष्ठ ६५।
६. 'स्मरण-दीप', विहँस उठो प्रियतम तुम, चौथी कविता, छन्द २।

कवि को अपने मिलन-स्थल की स्मृति हो आती है—

उन्हीं सघन कुंजों में हमको प्रियतम ने रसदान दिया था,
उन्हीं सघन कुंजों में उनने हमको अपना मान लिया था,
अब वे उजड़ी हैं, जिनमें हमने मधुर रस पान किया था।[1]

कवि के हृदय में होने वाले बहिर्जगत् एवं अन्तंजगत् के संघर्ष के भी अंश चित्रित हुए हैं—

रुपहली कलियों से, कुछ लाल, लद गई पुलकित पीपल डाल।
और वह पिक की मर्म पुकार, प्रिये, झरझर पड़ती साभार,
लाज से गड़ी न जाओ, प्राण, मुसकुरा दी क्या आज विहान।[2]

पन्त जी के सदृश्य 'नवीन' जी भी अपनी प्रिया की एक मुसक्यान को अत्यधिक महत्व प्रदान करते हैं और उसके कृपाकांक्षी हैं। कवि की यह उत्कट लालसा है—

एक मुसक्यान, एक छिन वा छटा को दान,
नेह की विभूति, मोंहि देहु करि कृपा की कोर।
कोमलता, मंजुलता वारि डारि बिधना ने,
मेरे हित निठुराई राखी यह क्यों बटोर?[3]

कवि की नायिका उसे पान प्रदान करती है और वह तन्मय हो जाता है—

धीरे-धीरे आकर इन हाथों
पर रख देती हो—
निज कर निर्मित पान,—देवि!
बदले में क्या लेती हो?
झुक जाती ये पलकें, यों ही
विनिमय हो जाता है;
लिए पान आता हूँ;—मन
चरणों में खो जाता है।[4]

डॉ० 'बच्चन' के मतानुसार, उनकी कविताओं में प्रेम का जो पक्ष आया है; उसका रूप भी मध्ययुगीन सा प्रतीत होता है।[5] कवि के मिलन-चित्रों में कहीं-कहीं मांसलता भी आ गई है। वह कहता है—

खीझि कह्यौ तुम एक दिन कि हम बड़े बेकाम,
ठीक हमारौ काम है विकि जैबो बेदाम।[6]

× × ×

---

१. 'स्मरण-दीप', क्या बतलाएं रोने वाले, १३ वीं कविता, छन्द ४।
२. श्री सुमित्रानन्दन पन्त—'गुंजन', २१ वीं गीत।
३. 'कुंकुम', यांचामोघा, पृष्ठ ६०।
४. वही, पान, पृष्ठ १६।
५. डॉ० बच्चन से हुई प्रत्यक्ष भेंट के आधार पर।
६. 'नवीन-दोहावली', राग-विराग, १५ वीं कविता, छन्द ६।

जब हम माँगत अधर रस, तब ही तुम मुसकात।
फिर, नाहीं करि देत हो, कहहु कौन यह बात ?[1]

आगे भी देखिये—

आज ? नहीं; कल ? नहीं खूब है,
सहज रसीली 'नहीं-नहीं'।
मन्दस्मित है कहीं, अनोखी
झुँझलाहट है कहीं - कहीं।[2]

ये ही मिलन के कतिपय क्षण, वियोग की दीर्घ अवधि में, कवि को सालते रहे। कवि की दयनीय तड़फन ही उसके वियोग-गीतों का आकार धारण कर लेती है।

मान-वर्णन—कवि ने, अपनी काव्य-नायिका के मान का भी, ललित आकलन प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में, कवि की रागात्मिका-वृत्ति अत्यन्त हृदयस्पर्शी हो गई है। कवि का विनय दृष्टव्य है—

मान मत ठानो, न तानो भृकुटियों की चाप, वल्लभ,
पहुँचने दो चरण-तल तक ये अधर मम शुष्क, निष्प्रभ।[3]

कवि, मान तोड़ने के लिए, प्रियतमा से बारम्बार प्रार्थना करता है—

ओ सलोने, हो गया है कौन सा अपराध भारी,
जो चरण-आराधना यों तड़पती है यह बिचारी,
हो गया है विश्व सूना, देखकर यह हठ तुम्हारी।[4]

प्रिया के चरण-स्पर्श से कवि के गीत खिल उठते हैं। कवि का आग्रह है—

बरजते हो क्यों दृगों से चरण-गत आराधना को ?
फलवती होने न दोगे क्या निरन्तर साधना को !
निठुर, ठुकराओ न मेरी इस अदीना याचना को,
पद-परस से खिल उठेंगे निपट मुरझे गान मेरे,
मान कैसा ? प्राण मेरे।[5]

स्मृति-तत्व—डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की अधिकांश कविताएँ कारावास में लिखी गई थीं। मित्रों और स्वजनों से दूर, कारागार की कोठरी में, कवि के मन में तरह-तरह के भाव उठते हैं और उसकी सबल कल्पना मुक्त श्रृंगार के अनेक चित्र खींचती है।[6] कारागार प्रसूता होने के कारण, उनके प्रेम-काव्य में स्मृति-तत्व

---

१. वही, छन्द १५।
२. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', नहीं-नहीं, ६५ वीं कविता, छन्द १।
३. 'क्वासि', मान कैसा, छन्द १, पृष्ठ ४६।
४. वही, छन्द २।
५. वही, छन्द ४, पृष्ठ ५०।
६. साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १९६०, कालम २, पृष्ठ ६।

ने मूल-तन्तु का कार्य किया है। कवि ने स्मृति का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है—

स्मृति क्या है ? प्रिय, स्मृति ही तो है केवल यहाँ हमारी थाती ![1]

अपने प्रिय की नाना क्रियाओं की कवि स्मृति किया करता है—

कभी तुम्हारी स्मिति की सुधि, कभी खीझ की, कभी झिझक की,
कभी पधारी विह्वल सुधि तव समर्पण मय लोचन-टक की।[2]

'नवीन' जी आकण्ठ तरुणाई के यौवन के कवि हैं। उनकी अनुभूति का यह चिरन्तन उभार उनकी समूची काव्याभिव्यक्ति में स्थल-स्थल पर परिलक्षित, ध्वनित और गुंजरित होता है। विप्रलम्भ और वियोग भाव, कवि के स्थायी सहचर हैं। अतीत के स्मरण-चित्र हों, वर्तमान का सुखोल्लास हो अथवा भविष्य की आकुल-व्याकुल चाह, हर स्थिति में 'नवीन' प्रणयार्पण वैष्णव जीवन की मनोमुग्धकारी झाँकी सँवारता ही है।[3]

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि " 'नवीन' शुरू से ही शरीर-प्रधान कवि रहे हैं। कहीं-कहीं यह अभिव्यक्ति (शारीरिक अभिव्यक्ति) आवश्यकता से अधिक उत्कट हो गई है। कबीर ने जिस अक्खड़ता को सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति प्रकट की है, उसी अक्खड़ता से 'नवीन' ने शारीरिक जीवन के प्रति आसक्ति। नवयुवकों में वह उन्मादक-सी हो जाती है।[4] कवि के स्मृति-तत्व में शारीरिकता का अंश आ गया है—

मेरा स्पर्शन, स्मरण कर रहा—प्राण तुम्हारा मधु आलिंगन,
मेरी यह रसना रस भीनी स्मरण कर रही अधरामृत कण।
नासा को है स्मरण अभी तक प्रिय अंगराग के स्मर-क्षण,
औ मँडराता ही रहता है अह-निशि स्मरणमत्त मम यह मन।[5]

'मूलक' का कथन, कि भुज-बन्धन में बँधने पर ही कल्पनाओं के कल्ले फूटते हैं,[6] 'नवीन' जी के प्रेम-काव्य पर चरितार्थ होता है।

'नवीन' जी के सदृश्य, 'निराला' जी भी अपनी स्मृति में यह अनुभव करते हैं कि मिलन के ही दिवस, उनकी कल्पना ने सप्राणता प्राप्त की थी—

आज वह याद है वसन्त, जब प्रथम दिगंत-श्री
सुरभि धरा के आकांक्षित हृदय की,
दान प्रथम हृदय को था ग्रहण किया हृदय ने,
अज्ञात भावना, सुख चिर मिलन का,

---

१. 'अपलक', ध्यान तुम्हारा धरा करे हैं, छन्द ५, पृष्ठ १३।

२. वही, छन्द ३, पृष्ठ १२-१३।

३. श्री प्रभागचन्द्र शर्मा—प्रेय और श्रेय का कवि 'नवीन', आकाशवाणी वार्त्ता, इन्दौर, प्रसारण तिथि ५-१२-१९६०।

४. 'संचारिणी', छायावाद का उत्कर्ष, पृष्ठ २१४।

५. 'आगामी कल', गीत, वर्ष ५, अंक ३, मार्च, १९४६, मुखपृष्ठ, छन्द ३-४।

६. 'आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य', पृष्ठ ८९ से उद्धृत।

हल किया प्रश्न जब सहज एकत्व का प्राथमिक प्रकृति ने,
उसी दिन कल्पना ने पायी सजीवता।[1]

यह स्मृति-जन्य वेदना ही वियोग का रूप धारण कर, 'नवीन' जी के प्रेम-काव्य में शीर्ष-स्थल प्राप्त कर लेती है।

वियोग-चित्रण—महाकवि कालिदास के मतानुसार, वास्तविक प्रेम वियोग में ही रहता है—

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा
दिष्टे वस्तुन्यु पचितरसा प्रेमराशीभवन्ति।[2]

पन्त जी ने वियोग से ही कविता का जन्म माना है—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।[3]

पन्त जी के, विरह शब्द के लेखन में अश्रुओं की ही प्रमुखता पाई है।[4] कवि का वियोग भी अश्रु-विलाप तथा हिचकियों के विरह-राग को ध्वनित कर रहा है—

हलचलों के बीच भी वाणी रहे मेरी अकम्पित,
और विप्लव भी न कर पाए सुखड़मय गीत, खण्डित—
साध भी यह, किन्तु देखा कण्ठ है आक्रोश-मण्डित,
और मैं बस रो रहा हूँ हिचकियों के राग गा-गा,
कौन सा यह राग जागा ?[5]

कवि ने गहन वेदना का आभास इन पंक्तियों में दिया है—

तुम बिन इतनी गहन वेदना होगी, इसका भान न था,
मेरे पास व्यथा गहराई सूचक मान न था,
तुम पकड़ा कर चिर विद्रोह का मानदण्ड जब चले गए,
तब वह बात हृदय ने जानी, जिसका मुझको ज्ञान न था॥[6]

---

१. श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—'अनामिका', पृष्ठ ७७।

२. 'मेघदूत', उत्तर मेघ, ५१।

३. 'पल्लव', पृष्ठ १२।

४. शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर, विरह, अहह कराहने इस शब्द को।
किस कुलिस की तीक्ष्ण, चुभती नोक से, निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा॥

५. 'युगान्तर', कौन सा यह राग जागा ? २८ नवम्बर, १९५३, छन्द २।

६. 'स्मरण-दीप', कितनो दूर पधारे हो, २९ वीं कविता, छन्द ५।

कसकती वेदना की बात पन्त जी ने भी, अपने गीत में, लिखी है—

विरह है अथवा यह वरदान।
कल्पना में है कसकती वेदना, अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं, मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।[१]

'नवीन' जी तो इसे अपने जीवन का अभिशाप अथवा पाप ही मानते हैं कि वे किसी के न हो सके—

क्या जानूं क्या अभिशाप लगा जीवन में?
यह कैसा पाप प्रपाप जगा जीवन में?[२]

कवि ने वेदना का आकलन स्वानुभूतिमय किया है। इस रूप में वह अपने युग की काव्य-धारा छायावाद से काफी प्रभावित है। छायावाद के विषय में श्री जयशंकरप्रसाद ने लिखा है कि "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के वाह्यवर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"[३] कवि ने वेदना को सम्बोधित करते हुए लिखा है—

वेदने, सुनो मेरी वाणी,
हृत्खण्ड जलाओ कल्याणी!
तुम जिस प्रदेश की हो रानी,
कर दो वह भस्म, न दो पानी,
तब निकले शोले तीन चार।[४]

वियोग का जीवन-दर्शन इन पंक्तियों में है—

हाय हाय करिबे की हमने कबहुँ न सीखी बान,
बिथा, हँसी हू में, सुनि लेते जो तुम देते कान![५]

'नवीन' जी ने वियोग-चित्रण में, विरहगत रूढ़ियों को भी प्रश्रय प्रदान किया है। कवि का भस्मीभूत व्यक्तित्व दर्शनीय है—

ज्वलित उल्कापात है याँ,
घात औ' प्रतिघात है याँ,
ज्वाल मण्डित व्योम मेरा—
अनल की बरसात है याँ,
बन रहा है एक मुट्ठी क्षार यह व्यक्तित्व मेरा,
भस्म है अस्तित्व मेरा।[६]

---

१. 'पल्लव', पृष्ठ १२।
२. 'स्मरण-दीप', मेरे अम्बर में निपट अँधेरा छाया, ३० वीं कविता, छन्द ४।
३. श्री जयशंकरप्रसाद—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ १२३।
४. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', प्रज्वलित वह्नि, चौथी रचना, छन्द १३।
५. 'रश्मिरेखा', तुम नहिं जानत हो, छन्द २, पृष्ठ ६५।
६. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', अस्तित्व मेरा, ५४ वीं कविता।

यही स्थिति इस काव्यांश में भी है—

वीचि का विलास कैसा ? कहाँ का तरंग-रास ?
भरी है आकण्ठ आग मेरे मन-सर में !
मेरी दसों अंगुलियाँ बनी हैं लुकाठी और,
ज्वलित हुई है मेरे दोनों दग्ध कर में ॥[१]

विरह-अग्नि में प्रज्वलित कवि की स्थिति की परिणति इन पंक्तियों में होती है—

तड़पन, आतुरता, उत्सुकता, कुछ भी न आज अवशेष रही,
तिल तिल, जल जल, सब खाक हुई, हो गई चेतना पराजिता,
शोलों की गोदी में सोया, चेतनाहीन यह चिर प्रेमी,
मरघट के पीपल की हर-हर, पत्तो भी सिहर उठी दुखिता ।[२]

इस प्रकार कवि ने विरह का भावपरक चित्रण किया है। उसमें, कवि के हृदय-गत विचारों तथा प्रवृत्तियों की सरस अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने दर्द, पीड़ा, वेदना, व्यथा तथा विपत्तियों के गरल का, अपने जीवन में पान किया था। उनके अन्तस्तल में दर्द आजीवन बसा रहा। वास्तव में, श्री 'बच्चन' की ये पंक्तियाँ, कवि 'नवीन' के प्रेमी व्यक्तित्व पर सटीक बैठती हैं—

बड़ भागी हैं दर्द बसाए रह सकता है जिसका अन्तर,
जो इससे वंचित है उनको फूंको फूस-चिता पर धर कर ।[3]

मांसल तथा उन्मादक प्रेम—डॉ० देवराज के मतानुसार, छायावाद की काव्य-शैली के आवरण में, वासनात्मक उद्‌गारों को भी प्रश्रय मिला है।[४] 'नवीन' जी के काव्य में भी, अपने समकालीन पथ के साथियों के समान, प्रणय के मांसल तथा उन्मादक चित्र प्राप्त होते हैं। इस धारा के मूल में, कवि की तारुण्यमयी प्रेम-घटना, मस्ती भरा व्यक्तित्व तथा स्वच्छन्दतावादी वृत्तियाँ कार्यशील रही हैं। कवि अपनी उन्मादिनी वासना की ओर संकेत भी करता है—

उस तव मृदुल चरण चौकी पर
बाले ! कैसे डालूं फूल ?
उन्मादिनी वासना की यह
मेरे हिय में छाई धूल ।[५]

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि "श्रृंगार रस से भी आपको प्रेम है और उस रस की अभिव्यक्ति जिन कविताओं में हुई है, वहाँ मादकता, उन्माद और सहज मस्ती बिखर पड़ी है।"[६]

---

१. 'स्मरण-दीप', ज्वाल पौन हाहाकार, १६ वीं कविता, छन्द २ ।
२. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', बुझ चली, ५७ वीं कविता ।
३. 'प्रणय-पत्रिका', पृष्ठ ४८ ।
४. डॉ० देवराज—'छायावाद का पतन', पृष्ठ ६६ ।
५. 'कुंकुम', द्वन्द्वयुद्ध, पृष्ठ ८ ।
६. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक—'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', छायावाद-युग, पृष्ठ २७० ।

बालकृष्ण चिरन्तन तरुण कवि हैं। उनकी तरुणाई की तरलाई के कण-कण में द्वैत का परिरम्भ मुस्कराता है। उनका चिरन्तन भाव 'रति' है परन्तु युवावस्था की अंगड़ाइयों में प्रणय की थकावट का विजृम्भण नहीं है वरन् अपूर्व जीवन के अवसाद के निश्वास हैं। जवानी का रस सबक ही है। प्रिय की स्मृति की मादकता प्रकृति के सुहावने नशे से मिलकर मन को नचा देती है और क्षुब्ध कर देती है।[१] कवि के मानसिक चित्रों में शारीरिकता के दर्शन किये जा सकते हैं।

कवि ने प्रेम के क्षेत्र में, उन्माद के चित्रों के द्वारा, रस-प्लावन की सरिता ही बहा दी। उसके कतिपय मधुवादी गीतों में उन्मादी वृत्तियों का रूपांकन किया गया है। डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण उस समय के वातावरण में गहन अवसाद छाया हुआ था, जिसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन समाज मुख्यत: मध्यवर्ग की चेतना एक विशेष मानसिक आध्यात्मिक क्लान्ति से अभिभूत हो गई।[२] इसी क्लान्ति को दूर करने के लिए ही हाला का आह्वान किया गया था। डॉ० नगेन्द्र ने इसे 'आध्यात्मिक विद्रोह से प्रेरित भोगवाद की' हाला कहा है।[३] कवि के प्रेमाधिक्य अथवा उन्मादावस्था को इन पंक्तियों ने आश्रय दिया है—

> कूजे-दो कूजे में बुझनेवाली मेरी प्यास नहीं,
> बार-बार ला! ला! कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं!
> अरे बहा दे अविरल धारा;
> बूंद-बूंद का कौन सहारा?
> मन भर जाय; जिया उतारवो,
> डूबे जग सारा का सारा;
> ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला।
> साकी, अब कैसा विलम्ब? ढरका दे तन्मयता-हाला।[४]

आगा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखित 'सिलवर किंग' नामक नाटक के कतिपय पात्र भी मादक गीत गाते हैं—

> दे दे आला, भर भर प्याला, पीने वाला हो मतवाला,
> बादल बरसे काला-काला, फूला आँखों में गुल्लाला।
> कैसा छाया है हरियाला,
> हाँ, एकसा नम्बर वन (Xra one) का बहा दे नाला,
> न रखना बाकी साक़ी तेरा बोलबाला॥[५]

---

१. श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—'साहित्य तरंग', पृष्ठ १४१।

२. डॉ० नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', 'बच्चन की कविता', पृष्ठ ८३।

३. वही।

४. 'रश्मिरेखा', साकी, छन्द ६, पृष्ठ ७५।

५. डॉ० सोमनाथ गुप्त—'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास', रंगमंच और रंगमंचीय नाटक, पृष्ठ १४६।

कवि का साकी से आग्रह है—

तू फैला दे मादक परिमल,
जग में उठे मदिर-रस छल-छल;
अतल-वितल-चल-अचल-जगत में—
मदिरा झलक उठे झल-झल-झल ।[१]

यह प्रवृत्ति उस युग के अन्य कवियों में भी प्राप्य है । प्रसाद जी लिखते हैं—

गलबाँही दे हाथ बढ़ाओ, कह दो प्याला भर दे, ला ।
× × ×
चाहता पीना मैं प्रियतम, नशा जिसका उतरे ही नहीं ।[२]
× × ×
लहरों में प्यास भरी है, है भँवर पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर, लुढ़का दी तुमने प्याली ।[३]

श्री भगवतीचरण वर्मा भी लिखते हैं—

पीने दे, पीने दे, ओ यौवन-मदिरा का प्याला,
मत याद दिलाना कल की, वह कल है आने वाला ।
है आज उमंगों का युग, तेरी मादक मधुशाला,
पीने दे जी भर रूपसि, अपने पराग की हाला ।[४]

श्री 'बच्चन' ने इस दिशा में 'मधुशाला' 'मधुबाला', और 'मधुकलश' नामक कृतियों की रचना की । उन्होंने इस वाद को मांसलता प्रदान की । उनकी मधुवादी वृत्ति की भी एक झलक दर्शनीय है—

हाला मैं आने से पहले नाज दिखाएगा प्याला,
अधरों पर आने से पहले अदा दिखाएगी हाला,
बहुतेरे इन्कार करेंगे साकी होने से पहले,
पथिक न, घबरा जाना, पहले मान करेगी मधुशाला ।[५]

महादेवी जी भी कहती हैं—

तेरा अधर विचुम्बित प्याला, तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला, फिर पूछूँ क्या मेरे साकी ।
देते हो मधुमय विषमय क्या ।[६]

'बच्चन' के समान[७], 'नवीन' पर भी 'उमर खय्याम' का प्रभावांकन किया जा सकता

---

१. 'रश्मिरेखा', साकी, छन्द ५, पृष्ठ ७५ ।
२. श्री जयशंकरप्रसाद—'झरना' ।
३. वही, 'आँसू', पृष्ठ २८ ।
४. श्री भगवतीचरण वर्मा—'मधुकण', पृष्ठ ४२ ।
५. 'मधुशाला', छन्द १३ ।
६. 'यामा', पृष्ठ १४३ ।
७. 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ ८३ ।

है। 'रूबाइय्यात उमर खय्याम' के गुप्त जी द्वारा अनूदित अंश भी 'प्रभा' में ही, प्रचुर मात्रा में, प्रकाशित हुए थे। इस भोगवाद एवं मधुवाद का प्रभाव 'उर्म्मिला' के लक्ष्मण पर भी देखा जा सकता है।[१]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने प्रेम के भोग पक्ष का भी चित्रण करके, उसे जीवन की जिन्दादिली से ओत-प्रोत कर दिया है। वे जीवन के प्रवृत्ति-मार्ग के ही अनुयायी रहे। उन्हें सांसारिक-वैराग्य या पलायन में कभी भी निष्ठा नहीं रही। वे आसक्ति-प्रधान कवि रहे हैं। उन्होंने अपनी प्रेमपरक रचनाओं में मांसलता की मात्रा के आधिक्य को स्वीकृत भी किया था।[२] उन्होंने लिखा है—"यह भी सम्भव है कि मेरे गीतों तथा मेरी कविताओं में वासना की गन्ध मिले। पर, मैं इतना निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरी कृतियों की 'अनित्य द्रवयता' के पीछे 'नित्यता की छाया रही है।'[३] उन्होंने बताया है कि प्रेम सम्बन्धी अधिकांश रचनाओं का जन्म, स्मृति से हुआ है। प्रिय का ध्यान आते ही गीत की प्रथम पंक्ति, फूट पड़ी है और गीत बनता चला गया है।[४] कवि ने उपर्युक्त काव्य-धाराओं का समर्थन करते हुए कहा भी था कि "ये आपके कविगण, जिनका मखौल पुराने और नयों ने सजनीवादी, हाला-प्यालावादी, रहस्यवादी, छायावादी एवं अर्थहीन व्यर्थबकवादी कह कर उड़ाया है, आपके साहित्य के भूषण हैं।[५]

इस प्रकार 'नवीन' जी के काव्य में, रति तथा उत्साह, दोनों ने अपने युग्म-रूप को प्रतिष्ठित किया है। श्री 'प्रवासी' ने लिखा है कि "नवीन जी की कविताओं में जहाँ एक ओर जीवन के संघर्षों का विराट् आह्वान है; वहाँ प्रेम साधना की तीव्र अनुभूति भी है। उनकी कविताओं में जहाँ क्रान्ति और विध्वंस के आह्वान में 'नभ का वक्षस्थल फट जाये', तारे टूक टूक हो जायें' के विराट् ताण्डव का स्वप्न है, वहाँ 'बँध गई भुजबन्धनों में बन्धनों की स्वामिनी तुम' के रूप में जीवन के किसी अज्ञात कोने से प्रेम-साधना के मार्मिक और सूक्ष्म संकेतों का प्रदर्शन भी है।"[६]

मूल्यांकन—'नवीन' जी का प्रेम-काव्य उनके हृदय का स्वच्छ दर्पण है, अमल अनुभूतियों का आगार हूँ। उनमें प्रणय, रूपसौन्दर्य, यौवन, मादकता, भोग एवं समन्वय के सूत्र अपनी संयुक्त जलनिधि में, काव्य-श्री को, स्नात कर रहे हैं।

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने लिखा है कि "बालकृष्ण के गीतों में मांसल भावुकता है, अभिव्यंजना की तिलमिलाहट है, प्रिय का चिरन्तन आलम्बन है। अतीत के सम्पर्क स्मृति

---

१. 'उर्म्मिला', तृतीय सर्ग, छन्द ६६, पृष्ठ २१६।

२. 'मैं इनसे मिला'. पृष्ठ ५२।

३. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ३।

४. 'मैं इनसे मिला, पृष्ठ ५५।

५. 'कुंकुम', पृष्ठ ११।

६. 'विश्वमित्र', रजत-जयन्ती विशेषांक, हिन्दी के पिछले पच्चीस वर्ष : विकास और प्रगति की रूपरेखा, पृष्ठ १३६।

संचारी का काम देते हैं। रसराज शृंगार उनके गीतों का मर्म है। संयोग और वियोग, दोनों पक्षों के दर्शन होते हैं। संयोग बहुत कम और अधिकतर मानसिक और कहीं-कहीं कुछ अनुकूल अवसरों के रतिपूर्ण क्षणों की याद जिसमें वियोग भी मिला है।...विप्रलम्भ ही वास्तव में उनका प्रधान भाव है।...बालकृष्ण शर्मा के प्रेम में भी भारतीयता के लक्षण मिलेंगे। हाँ, प्रिय का रूप उभय लिंगों में देखना यहाँ की परिपाटी नहीं है। यह कदाचित् उर्दू का उत्तराधिकार हो। भक्त कवि भगवान की अवतारणा स्त्रीलिंग में कर ही कैसे सकते थे; अतएव बालकृष्ण ने कदाचित् अपने 'सरकार' को उन्हीं के सम्बोधन के अनुसार सँवारा है।...बालकृष्ण के वियोग चित्रों में अतीत के रमण स्वरूपों का बल भी रहता है और भविष्य की रमण भूमि की अनेकार्थी कामना भी काम करती है।[1]

'नवीन' जी के प्रेम-काव्य पर कबीर की विरहाकुल मस्ती, वैष्णव कवियों की तल्लीनता तथा उर्दू कविता की रंगीनी छटा का प्रभाव भी आँका जा सकता है। कबीरदास कहते हैं—

जीभड़ियाँ छाल्या पड्या, नाम पुकारि पुकारि।
अँखड़ियाँ झाई पड़ी पन्थ निहारि निहारि॥

'नवीन' भी विरहावस्था में कहते हैं—

उष्णोदक ढ़ार-ढ़ार सूख चले दृग चंचल,
पथराये हैं मम दृग पन्थ जोहते पल-पल।[2]

वैष्णव कवियों का गीति-तत्व एवं तन्मयता का प्रभावांकन यहाँ किया जा सकता है –

ललकि रह्यौ हिय दरस-परस कौं; मन है अस्त-व्यस्त,
अपनेई तैं मैं चिन्तातुर; मैं निज हैं संत्रस्त।[3]

उर्दू-फारसी कविता का प्रभाव भी आ गया है—

जदपि रमे हो मम शोणित के कण-कण में तुम, प्राण,
फिर भी व्याकुल हूँ करने को मैं तव साक्षात्कार;
कहाँ हो तुम मेरे सरकार ?[4]

'कामायनी' में भी उभयलिंगी सम्बोधन प्राप्त होते हैं।

'नवीन' जी के वियोग-चित्रण में आशा-निराशा तथा आलोक-अन्धकार का द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। कवि विरहाकुल होता है। उसका हृदय बारम्बार मचलाता है और वह अपने जीवन का विश्लेषण एवं सिंहावलोकन करता है। इन समस्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं में अन्ततः आशा, उत्कटता, जीवन-कर्म तथा समन्वय की भूमिका ही चरितार्थ होती है। कवि दर्प को अपना अंग बना लेता है और उसका आजीवन पोषण करता है। इस प्रणयानुभूति ने

---

१. 'साहित्य तरंग', गीतकाव्य और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', बालकृष्ण के गीत, पृष्ठ १३५-१३६।

२. 'रश्मिरेखा', मेरे परिपन्थी, छन्द, २, पृष्ठ ११५।

३. वही, बिथा या हिय की बरनि न जात, छन्द ४, पृष्ठ १०७।

४. वही, आज है होली का त्यौहार, छन्द ४-५, पृष्ठ २६।

ही, कवि के काव्य के अन्य क्षेत्रों में भी प्रविष्ट होकर, अपने आवरणों तथा प्रभावों में परिवर्तन उपस्थित किया है।

कवि ने प्रेम तथा वियोग-जन्य वेदना को भी अपने साहसी व्यक्तित्व तथा पौरुष के अनुसार ही ग्रहण किया है और उसे वैसा ही ढाल लिया है। उनके निराश-प्रेम[1] से भी उदात्त-तत्व ही टपकते दृष्टिगोचर होते हैं।

'नवीन' जी का प्रेम-काव्य अपनी निष्कपट अभिव्यक्ति तथा अनुभूतियों की ईमानदारी में अपनी सानी नहीं रखता। वे जीवन के गायक थे और जीवन से ही उन्होंने अपनी काव्य-प्रेरणा, सामग्री तथा प्रगति की निधियाँ प्राप्त की हैं। उनका साहित्य-स्रोत, कभी भी अपर या इतर माध्यम से, सम्बर्द्धित या पोषित नहीं हुआ। प्रेम भी उनकी जीवन की उपज था और इसे कवि ने, अपने काव्य में लहलहाती फसल के रूप में परिणत कर दिया। उनकी प्रेमाभिव्यक्ति में किसी भी प्रकार का दुराव, छिपाव या संकोच नहीं है।[2] इन सब के होते हुये भी उन्होंने सांस्कृतिक शिष्टता का काफी दूर तक पालन भी किया है। उनके काव्य का आधार ही हमारी सांस्कृतिक परिपाटी, धरोहर तथा पीठिका रही है। उनके प्रेम तथा वियोग-दर्शन सूत्र के मूल उत्स को भी हम, विद्यापति तथा सूर[3] और कबीर व जायसी के कृतित्व में ढूंढ़ सकते हैं। हम कह सकते हैं कि 'नवीन' ने अपने साधना-शून्य जीवन से भी, वेदना के अमर गीत की स्वर-माधुरी भरने का[4] अविस्मरणीय कार्य किया है।

कवि ने अपने प्रेम अथवा विरह को स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख करके, लौकिक से अलौकिक की ओर संकेत करके, अपने काव्य में स्थायीभाव एवं चिन्तनपरक तत्वों का समावेश कर लिया है। कवि की आत्मा की हूक[5] उसके प्रेम-काव्य में भी यत्र-तत्र कर्णगत होती है और अन्ततोगत्वा उसे अपने ही रंग में सराबोर कर लेती है।

---

१. "यदि हम निराश प्रेम का चित्रण करें तो पढ़ने वालों को यह अनुभव होना चाहिए कि यह सवा-हाथ का कलेजा है जो तड़प रहा है। यह क्या कि गोया तड़पन है ही नहीं?"—'कुंकुम', पृष्ठ, १८।

२. "हमारे वर्तमान बुद्धि-श्री सम्पन्न कवियों में यह दोष आ गया है कि वे कल्पनाओं और रंगामेजियों के घटाटोप में असली बात छिपा जाते हैं।"—'कुंकुम', पृष्ठ १८।

३. "साधारण, किन्तु अत्यन्त आकर्षण वियोग या संयोग का भाव विद्यापति की या सूर की सरलता के साथ भी तो चित्रित किया जा सकता है?"—'कुंकुम', पृष्ठ १८।

४. "इस विरह-मीमांसा को इस करुणा-तत्व को, आप यदि चाहें तो दो कौड़ी का भावोन्मेष कह कर टाल दें; या, आप चाहें तो इसे साधना-शून्य छायावाद कर-कर इसका मजाक उड़ा लें, पर, इतना तो स्मरण रखिये कि आपके हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में कुछ लोग ऐसे जरूर हैं जो अपने साधना-शून्य जीवन में भी वेदना के अमर-गीत की स्वर-माधुरी को भरने का प्रयत्न अवश्य करते हैं।—'कुंकुम', पृष्ठ १७।

५. "हमारे काव्य में करुणा की प्रधानता का दूसरा कारण है मानव स्वभाव की एक अतृप्ति। इसके सम्बन्ध में एक बार मैंने लिखा था कि जिस समय भवभूति ने कहा था, 'एकोरस: करुणमेव' उस समय वह रो ही रहा हो और विलाप की धुन में उसने यह सिद्धान्त

'नवीन' का प्रेम-दर्शन निराशा या असफलता के झरोखे से न झाँककर, आशा, साहस, शक्ति एवं आस्था के स्वरों के वातायन से अपनी छवि बिखेरता है। वे प्रेय से श्रेय की ओर उन्मुख होते हैं। उच्चतर आदर्शों के परिपालनार्थ वे सांसारिक एवं व्यावहारिक दुनियादारी को तिलांजलि देते दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रेम-काव्य पर ही कवि का काव्य-प्रासाद आधृत है। उसमें काव्य-प्रकर्ष भी अपने महत्तम शिखरों को स्पर्श करता है। गीति-कला का सर्वाधिक सुन्दर प्रस्फुटन और मार्दव, इसी क्षेत्र में ही, विलास कर रहा है। कवि मूलतः एवं प्रधानतः गीतिकार ही था; जिसका प्रमाण उसका यही प्रेम-काव्य है। इस काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों ने भी अपना स्वर्णकोष बिखेरा है और छायावाद का केतन भी यत्र-तत्र फहराता दृष्टिगोचर होता है।

'नवीन' जी ने अपने प्रेम-काव्य के माध्यम से हिन्दी में मधुवादी वृत्तियों तथा उन्मेषों को पुरस्सर किया। यह प्रवृत्ति उनके फक्कड़ तथा आध्यात्मिक रूप की मिलन कहानी कहती है। विद्रोही तथा प्रणयी रूप ने भी आकर यहाँ अपना सहयोग प्रदान किया है। हिन्दी में इस धारा के पुरस्कर्त्ता होने के नाते, उनका महत्त्व कम नहीं है।

श्री कान्तिचन्द्र सोनरेक्सा ने, कवि के प्रेम-काव्य का मूल्यांकन करते हुये लिखा है कि, " 'नवीन' जी के अधिकांश गीतों का विषय प्रेम ही है और निपट मानवीय प्रेम भी सच्चा होने पर किसी दिव्य अध्ययन योग से कम नहीं होता। ऐसा प्रेम व्यक्ति से लगाव रखते हुए भी निर्व्यक्ति हो जाता है और इस निर्व्यक्तीकरण की प्रक्रिया में प्रेम अवश्य ही 'सर्वभूतहित-रति' और स्वार्थ-समर्पण की भावना जागृत करता है। किन्तु 'नवीन' जी की प्रेम-भावना पर्वत दिनहो की भाँति सदा उद्दाम रही है। हिन्दी के अन्य किसी कवि में ऐसी उद्दाम गति मैंने नहीं देखी है। श्री भगवतीचरण वर्मा के 'प्रेम-संगीत' में इसका आभास अवश्य मिलता है पर वह रेगिस्तानी नहीं बनकर कह गया।"[1]

प्रतिपादित कर दिया हो सो बात नहीं। भवभूति के कथन के पीछे निखिल जीवन का एक तत्व, एक रहस्य, छिपा है। हमारे, आपके, सबके, अनुभवों ने हमें यह स्पष्ट रूप से जता दिया है कि जीवन में एक अकारण असन्तोष, एक मदिर चाह, एक अमिट प्यास, एक विषादमयी स्फूर्ति, एक अतृप्ति बनी ही रहती है। सुख और आनन्द के बीच एक हूक सी उठ आती है मानो सायुज्य संयोग के क्षणों में भी विप्रयोग की बाँसुरी की एक हूक सुनाई दे जाती है। रवि ठाकुर कहते हैं—'Oh, the Keen call of thy flute. आह! तेरी स्वनित मुरलिका का वह आतुर आह्वान किस देश से, किसके श्वासोच्छ्वास से स्पन्दित यह आतुर आह्वान हमारी प्राणवंशी के रन्ध्रों से प्रवाहित हो उठता है? कहाँ है वह? साजन कौन देश में छाए?" —'कुंकुम', पृष्ठ १५।

(ख) "यह दो पैरों का मानव-नामधारी जन्तु तो सतत प्रवासी है; यह न जाने किस अप्राप्त-प्राप्त की, किस पति की, टोह में आज युग-युग से मार्ग-क्रमण करता जा रहा है और अभी तक उसका हृदय खाली है, उसकी आँखें विस्फारित, रिक्त और प्यासी हैं। इस वेदना के अंश को यदि आज का कवि-समाज व्यक्त करता है तो हम कृतज्ञतापूर्वक उसे स्वीकार क्यों न करें?"—'कुंकुम', पृष्ठ १२।

१. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ५२४।

वास्तव में कवि का जीवन समर्पण का जीवन रहा है। जहाँ महादेवी जी ने अपने को 'दुख की बदली' कहा है—

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा, क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते, पलकों में निर्झरिणी मचली।
मेरा पग-पग संगीत भरा, स्वासों से स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल, छाया में मलय बहार पली।[1]

वहाँ 'नवीन' जी कहते हैं—

प्रिय, मैं आज भरी झारी सी,
ललक ढुलूँगी श्रीचरणों में, निज तन-मन-वारी-सी,
साजन, आज भरी झारी-सी।[2]

यही समर्पण की वृत्ति जहाँ उन्हें राष्ट्र का सांस्कृतिक गायक बनाती है, परमसत्ता की अनुरक्ति का भाजन बनाती है; वहीं अपनी प्रेयसी की प्रणयानुभूति तथा वियोग-विदग्धता का मर्मी उद्घाटक भी। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ठीक ही लिखा है कि "उनकी शृंगार-परक रचनाओं में एक सच्चे रोमाण्टिक कवि के दर्शन होते हैं।"[3]

दार्शनिक-काव्य

पृष्ठभूमि—'नवीन' जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में हुई है। अपने जीवन के प्रायः अन्तिम १५ वर्षों में कवि का मन पारलौकिक तत्वों की ओर उन्मुख हुआ और उसने गम्भीर आस्था तथा रहस्य भावना से प्रेरित मधुर-गान गाये।[4] इस प्रकार उनकी परवर्ती रचनाओं में, रहस्यवादी तथा आध्यात्मिक तत्वों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है।

इसके मूल में कतिपय कारणों का अनुशीलन किया जा सकता है। कवि के जीवन के विकास के साथ ही साथ, उसकी कविताओं का प्रेम स्वर अपने अस्तित्व को दार्शनिक काव्य में विलय करता लक्षित होने लगा। इसके अतिरिक्त, कवि के बाल्य-संस्कारों ने भी अपने तन्तुओं को परिपक्व बनाया। ये संस्कार ही आगे जाकर अपनी छवि बिखेरने लगे। कवि के पिता के वल्लभसम्प्रदायानुयायी होने के कारण, उन्होंने अपने जीवन को भगवद्-आराधना में ही निमग्न कर दिया। साथ ही, कवि-माताश्री अत्यन्त सात्विक एवं आस्तिक नारी थी। उनके कण-कण में हरि-भक्ति तथा आस्था के तत्व भरे पड़े थे। इस प्रकार, दोनों से कवि को

---

१. 'यामा', पृष्ठ २२७।

२. 'क्वासि', प्रिय मैं, आज भरी झारी-सी, पृष्ठ ६।

३. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आधुनिक काल, पृष्ठ २०८।

४. डॉ० रामअवध द्विवेदी—दैनिक 'नवराष्ट्र', २४ जुलाई, १९६०, पृष्ठ ५, कालम ३-४।

आध्यात्मिकता की पैतृक-सम्पत्ति प्राप्त हुई जो कि कवि के अन्तःकरण में सतत क्रियाशील तथा उद्भाविका शक्ति सम्पन्ना बनी रही। इन्हीं वैष्णवी संस्कारों ने, कवि को भक्ति तथा दर्शन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर दिया। डॉ० भटनागर ने लिखा है कि " 'भारतीय आत्मा' (माखनलाल चतुर्वेदी) और 'नवीन' के काव्य में यह वैष्णव सन्दर्भ छायावादी कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक सुस्पष्ट है, क्योंकि वे जन-जीवन से संपृक्त रहे हैं और उन्होंने पूर्व-परम्परा से अपना नाता एकदम नहीं तोड़ा है।"[1]

'नवीन' का दार्शनिक-काव्य उनके जीवन तथा अध्ययन की उपज है। उनकी आजन्म धरोहर में, स्वाध्याय तथा चिन्तन ने मिलकर, उसे आध्यात्मिकता के रंग में सराबोर कर दिया। डॉ० विश्वनाथ गौड़ के मतानुसार 'नवीन' जी की इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति का कारण उनका दार्शनिक अध्ययन है।[2]

'नवीन' जी के दार्शनिक काव्य में नाना प्रकार के तत्वों का संचयन है और इन सब पर उनका भावुक कवि आच्छादित है। मनुष्य विचारशील प्राणी है। कवि 'नवीन' ने कहा है कि "मानव स्वभाव में एक अतृप्ति का सम्मिश्रण है और इस कारण हम सदा क्वासि ?- क्वासि ? की चीत्कार किया करते हैं।"[3]

इस प्रकार कवि ने 'क्वासि ?' के साथ ही 'कस्त्वं ? कोऽहं ?' के प्रश्न भी पूछे हैं। इन प्रश्नों के उद्भव तथा निदान ने ही उनके हृदय से रहस्यवादी प्रवृत्तियों को जन्म देने की प्रेरणा प्रदान की है। इस प्रेरणा की पीठिका में अनेक अवयव कार्यशील हैं।

दर्शन-सूत्र और उनका विश्लेषण भारतीय चिन्ता-धारा—कवि के रहस्यवाद पर अनेकों तत्वों का गहन प्रभाव आँका जा सकता है। वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ने उनके रहस्यवाद के स्वरूप गढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कवि उपनिषद् तथा गीता के भक्तों में से था। सबसे मुख्य बात यह है कि कवि ने भारतीय भूमि से ही पंचतत्व ग्रहण कर, अपने दार्शनिक-काव्य के पौधे को पोषित किया था। उसने अपने आपको भारत की समृद्ध तथा पुरातन परम्परा की शृंखला से ही आबद्ध किया। इसके लिए यह यत्र-तत्र भटका नहीं और न उसने पाश्चात्य तत्वों को प्रधानता प्रदान की। अत्यल्प रूप में, उसके काव्य पर पाश्चात्य-दर्शन के छींटें देखे जा सकते हैं। इस प्रकार कवि का दर्शन, अपनी संस्कृति तथा साधना का ही सुवासित पुष्प है।

उपनिषदों ने कवि के दर्शन की आत्मा का निर्माण किया है। कवि अपने उत्स का विश्लेषण करते हुए लिखता है कि "यदि हम इस पर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि इस देश को आत्मैकता प्रदान करनेवाली वह प्रणोदना है जिससे प्रेरित होकर नासदीय सूक्त के ऋषि की वाणी मुखर हो उठी थी—कुत आयाता इयम् विसृष्टि—? यह शाश्वत टोह-भाव, यह पुकार, यह टेर—क्वाऽसि—की यह टेर मेरी—यह चटपटा, यह लगन, यह उन्मन-आकांक्षा—

---

१. डॉ० रामरतन भटनागर—'मध्यप्रदेश सन्देश', आधुनिक हिन्दी कविता पर वैष्णव-प्रभाव, ४ अगस्त, १९६२, पृष्ठ ५।

२. डॉ० विश्वनाथ गौड़—'आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद', पृष्ठ २२१।

३. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १३।

यही है जो भारत की आशा को अनुसन्धान-रत किये हुए है। इसी प्रेरणा से ही हमारे देश के वाङ्मय को गुंजार मिला है। आत्म-दर्शन, सत्वरण, बन्धन-मोक्ष—यही इस देश की विशेषता है।"[1]

'नवीन' का दार्शनिक व्यक्तित्व कठोपनिषद्कार के नचिकेता के समान, जिज्ञासाकुल तथा आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। 'नवीन' ने 'क्वासि' की भूमिका में, इस प्रसंग का विशद विवेचन किया है। प्रकारान्तर से, इसे हम उनके दार्शनिक-काव्य की पृष्ठभूमि समझने के लिए और उसके संयोजक-तत्वों की प्रतीति के हेतु, प्रामाणिक तथा उपयुक्त स्रोत के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

कठोपनिषद्कार का नचिकेता इसी आत्मोपलब्धि, आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी, सुलझाना चाहता है। वह अपने गुरु यम से पूछता है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके;
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वाराणामेष वरस्तृतीयः।[2]

यमराज उसे बहलाना तथा फुसलाना चाहते हैं—

अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व,
मामोपरोत्सीरति मा सृजैनम्।[3]

यमराज नवयुवक नचिकेता को मनमोहक वरदान देने की बात कहते हैं—

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके,
सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व,
इमा रामाः सरथाः सतूर्याः
नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।[4]

परन्तु नचिकेता दृढ़ है। मनुष्य वित्त से तृप्त नहीं होता—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।[5]

'नवीन' ने इस प्रसंग की चर्चा का, अन्त में उसका निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया है। इस निष्कर्ष में ही, उनके दार्शनिक-काव्य की मूल-भित्ति का अवगुण्ठन खुलता हुआ दिखाई पड़ता है। वे स्वयं प्रश्न करते हैं—इस भव्य, उदात्त, हृदय-मन्थनकारी सम्भाषण का क्या अर्थ

---

१. 'क्वासि', 'क्वासि' की यह टेर मेरी, पृष्ठ २१।

२. वही, पृष्ठ २१।

३. वही, पृष्ठ २२।

४. वही।

५. वही।

है ? इसका उत्तर है —अर्थ केवल यह है कि अन्तर-पट के पार झाँकने की प्रेरणा, अवगुण्ठन को खोलने की प्रणोदना, भारतीय आत्म-अनुसन्धान के रूप में, सहस्त्राब्दियों से हमारे देश के आँगन में मचलती, खेलती, दौड़ती, ठहरती, विहँसती, रोती और रुलाती रही है।[1]

इसी प्रकार 'नवीन' जी ने अन्यत्र भी लिखा है कि "यम के शब्दों में ये अनित्य द्रव्य ही नित्य की प्राप्ति करा देते हैं। यम ने तो गर्व के साथ नचिकेता से कहा—अनित्यैः द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्—मैंने अनित्य द्रव्यों से ही नित्य को प्राप्त किया है ? इसमें आश्चर्य ही क्या ? यदि सन्तुलित रखने से ये अनित्य इन्द्रियाँ मानवता को गान्धीत्व और बुद्धत्व प्रदान कर सकती हैं, तो मेरे गीत, जो आलोचक की दृष्टि में मृत्तिका की मूरतों के लिये गाये गये गीत हैं, क्यों न करुणा, प्रेम, सर्वभूत हित-रति और स्वार्थ समर्पण की भावना जागृत कर सकें।"[2] कवि का विश्वास ही तो उपनिषत् के ऋषि के इस कथन में समाहित है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः
न मेधया, न बहुनाश्रुतेन,
यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः।[3]

'नवीन' जी उपनिषद्-धर्म[4] एवं कठोपनिषद्[5] से अत्यधिक प्रभावित थे। उनकी आस्था का सूत्र, इस पंक्ति में है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।[6]

ईशावास्योपनिषत्[7] से भी कवि विशेष प्रभावित हुआ। ईशावास्योपनिषत् का ऋषि, कवि की वाणी में कहता है—

हम से ऋषि बोला, 'सावधान
तुम ऊर्ध्व पन्थ के पथिक, अरे,
तव सहज स्वभाव न अधोगमन,
तुम पार्थिवता से सदा परे'।[8]

उपनिषदों ने 'नवीन' जी के काव्य को प्रभूत सामग्री प्रदान की। उनका प्रिय तथा अनन्य प्रसंग, यम-नचिकेता संवाद, उनके एक मृत्यु-गीत का विषय बना है—

नचिकेता बोला गुरु यम से 'आर्य ईश हैं साक्षी,
मैं मुमुक्षु हूँ मृत्यु तत्व का, मुझे न दो मीनाक्षी',

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ २३।
२. 'रश्मिरेखा', पराचः कामाननुयन्ति बालाः, पृष्ठ ३।
३. 'क्वासि', पृष्ठ २१।
४. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ११।
५. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ २।
६. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ११।
७. वही, ईशावास्योपनिषद् बोला, पृष्ठ २३।
८. वही, पृष्ठ २४।

अन्तक यम बोले : 'नचिकेतो, मरणे मानुप्राक्षी:,
किन्तु फँसा कब वह माया में जिसे मरण धुन भाई ?
भाई आज बजी शहनाई ?[1]

कवि के प्रिय दार्शनिक-पात्र नचिकेता की सुयश पताका इस 'मरण-गीत' में भी फहरा रही है—

जागो नीलकण्ठ जीवन में, कर विषपान अमर बन पाये,
जागो शक्ति छिन्न मस्ता वह, जिसको निज शोणित करण भाये,
जागो वे बलिदानी जिनने नित प्राणार्पण गायन गाये,
शिवि, दधीचि, नचिकेता जागे जिनकी सुयश पताका फहरी,
क्या तुम जाग रहे हो प्रहरी ?[2]

इस प्रकार, कवि के 'मरण-गीतों' का मूल-उत्स, कठोपनिषद् के यम-नचिकेता संवाद में ढूँढ़ा जा सकता है ।

'नवीन' जी ने क्वासि की टेर, ज्ञानेच्छा की हूक तथा रहस्योद्घाटन की वृत्ति को उपनिषद् काल में ही नहीं, प्रत्युत् आदिकाव्य-काल, महाकाव्य-काल, पुराण-काल, सन्त-काल तथा वर्तमान-काल—सब कालों के वाङ्मय में पाई है ।[3] उनके मतानुसार, राजदरबार में, मनोरंजन के लिये लिखे गये, साहित्य में भी यह हूक बराबर उठ-उठ आती रही है । राम के 'देहिनो दिवसागता:' और कालिदास के 'वर्षा लोके भवति सुखिनामप्यन्यथावृत्ति-चेत:' में वही हूक है, वही पर पीर की सुधपाने की आतुरतामयी असन्तुष्टि है ।[4] कवि का यह सुदृढ़ मत है कि भारत की स्वप्नोत्थित जागरूक-आत्मा ने, युगों के प्रवाह में डूब उतर कर भी, अपने स्वधर्म को, स्वभाव को, स्व-लक्ष्य को तिरोहित नहीं होने दिया ।[5]

श्रीमद्भगवद् गीता ने भी कवि की आध्यात्मिक वृत्ति के स्वरूप-निर्माण में पर्याप्त सामग्री प्रदान की हैं । कवि की ज्ञानेच्छा को इस महती कृति ने प्रभावित किया है । 'नवीन' जी के मतानुसार, 'ज्ञान' की व्याख्या है—ज्ञान है उस बिद्धिगम किये हुये तत्व को हृदयंगम एवं आत्मसात् कर लेना ।[6] गीता के आधार पर ही, उन्होंने, अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षान्ति आर्जव, आचार्योपासन, शौच, स्थैर्य, आत्म-विनिग्रह, इन्द्रियार्थों के प्रति वैराग्य, अनहंकार, जन्म-मृत्यु जरा-व्याधि-दु:ख-दोषानुदर्शन, आसक्ति, पुत्र-दार, गृह आदि में अनभिष्वंग, नित्य समचितत्व, चाहे इष्ट, चाहे अनिष्ट कुछ भी आ पड़े, अनन्य योग-पूर्वक भगवान के प्रति अव्यभिचारी भक्ति, विविक्त देश सेवित्व, जन-कोलाहल के प्रति अरति, अध्यात्म ज्ञान की नित्यता, तत्वज्ञान, अर्थ दर्शन—ये बीस लक्षण ज्ञान के बताये हैं[7]—

---

१. 'मृत्यु-धाम' या 'सृजन-झाँझ', भाई आज बजी शहनाई, आठ वीं कविता, छन्द ७ ।
२. वही, सात वीं कविता, छन्द ५ ।
३. 'क्वासि', पृष्ठ २१ ।
४. वही, पृष्ठ २३ ।
५. वही ।
६. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ८ ।
७. वही ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्त देशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥[1]

'नवीन' जी का रहस्यवाद, विद्यापति, सन्तवाणी,[2] गोरखवाणी,[3] कबीर, दादू सिद्धों, तान्त्रिकों, जायसी, निर्गुणियों, सूर, तुलसी, मीरा, अष्टछाप के कवि आदि वैष्णव कवियों द्वारा भी प्रभावित हुआ है। डॉ० 'बच्चन' ने उन पर, विद्यापति का प्रभाव निरूपित करते हुए, लिखा है कि "ऐसा नहीं कि 'नवीन' छायावाद, रहस्यवाद अथवा अध्यात्मवाद से अप्रभावित रहे हैं। पर 'नवीन' का अध्यात्मवाद उसको पार्थिवता का ही संशोधित, परिष्कृत, विदग्ध, अग्निपूत रूप है। पार्थिव प्रियतम को देवता बना देते हैं, देवता का पार्थिव प्रियतम के समान साक्षात्कार करते हैं। 'नवीन' का रहस्यवाद उस परम्परा से आया है, जिसके आदि कवि विद्यापति कहे जा सकते हैं--आराध्य को पति रूप में देखना।[4]

सन्त सिद्ध आदि की भाँति, 'नवीन' जी भी ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में, अनन्त शशि की ज्योति देखते हैं—

क्या जगाई है तुम्हीं ने,
सजन ! झिलमिल दीपमाला।
इस महत् ब्रह्माण्ड भर में,
खूब फैला है उजाला।
परम अणु-अणु में रमे हो,
दीप्ति की सुषमा जगाते।[5]

डॉ० 'सुमन' ने लिखा है कि "इस दर-दर अलख जगाने वाले रमते राम जोगी की बानी का सीधा सम्बन्ध सन्तों की उस प्राणवन्त साधना से था जिसमें कथनी-करनी में कोई अन्तर नहीं होता, 'अनुभव-साँचा पन्थ'।[6]

---

१. 'श्रीमद्भगवद्गीता', अध्याय १३, ७-११।
२. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ६।
३. वही, पृष्ठ ६।
४. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'नए पुराने झरोखे', कविवर नवीन जी, पृष्ठ ३७।
५. 'क्वासि', अगणिता तव दीपमाला, पृष्ठ ४१।
६. डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२, पृष्ठ ९।

कबीर का 'नवीन' पर गहन प्रभाव पड़ा। कवि का रहस्यवाद, इस सन्त कवि के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। महादेवी वर्मा के मतानुसार, कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं।[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "कबीर मस्तमौला थे। जो कुछ कहते थे, साफ कहते थे। जब मौज में आकर रूपक और अन्योक्तियों पर उतर आते थे, तब जो कुछ कहते थे वह सनातन कवित्व का शृंगार होता था। उनकी कविता से कभी सनातन सत्य खर्वित नहीं हुआ। वे जो कुछ कहते थे, अनुभव के आधार पर कहते थे। इसीलिए सभी रूपक सुलझे हुए और उक्तियाँ बेधने वाली होती थीं। उनके राम जब उनके प्रिय होते हैं, तो भी उनकी असीम सत्ता भुला नहीं दी जाती। नौ खुले दरवाजों के घर में बन्द दुलहिन के वियोग की तड़प एक रहस्यमय प्रेम-लीला की ओर संकेत करती है जहाँ सीमा, असीम से मिलने को व्याकुल है और असीम, सीमा को पाने के लिए चंचल। इसलिए इस सारे विश्व का प्रकाश है। अगर यह लीला न होती तो संसार में कोई वस्तु ही न होती। हम अपने मुख-यन्त्र आदि के बन्धन में असीम स्वर सन्तान को बाँधने की चेष्टा करके एक तरह का आनन्द पाते हैं और इस बन्ध से ही असीम-स्वर-सन्तान अनाहत नाद का आभास पाते हैं। वैसे ही सीमा के अन्यान्य उपकरणों से हम असीमता का अन्दाज लगाते हैं और प्रिय भी अपने इन्हीं सीमामय विकारों से हमारे आनन्द का अनुभव करता है। कबीर के रूपकों में सदा इस महासत्य की ओर संकेत होता रहता है।[2] 'नवीन' जी की भी यही स्थिति है।

कबीर कहते हैं—'सांई मेरे साजि दई एक डोली।' 'नवीन' जी भी इसी स्वर को इस भांति प्रस्तुत करते हैं—

> डोला लिये चलो तुम झटपट, छोड़ो अटपट चाल रे,
> सजन भवन पहुँचा दो हमको, मन का हाल-बिहाल रे।[3]

कबीर कहते हैं—'कहे कबीर हम व्याति चले हैं पुरुष एक अविनासी।'

'नवीन' कहते हैं—

> साजन के नव नेह-सलिल में है अद्वैत विहार, रे,
> हृदय-हृदय से, प्राण-प्राण से, आज मिले भरपूर रे,
> पिय-मय तिय, तिय-मय पिय हों जब, तब हों संभ्रम दूर रे।[4]

'नवीन' की नायिका डोले वालों को प्रेरित करती है। वह शाम से पूर्व ही प्रियतम के गृह पहुँच जाना चाहती है। जायसी की पद्मावती तथा उसकी सखियों को भी भय रहता है कि—

> सास ननद बोलिन्ह जिइ लेंही, दारुक ससुरन निसैर देही।

---

१. श्रीमती महादेवी वर्मा—'यामा', भूमिका, पृष्ठ ७।

२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य की भूमिका', भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का व्यक्तित्व, पृष्ठ ९७।

३. 'क्वासि', पृष्ठ ४७।

४, वही पृष्ठ ४८।

'नवीन' जी की नायिका को भी भय है कि—

हम कह आई हैं इन्दर से, रात पड़ेगा मेह रे,
घन गरजेंगे, रस बरसेगा, होगी सृष्टि निहाल रे।[१]

'नवीन' के डोले वालों की तुलना, 'तुलसी' के कहारों से भी की जा सकती है जिनके विषय में महाकवि ने 'विनय-पत्रिका' में लिखा है—

विषम कहार भार मदमाते चलहिं न पाऊँ बटोरा रे,
मन्द-विलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।
कांट, कुराय, लपेटन, लोटन ठाँवहि ठाऊँ बझाऊ रे।
जस-जस चलिय दूरि तस-तस निज वास न भेंट लगाऊ रे।[२]

मीरा ने भी कहा है—

पिय के संग पलंगा पौढ़ूँगी,
मीरा हरि रंग राचूँगी।

'नवीन' की नायिका भी कहती है—

उनके बिन बरसाती रातें कैसे कटें अचूक रे,
पिय की बाँह उसीस न हो तो मिटे न मन की हूक रे।[३]

कबीर लिखते हैं—

घूँघट के पट खोल री,
तोहे पिया मिलेंगे।

'नवीन' भी अपनी आत्मा को उत्प्रेरित करते हैं—

चल उतार अंग बस्तर आली,
तू क्षण भर में होगी पियमय।
अब कैसा दुराव साजन से,
पूर्ण हुआ तेरा क्रय-विक्रय।[४]

कबीर का 'अनहद', 'नवीन' की कविता में नूतन रूप प्राप्त करता है—

श्रवणों में, नयनों में, प्राण-व्यजन में, मन में,
अंकित है अमर छाप रोम-रोम, कण-कण में,
गूँजा अनहद निनाद तव कंकण-झन-झन में,
व्योम-गान-तान उठी, मेरे प्रिय, तव स्वन में।[५]

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ ४७।
२. गोस्वामी तुलसीदास—विनयपत्रिका।
३. 'क्वासि', पृष्ठ ४७।
४. वही, विदेह, पृष्ठ ८।
५. वही, नैशयाम कल्प-मान, पृष्ठ ९७।

कबीर तथा अन्य सन्त कवियों के समान, 'नवीन' भी कहते हैं —

देव, मैं अष्टांगयुक्त प्रणिपात में ब्रह्माण्ड घेरूँ,
नाम-माला-जाप में सब सौर-मण्डल-चक्र फेरूँ,
गोद में लूँ खींच तुमको यदि तड़पकर आज टेरूँ ।[1]

विद्यापति, कबीर, दादू आदि कवियों की अपने इष्ट को पति रूप में निरूपित करने के अनेक रहस्यवादी अवयव 'नवीन' के काव्य में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं । यथा —

आज सुना है, सखी हमारे साजन लेंगे, जोग की,
हमें दान में दे जायेंगे वे विकराल वियोग, की ।[2]

विद्यापति ने भी तो कहा है :—

सखि हे बालम जितब विदेस ।
हम कुल कामिनि कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेस ।[3]

कबीर की 'सुरति' तथा 'रंगमहल' का रूप भी यहाँ द्रष्टव्य है—

क्या बताऊँ कब सुने थे तव सुरति-आह्वान के स्वन ?
युग अनेकों हो चुके हैं जब सुना था यह निमन्त्रण ।[4]

मेरे साजन के ये मीलित लोचन-पुट जनि खोल, रे,
हमारे रंगमहल में छाई है विश्रान्ति अपार रे ।[5]

'क्वासि' की 'विदेह'[6] तथा 'तुम सत्-चित्-अवतार, रे'[7] कविताओं में जहाँ कबीर तथा मीरा जैसी तन्मयता प्राप्त होती है; वहाँ 'कुंकुम' की निगोड़ी हवा'[8] पर सूर तथा मीरा का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है ।

'नवीन, जी के करुणायुक्त एवं वैष्णव संस्कारी हृदय ने अपने पूर्ववर्ती हिन्दी सगुण एवं निर्गुण कवियों के ऋण को स्वीकार किया है । वे परम्परा का ही अनुवर्तन करते हैं । उन्होंने लिखा है कि "आज, यदि सामाजिक बन्धनों के कारण एक नौजवान या नवयुवती अपने स्नेह-पात्र को प्राप्त नहीं कर सकते और यदि वे वियोग और विछोह के हृदयग्राही गीत गा उठते हैं, तो यह न समझिये कि यह केवल उन्हीं की वेदना है जो यों फैला पड़ा है— यह वेदना तो समूचे संस्कृत हृदयों की चीत्कार है, यह वेदना संक्रान्ति-काल के जन समूह की पिपासार्ति है और इस वेदना का सीधा सम्बन्ध जगद्वन्द्या विरहिणी राधा और नागर कृष्ण

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ ११८ ।
२. 'रश्मिरेखा', साजन लेंगे जोग री, पृष्ठ ५६ ।
३. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—'विद्यापति की पदावली', पृष्ठ २४६ ।
४. 'क्वासि', पृष्ठ ८४ ।
५. वही, पृष्ठ ८२ ।
६. वही, पृष्ठ ८-६ ।
७. वही, पृष्ठ ८२-८३ ।
८. 'कुंकुम', पृष्ठ ७३-७५ ।

की हृदय-वेदना से है। आज के कवियों का, प्रत्यक्ष में केवल आधिभौतिक दिखाई देने वाला, दुःखवाद वास्तव में आध्यात्मिक है। आज के कविगण उसी रेखा को और आगे खींच रहे हैं जिसे सूर, कबीर, मीरा, विद्यापति; चण्डीदास, नन्ददास आदि खींच गये हैं।"[1]

'नवीन' जी के रहस्यवाद के हृदय का निर्माण भक्त कवियों के द्वारा किया गया। 'बस-बस, अब न मथो यह जीवन',[2] 'क्या न सुनोगे विनय हमारी',[3] 'प्रिय जीवन-नव अपार',[4] 'भिक्षा'[5] आदि रचनाओं में भक्ति तथा प्रार्थना का रूप परिलक्षित है।

श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा ने लिखा है कि "नवीन जी को आत्मदर्शी और परम भक्त के रूप में कम लोग जानते हैं। उनका नितान्त फक्कड़, हंसोड़ व्यक्तित्व अपने इस अध्यात्म रूप को आचल में लौ की तरह छिपाए रखता था। अपने कवि कृतित्व से वह कदाचित् कभी सन्तुष्ट नहीं हुए। कभी उन्होंने अपने काव्य की डींग नहीं हाँकी। काव्य के रूप में उनकी आध्यात्मिक तृष्णा अपार थी।"[6] डॉ० भटनागर ने लिखा है—"परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता की अपनी स्वतन्त्र-परम्परा आधुनिक युग में थी ही नहीं—क्योंकि वैष्णव-काव्य मूलतः और व्यापकतः हिन्दी की अपनी विशिष्ट वस्तु है और उसके कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट, दोनों रूप हिन्दी काव्य में सगुण और निर्गुण काव्यधारा के रूप में विकसित हुए हैं। यह स्वतन्त्र परम्परा हमें 'भारतीय आत्मा' और 'नवीन' में बड़ी स्पष्टता से मिलती है। ये दोनों वैष्णव भक्ति-भाव के रस में आकण्ठ डूबे हैं और इनके काव्य में राष्ट्रीयता, प्रकृति और प्रेम, सभी वैष्णव रंग में रंग गये हैं। रवीन्द्रनाथ के काव्य का कोई स्पष्ट प्रभाव इन कवियों पर नहीं है। उन्हें हिन्दी की अपनी परम्परा कहा जा सकता है। इसीलिए प्रथित छायावादी कवियों से उनका स्वर अलग रहा है। 'भारतीय आत्मा' की अपेक्षा 'नवीन' में वैष्णव-परम्परा का वोध अधिक स्पष्ट और तीव्र रहा है।[7]" इसका कारण है 'नवीन' जी के समान 'एक भारतीय आत्मा' का वैष्णव वातावरण तथा संस्कार प्रबल तथा प्रचुर नहीं रहे हैं। 'नवीन' जी ने वैष्णववाद को भक्ति तथा भावुकता के रूप में ग्रहण किया है; जबकि 'एक भारतीय आत्मा' ने उसे विद्रोह के साथ प्रार्थना के रूप में ग्रहण किया।[8] श्री 'बरुआ' के मतानुसार, २० वीं शती के प्रारम्भिक अब्दों में साहित्य, काव्य, राजनीति और अन्य आत्मपरक नवोत्थान वैष्णव परम्परा की जमीन पर अपने पैर इसीलिए टिका सका क्योंकि वही एक ऐसी जमीन थी, जिस पर खड़े होकर देश ने घनघोर कालिमा के दिनों में अनाहूत आशंकाओं के गर्त्त में गिरने से त्राण पाया था। यह जमीन २० शती के सर्वथा नये प्रकाश में भी अपनी चित्त-भोग वृत्ति को

---

१. 'कुंकुम', कुछ बातें, पृष्ठ १२-१३।
२. 'अपलक', पृष्ठ ३४-३५।
३. वही, पृष्ठ ६२-६३।
४. 'क्वासि', पृष्ठ ६-७।
५. वही, पृष्ठ ८०-८१।
६. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ५२२।
७. डॉ० रामरतन भटनागर—'मध्यप्रदेश सन्देश', ४ अगस्त, १९६२, पृष्ठ ६।
८. 'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी', पृष्ठ ३११-३१४।

नवीन से नवीन रूप में, हाथों-हाथ, समूचे देश को दिये जा रही थी। इसी जमीन पर खड़े होकर देश की नई सामाजिकता और नई राजनीति अपने उज्ज्वल भविष्य के सुरक्षित मार्गों की योजना बनाने में सुख चैन पा सकी। तिलक, गान्धी और गोखले और एक हाथ में गीता लेकर दूसरे हाथ में पिस्तौल थामनेवाले क्रान्तिवादी भी और अंग्रेजी शिक्षित और प्रभावित नये कविगण भी इसी वैष्णववादिता को अपना कठोर कवच बनाकर, जन-जीवन में लोक-मान्यता पाने में सफलता ग्रहण कर रहे थे।[1]

कवियों के अतिरिक्त, 'नवीन' जी का रहस्यवाद कतिपय विशिष्ट दर्शनों से भी प्रभावित हुआ है जिसमें वेदान्त, अद्वैतवाद, आर्यसमाज, गान्धी-दर्शन, रवीन्द्र-दर्शन एवं विनोबा-दर्शन के नाम लिये जा सकते हैं।

वेदान्त में कवि की मनोवृत्ति काफी रमती थी। 'नवीन' जी के मतानुसार, बन्धन मिथ्या है; आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है। इसके बन्धन को मानव ही अपने प्रयासों से काट सकता है, किसी देवता पर अवलम्बित होने की आवश्यकता क्या है? कवि कहता है—

> जड़तामय निर्गति में गति चेतन-नर्तन की—
> निहित परिग्रह में है भावना समर्पण की—
> सर्जन के तर्जन में गर्जना विसर्जन की,—
> यों एकाकार जगत् यहाँ कहाँ द्विधा-छन्द?[2]

डॉ० देवराज के मतानुसार, उपर्युक्त पद्य में वेदान्त का स्वर मुखर है।[3] अद्वैत का कवि के दार्शनिक काव्य में काफी बोलबाला है। कवि ने आत्मा के परमात्मा में लय होने में ही, सार्थक स्थिति मानी है। उसकी आत्मा रूपी नायिका कहती है—

> बाबुल घर में नेह भरा है; पर वाँ द्वैत विचार रे,
> साजन के नव नेह-सलिल में है अद्वैत-विहार रे।[4]

आर्यसमाज ने कवि के दार्शनिक काव्य को सांस्कृतिक एवं शुद्ध धरातल पर उपस्थित किया। उसके परिणाम स्वरूप, कवि ने आर्यधर्म एवं आर्यसंस्कृति के घटकों को भी अपने काव्य में समाहित किया, धर्म के शुद्ध तथा पवित्र रूप को ग्रहण किया।

गान्धी-दर्शन पर भी कवि ने गम्भीरतापूर्वक मनन किया है। गान्धी के सूत्रों का विश्लेषण करते हुए, 'नवीन' जी ने उनको समझने की एक कुंजी प्रदान की है। वे लिखते हैं कि "गान्धी ने वेदान्त के इस अद्वैत को जीवन में इतना आत्मसात् कर लिया था कि वह कबीर की प्रेम गली का प्रेमी बन गया था—'प्रेम गली अति सांकरी ता में दुइ न समाहिं, मैं देखूं तो पिउ नहीं, पिउ देखूं मैं नाहिं।' इसीलिये मैंने गान्धी को अद्वैत का उपासक कहा है। पर मैंने यह भी कहा है कि वह वेदान्त के अद्वैत का विकासक भी था। इसका क्या अर्थ? क्या गान्धी ने वेदान्त के अद्वैत के विचार में कुछ ऐसा विकास किया जो पहले शंकर, रामानुज,

---

१. 'माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी', पृष्ठ ३१०-३११।
२. 'युग-चेतना', मानव, तव चरण-बन्ध ?, जनवरी, १९५५, पृष्ठ १०।
३. डॉ० देवराज—'युग-चेतना', जनवरी, १९५५, पृष्ठ ७०।
४. 'क्वासि', पृष्ठ ४७-४८।

वल्लभ, माध्व, ज्ञानदेव आदि आचार्यों और ऋषियों के द्वारा नहीं हुआ था ? मेरा निवेदन है—हाँ, वेदान्त ने ब्रह्म के, परमेश के लक्षण सत्, चित् और आनन्द माने हैं। परन्तु साधना-निरत गान्धी ने स्वानुभव से यह घोषणा की कि सत्, अर्थात् सत्य ही ईश्वर है। सत् अर्थात् वह जो 'है' जो कि दिक् कालधन विच्छिन्न है, जो नश्यतु न विनश्यति—जो सदा है, ऐसा सत् ही ईश्वर है। गान्धी सत् को ईश्वर का लक्षण मात्र नहीं मानता। वह, सत्—जो है उसको ही ईश्वर मानता है। क्या इसे आप वेदान्त के अद्वैतवाद का विकास नहीं मानते ? विचार कीजिये। आपको मानना पड़ेगा कि इस प्रकार कथित लक्षण को लक्ष्य मानकर चलना वेदान्त के अद्वैत को अधिक व्यवहार गम्य, अधिक सामूहिक साध्य-लक्ष्यमय और अधिक दैनंदिन योग्य बनाना है। और, गान्धी की यह सुदृढ़, सबल इतिनैश्चित्यात्मक अवधारणा कि सत् ही ब्रह्म है, सत् ही ईश्वर है, गान्धी के समग्र जीवन-कर्मों की प्रेरणा है। गान्धी यदि कहीं दुरुह लगें तो आप गान्धी के इस सूत्र को ध्यान में रखें और आपको गान्धी के समझने की कुंजी मिल जायगी।''[1] 'नवीन' जी के इस गान्धी-दर्शन विवेचन के सूत्रों ने, उनके काव्य के सम्बद्ध पक्ष का भी ताना-बाना गूंथा है।

गान्धी-दर्शन की लम्बी एवं गूढ़-विवेचना के सदृश्य ही, कवि ने 'सिरजन की ललकारें मेरी' शीर्षक लम्बी कविता में भी, महात्मा गान्धी व उनके विचार, हिंसा तथा अहिंसा का द्वन्द्व आदि का सरस प्रतिपादन किया है। हिंसा तथा अहिंसा की तुलना करते हुए, कवि अहिंसा के सूत्र से उर्ध्वगति को श्रेयस्कर मानता है।

कवि गान्धी-दर्शन एवं विनोबा-दर्शन से जितना प्रभावित हुआ है; उतना रवीन्द्र-दर्शन से नहीं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का उस पर अत्यल्प प्रभाव ही देखा जा सकता है। 'नवीन' जी के मृत्यु-गीतों पर कवीन्द्र रवीन्द्र का आंशिक प्रभाव द्रष्टव्य है। श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने लिखा है कि '' 'नवीन' जी ने दर्शन के काण्ड में लौकिक-अलौकिकता के फूल खिलाये और अपने जीवन-काल में ही लगभग चालीस मृत्यु-गीत की रचना की। मृत्यु-गीतों गुरुदेव कवि रवि ठाकुर के बाद आस्थापूर्ण ढँग से गीता की वाणी में 'नवीन' जी ने ही लिखे हैं जो अभी अप्रकाशित हैं।[2] डॉ० नगेन्द्र ने भी 'नवीन' पर रवीन्द्र के सीधे प्रभाव पड़ने की बात स्वीकार नहीं की है।[3] 'गुरुदेव' ने जन्म दिन एवं मृत्युदिन, दोनों को एक ही माना है—

> आज आसियाछे काछे
> जन्म दिन मृत्यु दिन; एकासने दोहे बसियाछे;
> दुह आलो मुखोमुखि मिलिछे जीवन प्रान्ते मम;
> रजनीर चन्द्र आर प्रत्युषेर शुक्र तारा सम—
> एक मन्त्र दोहे अभ्यर्थना॥[4]

---

१. 'महात्मा गान्धी', गान्धी दर्शन, पृष्ठ ३, कालम १।

२. 'वीणा', सम्पादकीय, अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ४६१।

३. 'डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध', भारतीय साहित्य पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव, पृष्ठ ८०।

४. 'एकोत्तर शती', जन्म दिन, पृष्ठ ३५६।

विनोबा-दर्शन से कवि की आत्मा ने पर्याप्त रसानुभूति ग्रहण की। उनकी वाणी में कवि ने परमहंस रामकृष्ण और गान्धी के वचनामृत को अन्तर्हित पाया है।[१] विनोबा के क्रान्तिमय विचार की पृष्ठभूमि वेदान्त दर्शन पर आधारित है।[२] कवि का मत है कि वेदान्त को मानव-धर्म की आधार-शिला के रूप में संसार के सम्मुख रखने का जो प्रयत्न वर्तमान युग में विवेकानन्द, रामतीर्थ, केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्र ठाकुर, भगवानदास, राधाकृष्णन, प्रभृति सन्तों और विद्वज्जनों ने प्रारम्भ किया, उसे एक डग और आगे ले जाने का काम विनोबा कर रहे हैं।[३] विनोबा ऋषि हैं और उनका सन्देश है कि नर, नारायण स्वरूप है, सारी दुनिया में परमेश्वर भरा है, उस परमेश्वर की सेवा हमारे हाथों होनी चाहिये, परमेश्वर की पूजा यानी दीन-दुखी जनों की सेवा।[४]

पाश्चात्य चिन्ता-धारा—भारतीय चिन्ताधारा के अतिरिक्त, कवि ने पाश्चात्य-दर्शन का भी पर्याप्त अध्ययन किया। श्री प्रभागचन्द्र शर्मा के मतानुसार, एक तरफ 'नवीन' जी traditionalist (रूढ़िवादी, परम्परागत, मत विश्वासों की लीक के पोषक) हैं तो दूसरी तरफ अत्याधुनिक, फ्रायड, मार्क्स और आइन्स्टीन की वैज्ञानिक विचार-सरणि में भी अवगाहन करते प्रतीत होते हैं।[५]

मार्क्स, ऐंगल्स, लेनिन, फ्रायड आदि के प्रति कवि ने सम्मान प्रगट करते हुए भी, उनके दर्शन से अपना वैमत्य प्रदर्शित किया है। इस सम्बन्ध में, उसका स्पष्ट मत है कि "मैं उस दर्शन को हृदयंगम नहीं कर सका हूँ जो मानव की ज्ञान-उपलब्धि को केवल इन्द्रियोपकरण-जन्य मानते हैं।"[६] वह वैज्ञानिक फ्रायडीय जायावाद और समाजवाद के सिद्धान्तों का विरोधी है।[७]

---

१. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ ७।

२. वही, पृष्ठ ६।

३. वही।

४. वही, पृष्ठ १०-११।

५. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १६६०, पृष्ठ ४६१।

६. 'अपलक', मेरे क्या सजल गीत ?, पृष्ठ ख।

७. "कई बार यह कहा गया है कि वर्तमान हिन्दी-काव्य साहित्य में जो एकाकीपन, पीड़ावाद और विनाशता है, उसकी विवेचना वैज्ञानिक फ्रायडीय जायावाद और समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुसार यदि हो तो उस एकाकीवाद, पीड़ावाद और विवशतावाद की प्रेरणाएँ स्पष्ट हो जायँगी। अच्छा, भाई! यही करो। तब फ्रायडीय विचार का लैंगिक तत्व और समाजवादी विचार का पूँजीवादी समाज में प्रचलित व्यक्ति-पारतन्त्र्य-तत्व—ये दोनों प्रमाण के रूप में उपस्थित किये जाते हैं और कहा जाता है कि देखो, पूँजीवादी समाज में जो यह व्यक्ति स्वातन्त्र्य का अभाव है और इसके फलस्वरूप जो लैंगिक मिलन-बाधा उपस्थित होती है, उसी के कारण हिन्दी-काव्य में पीड़ा, निराशा और एकाकीपन का आविर्भाव हुआ है। पूँजीवादी समाज में मनुष्य क्रीतदास बन जाता है। वह एक पुण्य वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। इस प्रकार मानव-मानव के बीच का सम्बन्ध भयानक अस्वस्थ्य अवस्था को पहुँच जाता है। तब जो सहृदय व्यक्ति हैं, वे तड़प उठते हैं और

(६) अतिशयोक्ति—रह-रह कर नभ-मण्डल में
उडुगण चमके कँप-कँप के,
अथवा दुख-भरी निशा के,
दुख के सब छाले तपके।[1]

(७) व्यतिरेक—देख खंजनों को, क्यों प्रिय के लोचन की सुधि हिय में जागे।
ये चंचल क्या टिक पाएँगे उनके उन नयनों के आगे।[2]

(८) अमूर्त्त का मूर्त्तकरण—मचल-मचल कर 'उत्कंठा' से छोड़ा 'नीरवता' का साथ।
विकट 'प्रतीक्षा' ने धीरे से कहा, निठुर हो तुम हो नाथ।
नाद ब्रह्म की रुचिर उपासिका मेरी इच्छा हुई हताश,
बहकर उस निस्तब्ध वायु में चला गया मेरा विश्वास॥[3]

(९) मानवीकरण—भींजी है ओस कणों से
यह अर्ध-रात्रि दुखियारी,
चू-चू कर टपक रही है
उसकी अँधियारी सारी।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने साहश्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा उसके प्रिय अलंकार हैं। इन्हीं में ही उसकी वृत्ति रमी है। उसके काव्य में अलंकार भावोत्कर्ष के साधन रूप में आये हैं।

छन्द-योजना[5]—'नवीन' जी प्रधान गीतकार हैं, अतएव छन्द-योजना को उनके प्रबन्ध-शब्दों में ही विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। यहाँ पर उनके प्रबन्ध काव्यों के छन्दों पर विचार करना उचित होगा।

प्रबन्ध-काव्य के छन्द—उर्मिला—'उर्मिला' में अनेक स्थलों पर प्रायः १६-१६ मात्रा के चार चरण युक्त छन्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ—

चलो हे मेरी टूटी कलम—१६ मात्रा, १० वर्ण।
चलो उस ओर, किसी के पास;
छोड़ दो कलियुग की मसि यहीं,
करो त्रेता युग में कुछ बास।[6]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ३६३।
२. 'क्वासि', पृष्ठ ८६।
३. 'सरस्वती', दिसम्बर १९१८, पृष्ठ ३०२।
४. 'उर्मिला', पृष्ठ ३६४।
५. 'नवीन' जी के छन्दों को कसौटी पर कसने के लिए निम्नलिखित दो पुस्तकों का आश्रय लिया गया है—(क) श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु',—'छन्द : प्रभाकर'; (ख) डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल—'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना'।
६. 'उर्मिला', पृष्ठ १।

प्रस्तुत काव्य में निम्नलिखित छंद प्राप्य हैं—

(१) सार छन्द—देवि, उर्मिले, तेरी अकथित गाथा गाता हूँ मैं;
किमथाह चरिताम्बुधि-मज्जन के हित पाता हूँ मैं;
अति प्रगल्भ बलवती लहर है, थाह न पाता हूँ मैं;
हृदय-शिला पर तव चरणों को, देवि, बिठाता हूँ मैं।[1]

(२) सुमेरु छन्द—थकित-सी, कल्पने, सुप्रदक्षिणा यह—
हुई सम्पूर्ण, लो अब दक्षिणा यह—
चलो देखें पुरी सुविचक्षणा यह—
जनक नृप रक्षिता, शुभ लक्षणा यह।[2]

(३) मन्दाक्रान्ता छन्द—ले आए हैं सरल जग की स्नेह की ये पिटारी,
आ बैठी हैं जनकपुर की वाटिका में बिहारी,
क्यों जाता है, पथिक, अब तू दूसरी ठौर ? आ, रे,
सारे त्रेता युग मधुर की माधुरी है यहाँ, रे।[3]

(४) कुंकुम छन्द—ओ आँसू तुम बरस पड़ो, यह—
प्यासा है कागद मेरा,
प्यासी कलम, हृदय प्यासा है,
प्यासों का है यह डेरा।[4]

(५) शुद्धगा छन्द—मथ सृष्टि-तत्व को किसने
करुणा नवनीत निकाला ?
किसने रस-दान दिया यह
नित नया, अतीत, निराला ?[5]

(६) दोहा—जल बरसत, कसकत हृदय, भारी-भारी होय,
बरसावत मद रंग कोउ, घन चूनरी निचोय।[6]

(७) सोरठा—हाल हीन, रव हीन, रीती परी मृदंग यह,
करहु याहि खपनि, भरि उद्घोष गभीर मृदु।[7]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ५।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. वही, पृष्ठ १५।
४. वही, पृष्ठ १७०।
५. वही, पृष्ठ ३४४।
६. वही, पृष्ठ ४०५।
७. वही, पृष्ठ ४६६।

कवि ने पंचम सर्ग का निर्माण दोहों से ही किया है जिनमें कतिपय सोरठे भी आ गए हैं।

(ख) प्राणार्पण—छन्दों के दृष्टिकोण से, 'प्राणार्पण' अधिक परिष्कृत है। 'उर्मिला' के समान उसके छन्द ढीले-ढाले नहीं हैं। 'प्राणार्पण' की लय अथवा तर्ज 'राधेश्याम रामायण' की तर्ज से कुछ मिलती है।

'प्राणार्पण' के प्रथम सर्ग में दूर-दूर मात्राओं के छः चरण से युक्त छन्द हैं। यों वर्ण की दृष्टि से इसमें २१ वर्ण भी मिलते हैं; फिर भी इसे स्रग्धरा नहीं कहा जा सकता। एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

घटनाओं का यह चित्र नहीं, कोई कल्पना उड़ान नहीं,
यह कोई कला-विलास नहीं, मेरा स्पन्दन निष्प्राण नहीं,
जो-जो देखा है आँखों से, जो-जो झेला है इस तन पर,
जो-जो भोगा है जीवन में, जो-जो बीती है इस मन पर,
उसका यह किंचिन्मात्र यहाँ छोटा-सा दिग्दर्शन भर है,
ये हैं मेरे पूजा-प्रसून, मेरी श्रद्धा का निर्झर है।[1]

इसके प्रत्येक चरण में ३२-३२ मात्राएँ है और प्रथम चरण में २१ वर्ण। द्वितीय सर्ग में भी मात्राओं के छः चरण से युक्त छन्द प्राप्त होते हैं। तृतीय सर्ग में ३०-३० मात्राओं के छः चरणों से युक्त छन्द मिलते हैं। वर्णों की संख्या यद्यपि अधिकतर २२ ही है; परन्तु किसी-किसी में अनियत संख्यक वर्ण प्राप्य हैं। उदाहरणार्थ—

	मात्रा	वर्ण
महाप्राण की हृदय-वेदना महाप्राण ही जान सके,	३०	२०
अतल सिन्धु की गहराई को, लघु वामन पग जान सके;	३०	२२
जिसने मानव की गुरुता में ध्रुव अच्युत विश्वास किया,	३०	२२
जिसने उस श्रद्धा के पीछे सतत हलाहल गरल पिया;	३०	२२
यदि नर को पशु बनते देखा वह नरवर गणेशशंकर,	३०	२३
तो सोचो उसकी आकुलता, ओ लघु प्राणी नर-तन-धर।	३०	२१

तृतीय सर्ग में ही एक छन्द और भी प्राप्य है जो कि ३२-३२ मात्राओं के छः चरण से युक्त है। वर्ण संख्या अनियत है।

चतुर्थ सर्ग में ३२ वर्णों वाले समवर्णिक दण्डक छन्द का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस सर्ग में प्रयुक्त दूसरा छन्द भी, समवर्णिक दण्डक छन्द प्रतीत होता है।

स्फुट-कृतियों के अन्य छन्द—कवि ने अपनी अन्य काव्य-कृतियों में निम्नलिखित छन्द भी प्रयुक्त किये हैं—

(क) चौपाई—'नवीन-दोहावली' में चौपाई भी प्राप्य हैं। एक दृष्टान्त देखिये—

---

१. 'प्राणार्पण', पृष्ठ ५।

कहा पन्थ की लीक खुरखुरी, कहा मृत्यु की भीति बापुरी,
जो तर स्मिति-प्रसाद-बल पाऊँ, हँसि हँसि जग-जंजाल उठाऊँ ।[1]

(ख) कुण्डली—यह छन्द, दोहा और रोला छन्दों से मिलकर बनता है। दोहे के दो और रोले के चार चरण मिलकर इसमें छः चरण हो जाते हैं और प्रत्येक चरण की २८ मात्राएँ मिलकर १४४ मात्राएँ हो जाती हैं। जिस शब्द से इसका आरम्भ होता है, प्रायः उसी शब्द से उसका अन्त भी किया जाता है। 'नवीन' जी की 'कुण्डली' देखिये—

कहा करो ? यह वेदना, समुझि परै नहिं नेक,
तकि तकि कैं कोऊ दे रह्यो संशय-बाण अनेक,
संशय बाण अनेक हिये में कसकि रहे ये,
घाव गहर गम्भीर तीर के टसकि रहे ये,
भरि-भरि आवत है कोमल क्षत विक्षत छाती,
बूंद-बूंद नहीं चलीं सिघौसी संचित थाती,
कहहु कौन सौ मरहम, व्रण में यहाँ भरौं मैं ?
हैं ये गहरे घाव, बतावहु कहा करौं मैं ?[2]

मुक्त छन्द—हिन्दी में मुक्त छन्द का प्रवर्तन महाप्राण निराला ने किया। शेक्सपियर ने भी अपनी कविता में शून्य वृत्त की उद्‌भावना की थी।[3] 'नवीन' जी की इस छन्द में लिखित कविता के दृष्टान्त दर्शनीय हैं। यह कविता सन् १९२७ में लिखी गई थी—

स्वामिनि तुम्हारी छवि
देखी आज
गह्वर के गभीर कल नीर बीच
झिलमिल सी—
निष्ठुर सी—
स्वामिनि तुम्हारी छवि ।[4]

सन् १९५९ की एक कविता भी दर्शनीय है—

अच्छा है, वे तुमसे
निज सम्बन्धित बात नहीं कहते;
करो प्रशंसा उनकी
कि है आत्म-विश्वास उन्हें इतना !

---

१. 'नवीन-दोहावली' पृष्ठ १० वीं रचना ।

२. 'नवीन-दोहावली', ९वीं रचना ।

३. "Shakespeare was the first who, to shun the pains of continual rhyming, invented that kind of writing which we call blank verse."—J. Dryden, 'Dramatic Poetry and other Essays', Page 186.

४. साप्ताहिक 'मतवाला', तुम्हारी छवि, २२ जनवरी, १९२७, पृष्ठ ६०४।

हाँ, पर, एक खटक है—
कि जब गोपनीयता रहे इतनी—
तो फिर, संग चलने में,
क्या कोई शुचि रुचि रह जाती है ?[१]

छन्द-दोष—कवि ने अपने छन्दों का उचित परिष्कार नही किया; इसलिए उनमें दोष भी विद्यमान हैं। 'उर्मिला' में अनेक छन्द-भंग पाये जाते हैं। 'प्राणार्पण' में गतिभंग का दोष आ गया है —

हो गया कुंकुमों से अपने अभिशाप ग्रस्त कानपुर नगर।[२]

'क्वासि' में भी गति-भंग दोष का एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

कि उन सुपनों के हुए हैं मूल ही नव संस्करण ये।

यहाँ पर प्रथम शब्द 'कि' दीर्घ होना चाहिये था। मात्रा दोष का भी एक दृष्टान्त देखिये—

जीवन-ज्योति लुप्त है अहा,
सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ।[३]

उपरिलिखित पंक्तियों में दो-दो मात्राओं का अभाव है क्योंकि समग्र कविता १६ पंक्तियों वाली पंक्तियों से युक्त है। इस प्रकार कवि ने छन्दों को अपने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। छन्दों में आवेग को बाँधा जाता है, इसलिए आवेग की महत्ता कम नहीं होती। 'निराला', 'नवीन' आदि कवियों ने छन्दों के सहारे नही, प्रत्युत् अपनी रचना के अन्तःकरण से आवेग को जन्म दिया है। इस प्रकार के व्यक्तियों से छन्द के कठोरतापूर्वक अनुवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

निष्कर्ष—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "शर्मा जी की भावुकता और उनकी काव्य शक्ति के बीच उच्च कोटि का सामंजस्य थोड़ी ही रचनाओं में मिलता है।"[४] श्री उदयशंकर भट्ट ने भी कहा है कि "उनके काव्य में परिष्कार का अभाव है। यदि उनमें साधना-शक्ति होती तो उनकी कवित्व शक्ति अवश्य ही प्रोज्ज्वल हो उठती। उनका काव्य तो उस उद्यान के समान है जिसमें पुष्प व कण्टक, दोनों ही मिलते हैं। कहीं-कहीं काव्य की चमक दृष्टिगोचर होती है अन्यथा परिश्रम अधिक प्रतीत होता है। उनकी अन्तिम दिनों की रचनाओं में परिश्रम अधिक दिखाई पड़ता है।"[५]

'नवीन' जी के भाव-पक्ष के समक्ष, उनका शिल्प-पक्ष दुर्बल पड़ गया है। डॉ० नगेन्द्र

---

१. 'आजकल', दुराव, जून, १९५६, पृष्ठ ३।

२. 'प्राणार्पण', पृष्ठ १२।

३. 'कुंकुम', पृष्ठ १२।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ३।

५. श्री उदयशंकर भट्ट—नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २४-५-१९६१) से ज्ञात।

ने लिखा है कि "उनके काव्य का महत्व असम है—कहीं स्तर काफी ऊँचा है कहीं अत्यन्त सामान्य। उसमें कलात्मक सौष्ठव कम है।"[1]

'नवीन' जी ने प्रधानतया अपने काव्य का माध्यम गीत ही बनाया। उनके पास गीति-काव्य के योग्य, भाव-प्रवण हृदय अवश्य था परन्तु भाषा के परिमार्जित रूप ने उनका साथ नहीं दिया। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि (उनकी) भाषा 'एक भारतीय आत्मा' की भाषा की भाँति ही ऊबड़-खाबड़ है, उसमें साहित्यिक सुरुचि नहीं है।[2]

वास्तव में, 'नवीन' जी के व्यक्तित्व की 'घर-फूंक मस्ती' और राष्ट्रीय जीवन को देखते हुए, उनसे कला-साधना की आशा एवं अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "राजनीतिक संघर्षों से फुरसत पाने पर वे कविता लिखते हैं।"[3] ऐसी स्थिति में, वे अपने काव्य का यथोचित परिष्कार नहीं कर सके और उसे स्पष्ट नहीं बना सके।

---

१. डॉ० नगेन्द्र का मुझे लिखित (दिनांक २५-८-१९६२ का) पत्र।
२. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३९२।
३. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ ४७६।

नवम अध्याय

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन में जगत् को नैतिक रूप में ग्रहण किया गया है।[1] 'नवीन' जी के दार्शनिक-काव्य में भी जगत् के प्रति विरक्ति या मिथ्यामूलक विचार नहीं हैं। वे कहते हैं—

बज उठे जब बांसुरी, तब बैर क्यों हो स्वर लहर से?
उपकरण-परिधान पहना तब विरति क्यों चर-अचर से?[2]

कवि ने विज्ञान के जन्म के सूत्र को भी जन-गम्य बनाया है।[3] कवि ने अपनी लम्बी कविता 'निज ललाट की रेख' में जगत् के वैज्ञानिक आधार पर गहनतापूर्वक विचार किया है। कवि ने अपनी एक अन्य कविता में भी भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त को निरूपित किया है—

देश है यह नित विततिमय, काल हैं संतत कलन मय,
भ्रमित जड़ ब्रह्माण्ड संतत, और, चेतन भी चलन मय,
तब जगे क्यों मनुज हिय में, भावना यह पथ-स्खलन-मय?
नित्य यात्रा, पर्यटन नित, है यही जीवन विलक्षण।[4]

[नित वितितिमय = वर्तमान भौतिक विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि देश और काल- अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संतत प्रसरणशील है।]

जगत् में मानव भी समाहित है। 'नवीन' जी ने मानव पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। आज के मानव को दानव बनते देख, कवि ज्योतिर्मय से प्रार्थना करता है। 'नवीन' जी ने मानव को अत्यन्त गरिमामय एवं सांस्कृतिक रूप प्रदान किया है।[5]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने संसार तथा मानव पर गहराई के साथ चिन्तन किया है। उनके चिन्तन में पुरातन एवं अधुनातन, दोनों ही छवि दृष्टिगोचर होती है। इस चिन्तन में उनकी आशा, आस्था तथा राग-वृत्ति को ही सक्रियता मिली है। वे निराशावादी नहीं और न जगत् को मिथ्या मानने वाले। इसीलिए उनके चिन्तन में विरक्ति के तत्वों की नगण्यता है। उनका दर्शन ही मनुष्यत्व को देवत्व के प्रति उन्मुख करने के घटक पर, अवलम्बित है।

साधन-तत्व—कवि ने भवसागर के सन्तरण हेतु तथा मोक्ष-प्राप्ति हेतु, परम-तत्व की कृपा तथा ज्ञान-किरणों को ही महत्व प्रदान किया है। इस दिशा में उनका स्वर प्रार्थना तथा भक्ति से ही युक्त हैं। कवि ने अग्निपुंज तथा प्रकाशपुंज के लिए भी प्रार्थनाएँ की।[6]

---

१. "Indian Philosophy believes that the world about is a moral world and that by following a moral life both objectively and subjectively we are bound to attain perfection at some time or other"—Dr. S. N. Das Gupta, 'The Cultural Heritage of India, Vol. III, page 24.

२. 'क्वासि', यह विराग-विवाद क्यों? छन्द २, पृष्ठ २२।

३. 'संकेत', छन्द १२, पृष्ठ २३६।

४. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', क्यों थके तन? क्यों थके मन?, चौथी कविता, छन्द ३।

५. साप्ताहिक 'रामराज्य', यों शूल युक्त, यों अहि-आलिंगित है जीवन!, १५ अगस्त, १९६०, छन्द २४, पृष्ठ ३।

६. 'क्वासि', प्रिय, जीवन-नद अपार, छन्द ४, पृष्ठ ७।

कवि ने आत्म-ज्ञान, अन्तर्मुखी वृत्ति तथा स्वपरिचय को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। यदि दर्शन और विज्ञान, सत्य को तथ्यों के विश्लेषण तथा उनके अनुभव द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तो रहस्यवाद उसे आत्मा की आन्तरिक उड़ान द्वारा।[१] 'नवीन' जी के काव्य में भी यह उड़ान दृष्टिगोचर होती है। 'पिंजर-मुक्ति' का साधन, भी बताया है।[२]

मानव का अभ्यन्तर ही, संस्कृति तथा विकास का मूलोत्थान है। मनोविकारों के दासत्व से मुक्ति ही, प्रगति की प्रामाणिक युक्ति है।[३]

'नवीन' जी ने मानवीय गुणों के विषय में अपनी विविध विचार-सरणियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके मतानुसार, "मानवीय तत्व, मानव को आदर्श मानव में परिणत कर सकते हैं और इन्हें ही हम साधन मानकर, 'स्व' तथा 'पर' का हित कर सकते हैं।"[४]

इस प्रकार कवि ने प्रभु-कृपा, भक्ति, ज्ञान-किरण, आत्म-ज्ञान, आत्म-दर्शन तथा कर्त्तव्य-पालन को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। इस क्षेत्र में उनका भक्त तथा ज्ञानी, दोनों रूप समन्वित हो जाता है।

परम तत्व—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल के मतानुसार, "रहस्यवाद विश्व की परम सत्ता (Transcendental Reality) का बोध और साक्षात्कार है। ब्रह्म या ईश्वर के आत्मा के ऐक्य या सान्निध्य की धारणा 'रहस्यवाद' कहलाती है।........रहस्यवाद आध्यात्मिक क्रिया है। उसका उद्देश्य भी आध्यात्मिक है। रहस्यवादी में अपरिवर्तनशील 'एकं ब्रह्म' से साक्षात्कार की उत्कट इच्छा रहती है। रहस्यवादी उसे तर्क या विवाद के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता। रहस्यवादी का ब्रह्म या ईश्वर "उसका प्रिय या प्रेमी बन जाता है। रहस्यवादी का सबसे प्रधान साधन प्रेम है।"[५]

दार्शनिक 'नवीन' ने परम-सत्ता के विषय में अपनी सूझों को मार्मिक आवरण में प्रस्तुत किया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "कहीं-कहीं उनके पीछे अध्यात्मवाद भी है। यद्यपि 'नवीन' ने कोई दार्शनिकता प्रकट नहीं की तथापि उनकी पंक्तियों में मानव-जीवन का इतिहास बड़े शक्तिशाली रूप में है।"[६]

'नवीन' जी ने परम सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा तथा कौतूहल-वृत्ति की अभियंजना की है। कवि 'कोऽहमस्मि' के दार्शनिक प्रश्न का सुन्दर विश्लेषण करता है।[७]

---

१. "Mysticism is an intuitive approach to truth rather than rational and discursive ...... If Philosophy and Science seek truth through an analysis of Experience and facts, mysticism seeks it through the inward flight of the soul"—Mahendra Kumar Sarkar, 'Hindu Mysticism', page 22.

२. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', निनिपात, २१वीं कविता।

३. वही, जीवन-प्रवाह, ३६ वीं कविता, छन्द १२।

४. 'आजकल', निज ललाट की रेख, अप्रैल, १९५७, पृष्ठ ६।

५. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—'आधुनिक काव्यधारा', पृष्ठ २३६।

६. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३६२।

७. 'नवीन'-दोहावली।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "इस (प्रकृति की) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर, उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।"[1]

'प्रसाद' जी भी प्रकृति के रहस्य ढूँढ़ने के लिए व्याकुल हैं—

महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते थे संधान ?
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस से सिंचे हुए ?[2]

'नवीन' भी 'कस्त्वम् ? कोऽहम् ?' में यही पूछते हैं—

किसके अंगुलि-परिचालन में रमते हैं उद्भव, नाश सदा ?
किसकी भ्रू-भंगी का नाटक है प्रलय, सृष्टि की यह विपदा ?
कोई इसका कर्त्ता भी है ? या स्वयम्भूत है जगत् बाल ?
इसका निर्णय करते-करते थक गयी तर्क की तीव्र चाल ?[3]

टोह तथा अन्वेषण की वृत्ति को कवि ने पुरस्कृत किया है। जिज्ञासा की भावना का कवि अनुमोदन करता है—

यद्यपि सन्तत रमे हुए हो, तुम मेरी शोणित धारा में,
अष्टयाम ही तुम रहते हो, मेरे संग-संग कारा में,
फिर भी अकुलाता रहता है मेरा हृदय और मेरा मन,
मैं हूँ सगुण उपासक, सुभको, कैसे धीरज दे निर्गुण मन।[4]

इस प्रकार कवि ने परम-तत्व को निर्गुण निराकार के रूप में न देखकर, सगुण-साकार रूप में ग्रहण किया है। उसके वैष्णव संस्कार ही यहाँ प्रबल दिखलाई पड़ते हैं।

मृत्युपरक रचनाएँ—भारतीय संस्कृति में मृत्यु को महान् माना गया है। गीता में मृत्यु का अर्थ बताया है परिवर्तन। पुराने सन्त कवियों ने इसे 'चार कहारों के कन्धे पर चढ़कर बाबुल के घर जाना' कहा है। यह घट का फूटना ऐसा माना गया है जैसे साधारण घटना हो। यह महाप्रस्थान, यह महायात्रा, यह महानिद्रा, यह अनन्त में स्नान, यह शिखरारोहण, यह चिरन्तन विस्मरण, यह 'प्राणों मृत्युः,' यह माँ की कोख में (मुँह) छिपा लेना। इस काव्य के महान् स्रोत सूफी जलालुद्दीन रूमी ने इन शब्दों में व्यक्त किया था—

With thy sweet soul, this soul of mine,
Hath mixed as water does with wine,
Who can the wine and water part
Or me and thee when we combine ?

---

१. 'सान्ध्य-गीत', अपनी बात, पृष्ठ ९।
२. 'कामायनी' आशा सर्ग, २६।
३. 'पुष्करिणी', पृष्ठ ३०३।
३. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', एकाकीपन, तीसरी कविता, छन्द ५।

Thou art become my greater self,
Small fluds no more can we combine
Thus has my being taken on,
And shall not I now take on thine ?
Thy love has pierced me through and through
Its thrill with bore and nerve and wine
I rest a Flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline,
Breathe deep in me that I may sigh,
Vet strike my strings, and fears shall shine"

इस कविता का भावार्थ है—ससीम का असीम में एकाकार होना। रवीन्द्रनाथ ने इसी 'मूड' में गीतांजलि में कहा था—

मरण जे दिन आस बे तोमार दुयारे,
की दीब ओहारे !![1]

पौरस्त्य-साहित्य के सदृश्य, पाश्चात्य-साहित्य में भी मत्यु को काव्य का विषय बनाया गया। शेक्सपियर ने 'हेमलेट' (Hamlet) में उसे अज्ञात देश बताया है।[2] शैले ने भी 'मत्यु' Death शीर्षक कविता में उसे सर्वत्र विराजमान बताया है।[3]

दार्शनिक 'नवीन' ने भारतीय संस्कृति के उपादानों तथा निजी चिन्तना के आधार पर, मृत्यु को अपने काव्य-माला में पिरोया। श्री 'दिनकर' ने लिखा है कि "साहित्य, राजनीति, मित्रता और कवित्व तथा गोष्ठियों और तमाम हाहा-ठीठियों के आवरण में, आपके ('नवीन' जी) मन का एक भाग बराबर उस रहस्य की ओर उन्मुख रहता था जो जीवन का परम रहस्य है। हम कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे, ये प्रश्न निरन्तर आपकी आत्मा के अन्तराल में गूँजते रहते थे और कविता की कलम उठाते ही आप, प्रायः, इसी रहस्य की खोज में तल्लीन हो जाते थे। मृत्यु का जो एक प्रिय पक्ष है, वह आपकी कल्पना में अनेक बार उभरा था।"[4] कवि ने मृत्यु का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है—

---

१. डॉ० प्रभाकर माचवे—'व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ १०८।

२. "The undiscovered country, from whose sojourn no traveller returns"—The Pocket Book of Quotations' page. 58.

३. "Death is here and death is there,
Death is busy everywhere,
Alround, within, beneath,
Above is death—and we are death"—'The Pocket Book of Quotations', page 59.

४. 'वट-पीपल', पृष्ठ ३६।

डाल श्यामल केश मुख पर, और चादर ओढ़े काली,
यह पधारी मृत्यु रानी छद्म भूषा-वेश वाली।[1]

रवि बाबू ने मत्यु को वस्त्र-परिवर्तन के रूपक में देखा है—

यह मलिन वस्त्र त्यागना होगा
होगा रे इसी बार
मेरा यह मलिन अहंकार।
दैनिक धन्धों का मल फैला
इसके ऊपर नीचे फैला
इतना तप्त हो गया है रे
सहना है दुश्वार
मेरा यह मलिन अहंकार।[2]

वे यह भी कहते हैं—

आमृत्युर दुःखेर तपस्या ए जीवन—
सत्येर दारुण मूल्य लाभ करिबारे,
मृत्युते सकल देना शोध क रे दिते।[3]

कवि ने मत्यु के साथ ही साथ, मत्यु-धाम का भी वर्णन किया है—

कालानल उस गृह में दीप धरा करता है,
कालानिल, व्यजन डुला, उस गृह को भरता है,
काल मेघ जल नित उस प्रांगण में झरता है,
काल-अनल अनिल सलिन-उस गृह के सर्वनाम,
ऐसा है मृत्यु धाम![4]

कवि, मृत्यु को चिर-निद्रा नहीं मानता। उसके मतानुसार, वह जागरण-व्यवस्था है।[5] 'नवीन' जी ने मृत्यु को नूतन रंग ही प्रदान किया है। उसके मरणासव में चिर जीवनरस घुला-मिला है। मृत्यु, परमतत्व को पहिचानने का सोपान है।[6] इस पात्र का समोद पान अपेक्षित है। कवि ने मृत्यु को ईश्वर की रहस्यवाहिका या दूती के रूप में चित्रित किया है।[7]

मृत्यु-धाम में पहुँचकर कवि नचिकेता बन जाता है। उसकी जिज्ञासा तथा ज्ञान-पिपासा द्विगुणित हो जाती है। उसकी टोह की हूक, कूक उठती है—

---

१. 'क्वासि', बज उठा असद्ध लय का, छन्द २, पृष्ठ २०।
२. श्री रघुवंशलाल गुप्त—'रवि बाबू के कुछ गीत,' चतुर्दश गीत, पृष्ठ १८।
३. 'एकोत्तरी शती', रूप-नारानेर कूले, पृष्ठ ३७७।
४. 'मृत्यु धाम' या 'सृजन-झाँझ,' पहली कविता, छन्द ५।
५. वही, मरघट घाट, ११ वीं कविता, छन्द ६।
६. 'मृत्युधाम' या 'सृजन-झाँझ', यह प्याला मैं पी न सकूँगा, चौदहवीं कविता, छन्द ३।
७. वही, हमारे साजन की अजब अदा, १६ वीं कविता, छन्द ३।

फिर भी है जीवन में एक टोह हूक भरी,
'किमि दय ?' की बेर-बेर टेर उठी चूक भरी,
परदे के पार गई अब न दृष्टि कूक भरी,
हुई और भी प्रचण्ड तब 'कोऽहम्' की पुकार।
किमि झांके आर-पार ?[१]

कवि रहस्य का अनावरण करना चाहता है—

लाख आँखों से परे हो पर, दास की चिर पिपासा
कौन यों उकसा रहा है सजन घूँघट में छिपा-सा ?
जन्म की औं, मृत्यु की फाँसी गले ले जीव आया,
हर्ष और विषाद का उद्‌ग्रीथ स्वर जग बीच छाया।[२]

'नवीन' जी ने मृत्यु-तत्व के विश्लेषण का सार इन पंक्तियों में प्रस्तुत कर दिया है। हमने मृत्यु के रहस्य को तो शताब्दियों पूर्व ही समझ लिया था। उसका निचोड़ ही हमें यह प्राप्त हुआ है कि मरण-भीति से हम क्यों सहमें ?

अरे सहस्त्रों वर्षों पहले मृत्यु-तत्व हम समझे,
धिक् हमको, यदि मरण-भीति यह आकर आज सताए,
हम, मर-मर फिर-फिर उठ आए।[३]

इस प्रकार कवि ने मृत्यु के विभिन्न पार्श्वों पर, गम्भीरता तथा उदात्तता के साथ, अपना विवेचन प्रस्तुत किया है। उसमें दर्शन, संस्कृति एवं काव्य के तत्वों की त्रिपुरी प्रतिष्ठित है। कवि का मृत्यु-तत्व अन्वेषण जहाँ एक ओर रहस्य की गांठें खोलता है; वहाँ दूसरी ओर मौलिक संस्पर्शों को भी वाणी प्रदान करता है।

निष्कर्ष—कॉलरिज के मतानुसार, "कोई भी व्यक्ति सजग दार्शनिक हुए बिना कवि नहीं हो सकता।"[४] प्लेटो ने दर्शन को उच्चतम संगीत माना है।[५] 'नवीन' जी का दार्शनिक व्यक्तित्व तथा रहस्योन्मुख कृतित्व अनेक उपकरणों को अपने क्रोड़ में अधीष्ठित किये है।

'नवीन' जी की अध्यात्मपरक रचनाओं के मूल में 'कस्त्वम् कोऽहम् ?', 'किमिदम्', में 'क्वासि' तथा 'नाऽस्मि' के चार मूल स्तम्भ प्राप्त होते हैं। उनका काव्य जिज्ञासा से शुरू होता है और सगुणोपासना एवं भक्ति में अपनी चरम परिणति पाता है।

'नवीन' के दार्शनिक-काव्य ने अपना जीवन-रस भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा काव्य

---

१. 'मृत्यु-धाम' या 'सृजन-झाँझ', झाँक सके आरपार, १० वीं कविता, छन्द ५।

२. वही, प्रश्नोत्तर, १२ वीं कविता, छन्द १०।

३. 'प्रलयंकर', अक्षर, ६ वीं कविता।

४. "No man was ever yet a great Poet, without being at the same time a profound philosopher"—The Oxford Dictionary of Quotations', page 152.

५. "Philosophy is the highest music"—The Pocket book of Quotations, Page 278.

से ही प्राप्त किया है। वे हमारी सांस्कृतिक परिपाटी की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनका अध्यात्म एवं रहस्यवाद भव्य तथा प्रोज्ज्वल पीठिका पर सुदृढ़ रूप में आधृत है।

उनका रहस्यवाद न तो साधनापरक है और न बुद्धिपरक; वह भावना पर ही अधिक आश्रित है। उन्होंने अपने दर्शन को प्रज्ञा-प्रसूता होने की अपेक्षा, भाव-प्रवण के मृदुल तथा संवेदनशील तन्तुओं से ही निर्मित किया है। बुद्धि सदा भावना की सेविका रहती है।[1]

'नवीन' जी का अध्यात्मवाद अत्यन्त ही गूढ़ अध्यात्मवाद नहीं है। उन्हें आंशिक रूप से ही रहस्यवादी कहा जा सकता है। उनके हिय की 'खुट-खुट' तथा मानस की 'क्वासि' ही जब-तब उनकी रचनाओं को रहस्यवादी दीप्ति प्रदान कर देती है। उनके रहस्यवाद में दार्शनिक ऊहापोह, क्लिष्टता व दुरुहता का अभाव है। कवि-व्यक्तित्व के समान ही, उसने भी रससिक्त एवं सहजगम्य रूप ही धारण किया है। इनके दार्शनिक काव्य में, चिन्तन एवं काव्यत्रारुत्व का स्वर्णिम सामंजस्य है।

'नवीन' जी प्रवृत्ति-मार्ग के अनन्य अनुयायी हैं। वे निवृत्तिमार्गी कभी नहीं रहे। माटी का पुतला ही बुद्धत्व एवं गान्धीत्व प्राप्त कर सकता है। राग से उनको विराग नहीं है, परन्तु ऊर्ध्वगामिता को वे सर्वाधिक श्रेय प्रदान करते हैं। उनके इस काव्य में न तो पलायन ही है और न निराशा। उनके दार्शनिक काव्य का सूत्रधार जीवन तथा उसकी सात्विक चेतना एवं महिमा है। वे सच्चे ईश्वरवादी हैं और सगुणोपासना को ही अपनी अध्यात्म-परक रचनाओं का केन्द्र-विन्दु बनाये हुए हैं। उनके वैष्णव भक्ति का हृदय भी उनके दार्शनिक के साथ लिपटा हुआ है जिसके कारण भक्ति एवं प्रसाद-गुण का परिवेश बना रहता है।

कवि के संस्कारों, अध्ययन, मनन, जीवन के संघर्षों तथा अवस्था की परिपक्वावस्था ने उन्हें और उनके काव्य को अध्यात्म की ओर मोड़ दिया। उनके जीवन तथा काव्य का पर्यवसान ही इस पुनीत तथा प्रौढ़-क्षेत्र में होता है। उनके व्यक्तित्व तथा जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों को आत्मपरक रचनाओं में सर्वाधिक उन्मुक्त तथा उचित अभिव्यंजना-क्षेत्र मिला। कवि के प्रेम तत्व, दर्शन तत्व में और दर्शन-तत्व, प्रेम तत्व में घुले मिले हैं। उन्होंने कई स्थानों पर शृंगार का ही आध्यात्मीकरण किया है। उसका आलम्बन सजन' है जो कभी लौकिक और कभी अलौकिक हो जाता है। ससीम से निस्सीम की ओर उतने संकेत न मिलेंगे जितना ससीम का विस्तार करके निस्सीम के बराबर पहुँचाया गया है।[2] श्री सदगुरुशरण अवस्थी ने लिखा है कि "यह कदाचित् अधिक सत्य न होगा कि बालकृष्ण के सारे पार्थिव उन्मेष आध्यात्मिक उड़ान हैं, जिस प्रकार भौतिक दार्शनिकों की यह बात अधिकतर सत्य नहीं है कि विश्व के सारे आध्यात्मिक उड़ान उसकी पार्थिवता की प्रतिक्रिया है; उसके विफल प्रेम की गाथा है। हमें तो बालकृष्ण का मूल्य उनकी अभिव्यंजना की सत्यता से आँकना है। अपार्थिव जामा

---

१. "In literature there is no such thing as pure thought, in literature thought is always the hand maid of emotion"—J. Middleton Murry, The Problem of Style,' Page. 73.

२. 'साहित्य तरंग', पृष्ठ १४४।

पहनाने से कलाकार के व्यक्तित्व का मूल्य आज भारतवर्ष ऊँचा आँकने लगे, परन्तु कला के मूल्यांकन में इससे कोई अन्तर नहीं आता।"[1]

'नवीन' जी के दार्शनिक काव्य की सर्वमहान् तथा महिमा मण्डित उपलब्धि है—मरण गीत। ये गीत हिन्दी की लाड़ली सम्पत्ति तथा अनूठी धरोहर है। इन गीतों में उपनिषद् का ज्ञान तत्व, गीता की आस्था और जीवन की जागृति त्रिवेणी, चिरन्तन रूप में, निनादित है। कवि ने मृत्यु तत्व को अभिनव तूलिका से चित्रित किया है। उसमें कतिपय नवल रंग भरे हैं। विनाश से सृजन, मरण से जन्म तथा चेतना-शून्यता से जीवन-जागरण के तत्वों को लेकर, कवि आशा तथा निष्ठा के मंगल घट की सम्पूर्ति करता है। इन गीतों में स्वाध्याय एवं स्वारस्य का अपूर्व गठ-बन्धन हुआ है। ऐसे गीत, हिन्दी के वाङ्मय में अत्यन्त विरल ही क्या, प्रायः नगण्य हैं। हमारी काव्य-सम्पदा, श्री एवं प्रौढ़ता की अभिवृद्धि में, कवि का यह अविस्मरणीय एवं अप्रतिम योगदान है। 'नवीन' जी के परवर्ती कवियों एवं नई पीढ़ी के गायकों ने जो कतिपय मृत्यु-गीतों की सृष्टि की, उसकी परिपाटी के मूल में इन गीतों को रखकर, परवर्ती-लेखन का मूल्यांकन किया जा सकता है। कवि के ये गीत अप्रकाशन के सघन अन्धकार में पड़े हैं, परन्तु शीघ्र ही प्रकाशन रूपी जीवन की ज्योति इनको भी जागृति तथा दीप्ति के छन्दों में आबद्ध कर लेगी।

काव्य-कला के दृष्टिकोण से, 'नवीन' का दार्शनिक-काव्य प्रौढ़ तथा अध्याहार के गुणों से अलंकृत है। वह शालीन, प्रभविष्णु तथा परिष्कृत है। उसमें काव्य की मन्थरता, ऋजुता तथा गाम्भीर्य की स्थिति विद्यमान है। वह काव्य-सुषमा की द्युति से मण्डित है।

इस प्रकार 'नवीन' जी का दार्शनिक-काव्य, उनके जीवन, संस्कृति तथा साधना का परिपक्व फल है। उसमें उनके युग तथा वातावरण का उल्लास-अवसाद, निष्ठा तथा विवेक की वाणी मुखर है। उनके व्यक्तित्व का संघटित तथा घनीभूत रूप यहाँ उपलब्ध है। दर्शन की रुक्षता में भी उनका मस्त मन तथा कवि-व्यक्तित्व का मधु धार प्रवहमान रहता है। कवि की दार्शनिक-काव्य-धारा से हृदय तथा आत्मा, दोनों की परितुष्टि होती है जो कि कवि का निःश्रेयस ही था।

---

१. 'साहित्य-तरङ्ग' पृष्ठ १४५।

सप्तम अध्याय

महाकाव्य : उर्मिला

महाकाव्य : उर्मिला

परम काव्य—'नवीन' जी 'उर्मिला' को अपना परम-काव्य मानते थे।[1] अपने जीवन के यौवन-काल में लिखित परन्तु सन्ध्या-काल में अपनी रुग्णावस्था में पुस्तक रूप में मुद्रित इस काव्य-कृति को प्रकाशित देखकर कवि ने वही हर्ष तथा आत्मतुष्टि प्रकट की थी;[2] जो 'कामायनी' के पुस्तकाकार प्रकाशित रूप को देखकर, स्वर्गीय 'प्रसाद' जी ने अभिव्यक्ति की थी।

तुलसी-साहित्य में 'रामचरित मानस' 'हरिऔध', काव्य में 'प्रिय प्रवास', 'गुप्त'-साहित्य में 'साकेत' तथा 'प्रसाद' वाङ्मय में जो स्थान 'कामायनी' का है; वही स्थान 'नवीन'-साहित्य में प्रायः 'उर्मिला' का है। यह काव्य उनकी गहरी अनुभूति, नवल कथा-योजना, मौलिक कल्पना-सृष्टि और तीव्र मनोवृत्तियों की शाश्वत निधि है।

कवि की श्रेष्ठ काव्य-शक्ति, उर्वर-विचारणा, नूतन दृष्टिकोण, अभिनव सांस्कृतिक पर्यावलोचन, उत्कृष्ट जीवनादर्श और मानवतावादी आदर्शों ने इसी कृति में ही अपने पल्लव प्रस्फुटित किये हैं। कथा-शिल्प की नवलता, तात्कालिक प्रबुद्ध राष्ट्रीय चेतना, युगीन बौद्धिकता और नारी के महिमामय तथा कर्त्तव्यरत व्यक्तित्व की सर्वोत्कृष्ट झाँकी यही देखने को मिलती है।

इस कृति में उपेक्षित उर्मिला की निवारणा उसके चरित्र का विशद तथा प्रशस्त रूप और विरह-वर्णन को उदात्त तथा आशावादी भूमिका, हिन्दी में अपनी समकक्षता को दुर्लभ ही पाती है। विरह-वर्णन को कवि ने अपने काव्य की सार-वस्तु माना है। इसे वे 'विरह-तत्व' या काव्य का 'हृदय' मानते थे।[3] वास्तव में वे 'उर्मिला' की वियोग-मीमांसा, गीतों में ही करना चाहते थे और इस हेतु कतिपय गीतों को रचना भी की थी, परन्तु 'साकेत' के प्रकाशन के कारण और उसमें गीतों के माध्यम से विरह-वर्णन पाकर, उन्होंने यह विचार त्याग दिया और फिर दोहों में ही विरह-वर्णन प्रस्तुत किया।[4]

'उर्मिला', 'नवीन' जी के वाङ्मय में शीर्षस्थान की अधिकारिणी मात्र ही नहीं है; प्रत्युत् वह कवि की प्रतिनिधि तथा प्रधान रचना है। 'परम-काव्य' होने के नाते वह, एक ओर जहाँ उनके काव्य का नवनीत है; वहाँ दूसरी ओर वह उनके कवि-जीवन का सर्वाधिक तथा सर्वोत्कृष्ट महत्व-पूर्ण कार्य भी है। रामकथा की परम्परा को इस कृति ने नूतन आयाम प्रदान किये हैं।

---

१. श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट; (दिनांक २३-५-१९६१) में ज्ञात।

२. वही।

३. वही।

४. वही।

प्रेरणा-स्रोत – कवि रवीन्द्र ने अपने प्रेरणामय निबन्ध 'काव्येर उपेक्षिता' में सर्वप्रथम हमारे कवियों का ध्यान उपेक्षिता तथा विस्मृता उर्मिला के प्रति आकृष्ट किया। 'गुरुदेव' ने यथासमय लिखा था—"कवियों ने अपनी कल्पना में समस्त करुणा जल को केवल जनकतनया के पुण्याभिषेक में ही निःशेष किया। किन्तु एक अन्यम्लान-मुखी सर्व ऐहिक सुखवंचिता राजबधू, सीतादेवी की छाया तले अवगुण्ठिता हुई खड़ी थी। कवि कमण्डल से एक बूंद अभिषेक जल भी उसके चिर दुःखाभितप्त नम्र ललाट को क्यों न सिंचित कर पाया?"[१] भारतीय साहित्य के इस 'वट-वृक्ष'[२] से ही हमारे कवियों ने परोक्ष प्रेरणा ग्रहण की। 'नवीन' जी ने भी इसी आसव को जीवन-कृति के रूप में पान किया।[३] महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा, वाल्मीकि और भवभूति की उर्मिला के प्रति, कालिदास की प्रियंवदा और अनुसूया के प्रति और बाण की पत्रलेखा के प्रति की गई उपेक्षा पर, व्यथा तथा खेद अभिव्यक्ति ने युग-प्रवर्तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा हमारे कवियों के मानस को करुणार्द्र बना दिया।

कवीन्द्र रवीन्द्र के उपर्युक्त लेख से प्रभावित होकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने श्रीभुजंगभूषण भट्टाचार्य के छद्म नाम से 'सरस्वती' में 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता'[४] शीर्षक-प्रेरणास्पद निबन्ध लिखा। द्विवेदी जी ने निबन्ध के अन्त में लिखा था—"कैसे खेद की बात है कि उर्मिला का उज्ज्वल चरित-चित्र कवियों के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढकता आया।"[५] 'उर्मिला' की मूलवर्ती काव्य-प्रेरणा का यही प्रोज्ज्वल तन्तु है।

आचार्य द्विवेदी जी के निबन्ध में हिन्दी के अनेक कवियों ने प्रत्यक्ष तथा जीवित-प्रेरणा प्राप्त की। इसी के फलस्वरूप, 'हरिऔध' जी ने 'उर्मिला' नामक लघु प्रबन्ध लिखा।[६] गुप्त जी ने, सन् १९०९-१० में प्रथमतः 'उर्मिला' शीर्षक से केवल ढाई सर्ग का एक अपरिसमाप्त, अमुद्रित तथा अप्रकाशित काव्य लिखा[७] और तदनन्तर 'साकेत' महाकाव्य की रचना की।

---

१. श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 'प्राचीन साहित्य', काव्येर उपेक्षिता, पृष्ठ ६६।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, मध्यप्रदेश सन्देश, रवीन्द्र और हिन्दी साहित्य, रवीन्द्रनाथ पण्डित मोतीलाल नेहरू जन्म-शताब्दी अंक, ५ मई, १९६१, पृष्ठ १६।

३. डॉ० देवेन्द्रकुमार साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नवीन जी 'पलकों में उर्मिला के आँसू', ३० अप्रैल, १९६१, पृष्ठ ११।

४. 'सरस्वती', कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता, जुलाई, १९०८, भाग ९, संख्या ७, पृष्ठ ३१२-३१४।

५. वही, पृष्ठ ३१४।

६. वही, हीरक जयन्ती विशेषांक, १९६०, पृष्ठ ४३-४४।

७. डॉ० कमलाकान्त पाठक—'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य', महाकाव्य साकेत, साकेत रचना की भूमिका, पृष्ठ ३९४।

श्री रामलाल पाण्डेय 'लाल'[१] ने भी उर्मिला पर काव्य लिखा; जो बरेली तथा कानपुर की मासिक पत्रिका 'आशा' में, अनेकांश में छपा।[२]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने काव्य की उपेक्षिता उर्मिला[३] के चित्र के अनावरण हेतु, अपनी 'टूटी कलम' को गतिशील बना दिया।[४]

काव्येर उपेक्षिता उर्मिला—काव्य द्वारा विस्मृत एवं उपेक्षित रूप ने ही, उर्मिला को महाकाव्यों की नायिका के प्रतिष्ठित पद पर अधिष्ठित किया। 'नवीन' जी ने भी अपनी काव्य-कृति में उर्मिला की उपेक्षा के यत्र-तत्र संकेत किये हैं और उसी के निवारणार्थ उनकी लेखनी कटिबद्ध हुई। समग्र संस्कृत-काव्य एवं हिन्दी-काव्य के अवलोकन के पश्चात्, यह उपेक्षा-भाव सहज ही प्रमाणित हो जाता है।

आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में उर्मिला की एक झलक मात्र ही हमारे समक्ष प्रस्तुत की है। वाल्मीकि ने उसे एक बार ही सर्वसम्मुख लाये हैं। वह अपने पिता जनक के प्रांगण में वधू के परिधान में, आती है। विवाह कार्य के समय, राजर्षि जनक बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी दो पुत्रियों में से वीर्यशुल्का तथा देवकन्या सदृश्य सुन्दरी सीता, राम को, और दूसरी कन्या उर्मिला, लक्ष्मण को देते हैं।[५] जनक देव ने रघुकुल के मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ को सम्बोधित करते हुए यह निवेदन किया।

महर्षि वाल्मीकि ने लक्ष्मण-उर्मिला तथा राम-सीता की युगल जोड़ी को समशील वर-वधू के रूप में निरूपित किया है।[६] उन्होंने सीता, उर्मिला आदि कन्याओं का सौन्दर्य यज्ञ-वेदी की अग्नि-शिखा के समान, भावन तथा उज्ज्वल आभामय,

---

१. 'आशा'—(क) जून, १९२७, वर्ष १, संख्या ५, (२) जुलाई, १९२७, वर्ष १, संख्या ६, उर्मिला का सौन्दर्य, पृष्ठ ३०९-१०, छन्द १-८, (३) अगस्त, १९२७, वर्ष १, संख्या ७, (४) सितम्बर १९२७, वर्ष १, संख्या ८, (५) फरवरी १९२८, वर्ष २, संख्या १, 'उर्मिला से लक्ष्मण की विदा', पृष्ठ १२-१४, छन्द १४-२६, (६) जून, १९२८, वर्ष २, संख्या ५, 'ऊर्मिला से लक्ष्मण की विदा', पृष्ठ २१९-२२१, छन्द २७-४०, (७) सितम्बर, १९२८, वर्ष २, संख्या ८, 'ऊर्मिला से लक्ष्मण की विदा', पृष्ठ ३६५-६७, छन्द, ४१-५०, (८) दिसम्बर १९२८, वर्ष २, संख्या ११, 'लक्ष्मण की उर्मिला से विदा', पृष्ठ ४६५-४६७ छन्द ५१-६०।

२. पाण्डेय जी के इस उर्मिला विषयक कृतित्व की ओर अभी किसी का ध्यान नहीं गया है।

३. 'उर्मिला'-काव्य का प्रणयन स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के एक लेख सरस्वती में प्रकाशित ऊर्मिला की उपेक्षा का परिणाम है। —डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक ६-९-१९६२ के) पत्र से उद्धृत।

४. 'उर्मिला', प्रोत्साहन, पृष्ठ १।

५. 'रामायण', अनुवादक श्री चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, १।७,२०।२२।

६. वही, १।७२।३।

बतलाया है।[१] इस प्रकार आदिकवि उर्मिला का उल्लेख मात्र ही करते चले गये हैं। विवाहोपरान्त महाराजा जनक, महाराजा दशरथ के पुत्रों को विदेह ललनाएँ समर्पित करते हैं। इस वृतान्त में सीता आदि के साथ उर्मिला का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[२]

अयोध्या-आगमन पर, दशरथ की रानियाँ सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति को राजप्रासाद में ले जाती हैं और उनका शृंगार-विन्यासादि करवाती हैं।[३] इस प्रकार महाकवि वाल्मीकि ने उर्मिला को कोई महत्व प्रदान नहीं किया। इसीलिये, आचार्य महावीर प्रसाद दिवेदी ने शोक संतप्त होकर इस विषय में लिखा था।[४]

'नवीन' जी ने भी, वाल्मीकि द्वारा उपेक्षित इस पीयूष चरित को रससिक्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए, अपनी लेखनी को प्रोत्साहित किया था।[५]

महाकवि भवभूति के काव्य में भी यही उपेक्षा प्राप्त होती है। 'उत्तररामचरित' में चित्रफलक पर अंकित उर्मिला के चित्र पर भगवती सीता की क्षणिक तथा जिज्ञासापूर्ण अँगुली पहुँचती है परन्तु तत्काल ही लक्ष्मण लज्जित होकर उसे कराच्छादित कर देते हैं।[६]

संस्कृत-काव्य के समान, हिन्दी काव्य की रामकथाप रम्परा में उर्मिला विस्मृति के गर्त्त में पड़ी रही। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युगकाव्य 'रामचरित-मानस' में नामोल्लेख से ही काम चला लिया है।[७]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "तुलसीदास ने भी उर्मिला पर अन्याय किया है। आपने इस विषय में आदिकवि का ही अनुसरण किया है।...अपने कमण्डलु के करुणावारि का एक भी बूंद आपने उर्मिला के लिए न रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पण कर दिया।"[८] 'नवीन' जी ने भी तुलसीदास की भक्तिमाला में इस छोटे मन के अगोचर होने पर, अपनी हृदय की आकुलता को अभिव्यक्त किया।[९]

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी 'नामोल्लेख' करने वाले कवियों की पंक्ति में, 'वैदेही वनवास' में, अपना नाम लिखाया है। 'वैदेही वनवस' की सीता ने उर्मिला की सराहना की है। वन-गमन के पूर्व, जानकी अपनी बहिनों को सांत्वना प्रदान करती है।[१०] सीता अपने उपदेश में, श्रुतिकीर्ति के समक्ष, उर्मिला के धैर्य के आदर्श का प्रस्तुत करती है।[११]

---

१. वाल्मीकिरामायण, १।७३। १५।
२. वही, १।७३।३०-३१।
३. वही, १।७७।१०-१२।
४. 'सरस्वती', जुलाई, १६०८, पृष्ठ ३१३।
५. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ २, छन्द ३।
६. 'उत्तररामचरित', प्रो० सी० मित्रा द्वारा सम्पादित, प्रथम अङ्क, पृष्ठ ४१।
७. 'रामचरित-मानस', धनुष यज्ञ, प्रसंग, १।३२५, छन्द २-३।
८. 'सरस्वती', जुलाई, १६०८, पृष्ठ ३१४।
९. 'उर्मिला', प्रथम, सर्ग, पृष्ठ ३, छन्द ४।
१०. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', वैदेही-वनवास, पृष्ठ७८-७९।
११. वही, पृष्ठ ७९।

'हरिऔध' जी ने अपनी इस कृति में उर्मिला का एक बार ही अनावरण किया है। इस स्थल पर भी कवि ही अधिक वाचाल है, उर्मिला मूक है। सीता के वनगमन से पीड़ित उर्मिला का वेदना भरा चित्र, हमारे सामने आया है।[1]

'वैदेही वनवास' के सप्तदश सर्ग में कवि ने श्रीराम के मुख से उर्मिला की विरहजन्य वेदना का एक सामान्य संकेत प्रदान किया है। वैदेही वनवास के तदनन्तर, एक बार श्रीराम पंचवटी जाते हैं और वहाँ अतीत के स्मृति-तार बरबस ही झंकृत हो पड़ते हैं। उर्मिला की विकट वेदना की स्मृति आते ही उनका अश्रुपात अबाधित रूप धारण कर लेता है।[2]

'साकेत' तथा 'उर्मिला' में लक्ष्मण-उर्मिला की प्राण प्रतिष्ठा के समान, डॉ० बलदेव-प्रसाद मिश्र ने 'साकेत-सन्त' में भरत माण्डवी की प्रतिमाएँ स्थापित की हैं। कवि ने राम-वन-गमन के तदनन्तर, उर्मिला की हृदय-द्रावक पीड़ा की एक हल्की-सी सूचना मात्र ही दी है। भरत, माण्डवी को यह आदेश प्रदान करते हैं कि वह विरह-विधुरा उर्मिला को भलीभाँति सम्हाले।[3] 'साकेत सन्त' में एक अन्य स्थल पर भी उर्मिला का उल्लेख आया है—

उर्मिला का क्या दोष महान,
कहीं भी आज न जिसको स्थान॥[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण संस्कृत एवं हिन्दी के राम-काव्य परम्परा में उर्मिला को उपेक्षित ही रखा गया है। उसके नामोल्लेख अथवा परोक्ष-वर्णन से ही कवियों ने अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ ली। आधुनिक हिन्दी-काव्य में इस त्रुटि का परिहार, उपेक्षा का निराकरण तथा उर्मिला के चरित्र का उत्कृष्ट रूप में गायन 'साकेत' एवं 'उर्मिला' में ही हुआ है। 'साकेत' की अपेक्षा 'उर्मिला' में, उर्मिला के चरित्र को अधिक विस्तार एवं प्रसार प्राप्त हुआ है। कवि ने उर्मिला के इस उपेक्षित रूप को अवधान में ही रखकर, उसकी कथा को 'अकथित' ही बताया है।[5]

इस प्रकार वाह्य प्रेरणा, आन्तरिक भावना तथा बलवती स्पृहा के कारण ही, कवि के दिव्य मानस-पटल[6] को उर्मिला का चरित्र मथने लगा और कवि की सशक्त चित्रण शक्ति के आधार पर वह, हिन्दी-काव्य की अनूठी निधि बन गया। महाकाव्य की सफलता कवि की चरित्र-कल्पना और उसकी चित्रण-शक्ति पर निर्भर करती है।[7] कवि का लक्ष्य सिर्फ उर्मिला

१. 'हरिऔध'—वैदेही-बनवास, पृष्ठ १४०।
२. वही, पृष्ठ २३३।
३. डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र—'साकेत-सन्त', चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ५५।
४. वही, पृष्ठ ५६।
५. 'उर्मिला', पृष्ठ ५।
६. 'कविः कवित्वा दिवि रूपमासृजत्'—ऋग्वेद, १०।१२४।७।
७. "The success of Epic Poetry depends on the author's Power of imagining and representing characters."—W. P. Ker, 'Epic and Romance', page. 17.

के चित्र का अनावरण करना ही नहीं था; अपितु उसने रामकथा को पुनरुत्थानवादी चेतना तथा सांस्कृतिक सन्दर्भ में भी निरखा-परखा है। इस प्रकार उर्मिला तथा सांस्कृतिक मूल्यों की महती सृष्टि को अपने परिपक्व गात में समाहित किये, 'उर्मिला'-काव्य अपने निर्माण के इतिहास की भी अनूठी गाथा गाता है।

'उर्मिला' की रचना—चिर उपेक्षिता एवं विस्मृता उर्मिला के इतिहास के समान 'नवीन' जी की इस काव्यकृति के लेखन एवं प्रकाशन का भी अपना इतिहास है। कवि ने इस काव्य को आज (सन् १९५७) से ३७ वर्ष पूर्व आरम्भ किया था। अपनी अन्य कृतियों के समान, यह भी कवि के बन्दी जीवन की अपूर्व भेंट है। सन् १९२१-२३ के डेढ़-वर्ष के कारावास-काल में कवि ने इसे लिखना प्रारम्भ किया।[1]

लखनऊ-कारागृह में ही कवि के हृदय में यह विचार आया कि उर्मिला पर कुछ लिखना चाहिये। अतः उन्होंने सन् १९२२ ई० के नवम्बर के अन्त में या दिसम्बर के आरम्भ में, 'उर्मिला' लिखनी आरम्भ की। प्रथम सर्ग लखनऊ कारावास में, प्रायः एक-सवा मास में लिखा गया। जनवरी, १९२३ ई० में कवि, कारागृह से मुक्त हो गया।[2]

अपने नागरिक-जीवन में कवि पुनः इस काव्य को नहीं लिख सका। सन् १९३० के दो बार के बन्दी जीवन में भी वह संघर्षमयी स्थिति के कारण, अपनी कृति को आगे नहीं बढ़ा सका।

दिसम्बर, सन् १९३१ में 'नवीन' जी को पुनः कारागृह-दण्ड मिला। इस बार का दण्ड ढाई-वर्ष का था। इस बार कवि ने निश्चय करके, व्याघातों तथा अन्य विपदाओं को झेलते हुए, इस काव्य को सम्पूर्ण कर लिया। फरवरी, सन् १९३४ में जब कवि की बन्दीगृह से मुक्ति हुई तो वह अपनी 'उर्मिला' को समाप्त कर चुका था।[3] 'उर्मिला' के प्रथम सर्ग और परवर्ती सर्गों के लेखन-काल में द्वादश वर्षों का अन्तर आ गया। प्रथमसर्ग तथा परवर्ती सर्गों की भाषा तथा अभिव्यक्ति पर भी यह अन्तर परिलक्षित है। 'उर्मिला' के प्रथम सर्ग का लेखन जहाँ लखनऊ जिला कारागार में हुआ, वहाँ उसके परवर्ती सर्गों की रचना एकाधिक बन्दीगृहों में हुई। कारागृह-दण्ड की इस अवधि में कवि ने अधिकांश समय जिला कारागार, फैजाबाद में व्यतीत किया और कुछ समय केन्द्रीय कारागार बरेली तथा जिला कारागार अलीगढ़ में बिताया। कवि को इस दण्ड से मुक्ति, अलीगढ़ जिला कारागार से ही प्राप्त हुई। इस प्रकार हमें लखनऊ, फैजाबाद, बरेली तथा अलीगढ़[4] के कारागृहों से, इस काव्य-कृति के निर्माण का

---

१. 'उर्मिला' श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ क।

२. वही।

३. वही, भूमिका भाग।

४. कवि के काव्य-संग्रहों यथा—'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'प्रलयंकर', 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', और 'यौवन-मदिरा या 'पावस-पीड़ा' की कविताओं में दी हुई तिथि एवं स्थान के आधार पर।

सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वास्तव में यह कृति फैजाबाद जेल में ही पूर्ण हो गई थी।[१] कवि ने इस ग्रन्थ के लेखन में, समग्ररूप में, सवाचार-साढ़ेचार मास से अधिक समय नहीं लिया।[२]

इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचना काल सन् १९२२-१९३४ ई० है। द्वादश वर्षों तक कवि का सृजन यथासमयानुसार गतिशील रहा। सन् १९३४ में लिखा यह ग्रन्थ, त्रयोदश वर्ष पश्चात्, सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ। क़वि ने लिखा है—"प्रशंसा कीजिये—यह है मेरा योगः कर्मसु कौशलम्।"[३] कवि ने इस प्रकाशन के विलम्ब तथा प्रमाद का समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर ही ले लिया है।[४] यथार्थ में, यह उनका, कवि का, आत्मप्रकाशन की दुर्बलता के प्रति, विद्रोह ही था।[५]

सन् १९५७ में पुस्तकाकार प्रकाशित होने के पूर्व, इस ग्रन्थ के कतिपय अंश पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुके थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "श्री 'नवीन' ने 'उर्मिला' के सम्बन्ध में एक काव्य लिखा है जिसका कुछ अंश अस्तगत 'प्रभा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ।"[६] इस प्रकार सर्वप्रथम बार इसके कतिपय अंश, सन् १९२६ की 'प्रभा' के अंकों में आये। इसमें प्रथम सर्ग के काव्यांशों को स्थान प्राप्त हुआ। इसके पश्चात्, अजमेर से श्री हरिभाऊ उपाध्याय के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'त्यागभूमि' में सं० १९८५-८६ के दस अंकों में 'उर्मिला' का सम्पूर्ण प्रथम सर्ग 'विस्मृता उर्मिला' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।[७]

---

१. श्री कन्हैयालाल मिश्र, 'प्रभाकर'—दैनिक 'नवभारत टाइम्स', 'नवीन' जी फैजाबाद जेल में, २९ जून, १९६०, पृष्ठ ६, कालम २।

२. 'उर्मिला, भूमिका, पृष्ठ—ग।

३. वही, भूमिका—ग।

४. वही, पृष्ठ—क।

५. 'सम्मेलन-पत्रिका', डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, कवि 'नवीन' और उनकी उर्मिला', आश्विन-मार्गशीर्ष, १८८२ शक, भाग ४६, संख्या ४, पृष्ठ १३०।

६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, नई धारा, स्वच्छन्द धारा, पृष्ठ ७२१।

७. 'त्यागभूमि' (१) आश्विन, सं० १९८५, प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, प्रार्थना, ध्यान तथा पुर-प्रदक्षिणा, पृष्ठ १६-१९ (२) कार्तिक, सं० १९८५, गतांक से आगे, जनकपुर प्रवेश, पृष्ठ १६२-६६ (३) मार्गशीर्ष सं० १९८५, गतांक से आगे, प्रासाद-प्रागंण में, पृष्ठ २९३-९६ (४) पौष, सं० १९८५, छन्द ४१-६८, पृष्ठ ४१७-४१८ (५) फाल्गुन, सं० १९८५, छन्द ६९-१०८, पृष्ठ ६५०-६५३ (६) चैत्र सं० १९८५, छन्द १०९-१३१, पृष्ठ १६-१८ (७) वैशाख, संवत् १९८६, छन्द १३२-१६२, पृष्ठ १३९-१४१ (८) आषाढ़, सं० १९८६, छन्द, १६३-१८९, पृष्ठ ३९०-९२, (९) श्रावण, सं० १९८६ छन्द १९०-२२६, पृष्ठ ४९८-५०० (१०) भाद्रपद सं० १९८६, छन्द २२७-२४०, पृष्ठ ६१७-६१८।

'उर्मिला' के सन् १९२२-३४ ई० की रचना कालावधि में, कवि अन्य स्फुट-रचनाओं के सृजन में भी संग्लन रहा जो कि उसके विविध काव्य-संकलनों में संगृहीत हैं। इस प्रकार, 'उर्मिला' की रचना तथा प्रकाशन के इतिहास के आख्यान में, राजनीति तथा साहित्य का एक युग ही समाप्त हो गया। उपयुक्त समय से प्रकाशन का अपना महत्व होता है और इस प्रकाशनजन्य महत्ता, प्रभाव तथा विकास के अपने ही महत्वपूर्ण उपादान होते हैं। 'उर्मिला' इन सब चीजों से वंचित हो गई और उसे जो ऐतिहासिक स्थान प्राप्त होना था; वह प्राप्त न हो सका। उस युग की पत्रिकाओं में प्रकाशित इसके कतिपय काव्यांश ने ही हमारे समीक्षकों—यथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,[1] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी,[2] श्री रामनाथ 'सुमन'[3] आदि का ध्यान तथा कद्रदानी-भरी दृष्टि आकृष्ट कर ली थी। इससे ही, यह विदित होता है कि इस कृति में अपना व्यक्तित्व तथा अभिनवता थी और यदि यह समयानुकूल प्रकाशित हो जाती तो इसका भी अपना एक विशिष्ट स्थान बनता और युग-काव्य पर प्रभाव पड़ता। अतएव, पच्चीस-तीस वर्ष पहले के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही, इसका मूल्यांकन अपेक्षित है। कवि की मृत्यु के पश्चात् उसके व्यक्तित्व तथा साहित्य के अध्ययन की सर्वत्र चर्चा और उत्साहवर्द्धक वातावरण को देखकर, यह विश्वास, आस्था में परिणत होता जा रहा है कि अब शीघ्र ही, यह ग्रन्थ अधिक गौरव तथा महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी होगा।

परिशोधन-परिवर्द्धन—प्रायः प्रत्येक कवि अपने काव्य में समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार परिष्कार एवं संशोधन किया करता है। आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में यह कोई नूतन वस्तु नहीं है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'साकेत' में अनेक परिवर्तन, परिवर्द्धन और परिशोधन किए हैं। उसका प्रथम संस्करण सं० १९८८ में प्रकाशित हुआ था और द्वितीय संस्करण सं० १९९२ में। गुप्त जी ने परिवर्तनादि प्रायः इसी बीच किए।[4] स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद ने भी 'आँसू' में परिवर्तन किये। 'आँसू' का प्रथम संस्करण १९८२ वि० में साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित हुआ था। उसका द्वितीय संस्करण १९९० वि० में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इसमें छन्दों के क्रम में परिवर्तन कर दिया गया।[5]

---

१. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ७२१।

२. 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', विज्ञप्ति, पृष्ठ ३।

३. "हिन्दी कविता की वर्तमान धारा के सम्बन्ध में आजकल खूब चर्चा चल रही है। नवीन हिन्दी कविता के बढ़ते हुए प्रभाव का यह एक लक्षण है। कई कवि नवीन काव्य-साहित्य की श्रीवृद्धि करने में लगे हैं। 'नवीन' ने 'विस्मृता उर्मिला' काव्य हाल में ही समाप्त किया है, जिसका कुछ अंश 'त्यागभूमि' के इस अंक में अन्यत्र दिया गया है, यह काव्य धारावाहिक रूप में इसमें निकलता रहेगा।"—श्रीरामनाथ 'सुमन', 'त्यागभूमि', प्रगतिशील हिन्दी साहित्य, साहित्य की दुनिया में, आश्विन, १९८५, पृष्ठ १०१-१०२।

४. 'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य', पृष्ठ ४००।

५. डॉ० प्रेमशंकर—'प्रसाद का काव्य', पृष्ठ १९२।

'नवीन' जी की, किसी भी कृति के समान, 'उर्मिला' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। अतएव, गुप्त जी एवं प्रसाद जी के सदृश्य, 'उर्मिला' के संस्करणों में संशोधन करने का, प्रश्न ही नहीं उठता। इसके बावजूद भी, 'नवीन' जी ने पूर्व रूप में ही परिशोधन किया। कवि ने सन् १९३३-३४ से ही, काव्य की परिसमाप्ति के पश्चात् ही, परिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। फैजाबाद कारागृह के उनके सहयोगी, श्री 'प्रभाकर' ने उन्हें 'उर्मिला' का मार्जन करते हुए देखा था।[1] इसके बाद, पत्रिकाओं में प्रकाशित 'उर्मिला' के काव्यांशों तथा पुस्तकाकार कृति में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है जिससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि कवि ने परिशोधन-परिवर्द्धन किया है। साथ ही, 'उर्मिला' की पाण्डुलिपि को प्रकाशन के पूर्व भी, कवि ने काफी परिष्कार किया था।[2] इस प्रकार कवि का परिशोधन कार्य, कृति के प्रकाशन के पूर्ण तक, सतत रूप से, यथावश्यकतानुसार, चलता रहा।

'नवीन' जी के परिमार्जन का मूलाधार भाषा सम्बन्धी परिष्कार रहा है जो कि उनकी वृद्धावस्था में बड़ा प्रबल हो गया था। भाषाशोधन के अतिरिक्त, उन्होंने अन्य परिवर्तन भी किये। 'उर्मिला' में समग्ररूप में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये—(१) अभिव्यंजना-परिशोधन, (२) भाषा-परिशोधन, (३) छन्द-परिशोधन, (४) शब्द-परिशोधन, और (५) क्रम-परिशोधन। इन परिष्कारों का सोदाहरण विश्लेषण अधोलिखित रूप में है—

(१) अभिव्यंजना-परिशोधन—कवि ने अपनी काव्याभिव्यक्ति को अधिक सशक्त, प्रभावपूर्ण, उपयुक्त एवं सटीक बनाने के लिए 'उर्मिला' में अनेक परिवर्तन उपस्थित किये। इन परिष्कारों से शैथिल्य का निराकरण हुआ और काव्य में नूतन द्युति आ गई—

१—मूलरूप : "उर्मिला के पुनीत चरणों की रज,
पहुँचावेगी उस पार।"[3]

संशोधित रूप : "उर्मिला पद-पद्मों की धूलि
तुम्हें पहुँचावेगी उस पार।"[4]

२—मूलरूप : 'सरका कमल' नेत्र विस्फारण बस यह तो मेरा है।[5]

संशोधित : 'बोला कमल', नेत्र विस्फारण, क्या यह भी तेरा है ?[6]

इस प्रकार शब्दों को घटा-बढ़ाकर, उपयुक्त शब्द की स्थानापत्ति कर, शैली के रूप में परिवर्तन लाकर और प्रकटीकरण में स्पष्टता तथा सुबोधता के तत्वों को संलग्न कर, कवि ने अभिव्यक्ति सम्बन्धी परिमार्जन उपस्थित किया है। 'सरका कमल' नेत्र विस्फारण बस यह तो मेरा है' के स्थान पर, 'बोला कमल नेत्र विस्फारण, क्या यह भी तेरा है ?' परिवर्तन करने

---

१. दैनिक 'नवभारत टाइम्स', २६ जून, १९६०, पृष्ठ ६, कालम १।
२. श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी द्वारा ज्ञात।
३. त्यागभूमि, आश्विन, सं० १९८५, पृष्ठ १७, छन्द ७।
४. 'उर्मिला', पृष्ठ ४, छन्द ७।
५. 'त्यागभूमि', मार्गशीर्ष, सं० १९८५, पृष्ठ २६६।
६. 'उर्मिला', पृष्ठ ३०, छन्द ३५।

से जहाँ अभिव्यक्ति-कौशल की श्रीवृद्धि हुई हैं, वहाँ कथन में लाक्षणिकता भी आ गई है। इस प्रकार संशोधन रूप में, काव्य अधिक व्यंजक बन गया है।

भाषा-परिशोधन—'नवीन' जी ने सर्वत्र, मूलतः तथा प्रधानतया भाषा-शोधन ही किया है। भाषा परिष्कार से जहाँ एक ओर शिथिलता तथा अनुपयुक्तता को तिलांजलि प्रदान की गई है, वहाँ काव्य में निखार एवं उभार आया है।

मूलरूप : 'धनुर्यज्ञ का वर्णन कर तू शर्मायेगी तब क्या ?'[१]

संशोधित : 'धनुर्यज्ञ का वर्णन कर तू सकुचायेगी तब क्या ?'[२]

भाषा-परिवर्तन के मूल में उर्दू शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। भाषा में माधुर्य, लालित्य तथा औचित्य की अभिवृद्धि के लिए परिवर्तन उपस्थित किये गये हैं। साथ ही अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता अथवा लाघव प्रस्तुत करके, भाषा की सारगर्भिता तथा व्यंजकता की आभा बढ़ाने का भी प्रयास किया गया है।

छन्द-परिशोधन—कवि ने यत्र-तत्र छन्दों का भी परिमार्जन किया है। इसके द्वारा वह अपने काव्य में भावानुकूलता तथा सौन्दर्य की वृद्धि करना चाहता है—

१—मूलरूप : 'खोलो आँखें, मुदित मन हो, पुण्य शोभा घनेरी।'[३]
संशोधित : 'खोले आँखें, मुदित मन हो, देख शोभा घनेरी।'[४]

२—मूलरूप : 'स्नेहाकृष्टा विमल नवल ग्रीव में सोहनी सी।'[५]
संशोधित : 'स्नेहाकृष्टा विमल नवला ग्रीव में सोहनी सी।'[६]

३—मूलरूप : 'सीता और उर्मिला ये, पीयूष सरस के कण हैं।'[७]
संशोधित : 'सीता और उर्मिला मानो सरस अमृत के कण हैं।'[८]

छन्द-परिशोधन में कवि ने अपने भावों की व्यंजना में स्पष्टता तथा मुखरता लाने का सफल प्रयत्न किया है। छन्द-परिष्कार ने कलागत प्रांजलता भी उत्पन्न की है। छन्द-शैथिल्य या दोष का निराकरण भी किया जा सका है।

शब्द-परिशोधन—'नवीन' जी ने शब्दों के परिवर्तन में, उनके सटीक, सार्थक तथा वर्ण-सुखद रूपों को प्राथमिकता प्रदान की है—

१—मूलरूप : 'नत हो जा, हे नास्तिक मस्तक, उसके मृदु युग चरणों में[९]
संशोधित : 'नत हो जा, हे नास्तिक मस्तक, उसके युग श्री चरणों में[१०]

---

१. 'त्यागभूमि' भाद्रपद, सं० १६८६, पृष्ठ ६१७।
२. 'उर्मिला', पृष्ठ ६६, छन्द २२७।
३. 'त्यागभूमि', कार्तिक, सं० १६८५, पृष्ठ १६२।
४. 'उर्मिला, पृष्ठ १३, छन्द २।
५. 'त्यागभूमि', कार्तिक सं०, १६८५, पृष्ठ १६३।
६. 'उर्मिला', पृष्ठ १६, छन्द २०।
७. 'त्यागभूमि', मार्गशीर्ष, सं० १६८५, पृष्ठ २६३।
८. 'उर्मिला', पृष्ठ २४, छन्द २।
९. 'त्यागभूमि', आश्विन, सं० १६८५, पृष्ठ १८।
१०. 'उर्मिला, पृष्ठ ७।

२—मूलरूप : 'मेरा एक-एक डाली का फूल किये था अर्पण मन को'[1]

संशोधन : 'प्रति डाली का फूल किये था अर्पण अपने मन को।'[2]

शब्द-परिष्कार के माध्यम से, काव्य-श्री की अभिवृद्धि हुई है। कई स्थानों पर श्रुति-कटुत्व दोष का निवारण किया गया है। 'शुभ्रता' तथा सुअमृतमय के स्थान पर 'धवलता' तथा 'मधुरस' शब्दों की स्थानापत्ति कर, कवि ने श्रुति-प्रियता की वृद्धि ही की है। अर्थ की सुबोधता तथा सुगम्यता के आधार पर भी ये परिवर्तन अभीष्ट प्रतीत होते हैं। शब्दों के परिवर्तन में वाक्य-विन्यास को भी व्यवस्थित किया गया है।

क्रम-परिशोधन—उर्मिलाकार ने यथास्थान शब्द-वाक्य आदि के क्रम में भी परिवर्तन उपस्थित किये हैं। इन परिवर्तनों से काव्यौचित्य की प्राणरक्षा की गई है—

१—मूलरूप : 'दोनों पर्यंकों पर बैठ गईं इस मृदु उपवन में।'[3]

संशोधित : 'पर्यंकों पर बैठ गईं वे दोनों इस उपवन में।'[4]

२—मूलरूप : 'मुझे बता दे, हे मेरी कल्पने करेगी अब क्या?'[5]

संशोधित : 'हे मेरी कल्पने बता दे मुझे करेगी अब क्या?'[6]

क्रम-परिवर्तन के द्वारा कवि ने जहाँ वाक्य-शिथिलता को दूर किया है, वहाँ शब्द को व्याकरण-सम्मत भी बनाया है। ये कवि के साधु प्रयत्न हैं।

इस प्रकार 'नवीन' जी ने 'उर्मिला' में नाना प्रकार के परिवर्तन उपस्थित किये हैं। कवि ने कहीं-कहीं पद्यों को घटा भी दिया है। मूल में, प्रथम सर्ग में, यह पद्यांश प्राप्त होता है जिसे प्रकाशित पुस्तक में स्थान प्राप्त नहीं हुआ है—

जबाँ दो टूक है तेरी ये, इस दिल को हिला डाले,
मेरी फीकी सियाही को जरा फिर से मिला डाले।[7]

उपर्युक्त पद्यांश काव्य के गाम्भीर्य की क्षति करता था और कवि की संस्कृतनिष्ठ भाषा के प्रति मोह का भी विरोधी था, अतएव, हटा दिया गया।

कवि द्वारा प्रस्तुत परिशोधन-परिष्कार से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि 'उर्मिला' में जो परिमार्जन उपस्थित किया गया है, वह अप्रधान है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप, इस कृति की कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि तथा भाव-व्यंजना में कोई प्रकार उपस्थित नहीं हुआ है। शब्द-शैथिल्य, वाक्य-शैथिल्य, आदि को दूर करते हुए, सिर्फ काव्य को सजाने-सँवारने का प्रयत्न किया गया है। ये परिवर्तन प्रभाववृद्धि में सहायक-पात्र ही हुए हैं।

---

१. 'त्यागभूमि', मार्गशीर्ष, संवत् १६८५, पृष्ठ २६६।

२. 'उर्मिला', पृष्ठ ३०, छन्द ३८।

३. 'त्यागभूमि' मार्गशीर्ष, सं० १६८५, पृष्ठ २६६।

४. 'उर्मिला', पृष्ठ ३२, छन्द ४०।

५. 'त्यागभूमि', भाद्रपद, सं० १६८६, पृष्ठ ६१७।

६. 'उर्मिला', पृष्ठ ६६, छन्द २२७।

७. 'त्यागभूमि', आश्विन सं० १६८५ वर्ष २, खण्ड १, अंश १, पर्णांश १३, पृष्ठ १७।

आधार-ग्रन्थ—रामकथा की गृहीत परम्परा तथा काव्य-क्षेत्र में 'उर्मिला' ने अभिनव युगान्तर स्थापित किया है। उसके रचनाकार ने राम-कथा को नूतन परिवेश एवं धारणा से देखने और उसे तदनुरूप उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है। आधुनिक युग की भाव-चेतना और नूतनता को कवि ने यत्र-यत्र प्रस्फुटित किया है। इस प्रकार राम-कथा के निर्धारित स्वरूप और दृष्टिकोण से, 'उर्मिला' में काफी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। कवि ने राम-कथा के प्रारूप में परिवर्तन उपस्थित नहीं किया बल्कि उसके प्रति अपने दृष्टिकोण तथा तद्स्वरूप की गई व्याख्या में अन्तर उपस्थित किया है। इस सम्बन्ध में, 'नवीन' जी ने लिखा है—

'मेरी इस 'उर्मिला' में पाठकों को रामायणी-कथा नहीं मिलेगी। रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम-लक्ष्मण-जन्म से लगाकर रावण-विजय और फिर अयोध्या-आगमन तक की घटनाओं का वर्णन। ये घटनाएँ भारतवर्ष में इतनी अधिक सुपरिचित हैं कि इनका वर्णन करना मैंने उचित नहीं समझा। इस ग्रन्थ को मैंने विशेषकर मनःस्तर पर होने वाली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयास किया है। रामायणीय घटनाओं का राम, सीता सुमित्रा, कौशल्या, और विशेषकर लक्ष्मण आदि के मनों पर यया प्रभाव पड़ा, वे उन घटनाओं' के प्रति किस प्रकार प्रतिकृत हुए, आदि का वर्णन ही इस ग्रन्थ का विषय बन गया है। इसमें जो कुछ कथाभाग है, वह गृहोत है—वर्णनात्मक, अर्थात् घटना विवरणात्मक नहीं।

मैंने राम वनगमन को एक विशेष रूप में देखने और उपस्थित करने का साहस किया है। राम की वन यात्रा, मेरी दृष्टि में एक महान् अर्थपूर्ण आर्य-संस्कृति-प्रसार यात्रा थी। 'उर्मिला' में लक्ष्मण के मुख से जो यह बात मैंने कहलवाई है, वह कदाचित् पुरातन विचारवादियों को न रुचे। पर जितना भी मैं इस राम वन-गमन पर विचार करता हूँ, उतना ही मैं इस बात पर दृढ़ होता जाता हूँ कि राम की वन-यात्रा भारतीय संस्कृति-प्रसारार्थ एक महान् यज्ञ के रूप में थी।''[१]

इस प्रकार, कवि ने 'उर्मिला' को सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा नवोन्मेकारिणी रूप प्रदान किया है और ये दो-तीन उपादान प्राचीन रामकथा से उसका वैविध्य उपस्थित करते हैं। राम-कथा के आधार-ग्रन्थों से यह भी अन्तर रहा है कि 'उर्मिला' को पारिवारिक वातावरण भी प्रदान किया गया है। उर्मिला की पुनीत प्रतिमा संस्थापन के साथ ही साथ, कवि ने राम-सीता के महत्व को तिलांजलि नहीं प्रदान की है। राम का रूप अत्यन्त भव्य तथा मानवीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अपने युग की विशद तथा सुरुचिपूर्ण दृष्टि से राम-कथा का मूल्यांकन किया गया है।

'उर्मिला' के आधार-ग्रन्थों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—प्रधान-स्रोत तथा गौण-स्रोत। प्रधान-स्रोत के अन्तर्गत उस सामग्री को समाहित किया जा सकता है जिनसे कवि ने इस ग्रन्थ के कथा-तत्वादि लिये हैं। गौण-स्रोत में उस सामग्री का अध्ययन किया जा सकता है जिसने कवि को परोक्ष रूप से प्रभावित किया और जीवनदर्शन के निरूपण में सहयोग प्रदान किया है।

(क) प्रधान-स्रोत—प्रधान-स्रोत अथवा इस कृति के आधारग्रन्थों में, वाल्मीकि तथा

---

१. 'उर्मिला', श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ ६।

रामायण, कालिदास और तुलसीदास द्वारा, कवि प्रभावित हुआ है। वाल्मीकि तथा उनकी 'रामायण' का कवि ने यत्र-तत्र उल्लेख किया है। 'भूमिका' में 'उर्मिला' को जनकनन्दिनी सिद्ध करने के लिए वाल्मीकिरामायण के उद्धरण दिये गये हैं।[1] कवि ने उर्मिला-चरित्र के वाल्मीकि द्वारा त्यक्त होने पर भी दुख प्रकट किया है।[2] कवि अपने कथा में धनुर्यज्ञ का वर्णन नही करता है क्योंकि पूजनीय ऋषि वाल्मीकि ने उसका अत्युकृष्ट चित्रण करके, अपने कवि-जीवन को सार्थक कर लिया।[3] इस प्रसंग में वह आदि कवि का स्मरण करता है।[4]

आदि कवि के पश्चात् कालिदास का स्थान आता है जिनके प्रति कवि के हृदय में अपार श्रद्धा थी। 'नवीन' जी कालिदास के काव्य के बड़े प्रेमी थे। यद्यपि कवि ने कालिदास के किसी ग्रन्थ का उल्लेख अपनी इस कृति में स्पष्टतया नहीं किया है; परन्तु, प्रकारान्तर से, उसका तात्पर्य 'रघुवंश' से ही रहा है। अपने अभीष्ट आदर्श की सम्पूर्ति के हेतु, कवि रूढ़ कथाशों की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता क्योंकि, उसके मतानुसार चर्वित चर्वण में नूतन स्वाद प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रसंग में, कथा-तत्व के सन्दर्भ में, कवि ने कालिदास का भी सादर स्मरण किया है।[5] 'रघुवंश' में लंका-विजय के पश्चात्, पुष्पक-विमान में राम, सीता को अनेक प्रसंग सुनाते हैं। इसी आधार पर 'नवीन' जी ने भी, सीता-लक्ष्मण संवाद की परियोजना की है।[6] इसी प्रकार 'ऋतु-संहार' का प्रभाव उर्मिला विरह वर्णन के षट्ऋतु परिवर्तन प्रसंग पर भी आँका जा सकता है।

संस्कृत में, राम-कथा के दो महान् तथा प्रतिष्ठित गायकों के अतिरिक्त, कवि ने हिन्दी में राम-कथा के सर्वश्रेष्ठ उन्नायक एवं प्रतिपादक गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भी अपनी आदर भावना अभिव्यक्त की है। तुलसी की उर्मिला के प्रति उपेक्षा-वृत्ति के प्रति कवि ने अपना हार्दिक शोक प्रकट किया है।[7] 'रामचरितमानस' के वाटिका प्रसंग आदि के माधुर्य तथा प्रभावोत्पादकता के समक्ष कवि अपनी कल्पना को हेय मानता है, अतएव, वह उस प्रसंग को चित्रित करने में कोई औचित्य नहीं देखता।[8] कवि 'रामचरित मानस' के अमर स्रष्टा के चरणों में प्रणतिपूर्वक अभिवादन करता है।[9]

प्रधान स्रोत के अन्तर्गत, कवि ने अपने काव्य में कवियों का ही उल्लेख किया है; परन्तु उनके ग्रन्थों का नहीं। यह उल्लेख भी भक्ति, सम्मान तथा काव्योत्कर्ष के आदर्श से

१. मैंने उर्मिला को 'जनकनन्दिनी' कहा है। कुछ मित्रों ने मुझे बताया है कि उर्मिला जनकदेव के अनुज साकाश्या के राजा कुशध्वज की पुत्री थी। इसके सम्बन्ध में मैंने बाल्मीकि रामायण देखी। उससे मुझे ज्ञात हुआ कि सीता और उर्मिला, दोनों जनकदेव की ही पुत्री थीं।

२. 'उर्मिला' प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ २, छन्द ३।

३. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ ६९, छन्द २२७।

४. वही, छन्द २२९।

५. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ ७०, छन्द २३०।

६. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६२, छन्द १५०।

७. वही, प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ ३, छन्द ४।

८. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ ७०, छन्द २३१।

९. वही, छन्द २३२।

मिश्रित है। यह कहना कठिन है कि कवि ने उपर्युक्त महाकवियों के प्रभाव को किस अंश तक ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध में कवि ने भूमिका, काव्य अथवा अन्यत्र कहीं भी विस्तार के साथ कुछ भी नहीं लिखा है। मेरा अनुमान है कि 'उर्मिला' में मौलिकता को अधिक स्थान प्राप्त होने के कारण यह प्रभाव एक सीमा तक ही माना जा सकता है। वाल्मीकि के राम की उदारता, कालिदास का प्रेमोत्कर्ष तथा तुलसी की भक्ति में अवश्य ही कवि के मानस ने रमण किया होगा।

(ख) गौण-स्रोत—गौण-स्रोत के अन्तर्गत हम उन कवियों अथवा ग्रन्थों को परिगणित कर सकते हैं जिन्होंने कवि की कथावृत्ति तथा जीवन-दर्शन को प्रकारान्तर से प्रभावित किया हो। ऐसे ग्रन्थों में उत्तररामचरित, कुन्दमाला, अध्यात्म रामायण, श्री मद्भगवद् गीता और पुराणों को समाहित किया जा सकता है। गीता को छोड़कर इन ग्रन्थों का कवि ने कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। राम-कथा के अनूठे ग्रन्थ होने के कारण सम्भवतः इनका भी किसी न किसी मात्रा में प्रभाव पड़ा हो।

भवभूति को करुण-रस का महाकवि माना गया है। 'उत्तररामचरित' में व्याप्त करुण-रस के सदृश्य 'नवीन' जी भी करुण रस को महत्व प्रदान करते हुए, उसमें क्रान्ति उपस्थित करते हैं।[१] उर्मिला को भी कवि ने करुणा की मूर्ति के रूप में ग्रहण किया है।[२] 'उत्तररामचरित' कवि के वैष्णव संस्कारों के निकट भी उभय स्थित होता है। इस कृति से कवि स्वतः प्रभावित था।[३]

राम-कथा में प्राप्त चित्रलेखन-परम्परा को भी कवि ने प्रश्रय प्रदान किया है। महाकवि भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में चित्र-प्रदर्शन द्वारा पूर्व रामचरित की घटनाओं का संकेत कराया है। कवि 'नवीन' ने भी उर्मिला से आखेटक के रूप में, लक्ष्मण को चित्रित कराकर, उसके वियोग की भूमिका का निर्माण किया है। 'नवीन' जी की कवि प्रतिभा ने चित्रलेखन के माध्यम से अधिक कलात्मक तथा नूतन तथ्य उपस्थित किया है।[४]

आचार्य दिङ्नाथ-कृत 'कुन्दमाला' का भी 'उर्मिला' पर प्रभाव बतलाया गया है।[५] यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों में कथा-साम्य नहीं है, फिर भी सम्भव है, कवि की वैचारिकता पर इसका प्रभाव पड़ा हो। 'कुन्दमाला' नाटक में वैदेही वनवास का आख्यान है जो कि 'उर्मिला' की राम-कथा के सीमा के बाहर है।

'अध्यात्म रामायण' का 'रामचरितमानस' पर भी प्रभाव पड़ा था। इस ग्रन्थ का रामानन्द मतावलम्बियों में महत्वपूर्ण स्थान है और इसमें वेदान्तदर्शन के आधार पर राम-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है।[६] 'नवीन' जी रामानन्दानुयायी न हो कर, वल्लभानुयायी

---

१. 'उर्मिला' प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ २, छन्द ३।
२. वही, प्रथम सर्ग, प्रार्थना, पृष्ठ ६ छन्द, ५।
३. श्री पन्नालाल त्रिपाठी, कानपुर से हुई प्रत्यक्ष भेंट (१३-६-१९६१) में ज्ञात।
४. 'उर्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ९८, छन्द ७८।
५. श्री पन्नालाल त्रिपाठी द्वारा ज्ञात।
६. श्री कामिल बुल्के—'रामकथा', पृष्ठ २६४।

थे। उनकी वेदान्त-दर्शन में भी आस्था थी। यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि कवि कहाँ तक इस ग्रन्थ से उपकृत हुआ। सम्भवत: विशिष्ट प्रभाव नहीं अंकित किया जा सकता।

'श्रीमद्भगवद्गीता' का कवि अनन्य उपासक था। उसका जीवन-दर्शन इस ग्रन्थ से काफी प्रभावित हुआ है। जनक के व्यक्तित्व में कवि ने गीता के गुणों को समाहित बताया है।[1] कवि ने 'गीता' की यह पंक्ति भी उद्धृत की है।[2]

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।[3]

'उर्मिला' पर पुराणों का प्रभाव भी आँका जा सकता है। उसके कथा-वस्तु के कतिपय प्रसंग पौराणिक आख्यानों से गृहीत हैं यथा, गान्धार राज की कथा।[4]

इस प्रकार, 'उर्मिला' के आधार-ग्रन्थों की विवेचना करने पर, हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि कवि ने भले ही वस्तुगत प्रभावान्विति ग्रहण न की हो, परन्तु भावगत अथवा वैचारिक लाभान्विति अवश्य ही प्राप्त की। कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति तथा आदर्श के अभिप्रेत से, नूतन स्थितियों की उद्भावनाएं अधिक की हैं और इसी कारण वह, रामायणी कथा के चर्वित चर्वण के प्रसंगों से अपने को पर्याप्त मुक्त रखता है।

नामकरण—सामान्यतया किसी कृति के नामकरण का आधार पात्र, घटना, मनोवृत्ति, समस्या अथवा स्थान होता है। आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण करते हुए, महाकाव्य के नामकरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्देश प्रदान किया है—

कवेर्वृतस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्ग नाम तु।।"[5]

एतदर्थ, साहित्यदर्पणकार के मतानुसार, प्रस्तुत कृति के नामकरण में कोई नौचित्य दृष्टिगोचर नहीं होता। कवि ने नायिका के नाम के आधार पर अपने ग्रन्थ का नामकरण किया है जो कि शास्त्र-सम्मत है। हिन्दी में यह पद्धति प्रचलित भी है। 'कामायनी'[6] 'नूरजहाँ',[7] 'पार्वती'[8] 'मीरा'[9] आदि प्रबन्धकाव्यों के नामकरण इसी प्रणाली के पुरस्कर्ता हैं।

कवि ने अपने प्रबन्धकाव्य का नामकरण 'उर्मिला' करके, उर्मिला के चरित्र को सर्वप्रधान महत्व प्रदान कर दिया है। गुप्त जी ने भी अपने अपरिसमाप्त खण्डकाव्य का नामकरण 'उर्मिला' ही किया था और 'हरिऔध' जी ने भी। साकेत के विषय में यह कहा गया है कि

---

१. 'उर्मिला' प्रथम सर्ग, पृष्ठ ६१, छन्द १८५।
२. वही, पृष्ठ ६१।
३. श्रीमद्भगवद् गीता, अध्याय ३, श्लोक, २०।
४. 'उर्मिला' प्रथम सर्ग, पृष्ठ ३३-३४, छन्द ४७, १०१।
५. 'साहित्यदर्पण' षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३२१।
६. श्री जयशंकरप्रसाद-कृत।
७. श्री गुरुभक्तसिंह द्वारा रचित।
८. श्री रामानन्द तिवारी-कृत।
९. श्री परमेश्वर द्विरेफ द्वारा रचित।

यदि वह (साकेतकार) नवीनता ही चाहता तो इस ग्रन्थ का नामकरण 'उर्मिला' करता। उर्मिला नाम देकर कवि अपना क्षेत्र छोटा बना लेता और तब यह एक खण्डकाव्य मात्र हो पाता।[१] परन्तु 'नवीन' जी ने इस कृति का 'उर्मिला' नामकरण कर, न तो अपने क्षेत्र को ही सीमित किया है और न राम-सीता का ही विस्मरण किया है। उर्मिलाकार ने लिखा है कि "इस व्याज से मेरी भारती सीता-राम और उर्मिला-लक्ष्मण का गुण गा सकी--इसी में मैं उसकी सार्थकता मानता हूँ।"[२] यह निश्चित है कि कवि ने राम-सीता की अपेक्षा लक्ष्मण-उर्मिला को अधिक महत्व प्रदान किया है। डॉ० शकुन्तला दुबे ने 'साकेत' के विषय में लिखा है कि "राम-कथा से उर्मिला का भाग्य इस भाँति लिपटा हुआ है कि उसे छोड़कर कवि आगे बढ़ नहीं सकता। अस्तु, उर्मिला प्रमुख पात्री बनकर भी प्रमुख नहीं बन पाती और कवि को बीच का मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। वह प्रबन्ध काव्य को 'साकेत' कहकर अभिहित करता है, जिससे न तो उर्मिला को प्रधानता मिल पाती है न राम-कथा को गौण रूप।[3] कम से कम उर्मिला की यह स्थिति नहीं हो पाई। इसका मूल कारण कवि का स्पष्ट उद्देश्य तथा निश्चित मार्ग-अनुसरण रहा है।

कवि ने 'उर्मिला' में उर्मिला की प्रधानता, गरिमा एवं महत्ता के विषय में, प्रारम्भ से ही स्पष्ट संकेत देने आरम्भ कर दिये हैं। कवि उसे ही अपनी भक्ति समर्पित करता है।[४]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपनी कृति के नामकरण के प्राधान्य तथा महत्ता को प्रमाणित भी किया है। उन्होंने लिखा है कि "माता उर्मिला के स्तवन की लालसा मेरी 'जीवन-संगिनी' रही है।" इस प्रबन्ध काव्य के द्वितीय सर्ग[५] चतुर्थ सर्ग[६] पंचम सर्ग[७] और षष्ठ सर्ग[८] 'श्री मातृउर्मिलाचरणकमलार्पणमस्तु' हैं। ग्रन्थ की भूमिका[९] और प्रथम सर्ग[१०] तथा तृतीय सर्ग[११] उर्मिला के आराध्य देव 'श्रीलक्ष्मणचरिणार्पणमस्ते' हैं। एतदर्थं, नामकरण की उपयुक्तता, इस तथ्य से भी सहज ही सिद्ध हो जाती है।

डॉ० नगेन्द्र ने जो बात 'साकेत' के विषय में लिखी है, वह प्रकारान्तर 'उर्मिला' पर

---

१. डॉ० कमलाकान्त पाठक—मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, महाकाव्य, साकेत पृष्ठ ४१४।

२. 'उर्मिला' श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ ज।

३. 'काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास' महाकाव्य का उदभव और विकास, साकेत, पृष्ठ ७४।

४. 'उर्मिला' प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ ४, छन्द ७।

५. वही, पृष्ठ १६६।

६. वही, पृष्ठ ३६६।

७. वही, पृष्ठ ५१६।

८. वही, पृष्ठ ६१६।

९. वही, पृष्ठ क।

१०. वही, पृष्ठ ७२।

११. वही, पृष्ठ ३४१।

भी प्रयुक्त की जा सकती है कि साकेत में जाकर राम और सीता की कहानी प्रधानत: उर्मिला की कहानी बन जाती है और उसी रूप में उसका विकास और संघटन (राम कथा की पृष्ठ-भूमि पर) होता है।[1] सिर्फ अन्तर इतना ही है कि 'साकेत' में उर्मिला को राम-कथा के सन्दर्भ में देखा गया है जब कि 'उर्मिला' में उर्मिला के सन्दर्भ में राम-कथा का आकलन किया गया है। 'उर्मिला' नामकरण करने के कारण, 'नवीन' जो को अपने काव्य में कतिपय विशिष्टताएँ उत्पन्न करनी पड़ी हैं।

प्रस्तुत नामकरण के फलस्वरूप, कवि ने अपनी काव्य-कथा का समारम्भ अयोध्या से न करके, जनक के जनपद से किया है। वह जनकपुर की नगर-सुषमा, नागरिक जीवन, प्रासाद-शिल्प तथा स्वस्थ एवं पुनीत परिवेश के गुण गाता है न कि साकेत नगरी के। उसमें साकेत-सौरभ श्रीराम के पिता महाराज दशरथ की गरिमा का नहीं, प्रत्युत् विदेह-ललना उर्मिला के पिता जनक की महिमा का प्रतिपादन है। राम-लक्ष्मण की शिशु-क्रीड़ा के स्थान पर सीता-उर्मिला की मनोहारिणी चपलताओं का आख्यान है। राम-सीता के स्थान पर कवि की कल्पना प्राय: लक्ष्मण-उर्मिला या उर्मिला के साथ ही रही है। कवि ने ऐसे प्रसंगों को ही लिया है अथवा ऐसी नवीन उद्भावनाएँ की हैं जिनका सम्बन्ध उर्मिला के साथ रहा है। परिणाम स्वरूप, कवि को रामायणी-कथा के अनेक प्रसंगों को परित्यक्त भी करना पड़ा है। मिथिला तथा अवध, दोनों ही स्थानों पर, कवि को उर्मिला को ही प्रधानता देनी पड़ी है। उर्मिला के नायकत्व अथवा प्राधान्य पर, सीता या अन्य कोई पात्र ने आघात नहीं पहुँचाया है। अभी तक उर्मिला के चरित्र को विरह-वेदना की पृष्ठभूमि में ही आँका जाता रहा है; परन्तु यहाँ 'नवीन' जी ने उसके चरित्र का पूर्ण चित्र उपस्थित किया है और उसे जीवन की पीठिका में अंकित किया है। इसीलिए, समग्र कथाचक्र के केन्द्र में उर्मिला ही प्रतिष्ठित है। अभी तक की राम-कथा की नायिका भगवती सीता, के समानान्तर कवि ने उर्मिला को खड़ा किया है और उसे इसी कारण स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। 'उर्मिला' की उर्मिला में उसके जीवन की गाथा के अश्रु-पक्ष का ही उद्घाटन मात्र नहीं है, प्रत्युत् जीवन का विलास तथा प्रखर पक्ष भी मुखर होकर हमारे समक्ष आया है।

प्रस्तुत नामकरण के कारण, कवि अपनी कृति के समग्र सर्गों में अपनी चरित्र नायिका के ही साथ रहता है परन्तु अन्तिम सर्ग में, आधुनिकता की अभिव्यक्ति और श्रीराम के भव्य स्वरूप के आकलनार्थ अल्प काल के लिए वह उर्मिला और उसके वर्तमान आवास अयोध्या को छोड़कर, लंका जा पहुँचती है। लंका में उर्मिला के न होने पर भी, उर्मिला-प्राणपति[2] तो अवश्य ही हैं। साथ ही कवि अवधपुरी का भी बार-बार उल्लेख

---

१. डॉ० नगेन्द्र 'साकेत : एक अध्ययन', पृष्ठ ६।

२. उड़ी चली चल कोशलपुर तक, बदली हो वायुगति से,
सुन, हँस कहती हैं कुछ, सीता श्री उर्मिला प्राण-पति से।
—'उर्मिला' षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६२, छन्द १५०।

करता है।[1] भगवान राम भी लंका की राजसभा में, अपने लम्बे वक्तव्य के प्रारम्भ में, उर्मिला का स्मरण करते हैं।

यह स्मरण सप्रयोजन तथा अर्थयुक्त है। लंका में भी, रावण-विजयोपरान्त उर्मिला का स्मरण, उसके महत्व तथा बलिदान की गरिमा का अंकन है। इसके अतिरिक्त, लंका से अवध की ओर प्रस्थित हो जाने पर, लक्ष्मण-सीता सम्वाद का प्रमुख विषय भी उर्मिला-स्मृति बनता है। इस प्रकार यद्यपि कथाचक्र का रंग मंच था, थोड़े समय के लिए भले ही लंका हो जाता है और उर्मिला का साकार व्यक्तित्व इस विजयोल्लास, सिंहावलोकन, सन्देश तथा हास-परिहास पूरित चित्रपट से तिरोहित हो जाता है, फिर भी उसकी महिमामय छाया सदा साथ रहती है और कवि की कल्पना, जो कि आद्यन्त कथा सुनाती है, अपने साथ उर्मिला के स्मरण-तत्व को सदा-सर्वदा प्रफुल्लित रखती है। कवि अयोध्या को छोड़कर भी, उर्मिला को नहीं छोड़ता है। 'नवीन' चाहते तो इस कथांश को सूच्य बना सकते थे परन्तु ऐसी स्थिति में राम की भव्यता, उनके जीवन-दर्शन की नियोजना, वर्तमान युग-चेतना की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति, रामकथा के उपसंहार तथा उसकी सांस्कृतिक भूमिका और लक्ष्मण-मुख से उर्मिला की अप्रत्यक्ष गरिमा-आकलन से वे वंचित हो जाते जिसके परिणाम स्वरूप काव्य का अत्यन्त प्रोज्वल पक्ष अनुपलब्ध ही रह जाता और काव्य की सीमाएँ भी संकीर्ण अथवा दुर्बल रह जातीं। साथ ही, कवि के नवीन प्रसंगोद्भावना की प्रभा भी विकीर्ण नहीं हो पाती। परोक्ष-वृतान्तों की बहुलता भी कथा-काव्य के लिए अनुपयुक्त तथा गौरवापकर्षक होती है।

यदि 'उर्मिला' नाम न रक्खा जाता तो रामायणी-कथा का अनुवर्तन करना पड़ता और अपने आधार-ग्रन्थों के शीर्षकों के सदृश्य, नामकरण करना अत्यावश्यक हो जाता। इसके फलस्वरूप, रामायणी-कथा सम्बन्धी अपने आदर्श को कवि न तो क्रियान्वित ही कर पाता और न उर्मिला की चरण-वन्दना ही कर पाता। अपने चरित्र-नायिका की प्राण-प्रतिष्ठा करना, ऐसी स्थिति में अत्यन्त दुष्कर हो जाता। काव्य में इतनी प्रचुर मात्रा में मौलिकता भी नहीं आ पाती। इसलिए 'उर्मिला' नाम देने के परिणाम स्वरूप, वह जहां एक ओर अपने अभीष्ट लक्ष्य की सम्पूर्ति कर सका है, वहाँ राम-कथा की सांस्कृतिक व्याख्या को भी सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सका है। उर्मिला की काव्यगत उपेक्षा की निवारणा तथा कथा के सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप की विवेचना 'उर्मिला' नामकरण से ही सम्भव थी। अपनी भक्ति तथा युग-चेतना का समन्वय-बिन्दु इसी आधार पर एकत्रित होता दिखाई देता है। कवि के विद्रोही

---

१. (क) अवधपुरी से लंका तक जो,
बनी एक पथ की रेखा,
जिससे होकर आर्य-सभ्यता
ने दक्षिण जन-पद देखा।

—'उर्मिला', षष्ठसर्ग, पृष्ठ ५२०, छन्द ६

(ख) कोसल नगरी ही लंका है, लंका है कोसल नगरी,
भाण्ड हुआ जल-राशि-निमज्जित, भिन्न कहाँ वापी, गगरी ?

—वही, पृष्ठ ५६३, छन्द ६२।

तथा करुणा पूरित व्यक्तित्व से राम-कथा के इसी रूप की ही सम्भावना की जा सकती है, अन्य रूप को नहीं। उर्मिला के चरित्र-गायन ने जहाँ इस कृति को प्रथम पाँच सर्ग प्रदान किये; वहाँ वन-यात्रा के सांस्कृतिक तत्वान्वेष ने अन्तिम सर्ग प्रदान किया।

'उर्मिला' नामकरण से, लक्ष्मण के नायकत्व की हानि हुई है। परन्तु कवि का लक्ष्य ही उर्मिला को प्रधानता देना था और लक्ष्मण की काव्यगत उपेक्षा का निवारण, उसका ध्येय नहीं था। उसने तो अपना समग्र ध्यान तथा काव्य-कौशल, उर्मिला की उपेक्षा दूर करने तथा उसके जीवन-चित्र को उभारने में प्रयुक्त किया है। साथ ही, 'साकेत' में 'उर्मिला' नामकरण न करने पर या 'साकेत' नाम देने पर भी, लक्ष्मण के नायकत्व पर आँच पहुँची है। एतदर्थ, 'उर्मिला' नामकरण इस दिशा में बहुत दूर तक हानिप्रद दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' के विषय में लिखा है कि "'साकेत' नामकरण के कारण उसमें समाविष्ट सम्पूर्ण कथा वर्णन-प्रधान हो गई है और घटनाएँ प्रत्यक्ष के स्थान पर परोक्ष बन गई हैं।"[1] 'उर्मिला' में भी, स्वयं कवि के मतानुसार, जो कुछ कथा-भाग है, वह गृहीत है—वर्णनात्मक अर्थात् घटना-विवरणात्मक नहीं।[2] जब कवि का राम-कथा के अनुवर्तन करने का सर्वथा ध्येय ही नहीं था, एतदर्थ, समग्र घटनाओं या विविध कथांशों के वर्णन प्रारूप का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता।

इस प्रकार सर्वतोमुखी दृष्टिकोण तथा विचार-सरणियों के आधार पर, नामकरण की सार्थकता, सारगर्भिता, औचित्य तथा प्रासंगिकता, काव्यकृति तथा उसके ध्येय के सर्वथा अनुकूल प्रतीत होती है। कवि ने अपनी प्रबन्ध कृति में, नामकरण से उत्पन्न दायित्वों तथा प्रभावों का समुचित रूप में, सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

प्रबन्ध-शिल्प

सर्ग-बन्ध—डब्ल्यू एम० डिक्सन ने सभी देशों के महाकाव्यों को एक समान बताते हुए यह कहा है कि "चाहे पूर्व हो या पश्चिम, उत्तर हो या दक्षिण किन्तु मानव भाव सर्वत्र एकरस होते हैं और सच्चा महाकाव्य जहाँ कहीं भी निर्मित होगा, उसका स्वरूप सदैव वर्णनात्मक एवं सुव्यवस्थित होगा और उसके चरित्र एवं कार्य महत् होंगे, शैली भव्य होगी, उसके कार्य एवं पात्रों के चरित्र आदर्श की ओर अग्रसर होंगे और उसका कथानक सर्वत्र अन्तर्कथाओं से सँजोया हुआ होगा।"[3]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ४२।

२. 'उर्मिला', भूमिका।

३. "Yet heroic poetry is one; whether of East or West, the North or South, its blood and temper are the same, and the true epic, wherever created, will be a narrative Poem, organic in structure, dealing with great actions and great characters, in a style commensurate with the lordliness of its theme, which tends to idealise these characters and actions and to sustain embellish it subject by means of episode and amplifications." W. H. M. Dixon—English Epic and Heroic Poetry, chap. I page 24.

सुव्यवस्थित एवं सुविन्यस्त कथानक प्रबन्धकाव्य की मूलभित्ति हुआ करता है। महाकाव्य में सुसंघटित जीवन्त कथानक[१] होना चाहिए। महाकाव्यों का सर्गबद्ध होना अत्यावश्यक बताया गया है। सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में सब आचार्य एक मत नहीं हैं।[२] आचार्य वाजपेयी जी के मतानुसार, प्रबन्धात्मकता और सर्गबद्धता को पर्याय शब्द तक माना जाता है।[३] आचार्य दण्डी का भी निर्देश है—'सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।'[४]

'उर्मिला' कवि की सर्गबद्ध रचना है और उसमें प्रबन्धत्व दृष्टिगोचर होता है। उसका प्रबन्ध-प्रवाह अव्याहत या अटूट नहीं है। कई स्थानों पर शैथिल्य आ गया है। उसमें महाकाव्योचित विस्तार का अभाव है। महाकाव्य की कथा न केवल महान्[५] ही होनी चाहिए, अपितु वह श्रेष्ठ[६] भी होनी चाहिए।

कवि ने 'उर्मिला' में रामायणी-कथा के केवल उन्हीं अंशों का चयन किया है, जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उर्मिला तथा उनके प्राण-पति लक्ष्मण से है। 'उर्मिला' की कथावस्तु छः सर्गों में वर्णित है। उर्मिला को प्रधान स्थान प्रदान करने के लिए कवि ने परम्परागत रामकथा से सम्बद्ध घटनाओं में नवीन उद्भावनाएँ की हैं।

आरम्भ—अपनी अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए, कवि ने राम-कथा का पर्याप्त शोधन किया है और उसका संक्षिप्तीकरण कर दिया गया है। वह उर्मिला की कहानी बनकर हमारे समक्ष आती है। एतदर्थ, उसका आरम्भ अयोध्या या राम-लक्ष्मण की बाल्यकालीन चपलताओं से न होकर, सीता तथा उर्मिला की अठखेलियों से होता है।

'उर्मिला' के प्रथम तीन सर्ग 'आरम्भ' के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। प्रथम दो सर्गों में उर्मिला की बाल्यावस्था से लेकर विवाह तक की घटनाओं को कथा-सूत्र में पिरोया गया है। तृतीय सर्ग में, राम के वनगमन की प्रतिक्रिया का विस्तार से वर्णन है। इसमें उर्मिला के मानसिक मन्थन, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह, सन्तुलन, आत्मनिष्ठा आदि का क्रमिक विकास के रूप में चित्रण किया गया है। साथ ही उसे, प्रियजनों की समवेदना उपलब्ध करायी गयी है।

'नवीन' जी उर्मिला के जीवन का पूरा चित्र देना चाहते थे। इस हेतु, उनके पास दो विकल्प ही थे। रामाश्रयी कथा का ग्रहण या त्याग। 'नवीन' जी ने इसके विकल्प को अंगीकृत किया। प्रस्तुत-काव्यकृति में रामायणी कथा न हो, परन्तु रामकथा तो है ही। रचनाकार ने उसे, उर्मिला के चरित्र को केन्द्र में रखकर नियोजित किया है। जहाँ तक उर्मिला के आख्यान का सम्बन्ध है, वह कृतिकार की अपनी उद्भावना है। रामकथा के प्रसंग, प्रस्तुत-काव्य में या

---

१. डॉ० शम्भूनाथसिंह, 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास', पृष्ठ ११०।

२. डॉ० प्रतिपालसिंह—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृष्ठ १६।

३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ५३।

४. आचार्य दंडी—'काव्यादर्श', प्रथम परिच्छेद, श्लोक १६३।

५. "He takes some great story, which has been absorbed into the prevailing consciousness of his people." L. Abercrombie, The Epic", page 39.

६. An epic must be a good story. The Epic, page 49.

तो निर्देश रूप में आए हैं या फिर प्रतिक्रिया के रूप में। इस प्रकार उनमें कल्पना और मनोविज्ञान का स्वर्णिम समन्वय प्राप्त होता है।

रामायणी-कथा में बालकाण्ड की कथा को यहाँ सीता-उर्मिला के बाल्यावस्था स्थान के रूप में परिणत कर दिया गया है। धनुर्यज्ञ, विवाह, राज्याभिषेक की तैयारियाँ, कैकेयी-मन्थरा सम्वाद, निषाद भेंट, दशरथ-मरण, चित्रकूटगमन, भरत-मिलाप, चित्रकूट-सभा आदि कथांशों को कवि ने त्याग दिया है।

मध्य—कथा के मध्यम भाग में चतुर्थ एवं पँचम सर्ग परिगणित किये जा सकते हैं। इनमें वियोग-जनित आकुलता की मीमांसा है। विरह मीमांसा विषयक पँचम सर्ग, कथा-प्रवाह के दृष्टिकोण से क्षेपक-सा प्रतीत होता है। 'साकेत' के सम्बन्ध में जो बात आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखी है, वह 'उर्मिला' के पँचम सर्ग पर भी चरितार्थ की जा सकती है कि नवम सर्ग में उर्मिला के विलाप का वर्णन करते हुए कवि के काव्य के कथा-तन्तु को छोड़ बैठा है।[१]

दोनों सर्गों में विरह पर चिन्तन तथा काव्य के दृष्टिकोण से विचार किया गया है। महाकाव्य का सार-स्वरूप यहीं पर ही प्राप्त होता है। काव्य के दृष्टिकोण से, पँचम सर्ग सर्वोत्कृष्ट सर्ग है परन्तु कथा का विकास यहाँ उतना ही शिथिल हो गया है।

पर्यवसान—प्रस्तुत प्रबन्ध-कृति का अन्तिम अथवा षष्ठ सर्ग वस्तु-योजना का पर्यवसान या उत्तरांश है। छठवें सर्ग में रावण-विजय, विभीषण-राज्याभिषेक, लंका की राजसभा, अयोध्या-प्रत्यावर्तन तथा उर्मिला-लक्ष्मण मिलन की घटनाओं को अंकित किया गया है। इस सर्ग में कवि ने राम के माध्यम से अपने आदर्शों तथा विश्वासों की अभिव्यंजना की है। इसी सर्ग में ही आकर, उर्मिला की कथा एवं राम-कथा का उपसंहार भी दृष्टिगोचर होता है।

अरस्तू के मतानुसार, महाकाव्य का विषय एक होना चाहिये। इसमें वैविध्य रह सकता है परन्तु इसके तल में एकता का सूत्र अनुस्यूत रहना चाहिये और कथा के आदि, मध्य और अवसान स्पष्ट होने चाहिये।[२] इस आधार पर, उर्मिला की कथा के आदि, मध्य तथा अवसान में स्पष्टता है परन्तु कथानक में प्रबन्धात्मकता का शैथिल्य प्राप्त होता है। कवि ने अपनी कथा को स्पष्ट रूप से विभाजित कर लिया है। जहाँ उसने प्रथमसर्ग में अपनी काव्य-नायिका के जनकपुरी के कौमार्य जीवन का चित्रण किया है, वहाँ द्वितीय सर्ग में उसके अयोध्या के वैवाहिक जीवन की झाँकी प्रदान की है। तृतीय सर्ग में वन-गमन की घटना का मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत किया है जिसका उसकी काव्य-नायिका के आगामी विरह-काल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये समग्र सर्ग तथा वृतान्त मिलकर, कथा तथा उर्मिला के जीवन की सबसे बड़ी साधना के शीर्ष या केन्द्र-स्थल की ओर पहुँचते हैं। चतुर्थ एवं पँचम सर्ग के केन्द्रीय भाग के तत्पश्चात् पुनर्मिलन की घटना ही काव्य-कथा तथा उर्मिला के जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि तथा फल प्राप्ति है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ५३।

२. "It should have for its subject a single action, whole and complete, with a beginning, a middle and an end."—'The Poetics of Aristotle edited with critical notes and a translation by S. H. Butcher, page 21-23.

इन तीन स्पष्ट तथा सन्तुलित सोपानों से होकर उर्मिला का आख्यान प्रवहमान होता है। इस काव्य में कथा ने सूक्ष्म रूप धारण कर लिया है और जीवनादर्श, वियोग-दर्शन, मत-प्रतिपादन आदि ने प्राधान्य प्राप्त कर लिया है।

प्रासंगिक वस्तु—प्रत्येक महाकाव्य में आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तु रहा करती है। 'उर्मिला' में लक्ष्मण-उर्मिला के वृत्त को आधिकारिक कथा-वस्तु का स्थान प्राप्त हुआ है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से, उर्मिला की समग्र कथा-वस्तु उत्पाद्य कथा-वस्तु है।

'उर्मिला' को प्रेम-कथा का स्वरूप प्राप्त हुआ है। उसमें लक्ष्मण-उर्मिला के संयोग-वियोग की कथा का ही प्राधान्य है। प्रासंगिक कथा-वस्तु के रूप में राम-सीता की कथा आती है। इससे प्रासंगिक कथा-वस्तु की परम्परागत गरिमा को कोई क्षति नहीं पहुँची है, क्योंकि कवि ने राम तथा सीता की भव्यता का स्खलन नहीं किया। साथ ही, प्रासंगिक वस्तु ने आधिकारिक कथा-वृत्त के मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं किये हैं। रामकथा की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना वन-गमन एवं लंका-विजय की, कवि ने अवहेलना नहीं की है। उसे अधिक भास्वर तथा प्रभावोत्पादक बनाने की चेष्टा की गई है।

कार्य और प्रभाव की अन्विति—सामान्यतया रामाश्रयी कथाओं का मुख्य कार्य रावण-वध रहा है। परन्तु 'उर्मिला' के कथानक तथा 'नवीन' जी के दृष्टिकोण के अनुसार, इसे प्रमुख कार्य की संज्ञा से विभूषित नहीं किया जा सकता। 'उर्मिला' की प्रेम-कथा में, मिलन, वियोग तथा पुनःसंयोग के तीन सोपान प्राप्त होते हैं। कथा में उर्मिला के वियोग को सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ है जिसका निदान संयोग ही हो सकता है। अतएव, 'उर्मिला' का प्रधान-कार्य उर्मिला-लक्ष्मण मिलन ही सिद्ध होता है। षष्ठ सर्ग की घटनाओं ने इस कार्य-सिद्धि में सहायता प्रदान की है। लंका-विजय, चौदह वर्ष के बनवास की परिसमाप्ति, विभीषण का राजतिलक, अयोध्या-आगमन, आदि की घटनाओं ने इस प्रमुख कार्य को सन्निकट लाने में, सहकारी घटकों के रूप में, कार्य किया है। इसके अतिरिक्त, 'उर्मिला' के प्रायः सभी पात्र उर्मिला की ओर ही आकृष्ट हैं और उसके चरित्र-विकास में सहायक बनकर आते हैं। सभी प्रसंगों में उर्मिला का स्मरण किया जाता है और उसे प्रमुखता प्रदान की गई है। इस प्रकार 'उर्मिला' में कार्यान्विति की उपलब्धि होती है।

प्रभाव की अन्विति के दृष्टिकोण से, उर्मिला की चरित्र सृष्टि को ही प्राथमिकता तथा शीर्षस्थल प्रदान किया जा सकता है। कवि की समग्र भावनाएँ, शक्तियाँ तथा काव्यकला, उसी के ही रूप सजाने-सँवारने, चरित्र विकसित करने और उसे शीर्षस्थल पर शोभायमान करने में जुटी हैं। उसने रामायणी कथा के परम्परागत सीता-चित्रण के अनुरूप ही अपनी नायिका के चरित्ररूपी पुष्प के विविध-पक्ष रूपी पल्लव प्रफुल्लित किये हैं। इसमें कवि को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार इस काव्य में संस्कृति व मनोविज्ञान के साथ ही साथ, चरित्र को भी प्राधान्य प्राप्त हुआ है। कवि अपने अभीप्सित ध्येय के प्रभाव-चरितार्थन में पूर्ण सफल हुआ है। उर्मिला के चरित्र की विविधमुखी संस्थापना तथा वन-यात्रा के सांस्कृतिक मूल्यांकन के वातावरण तथा प्रभाव की आत्मा को कवि ने सहृदयतापूर्वक स्थापित कर दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत-कृति अपने वाञ्छित कार्य की अन्विति तथा तज्जन्य प्रभावान्विति से आपूर्ण है।

कार्यावस्था—'उर्मिला' की रचना, परिपाटी के मार्ग पर नहीं हुई और न यह 'नवीन' जी जैसे विद्रोही तथा क्रान्तिकारी कवि से अपेक्षित ही था। अतएव, प्रस्तुत-काव्य में सन्धि तथा अवस्थाओं का अन्वेषण दुष्कर है। फिर भी, तृतीय सर्ग में गर्भ सन्धि देखी जा सकती है जहाँ जिज्ञासा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती दृष्टिगोचर होती है और कृति के प्रधान कार्य, लक्ष्मण-उर्मिला मिलन में अवरोध उत्पन्न होता प्रतीत होता है। अन्तिम सर्ग में रावण-विजय के पश्चात् फल प्राप्ति में पूर्णाशा अनुभव होने लगती है और अन्त में लक्ष्मण एवं उर्मिला का संयोग हो जाता है।

सामान्यतया हम कह सकते हैं कि रावण विजयोपरान्त लंका के उल्लसित जीवन के चित्रण से ही प्राप्त्याशा का श्रीगणेश हो जाता है और विभीषण के राज्यारोहण से नियताप्ति समझी जा सकती है। राजसभा के विवरण आदि से मिलन निश्चित रूप धारण कर लेता है। इस स्थिति में अयोध्या परावर्तन, पुष्पक विमान में लक्ष्मण सीता सम्वाद आदि भी सहायक होते हैं। तदनन्तर कार्य-सिद्ध हो जाता है। कार्यसिद्धि के रूप में ही, इसी सर्ग का अन्त लक्ष्मण-उर्मिला पुनर्मिलन के चित्रण द्वारा होता है। कार्यसिद्धि ही, काव्य-इति श्री के सूत्रों को बिखेरती है। सूत्र बिखरकर पुनः सिमट जाते हैं। कवि यदि पुनर्मिलन प्रसंग का विस्तार के साथ वर्णन करने लग जाता तो काव्य की परिसमाप्ति कदापि प्रभविष्णु नहीं बन पाती। कवि की सफलता तथा प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्त आकलन तथा झलक प्रस्तुतीकरण में निहित है।

बनवास की अवधि के समग्र प्रसंगों तथा आख्यानों को व्यक्त बना देने के कारण, कार्यावस्था की अवस्थाएँ सुस्पष्ट एवं स्वस्थ रूप में नहीं आ सकी हैं। साथ ही, रामकथा के विषय में, कवि ने पिष्टपेषित परिपाटी का अनुवर्तन नहीं किया। वह चर्वित-चर्वण का हामी नहीं। इस नाते, शास्त्रीय स्थितियों को काव्य में प्रश्रय प्राप्त नहीं हुआ।

निष्कर्ष—किसी भी रचना का मूल्यांकन उसकी समसामयिक परिस्थितियाँ तथा प्रवृत्तियों की पीठिका में करना समीचीन तथा युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। 'नवीन' जी की काव्य-चेतना के प्रधान अंकुर क्रान्ति, करुणा तथा प्रणय हैं जिनसे प्रस्तुत कृति का प्रबन्ध-शिल्प उद्भूत हुआ है।

कलात्मक दृष्टिकोण से, 'नवीन' जी अनुभूति की स्वच्छ अभिव्यक्ति के अनुगायक हैं। वे स्वयं अपने को चित्रण की अपेक्षा स्पन्दन का कवि अधिक मानते हैं।[1] अनुभूति की यह झलक ही, 'उर्मिला' के प्रबन्ध-शिल्प की महत्वपूर्ण विशिष्टता है। वह इसीलिये अपने काव्य को 'स्पन्दन मात्र'[2] ही मानता है।

उर्मिला की कथा को प्रबन्ध-अविकरण से आच्छादित करने में 'नवीन' जी के दो लक्ष्य हैं—(क) उर्मिला का सम्पूर्ण और सर्वांगीण चरित्र-चित्रण और (ख) राम-कथा के मुख्याख्यानों की नवल सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत करना। राम-कथा की प्रधान घटनाएँ हैं—(क) राम-वनगमन तथा (ख) राम द्वारा वैदेही का परित्याग। प्रस्तुत काव्य-प्रबन्ध की सीमाओं में द्वितीय घटना नहीं आती। उर्मिला के जीवन तथा विरह-साधना का सम्बन्ध प्रथम घटना से है। इसीलिए हम देखते हैं कि उर्मिला के सर्वांगीण चरित्र-विकास के लिए कवि ने

---

१. **'उर्मिला' षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६१८।**

२. **वही, प्रथम सर्ग, प्रोत्साहन, पृष्ठ ४, छन्द ६।**

प्रथम पाँच सर्ग प्रदान किये और राम-कथा की सांस्कृतिक तथा युगीन व्याख्यार्थ, अन्तिम सर्ग की नियोजना की गई। इस प्रकार कवि ने अपने सर्वोपरि तथा सर्वप्रधान लक्ष्य को ही काव्य के अधिकांश भाग में प्रसार दिया है। इसमें प्रबन्ध तथा गीत शैली का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। प्रथम सर्ग से तृतीय सर्ग तक प्रबन्ध धारा प्रवहमान है। चतुर्थ एवं पँचम सर्ग में गीत-शैली मुखर हो पड़ी है और षष्ठ सर्ग में दार्शनिक विश्लेषण ने अपना तपोवन बना लिया है।

इस प्रकार राम-कथा में से उर्मिला के चरित्र को ही लेकर कवि गतिशील हुआ है। इस प्रकार, एक पार्श्व को लेकर चलने से, सामान्यतया, काव्य में खण्डकाव्यत्व की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु यहाँ हम देखते हैं कि 'नवीन' जी ने उर्मिला के जन्म से लेकर विवाह, संयोगावस्था के प्रेम-विलास पूर्ण वृत्त, पति-वियोग जन्य चौदह वर्षों की विरह-साधना, पुर्नमिलन आदि विषयों को गृहीत कर, काफी दीर्घावधि तथा लम्बी कथा को काव्य के आलिंगन में ले लिया है; इसलिए ऐसा नहीं हो पाया है।

डॉ० गोविन्दराम शर्मा ने लिखा है कि "जहाँ तक कथावस्तु के विकास का सम्बन्ध है, 'उर्मिला' की कथावस्तु में प्रबन्धकाव्योचित घटना-विस्तार, विविध प्रसंगों में सम्बन्ध निर्वाह और कथानक में धारावाहिकता नहीं पाई जाती। प्रथम तीन सर्गों में तो कथावस्तु का निर्वाह कुछ अच्छा हुआ है, किन्तु अन्तिम तीन सर्गों में कथासूत्र छिन्न-भिन्न हो गया है। चतुर्थ और पँचम सर्ग में केवल विरह वर्णन को स्थान दिया गया है, उनमें घटनाओं का सर्वथा अभाव है। पँचम सर्ग में ब्रजभाषा को अपनाते हुये कवि ने दोहा और सोरठा छन्द को स्थान दिया है। यहाँ तो प्रबन्धात्मकता सर्वथा लुप्त हो गई है।"[1] षष्ठ सर्ग पृथक् सी प्रीति प्रदान करता है। डॉ० अवस्थी के मतानुसार, प्रबन्ध में जिस बन्ध की आवश्यकता होती है, घटनाओं, परिस्थितियों एवं मनःस्थितियों के जिस क्रम अथवा शृंखला की आवश्यकता होती है, उसका प्रस्तुत-ग्रन्थ में प्रयोग कम से कम हुआ है।[2]

'उर्मिला' में प्रबन्धात्मक विषयक कतिपय दोषों के होते हुये भी, अनेक गुण भी हैं। उसके कथानक के काव्य-सौष्ठव को हमें नव निर्माण के परिक्षेत्र में देखना चाहिये न कि परिपाटी पोषण की दिशा में। हिन्दी में प्रथम बार इतने विशद तथा भास्वर रूप में उर्मिला की प्राण-प्रतिष्ठा तथा प्रशस्त चारित्रिक विकास को शीर्षस्थान प्राप्त हुआ। इस ख्यातवृत्त में कवि ने नवनवोन्मेषकारिणी प्रसंगोद्भावनाओं द्वारा अपनी उर्वरा सूझ-बूझ का दिग्दर्शन किया है। कई पुराने प्रसंगों को नूतन तूलिका से अंकित किया है और नये रंग भरे गये हैं। मनोहारी कथोपकथन, उच्चादर्शन, प्रकृति चित्रण, मनः संघर्ष, काव्य कमनीयता आदि को देखते हुये, उर्मिला के प्रबन्ध-शिल्प विषयक दोष क्षम्य हैं। यद्यपि प्रस्तुत कृति में रामकथा के विस्मृत, उपेक्षित तथा परित्यक्त प्रसंगों, पात्रों तथा गतिविधियों पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है, परन्तु फिर भी रामायणीय कथा के किसी भी प्रसंग की अवमानना या अवमूल्यन

---

१. डॉ० गोविन्दराम शर्मा 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य', एकादश अध्याय, अन्य महाकाव्य, उर्मिला, पृष्ठ ४३६।

२. डॉ० देवीशंकर अवस्थी—'कल्पना', उर्मिला, जून, १९६०, पृष्ठ ६२।

दृष्टिगोचर नहीं होता। कैकेयी के महत्व की आभा द्विगुणित लक्षित होती है। रामायण के राम तथा सीता की उत्कर्षशीलता तथा पावनता में रंचमात्र अन्तर नहीं आ पाया है, बल्कि उनकी प्रभा और अधिक प्रभावोत्पादक प्रतीत होती है। इसलिए, इस काव्य में रामायण के प्रमुख अंगों का गौणत्व, दोष की सृष्टि न करके, नूतन चरित्र-सृष्टि, नवल उद्‌भावना, सांस्कृतिक सर्वेक्षण तथा मर्मस्पर्शी काव्य-सृजन के घटकों का वितान तानता है।

'उर्मिला' के प्रबन्धशिल्प की एक उत्कृष्ट विशेषता, यह भी परिलक्षित होती है कि समग्र काव्य के प्रधान अवयवों के राज-पथ में अप्रधान घटकों ने अवरोध उत्पन्न करने अथवा काव्य-बन्ध को भंग करने की चेष्टा नहीं की। साकेत में यह दोष उभर कर आ गया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "यदि मैथिलीशरण जी अनाकांक्षित प्रसंगों का विक्षेप न डालकर केवल लक्ष्मण-उर्मिला के चरित-निर्माण में अपनी पूरी प्रतिभा सन्निहित करते तो 'साकेत' की समीक्षा कुछ दूसरे ही शब्दों में की जाती, परन्तु वैसा सम्भव नहीं हो सका।"[1] नवीन जी 'उर्मिला'-चरित्र की ओर एकोन्मुख तथा एकाग्र चित्त से गतिशील हैं। 'साकेत' में राम की कथा उर्मिला की कथा को अभिभूत करती दृष्टिगोचर होती है। 'उर्मिला' के प्रबन्ध शिल्प में और चाहे अनेकानेक दोष हों, परन्तु इस दोष को कवि ने अपने पास फटकने भी नहीं दिया है।

इस प्रकार 'उर्मिला' में प्रबन्ध-धारा के शैथिल्य, शास्त्रोक्त स्थितियों की अनुपलब्धि या अस्पष्टता और मानवीय पक्ष की अपेक्षा दर्शनाभास की अधिक मुखरता के होते हुए भी, भाव-जगत् की नूतन कान्ति तथा अभिनव साहित्यिक प्रतिमान की श्रेष्ठ परिचर्या प्राप्त होती है।

वस्तु-विन्यास—प्रथम सर्ग—कवि की कल्पना राजप्रासाद में प्रविष्ट होती है जो कि सीता-उर्मिला की पैजनियों की झंकृति से गुंजायमान हो रहा है। प्रारम्भ में कवि ने उनके रूप, सौन्दर्य, अलंकार आदि का हृदयहारी वर्णन किया है। राजा जनक के प्रांगण में, दोनों बहिनें क्रीड़ारत रहती हैं। उर्मिला कनिष्ठा होने के कारण, सदा जिज्ञासा करती है और सीता अग्रजा होने के कारण, समाधान की चेष्टा करती है। खेल ही खेल में वे उपवन में चली जाती हैं और वहाँ कवि ने प्रकृति का, विदेह ललनाओं के सापेक्ष्य में, वर्णन किया है। बात ही बात में, परस्पर कहानी कहने की होड़ लग जाती है। उर्मिला के आग्रह तथा बड़ी होने के कारण, सीता ही सर्वप्रथम इस प्रतिस्पर्द्धा का समारम्भ करती है।

सीता अपनी कहानी में गान्धार जनपद के आख्यान को प्रस्तुत करती हैं। वह गान्धार देश की लावण्यमयी प्रकृति का ललित चित्र खींचती है जिसे सुनकर उर्मिला भी विह्वल हो जाती है। कवि ने वन्य-जीवन के चित्रों के माध्यम से, भावी वन-यात्रा की भूमिका बना दी है जिसमें सीता की मूर्ति प्रतिस्थापित होती है और उर्मिला लालायित ही रह जाती है।

गान्धार नरेश के एक पुत्र तथा पुत्री रहती है। पुत्री अत्यन्त सुन्दरी थी। पड़ोस के अनार्य राजा ने उसे पुत्र-वधू बनाने के लिए, गान्धार पर आक्रमण कर दिया। राजा तथा राजकुमार रणांगण में, छलबल से, बन्दी कर लिये गये। राजकुमारी ने स्वयं वीरांगना का

१. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ ४६।

रूप धारणकर, अपने देश को जागृत किया। आर्य-बालाएँ तथा सैनिक-गण युद्ध में जूझ पड़े, अनार्य राजा का परास्त होना पड़ा और गान्धार नरेश तथा राजकुमारी को मुक्ति प्राप्त हो गई। इस प्रकार सीता की कहानी में, प्रकृति-चित्रण के साथ ही साथ वीरत्व तथा शौर्य के गुण भी सम्मिलित हैं।

अब उर्मिला की बारी आई। वह भी वन्य-जीवन के एक आख्यान को प्रस्तुत करती है जिसमें कपोत-कपोती की गाथा निहित रहती है। वह भी वन्य-प्रदेश के मनोरम चित्र चित्रित करती है जिन्हें सुनकर सीता, उर्मिला को 'वन देवी कल्याणी' की उपाधि से व्यंजित करती है। यह तो समय का ही व्यंग्य रहा कि वन्य-दृश्यों की मधुर गायिका और लालायिता उर्मिला, अवसर आने पर, वन देवी बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकी और अपनी आख्यायिका की कपोती का प्रतिरूप मात्र बनकर ही रह गई।

कपोत, अपनी प्राण-प्रिया कपोती के समक्ष कुछ काल के लिए, स्वयं आत्म-चिन्तन हेतु, निर्जन वन में जाने की बात करता है। कपोती दुखी होकर स्वयं साथ जाने की बात का आग्रह करती है, परन्तु कबूतर इसे अस्वीकार कर, चला जाता है। अन्ततः दिन-रात प्रतीक्षा करते-करते, वह कबूतरी वियोग-वह्नि में भस्मीभूत हो गई और उसने इहलोक-लीला पूरी कर दी। सीता अधिकार रक्षा तथा कर्तव्य पालन में पूर्ण विश्वास रखती है।[1]

सीता तथा उर्मिला का चरित्र दो विन्दुओं पर समानान्तर विकसित होता दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत कथा सम्वाद कवि के प्रबन्ध-शिल्प का उत्कृष्ट दृष्टान्त है। इसमें भावी घटनाओं के पूर्व संकेत, दोनों के चरित्र की तुलना, एक साथ अंकित है। कवि ने चरित्रों के विकास की बारीक रेखाएँ प्रस्तुत कर दी हैं। सीता गम्भीर है, उर्मिला चंचल है। एक दृढ़ है परन्तु दूसरी अतिशय कोमल। 'कपोत-कपोती' की कथा का 'नाटकीय व्यंग्य'—(Dramatic Irony) आगे चलकर चरितार्थ होता है।

आगे चलकर, यही प्रसंग, दोनों के विवाह का कारण-सूत्र बनता दिखाई देता है। जब वे दोनों उपवन से पुष्प-चयन के कार्य को समाप्त करके, जनकालय में माँ के पास पहुँचती हैं तो दोनों में विवाद उत्पन्न हो जाता है। सीता जीवन में शौर्य, कर्तव्य तथा आशा को महत्ता प्रदान करती है; परन्तु उर्मिला निष्ठा, करुणा तथा सहिष्णुता को।

इसके पश्चात् की घटनाएँ, माँ के प्रस्तुत उपदेश को उर्मिला के जीवन में चरितार्थ करती गतिशील होती हैं। उर्मिला नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ करती है। वह अपनी माँ से पूछती है कि तुम पिता के आने पर मुस्कराती क्यों हो और सोल्लास उनके गले में माला क्यों पहनाती हो? आगे वह पति तथा विवाह के प्रति भी अपनी उत्सुकता प्रकट करती है। माँ समाधान का प्रयत्न करती है कि जनकदेव आ जाते हैं। बात ही बात में राजा-रानी; अपने दोनों पुत्रियों के विवाह की बात तय कर लेते हैं और विवाह हो भी जाता है। विवाह सम्बन्धी घटनाओं का संकेत भर ही कवि देता है।[2]

इसके पश्चात्, कवि की कल्पना तीव्र गति से साकेत के उल्लसित वातावरण में विहार

---

१. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ५, छन्द १३८-३६।

२. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ६६, छन्द २२६।

करने लगती है। वहाँ पहुँचने के पूर्व वह विदा-समारोह की एक हल्की झलक अवश्य ही दे देती है ! पट-परिवंतन की अग्रिम सूचना देकर, कवि पूर्व पीठिका का निर्माण कर लेता है।[1]

इस प्रकार प्रथम सर्ग रोचकता, मर्मस्पर्शता, कथा-कमनीयता तथा शिल्प-उत्कर्ष से सम्पन्न है। घटनाएँ एक के बाद एक, क्रमागत गर्भ से निकलती चली जाती हैं। कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आ पाई है। प्रबन्ध-धारा अपने पूर्ण सौरस्य के साथ भागती दिखाई पड़ती है। आगत दृश्यों के सूत्र भी विगत घटनाओं में से कभी-कभी अपना अवगुण्ठन खोल देते हैं। कवि की सफलता यहीं अपना विलास करती है।

द्वितीय सर्ग—चारों वधुओं के स्वागतार्थ सारी अयोध्या का प्रफुल्ल वातावरण थिरक उठता है। सभी दूर उत्सव मनाये जा रहे हैं। कौशलेन्द्र दशरथ की राजसभा में गणिकाएँ सस्वर नृत्य करती हैं। इस प्रकार राज तथा जन-समाज आनन्दोल्लास से झूम उठता है। सरयू के तट पर एक विशाल जनसमारोह का आयोजन होता है। इस समारोह में नगर भर की नारियाँ भाँति-भाँति से उर्मिला के सौन्दर्य, वाक्-चातुर्य आदि पर टिप्पणियाँ करती हैं। यहाँ से कवि की कल्पना दशरथ के वैभवपूर्ण भव्य-प्रासाद में प्रविष्ट होती है, जहाँ चारों वधुओं की आभा फैली पड़ी है। प्रासाद में प्रवेश प्राप्त करने के पूर्व, कवि सरयू को भी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

राज-प्रासाद में अपनी प्यारी वहू उर्मिला को प्राप्त कर, सुमित्रा फूली नहीं समा रही हैं। उर्मिला में 'नवमृगया प्रेमी' शीर्षक चित्र का निर्माण किया है। उसका अर्थ देवर शत्रुघ्न के लिए अगम्य रहता है। दोनों में कला के प्रसंग पर विवाद उठ खड़ा होता है। कला तथा ललित कला के स्वरूप तथा आविर्भाव पर उर्मिला अपने विह्वल विचार प्रकट करती है। प्रकारान्तर से कवि ने कला विषयक अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। चित्र क ास्पष्टीकरण करते हुए उर्मिला बताती है कि आखेटक और कोई नहीं स्वयं लक्ष्मण हैं।[2]

यहाँ पर भी नाटकीय व्यंग्य (Dramatic Irony) का बारीक तन्तु सक्रिय है। यह एक प्रकार से भावी-वियोग के प्रति कवि का एक कलागत संकेत है। भावी निश्चयात्मिका-वृत्ति के भी इसमें दर्शन प्राप्त होते हैं।[3]

इसके पश्चात् देवर, ननद तथा भाभी के हास-परिहासमय-संवाद की सृष्टि की गई है। इन नोक-झोंकों में कथा अग्रसर होती रहती है।

विन्ध्य-वनयात्रा के सौन्दर्य में, कवि प्रकृति का अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा उद्दीपक रूप प्रस्तुत करता है। वसन्त का वातावरण यौवन तथा मादकता की सृष्टि करता है। वन्य-प्रदेश में बनी उटज में विलास का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।[4] लक्ष्मण को भावीजीवन में, चौदह वर्ष तक निद्रा से ही युद्ध करना पड़ता है।

---

१. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ७०, छन्द २३३।
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १०४, छन्द १०६।
३. वही, पृष्ठ १०४, छन्द १०७।
४. वही, पृष्ठ १२६, छन्द ३६।

इसी विलासमय वातावरण में, दोनों में प्रेम की मांसलता और आध्यात्मिकता पर विवाद उठ खड़ा होता है।[1] अन्त में, दोनों एक समान विन्दु पर एकत्रित हो जाते हैं कि एक-दूसरे के लिए आत्म-विसर्जन में ही दाम्पत्य-जीवन का सार निहित है।[2] इस प्रकार मिलन और आत्म-विसर्जन की पूर्व-पीठिका पर ही कवि, भावी विरह का विवेचन करता है। इसके बाद वे एक-दूसरे में घुल-मिल जाते हैं।

प्रस्तुत वन-यात्रा विशिष्ट अभिप्राय से अंकित की गई है। प्रथम बात तो यही है कि इससे लक्ष्मण की वन-यात्रा का पूर्वाभास प्राप्त हो जाता है। द्वितीय बात सान्त्वना की है। इस वन-प्रसंग-योजना से, कम से कम उर्मिला में, यह धैर्य एवं सन्तोष विद्यमान रहेगा कि उसने भी कभी अपने प्रियतम के साथ वन-विहार किया था। द्वितीय सर्ग के अन्त में कवि आगामी घटनाओं की सूचना देकर, कथा-तारतम्य को विकसित कर देता है।[3]

प्रस्तुत सर्ग में भी प्रबन्ध कला का उत्कृष्ट परिचय प्राप्त होता है। भावी घटनाओ का कवि, कलापूर्ण संकेत देता चला जाता है। हास-परिहास तथा दाम्पत्य-जीवन के मधुर चित्रों की ललित-पीठिका पर आगामी सर्ग के वन-गमन की तैयारी का कथा-वृत्त, नियति के निर्मम व्यंग्य सी प्रतीत होने लगती है।

तृतीय सर्ग—तृतीय सर्ग वेदना, करुणा, अश्रु तथा अन्तर्द्वन्द्व से प्रारम्भ होता है। कवि ने रामवनगमन की दुखद घटना की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। फिर भी यह शोक, उर्मिला का अपना शोक है, उसमें सर्वसाधारण का हाहाकार नहीं है।

'नवीन' जी ने राम-कथा का आकलन सांस्कृतिक धरातल पर किया है, गुप्त जी की भाँति पारिवारिक संस्पर्शों में नहीं। राम का बनवास, दक्षिण में आर्य-संस्कृति के प्रचारार्थ था, एतदर्थ इस कृति में अयोध्या के विलाप का दृश्य अनुपलब्ध है। लक्ष्मण दुखी उर्मिला को विस्तार से समझाते हैं और अपने वन-गमन के समग्र ध्येय तथा तत्वों का विश्लेषण करते हैं।

उर्मिला विद्रोह की वह्नि से प्रज्वलित हो जाती है। वह चिर परीक्षिता तथा चिर प्रतीक्षिका होते हुए भी, कैकेयी के अन्याय को चुपचाप नहीं सहन कर सकती। वह अपने गृह के अन्याय से संघर्ष करने को अधिक महत्व प्रदान करती है, अपेक्षाकृत बाहर आर्य-संस्कृति के प्रचार से। उसके इस तेजोद्दीप्त विप्लव में, भारतीय संस्कृति की यशोलिप्सा तथा दुर्बलता मानो साकार रूप धारण कर बैठी है। वह विद्रोह तथा विद्रोही की आशंसा करती है।[4] इस प्रकार उर्मिला भावावेश में, अपने विचारों को प्रकट करती है और अन्त में अपने वियोग के मर्म पक्ष का भी उद्घाटन करती है।

लक्ष्मण अपने प्रत्युत्तर में उर्मिला के विद्रोही स्वर की पुष्टि करते हैं, परन्तु कैकेयी

---

१. उर्मिला, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १३२, छन्द ६४।
२. वही, पृष्ठ १४३, छन्द ६४।
३. वही, पृष्ठ १६५, छन्द २।
४. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २५२, छन्द १६५।

के प्रति उसके आक्षेप तथा दोषारोपण का अनुमोदन नहीं करते। उनके मतानुसार, विवेकशीला कैकेयी के इस वनवास सम्बन्धी प्रस्ताव में सांस्कृतिक उद्देश्य निहित है। लक्ष्मण युग-दायित्व का विश्लेषण करते हैं और उर्मिला के समक्ष अपने अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। उर्मिला सहर्ष स्वीकार कर लेती है और महत् लक्ष्य की सिद्धि हेतु, वियोग-साधना में तपने के लिए पूर्ण तत्पर हो जाती है। लक्ष्मण भी यह अनुमति प्राप्त कर नवल-स्फूर्ति महसूस करने लगते हैं।

इसके पश्चात् सीता-उर्मिला संवाद में इसी विषय की चर्चा चलती है और सीता उर्मिला के महान् त्याग की सराहना करती है। करुणाप्लावित वातावरण में, राम का आगमन, नूतन विचार-वीथिका का निर्माण करता है। श्रीराम, आत्मदान-यज्ञ की वेला में, भावना से कर्त्तव्य को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। उर्मिला अपने ज्येष्ठ के प्रति अपनी समग्र आस्था को उड़ेल देती है।

परिवार की इस विह्वल मण्डली में, सुमित्रा भी आ, सम्मिलित होती है। राम उनकी स्तुति करते हुए, अपनी भक्ति को उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं। सुमित्रा-राम-सीता-लक्ष्मण संवाद में निष्ठा, मर्यादा, प्रतिज्ञा, कर्तव्य, संकल्प आदि की वृत्तियों ने अपने पल्लव खोले हैं। सुमित्रा के प्रति अपनी अनन्य भक्ति-प्रदर्शित कर और अपने महान् लक्ष्य को हृदय में दृढ़तापूर्वक धारण कर, राम-सीता-लक्ष्मण की मण्डली वन के लिए प्रस्थित हो जाती है।

इस सर्ग में कथा में मनोविज्ञान का मांसल पक्ष, उभर कर, हमारे समक्ष आया है। कवि ने वन-गमन की घटना के प्रति प्रमुख पात्रों की प्रतिक्रियाओं का विशद विवेचन किया है। इससे कई प्रयोजन सिद्ध होते हैं। एक ओर जहाँ सभी पात्रों ने उर्मिला के प्रति सहानुभूति प्रकट की है और उसके महान् बलिदान की मुक्तकण्ठ से स्तुति गाई है, वहाँ वन-गमन के नूतन कारण भी आलोक में आये हैं और कथा को मनोवैज्ञानिक रूप भी प्राप्त हो गया है। आर्य-संस्कृति के प्रसार के नूतन-तत्व ने वन-गमन की दाहकता को न्यून कर दिया है और वातावरण, भावना की अपेक्षा कर्त्तव्य रूपी सूत्रधार के हाथों आता दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत सर्ग में प्रबन्ध-शिल्प का उभार दर्शनीय है।

चतुर्थ सर्ग—चतुर्थ सर्ग में कथा का अभाव है। कवि ने विरह-मीमांसा को सर्व-प्राधान्य रूप प्रदान किया है। भावना विविधमुखी होकर तरंगायित हो उठी है। उपालम्भ, अश्रु, आत्मविस्मृति प्रभृति अनेक भावनाएँ वेदना के सागर में डूबती-उतराती दृष्टिगोचर होती हैं। समग्र प्रकृति व्यथा से आपूर्ण है।[1]

अन्त में जाकर, निराकार वातावरण कुछ साकार होता है। कथा के पात्र उभरते हैं। सास-बहू का क्षणिक दर्शन देकर, कवि की कल्पना पुनः वेदना के सागर की ओर उन्मुख हो पड़ती है।[2]

प्रस्तुत सर्ग में प्रबन्धात्मकता समाप्त हो गई है और कथानक अत्यन्त विरल हो गया है। इसमें प्रबन्धशिल्प का अत्यन्त अभाव है।

---

१. **'उर्मिला', चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ३५१, छन्द १६।**

२. **वही, पृष्ठ ३६५, छन्द १०३**

पँचम सर्ग—यह सर्ग भी वेदना-मण्डित है। दोहा-शैली का प्रयोग किया गया है। प्रबन्ध कल्पना की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं। इसे खड़ीबोली का स्वतन्त्र विप्रलम्भ दोहा-कोश की मान्यता प्रदान की जा सकती है। इस सर्ग की शैली से, कवि के प्राचीन काव्य-संस्कारों तथा तज्जन्य प्रभावों का परिचय मिलता है। इस 'उर्मिला-सतसई' ने ब्रजभाषा की सतसई परिपाटी में एक नूतन पुष्प की श्रीवृद्धि की है।

साकेत की उर्मिला के समान, 'उर्मिला' की उर्मिला भी अपने विगत दिनों का स्मरण करती है। वह धनुष यज्ञ[१] तथा पाणिग्रहण[२] की स्मृति करती है।

उर्मिला के अतिरिक्त, कवि ने अन्य पात्रों को भी शोकाभिभूत बतलाया है। माता सुमित्रा तथा बन्धु भरत की दशा दयनीय है।[3] दशरथ मरण की सूचना भी दे दी जाती है।[४]

इस प्रकार इस सर्ग में उर्मिला विरह-वर्णन को प्रमुखता मिली है। उर्मिला के वियोग को कवि ने मानवता की भूमिका प्रदान कर दी है।[५]

यह सर्ग काव्य की दृष्टि से जितना उपादेय है, प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से उतना ही अनुपादेय। प्रबन्ध धारा टूट-फूट गई है। कथानक समाप्त हो गया है।

षष्ठ सर्ग—प्रस्तुत सर्ग में कवि की कल्पना, वेदना तथा भावना के गहन काव्यमय वातायान से निकलकर, कथा के धरातल पर उभरती है और दार्शनिक ऊँचाइयों को स्पर्श करने लगती है। रावण-वध हो चुका है। लंका-विजय का कार्य सम्पन्न हो गया है। कवि राम के युग-प्रवर्तनकारी व्यक्तित्व की स्तुति करता है।

लंका में विजयोल्लास मनाया जा रहा है। कवि के मतानुसार लंका पराजिता न होकर, सत्जिता है। श्रीराम के जय जयकार से सारा वातावरण गुंजायमान है। सारा दुर्ग नव-वधू की भाँति शृङ्गार कर उठा है।

विभीषण की राजसभा में राजा-प्रजा, सभी पुलकायमान हैं। मध्य में नरपति विभीषण रानी मन्दोदरी सहित सिंहासनारूढ़ हैं। उनकी दाहिनी ओर वैदेही सहित रघुपति विराजमान हैं और वाम-पक्ष में रखे सिंहासन पर किष्किन्धेश्वर सुग्रीव प्रतिष्ठित हैं। स्वस्तिपाठ के अनन्तर, श्रीराम अपना वक्तव्य देते हैं। वे अपने इस वक्तव्य रूपी श्वेत-पत्र में कई बातों का विवेचन करते हैं। राम-रावण के युद्ध को वे व्यक्तिगत न कहकर आत्मवाद तथा साम्राज्यवाद के संघर्ष के रूप में निरूपित करते हैं। यह वास्तव में साम्राज्यवाद के विरुद्ध व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का युद्ध है। भौतिकवाद का द्वन्द्व आध्यात्मिकवाद से होता है। वे अपनी यात्रा का उद्देश्य जन-सेवा बताते हैं न कि रक्त-पिपासा या नृशंसता।

श्रीराम इस बात पर शोक प्रकट करते हैं कि रावण-विजय में उन्हें हिंसा का आश्रय लेना पड़ा। उनकी सबसे बड़ी पराजय तो यही है कि वे रावण का हृदय-परिवर्तन नहीं कर

---

१. 'उर्मिला', पँचम सर्ग, पृष्ठ ४९८, छन्द ६०० ।

२. वही, पृष्ठ ५००, छन्द ६१०-६११ ।

३. वही, पृष्ठ ४८५, छन्द ५१८ ।

४. वही, छन्द ५२२ ।

५. वही, पृष्ठ ४८६, छन्द ५२७ ।

सके। वे यह भी निरूपित करते हैं कि रावण मरा नहीं है, वह मर कर अमर हो गया है। उनके मतानुसार, रावण वस्तुतः प्राकृत उपादान है और उसका मरण असम्भव है। रावणत्व के विरुद्ध सतत तथा चिरन्तन संघर्ष ही, मानवता के प्रगति-पन्थ को प्रशस्त कर सकता है। वे अन्धविश्वास, पार्थिव-प्राप्ति, अर्थवाद आदि के विरोध में भी अपना मत प्रतिपादित करते हैं। वे आशा, शक्ति, विप्लव, सद्ज्ञान आत्म-हवन, कर्त्तव्योन्मुखता, श्रद्धा, सतत साधना, त्याग, संस्कृति निष्ठा आदि के सूत्रों को भी अपने भाषण में बिखेरते हैं। वे देशकाल की सीमाएँ तोड़कर, विश्व मानवतावाद के अनुपोषक हो जाते हैं। उत्तर-दक्षिण के गठ-बन्धन के निःश्रेयस की प्राप्ति को, वे महान् उपलब्धि मानते हैं।

लंकेश्वर विभीषण अपने भाषण में राम तथा सीता की वन्दना करते हैं। वे नये युग के सूत्रपात तथा उसकी विशेषताओं की विवेचना करते हैं। विभीषण के तत्पश्चात्, वानरपति सुग्रीव अपने संक्षिप्त वक्तव्य में राम के कार्यों की महत्ता का आकलन करते हैं। विभीषण के राजतिलक के पश्चात् अयोध्या, परावर्तन का घटना-क्रम प्रारम्भ हो जाता है।

लंका से प्रत्यावर्तित होते समय, पुष्पक विमान में, देवर-भाभी में, परिहासमय सम्वाद शुरू हो जाता है। सीता, विनोद में उर्मिला की बात छेड़ देती है, लक्ष्मण-उर्मिला का महत्वांकन करते हैं और कहते हैं कि उसी की स्मृति ने उन्हें अपने कर्त्तव्य-पालन में एकोन्मुख तथा दत्त-चित्त रखा। लक्ष्मण, सीता के गुणों का गायन करते हैं और राम लीला की प्रशस्ति। वे अपनी परवर्ती स्थिति का भी विश्लेषण करते हैं जिसमें आत्म-दर्शन तथा स्थिरता के तत्व प्रमुख हो जाते हैं।

अयोध्या लौटने पर, कवि, राम के स्वागत की धूमधाम पर मूक है।[1] इस प्रसंग में वह केवल लक्ष्मण-उर्मिला मिलन का संकेत करता है। इसे वह मिलन के रूप में नहीं, आत्म-दर्शन के रूप में ग्रहण करता है। वे अब दोनों साधक से सिद्ध हो गये हैं। कवि, मिलन को भी विस्तार प्रदान नहीं करता।[2] लक्ष्मण-उर्मिला की व्यष्टि की पृथक्-पृथक् सीमाएँ, अब परस्पर की समष्टि में गुँथकर, तिरोहित हो गई हैं। लक्ष्मण-उर्मिला मिलन से कवि, अपने काव्य की इतिश्री करता है।

प्रस्तुत सर्ग में प्रबन्धात्मकता को पुनर्जीवन प्राप्त होता है। यद्यपि इस सर्ग का उर्मिला की कथा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध बहुत दूर तक स्थापित नहीं होता, फिर भी रामकथा की सांस्कृतिक विवेचना तथा राम-रावणत्व की नूतन तथा बुद्धिसम्मत व्याख्या और नायक-नायिका के अन्त के क्षणिक किन्तु शाश्वत प्रभविष्णु मिलन-संकेत, इस सर्ग के महत्व को कम नहीं होने देते हैं। इस सर्ग में गान्धीवादी युग-चेतना को भी वाणी मिली है।

इस प्रकार, प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य के वस्तु-विन्यास में अनुभूति की प्रधानता है। उसके कथानक की एक विशेषता यह भी है कि सारी कथा कवि न कहकर, उसकी कल्पना कहती है। प्रायः प्रत्येक सर्ग में कवि ने कई बार अपनी कल्पना को सम्बोधित, प्रेरित तथा गतिशील किया है।

---

१. 'उर्मिला', पंचम सर्ग, पृष्ठ ६१८-६१९, छन्द २००-२०१।

२. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६१८, छन्द, २०२।

काव्य में कथानक का तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है जिसके कारण उसके प्रबन्ध काव्यत्व पर आरोप किया जा सकता है। परन्तु आज के बुद्धिवादी युग में प्रबन्ध-काव्य में घटना की अपेक्षा विचारों को प्रमुखता देना उचित प्रतीत होता है। इसीलिए कवि ने मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर राम-कथा को निरखा-परखा है। घटना की अपेक्षा इस कृति में प्रेम-कथा तथा चरित्र-काव्य को अधिक वाणी मिली है। पारिवारिक चित्रों के रहते हुए भी सांस्कृतिक भूमिका का अधिक निर्वाह किया गया है। वास्तव में, इस काव्य की गरिमा उसकी मौलिकता में है, जिसके उत्स से नूतन प्रसंगोद्भावनाओं ने अपनी आकृतियाँ निर्मित की हैं।

नवीन प्रसंगोद्भावनाएँ एवं विशिष्टता—'नवीन' जी ने उर्मिला की प्राण-प्रतिष्ठा करने और रामकथा को सांस्कृतिक धरातल पर देखने के उद्देश्य से, प्रस्तुत ग्रन्थ में मौलिकता का अधिक प्रश्रय लिया है। वास्तव में नवीन-प्रसंगोद्भावनाओं को जितना अच्छा और जितना अधिक स्थान इस प्रबन्ध-काव्य में प्राप्त हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ये उद्भावनाएँ कवि की गम्भीर भावुकता तथा प्रौढ़ कल्पना-शक्ति की परिचायिका हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' के विषय में लिखा है कि "ये शास्त्रीय और ऐतिहासिक परम्परा-पालन 'साकेत' के लिये हानिकर ही हो गये। जैसा हम आरम्भ में कह चुके हैं कि 'साकेत' का कवि, चित्र के दूसरे पहलू को दिखाने का उपक्रम करता है। पर 'चित्र के दूसरे पहलू' के लिए उसे शास्त्रीय प्रवचन ढूँढ़ने की अधिक आवश्यकता नहीं थी। मेघनाद-वध के कवि ने भी ऐसा ही किया है। मैथिलीशरण जी को इतिहास-पुराण आदि की अपेक्षा इस अवसर पर अपनी कल्पना-शक्ति की ज्योति जगानी थी। पर यहाँ भी उन्होंने सृष्टि की शृखलाएँ नहीं तोड़ी।"[1] कहना न होगा कि 'नवीन' जी ने अपने काव्य में रामायणी कथा को न ग्रहण-कर, जहाँ इतिहास-पुराण का अधिक प्रश्रय नहीं लिया, वहाँ रूढ़ि की शृंखलाएँ को भी तोड़ने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप उन्हें अपनी कल्पना-शक्ति से काव्य-कला की ज्योति जगानी पड़ी।

नूतन दृष्टि तथा कल्पना-क्षेत्र की उद्भावना के कारण, 'उर्मिला' की तुलना माइकेल मधुसूदन दत्त की 'मेघनाद वध' से की जा सकती है। यद्यपि दोनों कवियों के दृष्टिकोण अथवा गृहीत कथांश में कोई साम्य नहीं दिखाई देता, परन्तु जिस प्रकार वालमीकि ने और वालमीकि से भी अधिक तुलसीदास ने रामचरित का उत्कर्ष दिखाते हुए राक्षसराज रावण को अँधेरे में डाल दिया तब माइकेल मधुसूदन दत्त ने चित्र के दूसरे पहलू को प्रदर्शित किया। जब समाज में आदर्श की रूढ़ियाँ बँध जाती हैं और वह एक निर्जीव और निष्क्रिय धर्माभास के घेरे में घिरकर अन्धवत आचरण करता है तब मस्तिष्क को सचेत करने के लिए कभी-कभी उसे धक्का देने अथवा चोट पहुँचाने की आवश्यकता पड़ती है। माइकेल मधुसूदन ने मेघनाद-वध द्वारा वही चोट पहुँचाई और वही चेतना उत्पन्न की। कवि का यह स्वाभाविक धर्म है, काव्य की यह भी एक प्रक्रिया है,[2] उसी प्रकार 'उर्मिला' ने भी रामायण के विस्मृत, त्यक्त अथवा तिरस्कृत प्रसंगों व पात्रों पर प्रकाश डाला। वह भी 'मेघनाद-वध' के दूसरे पक्ष को, जिसमें लक्ष्मण-उर्मिला का

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, साकेत, पृष्ठ ५३।
२. वही, पृष्ठ ४७।

चरित्र आता है, विस्तार से अंकित करता है। 'मेघनाद-वध' ने निधानात्मक पक्ष (negative side) के उभारने की ओर ध्यान दिया है, परन्तु 'नवीन' जी ने विधानात्मक पक्ष (Positve side) के तत्वों को नूतन रेखाओं से पुनर्निर्मित किया है। दोनों कवियों ने अपने क्षेत्र में उर्वर मौलिकता, अभिनव दृष्टिकोण तथा बौद्धिक पहुँच को अपने काव्य-कौशल के मूल-तत्व बनाये हैं।

'उर्मिला' में ऐसे कथांशों की अवतारणा की गई है जो अभूतपूर्व हैं और राम-कथा को पुष्ट बनाती हैं। इन समग्र उद्भावनाओं में आधुनिक युग के प्रभावों को भी देखा-परखा जा सकता है। आर्य-समाज, राष्ट्रीय उत्थान, सत्याग्रह-संग्राम, बुद्धिपरक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक पुनर्जागृति मानवतावादी आधार तथा महिला उत्थान आदि के अनेक घटक मिलकर, काव्य की मौलिकता के स्रोत को शक्ति प्रदान करते हैं।

कवि 'नवीन' द्वारा 'उर्मिला' में उत्पादित मौलिकता विषयक अंशों की विवेचना अधोलिखित रूप में प्रस्तुत की जा सकती है—

(१) राम कथा के अनुगायकों ने जनकपुर का प्रायः उतना ही वर्णन काव्य के उपयुक्त समझा जितनी देर उनके आराध्यदेव राम, जनकपुर में रहे। जनकपुर के राज-प्रासादों, अन्तःपुरों एवं उसके निवासियों से, जैसे उनकी कोई प्रीति ही नहीं थी। जनकपुर के निवासियों में एक मात्र सीता ही ऐसी सौभाग्य-सम्पन्न थीं परन्तु उनके सौभाग्य-सूर्य का उदय भी तभी हुआ जब श्रीराम का आगमन जनकपुर में हुआ। उर्मिलाकार ने इस दोष का निवारण किया है। उन्होंने जनकपुर के निवासियों, भवन, जीवन, वातावरण आदि का विस्तार से वर्णन किया है।

(२) प्रथम सर्ग में, जनक के प्रासाद-प्रांगण तथा उपवन में बालकेलि-निरत सीता तथा उर्मिला के बाल्य-काल का वर्णन कवि की अपनी सूझ है। यह रोचक तथा महत्वपूर्ण अंश राम-कथा के किसी आधार-ग्रन्थ में तो क्या, 'साकेत' में भी अनुपलब्ध है जिसका उद्देश्य 'उर्मिला' से साम्य रखता है।

(३) नाटकीय व्यंग्य, चरित्र की रेखाओं में अन्तर का प्रदर्शन और सीता व उर्मिला द्वारा कहलाई गई प्रायः कल्पित गाथाओं के द्वारा भावी घटनाओं के प्रति कलात्मक संकेत प्रदान करना, कवि की अपनी उद्भावना है।

(४) जनक और विशेषकर, जनक-पत्नी के व्यक्तित्व तथा पारिवारिक वातावरण की सृष्टि अपना अनुपम महत्व रखती है।

(५) कवि ने धनुर्यज्ञ के महत्व को नूतन प्रकाश में अवलोका है। महाराजा जनक इस यज्ञ के बहाने आर्य सिंह गणों के छौनों को देखना तथा परखना चाहते हैं।

(६) द्वितीय सर्ग में सरयू के तट पर अवधपुरी की स्नानार्थ एकत्रित नारियों की विविधमुखी उर्मिला के चातुर्य तथा सौन्दर्य विषयक टीका-टिप्पणियाँ तथा सरस वार्तालाप, हास-परिहास को कवि की कल्पनाशक्ति ने ही जन्म दिया है। यहाँ साकेतवासियों की प्रतिक्रियाओं को प्रकट किया गया है। इससे साकेतवासियों की सक्रियता तथा प्रस्तुत कथा में उनकी उपेक्षा-निवारण भी सिद्ध हो जाती है।

(७) अयोध्या के राज प्रासाद में देवर रिपुसूदन और ननद शान्ता के साथ उर्मिला का

वाग्विनोद और लक्ष्मण-उर्मिला के हास परिहास एवं प्रेमालाप से सम्पन्न दाम्पत्य-जीवन का चित्रण भी मौलिकता की सुधा को अपने क्रोड़ में छिपाये हुए हैं।

(८) कवि द्वारा उर्मिला-लक्ष्मण के विन्ध्याचल पर्यटन की योजना को जन्म देना और उसे राम-सीता-लक्ष्मण की भावी वन-यात्रा की साभिप्राय पीठिका के रूप में रखना, उसकी नूतन उद्भावना का प्रतीक है।

(९) 'कला' को लेकर उर्मिला-शत्रुघ्न और 'प्रेम' को लेकर उर्मिला-लक्ष्मण के मध्य उठ खड़े विवाद के द्वारा वैचारिकता के पक्ष को पुष्ट करना, कवि की अपनी सूझ-बूझ है।

(१०) महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्य अनेक रामकथाकारों ने वनवास का कारण, कौशलेन्द्र दशरथ को भक्त श्रवणकुमार के अन्धे माता-पिता से मिले अभिशाप, कैकयी की विपरीत बुद्धि और मन्थरा की जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती के आ विराजने को, निरूपित किया है। इन कवियों ने बनवास का समग्र दायित्व तथा प्रपंच, देवों के माथे उतार दिया है। साकेतकार ने कैकयी-मन्थरा सम्वाद को कुछ मनोवैज्ञानिक भित्ति प्रदान करने की चेष्टा की है; परन्तु इस प्रसंग में भी वरदान एवं अभिशाप प्राधान्य में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। उर्मिलाकार ने अभिशाप की बात का कोई उल्लेख भी नहीं किया और वरदान तथा आज्ञा को औपचारिकता तथा सांसारिकता मात्र बना दिया है।

(११) 'नवीन' जी ने राम-वन-गमन की घटना को जो कि राम-कथा तथा रामकाव्य की महान् एवं महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है, नूतन तूलिका से चित्रित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में, राम-वनगमन सम्बन्धी घटना की आर्य-संस्कृति के प्रसार के लिये एक महान् सांस्कृतिक यात्रा के रूप में विशद व्याख्या की गई है।

(१२) इसी सन्दर्भ में उर्मिला तथा लक्ष्मण का वन-गमन-विषयक वार्तालाप और उर्मिला की अनुमति से लक्ष्मण का वनगमन-निश्चय, कवि की प्रौढ़ कल्पना और नूतन सूझ का परिचय देता है।

(१३) यद्यपि कैकयी रंगमंच पर नहीं आई है परन्तु फिर भी कवि ने उसके चरित्र का परिष्कार कर, उसे गरिमामय रूप प्रदान किया है। आचार्य वाजपेयी जी के मतानुसार, काव्य के लिए प्रत्यक्ष वर्णन से अधिक परोक्ष अध्याहार की महिमा कही गई है।[१] इसका उत्कृष्ट दृष्टान्त प्रस्तुत-कृति का कैकयी चरित्र है। 'रामचरित मानस' की कैकयी चुपचाप आत्मग्लानि अनुभव करती है।[२] 'साकेत' में अवश्य ही कैकयी के चरित्र को महिमा प्राप्त हुई है परन्तु 'साकेत' के लक्ष्मण-कैकयी के प्रति अमर्यादित शब्दावली का प्रयोग कर देते हैं।[३] इसके विपरीत, 'उर्मिला' के लक्ष्मण कैकयी के कारण से नहीं, अपितु आर्य-संस्कृति के विस्तार के लिये ही कैकयी ने यह कूटनीतिक खेल खेला है। वह पंजाब की थी, जो आर्य-संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। पश्चिम से पूर्व तक, वह आर्य-सभ्यता को पुष्पित-प्रफुलल्लित होते देख चुकी

---

१. 'हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी', पृष्ठ ५३।

२. 'गरइ गलानि कुटिल कैकई। काहि कहै केहि दूषन देई॥

—'रामचरित मानस', अयोध्याकाण्ड, दोहा २७२

३. 'साकेत', तृतीय सर्ग, ५९।

थीं और अब वह विन्ध्याचल के अलंध्य रूप को लंध्य में परिणत कर, उस पार भी संस्कृति का प्रचार देखना चाहती हैं। वन-गमन की इस व्याख्या से जहाँ एक ओर रामकथा की कठोरता कुछ न्यून हो गई, वहाँ दूसरी ओर कैकयी के युग-लांछित चरित्र का उदात्तीकरण भी कवि ने कर दिया।

(१४) 'उर्मिला' में सुमित्रा को जितना गौरव प्राप्त हुआ है; वह अन्य राम-काव्यों में कम मिला है।

(१५) 'उर्मिला' के सम्पूर्ण वृत्त तथा चरित्र की सृष्टि कवि की अपनी सूझ है। चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में उसका विस्तृत विरह वर्णन कवि की मौलिकता का परिचायक है।

(१६) आधुनिक काव्यकृतियों में विरह-वर्णन ब्रजभाषा के दोहे-सोरठे की शैली में करने की पद्धति का अभाव है, परन्तु प्रस्तुत-काव्य कृति की यही विशेषता है।

(१७) परिपाटीगत लक्ष्मण के चरित्र में कवि ने समुचित परिष्कार कर, उसमें नूतन रंगों को भरा है।

(१८) षष्ठ सर्ग में अवधपुरी से लेकर लंकापुरी तक आर्य-संस्कृति के प्रसार के चित्र को कवि की मौलिकता ने ही जन्म दिया है।

(१९) आदिकवि वाल्मीकि ने राम-रावण के युद्ध को नर और राक्षस का युद्ध माना है, गोस्वामी तुलसीदास ने उसे देव तथा दानव का, परन्तु गुप्त जी ने नर से नर के युद्ध के रूप में उसे निरूपित किया है। 'नवीन' जी ने अपनी मौलिक कल्पना के अनुसार, आर्य-अनार्य संघर्ष के रूप में, मान्यता प्रदान की है। यद्यपि साकेतकार एवं उर्मिलाकार की सूझ में क्वचित् सादृश्य है, परन्तु प्रतिकूलता भी द्रष्टव्य है। साकेतकार ने, राम-रावण युद्ध में सीता-हरण की घटना को प्रमुखता प्रदान की है। उर्मिलाकार ने इस प्रसंग का संस्पर्श भी नहीं किया; सिर्फ हलका-सा संकेत मात्र ही दिया है। उसने आर्य-अनार्य एवं सभ्य-असभ्य जातियों के प्रश्न को ही तूल प्रदान किया है।

(२०) विभीषण की राजसभा का दृश्य, विवरण तथा उसकी लंका के सिंहासन पर प्रतिष्ठा, कवि की अपनी कल्पना-शक्ति की उत्पत्ति है।

(२१) विभीषण की राजसभा में श्रीराम का वक्तव्य तथा जीवन-दर्शन का विशद उद्घाटन, कवि की मौलिकता के मन्थन का नवनीत है।

(२२) राम के चरित्र की सहृदयता, मानवीय-भूमि और उनका मानवीय रूप, कवि की प्रतिभा की उपज है।

(२३) अयोध्या प्रत्यावर्तन में, पुष्पक विमान में लक्ष्मण-सीता सम्वाद तथा हास-परिहास और अन्त में उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन पर्याप्त मौलिकता लिये हुए हैं।

(२४) उर्मिलाकार ने उर्मिला-लक्ष्मण का गुणगान ठीक वैसे ही किया है, जैसे मानस-कार ने सीता-राम का।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि तथा तुलसी ने जिन प्रसंगों तथा चरित्रों की उपेक्षा की है, 'नवीन' जी ने उन्हें 'उर्मिला' में मौलिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन मौलिक उद्भावनाओं में कवि की नूतन विचारवीथिका, युगानुरूप विश्लेषण, मानवतादर्श, मनोवैज्ञानिक अध्ययन आदि घटक प्राप्त होते हैं। कवि की सर्वोपरि सफलता तो

इस तत्व में निहित है कि उसने अपनी नूतनता प्रिय प्रवृत्ति के कारण, प्राचीनता को न तो तिरस्कृत ही किया और न अवहेलना। प्रमुख रामाश्रित घटनाओं तथा पात्रों की आभा-प्रभाश्री उतनी ही प्रखर तथा प्रोज्वल है; जितनी कवि की कल्पना-सृष्टि।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-प्रधान काव्य—'साकेत' के सदृश्य,[1] 'उर्मिला' को भी चरित्रप्रधान-काव्य माना जा सकता है। प्रस्तुत-काव्य में घटना-क्रम का आधिक्य नहीं है। इसमें चरित्र तथा विचारों की बहुलता है। कवि का लक्ष्य भी इसे चरित्र-प्रधान काव्य के रूप में देखने का ही प्रतीत होता है। उसको भारती सीता-राम तथा उर्मिला-लक्ष्मण के गुण-गायन में ही अपनी सार्थकता मानती है।[2] साथ ही वह, पात्रों की मन:स्थितियों के विश्लेषण को भी प्रमुखता प्रदान करता है। राम वन-गमन की प्रतिक्रिया का व्यापक रूप उर्मिला तथा लक्ष्मण में प्रदर्शित कर,[3] उसने चरित्र की रेखाओं को ही भव्य-रूप प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त, उसने चरित्रों की अवतारणा मानवीय भूमि पर ही की है। लोकोत्तरवाद की ओर अधिक उन्मुख होता, वह दृष्टिगोचर नहीं होता है।

चरित्र-कल्पना का स्वरूप—'नवीन' जी ने अपनी चरित्रांकन-पद्धति को मौलिकता से अभिसिंचित किया है। कई पात्र कवि के मनोजन्मा हैं। इनमें उर्मिला का शीर्ष-स्थान है। इसके अतिरिक्त, उसने परिपाटीगत चरित्र कल्पना के स्वरूप के नूतन रेखाओं को भी उभारने का सफल प्रयास किया है। ये सब कार्य, कवि को अपनी मूल कष्ट सिद्धि के हेतु करने पड़े। कवि ने कई पात्रों की प्राचीन रेखाओं को ही स्वीकार किया और उनमें नूतन मानवतादर्श का समन्वय स्थापित किया। यह स्वाभाविक ही है कि कवि ने अपने पात्रों को अपने युग के दृष्टिकोण से भी देखने की चेष्टा की है। इसलिए, कई पात्र एक प्रकार से उसकी युग-चेतना के उद्घोषक बन जाते हैं। कवि ने मनोवैज्ञानिक संस्पर्श प्रदान करने का भी प्रयत्न किया है। मन के अन्तराल में चलने वाली भावना-धारा को भी अन्त:सलिला से वहिस्सलिला के रूप में परिणत किया है। उसके समग्र पात्र जीवन की संजीदगी तथा आदर्श प्राप्ति के विचार से अभिभूत हैं। वे मानव हैं और मानवत्व से ही ईश्वरत्व की ओर उन्मुख होते हैं। उनकी अवतारणा ईश्वरत्व से मनुष्यत्व की ओर नहीं होती। सांस्कृतिक भव्यता से, प्रत्येक पात्र, अभिभूत दृष्टिगोचर होता है।

प्रमुख पात्र—'नवीन' जी ने रामायणी कथा की घटनाओं में, जिस प्रकार चयन किया है, उसी प्रकार पात्रों में भी। उनके काव्य में पात्रों की फौज दृष्टिगोचर नहीं होती। कवि ने अपने मनोवांछित ध्येय की सम्पूर्ति के हेतु, आवश्यक पात्रों को ही स्थान दिया है। प्रमुख पात्रों में उर्मिला, लक्ष्मण, सुमित्रा, सीता तथा राम की परिगणना की जा सकती है। गौण पात्रों में जनक, जनकपत्नी, शत्रुघ्न, शान्ता, दशरथ, विभीषण तथा सुग्रीव आते हैं। कैकेयी, कौशल्या, रावण, भरत, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, आदि पात्र यद्यपि रंगमंच पर नहीं आते हैं परन्तु

---

१. 'साकेत : एक अध्ययन', पृष्ठ १५०।

२. 'उर्मिला', भूमिका, पृष्ठ—ज।

३. वही, पृष्ठ—छ।

फिर भी उनके महत्व को, परोक्ष रूप से, प्रतिपादित किया गया है। पात्रों के संक्षिप्तीकरण में, कवि की उर्मिला-विषय-प्रतिष्ठा तथा सांस्कृतिक-व्याख्या की प्रमुख कथानक-स्थापना की मान्यता निहित थी।

डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, चरित्र-प्रधान काव्य की सफलता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात-प्रतिघात के द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित होकर उसको प्रकाश में लायें।[1] जनक, जनक-पत्नी, सीता आदि उर्मिला के चरित्र के विकास में सहायक होते हैं। लक्ष्मण का प्रत्यक्ष योगदान है। राम, सीता, सुमित्रा आदि भी उसको प्रभावित करते हैं। ये सभी पात्र उसकी परिस्थितियों के संघटन तथा विघटन में सहयोग प्रदान करते हैं।

'साकेत' के समान 'उर्मिला' में, उर्मिला को प्रमुखता तो अवश्य मिली है परन्तु प्रमुखता के धोखे, उसे उचित से अधिक मुखर नहीं बना दिया गया है। प्रमुखता तथा मुखरता में भेद है।[2] उर्मिला के चरित्र के विकास के लिए जितने भी प्रसंगों की उद्भावनाएँ की गई हैं, वे सब स्वाभाविक हैं और उनमें कहीं भी कृत्रिमता के चिह्न उत्पन्न नहीं हो पाये हैं। साथ ही कवि ने उनको प्रबन्धात्मकता तथा कथानक के सूत्र में पिरोकर, उनको सार्थक, प्रासंगिक, कलात्मक एवं आकर्षक बना दिया है।

नायकत्व—'उर्मिला' नायिका-प्रधान काव्य है। इसमें काव्य की नायिका पद पर उपेक्षिता तथा विस्मृता उर्मिला को ही अधिष्ठित किया गया है। आद्यन्त कवि उर्मिला को ही प्रमुखता देता है और उसका स्मरण बनाये रखता है। कवि ने अपनी भक्ति-भावना भी सर्वप्रथम उसी के ही चरणों में अर्पित की है। इस काव्य में कवि एक मात्र उर्मिला का ही भक्त रहा है। इस एकोन्मुख दृष्टिकोण से, कवि का काव्य कई दृष्टियों से लाभान्वित हुआ है। 'साकेत' के समान, उसमें नायक के प्रश्न का विषाद उत्पन्न नहीं हुआ है।

उर्मिला के समान, इस काव्य का नायक लक्ष्मण को स्पष्ट रूप से घोषित किया जा सकता है। 'साकेत' में लक्ष्मण के अतिरिक्त,[3] भरत,[4] तथा राम[5] के नायकत्व के पक्ष भी प्रबल दिखाई पड़ते हैं। यह स्थिति उर्मिला में शक्तिशाली नहीं हो सकी और इसकी सफलता का सम्पूर्ण श्रेय कवि के दृष्टिकोण को है।

'उर्मिला' में कवि का ध्यान नायिका उर्मिला तथा नायक लक्ष्मण की ओर अधिक रहा है। इस हेतु, राम और सीता के चरित्र का क्रमिक विकास इस कृति में नहीं दिखाया जा सका। उर्मिला के चरित्र की महानताओं समक्ष, राम तथा सीता, दोनों नत-मस्तक होते दृष्टिगोचर होते हैं। इस काव्य के नायक लक्ष्मण काफी सक्रिय हैं। वे राम वन-गमन के कारणों

---

१. 'साकेत : एक अध्ययन', पृष्ठ १५१।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ ५३।

३. डॉ० कमलाकान्त पाठक—मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ ४४५।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ४६।

५. (क) डॉ० प्रतिपाल सिंह—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृष्ठ १३२।
(ख) श्री त्रिलोचन पाण्डेय—'साकेत दर्शन', पृष्ठ ६५।

की विशद व्याख्या करते हैं। कैकेयी के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करते हैं, उसकी कूटनीति का सराहनात्मक विश्लेषण करते हैं। उर्मिला के विद्रोही मत का शमन कर, उसे अपना मतावलम्बी बना लेते हैं। वे राम-सीता का गुणगान करते हैं। अपनी माता के दूध की लज्जा की रक्षा की प्रतिज्ञा करते हैं। जनक तथा भरत के व्यक्तित्व की महिमा को आँकते हैं। इस प्रकार वे घटनाओं के सूत्रधार बने दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें वीरत्व तथा विवेकशीलता, मर्यादा तथा शिष्टाचार, असि तथा मसि, दोनों के ही गुण दृष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि लक्ष्मण से राम-कथा का उपसंहार तो नहीं किया, परन्तु कवि ने इस काव्य में उनके पुनर्मिलन को ही महत्व प्रदान किया है।

इस प्रकार चरित्र, घटना, काव्य-प्रवृत्ति आदि सभी दृष्टिकोणों से नायकत्व का सेहरा उर्मिला को ही प्राप्त होता है। इसके पश्चात् लक्ष्मण का स्थान आता है। कवि का यह अभीष्ट भी था।

चरित्रों के प्रकार—'उर्मिला' में कई प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की गई है—राम का आदर्श रूप व्यंजित हुआ है तो लक्ष्मण का प्रेमी रूप। श्री राम के गौरव, महत्ता तथा उदात्तता में किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं आ पाई है। वे सम-रस रहते हैं और प्रत्येक स्थान पर आदर्श की प्रतिस्थापना करते दृष्टिगोचर होते हैं।

जनक-पत्नी, सुमित्रा, दशरथ, शत्रु, शान्ता आदि पात्रों के संस्कार का महत्व अधिक दिखाई पड़ता है। जनक-पत्नी तथा सुमित्रा में मातृत्व, स्नेह तथा शिक्षा की भावनाएँ अधिक प्रमुख हैं।

कवि ने लक्ष्मण, उर्मिला आदि पात्रों को नूतन रेखाएँ प्रदान की हैं। अनेक बार कवि राम, विभीषण, सुग्रीव आदि के माध्यम से बोला है। उसने चरित्रों का यत्र-तत्र परिमार्जन भी किया है।

कवि की भक्ति राम और सीता की तरफ भी झुकी है। अन्तिम सर्ग में उसने सीता के महत्वांकन का अच्छा प्रसार दिखाया है।

इस प्रकार कवि ने विविधमुखी चरित्र-सृष्टि की है। उसने सबको मानवीय धरातल पर चित्रित किया है। आनुपातिक स्थिति का भी उसने बराबर ख्याल रखा है। इस दिशा में उसने सभी प्रकार के कार्य किये हैं।

चित्रण-पद्धति—कवि ने अपने चरित्रों के चित्रांकन में अनेक प्रणालियों को अपनत्व प्रदान किया है। सबसे पहले उसने सन्तुलन को स्थापित किया है। जो पात्र उपेक्षित रहे हैं, उनको समूचा गढ़ा तथा रंग भरा है यथा—उर्मिला। पुराने पात्रों के नूतन पार्श्वों को उभारा यथा, लक्ष्मण एवं सुमित्रा। कई पात्रों में, जिनके रंग गहरे थे, अधिक रंग चढ़ाया जैसे राम तथा सीता। कई पात्रों को अपने प्रकृत रूप में ही रहने दिया, यथा—जनक। इस प्रकार सन्तुलन तथा अनुपात की भित्ति पर, उसने अपनी चित्रण पद्धति को विकसित किया।

'उर्मिला' के पात्र अपने व्यक्तित्व के बल से ही अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उनका व्यक्तित्व पराङ्मुखी नहीं। वास्तव में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जो बात 'साकेत' के

पात्रों के प्रति कही है, वही बात 'उर्मिला' पर भी घटित होती है कि उसके पात्र 'टिपिकल' हैं।[1]

कवि ने 'उर्मिला' के चरित्रों का उद्घाटन कई विधियों से किया है यथा—विवरण, कथोपकथन आदि। संवाद, कार्य, वक्तव्य आदि से चरित्रों के अनेक गुणों पर प्रकाश पड़ता है। कवि ने स्वयं भी पात्रों के प्रति अपनी सम्मतियाँ प्रकट की हैं। नाटकीय पद्धति के प्रयोग से काव्य की कलात्मकता बढ़ गई है।

पात्र—'उर्मिला' के पात्रों को, सुविधा के दृष्टिकोण से, दो विभागों में बाँटा जा सकता है—(क) नारी-पात्र, (ख) पुरुष-पात्र।

इन वर्गों के प्रत्येक पात्र के चरित्र की रेखाओं का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नारी-पात्र : उर्मिला – कवि को सर्वाधिक सफलता उर्मिला के चरित्रांकन में मिली हैं। वह उसकी नूतन सृष्टि तथा महत् उपलब्धि है। हम देखते हैं कि उसके चरित्र का विकास नैसर्गिक सोपानों से होता है।

उर्मिला कहानी कहने की प्रतिस्पर्द्धा में कपोत-कपोती की कहानी सुनाती है, जिसमें दुःख, वियोग आदि के तत्व प्रधान रहते हैं। जनक-पत्नी अपनी प्यारी बिटिया को 'रुदन की मूर्ति कहकर' विनोद करती हैं।[2] अपनी बाल्यावस्था में ही उर्मिला, माता के स्नेहिल-अंक में अपने त्यागमय जीवन के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करती है।[3]

वह प्रारम्भ से ही गम्भीर विषयों के प्रति कौतूहल-वृत्ति को विकसित कर लेती है। इस विषय में वह सीता तथा माता से कई प्रश्न पूछती है। वास्तव में उर्मिला के चरित्र निर्माण में, माता-पिता का विशेष योगदान दृष्टिगोचर होता है।

विवाहोपरान्त, अवधपुरी के राजमहल के उसके व्यक्तित्व के कई पक्षों का उद्घाटन होता है। उसके रूप सौन्दर्य तथा वाक्-चातुर्य ने सबको मोह लिया। उसका अद्वितीय सौन्दर्य, उसे मिथिला की जादूगरनी की उपाधि प्रदान कर देता है।[4] वह तत्काल उत्तर देने तथा विनोद-वृत्ति उत्पन्न करने में बड़ी पटु है।[5]

अयोध्या के राजप्रसाद में वह देवर रिपुसूदन और ननद शान्ता के साथ मधुर परिहास में योगदान देती हुई अपने हृदय की मृदुलता, भाव-प्रवणता तथा चतुराई का परिचय देती है। शत्रुघ्न के साथ विनोद करती, वह उसको अपने वाक्-चातुर्य से परास्त कर देती है।

हास-परिहास तथा वाक्-चातुर्य में प्रवीण होने के अतिरिक्त, वह अत्यन्त विनम्र, विनीत तथा लज्जाशीला है। मर्यादा तथा शिष्टाचार का वह बहुत ख्याल करती है। आखेटक लक्ष्मण के चित्र को वह, सुमित्रा के माँगने पर, लज्जित होकर देती है।[6]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ ४४७ से उद्धृत।
२. उर्मिला, पृष्ठ ६२।
३. वही, पृष्ठ ६२।
४. वही, पृष्ठ ८५।
५. वही, पृष्ठ ८८।
६. वही, पृष्ठ ६९।

वह शत्रुघ्न तथा शान्ता जीजी के प्रति विनोद करती हुई भी, अशिष्ट नहीं होती। अयोध्या के राज-महल में वह एक आदर्श वधू के रूप में केवल अपने आराध्य लक्ष्मण के ही नहीं, प्रत्युत् सुमित्रा और कौशल्या आदि माताओं के हृदय में भी आदरास्पद स्थान ग्रहण कर लेती है। उसके स्वभाव की मिलनसारिता, कोमलता तथा अहंशून्यता, उसे राजमहल से निकालकर, अवध के गृह-गृहका प्रिय भाजन बना देती है।[१] वह अपने को अपनी माता का ही प्रतिबिम्ब मानती है। चित्रकला में भी वह निपुणा है।[२]

वह विचारशील नारी है। भावना के साथ ही साथ वह, चिन्तन तथा मनन को भी अंगीकृत करती है। अपने द्वारा निर्मित 'नव मृगया' चित्र का, वह लौकिक के साथ ही अलौकिक भाव-विश्लेषण भी करती है।[३]

उसका चिन्तक स्वरूप, कला के जन्म, स्वरूप तथा ध्येय की भी सुस्पष्ट व्याख्या करता है।[४] उसका विचारशील व्यक्तित्व अपने कर्त्तव्यों के प्रति भी सजग है।[५]

इसी प्रकार वह प्रेम के स्वरूप के विषय में लक्ष्मण से प्रश्न पूछती है। कहना न होगा कि बालिका उर्मिला का जिज्ञासु रूप ही बाद में, युवती उर्मिला के विचारशील-पक्ष के रूप में विकसित हो जाता है।

उर्मिला-लक्ष्मण का सुखी, मधुर तथा कल-किलोलमय जीवन शीघ्र ही वियोग तथा वेदना में परिवर्तित हो जाता है। सीता-राम के साथ लक्ष्मण के वन-गमन प्रस्ताव को सुनकर उर्मिला की अधीरता बढ़ जाती है।[६]

वह सात्विक हृदया, भावुक अबला तथा मृदुल नारी होते हुए भी, वीरत्व, दर्प तथा विद्रोह से मण्डित है। वह दशरथ की राम-वन-गमन विषयक नीति, कैकेयी का योगदान, वर तथा शाप, लक्ष्मण का कर्त्तव्य आदि विषयों पर तर्कसम्मत समीक्षा करती है और इस प्रकार अपनी विवेक-बुद्धि का ज्वलन्त परिचय देती है।

उर्मिला अधर्म, अन्याय तथा अनीति के विरुद्ध विद्रोह करने का परामर्श देती है। उसकी रोषाग्नि में व्यक्तिगत द्वेष का स्थान नहीं है, अपितु वह विवेक के आधार पर, वस्तुस्थिति का विश्लेषण करती है और टीका करती है। गुप्त जी के लक्ष्मण में जिन भावों की अतिशयता दृष्टिगोचर होती है, उसी का ही प्रतिबिम्ब 'नवीन' जी की उर्मिला में दिखाई पड़ता है—

भला वे कौन हैं जो राज्य लेवें ?
पिता भी कौन हैं जो राज्य देवें ?
प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा।[७]

---

१. उर्मिला, पृष्ठ १०७।
२. वही, पृष्ठ ६९।
३. वही, पृष्ठ १०५।
४. वही, पृष्ठ १०४।
५. वही, पृष्ठ १०९।
६. वही, पृष्ठ १७९।
७. 'साकेत', तृतीय सर्ग, पृष्ठ ५९।

'उर्मिला' की उर्मिला भी कहती है—

कह दो आज पिता दशरथ से
कि, यह अधर्म नहीं होगा,
कह दो, लक्ष्मण के रहते यह
यह घोर कुकर्म नहीं होगा ।[1]

वह दृढ़चेता तथा विवेकवती नारी है । वह हठवादिता को प्रश्रय प्रदान नहीं करती और लक्ष्मण के समाधान करने पर, वह उनको वन जाने की अनुमति प्रदान कर देती है । इस प्रकार उर्मिला का चरित्र पूत भावनाओं, आत्मोत्सर्ग तथा बलिदान की महती प्रवृति के आलोक से मण्डित है । उसके महत्व के गीत प्रायः सभी पात्रों ने गाये हैं । सीता, उर्मिला के वलिदान की प्रशंसा करती हैं ।[2]

उर्मिला की ऊँचाई को राम भी, किसी के भी पहुँच के बाहर, निरूपित करते हैं ।[3] लक्ष्मण भी अपनी माता की करुण तथा मूक-व्यथा को उर्मिला में प्रतिफलित पाते हैं ।[4] वनवास काल से लौटते समय, सिद्ध लक्ष्मण भी उर्मिला की महिमा की किरणें विखेरते हैं ।[5]

इस प्रकार उर्मिला को कवि ने बालिका, कुल-वधू, प्रेयसी, सर्व प्रिया, विद्रोही, आत्मत्यागी, विरहिणी तथा आदर्शनिष्ठ नारी के रूप में चित्रित किया है। वह कवि की कल्पना-प्रसूता है । उस पर 'साकेत' की उर्मिला का भी आंशिक प्रभाव परिलक्षित होता है । वह 'उर्मिला' में चतुर्थ एवं पँचम सर्ग में उसी भाँति विलाप करती है, जैसे साकेत के नवम सर्ग में । इस रूप के अतिरिक्त, कवि ने जिस उर्मिला का सृजन किया है, वह उसकी मौलिक कल्पना शक्ति की रेखाओं से आपूर्ण है ।

सुमित्रा—'नवीन' की सुमित्रा मातृ-धर्म तथा ममता की जीवन्त प्रतिमा हैं ।[6] 'नवीन' जी ने न केवल सुमित्रा को प्रमुखता ही प्रदान की, अपितु उनके चरित्रतगत गुणों को भी वहुमुखी रूप में प्रशस्त किया । गुप्त जी की 'सुमित्रा' तथा 'नवीन' जी की सुमित्रा में जहाँ ममता भरा व्यक्तित्व तथा उत्सर्ग भाव की बहुलता का साम्य है, वहाँ वैषम्य अधिक है । 'साकेत' की सुमित्रा में उग्रता तथा क्षात्र-तेज का आधिक्य है जब कि 'उर्मिला' की सुमित्रा भव्य, ममत्वमय, विराट, मृदुल, स्नेहिल, दयालु तथा सौम्य रूप में हमारे समक्ष आती है । दोनों चरित्रों में बड़ा अन्तर है । सुमित्रा को जो गरिमामय तथा उदास रूप 'नवीन' जी ने प्रदान किया है, वह गुप्त जी प्रदान नहीं कर सके हैं ।

सीता—सीता प्रारम्भ से ही गम्भीर हैं । जनकपुरी के प्रासाद-प्रांगण में वे अपने व्यक्तित्व तथा स्वभाव के अनुकूल, गान्धर्व देश की राजकुमारी के पराक्रम की गाथा सुनाती हैं । वे जीवन में साहस, सात्विकता तथा शौर्य को स्थान देती है ।

---

१. उर्मिला, पृष्ठ २४४ ।
२. वही, पृष्ठ २७८ ।
३. वही, पृष्ठ ३१५ ।
४. वही, पृष्ठ २२६ ।
५. वही, पृष्ठ ५६८ ।
६. वही, पृष्ठ ३३८ ।

'नवीन' जी ने सीता को भी नूतन दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने इस आत्मयज्ञ में अपनी ही आत्माहुति दे डाली। वे नारी-धर्म की आदर्श परिचार्यिका हैं। विभीषण के मुख से, कवि ने, सीता का महत्वांकन किया है।[१]

इस प्रकार सीता में गाम्भीर्य, शिष्टता, मर्यादा-पालन, सेवाव्रती रूप, सहधर्मिणी, वाक्संयम, मातृत्व, उत्कृष्टगुणसम्पन्ना आदि रेखाओं को कवि ने खींचा है। 'साकेत' में सीता की बाल्यावस्था का चित्र प्राप्त नहीं होता, परन्तु गुप्त जी ने सीता को जितने विस्तार तथा गुणों से देखा है, उतना 'नवीन' जी नहीं देख सके हैं। उर्मिला के समक्ष सीता का चरित्र कुछ दब गया है। परन्तु गरिमा तथा भव्यता में लेशमात्र भी अन्तर नहीं आया है। 'उर्मिला' की सीता, सात्विकता तथा ममता की सम्पदा के रूप में, हमारे समक्ष उभय-स्थित होती हैं।

सुनयना—जनकपत्नी सुनयना को भी कवि ने अपनी मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया है। वे पति-भक्त, सती साध्वी तथा धर्मपरायण-महिला हैं। वे अपनी दोनों बालिकाओं को अत्यधिक प्यार करती हैं और उन्हें समय-समय पर उचित शिक्षा भी प्रदान किया करती हैं। उनकी झाँकी, थोड़े समय के लिए केवल प्रथम सर्ग में ही प्राप्त होती है। यहाँ पर उनके दाम्पत्य-जीवन के ही मधुर तथा शिष्ट चित्र प्रदान किये गये हैं। काव्य-नायिका उर्मिला के निर्माण में सुनयना का बड़ा भारी हाथ है।[२] 'उर्मिला' की सुनयना की एक झलक में स्नेह, मृदुलता तथा पवित्रत्ता की त्रिवेणी निनादित है।

अन्य पात्र—इसके अतिरिक्त, 'नवीन' जी ने 'उर्मिला' में कैकेयी,[३] कौशल्या,[४] माण्डवी,[५] श्रुतिकीर्ति,[६] शूर्पणखा,[७] मन्दोदरी[८] आदि का उल्लेख किया है, परन्तु वे प्रत्यक्षता प्राप्त नहीं कर सकी हैं। कवि ने इनमें से अधिकांश की परोक्ष महत्ता प्रमाणित कर दी है।

---

१. उर्मिला, पृष्ठ ५७७।

२. वही, पृष्ठ १०६।

३. (क) वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ, २३७, छन्द १३५।
 (ख) वही, पृष्ठ २४०, छन्द १४१।
 (ग) वही, पृष्ठ २६१, छन्द, १८४।

४. (क) वही द्वितीय सर्ग पृष्ठ १०१, छन्द ८६।
 (ख) तृतीय सर्ग, पृष्ठ २४२, छन्द १४६।
 (ग) वही, पृष्ठ २७६, छन्द २१४।
 (घ) वही, पृष्ठ ३१७, छन्द २६५।

५. (क) वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ८८, छन्द ३८।
 (ख) षष्ठ सर्ग, ६०७, छन्द १७६।

६. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १०७, छन्द ११६।

७. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६४, छन्द १५४।

८. वही, षष्ठ सर्ग, ५३०।

पुरुष पात्र : लक्ष्मण—लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण में पर्याप्त मौलिकता को स्थान प्राप्त हुआ है। 'उर्मिला' में लक्ष्मण एक कठोर साधना-निरत, भावत-भक्त वीर के रूप में ही नहीं, प्रत्युत् उर्मिला के आदर्श पति के रूप में भी आते हैं।

लक्ष्मण हमारे समक्ष प्रेमी, चिन्तक, आदर्श पति, राम-भक्त तथा तपस्वी के रूप में आते हैं। द्वितीय सर्ग में उनका जो सौन्दर्य प्रेमी रूप में चित्रित किया है, उसमें योरोपीय प्रभाव का अन्वेषण किया जा सकता है। वह रूप रोमांसवादी भावनाओं के कारण उत्पन्न हुआ है, जिन्होंने हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के काव्य में उन्नयन करने में, विशेष योग-दान किया है। इसी प्रकार देवर-भाभी का मधुर हास-परिहास और पति-पत्नी का हृदयस्पर्शी विनोद एवं क्रीड़ाओं पर भी स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है।

'रामचरित मानस' तथा 'साकेत' में लक्ष्मण के चरित्र में भ्रातृ-प्रेम और वीरत्व को ही प्राधान्य मिला है, परन्तु 'उर्मिला' में, लक्ष्मण की अग्रज भक्ति के साथ ही साथ, अपनी अर्द्धांगिनी उर्मिला के प्रति उनके प्रेम तथा कर्तव्य की अभिव्यंजना, अधिक सुन्दर बन पड़ी है। 'रामायण' तथा 'मानस' के लक्ष्मण उद्धत होते हुए भी मर्यादा का सीमोल्लंघन नहीं करते। हम देखते हैं कि 'साकेत' में उनका चरित्र कुछ पतित हो गया है। कैकयी के प्रति, इन शब्दों में अपनी उद्धता तथा आक्रोश प्रकट करना, समुचित प्रतीत नहीं होता—

ठसक किसको, भरत की है बताती
भरत को मार डालूं और तुझको
नरक में भी न रक्खूं ठौर तुझको।[1]

अपने रोषाग्नि की लपट में 'साकेत' के लक्ष्मण, कैकेयी के साथ, दशरथ को भी लपेट लेते हैं—

खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह!
अनार्या की जनी हतभागिनी यह!
अभी विष-दन्त इसके तोड़ दूंगा!
न रोको तुम तभी तभी मैं शान्त हूंगा!
बने इस दस्युजा के दास हैं जो,
पिता हैं वे हमारे—या कहूँ क्या?
कहो हे आर्य, फिर भी चुप रहूँ क्या?[2]

इसके विपरीत, 'उर्मिला' के लक्ष्मण अत्यन्त संयत, गम्भीर तथा विवेकशील हैं। वे कैकेयी के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करते हैं और उसके व्यक्तित्व को महिमा मण्डित—

कैकयी माँ दूर देश की हैं
वे हैं अनुभव शीला,
युद्ध सन्धि में प्रकट कर चुकीं—
हैं वे निज निपुणा लीला,

---

१. 'साकेत', तृतीय सर्ग, पृष्ठ ५९।

२. वही, पृष्ठ ६१।

उत्तर पश्चिम से प्राची तक—
विस्तृत है उनका अनुभव,
इसीलिए उनके हिय में है
आया एक भाव अभिनव,
है गौरव कांक्षिणी बड़ी माँ—

राम—श्री राम को मौलिक संस्पर्श प्राप्त हुए हैं। कवि ने राम को निम्न रूप में देखा-परखा है—

राम, नहीं नर, एक चिरन्तन
मनन पुञ्ज हिन्दू-मत का,
राम, एक उत्कर्ष-कल्पना,
इक आदर्श आर्य-जन का,
राम, सत्य, शिव, सुन्दर भावों—
की कल्याणमयी झाँकी।[१]

'उर्मिला' में राम उसी भव्य रूप के साथ चित्रित किये गये हैं, जैसा कि 'मानस' में उनका रूप प्राप्त होता है। गहराई के साथ देखा जाय तो वे यहाँ कुछ उदात्त रूप ही प्राप्त कर गये हैं। 'साकेत' के राम का अधिनायकत्व यहाँ नहीं आ पाया है। इसमें दोनों कवियों के लक्ष्यों में अन्तर था। राम के चरित्र को सांस्कृतिक तथा समग्र भारतीय विचारणा की भूमिका पर रखकर अंकित करने के कारण, 'नवीन' जी ने अपनी कला-कुशलता का ही परिचय प्रदान किया है।

जनक—कवि ने जनक का परम्परागत रूप ही ग्रहण किया है। उसमें गार्हस्थ्य-जीवन विषयक प्रसंग को अधिक उद्घाटित किया है। उनके मधुर सांसारिक जीवन की स्थिति, सीता तथा उर्मिला के कारण, विशेष रूप से सरस है।[२] उनका दाम्पत्य-जीवन सुखद तथा सरस है। 'उर्मिला' के जनक, करुणा तथा चिन्तन के रंगों से चित्रित हैं।[३]

अन्य पात्र—विभीषण, सुग्रीव तथा दशरथ के चरित्र भी अल्प-काल के लिये मुखरित हुए हैं। इन पात्रों के अतिरिक्त भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, सुमन्त आदि पात्रों का भी नामोल्लेख है।

निष्कर्ष—'उर्मिला' पक्ष की प्रधानता होने के कारण जनक, सुनयना, लक्ष्मण, सुमित्रा आदि को प्रधानता मिली है। दशरथ की अपेक्षा जनक व कौशल्या की अपेक्षा सुनयना को अधिक रेखाएँ मिली हैं।

कवि ने जितने भी पात्र प्रस्तुत किये हैं, उनमें अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व तथा आभा मण्डित है। साथ ही पात्र, परस्पर एक दूसरे की टीका-टिप्पणी करके, अपनी मनोभावनाओं को भी अभिव्यक्त करते हैं। कवि ने प्रधानतया अपने पात्रों को सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निरखा-परखा है।

---

१. साकेत, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २६५।
२. उर्मिला, पृष्ठ २४।
३. वही, पृष्ठ ६५।

सम्वाद

डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, "सम्वाद के गुणों की विवेचना करते हुए आचार्यों ने स्वाभाविकता अर्थात् परिस्थिति और पात्र की अनुरूपता, सजीवता अथवा उद्दीप्ति, गतिशीलता एवं रसात्मकता पर जोर दिया है।"[1] इन घटकों के आधार पर, उर्मिला के कथोपकथनात्मक अंशों का अनुशीलन करना, समुचित प्रतीत होता है।

'उर्मिला' में सम्वाद की सर्वप्रधानता है। समूची कथा तथा काव्य, परिसम्वाद के आश्रय को ग्रहण कर ही, विकसित होता है। सम्वाद की अनेक दृष्टियों से उपादेयता प्रतीत होती है। जहाँ उससे कथा अग्रसर होती है, आगत गाथा की सूचना या संकेत प्राप्त होता है, वर्ण्य-विषय का विषलेषण होता है, प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है, रोचकता तथा सरलता के वितान तनते हैं, वहाँ चरित्रों की सूक्ष्म-रेखाएँ उभर कर हमारे समक्ष आती हैं।

गत्वरता—सम्वाद संक्षिप्त तथा सारगर्भित होने चाहिए। उनमें कृत्रिमता तथा कार्य अवरोध का प्रभाव अपेक्षित है।

'उर्मिला' में अनेक प्रकार के सम्वादों की परियोजना की गई है। इनमें विविधमुखी गत्वरता प्राप्त होती है। जहाँ लक्ष्मण उर्मिला-सम्वाद कार्य को प्रेरित तथा प्रवृत करता है, वहाँ इस सम्वाद के अतिरिक्त, उर्मिला-सीता सम्वाद, राम-उर्मिला-सम्वाद, राम-सुमित्रा सम्वाद, सुमित्रा सीता सम्वाद, लक्ष्मण सुमित्रा सम्वाद आदि वनगमन की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यंजना करते हैं। इन सम्वादों का महत्व चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी अप्रतिम है। तृतीय सर्ग के इन कथोपकथनों के अतिरिक्त, अन्तिम सर्ग के राम, विभीषण तथा सुग्रीव के वक्तव्य तथा द्वितीय सर्ग के दशरथ तथा प्रतिनिधि के भाषण भी चरित्र एवं सांस्कृतिक-सामाजिक स्थिति की विवेचना करते हैं।

रोचक तथा सरस सम्वादों के अन्तर्गत द्वितीय सर्ग की अवध-ललनाओं का पारस्परिक वार्त्तालाप, उर्मिला-शत्रुघ्न-सम्वाद, उर्मिला-शान्ता सम्वाद उर्मिला-लक्ष्मण सम्वाद और अन्तिम सर्ग का लक्ष्मण-सीता सम्वाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार कवि ने उत्कृष्ट सम्वाद के गुणों तथा घटकों को नियोजित कर, अपने सम्वादों की रचना की है।

पात्रानुकूलता—'नवीन जी ने 'उर्मिला' में अपने चारित्रों के अनुकूल सम्वादों की सृष्टि की है। पात्रों के प्रधान गुणों का उद्घाटन उन सम्वादों के माध्यम से होता है। वे स्वाभाविक भी हैं।

प्रथम सर्ग में सीता तथा उर्मिला के कथनों में वाल्य-सुलभ भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। सीता के कथन जहाँ गम्भीर होते हैं, वहाँ उर्मिला के भोले, चपल तथा जिज्ञासाकुल। जनक की उक्तियों में गाम्भीर्य तथा सुनयना के कथनों में वात्सल्य, स्नेह तथा शिक्षा के भाव प्रतिफलित होते हैं। द्वितीय सर्ग में अवध की ललनाओं की बातचीत में मुग्धता, प्रशंसा तथा सरलता की सरयू प्रवाहित है। शत्रुघ्न की बातों में अज्ञानजन्य भोलापन, जिज्ञासा तथा किशोरावस्था के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। लक्ष्मण अपने स्वभाव के अनुकूल, प्रेम, चिन्तन

---

१. 'साकेत : एक अध्ययन', पृष्ठ १९८।

तथा विवेक की बातें करते हैं। उर्मिला के स्वर में विद्रोह के साथ करुणा और दीनता के साथ भक्ति के घटक भी मिलते हैं। सीता की वाणी में ऋजुता और राम के वार्त्तालाप में उत्तरदायित्व, गाम्भीर्य एवं वस्तु-विश्लेषण प्राप्त होता है। सुमित्रा के वार्तालाप में मातृत्व, दया, समता तथा प्रेरणा की भावनाएँ प्राप्य हैं।

साथ ही, पात्रानुकलता भी परिस्थिति के साथ परिवर्तित होती है। उर्मिला जहाँ एक ओर विप्लव-गायन करती दृष्टिगोचर होती है, वहाँ दूसरी ओर विनीत, मर्यादित तथा वेदना-मण्डित उद्गार भी प्रकट करती है। सुमीत्रा-राम सम्वाद में जहाँ राम के स्वर में भक्ति, आत्म-लघुता तथा स्नेह परिप्लावित हैं, वहाँ राजसभा के उनके वक्तव्य में ओज तथा प्रभविष्णुता के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार सम्वादों की सृष्टि के मूल में नैसर्गिकता तथा उपयुक्तता का ध्यान रखा गया है।

सजीवता—'नवीन' जी ने सजीवता का उद्भव कई विधियों से किया है। उनके प्राय: प्रत्येक सम्वाद सजीवता तथा मर्मपूर्णता की जीती-जागती प्रतिमूर्त्ति हैं। छोटे-छोटे प्रश्नोत्तर ने बड़ी सरसता उत्पन्न की है, यथा—

सीता—पर लालन, एकाधिकता तो
है रघुकुल की रीति, अहो।
लक्ष्मण—यदि भाभी को सौत चाहिए,
तो अग्रज से कहूँ, कहो?
सीता—अपनी चिन्ता करो, ललन दे।
लक्ष्मण—पर, पथ-दर्शक तो हैं वे।
सीता—पर उस शूर्पणखा के मन के
चिर आकर्षक तो हैं ये।
लक्ष्मण—होने को थी सौत तुम्हारी।
सीता—वह दे रानी बन न सकी।
लक्ष्मण—कैसे बनती? उस विचार
को, जब जेठानी सह न सकी।[1]

इस प्रकार चमत्कार, भाव-प्रवणता, संक्षिप्तता आदि के गुणों से कवि ने अपने सम्वादों को परिष्कृत किया है।

भावमयता—कवि ने अपने सम्वादों में विविध भावों की रचना की है। उर्मिला के विद्रोह का स्वर, राम के साथ वार्त्तालाप में, आत्मसमर्पण के रूप में परिणत हो जाता है—

पर, हे आर्य, आत्म आहुति की
यह घटिका यदि आई है,
तो मैं बाधा नहीं बनूँगी,
श्री रघुवीर दुहाई है।[2]

---

१. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६४-५६५।
२. वही, पृष्ठ ३०३।

इसी प्रकार कवि हास-परिहास के भावों को यत्र-तत्र सृष्टि करता है। इससे विषय की गम्भीरता में सरसता तथा स्वाभाविकता के तत्व समाविष्ट हो जाते हैं और गत्वरता बढ़ती है।

वचन-चातुरी—'उर्मिला' के सम्वादों में वचन-चातुरी या वाक्-चातुर्य की द्युति भी उसी प्रकार झाँक रही है जिस प्रकार मोती में से उसकी आभा। इससे जहाँ रोचकता तथा भावमयता की श्रीवृद्धि होती है, वहाँ आनन्द की प्राप्ति भी होती है। उर्मिला, अवध-ललना, शान्ता, शत्रुघ्न, सीता, लक्ष्मण आदि के कथनों में वाक्-चातुर्य का वैभव सिमटा पड़ा है। भावविदग्धता तथा वचन-चातुरी का एक दृष्टान्त पर्याप्त है—

सीता—क्या हिय में आ बैठी कोई
सुघड़ नींद की ठकुरानी?
क्या लंका के किसी झरोखे
लगन रह गई अरुझानी?
अथवा क्या कोई वनवाला
कुछ टोना कर गई, कहो?
किसकी यह संस्मृति नैनों में
अलस चाह भर गई, अहो?[1]

लक्ष्मण—भाभी, यदि ऐसी ही भोली
होती ये विदेह ललियाँ,
यदि, यों सहज छोड़ देंती ये
रघुकुलजों का हिय-आसन,
तो क्यों आज लंक में होता
बन्धु विभीषण का शासन?
बाँध दाशरथियों को रखतीं
हैं विदेह की नन्दिनियाँ,
बड़ी चतुर हो तुम मैथलियाँ,
हो तुम सब मायाविनियाँ।[2]

इस प्रकार कवि के सम्वादों का वाक्चातुर्य, शब्द-चमत्कार, भावमयी चमत्कृति, आदि घटकों पर अवलम्बित है।

वक्तृत्व—'उर्मिला' में अनेक वक्तव्यों की संयोजना भी की गई है। यह कई रूपों में उपलब्ध है। लम्बे सम्भाषण के रूप में तृतीय सर्ग के उर्मिला तथा लक्ष्मण के कथन आते हैं। यह काव्य का मूलांश है, क्योंकि कथा के दो प्रधान पात्र जहाँ एक ओर अपनी भावनाओं तथा धारणाओं की अभिव्यक्ति करते हैं वहाँ वन-गमन की मानसिक प्रतिक्रियाओं को भी निरूपित किया गया है। इसी प्रकार उर्मिला का कला विषयक सम्भाषण तथा लक्ष्मण का प्रेम

---

१. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६३।
२. वही, पृष्ठ ५६४।

विषयक लम्बा वक्तव्य भी, तत्वों का अन्वेषण करता है। कहीं-कहीं इनमें ऊबा देने वाली स्थिति भी पैदा हो गई है।

दूसरे रूप में वक्तृताओं की परिगणना की जा सकती है। ये सुदीर्घ तथा सारगर्भित हैं। सबसे लम्बा भाषण राम का, विभीषण की राजसभा का है। इसमें वन-यात्रा की पृष्ठ-भूमि, सिंहावलोकन, लक्ष्य आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। युग-चेतना भी मचल कर यहाँ बिखर गई है। विभीषण, सुग्रीव तथा दशरथ के वक्तव्य, वृहत् से संक्षिप्त होते चले गये हैं। इनमें भी परिस्थिति तथा अवसरानुकूल तत्वों का अनुशीलन किया गया है। इन भाषणों की कथानक की तारतम्यता की दृष्टि से विशेष प्रयोजन एवं उपादेयता दृष्टिगोचर नहीं होती प्रत्युत् इनमें विचारधाराओं तथा मान्यताओं से अवगत होने के लिए प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। साथ ही, कवि ने अपने युग की भाषण-मालाओं से भी प्रभावित होकर, इनकी सृष्टि की है।

रोचकता—'उर्मिला' के प्रायः सभी सम्वादों में रोचकता के अंशों का अभाव नहीं है। सुदीर्घ वक्तव्यों में इनका कुछ कम अंश मिलता है। कवि सामान्य वार्त्तालाप को भी सुगम्य बनाये रखता है—

सीता—नहीं विनोद, सत्य कहती हूँ,
तुम तो, ललन, बिना श्रम ही,—
करते हो तत्वार्थ निरूपण,
अपने अग्रज के सम ही।
लक्ष्मण—वत्सल कृपा तुम्हारी है यह,
जो तुम ऐसा कहती हो,
भाभी, मुझ पर तुम अनुकम्पा
सन्तत करती रहती हो,
है पैतृक सम्पदा तुम्हारी
यह तत्वार्थ निरूपण, देवि,
मैथिल-महा प्रसाद-राशि से
मैंने पाये कुछ कण, देवि।[1]

कथा-सूत्र को भी रोचकता से अग्रसर किया जाता है और भावी वन-यात्रा का भी संकेत कर दिया जाता है।[2] इसी प्रकार रोचक-तत्वों ने कथा की सरसता तथा बोध-गम्यता में महत् योगदान दिया है।

निष्कर्ष—'उर्मिला' में छोटे, संयत तथा तीक्ष्ण सम्वादों की अपेक्षा दीर्घ, विचारमय, सारगर्भित तथा वस्तु-निरूपक सम्वादों की प्रधानता है। जहाँ कहीं भी, छोटे सम्वादों की परियोजना की गई है, वहाँ कलात्मक सौष्ठव निखरा, उभरा, प्रभविष्णु, मार्मिक तथा सन्तुलित है। सुदीर्घ वक्ताओं में दुरूहता तथा बोझिलता के गुण भी आ गये हैं।

---

१. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६०८।
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ११६।

सम्वादों से काव्य में नाट्य-शिल्प तथा मनःस्थिति-विश्लेषक उपादानों की विभा द्विगुणित हो गई है। सम्वादों के प्रमुख उपकरणों ने नाना उद्देश्यों की सम्पूर्ति की है। 'साकेत' के सम्वादों में जो तीक्ष्णता, सभा-चातुरी, वाक्छल, व्यापकता, संक्षिप्तता तथा विविधता दिखाई देती है, वह 'उर्मिला' में नहीं है।

वस्तु-निरूपण

'उर्मिला' में कथा-चरित्र, भाव-व्यंजना, प्रभावान्विति आदि के अतिरिक्त, विभाव-पक्ष का भी निरूपण प्राप्त होता है। कवि-कल्पना ने अनेक उपादानों का उद्घाटन किया है जिनमें रूप-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, परिवेश-योजना, दृश्यांकन आदि आते हैं। यहाँ पर वस्तु-निरूपण तथा भाव-व्यंजना के अन्योन्याश्रित रूप को भी दर्शाया गया हैं।

रूप-चित्रण—कवि ने नारी तथा पुरुष, दोनों ही रूपों की सृष्टि की है। नारी-वर्ग के अन्तर्गत, उर्मिला तथा सीता के चित्र अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं। ये चित्र प्रायः सभी सर्गों में प्राप्त होते हें। कवि ने समग्र रूपांकन की अपेक्षा छोटे-छोटे चित्र अधिक प्रदान किये हैं। सीता-उर्मिला के बाल्य-चित्र की छटा दर्शनीय है—

इन छोटे मधु रस-कूपों की दुर्गम गहराई है—
हास-वेश से हँसी अमिय-घट भरने को आई है।[1]

राम तथा लक्ष्मण के रूप-वर्णन में पौरुष की प्रधानता है। राम के चित्रण में उदात्त तत्व का रंग गहरा हो गया है—

उठे राम निज सिंहासन से,—
धन्य मंजु छवि स्वप्निल सी,
धन्य योग निद्रिता, जागृता,
वह लोचन छवि झिल-मिल सी।[2]

लक्ष्मण के चित्र में पौरुष-शक्ति तथा साधना की रेखाओं ने ही सक्रियता दिखलाई है।[3]

'नवीन' जी के रूप-चित्रणों में, स्थूलता, शरीरी-वृत्ति तथा मांसलता की प्रधानता नहीं है। उन्होंने रूप का चित्रण वस्तुपरक न करके, भाव या प्रतिक्रियापरक अधिक किया है। उनमें स्थूल अतिरंजना का अभाव है। यह उनके श्रृंगार-रस के चित्रण के ठीक विपरीत है, क्योंकि श्रृंगार-रस में उन्होंने मांसलता को प्रधानता प्रदान की है। इन कारणों से, कवि ने कहीं भी अपने नायक-नायिका का समग्र रूप-वर्णन प्रस्तुतः नहीं किया है और समूचा मांसल रूप अनुपलब्ध है।

मुद्रा-चित्रण—'उर्मिला' में अपने पात्रों के हाव-भाव, क्रियाशीलता, अनुभाव आदि के विविध चित्र मिलते हैं।

---

१. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ २८।
२. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५३२।
३. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ ३३८-३३९।

उर्मिला का स्थिर चित्र द्रष्टव्य है—

मानो अर्थ सृष्टि रचना कर आदि कल्पना बैठ रही हो,
कुछ-कुछ श्रमित और कुछ विस्मित मन ने मानो बाँह गही हो,
झलक रही है कुशल तूलिका में अनेक रंगों की झाँई'
मानो पंचरंगी साड़ी की पड़ी लोचनों में परछाई।[1]

प्रस्तुत-चित्र में लक्ष्मण-सुमित्रा-उर्मिला का समूह अपनी छटा बिखेरता है—

सुमित्रा उन दोनों के बीच—
हो रही थी पर्यंकासीन,
कि मानो दो मध्याह्नों मध्य—
हो रही अरुणा सन्ध्या-लीन।[2]

इस प्रकार कवि ने विभिन्न चित्रों तथा मुद्राओं का आकलन कर अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है। 'उर्मिला' में रूप-चित्रों की अपेक्षा मुद्रा-चित्रों की बहुलता है। इन चित्रों ने आन्तरिक सौन्दर्य का भी समुचित रूप से उद्घाटन किया है।

प्रकृति-वर्णन

'उर्मिला' में प्रकृति-वर्णन के सुन्दर चित्र उपलब्ध होते हैं। कवि ने अपने कथानक में ऐसे अंशों की संयोजना की है; जहाँ वह अपने प्रकृति-प्रणय को प्रस्फुटित कर सके। सीता तथा उर्मिला की कहानियों, लक्ष्मण-उर्मिला की विन्ध्य-वन यात्रा आदि कई ऐसे कथांश हैं, जहाँ कवि ने सुन्दर प्रकृति-चित्रण किया है।

कवि ने अपने काव्य में प्रकृति को कई रूपों में प्रस्तुत किया है। कभी वह पृष्ठ-भूमि का निर्माण करती है और कभी वह भावोद्दीपन करती है। कई स्थलों पर उसका स्वतन्त्र चित्रण भी प्राप्त होता है। अनेक बार वह भावों का स्पष्टीकरण तथा रूपांकन करती भी दृष्टगोचर होती है। प्रस्तुत-काव्य में निम्नलिखित रूप में प्रकृति-चित्रण का आकलन उपलब्ध है—

(क) वर्णनात्मक प्रकृति-चित्रण—'नवीन' जी ने प्रकृति के कई छोटे-बड़े चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चित्रों में प्राकृतिक वातावरण की विशालता तथा पृष्ठाधार की उपलब्धि होती है। सीता, गान्धार देश के प्राकृतिक परिवेश की रेखाओं का सुन्दर विश्लेषण करती है—

पर्वत पादस्था उपत्यका शोभित यों होती थी—
आरोहण की लय अवरोहण में मानो सोती थी;
पर्वत की शुभ्रता और भू की कालिमा निराली,—
मानो श्वेत कृष्ण केशों की बनी हुई थी लाली।[3]

(ख) संवेदनात्मक प्रकृति-चित्रण—प्रकृति के भाव-चित्रों की भी बहुलता

---

१. 'उर्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ६८।
२. वही, पृष्ठ ११४।
३. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ ३४।

दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति तथा मानव-हृदय के मध्य सामंजस्य निरूपित करते हुए, प्रकृति का सम्वेदनात्मक रूप कई चित्रों में अभिव्यक्त हुआ है—

उद्ग्रीव हुए, आतुर से,
तरु किसको बुला रहे थे ?
कुछ सैन निमन्त्रण देते,
क्यों बाहें डुला रहे थे।[1]

(ग) भावोद्दीपक प्रकृति-वर्णन—कवि ने विशिष्ट भावों के उद्दीपनार्थ भी प्रकृति की संयोजना की है। प्रकृति भी उसी प्रकार का वातावरण उत्पन्न करती दृष्टिगोचर होती है। लक्ष्मण-उर्मिला की प्रस्तावित वन-यात्रा के पूर्व, प्रकृति का उद्दीपक रूप द्रष्टव्य है—

फुल्ल कुसुमों ने भेजे पत्र,
पक्षियों के नीड़ों के द्वार;
और लिख भेजा उनको कि है—
आज रसिकों का रास-विहार;
चिटक कलिकाएँ कहने लगीं—
"रास हम भी देखेंगी आज;
न होंगी किन्तु सम्मिलित अभी
क्योंकि लगती है हमको लाज"।[2]

कवि ने उर्मिला-विरह-वर्णन में षट्-ऋतु-वर्णन की सुन्दर संयोजना की। उर्मिला के विरही मनोदशा तथा कृश-गात में अनेक ऋतुएँ एकत्रित होकर अपने शिविर बना देती हैं।[3]

(घ) आलंकारिक प्रकृति-वर्णन—'उर्मिला' में प्राकृतिक अलंकरण भी प्राप्य है। कवि ने अपनी भावनाओं के स्पष्टीकरण हेतु, प्रतीकों तथा प्राकृतिक उपादानों का प्रश्रय ग्रहण किया है। प्रस्तुत प्रकृति-चित्रण आलंकारिक रूप में सजीवता लिये हुए हैं—

प्राची दिशा बधूटी के सम श्री उर्मिला वधू के लोचन,
कुछ-कुछ उन्मीलित हैं; उनमें छाए हैं लक्ष्मण, रवि-रोचन,
अभी आँख के ओझिल हैं वे, यथा प्रात के पूर्व दिवाकर,
आ पहुँचा आलोक उर्मिला के कपोल के फुल्ल कमल-सर।[4]

(ङ) पृष्ठाधार प्रतिपादक प्रकृति-वर्णन—कवि की प्रकृति कथा की सहचरी है। वह कथा के अनुकूल अपने रूप को सजाती-सँवारती दृष्टिगोचर होती है। सीता की राजकुमारी वाली गाथा में प्रकृति का रमणीक रूप उत्साह-वर्द्धक और नयनाभिराम है—

---

१. 'उर्मिला', चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ३५४।
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १२३।
३. वही, पंचम सर्ग, पृष्ठ ४३६।
४. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ६७

स्वर्ण छटा से जब आलोकित होती पर्वत श्रेणी,
तब मानों रवि किरण गूँथती थी उसकी शुभ वेणी,
पर्वत माला अपने हिय का हिय पिघला-पिघला कर,
सूर्यदेव को जलार्घ्य देती थीं हिय को विकसा कर ।[1]

इस प्रकार कथानुकूल प्रकृति अपना परिवेश उपस्थित करती है । सीता की कथा के प्रकृति में जहाँ उत्साह तथा नव-चेतना है; वहाँ उर्मिला की गाथा में प्रेम-वृत्ति को अभिव्यक्ति मिली है ।

(च) उपदेश-परक प्रकृति-वर्णन—गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकृति को उपदेशात्मकता के आवरण में चित्रित किया है—

दामिनि दमक रही वन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ।।
बरषहिं जलद भूमि नियराए । जथा नवहिं बुध विद्या पाए ।।[2]

'नवीन' जी ने यद्यपि उपदेशपरक प्रकृति-चित्रण का पूर्णरूपेण अनुवर्तन तो नहीं किया है, परन्तु उसकी झलक कहीं दृष्टिगोचर हो जाती है । निम्न पद्यांश में सघन वृक्ष, अवनि की रक्षा करते उसी प्रकार बताये गये हैं; जिस प्रकार सुपुत्र अपनी माता की रक्षा करता है—

जब रवि अपने प्रखर करों में ज्वाला ले आता था—
झुलसाने को पृथ्वी जब वह क्रोधित हो जाता था—
तब वे सघन वृक्ष उस भू की करते थे रखवारी,
ज्यों सपूत बालक करता है रक्षित, निज महतारी ।[3]

'नवी' जी के काव्य में प्रकृति के उपदेशपरक चित्र अत्यल्प ही हैं । इससे उसके श्रेष्ठ प्रकृति-चित्रण का परिचय भी प्राप्त होता है ।

दृश्यांकन

'उर्मिला' के दृश्य विधान को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) भौतिक चित्रण या निर्जीव चित्रण; (ख) गार्हस्थ्यिक अथवा लौकिक या सजीव चित्रण ।

भौतिक चित्रण के अन्तर्गत देश-काल-वातावरण आदि का आकलन किया जाता है और कवि अपने काव्य के सहायक उपकरणों की नियोजना करता है । प्रबन्ध-काव्य होने के नाते, कवि ने नगर, राजप्रासाद, उद्यान, वातावरण आदि का विस्तृत वर्णन किया है । लौकिक चित्रण में प्रसंग, परिस्थिति आदि का विश्लेषण अपेक्षित होता है ।

(क) भौतिक चित्रण – कवि ने अपने काव्य का आरम्भ जनकपुरी के शोभा-वर्णन से किया है । इससे काव्य की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है और ऐतिहासिकता का भी उद्भव हुआ है ।

---

१. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ३४ ।
२. 'रामचरितमानस', किष्किन्धा काण्ड, १४।१-२ ।
३. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ४७ ।

जनकपुरी के चारों ओर रक्षा-प्राचीर है। इसमें चार द्वार हैं। दशरथ एवं विभीषण की राज-सभा का भी चित्रण है। कवि ने उपयुक्त दृश्यों एवं नगरों का वर्णन करके, अपनी कथा-वस्तु के लिए उपयुक्त रंग-मंच का निर्माण किया है। इन दृश्य-योजनाओं में ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भावात्मक वातावरण तथा परिप्रेक्ष्य को मुखरता प्राप्त हुई है।

(ख) गार्हस्थिक-चित्रण—'नवीन' जी ने अपने काव्य में गृहस्थी-विषयक जीवन के भी कई गतिशील तथा सजीव चित्र खींचे हैं। यद्यपि 'नवीन' जी ने राम-कथा को पारिवारिक धरातल पर खड़ा न करके, उसे सांस्कृतिक-परिप्रेक्ष्य में अवलोका है; फिर भी वे गृहस्थ-जीवन की अवहेलना नहीं कर सके हैं।

'उर्मिला' के प्रायः सभी पात्र गृहस्थ हैं परन्तु इनमें से कतिपय सम्बद्ध जीवन को ही कवि ने उठाया है। जनक, लक्ष्मण तथा राम के गृहस्थी-विषयक चित्र होते हैं। इस प्रकार ये चित्र न्यून तथा विरल हैं। कवि ने मानसिक प्रतिक्रियाओं की ओर अधिक ध्यान दिया है और उनका सांस्कृतिक निरूपण प्रस्तुत किया है।

गार्हस्थिक-चित्रण की रेखाएँ अपनी सीमाओं में कई विषयों, प्रसंगों, मनोभावों तथा परिस्थितियों को पाश-बद्ध करती हैं, अतएव उनका निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) वाह्य रूप, (२) दाम्पत्य, (३) वात्सल्य, (४) सुश्रूषा, (५) देवर-भाभी सम्बन्ध, (६) भ्रातृत्व, (७) भगिनी-सम्बन्ध और (८) सेवक-समाज।

(१) वाह्य रूप—गृहस्थ-जीवन पारिवारिक सदस्यों, शिशु-क्रीड़ा, सम्पदा, विशाल घर-द्वार आदि से आपूर्ण रहता है। घर का भरा-पूरा रहना गृहस्थ-जीवन का वाह्य उपकरण है। कवि ने राजा जनक का यही प्रसंग प्रस्तुत किया है। दशरथ भी अपनी राजसभा में और सुमित्रा अन्तःपुर में, अपने पुत्र तथा पुत्र-वधुओं से सुखी, प्रसन्न तथा गौरव मण्डित दिखाई देती हैं। कवि ने इन उपकरणों के संकेत प्रदान किये हैं। गृहस्थ-जीवन में माता-पिता, पति-पत्नी, देवर-भाभी, ननद-भाभी, स्वामी-परिचारक तथा सहयोगी आदि के अंग सुगठित होते हैं।

(२) दाम्पत्य—'उर्मिला' में दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी कतिपय प्रसंगों का ही उल्लेख आया है। शृंगार-रस की प्रधानता होने के कारण, कवि ने तद्विषयक चित्र खींचे हैं। राम-सीता तथा जनक-सुनयना के भी मर्यादा-सम्पन्न चित्र हैं।

(३) वात्सल्य—सुमित्रा, लक्ष्मण के समान, शत्रुघ्न को भी डाँटती हैं और उर्मिला पर अगाध स्नेह की वृष्टि करती हैं। सुमित्रा का वात्सल्य एकांगी न होकर, बहुमुखी है। कवि ने उनकी राम-सीता के प्रति स्नेह-वृत्ति की विशद विवेचना तृतीय सर्ग में की है। उनका वात्सल्य, व्यापक तथा निष्कपट है।

सुनयना का वात्सल्य अपनी ललनाओं पर उमड़ा पड़ता है। सुमित्रा के समान, वे भी वात्सल्य तथा ममत्व की प्रतिमूर्त्ति हैं। सीता को भी वात्सल्य तथा ममता के रंगों से कवि ने रंगा है। सीता के इस पार्श्व का उद्घाटन, लक्ष्मण तथा उर्मिला के प्रति मुक्तरूप में हुआ है।

(४) सुश्रूषा—सीता तथा उर्मिला, दोनों ही, अपनी सासों तथा ज्येष्ठ व्यक्तियों के प्रति सम्मान, विनम्रता तथा सेवा की भावना को प्रकट करती दृष्टिगोचर होती हैं। उर्मिला

ने तो अपनी सभी सासों को, अपनी सेवा-वृत्ति तथा विनम्रता से मोहित कर लिया था। वह सुमित्रा की सेवा में तत्पर दिखाई देती है। सीता भी सुमित्रा के प्रति अपनी श्रद्धा को उड़ेलती है।

(५) **देवर-भाभी सम्बन्ध**—इस प्रसंग में उर्मिला-शत्रुघ्न एवं सीता-लक्ष्मण के चरित्रों को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है। कवि ने देवर-भाभी के सम्बन्ध को सम्मानपूर्ण तथा मधुर रूप में प्रस्तुत किया है। देवर-भाभी आपस में गम्भीर विषयों की चर्चा भी करते हैं और हास-परिहास भी करते हैं। उर्मिला-शत्रुघ्न-सम्वाद में, कला जैसे गम्भीर विषयों की चर्चा भी उठाई गई है। इसी प्रकार अन्तिम सर्ग में, लक्ष्मण और सीता भी गम्भीर विषयों पर पहुँच जाते हैं और प्रेम के स्वरूप, वन-यात्रा की महत्ता, राम-लीला आदि के आधारों तथा ध्येयों पर वार्तालाप करते हैं।

इस पक्ष के अतिरिक्त, मधुर विनोद से परिप्लावित प्रसंगों की भी कल्पना की गई है। इसमें श्रद्धा के साथ-साथ मृदुलता एवं वाक्-चातुरी के भी दर्शन होते हैं। इन प्रसंगों ने रोचकता-वृद्धि में महत् योगदान प्रदान किया है।

इन सम्बन्धों में मर्यादा का ध्यान रखा गया है। लक्ष्मण, सीता के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना को प्रकट करते हैं और सीता भी लक्ष्मण पर पुत्रवत् प्यार करती हैं।

भ्रातृत्व—इस काव्य में राम-लक्ष्मण के भ्रातृत्व को ही प्रमुखता मिली है। भरत एवं शत्रुघ्न की महान् भायप-भक्ति के यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होते हैं। लक्ष्मण, राम के प्रति एकनिष्ठ तथा पूर्ण निरत हैं। वे अपने जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव राम का ही पाते हैं। लक्ष्मण को काव्य का नायक बना देने पर भी कवि ने कहीं भी भायप-भक्ति में अन्तर या लक्ष्मण के चरित्र के उत्कर्ष बताने के हेतु, राम का अपकर्ष प्रदर्शित नहीं किया है। राम उनके लिए पितृ-तुल्य हैं। वे तो सिर्फ उनके अनुगत मात्र हैं। राम ने भी अपने स्नेह तथा ममत्व की समग्र वृष्टि लक्ष्मण पर की है। राम ने अपने आदर्श तथा लक्ष्मण ने अपनी तपस्या से काव्य के आलोक-पुंज का सृजन किया है। इस प्रकार दोनों के आदर्श प्रेम तथा अटूट आस्था की, कवि ने बड़ी सुन्दर व्याख्या की है।

(७) **भगिनी सम्बन्ध**—'उर्मिला' में सीता-उर्मिला-माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति, चारों बहिनों का वर्णन मिलता है परन्तु जहाँ प्रथम दो बहिनों ने काव्य-कथा पर आधिपत्य स्थापित किया है, वहाँ अन्तिम दो बहिनों ने अपने नामोल्लेख से ही अपने चरित्र की इति-श्री समझ ली है।

सीता तथा उर्मिला के बाल्यावस्था के चित्रों में दोनों की पारस्परिक क्रीड़ाओं एवं प्रेम की मार्मिकव्यंजना हुई है। अपने वैवाहिक जीवन में यह प्रेम कम न होकर, उत्तरोत्तर अग्रसर होता चला जाता है। तृतीय सर्ग में, वन-गमन के प्रसंग में, कवि ने इन दोनों भगिनियों के अटूट प्रेम तथा निष्ठा की कुशल अभिव्यक्ति की है।

भगिनी-सम्बन्ध के समान, ननद-सम्बन्ध भी काफी उभर कर आया है। शान्ता को 'साकेत' की अपेक्षा 'उर्मिला' में अधिक रेखाएँ प्राप्त हुई हैं। शान्ता तथा उर्मिला का सम्बन्ध विनोद-मण्डित तथा सौहार्द्रमय बताया गया है। इस सम्बन्ध में पूज्य-भाव की रक्षा भी की गई है।

(८) सेवक—'उर्मिला' में सेवक-समाज को प्रमुखता नहीं मिली है। यत्र-तत्र उनके उल्लेख मात्र ही आये हैं और वे भी अत्यन्त विरल। राम-कथा के विस्तार को ग्रहण न करने के कारण, कवि के पास सेवक-समाज को प्रस्तुत करने का न तो समय ही था और न स्थान।

निष्कर्ष—'उर्मिला' के गार्हस्थिक चित्रण में विपुलता तथा विविधमुखता का अभाव है। 'साकेत' के समान, उसमें उत्कर्ष तथा विस्तृत वर्णन का प्रभाव नहीं मिलता। 'नवीन' जी इस दिशा में गुप्त जी की ऊँचाई को स्पर्श नहीं कर सके हैं।

विरह-वर्णन

पृष्ठभूमि—'नवीन' जी की यह महान् विशेषता रही है कि उनकी उर्मिला का समस्त चरित्र, आद्योपान्त रूप में, विषाद की छाया से ग्रसित है। कवि ने विरह की वेदना के मूल उत्स को उसकी बाल्यावस्था से ही प्रवहमान कर दिया है। कपोत-कपोती की कथा, विन्ध्य-वन-यात्रा, हास-विलास के चित्रों में अन्तर्हित नियति का सूक्ष्म व्यंग्य आदि के समवेत सूत्र ने उर्मिला को चौदह वर्ष की वियोग-साधना के कक्ष में लाकर खड़ा कर दिया है।

वन-गमन की बेला में, दाम्पत्य जीवन की विलासिता तथा मधुरता के स्थल पर व्यथा, वेदना, आकुलता, शोक, सन्ताप, रुदन, टीस, कराह आदि अपने डेरे डाल देते हैं। इस समाचार को सुनते ही उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। वह आकुल-व्याकुल हो जाती है। उसकी वाणी उलझ जाती है, हृदय द्रवीभूत हो जाता है। अश्रुपात के माध्यम से उसका हृदयगत संचित प्यार, पिघल कर बहने लगता है। भाषा शिथिल पड़ जाती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और उसका रोम-रोम सिहर उठता है। अन्ततः वह अपने हृदय की समग्र वेदना तथा व्याकुलता को समेटकर और उसे सन्तुलित कर, अपने लक्ष्मण को कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं करती है। उसकी टीस उसके कर्तव्य के आच्छादन में सिमट आती है। लक्ष्मण विदा के पश्चात् कवि ने समस्त विश्व में वेदना को डोलते पाया है। सम्पूर्ण विश्व की वेदना उसके हृदय में आसंचित हो गई है।[1]

स्वरूप तथा सीमा—'उर्मिला' के विरह-वर्णन को दो सर्ग प्राप्त हुए हैं। इनमें कवि ने विरह की विविध दशाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। विरह-वर्णन में कवि ने प्राचीन पद्धति एवं नूतन भाव-योजना का स्वर्णिम समन्वय उपस्थित किया है।

उर्मिला के विरह में कवि ने नानाविध भावनाओं को प्रस्फुटन प्रदान किया है। इसके लिए उन्होंने गीत-शैली को ही अपनाया है। विरहिणी ने अपने विरह-साधना की सीमा को योग के सन्निकट ला उपस्थित किया है। वह लक्ष्मण की ही भाँति निद्रा, माया, ममता, काम, मोह, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त कर, एक जोगन की भाँति, प्रतीक्षा के मार्ग में अपना दीपक जलाये निरन्तर बैठी रहती है। कभी-कभी उसकी दीप-शिखा विकम्पित होने लगती है, परन्तु फिर भी वह साहस, साधना तथा लगन की अवज्ञा नहीं करती। उसका वियोग, अभिशाप नहीं अपितु वरदान है और उसमें मानवता की मूल प्रेरणा है।

भाव-विश्लेषण—पंचम सर्ग में जनकनन्दिनी के वियोग का सागर उमड़ पड़ा है। उसमें तीव्र विरहानुभूति की उत्ताल तरंगें ऊर्ध्वमुखी हो रही हैं। उर्मिला ने अपने तपोनिष्ठ

१. 'उर्मिला', चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ३८८।

तथा सच्चे वियोग का ही परिचय दिया है। वह इस घोर संकट को अकेले ही वहन करना चाहती है। वह अपने प्रियतम को कर्त्तव्यच्युत नहीं करना चाहती। वह नहीं चाहती कि उसके श्वासोच्छ्वास के तारों में लक्ष्मण के दृग फँसकर, लक्ष्यभ्रष्ट होने का प्रसाधन देवें।[१]

वह अपने शिकारी पति से प्रार्थना करती है कि उसके विरही-जीवनरूपी सघन वन में जो निराशा-सिंहिनी अपने भय-शावकों को लेकर चहुँओर डोल रही है, उसका वह पलक की प्रत्यंचा और भृकुटि के तीर-कमान के आश्रय से, दृगरूपी बाण से वध करे।[२] कवियों ने अपने नायिका के कृश-गात का वर्णन अवश्य किया है। यह विरह-जन्य प्रभाव है। तुलसीदास ने लिखा है—

अब जीवन के है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया के मुंदरी कंगना होइ।[३]

इसी प्रकार जायसी ने भी कृशता को रेखाओं में बाँधा है—

हाड़ भए झुरि किंगरी, नसैं भईं सब ताँति,
रोव-रोव तन धुनि उठै, कहेसु बिथा एहि भाँति।[४]

गुप्त जी की 'उर्मिला' भी पूछती है—

सखी, साम क्या मैं घुली जा रही।
मिलूँ चाँदनी में, बुरा क्या यही।[५]

प्रसाद जी की श्रद्धा की भी यही दशा है—

शिथिल शरीर, वसन विशृंखल खरी अधिक अधीर खुली,
छिन्न पत्र मकरन्द घुटी-सी, ज्यों मुरझाई हुई कली।[६]

इसी परिपाटी के अन्तर्गत, 'नवीन' जी की उर्मिला के 'तन छीन' का वृतान्त भी दर्शनीय है—

विकल प्राण, आकुल नयन, व्याकुलपन, तन छीन।
बुद्धि चकित, हिय दुख-निरत, अहं-सुरत रस-लीन।[७]

कवि ने उसके विरह पर आध्यात्मिक रंग भी चढ़ाना चाहा है। यह प्रेम-योगिनी इस निष्कर्ष पर आती है कि जीवन में विरह-व्यथा से हाहाकार करना व्यर्थ है। इसका मूक पान करना चाहिये।

---

१. उर्मिला, पञ्चम सर्ग, पृष्ठ ४००।

२. वही।

३. 'बरवै रामायण', सुन्दर-काण्ड।

४. डॉ० माताप्रसाद द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली', पद्मावत, दोहा ३६१, पृष्ठ ३६५।

५. 'साकेत', नवम सर्ग, पृष्ठ २१६।

६. 'कामायनी', निर्वेद, पृष्ठ २१२।

७. 'उर्मिला', पृष्ठ ४०२।

अन्त में उसके प्रियतम सर्वव्यापक हो जाते हैं।[1] वह अपने प्रियतम का सर्वत्र साक्षात्कार करती हुए द्वैत से अद्वैत हो जाती है। उसका अहं विनष्ट हो जाता है और वह स्वयं लक्ष्मण-रूप बन जाती है—

मेरे कर में धनुष है, मेरे कर करवाल,
भई जनक जा उर्मिला, लक्ष्मण, दशरथ लाल।[2]

षट्-ऋतु-वर्णन—उर्मिला की व्यथा-वेदना पर ऋतुओं के परिवर्तन का भी गहन प्रभाव पड़ता है। षट्-ऋतुएँ उसके जीवन में विकट धूम मचाती हैं। कवि ने यहाँ परम्परागत रूप को ही ग्रहण किया है।[3]

'साकेत' के समान, 'उर्मिला' का भी षट्ऋतु-वर्णन ग्रीष्म से आरम्भ होता है। ग्रीष्म-ऋतु अपने पूर्ण प्रवेग के साथ उसके मृदुल-गात पर धावा बोलती है। विरहिणी अपने पथ से च्युत नहीं होती—

लगत प्यास, श्रमकरण चुवत, छुवत, लपट मय पौन,
चली जात, होऊ सतत, पथगामिनि यह कौन ?[4]

वर्षा-ऋतु में उसका हृदय हहर उठता है, गहन उमंगें घहरने लगती हैं, नयनों में वेदना का रंग बहने लगता है और अश्रुपात के कारण, उसकी जीवन-डगरिया पंकिल हो जाती हैं। फिर भी वह अपने लक्ष्योन्मुख है—

अँसुवन हैं जीवन-डगर, पंकमयी न्हैं जात,
फिसलत-फिसलत यात्रिणी, चली जात अकुल्यात।[5]

शरद् ऋतु में पूर्ण चन्द्र प्रियतम का स्मरण दिला देता है—

ज्यों पूरन शशि उदित ह्वै, लसत गगन झंकार,
त्यों विलसत हिय-गगन में, पीतम-छवि-साकार।[6]

शिशिर ऋतु कामोद्दीपन करती है—

आलिंगन की भावना, संग रहिबे की चाह,
शिशिर-निराशा में करत, शीतल हिय-उत्साह।[7]

माघ के मेघों के प्रतिक्रिया भी द्रष्टव्य है—

गरजत माघ के मेघ घिरत सब ओर,
कंपत चरण, लरजत हृदय, होत शब्द घनघोर।[8]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ५१२।
२. वही, पृष्ठ ५१५।
३. वही, पृष्ठ ४३६।
४. वही, पृष्ठ ४३७।
५. वही, पृष्ठ ४३८।
६. वही, पृष्ठ ४३९।
७. वही, पृष्ठ ४४०।
८. वही, पृष्ठ ४४१।

हेमन्त ऋतु तो संशय तथा आशंकाओं को जन्म देती है। स्थिति का आकलन इस प्रकार होता है—

रोम-रोम कँपि उठतु है, ठिठुरि जात अंग-अंग,
आँखिन तैं चुइ परतु है, हिय-वेदना अनंग।[१]

वसन्त जहाँ आशा को बाँधता है, वहाँ वेदना को भी उकसाता है—

छाँड़ि शिशिर नैराश्यमय, संशयमय हेमन्त,
पावत तव पथ गामिनी, पुनि चिर आश वसन्त।
उठि आवत है हृदय तैं, पुनि नव जीवन साँस,
आशा सुहरावति सम्हरि, दुसह वेदना फाँस।[२]

कवि, न केवल ऋतु-परिवर्तन के प्रभावों को ही विरहिणी पर आँका है, प्रत्युत् प्रकृति में भी भाव-साम्य उपस्थित किया है। वियोगिनी उर्मिला को प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में अपने स्वामी के व्यक्तित्व के विविध अंशों की आभा ही दृष्टिगोचर होती है। उसने अपने प्रियतम की विभिन्न भावनाओं को प्रकृति के विभिन्न रूपों में देखा-परखा है। पतझड़ में उनका वैराग्य, किसलयों में उनका रुचिर अनुराग, पाटल-कुसुम में हास्यतरंग, पुष्प-पल्लवों में उनका सौकुमार्य, पराग में उनकी चरण-रेणु, मार्तण्ड में उनका तेज-दर्प, और पावस-ऋतु में उनकी मादकता का रंग छलकता दिखाई देता है।[३]

वियोग अवस्थाएँ—विरह की दस अवस्थाएँ या काम दशाएँ मानी गई हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, अलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।[४] 'अभिलाषा' का चित्रण इन पंक्तियों में हुआ है—

लिपटि लपैटों भुजन तैं तुमहिं जीवनाधार,
छाय, निछावर ह्वै रहौं, बस इतनी मनुहार।[५]

लक्ष्मण के लक्ष्य-भ्रष्ट होने की चिन्ता के कारण उर्मिला दृष्टि निषेध करती है—

मुरि जनि देखहु तुम इतैं, हे सुकुमार कुमार,
अरुझि जाइँगे दृग, इहाँ बिधे सांस के हार।[६]

उर्मिला को अपने विगत दिनों की स्मृति हो आती है--

इतनी दृढ़ता सो गह्यो, मो कर उन, करि प्यार,
हौं विदेह-तनया, हहरु, करि उठती सीत्कार।[७]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ४४२।
२. वही, पृष्ठ ४४३।
३. वही, पृष्ठ ५११।
४. श्री रामदहिन मिश्र 'काव्य-दर्पण', पृष्ठ १७६।
५. 'उर्मिला', पृष्ठ ४६२।
६. वही, पृष्ठ ४००।
७. वही, पृष्ठ ५०२।

लक्ष्मण के गुण-कथन के रूप में अनेक दोहे प्राप्त होते हैं। उर्मिला की स्मृति उनके गुणों का उद्‌घाटन कर रही है—

वह उत्साह अदम्य अति, उनकी वह ठकुरास,
सद्य: स्मृति की अजहुँ वह, हियहि करत सोल्लास।[1]

वह शारीरिक तथा मानसिक उद्वेग से पीड़ित है—

आलिंगन की भावना, संग रहिबे की चाह,
शिरि-निराशा में करत, शीतल हिय-उत्साह।[2]

कवि ने उन्मादावस्था का चित्रण इन पंक्तियों में किया है—

भयो उर्मिला को हृदय, लक्ष्मण हृदय अनूप,
बनी उर्मिला लखनमय, लखन उर्मिला रूप।[3]

प्रलाप, व्याधि, जड़ता एवं मरण के स्पष्ट मनोवृत्ति-परिचायक चित्र विरल हैं। कवि ने इन काम दशाओं के चित्रण में स्वच्छन्द भावभूमिकाओं का भी प्रयोग किया है, केवल रूढ़ियों का अनुसरण मात्र नहीं।

पवत्स्यत्पतिका तथा प्रोषितपतिका—कवि ने उर्मिला का चित्रण पवत्स्यत्पतिका एवं प्रोषितपतिका नायिका के रूप में किया है। अपने स्वामी की प्रवास-बेला में वह दुःखी तथा खिन्न अवश्य है परन्तु उनके मार्ग का विघ्न नहीं बनती। कवि ने उसकी मनोव्यथा की मार्मिक व्यंजना की है।

रीति की छाप—कवि ने विरह-व्यंजना के लिए दोहे-सोरठे वाली मुक्तक शैली को अपनत्व प्रदान किया है। कवि के हृदय में प्राचीन काव्य के प्रति बड़ा मोह था। वे ही संस्कार यहाँ प्रस्फुटित हुए हैं। यहाँ रीतिकालीन मनोवृत्ति का भी परिचय प्राप्त होता है। 'रामचरित-मानस' में दोहे-चौपाई की शैली अपनाई गई है। सम्भवतः कवि ने उसी का ही अनुवर्तन करते हुए, दोहे-सोरठा की पद्धति को अपनाया हो। कवियों में कृष्ण की भक्ति के जन्मजात संस्कार थे, एतदर्थं, उनकी मुक्तक शैली को ही उसने श्रेयस्कर समझा हो। साथ ही, 'साकेत' में प्रगीतों के माध्यम से वियोगावस्था का चित्रण देख, कवि ने दोहा-सोरठे की पृथक्, अभिनव तथा संस्कारगत शैली को ही अपनाना उचित समझा। आधुनिक काव्य में यह पद्धति नहीं अपनाई गई है। दोहा, कवि का प्रिय, सहज तथा प्रवृत्यानुकूल छन्द है।

कवि पर जायसी, कबीर, रहीम आदि कवियों का गहन प्रभाव पड़ा है। जहाँ 'उर्मिला' में भौतिक-वियोग पर अभौतिक आच्छादन चढ़ाया है, वहाँ उसने जायसी प्रवृत्ति रहस्य-वादी कवियों के सहाय शब्दावली का प्रयोग किया है। पंचम सर्ग में प्रयुक्त योगिनी, सुमिरिनी, चुनरी, ध्यान, ज्ञान तथा प्रियतम के प्रगम्य देश की चर्चा आदि पर निर्गुण-सन्तों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। जायसी के प्रभाव के कारण ही, कवि ने कहीं-कहीं लौकिक-व्यथा को अलौकिक रूप प्रदान किया है। कवि ने कहा है—

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ४६६।
२. वही, पृष्ठ ४४०।
३. वही, पृष्ठ ५१५।

लुट गई उर्मिला पल में
देकर अपना जीवन धन,
प्रिय के विछोह की लपटें,
बन गई यज्ञ - हुताशन,
विरहानल मय मरुथल में
खिल उठीं तपस्या-कलियाँ,
हिय धड़कन बनी सुमरनी,
संस्मृति बन गई अंगुलियाँ ।[1]

जायसी भी कहते हैं—

गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, कवि सहि न सकहिं वह आगि ।
मुहमद सती सराहिए, जरै सो अस पिउ लागि ।[2]

'नवीन' जी लिखते हैं—

कारी निशि, कारी अवनि, कारी दिशि चुपचाप,
कारी नयन कनीनिका, कारे केस-कलाप ।
कारे द्रुम कारी लता, कारो सब संसार,
कारो-कारो ह्वै रह्यो, हिय-बिछोह-संसार ।[3]

जायसी की नागमती भी कहती है—

पिउ सौं कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा हे काग ।
सो धनि विरहै जरि मुई तेहिक धुआँ हम्ह लाग ।[4]

जायसी के 'परिमल प्रेम कि आछे छपा' तथा रहीम खानाखाना के आँसुओं को घर का भेद बताने वाली बात की, मानो 'नवीन' जी यहाँ पुष्टि कर रहे हैं—

कैसे प्रीति दुराइए ? है अति कठिन दुराव ।
हाव-भाव रंग-ढंग सों, छलकि उठत हिय-चाव ।

काव्य-रूढ़ि के अनुसार, विरह-बेला में प्रकृति की भर्त्सना की जाती है । सूरदास की ब्रज-वनिताएँ भी प्रकृति को कोसती हैं—

मधुवन, तुम कत रहत हरे ।
विरह-वियोग स्याम-सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ।[5]

'नवीन' जी ने भी काव्य-रूढ़ि का अनुगमन किया है । उनकी विरहिणी प्राकृतिक उल्लास देखकर उदासीन हो जाती है—

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ३८६ ।
२. 'जायसी ग्रन्थावली', पृष्ठ ३०।१५ ।
३. 'उर्मिला', पृष्ठ ४०६ ।
४. 'जायसी ग्रन्थावली', ३०।६, पृष्ठ १५४ ।
५. 'सूर सागर' दशम स्कन्ध, ३८२८, पृष्ठ १३५३ ।

देखि उषा को बिहँसिबो, प्राची को मृदुहास,
विरहिनि इन दिन छिनन में खीझत, होत उदास ।[1]

प्रकृति उसको श्री-हीन दृष्टिगोचर होती है ।[2] परन्तु 'साकेत' की उर्मिला इसके विपरीत कृत्य सम्पन्न करती दिखाई पड़ती है—

फूल खिलो आनन्द से, तुम पर मेरा तोष,
इन मनसिज पर ही मुझे, दोष देखकर रोष ।[3]

इस प्रकार कवि ने रीति-बद्ध तथा रीति-मुक्त, दोनों रूपों की सृष्टि की है । अपने विरह-वर्णन को नये मानवतावादी संस्पर्श प्रदान कर, उसने स्वच्छन्द मार्ग का अनुवर्तन भी किया है ।

प्रबन्ध संगति—काव्योत्कर्ष की दृष्टि से पंचम सर्ग अप्रतिम गरिमा मण्डित है परन्तु यह भी उचित है कि उर्मिला का वियोग-वर्णन प्रबन्ध-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करता है और अन्य तत्व को विनष्ट कर देता है । चतुर्थ एवं पंचम सर्ग में आकर कथा-सरित सूख गया है ।

चरित्रों के प्राधान्य, प्रेम-कथा की नियोजना एवं काव्य के हृदय को उद्‌घाटित करने के लिए इन सर्गों की नितान्त आवश्यकता है । परिपाटीगत महाकाव्य की सम्पूर्ति का यहाँ कवि-ध्येय भी नहीं था । अतएव, अन्य उपकरणों को अवधान में लेने के कारण, इस वर्णन तथा सर्गों की उपादेयता को निरर्थक स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

सारांश—'उर्मिला' के चतुर्थ सर्ग में, विरह-मीमांसा के अन्तर्गत, प्रमूर्त्त भावों की व्याख्या की गई है । इस सर्ग का वही महत्व है जो कि 'साकेत' के नवम सर्ग एवं 'कामायनी' के 'लज्जा' सर्ग का है । चतुर्थ-पंचम सर्गों में काव्य-श्री अलसाकर बिखर गई है ।

कवि ने उर्मिला के विरह-वर्णन को व्यक्तिगत घुटन तक ही संकीर्ण कर, उसे एकांगी नहीं बनाया है । उसे व्यापकता तथा विशालता की रेखाएँ भी प्रदान की हैं । राम-कथा में सुमित्रा, दशरथ, भरत आदि विशेष अवेक्षणीय हैं । वस्तुतः उर्मिला के विरहाश्रु ने ही इन अमूल्य उपहारों को मानवता को प्रदान किया है—

मानवता किमि पावती, ये अमोल उपहार,
यदि न उर्मिला सदन में, होते हाहाकार ?[4]

कवि ने उर्मिला के वियोग को अनेकमुखी दृष्टिकोणों से देखा-परखा है । साथ ही उसने मौलिक संस्पर्श भी प्रदान किये हैं । वियोग को रहस्यवादी एवं अध्यात्मपरक मानवतादर्श की धरातल पर तौलने की कल्पना कवि की अपनी सूझ है । फिर भी, इतना तो निश्चित है कि 'साकेत' की उर्मिला तथा 'प्रिय प्रवास' की राधा के समान 'उर्मिला' की उर्मिला की विरहावस्था तथा तद्विषयक अवधि इतनी गरिमा-मण्डित तथा प्रशंसनीय नहीं हो सकी । फिर भी 'उर्मिला' में आदर्श प्रेम तथा वेदना के व्यापकत्व के सुन्दर चित्र प्राप्य हैं ।

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ४२० ।

२. वही, पृष्ठ ४८४ ।

३. 'साकेत', नवम सर्ग, पृष्ठ २२७ ।

४. उर्मिला', पृष्ठ ४८६ ।

'साकेत' के विरह-वर्णन की कलात्मक सौष्ठवता तथा मानवीय पक्ष की समकक्षता यह नहीं अर्जन कर सका है।

भाव-व्यंजना—'उर्मिला' में भावना की अपेक्षा विचारों को अधिक प्रमुखता प्राप्त हो गई, यद्यपि यह काव्य भाव-पूर्ण स्थलों से विहीन नहीं है। राम-कथा के सम्बन्ध में जो प्रतिक्रियात्मक एवं मनःस्थिति विषयक दृष्टिकोण अपनाया है, उसने विचार-प्रधानता के स्वरूप को भी पुष्ट कर दिया है।

प्रधान-रस—आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार, महाकाव्य में शृंगार, वीर और शान्त में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए—

शृंगारवीरशान्ता नामैकोऽङ्गीरस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसंधयः।[1]

'उर्मिला' का प्रधान रस शृंगार है और मूल भाव रति है। उर्मिला की प्रधानता के कारण, शृंगार रस को ही शीर्ष-स्थल प्राप्त हुआ है। कवि ने राम-कथा को भी उर्मिला के परिप्रेक्ष्य में ही आँका है। उर्मिला-लक्ष्मण का संयोग और प्रमुखतः उसका विप्रलम्भ शृंगार ही काव्य का हृदय या सार-तत्व माना गया है। यद्यपि कवि ने करुण रस में क्रान्ति मचाने, करुणा तथा वेदना की प्रधानता तथा उर्मिला को करुणा की मूर्ति की बात अनेक बार कही हैं, परन्तु इसे करुण-रस के शास्त्रीय आख्यान रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। राम अथवा भरत के नायकत्व में, इस काव्य के अंगी रस पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता और वह वीर रस या शान्त रस में परिणत हो जाता। परन्तु उर्मिला के नायकत्व के कारण, वह शृंगार का ही रूप धारण कर सका। इस काव्य में शंका, विषाद, वेदना, करुणा आदि भावों को पोषक या सहायक भावों की ही स्थिति प्राप्त हो सकी है। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य का अंगीरस शृंगार-रस ही है और उसमें भी विप्रलम्भ शृंगार को प्राधान्य प्राप्त हुआ है।

भाव-पूर्ण स्थल—कथा के हृदय-स्पर्शी स्थलों की पहचान कवि की भावुकता का निकष माना गया है।[2] काव्य के भाव-पूर्ण स्थलों का चयन, कवि की प्रवृत्ति एवं दृष्टिकोण होना चाहिये। कवि के काव्य के हीन मूलविन्दु, करुणा प्रेम तथा विद्रोह हैं। इन तीनों गोलकों ने इस काव्य में उत्कृष्ट स्थलों की सर्जना की है। सीता-उर्मिला की बाल-क्रीड़ाएँ, सरयू-तट पर अवध-ललनाओं का पारस्परिक सम्भाषण, शत्रुघ्न-उर्मिला का मधुर वार्त्तालाप, शान्ता-उर्मिला परिहास, विन्ध्य वन-यात्रा, राम-वनगमन की लक्ष्मण-उर्मिला विषयक मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति, वन विदा बेला में राम, सुमित्रा, सीता, उर्मिला तथा लक्ष्मण के परिसम्वाद, उर्मिला की विरह-व्यथा, लंका की राज-सभा में राम-विभीषण-सुग्रीव की सुदीर्घ वक्तृताएँ और अन्त में पुष्पक-विमान में राम-सीता का मधुर तथा हास आपूर्ण सम्भाषण को इस काव्य के मार्मिक स्थलों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

सीता-उर्मिला की केलि-क्रीड़ाओं में वात्सल्य तथा माधुर्य की प्रधानता है। अवध-

---

१. 'साहित्य-दर्पण' षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३१७।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'गोस्वामी तुलसीदास', पृष्ठ ६८।

वनिताओं के परिसम्वाद में हास, रति आदि को मुखरता मिली है। शत्रुघ्न-उर्मिला के मधुर वार्त्तालाप में मृदुलता तथा प्रभविष्णुता ने प्रश्रय ग्रहण किया है। यही स्थिति शान्ता-उर्मिला सम्वाद की है। ये सब स्थल अत्यन्त हृदय-स्पर्शी, रोचक तथा सरस बन पड़े हैं। इन प्रसंगों में कथा भागती है। ये काव्य के अत्यन्त रससिक्त स्थल हैं। विन्ध्य-वन-यात्रा के प्रसंग में कवि ने संयोग-शृंगार के उत्कर्ष की झाँकी प्रदान की है। विदा बेला तथा तत्सम्बन्धित प्रतिक्रियाओं के प्रसंग अतीव ओजस्वी, विचारोत्तेजक तथा मनोवैज्ञानिक हैं। इनमें एक साथ, उत्साह, स्फुल्लिंग तथा प्रखरता के अंक में आत्म-विनय, करुणा तथा वात्सल्य के दर्शन होते हैं। उर्मिला की विरह-व्यथा में विप्रलम्भ की ऊँचाई को कवि ने छुआ है। आलम्बन का उल्लेख कहीं-कहीं प्राप्त होता है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्राकृतिक उपादानों—यथा षट्-ऋतु वर्णन, उपवन, पुष्प, चन्द्रमा आदि की सुष्ठु-व्यंजना की गई है। उर्मिला के अनुभावों की विशद विवेचना प्राप्त होती है—यथा, अश्रु, स्वेद, कम्प, कृशता आदि। संचारी-भावों के बादल उमड़-घुमड़ आये हैं। पूर्व स्मृतियाँ तथा अन्त में प्रिय से अद्वैत भाव की स्थिति ने इस प्रकरण को पर्याप्त हृदयस्पर्शिता प्रदान की है। लंका की राज-सभा के व्याख्यानों में ओजस्विता, जीवन-दर्शन तथा विनीत भावों की सृष्टि हुई है। अयोध्या-परावर्तन में, सीता-लक्ष्मण सम्वाद ने माधुर्य, रोचकता, सजीवता, करुणा, आत्म-दर्शन, आध्यात्मिकता तथा निर्वेद की गाँठों को खोला है। अन्तिम प्रसंग में हास्य, विप्रलम्भ, शान्त आदि रसों की सुन्दर झलक मिलती है।

इस प्रकार कवि ने मार्मिक स्थलों का चयन, उर्मिला के चरित्र-गायन तथा राम-कथा की सांस्कृतिक-व्याख्या के दृष्टिकोण से किया है। इन प्रसंगों में कवि को चित्रण तथा ध्येय क्रियान्विति में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

भावुकता—डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, विस्तार, तीव्रता तथा सूक्ष्मता के आधार पर हीं भावुकता को कसौटी पर कसा जा सकता है।[1] उर्मिला के चरित्र-चित्रण में विस्तार का प्रयोग हुआ है और उसके सम्पूर्ण विकास का जो विषाद तथा करुणा की बदली छाई रहती है, उसके सूत्रों का सूक्ष्मता के साथ विकास दिखाया गया है। बन-यात्रा से उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व तथा बहिर्द्वन्द्व के आख्यानात्मक प्रसंग में तीव्रता ने अपनी तीव्र किरणों का जाल फैला दिया है। भावुकता परीक्षक के इन तीनों तत्वों में से, 'नवीन' जी में तीव्रता के गुण की ही प्रधानता दिखाई देती है। बाल-केलि, मांसल संयोग, विप्लवमय प्रतिक्रियाएँ, जीवन-दर्शन निरूपण आदि सभी आधारभूत स्तम्भों में तीव्रता का लेप ही सर्वाधिक जाज्वल्यमान् है। उसमें न तो राम-कथा का ही विस्तार मिलता है और न तद्विषयक प्रख्यात तथा मार्मिक प्रसंगों की सूक्ष्म-तलस्पर्शिता।

कवि की प्रवृत्ति प्रधानतया करुणा तथा प्रखर अंशों में ही रमी है। इन्हीं को प्रतिवादी गोलकों से कवि का व्यक्तित्व, जीवन तथा साहित्य भी अपनी सीमा नापता है। कवि की मूल-भावना, उर्मिला की भक्ति रही है। वह उर्मिला को माता, इष्ट, आराध्य तथा प्रेरणा-पुंज के रूप में ग्रहण करता है और अपनी समग्र आस्था, श्रद्धा एवं आत्मदीनता को उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होकर समर्पित करता है। कवि ने आनुषंगिक रूप से राम-सीता को भी अपनी भक्ति समर्पित की है परन्तु इन चरित्रों की रेखाएँ गहरी नहीं हो पाई हैं, वह एकनिष्ठ तथा एकोन्मुख होकर उर्मिला की ही भक्ति एवं नाम-स्मरण करता है।

---

१. 'साकेत : एक अध्ययन', पृष्ठ १४४-१४५।

इस काव्य में घटनाओं की सक्रियता, कथा का आरोहावरोह और प्रबन्धात्मकता की अपेक्षा, भावना तथा चिन्तन के रंग गाढ़े हो गये हैं। जीवन की सक्रियता की अपेक्षा मानसिक सक्रियता ने अधिक अंक प्राप्त किये हैं। इस प्रकार यह सही अर्थों में 'पूरक काव्य' की संज्ञा पा सकता है।

आधुनिकता

स्वरूप—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार, "'आधुनिक' शब्द सर्वथा सापेक्ष है और किसी भी वस्तु की आधुनिकता उसके ऐतिहासिक निर्माण-क्रम की परिधि में ही देखी जा सकती है।"[१] संसार के सभी महान् काव्य अपने समय की चेतना से सम्बद्ध होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति, समस्या का विश्लेषण उनमें रहता है।[२]

'उर्मिला' में नवयुग की भावना के सहज ही दर्शन किये जा सकते हैं। उसमें आधुनिकता के अनेक अंश समाविष्ट किये गये हैं। युग की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावनाओं ने इस काव्य पर अपने चिह्न अंकित किये हैं। इस दिशा में वह राष्ट्रीय आन्दोलन, गान्धीवादी युग-चेतना, आर्य-समाज, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, बुद्धिवाद, नारी-उत्थान आदि घटकों से प्रभावित हुआ है।

सांस्कृतिक क्षेत्र—कवि आर्य-समाज से प्रारम्भ से ही प्रभावित था। आर्य-समाज ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान में प्रमुख योगदान दिया है।[३]

महाकवि रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से कवि ने उर्मिला का रूप गढ़ा। उर्मिला के चरित्र का उद्घाटन और उसके जीवन-सूत्रों से कथा-तन्तु का निर्माण, साहित्यिक इतिहास में एक आवर्तन है और विचारों की दुनिया में एक अभिनव क्रान्ति। इस नवीनता को यदि 'उर्मिला' में प्रतिष्ठित आधुनिकता की आत्मा कहा जाये, तो कुछ भी अनुचित न होगा।[४] वास्तव में यह काव्य की प्रधान आधुनिकता है।

राजनैतिक क्षेत्र—गान्धी जी के व्यक्तित्व तथा गान्धीवादी युग-चेतना से कवि एक सीमा तक प्रभावित हुआ है। राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में सत्यनिष्ठ गान्धी जी के चरणों के पीछे जन-सेना तथा इतिहास चला था। उसी का यह रूप है—

असद्विचार पराजित, कुण्ठित,
भू लुंठित, उन्मूलित हो,
सत्यमेव विजयी हो, राजन्
प्रेम-विटप फल-फूलित हो,
आगे-आगे ध्वजा सत्य की,
पीछे-पीछे जन-सेना,

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ४३१।
२. 'The Epic', page 84.।
३. उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ १९८।
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ४५।

त्रेता का यह धर्म सनातन,
जग को विमल ज्ञान देना।[1]

राम को इस बात का खेद है कि शस्त्र-बल या हिंसा के आधार पर ही विजय प्राप्त हुई। प्रकारान्तर से यहाँ अहिंसा का प्रभाव देखा जा सकता है—

एक खेद है यह शस्त्रोद्धृत
होकर सत्य हुआ विजयी
यदि अशस्त्र जय होती, तो वह
होती पूर्ण विशुद्ध नयी।[2]

यहाँ सत्याग्रह का प्रभाव ,आँका जा सकता है। राम को इस बात का भी दुःख है कि वे रावण का हृदय-परिवर्तन नहीं कर सके—

यही दुःख है कि मैं वीरवर
रावण-हृदय न जीत सका,
इतना भर ही नहीं रह गया,
दशरथ नन्दन के वश का।[3]

अपनी युग-चेतना से कवि अछूता नहीं बच सका। उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के यज्ञ में अपने जीवन की भी आहुति चढ़ाई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन का युग, सन्धि युग या संक्रान्ति-काल था।[4] संक्रान्ति-काल की उपज होने के कारण, कवि ने उसके सा-सार कण ग्रहण किये हैं। इस युग की गान्धीवादी चेतना के साथ ही साथ, वह क्रान्तिकारी-धारा से भी प्रभावित हुआ है। कवि का व्यक्तित्व भी विद्रोही तथा क्रान्तिकारी-गुणों से समाविष्ट रहा है। इसीलिए, उसके प्रमुखपात्र—-उर्मिला, लक्ष्मण तथा राम, क्रान्ति एवं विप्लव का अनुमोदन करते हैं।[5] आंग्ल-महाप्रभु साम्राज्यवादी थे। 'नवीन' जी के राम, साम्राज्यवाद के विरोधी हैं—

है साम्राज्यवाद का नाशक,
दशरथ-नन्दन राम सदा,
है भौतिक वाद विनाशक,
जन-मन-रंजन राम सदा।[6]

रावण को कवि ने साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है और राम को आत्मवाद का—

महामहिप रावण का मेरा,
नहीं व्यक्तिगत था झगड़ा,

---

१. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६५।
२. वही, पृष्ठ ५४१।
३. वही, पृष्ठ, ५४२।
४. वही, पृष्ठ ५७५।
५. वही, पृष्ठ २४८।
६. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५५५।

आत्मवाद, साम्राज्यवाद का
वह था अनमिल भेद बड़ा।[1]

विचार-मन्थन—कवि ने राम के माध्यम से आज के युग की प्रधान विचारधाराओं, यथा—भौतिकवाद, अर्थवाद आदि के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये हैं।[2] कवि के राम अर्थवाद के भी विरोधी हैं। वे अर्थ को जीवन का ध्येय नहीं मानते—

अर्थ प्रगति का चिह्न नहीं है
वह है प्रगति-वदी का फेन,
वह तो यों ही उतराता है,
होने को विलीन, बेचैन।[3]

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के महान् गायक इस कवि ने राष्ट्रधर्म के प्रति भी अपने विचार प्रकट किये हैं। उसे उसका एकांगी रूप ग्राह्य नहीं।[4] अपनी युग की मानवतादर्शवादी धारा के अनुकूल, वह विश्ववादी रूप की अभिव्यंजना करता है—

हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश-विदेश-कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।[5]

विज्ञान—आधुनिक युग में विज्ञान के प्रभाव की चेतना भी ऊर्ध्वमुखी है। विज्ञान ने जीवन को युद्ध माना है। जीवन ने इसे, अस्तित्व के लिए संघर्ष के रूप में देखा है। वह समर्थतम व्यक्तियों के अक्षुण्ण रहने की बात कहता है। इस विज्ञान का प्रभाव इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

जीवन में, वरदान समझना
अभिशापों की ही जय है,
युद्ध में तनिक हिचकना
ही मानवता का क्षय है।[6]

राम, लंका की राज-सभा में जीवन की परिभाषा भी प्रस्तुत करते हैं—

जीवन सतत युद्ध है, जीवन
गति हैं, है जीवन ऐसा,
है प्रयत्नमय गुंजन जीवन,
फिर संघर्षण-भय कैसा?[7]

---

१. उर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५४१।
२. वही, पृष्ठ ५४७।
३. वही, पृष्ठ ५५३।
४. वही, पृष्ठ ५५५।
५. वही, पृष्ठ ५५८।
६. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २६८।
७. वही, पृष्ठ ५६६।

विज्ञान के विनाश मार्ग के पथिक होने की बात को भी कवि ने वाणी प्रदान की है—

भौतिकता के संचय में पड़े,
यह विज्ञान हुआ भू-भार,
इसीलिए, हे आर्य, आपको,
करना पड़ा पयोनिधि पार।[1]

सारांश—इस प्रकार 'उर्मिला' में नवयुग की चेतना का उभार देखा जा सकता है। इस कृति में प्राचीन तथा नवीन, दोनों का समन्वय प्राप्त होता है। हम यह कह सकते हैं कि पुरातन-पात्र में नूतन-द्रव्य को उपस्थित किया गया है। कवि ने चरित्रों को बुद्धिवादी दृष्टिकोण से निरखा-परखा है और उन्हें लौकिकता में ही रहने दिया है। उन्हें मानवीय भूमि ही प्राप्त हुई है। गुप्त जी के समान, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन, 'उर्मिला' के सन्दर्भ में, 'नवीन' जी के प्रति भी प्रयुक्त किया जा सकता है कि "प्राचीन के प्रति पूज्य मान और नवीन के प्रति उत्साह, दोनों इनमें हैं।"[2] 'साकेत' के समान, 'उर्मिला' में 'सतही आधुनिकता'[3] का व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं होता। 'उर्मिला' में जहाँ एक ओर दोहा-सोरठा की शैली का प्रयोग कर कवि ने प्राचीन मनोवृत्ति की सूचना दी है, वहाँ दूसरी ओर उर्मिला का विद्रोही रूप प्रस्तुत कर और राम को अत्याधुनिक बनाकर, नवयुग का शृंगार भी किया है। कवि की सांस्कृतिक मूल्योपलब्धि तथा मानवतादर्श प्राप्ति ने, इस काव्य को नवीन युग की निधि बनाकर युग-युगान्तर की धरोहर के रूप में भी परिणत कर दिया है। इसमें ईसा की बीसवीं शताब्दी के किशोरावस्था का उन्मेष तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के तरुणाई की लाली की अक्षय सम्पदा सुरक्षित है।

सांस्कृतिक मनोभावना

'नवीन' जी ने 'उर्मिला की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि राम की वन-यात्रा एक महान् अर्थपूर्ण आर्य-संस्कृति-प्रसार-यात्रा थी। इस यात्रा को उन्होंने भारतीय संस्कृति-प्रसारार्थ, एक महान् यज्ञ के रूप में ग्रहण किया है।[3] इस सम्बद्ध-काव्य के अनेक पात्र, यथा—उर्मिला, लक्ष्मण, राम, सीता, जानकी, विभीषण आदि इस सांस्कृतिक अभियान की भाँति-भाँति से शल्य-क्रिया करते है। राम को कवि ने आर्य-धर्म एवं संस्कृति का युग-प्रवर्तक माना है। इस पृष्ठ-भूमि में 'उर्मिला' का सांस्कृतिक अध्ययन अप्रासंगिक न होगा।

संस्कृति—कवि ने संस्कृति को अपार्थिव तथा भव्य-रूप में ही ग्रहण किया है। उसके मतानुसार संस्कृति की रूप-रेखा निम्नलिखित है—

शुद्ध विचार-प्रौढ़ता ही है,
भित्ति सभ्यता संस्कृति की,
सदाचरण शीलता मात्र है,
द्योतक संस्कृति, मति, धृति, की।[4]

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५३६।
२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ४६।
३. 'उर्मिला' श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ ६।
४. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५५४।

भौतिकवादी तथा अर्थवादियों नें संस्कृति को अर्थार्जन के माप-दण्ड से आँका है।[१] वह इन विचारों को भ्रामक मानता है।[२] वह आत्मवाद को ही संस्कृति का मूलाधार मानता है—

आत्म-वाद में है अनन्यता
का अति रुचिर-ज्ञान वैभव,
वहाँ नहीं संचय-संचय का
सुन पड़ता है कर्कश स्वर।[३]

आर्य-संस्कृति—आर्य-संस्कृति के दार्शनिक पक्ष, जीवनादर्श, नैतिकता, क्रिया-शीलता एवं विविध पार्श्वों पर प्रकाश डालने के लिए कवि ने वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता तथा कबीरदास आदि से आलोक प्राप्त किया है। वेदों से प्रभावित होकर ही कवि ने, आर्य-संस्कृति का यह महामन्त्र बताया है जिसको प्रघटित करने वन-यात्रा का रूप सामने आया—

तमसो मा ज्योतिर्गमय त्वम्,
मृत्योर्मा अमृतं ले चल,
विद्या से संयुक्त मुझे कर,
अमृत चखा, हे अचल अटल।[४]

कवि ने तप को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। उपनिषद् का वचन है कि ब्रह्मा, तप-शक्ति के द्वारा ही अनन्त रूप सृष्टि की रचना करता है—

स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदम् सर्वमसृजत[५]

अर्थात् 'उसने तप किया, तप करके, उसने इस सब की सृष्टि की।' इसी बात को कवि ने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल,
गतिमय, सृतिमय, चलित हुआ
अणु-अणु में, कण-कण में सन्नत
प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।[६]

श्रीमद्भगवद्गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य' के अनुसार कवि भी नव रचना के मूल में उथल-पुथल को ही पाता है—

जब कुछ उथल-पुथल होती है,
तब मानवता करवट लेती
नव-नव रचना रचती है।[७]

---

१. उर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५५२।
२. वही।
३. वही, पृष्ठ ५४८।
४. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ १६८।
५. तैत्तरीयोपनिषद् २, ६।
६. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५४६।
७. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २२२।

कवि ने सांस्कृतिक समन्वय के लिए कबीरदास के रूपक की ध्वनि ग्रहण की है—

जल में कुम्भ है, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल-जल ही समाना, यह तथ्य रह्यो ज्ञानी॥

'नवीन' जी भी कहते हैं—

कोसल नगरी हो लंका है,
लंका है कोसल नगरी,
भाण्ड हुआ जल-शशि-निमज्जित,
भिन्न कहां वापी, गगरी ?[१]

आर्य-संस्कृति का मूल मन्त्र आत्म-हवन रहा है।[२] त्रेता-युग को कवि ने संक्रान्ति काल माना है।[३] एक विचार काल को क्रमित करके दूसरे में जाना ही संक्रान्ति काल है।[४] ऐसे युग में आर्य-संस्कृति ने एक नूतन करवट ली थी। बन जाने का उद्देश्य ही आर्य-सांस्कृतिक विजयपताका फहराना था।[५] इसे आर्य-संस्कृति के जीवन का प्रथम शुभ प्रभात माना गया।[६] यह कार्य श्री राम के ऐतिहासिक व्यक्तित्व द्वारा सम्पन्न हुआ।

श्री राम को कवि ने त्रेता-युग की संस्कृति की प्यारी विभूति माना है।[७] आर्य-संस्कृति एवं सभ्यता ने अवधपुरी से लेकर लंका तक एक पथ की रेखा का निर्माण किया है।[८] राम के आज के भौतिकवाद से ग्रस्त एवं अर्थ को प्राधान्य देने वाले युग को 'विश्वास-भक्ति-श्रद्धा के तीन सूत्रों से समन्वित सन्देश को प्रदान किया है।[९]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने आर्य संस्कृति को प्रमुखता प्रदान की है और उसे गरिमा-मय अंकित किया है। समूचे-काव्य पर आर्य संस्कृति की पुनीत किरणें अपना वितान तान रही हैं।

आर्य-धर्म—आर्य संस्कृति के साथ, कवि ने आर्य-धर्म के स्वरूप तथा महत्व की विशद विवेचना की है। उसने आर्य-धर्म के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक, दोनों पार्श्वों को आलोकित किया है। राजर्षि जनक आर्य-धर्म के दार्शनिक पक्ष का विवेचन करते हैं—

आर्य-धर्म के आचार्यों ने सृष्टि तत्व है खोज निकाला
एक सूत्र में उनने गूँथा है सुगूढ़ वह तत्व निराला

---

१. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५६३।
२. वही, पृष्ठ ५७१।
३. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २२३।
४. वही।
५. वही, पृष्ठ १६६।
६. वही, पृष्ठ १६२।
७. वही, पृष्ठ २६६।
८. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५२०।
९. वही, पृष्ठ ५७०।

मैं हूँ एक, किन्तु प्रजनन के हेतु अनेकों रूप बना हूँ
अमित विरोधाभासों का मैं अद्भुत पुंज अनूप बना हूँ ।[१]

तपस्या, त्याग,[२] सत्य,[३] बन्धन-मुक्ति,[४] आदि को आर्य-धर्म में विशेष स्थान प्राप्त हुआ । भोगवाद को हमने आश्रय नहीं दिया ।[५] रावण को भोगवाद का परिचायक माना गया है ।[६] आर्य-सभ्यता का कभी भी साम्राज्य-स्थापना का ध्येय नहीं रहा ।[७] हमारे यहाँ यज्ञों की प्रधानता रही है । तिल-घृत-इन्धन की आहुतियों को रामयज्ञ की बिडम्बना मानते हैं ।[८] राम, जग की सेवा को शुद्ध-यज्ञ मानते है ।[९] आर्यों के लिए काल निस्सीमित, अशेष एवं अन्तहीन होता है ।[१०] त्रेता-युग में आर्य-धर्म ने अपने उज्ज्वलतम रूप का प्रदर्शन किया था ।[११] इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपने वैष्णव संस्कारों को इस काव्य में प्रस्फुटित किया है । सामान्यतः वे आर्य-धर्म को सांस्कृतिक एवं मानवतावादी भूमिका पर देखते हैं ।

वर्णाश्रम-विभाग— 'उर्मिला' में वर्णाश्रम-विभाग के भी संकेत यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं । जनकपुरी में ब्राह्मण 'मंगलावीण्य' में रहते हैं ।[१२] वैश्यों की क्रियाशीलता 'राज-मार्ग' में दिखाई पड़ती है ।[१३] त्रेता-युग के ब्राह्मण सामाजिक-प्रगति रथ के सारथी हैं । वे दृढ़व्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, विगत-कामा, तत्वदर्शी एवं मनस्वी हैं ।[१४] देश की स्वन्त्रता के रक्षक-क्षत्रियगण सुदृढ़ भुजाओं वाले तथा पराक्रमी हैं ।[१५] व्यापारी, कृषक, वैश्य आदि लक्ष्मी-सेवी हैं और जग की वाटिका को सँभाले हुए हैं ।[१६] शूद्र गण सेवा-रत हैं । उनका सिद्धान्त है—सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।[१७]

---

१. उर्मिला, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १०५ ।
२. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५४६ ।
३. वही, पृष्ठ ५५१ ।
४. वही, पृष्ठ ५६५ ।
५. वही, पृष्ठ ५४१ ।
६. वही, पृष्ठ ५४५ ।
७. वही, पृष्ठ ५४० ।
८. वही, तृतीय सर्ग, पृष्ठ २६६ ।
९. वही, पृष्ठ ३०० ।
१०. वही, पृष्ठ २८६ ।
११. वही, पृष्ठ २४५ ।
१२. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १४ ।
१३. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १४ ।
१४. वही, पृष्ठ १८ ।
१५. वही ।
१६. वही, पृष्ठ १६ ।
१७. वही ।

इसके अतिरिक्त, कवि ने समग्र मानव समाज को भी महत्व प्रदान किया है। लक्ष्मण ने अपने वन-यात्रा के कारणों में, वन्य-जनों को ज्ञान, संस्कृति तथा शिक्षा से आलोकित करना भी निरूपित किया है। वनवासियों के तिमिर, राग-विलास, भौतिक-प्रियता तथा असंस्कृत रुचि को दूर कर, विधा के अभूत-दान से नव-जीवन प्रदान करता है।[१] राम ने रीध, कवियों आदि का उद्धार किया और वे भी आत्म-ज्ञान से आलोकित हो गये। वानर के 'वा' को विरहित करके, उनमें ज्ञान-पिपासा जगा दी गई।[२]

नारी—कवि ने नारी के विशिष्ट एवं सामान्य, दोनों पार्श्वों का उद्घाटन किया है। त्रेता-युग की नारियाँ, सौन्दर्यवती, कर्त्तव्य-रता, सुशिक्षिता तथा करुणाशीला हैं।[३]

कवि ने नारी-विषयक अपने विविध विचारों की अभिव्यक्ति की है। अयोध्या-परावर्तन के समय, लक्ष्मण-सीता संवाद में नारी की विशेषता तथा महत्ता को भी स्थान प्राप्त हुआ है। लक्ष्मण का यह मत है कि राम में नारीत्व की मात्रा अधिक है। नारी उनकी पोषण-कर्त्तृ है। नारी जीवन की हृदयवल्लभा है।[४] जीवन की सुगति के लिये नर को नारी, और नारी को नर होना चाहिये। दोनों को एक-दूसरे में ढुलक उठना चाहिये। विरक्ति पूर्ण पुरुष वही है जिसमें नारी की परछाई होती है और वह जन-जन की वेदना को नारी की नाई ही समझता है। जो नारीत्व के अंश से विहीन हो, वह वस्तुतः वानर है।[५] सीता का मत है कि नर, नारियों के हृदय की बात नहीं समझते हैं। नर की अपेक्षा नारी को अधिक तीव्र अनुभूति होती हैं।[६] 'प्रसाद' जी ने लिखा है—

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संस्कृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।[७]

इसी प्रकार 'नवीन' जी भी नारी को धृति-मति-प्रतिमा के रूप में देखते हैं—

धैर्य ? अहो प्रिय ! नारी का यह
जीवन है धृति मति प्रतिमा।[८]

उर्मिला, नारी को चिर प्रतीक्षिका एवं परीक्षिता मानती है। वह चिर-वियोग की यज्ञाहुति से सन्तत दीक्षित रहती हैं। वह अपने स्नेह-प्रदीप को युग-युग तक प्रज्वलित रखती हैं।[९]

---

१. 'उर्मिला, तृतीय सर्ग, पृष्ठ १६६-१६८।
२. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५८६।
३. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १६-२०।
४. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६१०।
५. वही, पृष्ठ ६१०-६१४।
६. वही. पृष्ठ ६११-६१२।
७. 'कामायनी', श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ४६-५०।
८. 'उर्मिला', तृतीय सर्ग, पृष्ठ २५६।
९. वही, पृष्ठ २३६।

श्री रामकुमार वर्मा के 'चित्तौड़ की चिता' की 'नारियाँ' बल का अभिमान करती हुई भी, उसे अहिंसा रूप में ग्रहण करती हैं।[१] इसी प्रकार उर्मिला भी विद्रोहाग्नि बढ़कर, अपनी वृत्ति का पर्यवसान करुणा तथा आत्म-समर्पण में करती हैं। कवि ने मातृत्व का भी चित्रण किया है, जिसका प्राचीन भारत में अत्यन्त सम्मान तथा उच्च-स्थान था।[२] सुमित्रा में यह रूप, ज्वलन्त आभा लेकर आया है। इस प्रकार 'उर्मिला' में नारी के विविध पक्षों, सद् तथा असद् रूपों और भावनाओं की व्यंजना मिलती है। इस कृति में नारीत्व को श्रेष्ठत्व प्रदान किया गया है।

राज्यादर्श— कवि ने राजतन्त्र का चित्रण किया है। राजा जनक के राज्य-शासन एवं आदर्श की पर्याप्त विवेचना की गई है। ग्रन्थ में मिथिला या विदेह महाजनपद का उल्लेख आया है। राजप्रासाद के निकट ही दिव्य महामन्त्रणागार बना हुआ है। मन्त्रीगण अपने कार्य में पूर्ण दक्ष हैं। सेना-विभाग अत्यन्त तेजस्वी है जिसका अध्यक्ष 'सचिव' होता है। युद्धों में धर्म को महत्व दिया जाता है। सन्धि-विभाग का दायित्व 'मन्त्री' पर होता है।[३] साम्राज्यान्तर्गत विषयों का निपटारा तथा निरीक्षण 'अमात्य' करते हैं। राजतन्त्र को संचालित करने एवं राज्यश्री-वृद्धि का दायित्व 'सुमन्त्र' पर होता है।[४] कवि ने राजतन्त्र में जन-कल्यान, प्रजा-सेवा तथा राज्य-उत्कर्ष को प्रधानता दी है।[५]

दशरथ को भी 'प्रजा-वत्सल'[६] राजा माना गया है। उनके शासन में प्रजा को व्यर्थ की चिन्ताओं ने ग्रसित नहीं किया।[७] दशरथ भी अपनी राज-सभा के वक्तव्य में जन-हित तथा कर्त्तव्य को प्रमुखता प्रदान करते हैं।[८] राम भी न तो भौतिकतावादी हैं और न भूमि-अर्जन-लोभी। उनके कर्म सदा-सर्वदा लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होते हैं।[९] भू-अर्जन, पर शासन, रण, धन-सुख उपयोग तथा विलास-प्रियता के कारण ही रावण का वध किया गया।[१०] लोक-रक्षा तथा विश्व-विजय के दो विरोधी शिविर होने के कारण ही, राम-रावण संघर्ष हुआ।[११]

---

१. हमें भी बल का है अभिमान, किन्तु वह पूर्ण अहिंसा रूप;
नारियों का यह शस्त्र अनूप, करेगा धर्म कर्कश-त्राण।—श्री रामकुमार वर्मा 'चित्तौड़ की चिता', सर्ग १२, पृष्ठ ११८।

२. Altekar—Position of Women in Hindu Civilization, chapter III, page 118.।

३. 'उर्मिला', प्रथम सर्ग, पृष्ठ २१।

४. वही, पृष्ठ २२।

५. वही, पृष्ठ २१।

६. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ८१।

७. वही, वही, पृष्ठ ८१।

८. वही, वही, पृष्ठ ७६।

९. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५२२।

१०. वही, वही, पृष्ठ ५४१।

११. वही, वही, पृष्ठ ५४१।

इस प्रकार कवि ने राज्य-तन्त्र का चित्रण करते हुए भी, उसमें अपनी युग-चेतना के सरसिज खिलाये हैं। इस शासन-पद्धति को उसने जन-हित, लोक-रक्षा तथा सर्वसुखाय-सर्वहिताय से मण्डित किया है। वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उपासक भी है।

समृद्ध-अतीत --'उर्मिला' में आर्य-संस्कृति के प्रधान घटकों, यथा—आत्म-ज्ञान, यज्ञ, तप, त्याग, बलिदान तथा कर्त्तव्य-परायणता को ही प्राधान्य मिला है, परन्तु साथ ही कवि ने भारत की सामाजिक एवं आर्थिक समृद्धि तथा विशिष्टताओं का भी आकलन किया है। कवि ने शिल्प-कला, चित्र-कला, नृत्य-संगीत-कला आदि कलाओं के रूप दिग्दर्शित किये हैं। राज-प्रासाद, मन्त्रणागार, अटालिकाएँ, भवन, राजमार्ग, दुर्गद्वार, वीथिकाएँ, स्थान आदि के चित्रांकन मिलते हैं। बाग, बगीचे, पुष्प, रथ, तुरंग, अस्त्र-शस्त्र आदि के भी वर्णन मिलते हैं। धन, सम्पदा, विपरण-व्यापार, क्रय-विक्रय आदि की समृद्धि बताई है। समाज का जीवन सम्पन्न, शान्त, सुस्थिर तथा प्रसन्न दिखाया गया है। आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन प्राप्य हैं। सभी वर्ग के व्यक्ति अपने कार्य एवं धर्म में दत्तचित्त हैं। देश-स्वातन्त्र्य तथा लोक-रक्षा की भावना प्रबल है। आश्रम, तपोवन एवं शिक्षालयों में शिक्षा-दीक्षा, अध्ययन-अध्यापन, स्वाध्याय व मनन-चिन्तन का पुनीत वातावरण फैला है। शासन-तन्त्र सुगठित एवं सुविन्यस्त हैं। प्रजा प्रफुल्ल है। त्रेता-युग के ऋद्धि-सिद्धि की वृष्टि हो रही है। इस प्रकार कवि ने आर्थिक सुसम्पन्नता, प्रचुर सम्पदा, सामाजिक सौरम्य एवं धर्मपालन के उपकरणों पर ही समृद्ध-अतीत के बहुविध चित्र खींचे हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में सांस्कृतिक चेतना ने अपना पर्याप्त विस्तार तथा विशदता निरूपित की है। 'साकेत' की अपेक्षा 'उर्मिला' में आर्य-संस्कृति और धर्म की शंख-ध्वनि अधिक प्रखर तथा प्रभविष्णु प्रतीत होती है।

महाकाव्यत्व

'नवीन' जी की महाकाव्य सम्बन्धी धारणा—'नवीन' जी ने महाकाव्य पर विशिष्टरूपेण विचार प्रतिपादित नहीं किये हैं परन्तु उसके आज के युग में लिखने की उपयोगिता या अनुपयोगिता, आवश्यकता अथवा अनावश्यकता, प्रतिपाद्य विषय आदि की चर्चा उन्होंने अवश्य की है।

'उर्मिला' की भूमिका में उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि क्या आज का युग, प्रबन्ध-काव्यों के लिए उपयुक्त है। इसके उत्तर स्वरूप उन्होंने स्वयं यह लिखा है कि वर्तमान काल में प्रबन्ध-काव्यों की रचना के लिए जो बातें बाधा-स्वरूप समझी जा सकती हैं वे हैं—

(१) भाषा के गद्य स्वरूप का और छापेखाने का परिपूर्ण विकास;

(२) साहित्य में उपन्यास शैली का आविर्भाव;

(३) पद्यात्मक शैली की अपेक्षा गद्यात्मक शैली की अभिव्यक्ति-सरलता एवं अर्थ-ग्रहण-सुकरता;

(४) गद्य की अपेक्षाकृत बन्धन-मुक्तता अर्थात् अनुप्रास, यमक, यति, गति, मात्रा आदि के बन्धन का गद्य में तिरोधान;

(५) वर्तमान जीवन की द्रुतगतिमत्ता, अतः उसमें समय के अभाव की स्थिति;

(६) विज्ञान-प्रभाव के कारण मानव की रोमांचवादी वृत्ति का लोप;

(७) पुरातनकालीन दैवी-तत्वों को काव्य में प्रविष्ट करने की वृत्ति का वर्तमान विचार के साथ असामंजस्य ।

(८) वर्तमान जीवन की संकुलता (Complexity), अतः उस जीवन में ऋजुता और सहज विश्वास का अभाव;

(९) सद् भाव, सद् विचार, सदाचरण के प्रति अर्थात् जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति अनास्था, अश्रद्धा और उपेक्षा, और

(१०) पुरातनकालीन अनन्त, असीम, विशाल, विराट् अपरिमितता (Vastness) का वर्तमान विज्ञान द्वारा लघ्वीकरण ।[१]

'नवीन' जी का स्पष्ट मत है कि उपर्युक्त कारणों के आधार पर वर्तमान युग को महाकाव्य या विराट्काव्य के अनुपयुक्त मानना अनुचित और अवैज्ञानिक है ।[२] उनकी यह मान्यता है कि साहित्य-विकास को एककालीन युग-परिस्थिति पर आधारित करने का प्रयास बहुधा हास्यास्पद हो जाता है ।[३] उन्होंने लिखा है—

"मैं वर्तमान युग को विराट् काव्य-वृत्तियों या महाकाव्यों के सृजन के लिये अनुपयुक्त नहीं मानता । महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रबन्ध-काव्यों की ओर आज भी प्रवृत्ति है । अत: मैं यह बात मानने में असमर्थ हूँ कि महाकाव्यों, प्रबन्ध-काव्यों का सृजन-प्रयास इस युग की प्रवृत्ति के प्रतिकूल है । हाँ, विराट् काव्यों (Epics) का सृजन इधर सहस्राब्दियों से नहीं हुआ है ।"[४]

युगानुकूलता एवं आवश्यकता के साथ, 'नवीन' जी ने महाकाव्य के विषय पर भी अपने संक्षिप्त विचार प्रकट किये हैं । उनके मतानुसार काव्य के लिये ऐतिहासिक-पौराणिक विषय, केवल मात्र चर्वितचर्वण के तर्क के आधार पर, त्याज्य या वर्ज्य नहीं हो सकते ।[५] उर्मिलाकार का यह स्पष्ट मत है कि पुराने विषयों को भी नवीनता से सुसज्जित किया जा सकता है ।[६] इस प्रकार कवि ने नवीनता को प्राधान्य प्रदान कर, साहित्यिक क्रान्ति की झलक भी प्रस्तुत कर दी है । कवि ने करुण-रस में कुछ क्रान्ति लाने की बात कही भी है ।[७] इससे यह विदित होता है कि कवि परिपाटी के साथ ही साथ नव-चेतना को भी महत्व देता है जिसके फलस्वरूप महाकाव्य की प्राचीन कसौटी उसकी कृति के परीक्षण के लिए सम्पूर्णरूपेण प्रयुक्त नहीं की जा सकती । साथ ही कवि ने राम-कथा को नूतन दृष्टिकोण एवं धरातल में

---

१. 'उर्मिला', श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृष्ठ—घ ।
२. वही, पृष्ठ—ङ ।
३. वही, पृष्ठ—च ।
४. वही, पृष्ठ—च ।
५. वही, पृष्ठ—घ ।
६. वही, पृष्ठ—छ ।
७. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ २ ।

देखा भी है जो शास्त्रीय ढाँचे में ठीक नहीं बैठाई जा सकती। अत्र, इस पृष्ठभूमि पर, 'उर्मिला' का महाकाव्यत्व-विवेचन समीचीन प्रतीत होता है।

उद्देश्य तथा प्रेरणा—'नवीन' जी द्वारा उर्मिला की प्राण-प्रतिष्ठा, उसका चारित्रिक विकास तथा उसके प्रति अपनी समग्र भक्ति के उड़ेलने को ही, इस काव्य का मूलोद्देश्य एवं प्रेरणा मानी जा सकती है। कवि ने राम-कथा को भी उर्मिला के केन्द्र में ही देखा है और उसका मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया है। आर्य-संस्कृति प्रसार को राम-कथा का मूलाधार माना गया है।

सुसंघटित जीवन्त कथानक—'उर्मिला' में घटना-कथा की प्रधानता न होकर, अनुभूति की प्रमुखता है। इसका प्रभाव उसके प्रबन्ध-शिल्प पर भी प्रतिकूल रूप में परिलक्षित दिखाई पड़ता है। सम्पूर्ण कथा प्रख्यात है परन्तु राम कथा के निस्सृत, उपेक्षित, त्यक्त अथवा लांछित प्रसंगों एवं पात्रों को उभारा गया है। उसमें नाटक एवं गीतिकाव्य के तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण है। कथानक में रोचकता, औत्सुक्य तथा नाटकीय वैषम्य उपलब्ध है। कथानक में कारुणिक, मृदुल तथा प्रतिक्रियात्मक पार्श्वों को प्रमुखता दी गई है।

समूचा काव्य सर्ग बद्ध है। यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने अष्टाधिक सर्गों का उल्लेख किया है, परन्तु इस विषय में मतसाम्य नहीं है। इस विषय में आचार्य दण्डी तथा अग्नि-पुराणकार मौन हैं। इस काव्य में छः सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में एकाधिक छन्द का प्रयोग मिलता है और अन्त में प्रायः छन्द-परिवर्तन प्राप्य है। मंगलाचरण के रूप में उर्मिला की प्रार्थना मिलती है।

अरस्तू ने कथा में जो आदि, मध्य एवं अन्त के सन्तुलन का तत्व निरूपित किया है, वह यहाँ प्राप्त होता है। कार्य-अवस्थाओं तथा सन्धियों का स्पष्ट अंकन प्राप्त नहीं होता, वैसे ये कतिपय मात्रा में उपलब्ध हो सकती है। तृतीय सर्ग में गर्भ-सन्धि मिलती है। यह कृति मौलिक उद्भावनाओं से सर्वाधिक जाज्वल्यमान् है। कवि ने पुराने चित्रों में नूतन रंग भरे हैं और कई चित्रों को नवीन तूलिका से अंकित किया है। महाकाव्य का नामकरण भी कसौटी पर उचित बैठता है। इस काव्य में प्रबन्ध-धारा का अव्यावहतत्व रूप प्राप्त नहीं होता। प्रबन्धात्मकता का अभाव है। चतुर्थ एवं पंचम सर्गों में आकर कथा का सूत्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। कवि की नूतन चरित्र अवतारणा, सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं मौलिक कल्पनाशक्ति की चकाचौंध के समक्ष यह त्रुटि परिमार्जनीय है।

महत्वपूर्ण नायक—उर्मिला के चरित्र का उद्घाटन इस काव्य की सर्वोपरि उपलब्धि है। वह आद्यन्त कथा में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में विद्यमान रहती है। उसके नायकत्व के विषय में दो मत नहीं हो सकते। उसकी प्रायः प्रतिष्ठा के कारण ही, कथानक की धारा एवं स्वरूप की काया पलट हो गई है। लक्ष्मण को भी पर्याप्त सक्रियता एवं महत्ता प्राप्त हुई है। उर्मिला-लक्ष्मण के आख्यान के समक्ष, राम-सीता की कथा आनुषंगिक हो गई है, परन्तु उनके व्यक्तित्व की दीप्ति में कोई अन्तर नहीं आया है। कवि ने परिपाटी-गत लक्ष्मण के चरित्र में काफी संशोधन उपस्थित किये हैं। राम का चरित्र भव्यता, आर्य-संस्कृति के उन्नयन

एवं मानवता के प्रतीक के रूप में अधिष्ठित हुआ है। उर्मिला में नारी-चरित्र एवं नारी-जीवन का चरमोत्कर्ष दिखलाया गया है जो कि विद्रोह, करुणा तथा विषाद के तीन सूत्रों से संचालित होता है। इस प्रकार 'उर्मिला' ने जहाँ एक ओर प्रेम-कथा और चरित्र-प्रधान काव्य का स्वरूप धारण किया है, वहाँ वह सांस्कृतिक-सारनिधि भी बन गया है।

शैली—'उर्मिला' की भाषा-शैली में पुरातन तथा नूतन[1] का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उसमें प्रबन्ध-शैली एवं गीति-शैली, दोनों का ही प्रयोग किया गया है। इसमें प्रथम से लेकर तृतीय सर्ग तक प्रबन्ध-प्रवाह प्राप्य है। चतुर्थ एवं पंचम सर्ग में गीत-शैली ने झाँकी दिखाई है और अन्तिम सर्ग में मिलता है दार्शनिक विश्लेषण। कवि के प्राचीन काव्य के अनुराग की अभिव्यक्ति पंचम सर्ग के दोहा-सोरठा शैली में होती है।

'उर्मिला' की शैली में कथा, गीत तथा नाटक के उपादानों का समन्वय है। सूक्ति, शब्द-शक्ति तथा तीव्रता का विन्यास है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि "सूक्ति और संगीत, काव्य के अलंकरण हैं, वे स्वतः काव्य नहीं हैं।" शर्मा जी का पीछा इन अलंकरणों से कभी नहीं छूटा, इसलिये उनका काव्य अभिव्यंजना प्रधान ही रहा। जब और जहाँ कहीं अभिव्यंजना की प्रमुखता कम हुई, शर्मा जी का काव्य और भी नीरस हो गया। उदाहरण के लिए है उनका 'उर्मिला आख्यान।"[2]

'उर्मिला' में प्रौढ़, भावपूर्ण और अलंकृत भाषा को स्थान मिला है। वह संस्कृत-निष्ठ है और प्रभविष्णुता के गुण से युक्त है। प्रसाद-गुण प्रधान होकर, इस कृति की भाषा भाव-व्यंजना में समर्थ दीख पड़ती है। उसमें यत्र-तत्र शक्ति तथा ओज के दीपक भी प्रज्वलित दृष्टिगोचर होते हैं।

'उर्मिला' की भाषा-शैली को पर्याप्त परिष्कार की भी आवश्यकता थी जिसे उसका रचयिता अपने संघर्षमय जीवन के कारण भली-भाँति तथा पूर्णरूप से सम्पन्न नहीं कर सका। फिर भी उनकी शैली में ऋजुता, सौरस्य और गाम्भीर्य के प्रचुर दर्शन होते हैं।

प्रभावान्विति तथा रस-व्यंजना—'उर्मिला' में कार्य तथा प्रभाव की अन्विति संतुलित एवं व्यवस्थित है। उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन उसका प्रमुख कार्य है और अपने चरित्र-नायिका के चित्र का अनावरण तथा राम-वनगमन की सांस्कृतिक व्याख्या के प्रभाव को चरितार्थ करने में कवि को पूर्ण साफल्य प्राप्त हुआ है।

'उर्मिला' रससिक्त कृति है। उसमें तीक्ष्णता का प्राचुर्य है। कवि ने श्रृंगार-रस के

---

१. "Maturity of Language may naturally be expected to accompany maturity of mind and manners. We may expect the language to approach maturity at the movement when it has a critical sense of the past, a confidence in the present and no conscious doubt of the future." T. S. Eliot, What is a classic, page 14.

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' विज्ञप्ति, पृष्ठ ३।

विप्रलम्भ रूप को प्राधान्य प्रदान कर, करुणा तथा विषाद के वातावरण को सशक्त बनाया है। उसके सभी पात्र अपना प्रभाव छोड़ते हैं और राम-कथा के सांस्कृतिक प्रयोजन की द्युति में वृद्धि करते हैं।

जीवनी शक्ति एवं प्राणवत्ता—डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि "महाकाव्य की जीवनी-शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज को कितनी शक्ति, कितना साहस और जीवन को कितनी उमंग तथा आस्था प्रदान करती है। महाकवि जब अपनी सप्राणता को महाकाव्य में जीवन्त रूप में उतारता है, तभी महाकाव्य में वह सशक्त सप्राणता आ पाती है, जो युग-युग तक समाज को शक्ति और प्रेरणा प्रदान कर सकती है।"[1] इस दृष्टिकोण से 'उर्मिला' सप्राण एवं सशक्त कृति है, जिसमें युग-युगान्तरों के लिए जीवनी-शक्ति तथा शाश्वत-सन्देश भरे पड़े हैं। जहाँ तक चिरन्तन सन्देशों के निसृण का प्रश्न है, वह 'कामायनी' के समतुल्य एवं समकक्ष अधिष्ठित की जा सकती है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह, सभ्यता के उद्गम, संगम, प्रलय, किसी महच्चरित्र के विराट्-उत्कर्ष अथवा आत्म-तत्व के किसी चिर अनुभूत रहस्य को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है।"[2] यह कथन, 'उर्मिला' पर सटीक चरितार्थ किया जा सकता है। कवि ने त्रेता-युग के 'संक्रान्ति काल' में महाक्रान्ति की वेला में, आर्य-अनार्य, आत्मवाद, भौतिकवाद, धर्मवाद, अर्थवाद, ज्ञानवाद, भोग-वाद, लोक-रक्षा, परशासन अर्थात् राम-रावण के संघर्ष की मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है। आर्य-धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति की महदुपलब्धियों तथा गरिमा की इसमें ऋचाएँ लिखी गई हैं। इस कृति में भारत समग्र वसुन्धरा को अपने अंक में समेट रहा है। भौतिकता, यान्त्रिक सभ्यता, विज्ञान आदि के असद् पक्ष का उद्‌घाटन कर, कवि ने 'कामायनी' के समान, श्रद्धा-भक्ति-विश्वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय गोलक, हमारे युग को प्रदान किये हैं। मानवतादर्श की विभा के अतिरिक्त जीवन में आत्माहुति, तपस्या, त्याग तथा कर्त्तव्य की बेलि को लगाया गया है। नारी के ममत्व, करुणाशील, कर्त्तव्यरत तथा उत्सर्ग रूप का उन्मेष, इस काव्य में दोहद-क्रिया का संचार करता है।

नूतन रंगों, नवीन छवियों, नवल प्रसंगों तथा अभिनव परिवेश ने मिलकर एक अनूठा रंगमंच ही तैयार कर दिया है। जहाँ गरिमा का ज्योतिर्दीप जल रहा है, भव्यता की भित्ति दीप्ति प्रदान कर रही है। उदात्तता की ज्योति ऊर्ध्व-मुखी हो रही है और प्रणय-करुणा-कर्त्तव्य की वृहत्त्रयी अभिनय-रत है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "महाकाव्य मानवपन की समस्त सम-विषय वृत्तियों को समंजित करता है।"[3] 'नवीन' जी की 'उर्मिला' भी इसी दिशा में सफल प्रयास करती है।

श्री दिनकर ने लिखा है कि "महाकाव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं काव्य रचने के साथ-साथ वह अपनी रचना के प्रभाव से अन्त समकालीन कवियों को भी नई

---

१. डॉ० शम्भूनाथ सिंह—'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास', पृष्ठ १२०।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ४४-४५।

३. डॉ० नगेन्द्र—'अरस्तू का काव्य-शास्त्र' भूमिका, पृष्ठ १४१।

भावनाओं की ओर प्रेरित करे।"[1] समय से प्रकाशित न होने के कारण, यह काव्य इस सुकृत्य को सम्पन्न न कर सका। 'नवीन' जी मूलतः गीतकार थे। डॉ० बच्चन ने लिखा है "प्रबन्ध-काव्य के लिए जिस भाव-विचार परिसीमा, सन्तुलन और अनुपात-चेतना की आवश्यकता होती है, वह उनके ('नवीन' जी) लिए सहज साध्य नहीं थी। 'उर्मिला' काव्य उनके हाथों अव्यवस्थित (Unmanageable) हो गया।"[2]

निष्पत्ति—डॉ० गोविन्दराम शर्मा के मतानुसार, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'नवीन' जी की उर्मिला में महाकाव्योचित घटना-विस्तार, प्रबन्ध-निर्वाह और वैविध्यपूर्ण जीवन की व्याख्या नहीं हैं, फिर भी मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि, चरित्र-चित्रण की सफलता और उद्देश्य की महत्ता को ध्यान में रखते हुए हम उर्मिला को 'अन्य महाकाव्यों' में स्थान देता उचित ही समझते हैं।"[3] श्री देवीशंकर अवस्थी ने इसे महाकाय' काव्यग्रन्थ माना है। उनका मत है कि जहाँ तक महाकाव्य का प्रश्न है, मेरा स्पष्ट विचारा है कि यह ग्रन्थ उस गरिमा से युक्त नहीं है, जिससे महाकाव्य सम्पन्न होता है।[4] श्री कान्तिचन्द्र सोनरेक्सा ने इस कृति को 'विराट् गीत' के नाम से सम्बोधित करते हुए लिखा है कि "उनका समस्त काव्य गीति-काव्य है। 'उर्मिला' में भी उन्होंने महाकाव्य की शास्त्रोक्त काया का अनुसरण नहीं किया है। उसे मैं एक विराट् गति ही कहना चाहूँगा।"[5]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने गंगावतरण, प्रिय-प्रवास, साकेत, कामायनी आदि को 'एकार्थ-काव्य' कहा हैं। उनका मत है कि "महाकाव्य में कथा-प्रवाह विविध-भंगिमाओं के साथ मोड़ लेता आगे बढ़ता है, किन्तु एकार्थ काव्य में कथा-प्रवाह के मोड़ कम होते हैं। अधिकतर वर्णनों या व्यंजनाओं पर ही कवि की दृष्टि रहती है।"[6] इस दृष्टि से, 'उर्मिला' काव्य की दिशा में सोचा जा सकता है।

वस्तुतः 'उर्मिला' की परिगणना 'अन्य महाकाव्यों' में करके न तो उसके महाकाव्यत्व तथा महत्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन ही किया जा सकता है और न उसे 'महाकाय' या 'विराट् गीत' ही माना जा सकता है। साथ ही उसे, एकार्थ-काव्य की पंक्ति में भी बैठाना युक्ति-युक्त नहीं। 'उर्मिला' के नूतन कथा-विन्यास और उसका सांगोपांग एवं रोचक चरित्र-विकास, सर्वतोमुखी सांस्कृतिक अनुवीक्षण एवं विराट् काव्य चेतना, उसे 'अन्य महाकाव्यों' में स्थान ग्रहण नहीं करने देती। इससे उसके काव्य-मूल्य की अवमानना ही होती है। 'उर्मिला' सिर्फ 'महाकाय' ही नहीं है, प्रत्युत् उसमें जीवन्त कथानक, सफल चरित्र-चित्रण, नूतन कल्पना-शक्ति, कलात्मक संस्पर्श, महती जीवनी शक्ति तथा शाश्वत मानवीय संदेश भी ओत-प्रोत हैं, इसलिए यह सम्बोधन अथवा स्वरूप-निदर्शन संगत प्रतीत नहीं होता। 'उर्मिला' को विराट्

---

१. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'—'मिटी की ओर', पृष्ठ १६६।
२. डॉ० 'बच्चन' का मुझे लिखित (दिनांक २८-८-६२ के) पत्र से उद्धृत।
३. 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य', पृष्ठ ४४५।
४. 'कल्पना', जून १६६०, पृष्ठ ६२।
५. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' ३ जुलाई १६६०, पृष्ठ २०।
६. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र—'वाङ्मय विमर्श', पृष्ठ ४५।

गीत मानना काल्पनिक अधिक है, तथ्यपरक कम। इसमें उसके प्रबन्ध-शिल्प तथा महतादर्श की उपेक्षा ध्वनित होती है जो कि उचित नहीं है। आचार्य मिश्र जी के 'एकार्थ काव्य'-विषयक लक्षण[1] वस्तु-विन्यास को ही अधिक मुखर बनाते हैं न कि समग्र काव्य-रचना को। अतएव, एकार्थ-काव्य की दिशा में भी उन्मुख होना सार्थक नहीं।

वास्तव में उर्मिला 'महाकाव्य' है और कवि का परम-काव्य। डॉ० मुंशीराम शर्मा के मतानुसार, "वह महाकाव्य तो है ही, पर सिद्धान्ततः महाकाव्य की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आ सकता।"[2] शास्त्रोक्त धारा में समग्र अवगाहन न करने पर भी इसकी विराट् कल्पना-वैभव, अभिनव विचारणा, क्रान्तिकारी वस्तु-विन्यास, प्रौढ़ मानवीय-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, सफल चरित्रोत्थान तथा जीवन-सन्देश इसे महाकाव्य की महिमामय प्रतिभा प्रभावित करते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह मत हमारी उपर्युक्त धारणा का अनुमोदन करता है कि "महाकाव्यों के परम्परागत लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कोई प्रबन्ध-रचना महाकाव्य हो सकती है।"[3] महाकाव्य के सर्वमान्य शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर रामचरित-मानस के अतिरिक्त हिन्दी की अन्य कोई भी रचना खरी नहीं उतरती।[4] अर्वाचीन महाकाव्य स्वरूप तथा युग की माँग तथा प्रवृत्ति को देखते हुए, हमें यथानुकूल एवं यथासम्भव नियोजना करना चाहिये।

'कामायनी' के पश्चात् निकले महाकाव्यों में विभिन्न युगों का सेतु रूप दृष्टिगोचर होता है, जिनमें 'उर्मिला' भी है।[5] डॉ० रामअवध द्विवेदी ने 'उर्मिला' को 'महाकाव्य' का ही सम्बोधन प्रदान किया है।[6] उसके महत्वांकन के सम्बन्ध में उनका अभिमत सर्वथा सार्थक तथा उचित है कि इधर हाल के वर्षों में प्रकाशित महाकाव्यों में उसका विशेष स्थान है।[7]

---

१. 'वाङ्मय-विमर्श', पृष्ठ ४४-४५।

२. डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक ६-६-१९६२) का पत्र।

३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी —'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ८०।

४. 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य', पृष्ठ १२८।

५. "इसके अतिरिक्त हिन्दी में 'कामायनी' के बाद 'महाकाव्यों' की संख्या में विपुल वृद्धि हुई है। यद्यपि महाकाव्यकारों में 'कथ्य' और शैली के प्रति जागरूकता का अभाव दिखाई पड़ता है परन्तु यह काव्य-परम्परा को नए युग में प्रतिष्ठित करने में अवश्य सफल हुआ है। इन महाकाव्यों में रसमय और मार्मिक-स्थलों का अभाव नहीं है। तक्षशिला, नूरजहाँ, कृष्णायन, उर्मिला, वैदेही-बनवास, साकेत, सन्त, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, दैत्यवंश, विक्रमादित्य तथा पार्वती आदि अनेक प्रबन्ध-काव्यों में कवियों का श्रम व्यर्थ नहीं गया है। वस्तुतः ये काव्य हिन्दी-काव्य के विभिन्न युगों के सेतु रूप में दिखाई पड़ते हैं।"—डॉ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, 'आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा', पृष्ठ ५८७।

६. डॉ० रामअवध द्विवेदी— साप्ताहिक 'आज', २९ मई १९६०, पृष्ठ ९, कालम ३।

७. वही।

'साकेत' तथा 'उर्मिला'—'साकेत' और 'उर्मिला' में काफी साम्य है और पर्याप्त वैषम्य भी। दोनों के प्रेरणा-स्रोत एवं युगीन परिस्थितियाँ एक समान रही हैं। दोनों का रचना-काल भी प्रायः एक सा ही है। 'साकेत' की रचना-अवधि सन् १९१४-१९३१ की है, जब कि 'उर्मिला' की सन् १९२२-१९३४ ई०। 'साकेत' सन् १९३२ में ही प्रकाशित हो गया, परन्तु 'उर्मिला' सन् १९५७ में। गुप्त जी मूलरूप में प्रबन्ध-कवि हैं और उनका कवि, उत्तरोत्तर गीतकवि में परिणत हुआ है। 'नवीन' जी इसके विपरीत, मूलतः गीत-कवि हैं और उनका कवि शनैः-शनैः प्रबन्ध-कवि के रूप में परिवर्तित हुआ है।

साम्य—दोनों कृतियों के सृजन-काल में जहाँ साहित्य में छायावाद की धूम थी, वहाँ राजनीति में गान्धी युग-चेतना की। इसी हेतु दोनों, गान्धीवादी आध्यात्मिकता तथा नैतिकता, राष्ट्रीय आन्दोलन, नारी-जागृति आदि के स्वर को प्रखरता प्रदान करते हैं। गार्हस्थ्य जीवन के मधुर तथा परिहासमय चित्रों की झाँकी दोनों ही कवियों ने सँजोई है। दोनों ने, दो सर्गों का उपयोग उर्मिला के विरह-वर्णन में किया है। दोनों, इन सर्गों में गीत-तत्वों को सर-आँखों ले लेते हैं।

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की मूल अनुभूति, प्रतिपाद्य विषय तथा ध्येय, समान ही हैं। दोनों कवियों ने उर्मिला के चरित्र के उद्घाटन करने का सफल प्रयास किया है। उर्मिला-लक्ष्मण का दाम्पत्य-जीवन, राम-वनयात्रा के समय उर्मिला की स्थिति, वन-यात्रा की सांस्कृतिक पीठिका, वियोग-व्यथा और उर्मिला-लक्ष्मण पुनर्मिलन के प्रसंगों में दोनों कवि प्रायः एक मत हो गये हैं।

दोनों कृतियों के विषय-साम्य के कतिपय दृष्टान्त प्रासंगिक एवं सार्थक होंगे—

(१) साकेत—हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढ़ा दिये,
और बोले—'एक परिरम्भण प्रिये।'
सिमिट-सी सहसा गई प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।
किन्तु घाटे में उसे प्रिय ने किया,
आप हो फिर प्राप्य अपना ले लिया।[1]

उर्मिला—रखा लक्ष्मण ने मस्तक आन—
उर्मिला की जंघा पर, और
मूँद कर नेत्र बढ़ा दी भुजा,
प्रियतमा की ग्रीवा की ओर,
डोर अरुझी क्रीड़ा की, रम्य,
रमण के सुरझ गए तब तार,
थकित क्रीड़ा ऐसे झुक रही—
मेघ ज्यों झुक आयें दो-चार।[2]

---

१. 'साकेत', प्रथम सर्ग, पृष्ठ ३०।
२. 'उर्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १२६।

(२) साकेत—नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृंग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।[1]

उर्मिला—कुरंगण कूदो खेलो खेल,
हरिणियों, नाचो अपना नाच,
देखती हो क्या कौतुक भरी—
उर्मिला के लोचन-नाराच।[2]

(३) साकेत—मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख-शान्ति-हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया।
विश्वासी को विश्वास दिलाने आया।[3]

× × ×

वन में निज साधन सुलभ धर्म से होगा,
जब मन से होगा तब न कर्म से होगा ?
बहु जन वन में हैं, बने ऋक्ष-वानर से,
मैं दूंगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से।[4]

उर्मिला—आर्य सभ्यता, आर्य ज्ञान औ
आर्यों की संस्कृत वाणी,
पराऽपरा विधा का वैभव,
वेद-भारती कल्याणी,—
आर्यों की ये सब विभूतियाँ,
वन में प्रसारिता होंगी,
जटिल कुटिल अज्ञान-भावना—
निश्चय पराजिता होगी।[5]

× × ×

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक
तत्व विचार सिखाने को,
आर्य राम अवतीर्ण हुए हैं,
जग को पन्थ दिखाने को।[6]

---

१. 'साकेत', अष्टम सर्ग, पृष्ठ १६०।
२. 'उर्मिला', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ १२०।
३. 'साकेत', अष्टम सर्ग, पृष्ठ १६६।
४. वही, पृष्ठ १६८।
५. 'उर्मिला', तृतीय सर्ग, पृष्ठ १६८।
६. वही, पृष्ठ २६३।

(४) साकेत—सीता और न बोल सकीं, गद्गद् कण्ठ न खोल सकीं।
इधर उर्मिला मुग्ध निरी रहकर 'हाय !' धड़ाम गिरी,
लक्ष्मण ने दृग मूँद लिये, सब ने दो-दो बूँद दिये।[1]

उर्मिला—विमल उर्मिला की भुज-लतिका,
सीता का गलहार हुई,
सीता की भुज-वल्लरियाँ कुछ,
शिथिल हुई, लाचार हुई।
लखन देखते रहे दूर से,
नयनों में विषाद भर के,
वे हो गए समाधि-मग्न-से,
बीती बात याद करके।[2]

(५) साकेत—काँप रही थी देह-लता उसकी रह-रहकर,
टपक रहे थे अश्रु, कपोलों पर बह-बहकर।
वह वर्षा की बाढ़, गई उसको जाने दो,
शुचि-गम्भीरता प्रिये, शरद् की यह आने दो।[3]

उर्मिला—अब जब मिले सिद्ध थे दोनों,
आरम्भिक चांचल्य न था,
हृदय-मिलन-क्षण नयन अजल थे,
वहाँ हृदय-चापल्य न था,
नयनों में अति नीरवता थी,
वाणी में था मौन परम,
हृदयों में अनुभूति-बोध था,
प्राणों में थी शान्ति परम।[4]

वैषम्य—सादृश्य के साथ ही साथ, वैभिन्य के भी लक्षण परिमाणित किये जा सकते हैं। 'साकेत' के पूर्ववर्ती रचना होने के कारण, उसका 'उर्मिला' पर थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य पड़ा, परन्तु कवि ने मौलिकता के रज्जु को हाथ से नहीं छोड़ा है। 'उर्मिला में नूतन उद्भावनाओं तथा कल्पना-सृष्टि ने अपना प्रगल्भ रूप भी दिखलाया है। 'उर्मिला' की अपेक्षा 'साकेत' में प्रबन्धात्मकता अधिक है, परन्तु 'उर्मिला' में उर्मिला तथा लक्ष्मण को प्रधान-प्राधान्या पद प्रदान कर, उनके चरित्रगत विशिष्टताओं को प्रकाश में लाने में 'नवीन' जी को अधिक सफलता मिली है। इस कृति में नायक-नायिका के रूप में लक्ष्मण तथा उर्मिला असंदिग्ध रूप में उच्च-पदस्थ हो गये हैं।

---

१. 'साकेत', चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ८४।
२. 'उर्मिला', तृतीय सर्ग, पृष्ठ २९३-२९४।
३. 'साकेत', द्वादश सर्ग, पृष्ठ ३३५।
४. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६१९।

यह निश्चित है कि लक्ष्मण-उर्मिला की कथा के जितने मार्मिक अंशों को गुप्त जी पहचान सके हैं, उतना 'नवीन' जी से सम्भव नहीं हो सका है। 'उर्मिला' में मानवीय तथा संवेदनशील पक्ष उतना उभर कर नहीं आया है जितना 'साकेत' में। डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "गुप्त जी के साकेत से किसी अंश में यह (उर्मिला) भिन्न है। शृंगारिकता का का पुट अधिक गहरा है और तत्ससम्बन्धी वर्णनों में संयम की कुछ कमी दिखाई देती है। साकेत में भी शृंगारिक स्थल हैं किन्तु गुप्त जी ने नवीन जी की अपेक्षा मर्यादा का अधिक निर्वाह किया है।"[1]

'नवीन' जी की उर्मिला अधिक भास्वर, उसका वियोग-वर्णन अधिक गम्भीर एवं समयानूकूल हो सका है। 'नवीन' जी ने उर्मिला को अधिक जीवन-प्रसार तथा विशदता प्रदान की है। यहाँ राम-कथा उर्मिला की रक्षा पर हावी नहीं हो सकी है। दोनों के लक्ष्मण में भी काफी अन्तर है। 'नवीन' जी ने लक्ष्मण का अधिक परिमार्जन किया है। एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा। 'साकेत' के लक्ष्मण कैकेयी तथा दशरथ की ही अवमानना नहीं करते हैं, प्रत्युत्, सीता की उपेक्षा करते हुए पाये जाते हैं। वे सीता से कहते हैं—

उठा पिता के भी विरुद्ध मैं
किन्तु आर्य भार्या हो तुम,
इससे तुम्हें क्षमा करता हूँ,
अबला हो आर्या हो तुम।[2]

इसके विपरीत 'नवीन' जी के लक्ष्मण इस उद्धत स्वभाव से कोसों दूर दृष्टिगोचर होते हैं। वे अग्रद्रष्टा एवं विवेकशील हैं। 'साकेत'-सा असंतुलन उनमें कहीं भी अपनी झलक नहीं दिखाता। 'उर्मिला' के लक्ष्मण सीता से कहते हैं—

पर तुम हो विदेह की बेटी,
पुत्रवधू हो दशरथ की,
तुम हो सहगामिनी राम की,
विकट साधना के पथ की।[3]
पावक सम तुम परम पवित्रा,
अनल दीक्षिता, तेजमयी।[4]

इसके अतिरिक्त 'उर्मिला'-समीक्षा के प्रायः सभी उपकरणों में, 'साकेत' सम्बन्धी अन्तर निवेदित किये जा चुके हैं। सब मिलाकर 'साकेत' एवं 'उर्मिला' समान-स्तर की कृतियाँ हैं। परन्तु जो ऐतिहासिक महत्ता 'साकेत' को मिली, वह 'उर्मिला' को न मिल सकी। 'साकेत' ने जहाँ परिपाटी की शृंखला बनकर भी नूतन परम्परा का प्रसव किया, वहाँ 'उर्मिला' इस प्रवाह से असम्पृक्त हो गई। कलात्मक-सौष्ठव का जो उत्कर्ष 'साकेत' में प्राप्य है, उसका 'उर्मिला' में

---

१. डॉ० रामअवध द्विवेदी—साप्ताहिक 'आज', २६ मई १९६०, पृष्ठ ९, कालम ३।
२. 'साकेत' एकादर्श सर्ग, पृष्ठ १८३।
३. 'उर्मिला', षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ६१५।
४. वही, पृष्ठ ६१४।

अभाव है। डॉ० 'बच्चन' ने लिखा है कि " 'उर्मिला' तथा 'साकेत' की तुलना में 'उर्मिला' नीचे रह जायगी। गुप्त जी नवीन जी के विपरीत प्रबन्ध-प्रतिमा के कवि हैं। फिर भी मेरी ऐसी धारणा है कि उर्मिला के हृदय को समझने के लिए 'नवीन' जी के पास गुप्त जी से अधिक सक्षम हृदय था—अधिक कोमल, अधिक भाव-द्रवित।"[1] इसीलिए 'नवीन' जी की 'उर्मिला' गुप्त जी की उर्मिला से अधिक प्रभविष्णु बन गई है। डॉ० मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि " 'साकेत', और 'उर्मिला' दोनों में, रामकथा को निबद्ध किया गया है—उद्देश्य दोनों का एक ही है—उर्मिला का यशोगायन। साकेत के प्रथम तथा अन्तिम सर्गों में उर्मिला का ही जय-जयकार है। नवीन जी की उर्मिला में भी यही है। कथा में एक ने (स्थान) साकेत को केन्द्र बनाया है—दूसरे ने (पात्र) उर्मिला को। साकेत की काव्य सम्बन्धी प्रौढ़ता को उर्मिला नहीं पहुँच पाती। एक में कथा के साथ काव्य-श्री की प्रधानता है तो दूसरे में दर्शन और भावुकता की।"[2]

निष्कर्ष—'नवीन' जी की उर्मिला साहित्यिक-सांस्कृतिक महाकाव्य है। इसमें कवि की वाणी का विलास अपने उन्मेष में दृष्टिगोचर होता है। यह कवि की एक मात्र, सर्वोपरि तथा सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें काव्य, संस्कृति एवं दर्शन का स्वर्णिम समन्वय, नूतन-विहान का आह्वान कर रहा है। इसका समन्वयवाद, अपने प्रशस्त क्रोड़ में, संस्कृत-महाकाव्यों की विवरण-सामर्थ्य, रीति-काल की दोहा सोरठा शैली, कृष्ण-काव्य की ब्रज-भाषा माधुरी, आधुनिक युग की खड़ीबोली की ऋजुता, द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता, छायावाद की भाव-व्यंजना तथा गीति-मुखरता, रहस्यवाद की दार्शनिक दीप्ति और प्रगतिवाद की सर्वहिताय एवं मानवता-परक वृत्ति को अधिष्ठित किये हुए हैं।

भाषा-शैली के स्तरों में वह कभी हरिऔध, कभी मैथिलीशरण गुप्त और कभी जयशंकर प्रसाद के सन्निकट दृष्टिगोचर होती है। जीवनादर्श में वह 'प्रियप्रवास', जीवन-दर्शन में 'कामायनी' तथा जीवन-स्पन्दन में 'साकेत' के समकक्ष उपस्थित की जा सकती है। कवि 'नवीन' के जीवन-सार, नवनीत-काव्योत्कर्ष तथा समवेत साहित्यिक उपलब्धि की, 'उर्मिला' परिचायिका है। उनमें भोग का त्याग, आसक्ति पर तपस्या, आत्म-मोह पर आत्मोत्सर्ग तथा व्यष्टि पर समष्टि की विजय निरूपित की गई है।

राम-कथा एवं राम-काव्य में 'उर्मिला' का अपना सम्मानित गरिमामय एवं अनूठा स्थान है। राम-कथा में ऐसा क्रान्तिकारी तथा नूतन आसव को समाहित किये, ग्रन्थ नहीं लिखा गया। 'साकेत' को जहाँ 'अभिनय-काव्य' कहा गया है, वहाँ 'उर्मिला' को 'पूरक-काव्य' या 'सम्पूर्ति-काव्य' की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है। इस सम्पूर्त्ति-काव्य ने राम-कथा के अनेक अंग-प्रत्यंगों की पूर्त्ति कर, उसे मांसल, पुष्ट तथा पूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है।

आधुनिक हिन्दी काव्य को 'नवीन' जी का यह प्रदेय अपनी महत्वपूर्ण स्थिति बताता है। इससे हमारी काव्य-श्री में अभिवृद्धि हुई है और हमारी शाश्वत-निधि की मंजूषा में एक हृदयस्पर्शी हीरा आया है।

---

१. डॉ० 'बच्चन' का मुझे लिखित (दिनांक २८-८-१९६२ का) पत्र।

२. डॉ० मुंशीराम शर्मा का मुझे लिखित (दिनांक ६-९-१९६२ का) पत्र।

अष्टम अध्याय

काव्य-शिल्प

काव्य-शिल्प

भूमिका—भारतीय चिन्ताधारा में कवि-शक्ति को देवता-विशेष की कृपा[1] अथवा परमेश्वर की देन[2] के रूप में ग्रहण किया गया है। इसी कवि-शक्ति का सम्बन्ध प्रतिभा से माना गया है जो कि कवित्व का बीज और कवि के कोई जन्मान्तरगत संस्कार-विशेष के रूप में मानी गई है।[3] आचार्य कुन्तक ने पूर्व-जन्म तथा प्रस्तुत-जन्म के संस्कारों के परिपाक के प्रौढ़त्व प्राप्त कवि-शक्ति को ही प्रतिभा माना है।[4]

आचार्य रुद्रट ने प्रतिभा दो प्रकार की मानी है—सहजा और उत्पाद्या। इनमें से सहजा मनुष्य के जन्म से ही सम्बद्ध होने से अधिक श्रेष्ठ है।[5] 'नवीन' जी प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। उनकी प्रतिभा भी उत्पाद्या न होकर सहजा थी। वे कवित्व-शक्ति के नैसर्गिक वरदान से विभूषित थे। वे जन्मतः कवि थे, गढ़े[6] नहीं गये थे। वे अतीव सहृदय थे परन्तु काव्याभ्यास[7] का उनमें अभाव रहा जो कि प्रतिभा रूपी बीज-स्वरूप के पल्लवन में आवश्यक माना गया है।[8]

'नवीन' जी में काव्य-साधना का पर्याप्त अभाव रहा है। इस तथ्य को उन्होंने भी स्वीकार किया है—

---

१. 'तस्याश्च हेतुः क्वचिद्देवता महापुरुषप्रसादादिजन्यदृष्ठम्'—पण्डित राजजगन्नाथ, रस गङ्गाधर, पृष्ठ ६।

२. "कविता शक्ति परमेश्वर की देन है और इसीलिए कवियों की तरंग कुछ विलक्षण है।"—श्री राधाकृष्णदास, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, छठा भाग, सन् १६०२, पृष्ठ १७८-७६।

३. 'कवित्वबीजं प्रतिभानम्, जन्मान्तरागतसंस्कार-विशेषः कश्चित्'—आचार्य वामन, हिन्दी काव्यालंकार सूत्र, १।३।१६।

४. 'प्राक्तनाद्यतनसंस्कारप्रौढ़ा प्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः'—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित ।१। २६, कारिका की व्याख्या, पृष्ठ १०७।

५. 'प्रतिभेत्य परैरुदिता सहजोत्पाद्या च सा द्विधा भवति, पुंसा सह जातवादन योस्तु ज्यायसी सहजा'—'काव्यालंकार' ।१। १७।

६. 'Poeta nascitur, non fit' लेटिन उक्ति—कवित्व-शक्ति जन्म से ही सिद्ध होती है, कवि गढ़े नहीं जाते।—डॉ० बलदेवप्रसाद उपाध्याय कृत 'सूक्ति-मुक्तावली', पृष्ठ ७ से उद्धृत।

७. 'अधिगत सकल ज्ञेयः सुकवेः सुजनस्य सन्निधौ नियतम्, नक्तंदिनमभ्यस्यदभियुक्तः शक्तिमान्काव्यम्।'—आचार्य रुद्रट, 'काव्यालंकार', ।१। २०।

८. प्रतिभैव श्रुताभ्यास सहिता कवितां प्रति।
हेतुर्मृदम्बुसंबद्धा बीजपंक्तिरलतामिव ।।—आचार्य जयदेव, 'चन्द्रालोक', ।१।६।

(क) "जहाँ तक मेरी अपनी कविताओं का सम्बन्ध है, मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि मैं 'कवि न होऊं, नहिं चतुर कहाऊँ'। हाँ, बीज औकाति कुछ धुवाँ-सा मन में मँडराने लगता है और कुछ कहने की ख्वाहिश हो उठती है। जहाँ तक छन्द-शास्त्र का ताल्लुक है, मैंने उसे बिलकुल ही नहीं पढ़ा। न मुझे रसों के नाम मालूम हैं, न मैं यगण-भगण जानता हूँ। ताहम् मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छन्द ढीले-ढाले नहीं होते फिर भी, हूँ तो नाख्वांदा ही।"[१]

(ख) "यों, कला की दृष्टि से पाठक को मेरे गीतों में दोष मिल सकते हैं। किन्तु मेरी भावना की सदाशयता का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक कलाविज्ञों को उसमें सन्देह करने का अवसर न मिलेगा।"[२]

(ग) "यह मेरा एक और गीत-संग्रह प्रकाशित हो रहा है। मैं इन गीतों के सम्बन्ध में क्या कहूँ? पाठक और समीक्षक, अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल इस बात का निर्णय करेंगे कि ये कैसे हैं। अपने सम्बन्ध में मैं निःसंकोच यह कह सकता हूँ कि मुझमें साधना का अभाव है। साहित्य-साधना के लिए, माता सरस्वती की उपासना के लिए, जिस एकनिष्ठता की आवश्यकता होती है वह मुझमें नहीं रही। जीवन एक प्रकार से उखड़ा-उखड़ा सा रहा है। यदा-कदा, जब कुछ भीतर से खुट-खुट हुई, लिखने बैठ गया। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि व्यर्थ ही मैंने काव्य-रचना का प्रयास किया है। मेरे पास न शब्द हैं, न कला-कौशल है, न अध्ययन गाम्भीर्य है, और न स्वेद-सामर्थ्य। तन्तुवाय एक-एक तार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तब कहीं जाकर गर्व से कह सकता है कि 'झीनी-झीनी बिनी चदरिया।' एक मैं हूँ जो स्वर ध्वनिमय शब्दों का ताना-बाना पूरने का नाटक रचता हूँ, पर तन्तुवाय की ध्यान केन्द्रीयता की साधना नहीं कर सका हूँ।"[३]

'तुलसी बाबा' की पंक्ति, 'कवित विवेक एक नहि मोरे' उन पर चरितार्थ होती है। वे मस्त प्रकृति के व्यक्ति थे। श्री राधाकृष्णदास ने ठीक ही लिखा है "कि जो लोग सुकवि हैं उन्हें जब तरंग आती है तो फिर संसार के नियमों को दूर रखकर वे अपनी उमंग को निकाल डालते हैं। यदि चाहे तो उनकी स्वाभाविक कल्पना नष्ट हो जाती है और फिर उसका रस जाता रहता है।"[४] कवि की अपनी इच्छा की प्रधानता के कारण ही, उसे 'प्रजापति' के समान बताया गया है।[५]

वास्तव में 'काव्याभ्यास एवं एकोन्मुख साधना की दिशा में 'नवीन' जी कबीर के प्रतिरूप थे। जिनके विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि सिर से पैर तक वे मस्तमौला थे—बेपरवाह, दृढ़ उग्र।[६] कहा भी तो गया है—'कवयः क्रान्तदर्शिनः'।

---

१. कुंकुम, पृष्ठ १६।

२. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ३।

३. 'अपलक', मेरे क्या सजल गीत ? पृष्ठ—क।

४. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', छठा भाग, सन् १६०२, पृष्ठ १७८-७६।

५. 'अपारे काव्यसंसारे कविरेका प्रजापतिः,
यथा स्मे रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते—अग्निपुराण, ३३६।१०।

६. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का व्यक्तित्व, पृष्ठ ६७।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य-साधना के अभाव में उनका वाङ्मय यथोचित रूप में कलात्मक उत्कर्ष एवं परिष्कार प्राप्त नहीं कर सका। कवि के बहुविध जीवन की इसमें सबसे बड़ा कारण प्रतीत होता है। वह अपनी समग्र शक्तियों को एकनिष्ठ नहीं कर सका। इसी पूर्वपीठिका पर, 'नवीन' जी के काव्य के शिल्प-पक्ष का अनुशीलन करना, समुचित प्रतीत होता है।

विश्लेषण—'नवीन' जी के काव्य में विविध शैली, भाषा एवं छन्दों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। वे भावना-प्रिय एवं आवेगशील कवि थे। इस नाते, उनके कला-पक्ष पर भी उनके आवेग का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। उन्होंने काव्यालंकार एवं वाह्य साज-सज्जा को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया। उन्हें अनुभूति का कवि माना जा सकता है जिसके फलस्वरूप उनके काव्य में अनुभूति की ही प्रधानता हो गई है। ध्वनि की अपेक्षा रस को ही अधिक श्रेयस्कर बताते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "अनुभूति और कल्पना में अनुभूति ही अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि काव्य का संवेद्य वही है। कल्पना इस संवेदन का अनिवार्य साधन अवश्य है परन्तु संवेद्य नहीं है।"[१] 'नवीन' जी की काव्य-कला के विश्लेषण से, उपर्युक्त स्थिति की पुष्टि की जा सकती है।

काव्य-शैली—'नवीन' जी की शैली को भाव-प्रधान एवं गीति-शैली के रूप में चरितार्थ किया जा सकता है। इन्हीं दो तत्वों में उनकी काव्य-कला का सार निहित है। इस प्रकार 'नवीन' जी की काव्य-शैली को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—(क) प्रबन्ध-शैली, (ख) मुक्तक-शैली, (ग) गीति-शैली।

प्रबन्ध-शैली—'नवीन' जी की प्रबन्ध शैली के दर्शन उनके महाकाव्य 'उर्मिला' तथा खण्डकाव्य 'प्राणार्पण' में होते हैं। इस शैली को भी तीन भागों में बाँटा जा सकता है:—(क) वर्णन-प्रधान शैली, (ख) चित्रण-प्रधान शैली, (ग) भाव-प्रधान शैली।

वर्णन-प्रधान शैली—'नवीन' जी ने आख्यान शैली का उपयोग कथांशों के वर्णन में किया है। यह शैली सरल तथा अभिधाशक्ति युक्त है। इसका एक दृष्टान्त पर्याप्त है:—

> हो गया कुकर्मों से अपने अभिशाप ग्रस्त कानपुर,
> हिंसा की ज्वाला भड़की, मंडराने लगा धुआँ, घर-घर।
> देखा गणेशशंकर वर ने सहसा जन-गण-मन परिवर्तन,
> उसने देखा वह अधःपतन, देखा विभीषिका का नर्त्तन।[२]

इस प्रकार कवि की वर्णन-प्रधान शैली ने अपने सामर्थ्य का ही परिचय प्रदान किया है।

---

१. डॉ० नगेन्द्र—'हिन्दी ध्वन्यालोक', भूमिका, पृष्ठ ७०।

२. प्राणार्पण, पृष्ठ १२।

चित्रण-प्रधान शैली—वर्णन की अपेक्षा चित्रण में कलात्मकता एवं सुष्ठुता अधिक प्राप्त होती है। चित्रण-प्रधान शैली में कवि ने भावानुरूपता, सरलता, माधुर्य और मर्मस्पर्शिता को अपनाने का सफल प्रयास किया है। चित्रण में कवि ने प्रवाह तथा प्रभावोत्पादकता का विशेष ख्याल रखा है :—

> पवन डगमग पग धरती बही,
> संकुचित कलियाँ कुछ हिल उठी,
> हृदय में धारे रेणु पराग,
> ऋतुमती के रज-सी खिल उठी।[1]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने चित्रण-शैली से, अपने काव्य को अधिक ऋजुमय बना दिया है। चित्रण में कवि ने अभिव्यक्ति को हृदयस्पर्शी एवं प्रभविष्णु बनाया है।

भाव-प्रधान शैली—इस शैली ने कथाप्रवाह एवं प्रबन्धात्मकता में सरलता एवं मर्मस्पर्शिता के तत्वों का नियोजन किया है। कवि ने प्रमुखतया इसी शैली का ही आश्रय ग्रहण किया है। इसमें भावों के अनुकूल शब्द-योजना एवं परिवेश सृष्टि की गई है। कवि ने करुणा के साथ उत्साह एवं प्रखरता के गुणों के कपाट खोले हैं—

> क्षर अक्षर में, अचर-सचर में—
> अजर अमर विद्रोह भरा,
> परम पुरुष की द्रोह-रूपिणी
> है यह प्रकृति परा-अपरा।[2]

'नवीन' जी की प्रबन्ध शैली में भावना तथा चित्रांकन की विशेषताएँ हैं। उसमें गीति-तत्वों का भी समावेश है जिसके कारण वह मधुर तथा प्रभावमय हो गई है। गति तथा प्रवाह के दृष्टिकोण से यह शैली अत्यन्व उच्चकोटि की है।

मुक्तक शैली—कवि की शैलियों में मुक्तक-शैली को ही प्राधान्य प्राप्त हुआ है। इस शैली ने उसके प्रबन्धकाव्यों में भी अपना प्रभावपूर्ण स्थान बनाया है।

अर्थ-द्योतन में समर्थ श्लोकों को ही मुक्तक की संज्ञा दी गई है।[3] यह शैली, प्रबन्ध-शैली से कई अर्थों में विभेद रखती है। प्रबन्ध-शैली में जहाँ कथा तथा वर्णनात्मकता को प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ मुक्तक-शैली में इनको गौण स्थान प्राप्त होता है। मुक्तक-शैली में जीवन के किसी एक क्षण, उद्दीप्त पक्ष अथवा मार्मिक घटना एवं संवेदनशील भाव को उद्घाटित किया जाता है, जब कि प्रबन्धशैली पर आधृत महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन का विश्लेषण अपेक्षित है। मुक्तक-शैली को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) छन्दगत-विभाजन - (क) मुक्तक-विधान, (ख) दोहा-विधान, (ग) सोरठा,

---

१. उर्मिला, पृष्ठ १२४।

२. वही, पृष्ठ २५०।

३. 'मुक्तकं श्लोकएकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्'—अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक ३३, पृष्ठ ४२१।

(घ) कुण्डलिया ; (२) संग्रहगत-विभाजन –(क) अवली, (ख) सतसई ; (३) उक्ति-वैचित्र्यगत विभाजन—(क) दृष्टकूट पद, (ख) सूक्ति।

छन्दगत विभाजन : मुक्तक-विधान—आचार्य अभिनव गुप्त ने लिखा है कि "ऐसा पद्य जिनका अगले-पिछले पद्यों से कोई सम्बध न हो, अपने विषय को प्रकट करने में स्वतः ही समक्ष हो, मुक्तक कहलाता है। उसमें रस की पूर्णता तथा स्वावलम्बन भी अपेक्षित है।"[1] आचार्य राजशेखर ने प्रबन्ध के सदृश्य, मुक्तक में भी वस्तु को नियोजित किया है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने उसके विषय में लिखा है—

छन्दोबद्ध पद्यते न मुक्तेन मुक्तम्।[3]

डॉ० रामसागर त्रिपाठी के मतानुसार जो काव्य अर्थ-पर्यवसान के लिए परापेक्षी न हो, वह मुक्तक कहलाता है।[4] इस प्रकार मुक्तक स्वावलम्बी तथा रसपूर्ण पद्य होता है। इसका 'नवीन' जी ने प्रचुर प्रयोग किया है। कवि के मुक्तक का एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

आखर अमित, अर्थ थोड़ा, यह प्रश्न-पत्र का खेल,
जी में आता आज जला दूँ उन सबको बे तेल।[5]

छन्दगत विभाजन : दोहा-विधान—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "जिस कवि में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह मुक्तक की रचना से सफल होगा।"[6] इस समाहार-शक्ति का कुशल निदर्शन हमें 'नवीन' जी के दोहों में भी प्राप्त होता है। दोहों की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए कविवर रहीम ने भी कहा है—

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहि।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिट कूदि चलि जाहि।[7]

'नवीन' जी के दोहों पर रीतिकालीन-काव्य का पर्याप्त प्रभाव है। ये कवि के प्राचीन काव्य-संस्कारों के भी निर्देशक हैं। इनमें कवि ने विविध भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। रीतिकालीन प्रभाव तथा शैली की विशेषता के दृष्टिकोण से, यह दोहा द्रष्टव्य है—

सीधे चितवत हौं तऊ, लगे तिरीछे बान,
दोख न काहू दीजिए, उलटयौ सकल विधान।[8]

---

१. 'मुक्तमन्यनालिंगितम् (तस्य संज्ञायां कन्) तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकांक्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्तीमुक्तकमित्युच्यते। पूर्वापरनिरपेक्षरणेपि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।' 'ध्वन्यालोक', अभिनव गुप्त की व्याख्या, तीसरा उद्योत, पृष्ठ १४३-४४।

२. 'काव्यमीमांसा', नवम अध्याय।

३. साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, ३१६।

४. डॉ० रामसागर त्रिपाठी—मुक्तक काव्य और बिहारी, पृष्ठ १८।

५. 'कुंकुम', पृष्ठ ७६।

६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २६८।

७. श्री सूर्यनारायण त्रिपाठी द्वारा संगृहीत, 'रहिमन-शतक'।

८ 'नवीन दोहावली' नैना, छठवीं रचना।

ये दोहे बिहारी का स्मरण दिला देते हैं। रसलीन के 'अमिय, हलाहल, मद भरे' के 'नवीन' जी का यह दोहा भी द्रष्टव्य है—

अरुण प्रात, कारी निशा, स्फटिक दुपहरी-पीर,
सलज लोचनन में दुरे, सब इक संग, री (वीर)।[1]

छन्दगत-विभाजन : सोरठा—'नवीन' जी के काव्य में, मुक्तक रचना की एक पद्धति के रूप में, इसका भी प्रयोग मिलता है। शैली में दोहे से बिलकुल विपरीत इसकी रचना होती है। 'नवीन' जी ने इसका प्रयोग 'उर्मिला' के 'पंचम सर्ग' में किया है। दोहों के मध्य सोरठा छन्द भी आया है—

मोहि आपुनी जानि, करहु कृपा एही, सजन,
करि संजोग चल दान, भरहु रिक्त अस्तित्व-घट।[2]

छन्दगत-विभाजन : कुण्डलिया—हिन्दी में तुलसीदास, दीनदयाल गिरि और गिरिधर कविराय की कुण्डलियाँ प्रसिद्ध हैं। 'नवीन' जी की भी एक कुण्डली प्राप्त होती है। इस छन्द में प्रमुखतया अन्योक्तियाँ, नीति तथा उपदेशों को ही लिखा गया है, परन्तु 'नवीन' जी इस परिपाटी में परिगणित नहीं किये जा सकते। उन्होंने नूतन भाव-योजना को स्थान प्रदान किया है। अपने व्यक्तित्व के करुण तथा वेदना के अनुकूल, उन्होंने इस छन्द को भी व्यक्तिवादी दर्शन की नियोजना में प्रयुक्त किया है—

कहा करौं ? यह वेदना, समुझि परै नहिं नेक,
तकि-तकि मैं कोऊ दे रह्यो संशय-बाण अनेक,
संशय बाण अनेक हिये में कसकि रहे ये,
घाव गहर गम्भीर तीर के टसकि रहे ये,
भरि-भरि आवत है कोमल क्षतविक्षत घाती,
बूँद-बूँद बहि चली सिघौसी संचित थाती,
कहहु कौन सो मरहम व्रण में यहाँ भरौं मैं,
हैं ये गहरे घाव, बतावहु कहा करौं मैं ?[3]

संग्रहगत-विभाजन : अवली—हिन्दी में अवली नामधारी मुक्तकों के संकलनों के नाम हैं– तुलसीकृत 'दोहावली', रहीम की 'रत्नावली', नागरीदास की 'रसिक रत्नावली' और वर्तमान युग में श्री दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे दोहावली'। इसी नामधारी पंक्ति में आती है, 'नवीन दोहावली'।

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने लिखा है कि "कवि की सबसे बड़ी कला यह है कि एक या अनेक चित्र अथवा व्यापार, दो पंक्तियों में इस प्रकास भर दें कि सम्मिश्रित विम्बों की स्पष्टता

---

१. 'नवीन-दोहावली', नैना, छठवीं रचना।
२. उर्मिला, पंचम सर्ग, पृष्ठ ४१४, छन्द, ६३।
३. 'नवीन-दोहावली', घाव, नवीं रचना।

भी नष्ट न हो और अकेला भाव, विचार और चित्र अलग चमकता रहे।''[1] यह विशेषता 'नवीन-दोहावली' में प्राप्य है।'नवीन दोहावली' की भाव-व्यंजना, विषय के आधुनिक ढंग से प्रस्तुतीकरण एवं नवल दृष्टिकोण के कारण, सम्बन्धित परिपाटी का पूर्णरूपेण परिपोषण नहीं करती।

संग्रहगत-विभाजन : सतसई—हमारे यहाँ सतसई की बड़ी पुरानी परम्परा रही है। सतसई शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' से उत्पन्न हुआ है। प्राकृत भाषा की 'गाथा-सप्तशती', संस्कृत-भाषा की 'आर्या-सप्तशती' और हिन्दी में 'तुलसी-सतसई', 'रहीम-सतसई', 'बिहारी-सतसई', 'मतिराम-सतसई', 'वृन्द-सतसई', 'विक्रम-सतसई', 'रसनिधि-सतसई', 'राम-सतसई' 'वीर-सतसई' आदि इसी सतसई-परम्परा की कड़ियाँ हैं। वियोगी हरि की 'वीर-सतसई' आधुनिक काल की कृति है। इसी प्राचीन तथा प्रसिद्ध सतसई नाम को 'उर्मिला-सतसई वहन करती है। सतसई की प्राचीन परिपाटी में श्रृंगार, भक्ति, नीति, उपदेश एवं वीरत्व के भाव प्रतिपाद्य हैं। 'नवीन' जी ने 'उर्मिला-सतसई' में विप्रलम्भ-श्रृंगार का प्रतिपादन किया है। इस सतसई में ७०४ दोहे सम्मिलित हैं जिनमें कतिपय सोरठे भी हैं। 'बिहारी-सतसई' में भी दोहों के साथ कहीं-कहीं सोरठे भी मिल जाते हैं। श्रृंगार-रस की परम्परा में, गाथा-सप्तशती, अर्या-सप्तशती, बिहारी-सतसई, मतिराम-सतसई, विक्रम-सतसई, रसनिधि-सतसई और राम-सतसई आती हैं।

उक्तिवैचित्र्य-गत विभाजन:दृष्टकूट पद – कबीर, विद्यापति, सूरदास आदि के सदृश्य 'नवीन' जी ने भी एक कूट पद लिखा है। इस पर कबीर और विद्यापति की अपेक्षा, सूर का अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है, जिनके दृष्टकूटों को, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक तरह के सन्धा-वचन या उलटबाँसी ही माना है।[2] 'नवीन' जी का यह पद इस प्रकार है, जिसमें वाणी तथा बुद्धि का विलास मात्र ही मिलता है––

यह स्रग्धरा प्रिया की प्रतिमा, वह सुप्रभ्रष्टक उनका लोल,
सुन्दर उनका ललित ललामक, मनहर वैकक्षिक-कल्लोल,
वह घनसार यक्ष कर्दम मय, भावित उनकी अंग-श्री,
इन सबकी स्मृति जाग उठे तो, कैसे धारें हम हिय ही ?
भाई अक्ष-चंचु, क्या न तुम समझे हिय की गहन-व्यथा ?
तो हम फिर कैसे समझावें, तुमको अपनी प्रेम-कथा ?[3]

इसमें चमत्कार एवं आधुनिकता की प्रधानता है। नूतन विषय को ग्रहण करने के कारण, यह परिपाटी का पूर्ण पोषण नहीं करता।

उक्ति-वैचित्र्यगत विभाजन : सूक्ति—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने, 'नवीन' जी की आरम्भिक रचनाओं को सूक्ति प्रधान कहा है।[4] श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने लिखा है कि ''छोटी-

---

१. 'साहित्य तरंग', पृष्ठ १३१।

२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य की भूमिका, संतमत, पृष्ठ ३५।

३. स्मरण-दीप, कवि जी, १५ वीं कविता, छन्द ३।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी, विज्ञप्ति, पृष्ठ ३।

छोटी सूत्रात्मक उक्तियाँ बहुधा अपने में पूर्ण होती हैं और उक्ति-वैचित्र्य अथवा ज्वलन्त विचार-खण्ड अथवा प्रमुख तथारूप, अथवा वास्तविक निष्कर्ष का प्रमुख भाग सामने रखने के कारण, पाठकों और श्रोताओं के कण्ठ में अपना स्थान कर लेती हैं। आंशिक सत्य के दर्शन होने के कारण इनका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ता है।[१]" 'नवीन' जी की सूक्ति निधि, दोहों में बिखरी पड़ी है। एक दृष्टान्त पर्याप्त है—

अरुण प्रात, कारी निशा, स्फटिक दुपहरी-पीर,
सलज लोचनन में ढुरे, सब इक संग, री बीर।[२]

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने लिखा है कि "वृंद, बिहारी, कबीर, रहीम, तुलसी, वियोगी हरि, दुलारेलाल और बालकृष्ण सभी के दोहों के अंकों में सूक्तियाँ पलती हैं।"[३] इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपनी काव्य-शैली में प्राचीन काव्य-शैली में प्राचीन मनोवृत्ति का भी परिचय दिया है। उनकी प्रस्तुत काव्य-शैली के सन्दर्भ में, श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' की यह उक्ति चरितार्थ की जा सकती है कि "यह कहना बहुत ही भ्रमपूर्ण है कि पुराने छन्दों में नवीन जीवन का उल्लास व्यक्त नहीं किया जा सकता।"[४] 'नवीन' जी का स्पष्ट मत था कि पुराने विषयों को भी नवीनता से सुसज्जित किया जा सकता है। कहना न होगा कि 'नवीन' जी ने दोहा-चौपाई-सोरठा-कुण्डली से समन्वित 'नवीन-दोहावली' एवं 'उर्मिला-सतसई' के प्राचीन प्रारूप रूपी पात्र में नये जीवन, विषयों, तत्वों एवं विचारों रूपी द्रव को उड़ेला है। वे परिपाटी का पालन करते हुए भी, अपनी काव्य एवं विचारगत कतिपय विशेषताओं के कारण, विच्छिन्न भी दृष्टिगोचर होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने अपनी मुक्तक शैली में प्राचीन एवं नूतन का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया हैं और इस शैली को नूतन भाव-भंगिमाओं से भी परिप्लावित किया है।

गीति-शैली—मुक्तक तथा गीति-शैली में कतिपय अन्तर भी हैं। दोनों का अन्तर निरूपित करते हुए, डॉ० शकुन्तला दुबे ने लिखा है कि "दोनों में (मुक्तक और गीतिकाव्य) अबन्धता के कारण एक भाव या एक विचार पर ही कवि की दृष्टि टिकी रहती है। किन्तु एक भाव, एक विचार और एक ही अवस्था की प्रखण्ड एकता में जहाँ गीतिकाव्य अत्यधिक भावात्मक एवं आत्माभिव्यंजक होता है, जहाँ गीतिकाव्यकार का मूल प्रेरणा-केन्द्र उसी के हृदय की भावात्मकता होती है, जहाँ भावों का ही एक मात्र सहारा कवि को रहता है, वहाँ मुक्तककार अपनी अभिव्यंजना में, भावावेग की तीव्रता के प्रभाव में आत्मनिष्ठता का तत्व नहीं ला पाता। वह अपनी भावधारा को बुद्धि की विचारधारा में रंग कर एक बड़े ही कला-पूर्ण रूप में अभिव्यंजित करता है। कभी-कभी तो कल्पना की इतनी ऊँची उड़ान भी लेने

---

१. साहित्य तरंग, पृष्ठ १३१।
२. वही।
३. नवीन-दोहावली, छठवीं कविता।
४. श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'—जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त, पृष्ठ ४६।

लगता है कि उसकी अभिव्यंजना में उक्ति वैलक्षण्य आ जाता है। यह उक्ति-वैचित्र्य गीतिकाव्य में स्थान नहीं पा सकता।[1]

साहित्यदर्पणकार ने 'शुद्धं गानं गेयपदं स्थितपाठ्यं सदुच्यते' कहकर गीत को रूपक का लास्यांग माना है।[2] निबन्ध काव्य का एक भेद मानकर गेय होने के कारण उसे गीति भी कहा गया है।[3] जान ड्रिंक वाटर ने लिखा है कि "गीतिकाव्य शुद्ध काव्यात्मक शक्ति द्वारा उद्भूत ऐसी अभिव्यंजना है जिसमें अन्य कोई भी शक्ति सहकारी नहीं होती, एवं गीतिकाव्य पर्यायवाची शब्द हैं।"[4]

'नवीन' जी अपने आप को मूलतः गीतकार ही मानते थे, प्रबन्धकार नहीं।[5] वे अपने व्यक्तित्व एवं प्रकृति से गीतकार ही थे। गीतों में ही उनका हृदय पिघलकर बह निकला है। 'नवीन' जी की गीति-शैली को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(क) पद-शैली, (ख) प्रगीत-शैली, (ग) लोकगीत-शैली।

पद-शैली—'नवीन' जी ने पद या गीतों का भी सृजन किया। इनमें उनका प्राचीन काव्य संस्कार, वैष्णव भावना, संगीत ज्ञान एवं तन्मयता को मुक्त क्षेत्र प्राप्त हुआ है। इस शैली को अपनत्व प्रदान करने के कारण वे, हिन्दी की प्राचीन गीतकारों की परिपाटी में अपना स्थान बना लेते हैं।

हमारे भक्त कवियों ने शास्त्रीय राग-रागिनियों के आधार पर अपने गीतों या पदों की रचना की है। साथ ही, गीत में संगीतमय अभिव्यक्ति[6] को भी प्रमुखता प्रदान की गई है।

संगीत, कवि के तन्तु-तन्तु में परिव्याप्त था। वह उसे संस्कार रूप में ही प्राप्त हुआ था। इसीलिए, कवि ने अपनी अनेक रचनाओं को शास्त्रीय आधार पर संगीतबद्ध करने का प्रयास किया है। उसकी इस प्रकार की रचनाओं में राग-रागिनियों के नामोल्लेख प्राप्य हैं—यथा, सोरठ-

---

१. 'काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास', पृष्ठ ४७६।

२. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक १२५।

३. श्री रामदहिन मिश्र, काव्यदर्पण, पृष्ठ २५०।

४. "But since it is most commonly found by itself in short poems which we call lyric, we may say that the characteristic of the lyric is that it is the product of pure poetic energy unassociated with other energies and that lyric and poetry are synonymous terms"—John Drink Water, The Lyric P, 64.

५. "Lyrical, it may be said, implies a form of musical utterance in words governed by overmastering emotion and set free by a powerfuly concordant rhythm". Ernest Phys; Lyric Poetry', Foreword, p. 6.

६. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा, गीत, ४१ वीं रचना।

देश, शाहान झपताल,[1] भैरवी राग,[2] राग सारंग,[3] आसावरी ध्रुपद,[4] राग खम्माच तिलाला[5] आदि। 'आसावरी ध्रुपद' में लिखित इस गीत में सुर, तुलसी, मीरा, नन्ददास आदि भक्त कवियों की पद-शैली के कतिपय सूत्र आ विराजे हैं—

दृग मग को घेर है गहन सघन अन्धकार,
अम्बर के ऊपर है अमित निबिड़ तिमिर-भार।[6]

कवि ने भक्तिपरक गीतों का भी निर्माण किया जो कि इसी परम्परा से ही उद्भूत हैं। इस प्रकार के गीतों पर सूर तथा मीरा का गहरा प्रभाव है।

प्रगीत-शैली—गीत या पद-गीत और प्रगीत में अन्तर है। शास्त्रोक्त रचना गीत है और आधुनिक ढंग के अपनत्व को प्रगीत की कला से विभूषित पाया है। हमारे भक्त कवियों की रचनाओं को गीत या पद कहा जाता है, परन्तु आजकल की नूतन शैली विहित मुक्तक रचनाएँ 'प्रगीत' संज्ञा प्राप्त रचनाएँ 'प्रगीत' संज्ञा करती हैं।

'नवीन' जी में, पुरातन एवं नूतन के समन्वित रूप के विद्यमान होने के कारण, उन्होंने गीत तथा प्रगीत, दोनों ही प्रकार की विधाओं में अपनी कला-कुशलता प्रकट की है। उनकी प्रगीत-शैली को दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है—(क) अभिव्यंजना-गत विशेषता, (ख) रूपगत विशेषता।

अभिव्यंजनागत विशेषता—गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुतीकरण की शैली में अनेक तत्वों की संयोजना होती है जिनमें निम्नलिखित प्रधान है—(१) आत्माभिव्यंजना, (२) संगीतात्मकता, (३) अनुभूति की पूर्णता, (४) भावों का ऐक्य। उपर्युक्त उपादानों के विवेचन से ही अभिव्यंजनागत शैली का सांगोपांग चित्र उपस्थित किया जा सकता है।

आत्माभिव्यंजना—श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[7] 'नवीन' जी ने अपने आवेशों को ही गीत का शाश्वत आवरण पहनाया है। उनकी आत्माभिव्यंजना में हृदय खोलकर अपनी बात को उपस्थित करने का तत्व दृष्टिगोचर होता है। वे अपनी मान्यता पर प्रकाश डालते हैं—

---

१. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा' बसन्त बहार, ५० वीं रचना।
२. वही, मिल गये जीवन डगर में, ५१ वीं रचना।
३. वही, काँव-काँव, ५८ वीं रचना।
४. वही, पराजय, १०२ वीं रचना।
५. प्रलयंकर, अक्षर, ६ वीं रचना।
६. 'अपलक' अपलक चख चमक भरो, पृष्ठ १०७।
७. 'यामा', अपनी बात, पृष्ठ ७।

बोलो कब नीरसता आई, मेरे रसमय अभिव्यंजन में ?
अतिविराग भी हुआ रसीला, बधकर मेरे रस बन्धन में ?
ऊपर से सूखा-सूखा हूँ, पर, अन्तर में हैं रस-धारा,
नहीं हुआ प्राचीन अभी, हूँ नित्य नवीन रसिक रंजन में।[1]

'नवीन' जी के काव्य में रागात्मक आवेश तथा मनोवेगों की तीव्रता का प्राचुर्य है। अभिव्यक्ति ने अपना सरल रूप ही प्रदर्शित किया है।

संगीतात्मकता—वास्तव में कविता शब्दमय संगीत है और संगीत ध्वनिमय कविता।[2] 'नवीन' जी की गीति-शैली संगीत के मार्दव से आपूरित है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी उनकी परवर्ती रचनाओं को 'संगीत प्रधान' बताया है।[3]

'नवीन' के प्रगीत-शिल्प में संगीत की अन्तःसलिला को प्रवहमान देखा जा सकता है। दो दृष्टान्त पर्याप्त होंगे—

रुन-झुन, गुन-गुन, रुन-झुन, गुन-गुन, भ्रमरी पांजनियां गुंजारी,
तन-मन-प्राण-श्रवण ध्वनि-नन्दित, आई यह अरुणा सुकुमारी।
वन-वन में कम्पन-निष्पन्दन भर-भर विचरा सनन समीरण,
वंश-अवलियों के अन्तर से गूंजे नव-नव स्वागत के स्वन।[4]

झन झन-श्रवणागत अनिल लहर
झन झन-यह अनहद नाद गहर
झन झन-ये ध्वनि सुरधनी भंवर।[5]

अनुभूति की पूर्णता—गीति-काव्य में अनुभूति की विशिष्टता तथा प्रभावोत्पादकता का विशेष ध्यान रखा जाता है। उनका तीव्र तथा मर्मस्पर्शी होना अत्यावश्यक है। 'नवीन' जी में अनुभूति अथवा विचार की अपूर्णता दोष नहीं है। उनकी विचारशील रचनाओं पर भी भावों का ही सरस आवरण है। उनकी कल्पना शक्ति, उनकी अनुभूति को मूर्त्त रूप देने में समर्थ हैं। उन्होंने अपनी प्रिय वृत्तियों को ही विशिष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रगीत में मानव की विशिष्टतम अनुभूतियों का ही प्रश्रय प्राप्त होता है।

भावों का ऐक्य—भावों की प्रभावशीलता तथा ऐक्य का मानव-मन पर गहन प्रभाव पड़ता है। भावों में भी मधुर, कोमल तथा सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति ही गीतिशिल्प को

---

१. स्मरण-दीप, द्विधा लोप, १७ वीं रचना।

२. "Poetry is music in words and music is poetry in round"—The New Dictionary of thoughts, compiled by T. Edward and Enlarged and revised by C. N. Catrevas and J. Edwards, P. 470.

३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, विज्ञप्ति, पृष्ठ ३।

४. 'रश्मिरेखा', आई यह अरुणा सुकुमारी, पृष्ठ १।

५. 'सिरजन की ललकारें या 'नुपूर के स्वन', आये नुपूर के स्वन झन-झन, ४१ वीं रचना।

उत्कर्ष प्रदान करती है। इस आधार पर शृंगार तथा करुण रस ही उपयुक्त तथा प्रभावशील माध्यम हो सकते हैं। 'नवीन' का गीतिकाव्य करुणा तथा रति की गाथा को गूँथता ही अग्रसर होता है। शृंगार उनके जीवन के साथ ही साथ, काव्य का भी रसराज है। उनके गीति-काव्य में भावानुभूति की सच्चाई तथा आर्जव की सहज प्राप्ति है। उनके गीतों का भाव-पक्ष जितना प्रखर तथा समृद्ध हैं, उतना कला-पक्ष नहीं। वे गीत के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्तिम स्थिति के सम्यक् सन्तुलन में एक सीमा तक ही सफल हो पाये हैं। भावों की अन्विति भी अपना पूर्ण रूप नहीं निखार पाती है।

रूपगत विशेषता—'नवीन' जी ने विभिन्न प्रकार के गीतों का सृजन किया है, जिनमें पृथक्-पृथक् शैली के दर्शन प्राप्त होते हैं। उनके गीतिकाव्य में, प्रगीत के निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं—(१) अन्तरंग रूप—(क) प्रणयगीत, (ख) देश-प्रेम के गीत, (ग) विचारात्मक प्रगीत, (घ) प्रकृतिपरक प्रगीत, (च) मधुवादी प्रगीत; (२) बहिरंग रूप—(क) सम्बोध गीत, (ख) शोक-गीत, (ग) पत्र-गीत।

अन्तरंग रूप—'नवीन' जी के प्रणय-गीत के दृष्टान्त उनके प्रेम-काव्य में प्राप्य हैं। इन गीतों की सर्वप्रमुखता है। देश-प्रेम के प्रगीतों के अन्तर्गत, कवि ने वन्दना, प्रशस्ति, जागरण, अभियान, क्रान्ति, विप्लव, अनल आदि के गीत लिखे। विचारात्मक प्रगीतों के माध्यम से कवि ने अपने दार्शनिक काव्य को प्रस्तुत किया। प्रकृतिपरक प्रगीत, कवि की रचनाओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं और उनके माध्यम से कवि ने प्रकृति को आलम्बन, भावोद्दीपन, पृष्ठाधार, चित्रांकन आदि के रूप में ग्रहण किया है। मधुवादी या हालावादी प्रगीतों में कवि के प्रेम-काव्य का भोग पक्ष या उन्माद ने अपनी अभिव्यक्ति पायी है।

इन गीतों के सृजन में जहाँ एक ओर अनुभूति की निष्कपटता मिलती है, वहाँ आवेश के कारण गीत की समुचित व्यवस्था पर धक्का पहुँचता है। उसका भाव-पक्ष अत्यन्त समृद्ध है। उसकी अभिव्यक्ति में संगीतमयता के गुण परिप्लावित हैं।

बहिरंग रूप—सम्बोध-गीत में सम्बोधन होता है और सामान्यतया उसकी वस्तु, भावना एवं शैली भव्य अथवा भावातिरेकपूर्ण होती है।[१] 'नवीन' जी ने भी अनेक सम्बोध-गीतियों की सर्जना की है, यथा:, 'जाह्नवी के प्रति',[२] 'वायु से',[३] 'अहो मन्त्र-द्रष्टा हे ऋषिवर',[४] 'ओ मेरे मधुराधर'[५], 'तुम हो गए पराए'[६], 'ओ प्रवासी'[७], 'ओ मुरली वाले',[८] 'आँसू के

१. "A rbymed (rarely unrhymed) lyric, often in the form of an address generally dignified or exalted in subject, feeling and style."—Oxford English Dictionary, p. 563.

२. कुंकुम, पृष्ठ २५-३०।

३. 'क्वासि', पृष्ठ ६६-७०।

४. 'विनोबा-स्तवन', पृष्ठ १-११।

५. साप्ताहिक 'प्रताप', १२ जून, १९४५, पृष्ठ १।

६. 'स्मरण-दीप', ४१ वीं रचना।

७. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', ३६ वीं रचना।

८. वही, ६७ वीं रचना।

प्रति'[१], 'भरत खण्ड के तुम हे जन-गण'[२], 'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर'[३], 'गरल पियो तुम गरल पियो'[४], 'धरती के पूत'[५], 'ओ सदयों में आनेवाले'[६], 'हे क्षुरस्य धारापथ गामी'[७], 'ओ तुम अविचल वीर'[८], 'सुनो-सुनो ओ सोने वाले'[९], ओ तुम 'मेरे प्यारे जवान'[१०], अरे तुम हो काल के भी काल'[११] 'सैनिक बोल'[१२] आदि जाह्नवी को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है—

अपने तरल शुभ्र अंचल में,
छुपा रखी निधि कौन ?
जरा दिखा दो, ठहरो, तो क्यों
इतनी इठलाती हो ?
गंगे, क्यों उमड़ी जाती हो ?[१३]

'निराला' ने भी 'यमुना के प्रति' कहा है—

बता कहाँ वह वंशीवट ?
कहाँ गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह वृन्दाधाम ?[१४]

इस प्रकार कवि ने सम्बोध-गीतियों में चराचर को सम्बोधित किया है जिसमें प्राकृतिक उपादान, राष्ट्रीय जागरण के सम्बोधन, महात्मा गान्धी आदि सम्मिलित हैं।

'नवीन' जी ने शोक-गीतियों (Elegy) का भी निर्माण किया है। शोक-गीति के विषय में कहा गया है कि उसमें कवि, प्रिय या महान् पुरुष की मृत्यु से उत्पन्न शोक अथवा साधारण क्षति से उत्पन्न नैतिक व्यथा को प्रकट करता है। उसका दुःखवाद एवं करुणा से पूर्ण होना तथा विचारात्मक होना, अत्यन्त आवश्यक होता है। वह छोटी होती है किन्तु उसमें

१. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', १०५ वीं रचना।
२. 'प्रलयंकर', तीसरी कविता।
३. वही, १३ वीं कविता।
४. वही, १४ वीं कविता।
५. वही, २० वीं कविता।
६. वही, २५ वीं कविता।
७. साप्ताहिक 'प्रताप', ३१ दिसम्बर १९३५, मुखपृष्ठ।
८. 'प्रलयंकर', ३९ वीं कविता।
९. वही, ४५ वीं कविता।
१०. वही, ४७ वीं कविता।
११. वही, ४८ वीं कविता।
१२. वही, ५५ वी कविता।
१३. 'कुंकुम', पृष्ठ २६।
१४. 'परिमल', पृष्ठ ४६।

भावाभिव्यक्ति सहसा नहीं होती।[1] 'नवीन' जी की शोकगीतियों में, 'बड़े दादा',[2] 'उड़ गए तुम निमिष भर में',[3] 'कमला नेहरू की स्मृति में'[4] आदि की गणना की जा सकती है। कवि के 'मृत्यु-गीतों' को भी इसी श्रेणी में ही रखा जा सकता है।

पत्र-गीत—Epistle—स्वरूप पत्रात्मक होता है। 'नवीन' जी के 'दो पत्र',[5] 'पाती'[6] 'पत्र व्यवहार',[7] 'पत्र'[8] आदि कविताओं को इस श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है, परन्तु कवि ने शृंगार के मूल विषय के आधार पर ही, प्रेमी प्रिय के पत्र-व्यवहार का रूप प्रस्तुत किया है।

लोकगीत-शैली—कवि के कतिपय गीतों की धुन एवं लय, लोक गीतों के समीप, दृष्टिगोचर होती है। कजली का एक दृष्टान्त देखिये—

घन गरजे, तब हो न सजन-आलिगन का संयोग रे,
तो फिर कैसे मिट सकता है, हिय का अतुल वियोग रे?
जब झनकारें अमित झिल्लियाँ, हो दादुर का शोर रे,
तब हम हुलस कहेंगी उनसे, तुम्हारा ओर न छोर रे।[9]

इन गीतों में भी, लोकगीत की धुन का आश्रय ग्रहण किया गया है—

खूब सिदौसी, मुंह अधियारे,
वाकी चकिया जबै पुकारे,
तब तू वाकी सुनियों ना,
गुइयाँ, प्रीति को मरम
काहूते बतैयो ना।[10]

हमरे बलम कौ कोउ न जगइयो, काउ जनि गाइया मलार रे,
कंगनन की खन-खन जनि करियौ, न पायल झनकार, रे[11]

---

१. "A short Poem of lamentation or regret, called forth by the decease of a beloved or revered person or by a general sense of a pathos of morality ...... It should be remembered that it must be mournful meditative and short without being ejaculatory."—Encyclopedia Britannica,' Vol. IX, p. 252-253.

२. 'कुंकुम', पृष्ठ ५६-५७।

३. अपलक, पृष्ठ ६४-६५।

४. 'क्वासि', ६८-६६।

५. 'कुंकुम', पृष्ठ ८७-६३।

६. 'क्वासि', पृष्ठ १०४-१०५।

७. 'यौवन-मदिरा' या 'पावस-पीड़ा', २१ वीं कविता।

८. वही, ७६ वीं रचना।

६. 'क्वासि', पृष्ठ ४८।

१०. 'कुंकुम', पृष्ठ ८३।

११. 'क्वासि', पृष्ठ ८२।

इस प्रकार कवि ने विविध काव्य-शैलियों को अपनाकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि की काव्य-शैलियाँ उसके विषयानुरूप है। उनमें मुक्तक-गीतों को ही, अनुपात एवं गुण के दृष्टिकोण से सर्वोपरि महत्व प्राप्त हुआ है।

काव्य-भाषा

'नवीन' जी की भाषा का स्वरूप बड़ा विवादास्पद एवं आक्षेपों का केन्द्र बना है। उनकी भाषा में कई बोली के शब्दों का मिश्रण प्राप्त होता है। श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने लिखा है कि "नवीन जी सिद्धान्ततः, शुद्धवादी हैं और मानते हैं कि हिन्दी के शब्द-भण्डार में संस्कृत-व्युत्पन्न शब्दों को छोड़ कर इसके शब्द नहीं होने चाहिये। किन्तु व्यवहार में वह किसी शब्द को उपयोगी पाने पर उसके कुल-शील-संस्कार के अन्वेषण की चिन्ता नहीं करते हैं।"[१]

'नवीन' जी ने प्रमुखतया खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं। उनके दोहे भी इन्हीं दोनों भाषाओं में प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार दोनों भाषाओं की कड़ी के रूप में उपस्थित होते हैं।

भाषा रूप—'नवीन' जी की भाषा विभिन्न प्रभावों एवं स्तरों को लेकर चलती है। उसमें खड़ीबोली, ब्रजभाषा, अवधी, कनौजी, मालवी, बुन्देलखण्डी एवं उर्दू के शब्दों एवं प्रभाव को यत्र-तत्र देखा जा सकता है। इन रूपों के दृष्टान्त इस प्रकार हैं—

खड़ीबोली—हुआ वह पराया वह पीतम भी जिसको तुम समझे थे अपना,
उसने ही यदि त्याग दिया तब अब क्या नाम किसी का अपना ?[२]

ब्रजभाषा—उनके आय एक दिन आली,
परे कुसुम मो पाँवन पै,
हैं हिचकी, कछु अरुझानी, कछु
रीझी री मनभावना पै।[३]

अवधी-कनौजी—ढली दुपहरी, किरनें तिरछी हुईं, साँझ नजदीक रे,
अभी दूर तक दीख पड़े हैं, पथ की लम्बी लीक, रे,
आज साँझ के पहले ही तुम, पहुँचा दो प्रिय-गेह रे,
हम कह आई हैं इन्दर से, रात पड़ेगा मेह, रे,
घन गरजेंगे, रस बरसेगा होगी सृष्टि निहाल, रे,
डोला लिये चलो तुम जल्दी, छोड़ो अटपट चाल, रे।[४]

मालवी—कवि मालवा-पुत्र था, अतएव, उसके काव्य में मालवी-भाषा के भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलते हैं, यथा—'बांच' (पढ़-लिखकर) 'ऐन बीच' (ठीक बीच में) आदि।

---

१. श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन—'आज का भारतीय साहित्य', पृष्ठ ३६१।
२. 'क्वासि', पृष्ठ ५५।
३. 'कुंकुम, पृष्ठ ७४।
४. 'क्वासि', पृष्ठ ४७।

बुन्देलखण्डी—'नवीन' जी ने बुन्देलखण्डी के भी कतिपय शब्दों का प्रयोग किया है, यथा—'बेर-बेर (बार बार), 'अमिया' (आम) आदि।

उर्दू—कवि प्रारम्भ में उर्दू से काफी प्रभावित था। उसके प्रभाव को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

नयनों में भरी खुमारी थी पलकें कुछ भारी-भारी थीं,
तुमने देखा था यूँ गोया कुछ बहुत पुरानी यारी थी,
उस दिन ही से हो गई हमारी आँखें जरा विरानी सी,
जब तुम आईं पहिचानी सी।[1]

इस प्रकार कवि के भाषा का रूप विशद एवं विविध प्रभावों को लिये हुए है। उसमें कई त्रुटियाँ एवं दोष भी आ गये हैं। श्री उमादत्त सारस्वत 'दत्त' ने लिखा है कि "सब शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग करते हैं परन्तु पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कभी-कभी बड़ा गड़बड़-झाला कर देते हैं। आप खड़ीबोली लिखने में ब्रजभाषा से तो परहेज करते है, परन्तु ठेठ-गँवारू शब्द भरने से नहीं हिचकते। अक्टूबर सन् १९३४ ई० की 'वीणा' में आपकी एक कविता 'निमन्त्रण' शीर्षक छपी है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

कल ललित चरण न्यासों से—
दब-दब सिहरे यह हियरा।
झनखम मृदु नुपूर ध्वनि से—
उमड़े अब रह रह जियरा॥

पाठक देखें कि 'हियरा' और 'जियरा' शब्द कितने कर्णकटु हैं, इसके बजाय यदि 'हिया' और 'जिया' तक होता तो ग़नीमत थी। क्योंकि इन शब्दों का प्रयोग कम से कम ब्रजभाषा में होता है। परन्तु 'हियरा' और 'जियरा' तो ठेठ गँवारू शब्द हैं। नहीं मालूम ऐसे शब्द इतने बड़े सुकवि की कलम से कैसे निकल गये। वैसे आपकी कविता बड़ी चुटीली होती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।"[2]

भाषा संगठन—'नवीन' जी के शब्द-कोश की सीमाएँ काफी व्यापक हैं। उन्होंने सभी प्रकार के शब्दों से अपनी भाषा का संगठन किया है। उनके भाषा-निर्माण में निम्नलिखित तत्वों का रूप आँका जा सकता है।—(क) **शब्द-कोश**—(१) देशज-शब्द, (२) उर्दू-फ़ारसी के शब्द, (३) अंग्रेजी के शब्द;—(ख) **शब्द-रूप** (१) प्रिय शब्द, (२) कठिन शब्द, (३) अप्रचलित शब्द, (४) विचित्र शब्द प्रयोग, (५) शब्दों की तोड़ मरोड़;—(ग) **व्याकरण-रूप** (१)—क्रिया-प्रयोग, (२) दोष।

शब्द-कोश—'नवीन' जी मस्त तथा अनुभूति प्रधान कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में कला की अपेक्षा भावों की ही अधिक चिन्ता की। उन्होंने शब्दों का, अपने मनमौजीपन में उपयोग किया है। उनके काव्य में निम्नलिखित विशिष्ट शब्द प्राप्त होते हैं—

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ ६३।

२. 'काव्य-कलाधर', हिन्दी साहित्य के वर्तमान सुकवि, जुलाई, १९३५, पृष्ठ १९।

देशज शब्द--'नवीन' जी ने प्रचुर-मात्रा में देशज शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें से अधिकांश ये हैं—

आँखड़ियाँ, गैल, लकुटी, विसरी, निरी, नेह, पाती, डगारी, बदी, विराने, बाट, जोहना, आँट, सिन्दौसी, मुँह अंधियारे, चकिया, ध्यान, कोंचना, रूलाय, कागद, पसीज उठना, आपुन, हमरे, विवाह, निहाल, बौरानी, नाभी, बूझना, फरफन्द, चहुँ, होड़, रीति, बाँच, सैन, हाट, उजागर, ऊबड़-खाबड़, मारग, बरसों, बेर-बेर, पेर-पेर, धाई, विलयो, चमाचम, परे-परे, अनाड़ी, काज, सरे, भेस, भोजन-बीजुरी, नैक, वाँ, मूरख, माथा, घोले, सीली, सिरज रहा है, चारवे, निबही, बरजोरी, भाग, साँझ सकारे, संगोते, दूजे, छिनगी, कबहुँ, उजेला, लल्ला, जनाई, बाट, राउर, लीक, बरजना, बिगाने, गटका, झाड़-झरंखाड़ नगीच, आदि ।[1]

श्री श्याम परमार ने लिखा है कि "(देशज) शब्द 'नवीन' की रचनाओं को हृदय-हारी तो बनाते ही हैं, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु खड़ीबोली में ये प्रयोग जब अधिक बिखरकर देशी प्रयोगों के प्रति जो हमारे पूर्वाग्रह हैं, उन्हें न दूर कर दें तब तक ये प्रायः अटपटे ही लगेगें ।"[2] बोलचाल की भाषा के शब्दों के प्रयोग से काव्य में सहजता तथा साधारणीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है । पाश्चात्य विद्वान् हैरिस के अनुसार, "अंग्रेजी की महान् काव्य-रचनाओं का पर्याप्त अंश बोलचाल की भाषा से समृद्ध है ।"[3]

उर्दू फारसी के शब्द—'नवीन' जी ने उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रचुर-परिमाण में उपयोग किया है । वे शब्द ये हैं—

रूझान, वर्ना, तूफ़ान, सरकार, बलाएँ की सामान, बेतुका, खजाना, साकी, खाली, गर्क, फर्क, वर्क, बेदरदी, दुआएँ, आह, दर, फकीरानी, जँचे, खाक, अरमान, तराने, अन्देशा, पर्दा, बला, यारी, हरदम, नजदीक, रिश्ता, खुमारी, यूं, गोया, गाफिल, बियाबान, जहरी, जेर, मुसाफिर, तमाशा, मंजिल, नादानी, बेघर, दाँव, दर-दर, ओर, आजिज, हस्ती, सर, अम्बार, सरमाया, साया, आसमान, याँ, कारवाँ, लाचारी, परवाह, फुर्ता, गर, खता, खानी, जवानी, खत्म, दिल, अदा, परिन्दो, कैदी, खून, मिजराबे, राज, कलम, फुर्सत, कलेजे, मजा, अलमस्ती, मर्याद, जिन्दगी, जंजीरे, दुश्वार, कतार, फौज, फकीर, गजी, मशगूल, ख्याल, बुखार, सन्दूकची, खफगी, शरमाँय, खराब, तपिश, सिरनामा, दाग, गनीमत, दम, बेहोशी, खाली, आदत, शोख, बेहाल, हिसाब आदि ।[4]

---

१. 'नवीन' जी की काव्य-कृतियों के आधार पर ।

२. 'विक्रम', 'नवीन' और उनकी कविताएं, अप्रैल, १९५४, पृष्ठ ४३ ।

३. "A great deal of the greatest English Poetry is made up entirely of words which people use in very ordinary speech."—Nature of English Poetry, P. 109.

४. 'नवीन' जी की कृतियों के आधार पर ।

अंग्रेजी के शब्द—'नवीन' जी ने अंग्रेजी के अत्यन्त विरल शब्दों का ही प्रयोग किया है, जिन्हें नगण्य माना जा सकता है। एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

कैसे तुम्हें मैं पुकारूँ कहो, प्रेम,
जिससे इधर तुम ढुलो आज बे टेम ?[१]

स्व-भाषा में दूसरे भाषा के शब्दों का आना, भाषा की जीवनी-शक्ति तथा पाचन-शक्ति का ही परिचायक होता है, परन्तु कवि को इस दिशा में सतर्क रहना चाहिये कि वे काव्य का कहाँ तक शृंगार कर सकते हैं ? पाश्चात्य-समीक्षक ड्राइडन ने इस प्रकार के शब्दों के प्रति सजग रहने का परामर्श दिया है।[२]

शब्द रूप—प्रत्येक कवि अपने दृष्टिकोण एवं संस्कार से वशीभूत होकर अपनी काव्यभाषा के शब्दों के प्रति अपना अनुराग पैदा करता है। 'नवीन' जी का भी इस सम्बन्ध में विशेष दृष्टिकोण रहा है, जिसके कारण उन्होंने कुछ शब्दों को प्रिय बनाया और कुछ को तोड़ा मरोड़ा।

प्रिय शब्द—कतिपय शब्द काव्य में बहुप्रयुक्त होते हैं जिनसे उनके प्रति कवि-प्रियता की प्रतीति होती है। पन्त जी को 'चिर' शब्द अधिक प्रिय है और 'नवीन' जी ने निम्नलिखित शब्दों पर अपनी ममता उड़ेल दी है—ओलि, मम, तव, त्वदीय, लेखो, पेखो, किमि, हिय आदि।

कठिन शब्द—कवि ने अपने काव्य में कतिपय विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है, जो कि एक प्रकार से सामान्य शब्दों और अंग्रेजी शब्दों के पर्याय या एकान्तर के ढंग पर आये हैं। ये शब्द अधोलिखित हैं—

(१) जिसकी ऊष्मा से है कुसुमित उपकरण नीप।[३]

(उपकरण नीप = इन्द्रियरूपी कदम्ब वृक्ष

(२) तुम मम विद्रुम लतिका, तुम मम मन्दार-सुमन।[४]

(मन्दार सुमन = प्रवाल पुष्प अथवा स्वर्ग-सुमन)

(३) मम अपूर्ण चाहों के तुम ही हो इच्छा-द्रुम।[५]

(इच्छा द्रुम = कल्पवृक्ष)

---

१. 'अपलक', पृष्ठ ५८।

२. "A poet must first be certain that the word he would introduce is beautiful in the Latin, and is to consider in the next place, whether it will agree with the English idiom, after this he ought to take the opinion of judicious friends, such as are learned in both languages."—Dramatic Poetry and other Essays, P. 264.

३. 'रश्मिरेखा' पृष्ठ ११।

४. वही, पृष्ठ २८।

५. वही, पृष्ठ २६।

(४) लगन-मगन, उन्मन-उन्मन मन, तन्तुवाय सम सूत्र-ध्यान-रत ।[1]

(तन्तुवाय = बुनकर, जुलाहा)

(५) आज शिंजिनी आत्मार्पण की चढ़ जाए जीवन अजगव पर ।[2]

(शिंजिनी = प्रत्यंचा, अजगव = शंभु-धनुष)

(६) क्रतुमय अमृत कुम्भ बिंध जाये, जब हो इन बाणों की सर-सर ।[3]

(क्रतुमय = यज्ञमय)

(७) शवलित वसुधा—अलम्बुषा, मुदमय नृत्य कर उठे थर-थर ।[4]

(शवलित = जल सिंचित, अलम्बुषा = एक प्रकार की अपसरा)

(८) अब दुर्वह है नैश भार यह, दुर्वह है यह ऋक्ष-समाज ।[5]

(ऋक्ष = तारे, ऋक्ष-समाज = तारक-समाज)

(९) शीत भीरु सुमन सदृश तव मृदु मुसकान, प्राण ।[6]

(शीतभीरु = बेला, मल्लिका)

(१०) फुल्ल प्रियक सम लहरी तव कुसुमित साड़ी नव,
रम्य हेम पुष्पक सम निखरा तव छवि-वैभव,
वकुल सुमन-राशि सदृश, सौकुमार्य, प्रियतम, तव,
फैल रहा तव सौरभ पारिजात के समान ।[7]

(प्रियक = कदम्ब, हेम पुष्पक = चम्पा, वकुल = मौलसिरी, पारिजात = हरसिंगार)

(११) मृदु मंजुल वंजुल सम सिहर रही है रह-रह,
यूथिका प्रसून झरें तव वचनों से अहरह ।[8]

(वंजुल = बेंत की लता, यूथिका = जूही)

(१२) मेरे प्रिय, मन्दादर शीत-श्वास-पवन दूत ।[9]

(मन्दादर = उपेक्षा युक्त)

(१३) वीणा के ककुभ बने ये वर्तुल देश-काल,
मेरा अस्तित्व बना इसका रतमय प्रवाल ।[10]
ककुभ-वीणा की तुम्बी, एक ऊपर, एक नीचे ।

(प्रवाल = वीणा-दण्ड)

---

१. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ २१ ।
२. वही, पृष्ठ ४३ ।
३. वही ।
४. वही ।
५. वही, पृष्ठ ७८ ।
६. वही, पृष्ठ ११८ ।
७. वही, ।
८. वही, पृष्ठ ११६ ।
९. वही, पृष्ठ १२६ ।
१०. 'क्वासि', पृष्ठ १० ।

(१४) मैं कर पाया प्राण-स्फुरण कब अपने अभिव्यंजन-वाहन में ।[1]

(अभिव्यंजन-वाहन = शब्द)

(१५) बज उठा आनद्ध लय का, मन्द्र ध्वनि गूँजी गगन में ।[2]

(आनद्ध = ढोल या मृदंग)

(१६) निज तिरस्करिणी लपेटे, अभय चल दो आज जग से ।[3]

(तिरस्करिणी = अदृश्यकारी पटावरण)

(१७) आज लहरे तव अमर स्वर मृत्यु-तौर्यत्रिक क्वणन में ।[4]

(मृत्यु तौर्यत्रिक = गान-वाद्य-नृत्य साम्य)

(१८) प्रवण काल-थाली में, जीवन-क्षण, मुक्ता सम ।[5]

(प्रवण = ढालू)

(१९) मानव की छाती पर मण्डित हैं अरुष-चिह्न ।[6]

(अरुष चिह्न = अरुष अर्थात् घाव, अरुष चिह्न अर्थात् घावों के निशान)

(२०) जन-गण-मन की चंचलता के ये चपलक अभिव्यंजन आए ।[7]

(चपलक = अस्थिर)

(२१) क्षण क्षण, रज कण-कण में जीवन खोज रहे ये मंजुल 'विजुल'[8]

(२२) तव मुख स्मयमान बिना, लगन खिन्न-खिन्न स्मरण ।[9]

(स्मयमान = स्मित, मुस्कान से खिला हुआ)

(२३) जब देखा तभी मिले आवृत दिक्-काल-अरर ।[10]

(दिक्काल-अरर = किवाड़े, दिक् और काल रूपी दो किवाड़े)

(२४) कमल मुंदे मानों मद भीनी तव एणी-अँखियाँ अलसाई ।[11]

(एणी = मृगी)

(२५) देश है यह वितति मय, काल है सन्तत कलम मय ।[12]

(विततिमय = वर्तमान भौतिक विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि देश और काल—अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सन्तत प्रसरण शील है ।)

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ १७ ।
२. वही, पृष्ठ २० ।
३. वही ।
४. वही ।
५. वही, पृष्ठ ३६ ।
६. वही, पृष्ठ ५३ ।
७. वही, पृष्ठ ८८ ।
८. वही ।
९. वही, पृष्ठ ९४ ।
१०. वही, पृष्ठ १०४ ।
११. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', चौथी कविता ।
१२. वही २५ वीं कविता ।

(२६) याद्दच्छिक अणु भेदन लीला अब तक नहीं किसी ने जानी ।[1]

(याद्दच्छिक अणुभेदन लीला = अपने आप अणु-स्फोट ।)

(२७) जिसे दीप्ति सक्रिय तत्वों की श्रेणी में उसने लेखा है ।[2]

(दीप्ति सक्रिय तत्वों = जैसे रेडियम इत्यादि)

(२८) 'नौ बन्धन कील' रहित, यह जर्ज्जर दारु-खण्ड ।[3]

(२६) मेरे हाथों में हैं 'क्षेपणियां' दुविधा की ।[4]

(३०) जीर्ण शीर्ण 'वात-वसन', दुर्गति है नौका की ।[5]

डॉ० धर्मवीर भारती के मतानुसार, "जब पतवारों के लिए 'क्षेपणियाँ' और पाल के लिए 'वात-वसन' और पहले के छन्द में लंगर के लिये 'नौ-बन्ध-कील' का प्रयोग देखकर बरबस डॉ० रघुवीर और पण्डित सुन्दरलाल दोनों को ही क्षमा कर देने को जी होता है ।"[6]

उपर्युक्त विवेचना में सिर्फ वे ही शब्द अथवा वाक्य लिये गये हैं, जिनके अर्थ कवि ने स्वयं दे दिये हैं । इन शब्दों के अतिरिक्त भी, अनेक शब्द इसी प्रकार के विशिष्ट एवं प्रचलित हैं जिनका 'नवीन'-काव्य में प्रयोग मिलता है । उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब की कठिन शब्दावली से युक्त कविता को सुनकर एक मुशायरे में हकीम आगा जान ने जो कहा था, उसी में ही हमारा मन्तव्य भी सम्मिलित है—

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे, तो क्या समझे ?
मजा कहने का तब है इक कहे और दूसरा समझे ।
कलामे 'मीर' समझे और जबाने 'मीर जा' समझे
मगर इनका कहा यह आप समझे या खुदा समझे ।[7]

अप्रचलित शब्द—उपरिलिखित विवेचन में, कतिपय शास्त्रीय, विशिष्ट एवं विचित्र दिशा के अप्रचलित एवं कठिन शब्दों के दृष्टान्त दिये गये हैं । इनके अतिरिक्त भी कई शब्द ऐसे हैं यथा—अँगुलिय, आन दिखा दो, फिर-फिर हेर रहा, हेत, घटिक, उझक, कहनी, तलक, तले, तरी, लोचन-टक, हहरे, निरखो, दुरे हो, जिय, जोह, गात्र, मिस, पतियाएगा, सैंनो, तिस, तव ढिग, नासा, विदार, झांटे, पे, मनो, नयन पुट, कत आदि ।

विचित्र शब्द-प्रयोग—कवि ने अनेक स्थान पर विचित्र शब्दों का प्रयोग किया है, जिनके कारण कुछ भद्दापन-सा भी प्रतीत होने लगता है—यथा

(१) जल उठने दो जीवन-दीपक
'भक् से', होऊ धन्य ।[8]

---

१. 'सिरजन की ललकारें' या 'नुपूर के स्वन', २५ वीं कविता ।

२. 'अपलक', पृष्ठ ६८ ।

३. वही ।

४. वही ।

५. वही ।

६. 'आलोचना', अप्रैल १६५२, पृष्ठ ६१ ।

७. 'माधुरी' चैत्र, सं० १६८८, पृष्ठ ३६४ से उद्धृत ।

८. 'कुंकुम', पृष्ठ ३० ।

(२) यदि आ जाओ तो मिट जाए, 'खटका अब-तब का',
प्रिय, लो डूब चुका है सूरज ना जाने कब का ?[१]

(३) और वे रस-सिक्त बतियाँ जो 'समुद' तुमने कही थी ।[२]

(४) खेल खेल में तुम मनमौजी यदि हमको दो 'झटका' एक
तो बस, उस 'इक टल्ले' से ही हो जाये जीवन कल्याण ।[३]

(५) मन्थन के दाएँ-बाएँ इन 'गन्नाटों' में उलझा लघु मन ।[४]

(६) एक अजब 'गन्नाटा'—सा है इस हस्ती के अपनेपन में ।[५]

(७) इस मदिरा के 'गन्नाटे में' बैठ विजन के 'सन्नाटे में' ।[६]

(८) तेरा मेरा क्या नाता है ? यह मैं जग को क्या समझाऊँ ?
'खिसिर खिसिर' हँसने वालों को मैं क्यों हृदय-मर्म बतलाऊँ ।[७]

वैसे कविता में लोक-प्रचलित शब्द (Slang) सदैव जान पैदा करते हैं, पर 'नवीन' जी उनका इतना अकुशल प्रयोग करते हैं कि उनका प्रभाव विपरीत ही पड़ता है ।[८]

कहीं तत्सम का भी अद्‌भुत प्रयोग हुआ है—यथा श्रद्ध-नौका, अनुनर्भव, हेत्वाभास, विगतावलोकन, स्मरणांगम, शून्यार्णव आदि । डॉ० गुप्त के मतानुसार "इस प्रकार के शब्द सर्वत्र सरल रूप में ही प्रयुक्त न होकर काव्य की क्लिष्टता के लिए भी उत्तरदायी रहे हैं ।"[९]

शब्दों की तोड़ मरोड़—'नवीन' जी ने शब्दों को काफी तोड़ा-मरोड़ा भी है और अपने इच्छानुकूल बना लिया है । इस तोड़-मरोड़ के पृष्ठ में तीन उपादान दृष्टिगोचर होते हैं—(१) माधुर्य की उत्पत्ति हेतु, (२) आवश्यकतानुसार ।

माधुर्य की उत्पत्ति हेतु—बतियाँ, सुरतियाँ, अवलियाँ, बहिना, जुगत, पलियाँ, रनियाँ, बाती, काँकरिया, सुरभी, मनुआँ, नदिया, जतन, कारिख, मारग, मूरत, आखर, पतिया, पूरन, रहन, नार, मेघा, आके-जाके, बारी, बिछोह नद, रहसि, पहुनो, अरसता, दरस, पात नखत, जिनने, लागी, जदपि, आन, पधारे, छिन, बिथा, पाख, छीन, परपंची, उनने, परतीत, फुहियाँ, अखियाँ, निदरे, चरण-तरे, नियरे, उबारी, गगन, अटा, हास-घुनी, ताग, पखियाँ, मलार, बिहरे, उछाह, भइयाँ, द्वारे, तपकते, साजनियाँ, झंकृतियाँ, पूरन काम, पियासी, झारी, इनने, आपुन मेटो आदि ।

आवश्यकता के अनुसार—अरुझादोगी, सन्ध्या-काले, सुखिया, अघोर, हरियादोगे,

---

१. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ५६ ।
२. 'अपलक', पृष्ठ २७ ।
३. वही, पृष्ठ २६ ।
४. वही, पृष्ठ ३४ ।
५. वही, पृष्ठ ३७ ।
६. वही ।
७. वही, पृष्ठ ६६ ।
८. डॉ० धर्मवीर भारती—'आलोचना', अप्रैल १९५२, पृष्ठ ६१ ।
९. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ ३३७ ।

विकराली, बेतेल, मधुरा पीर, अवलोका, हिये, निराशी, अमापा, जहरी, झिलमिलती इत्यादि।

व्याकरण-रूप—हमारे यहाँ व्याकरण का बड़ा महत्व है। उसे वाणी का संस्कारक कहा गया है—

फलमिदमेव हि विदुषां शुचिपदवाक्यप्रमाणशास्त्रेभ्यः।
यत्संस्कारो वाचां वाचस्य सुचारुकाव्यफलाः॥

'नवीन' जी व्याकरण के नियमों के अनुगत नहीं कहे, इसीलिए उनके काव्य में काफी अपरिष्कार दिखाई देता है जो कि खलता है। श्री सुधाकर पाण्डेय ने लिखा है कि "भाषा उनकी नियन्त्रणहीन तथा छन्द कहीं-कहीं उच्छृंखल हो गये हैं, किन्तु यह दोष नहीं है। इनका ऐसा संघर्षमय व्यक्तित्व ही है जो बन्धन स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं।"[1]

क्रिया-प्रयोग—कवि ने निम्नलिखित विचित्र क्रिया-प्रयोग किये हैं—

देखो हों, क्रूर उठे हो, दुलरावे है, होता जाए, जानू हूँ, टीस उठे हैं, कोसो हो, पूछो हो, घेरा करे हैं, जिया करे हैं, मरा करे हैं, तरा करे हैं, भरा करे हैं, भागो हो, जानो हो, दिखा किए, भूलो हो, पूछो हो, उदित होंगे, उठे हैं, सोचूँ हूँ, इत्यादि।

उर्दू-कविता के प्रभाव के कारण, उन्होंने कतिपय विचित्र क्रिया-प्रयोग किये हैं, यथा—

(क) हम तो आठो याम प्राणधन ध्यान तुम्हारा 'धरा करे हैं।'
(ख) वर्क के डर से कहीं दस्तूर 'बदला जाय है'।

इन प्रयोगों से रसात्मक प्रभाव को पर्याप्त क्षति पहुँचती है। 'उर्मिला' में भी 'जानू हूँ', 'सोचू हूँ', 'पैरो पाई', 'नची', 'उमड़ा हिया' आदि के प्रयोगों की अच्छी संख्या है।

दोष—कवि ने क्रियापदों के विचित्र प्रयोगों के द्वारा अक्षम्य-त्रुटियाँ की हैं। उनमें परिमार्जन का काफी अभाव है। उनमें भाषा, लिंग आदि सम्बन्धी त्रुटियाँ भी मिल जाती हैं। इसके दो दृष्टान्त पर्याप्त हैं—

(१) प्रिय, तुम मेरे पागल हिय की, हो पगली-सी सूल,
वायुपुंज तव श्वांस बनी, मैं बनी रुई का तूल।[2]

इसमें 'रुई का तूल' के स्थान पर 'रुई की तूल' होना चाहिये था।

(२) बहुत हुआ, इतना वय बीता, अब कुछ तो उत्तर दो।
प्रियतम, अब अन्तर तर भर दो।[3]

'वय' पुल्लिंग नहीं; अपितु स्त्रीलिंग है, एतदर्थ, 'बहुत हुआ इतना वय बीता' के स्थान पर 'बहुत हुआ इतना वय बीती' होना चाहिये था।

---

१. 'हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, पृष्ठ २०६।
२. 'कुंकुम', पृष्ठ ७१।
३, 'अपलक', पृष्ठ १७।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "उनकी भाषा पर सजाव-रचाव की छाया भी नहीं पड़ी है।"[१] डॉ० प्रभाकर माचवे के मतानुसार, "उनकी काव्य-रचना में एक अपनापन है; उनकी भाषा में अनगढ़, अटपटी अपनी शैली है, 'यह रंग ही क्या है, कूचा ही दूसरा है।' यह व्यक्तित्व का खरापन, यह अक्खड़पन और सहजता, उनकी कविता में एक नया ही स्वर भर देता है।"[२]

भाषा-सौन्दर्य

विशिष्टताएँ—'नवीन' जी की भाषा के अपरिष्कृत रूप के एक पक्ष के होते हुए, उसका एक दूसरा पार्श्व भी है जो कि उसके सौष्ठव या सौन्दर्य से सम्बन्ध रखता है। इस पक्ष के उद्घाटन से ही, हम कुछ निष्कर्ष पर आ सकते हैं। सामान्यतया 'नवीन' जी की भाषा सहज तथा सरल है। सहजता का महत्वांकन गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है—

सरल कवित्त कीरति विमल,
सोइ आदरहिं सुजान।[३]

मैथिलीशरण गुप्त, 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, नेपाली आदि की रचनाएँ कुमारों की समझ में आ सकने वाली और स्फूर्तिमयी हैं।[४]

सहज-सुगम होने के अतिरिक्त 'नवीन' जी की भाषा की दूसरी विशेषता, उसका क्रमिक विकास है। वे उर्दू-प्रियता से संस्कृत की ओर उन्मुख हुए हैं। उनकी आरम्भिक रचनाओं में उर्दू का काफी प्रभाव है। इस शैली ने उनकी अभिव्यक्ति को भी प्रभावित कर रखा था। श्री देवीशरन रस्तोगी ने लिखा है कि "प्रायः अपनी सभी कविताओं में नवीन जी ने इसी प्रकार की सरल भाषा तथा सुबोध शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं पर भावावेश में नवीन जी ने उर्दू की अभिव्यक्ति-शैली को भी अपनाया है, पर ऐसे स्थलों पर उनकी उक्ति और भी अधिक मार्मिक हो गई है।"[५]

अपनी परवर्ती रचनाओं में कवि उर्दू का कट्टर विरोधी हो गया। वह उसे ऐसी भाषा मानने लगा जिसका हमारे जन-जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं।[६] उसने अपने ही काव्य से नहीं, प्रत्युत् दूसरों के काव्य से भी उर्दू के शब्दों को चुन-चुनकर निकालने शुरू कर दिये।[७]

---

१. 'आधुनिक काव्य-संग्रह', पृष्ठ ६४।

२. 'हिन्दी साहित्य की कहानी', राष्ट्रीयता की धारा, पृष्ठ १०१-१०२।

३. 'रामचरितमानस', बालकाण्ड, पृष्ठ ४७।

४. श्री प्रभाकर माचवे 'वीणा', भारत में कुमार-साहित्य के विकास की आवश्यकता, नवम्बर १९४६, पृष्ठ ३२।

५. 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', पृष्ठ ३२३-३२४।

६. श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव 'अरुण'—युगारम्भ', श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से एक भेंट, कार्तिक सं० २०११, पृष्ठ १०।

७. 'वट-पीपल', पृष्ठ ३०।

उसकी भाषा संस्कृत-निष्ठ हो गई और उसकी यह मान्यता थी कि संस्कृत ही ऐसी भाषा है जो कि इस देश में अन्य भाषा-भषियों द्वारा अधिक सरलतापूर्वक समझी जा सकती है और समझी जाती है।[1] इस प्रकार संस्कृत-निष्ठ भाषा उसकी तृतीय विशेषता रही है जिसे उसने उर्दू भाषा तथा शैली की अपनी द्वितीय विशेषता को अतिक्रमित रखे, प्राप्त किया है। कवि की तृतीय विशेषता तथा गुण, उसमें आमरण बना रहा। वह संस्कृतमयी भाषा के पुनीत मन्दिर का शाश्वत पुजारी बन गया।

कवि की भाषा के विभिन्न रूप उसकी विभिन्न कृतियों में प्राप्त होते हैं। माधुर्य का गुण उसके गीत-संग्रहों में सरल, प्रसाद गुण युक्त एवं प्रवाहमयी भाषा 'उर्मिला' में और प्रौढ़ता तथा गाम्भीर्य का रूप 'प्राणार्पण' एवं दार्शनिक काव्य में प्राप्त है। उसकी भाषा ने अपने स्वरूप तथा गठन को बराबर विकसित एवं प्रगतिशील रखा है।

प्रबन्ध काव्य की भाषा—'नवीन' जी के प्रबन्ध-काव्यों में भाषा का अपेक्षाकृत व्यवस्थित रूप प्राप्त होता है। उनकी 'उर्मिला' में ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली, दोनों का ही रूप प्राप्त होता है। ब्रजभाषा का रूप काफी परिष्कृत है; खड़ीबोली से भी अधिक। एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

मेरी हलकी चुनरिया, रंगी तिहारे रंग,
देखहु, इत उत चुअत है, अरुण करुण उमंग।
नील गगन हिय में उड़े, दल बादल के ठाट,
यों संकलपन को उड़त, हिय बिच धूम्र विराट।[2]

'उर्मिला' में खड़ी बोली की यह स्थिति नहीं है। उसके कई स्तर प्राप्त होते हैं। प्रथम सर्ग से अन्तिम सर्ग के भाषा-स्तर में अन्तर है। दोनों सर्गों के दृष्टान्त, इस तथ्य को प्रमाणित कर सकने में, समर्थ हो सकेंगे—

आ जाती है पुरजन प्रिया नेह में ये पगी-सी,
गोरी बाहें अमल सुपटा वेष्टिता हैं, ठगी-सी,
मानो कोई लचक लतिका भक्ति के भाव धारे,
पुष्पाविष्टा, मुदित मन हो, नाचती कुंज-द्वारे।[3]

यह भाषा हरिऔध की स्मृति दिलाती है। अन्तिम सर्ग की भाषा का रूप भी द्रष्टव्य है—

डग मग डग मग करती, कँपती,
पग पर पग धरती धरती,—
कभी फिसलती, कभी घिसलती,
संभल-संभल डरती डरती।[4]

---

१. 'हिन्दी प्रचारक', हिन्दी साहित्य की समस्याएँ, अप्रैल, १९५४, पृष्ठ ६।
२. 'उर्मिला', पंचम सर्ग
३. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १८७।
४. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ ५८१।

दोनों भाषा-रूपों में काफी अन्तर आ गया है। द्वितीय भाषा रूप प्रसाद का स्मरण दिलाता है। दोनों 'अतिवाद' के मध्य की भाषा की भी परख करनी चाहिये। इसका भी एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

मुझको जीवन-सार्थकता का,
देवि, आज सन्देश मिला,
सुझ ज्ञान-विज्ञान प्रचारित—
करने को वन-देश मिला;
नव-विचार-प्रजनन का सूचक—
यह सांकेतिक क्लेश मिला।[१]

यह पद्यांश गुप्त जी की स्मृति को हरा करता है। इस प्रकार 'उर्मिला' में विविध-स्तरों का प्रयोग हुआ है। उसके पीछे, उसके रचना-काल का कारण रहा है। प्रथम सर्ग एवं अन्य सर्गों के मध्य द्वादश वर्षों का व्यवधान उपस्थित हो गया था। उसी ने भाषा को अनेक स्तरों की बना दिया।

'उर्मिला' तथा 'प्राणार्पण' की भाषा में भी पर्याप्त अन्तर है। परिष्कार एवं कलात्मक-सौष्ठव की दृष्टि से 'उर्मिला' ही नहीं, 'नवीन' जी का कोई भी ग्रन्थ उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता है। 'नवीन' की समस्त भाषा तथा कलागत दौर्बल्य को वह अकेली ही धोने में समर्थ है। वह काफी सशक्त एवं परिष्कृत कृति है। दोनों की भाषा का अन्तर यहाँ देखा जा सकता है—

उर्मिला—नग्न चरण, निःसाधन जीवन,
जन धन हीन प्रवासी मैं,
ज्योति अखण्ड-प्रचण्ड जगाए,
विचरूँगा सन्यासी मैं;
ज्ञान शिखा प्रज्वलित अनिंगित
दिखलाएगी मुझे दिशा,
वह प्रकाश आलोक हरेगा—
वन-जय-हिय की कुहू निशा।[२]

प्राणार्पण—घोर अन्धकार में जगायी आलम-दीप-बाती,
दिशाएँ सँजोयी, किया आलोकित-आसमान;
विस्मृत, विकृत जग-मग जग-मग हुआ;
भ्रमित समाज को मिला ज्वलन्त दीप-दान;
निर्भय हो मृत्यु पाहुने को दिया आमन्त्रण,
रखकर हथेली पर अपने अमल प्राण,

१. 'उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ १६४।
२. वही, पृष्ठ २००।

अरे इतिहास, वह तो था निज प्राणार्पण,
केवल नहीं था वह भीति-त्रस्त-जन-त्राण ।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि 'प्राणार्पण' की भाषा अधिक परिपक्व, साधु, मँजी हुई एवं व्याकरण-सम्मत है । उसमें क्रियापदों का प्रयोग भी काफी हद तक सुविन्यास हुआ है । उसकी खड़ीबोली, भी परिमार्जित तथा तपी हुई है । वहाँ अन्य भाषा अथवा देशज शब्दों को उतना स्थान भी नहीं मिल पाया है । भाषा का सम्यक् एक ही स्तर दृष्टिगोचर होता है । जहाँ 'उर्मिला' की भाषा हरिऔध, गुप्त एवं प्रसाद का स्मरण दिलाती है; वहाँ 'प्राणार्पण' की निराला का । उसमें निराला के ओज तथा मार्दव का प्रसन्न परिहार है ।

सौष्ठव—'नवीन' जी की काव्य-भाषा में चित्रात्मकता, स्वच्छता, मूर्तिमत्ता, लालित्य, आर्जव, संश्लिष्ट अभिव्यक्ति एवं असाधारण भाषा अधिकार का वैशिष्ट्य प्राप्त होता है, यथा—

(१) चित्रात्मकता—मैं तुमको निज गीत सुनाऊँ ।
तुम बैठो मम सम्मुख अपना चीनांशुक पीताम्बर पहिने ।
और बनें अंगुलियाँ मेरी तब मजुल चरणों के गहने,
तुम आकर्ण सजाए वेणी, विहँस-विहँस दो मुझे उलहने,
यही साध हैं मेरे प्रियतम, तुम रूठो मैं तुम्हें मनाऊँ ।
मैं तुमको निज गीत सुनाऊँ ।[2]

(२) स्वच्छता—नयन स्मरण अम्बर में,
चमके तब अरुण-करुण नयन स्मरण अम्बर में
विकल, विमल, सजल कमल बिलसे मम मन-सर में,
नयन स्मरण अम्बर में ।[3]

(३) मूर्तिमत्ता—खड़े हुवे हैं झुक लकुटी पर श्रमित-भ्रमित पग धरते धरते
सहसा क्षितिज निहार रहे हैं हय मन में कुछ डरते-डरते ।[4]

(४) लालित्य—आम, नीम, जामुन, पीपल की शाखें झूल रही हैं झूला,
मानो फागुन में ही आया वह सावन पथ भूला-भूला !
आई वर्षा यहाँ शिशिर, में पावस में किंशुक-वन फूला ।[5]

(५) आर्जव—प्राण, तुम्हारे कर के कंकण,
मानो मेरे बहुत पास ही आज बज उठे
खन-खन, खन-खन ।
प्राण तुम्हारे कर के कंकण ।[6]

---

१. 'प्राणार्पण', पृष्ठ ४६ ।
२. 'रश्मि-रेखा', पृष्ठ ७६ ।
३. वही, पृष्ठ ८ ।
४. वही, पृष्ठ १३५ ।
५. वही, पृष्ठ २३ ।
६. 'आगामी कल', मार्च, १६४६, पृष्ठ ३ ।

(६) संश्लिष्ट अभिव्यक्ति तक्र-भावना, मटुकि-हिय, कई-तिहारी प्रीत,
परी-लोचनन में भरचो सुरस नेह-नवनीत ।[1]

(७) असाधारण भाषा अधिकार—सत्य प्रेरणा की लेखनी से, कृति अक्षरों से,
आत्म बलिदान रक्त मसि से सुहानी यह;
दिक्कालाघन विच्छिन्न, महाकाल श्वासपूत,
काल-पृष्ठ-अंकित है अमर कहानी यह ।[2]

इस प्रकार कवि ने अपने भाषा-सौन्दर्य एवं अधिकार का भी पर्याप्त निदर्शन किया है ।

प्रतीक योजना—राष्ट्रीय एवं छायावादी कवियों ने अपने काव्य में प्रतीकों का विपुल प्रयोग किया है । राष्ट्रीय-काव्य में 'एक भारतीय आत्मा' तथा छायावादी-काव्य में प्रसाद ने इसके श्रेष्ठ दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं । 'नवीन' जी के काव्य में भी प्रतीकों की संयोजना उपलब्ध है परन्तु वह पर्याप्त समृद्ध नहीं है । एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

तू शकटार बना है—पापी,
नन्द-वंश का जीवित काल ।[3]

इसमें निहित राष्ट्रीय प्रतीकवाद का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—शकटार = गणेश जी अर्थात् सत्याग्रही; नन्द-वंश = अंग्रेज जाति ।

'एक भारतीय आत्मा' ने जरासन्ध, दुःशासन, कंस आदि के रूप में अंग्रेज-जाति का स्मरण किया है । जहाँ उन्होंने 'कृष्ण' को मोहन रूप में गृहीत किया है, वहाँ 'नवीन' जी ने भी प्रकारान्तर से इसे स्वीकार किया है और 'मोहन' या 'मृदु गोपाल' को कैदियों या सत्याग्रहियों पर चरितार्थ किया है । 'नवीन' जी कारागृह के वासी कैदी का, मोहन तथा मृदु गोपाल के रूप में, अभिनन्दन करते हैं—

कुलिश बेड़ियाँ झनकाता वह,
चलता मादक चाल,
सलौना वह मन मोहन लाल ।
देखा बेड़ी पहने मैंने अपना मृदुगोपाल ।
सलौना वह मनमोहन लाल ।।[4]

'नवीन' जी ने मोहन शब्द का प्रयोग अपनी प्रियतमा के लिए भी किया है ।

कवि ने भारत को 'पुण्यसर' माना है ।[5] गान्धी जी को 'एक भारतीय आत्मा' ने

---

१. 'नवीन-दोहावली', छठवीं रचना ।
२. 'प्राणार्पण', पृष्ठ ४६ ।
३. 'कुंकुम', पृष्ठ २ ।
४. 'प्रलयंकर', ३१ वीं कविता ।
५. 'कुंकुम', पृष्ठ ४ ।

मोहन आदि शब्दों से याद किया है; परन्तु 'नवीन' जी ने उन्हें सदा 'नीलकण्ठ' ही माना है। इसी 'नीलकण्ठ' के पर्याय के रूप में उन्होंने, उन्हें भैरव नटनागर या शिवशंकर के रूप में भी स्मरण किया है। राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में 'नीलकण्ठ' की शब्द-प्रियता तथा आदर्श को कवि ने गले के नीचे उतार लिया था। 'गरल-पान' को कवि ने महान् युग-धर्म एवं पुनीत कर्त्तव्य माना है। इसके विविध रूप उसके काव्य में प्राप्य हैं। प्रेम, राष्ट्रीय-क्षेत्र एवं दर्शन सभी क्षेत्रों में, गरल-पान का कवि विस्मरण नहीं कर सका है, क्योंकि उसने स्वयं गरल-पान किया है।

इस प्रकार 'नवीन' जी की प्रतीक-योजना, राष्ट्रीय प्रतीक-योजना की कड़ी को ही पुष्ट करती दृष्टिगोचर होती है। इस दिशा में कवि 'एक भारतीय आत्मा' के समकक्ष नहीं पहुँच पाया है।

गुण-वृत्ति तथा रीति—'नवीन' जी ने नियमों का पोषण नहीं किया। स्वाभाविक रूप से जो गुण या वृत्ति उनके काव्य में आ गई, वही उनका शृंगार बनी। वे इस दिशा में कदापि चेष्टाशील नहीं रहे। इस दिशा में उनके विविध रूप इन दृष्टान्तों में परखे जा सकते हैं—

(क) गुण—

(१) माधुर्य—रुन-झुन, रुन-झुन, नन्हीं-नन्हीं पैजनियाँ झंकने,
चरण-चलन की प्रांगण भर में फैल रही गुंजारें;
किलक-किलक मधु स्रोत बहाती है विदेह की ललियाँ,
प्रात पवन से चिटकी है दो छोटी-छोटी कलियाँ।[1]

(२) ओज—प्राणों के लाले पड़ जाएं,
त्राहि-त्राहि-रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का—
धुवाँधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाएँ,
भस्मसात् भूधर हो जाएँ।[2]

(३) प्रसाद—आर्य राम पर तुमने पढ़कर
फूंकी कुछ पुड़िया ऐसी,
कि बस तुम्हारे कर में उनकी
वृत्ति हुई गुड़िया जैसी।[3]

(ख) वृत्ति—

(१) उपनागरिका—इस स्वाहा ! स्वाहा ! में कितना
गौरव है, कितना बल है ?

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ २४।
२. 'कुंकुम', पृष्ठ १०।
३. 'उर्मिला', पृष्ठ ३३५।

आत्मदान की चरम वेदना—
में भी प्रिय, कितनी कल है ![1]

(२) परुषा—त्रस्त हुई भावों की गरिमा,
महिमा सब सन्यस्त हुई;
मुझे न छेड़ो, इतिहासों के
पन्नो, मैं गतधीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता
है, खाली तूणीर हुआ।[2]

(३) कोमला—सखि, वन-वन घन गरजे;
श्रवण निनाद-मगन, मन उन्मन, प्राण-पवन-रण तरजें,
री सखि, वन-वन घन-गन गरजे।[3]

'नवीन' जी ने विशिष्ट रीति का विधान स्वीकार नहीं किया। इनके काव्य में ओज गुण की प्रधानता है। श्री नलिनविलोचन शर्मा ने उनकी रचनाओं को ओज से ही अनुप्राणित पाया है।[4] यह ओज, उनकी राष्ट्रीय रचनाओं के साथ ही साथ, दार्शनिक कृतियों, प्राणार्पण एवं उर्मिला में भी है। इसके पश्चात् ही माधुर्य का क्रमांक आता है। विविध गुणों से सनी-लिपटी 'नवीन' की कविता, अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। इसीलिए श्री भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी ने लिखा है कि "इनकी कविताएँ पाठक के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं।"[5]

शब्द-शक्तियाँ—'नवीन' जी के काव्य में शब्द-शक्तियों का भी समुचित परिपाक प्राप्त होता है। वे मूलतः लक्षणा के कवि हैं। उनके काव्य में शब्द-शक्तियों के निदर्शक दृष्टान्त निम्नलिखित हैं—

(क) अभिधा—विमल उपवन इधर को आ मिले हैं,
सुरभिमय पुष्प जिनमें ये खिले हैं;
जुही के भुज समीरण से हिले हैं,
चमेली-नयन-सम्पुट अध खिले हैं।[6]

(ख) लक्षणा—देख खंजनों को क्यों प्रिय के लोचन की सुधि हिय में जागे,
ये चंचल क्या टिक पाएँगे उनके उन नयनों के आगे ?

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ २६८।

२. 'कुंकुम', पृष्ठ ६४।

३. 'अपलक', पृष्ठ ६४।

४. श्री नलिनीविलोचन शर्मा—'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', हिन्दी भाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ १७०।

५. 'हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार', प्रसाद प्रवर्तित सुकुमार युग।

६. 'उर्मिला', पृष्ठ १२।

कहाँ सजन के नित गभीर हग ! और कहाँ ये चपल अभागे ?
चलित खंजनों ने प्रीतम के वे लोचन-गुण रंच न पाए।[१]

विरोध-मूलक लाक्षणिक भावभंगिमा का प्रदर्शन यहाँ हुआ है—

पर्ण रहित रव हुआ, कहो तो, मेरे वन का अर्कजवासा ?
मैं तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय, हूँ ना जाने कितना प्यासा ?[२]

(ग) व्यंजना—क्या ही विचित्र कौतुक यह—

अंगारों से जल टपके,
पत्थर से पानी निकले,
पानी में लपटें लपकें।[३]

'नवीन' जी का काव्य अत्यन्त वेगपूर्ण है और उसमें प्रभावाभिव्यंजना के यथेष्ट गुण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, 'नवीन जी की समग्र काव्य-भाषा योजना, अनेक तत्वों से संगठित है। वह एक ओर यदि अपरिष्कृत है तो दूसरी ओर पर्याप्त ओजपूर्ण भी। 'नवीन' जी ने स्वयं अपने काव्य के विषय में कहा है—

"मेरे काव्य में अभिव्यंजना का क्लैव भी नहीं है। उनमें कथन की सुन्दरता संवेदनात्मक ही है परन्तु वे छायावाद से दूर नहीं है। विचार सरल और बोध-गम्य हैं। गीतों में गेय-तत्व की प्रधानता, एक ही निवेदन, एक ही परिपाटी तथा एक ही रस होता है। मेरे गीतों में चिन्तन को उकसाने वाले अनेक स्थल मिलेंगे। गति दुरुह और अस्पष्ट नहीं है। उनमें दो-चार संस्कृत शब्दों का काठिन्य मिल सकता है परन्तु अभिव्यंजना दुरूह नहीं है। मेरी भाव व्यक्त करने की शैली सुन्दर है, यह मैं कैसे कहूँ ? इसका निर्णय तो पाठकों के ऊपर ही निर्भर है, पर मैं यह जोर देकर कह सकता हूँ कि मेरे गीतों में मांसल भावुकता तथा अभिव्यंजना की तिलमिलाहट है। रसराज-शृंगार, गीतों का मर्म है। संयोग और वियोग दोनों पक्षों के दर्शन होते हैं। पर संयोग बहुत कम तथा अधिकतर मानसिक और कहीं-कहीं कुछ अनुकूल, अतीत अवसरों के रति-क्षणों का याद जिसमें वियोग भी मिलता है। प्रेम-गीतों में भारतीय के रक्षण मिलेंगे। वियोग में प्रकृति के स्वरूपों का बल भी रहता है। मैं तो यह नहीं कहता कि प्रकृति का सुन्दर-चित्रण करने में बड़ा पटु हूँ पर हाँ, इसका निर्णय भी पाठकों पर भी छोड़ रखा है।"[४]

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि श्री अवस्थी जी की समीक्षा के सार को ही 'नवीन' जी ने अथवा भेंटकर्त्ता महोदय ने ही प्रस्तुत कर दिया है।

---

१. 'क्वासि', पृष्ठ ८६।

२. वही, पृष्ठ १०६।

३. 'उर्मिला', पृष्ठ ३७४।

४. श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव—'अरुण'—युगान्तर, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से एक भेंट, कार्तिक सं० २०११, पृष्ठ ११।

अलंकार-विधान—काव्य की शोभा में योग देने वाले धर्म को अलंकार कहा गया है।[१] वास्तव में, अलंकारों का अलंकारत्व इसी में है कि वे काव्य में रस और भाव के आश्रित होकर स्थित रहें।[२] 'नवीन' जी ने अलंकारों को अपना ध्येय नहीं माना। वे स्वत: उनके काव्य में आ विराजे हैं। नीचे कतिपय अलंकारों के दृष्टान्त दिये जाते हैं—

(१) अनुप्रास—क्षुद्रता का उसमें न विकार,
न संशय का उसमें कुछ लेश;
न क्लेश, न द्वेष, न ठेस अशेष,
मिले हृदयेश परम परमेश।[३]

(२) उपमा—लक्ष्मण ने सीता-चरणों में
उठकर किया नम्र वन्दन,
ज्यों सदेह विश्वास कर रहा,
शुद्ध भक्ति का अभिनन्दन।[४]

(३) रूपक—प्राची सों दिन-मणि मिले, मिल्यो विरह-दुख द्वन्द्व,
विकसे जन-गण-हिय कमल, विलसे मन-मकरन्द।
प्रकृति किरण-जल अमल में, छल-छल उठी नहाय,
नील-गगन-अम्बर पहिरि, लहराई हरषाय।[५]

(४) उत्प्रेक्षा—राम सुमित्रा के वक्षस्थल
पर शिर रख यों व्यक्त हुए—
मानो लघु चापल्य-भाव सब
वत्सलता-अनुरक्त हुए।[६]

(५) विरोधाभास—कारण-जन्य-विश्व पीड़ा के,
तुम निष्कारण-बिन्दु अरे;
हिय-हिलोर दरसाने वाले
बिन्दु रूप तुम सिन्धु अरे![७]

---

१. 'काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते'—आचार्य दण्डी, 'काव्यादर्श, २।१।

२. 'रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्, अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्वसाधनम्'—'हिन्दीध्वन्यालोक', द्वितीय उद्योते, पृष्ठ १२२।

३. 'उर्मिला', पृष्ठ १५५।

४. वही, पृष्ठ २७४।

५. वही, पृष्ठ ४२१।

६. वही, पृष्ठ ३०५।

७. वही, पृष्ठ १७०।

(६) अतिशयोक्ति—रह-रह कर नभ-मण्डल में
उडुगण चमके कँप-कँप के,
अथवा दुख-भरी निशा के,
दुख के सब छाले तपके।[१]

(७) व्यतिरेक—देख खंजनों को, क्यों प्रिय के लोचन की सुधि हिय में जागे।
ये चंचल क्या टिक पाएँगे उनके उन नयनों के आगे।[२]

(८) अमूर्त्त का मूर्त्तकरण—मचल-मचल कर 'उत्कंठा' से छोड़ा 'नीरवता' का साथ।
विकट 'प्रतीक्षा' ने धीरे से कहा, निठुर हो तुम हो नाथ।
नाद ब्रह्म की रुचिर उपासिका मेरी इच्छा हुई हताश,
बहकर उस निस्तब्ध वायु में चला गया मेरा विश्वास॥[३]

(९) मानवीकरण—भींजी है ओस कणों से
यह अर्ध-रात्रि दुखियारी,
चू-चू कर टपक रही है
उसकी अँधियारी सारी।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने सादृश्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा उसके प्रिय अलंकार हैं। इन्हीं में ही उसकी वृत्ति रमी है। उसके काव्य में अलंकार भावोत्कर्ष के साधन रूप में आये हैं।

छन्द-योजना[५]—'नवीन' जी प्रधान गीतकार हैं, अतएव छन्द-योजना को उनके प्रबन्ध-शब्दों में ही विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। यहाँ पर उनके प्रबन्ध काव्यों के छन्दों पर विचार करना उचित होगा।

प्रबन्ध-काव्य के छन्द—उर्मिला—'उर्मिला' में अनेक स्थलों पर प्रायः १६-१६ मात्रा के चार चरण युक्त छन्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ—

चलो हे मेरी टूटी कलम—१६ मात्रा, १० वर्ण।
चलो उस ओर, किसी के पास;
छोड़ दो कलियुग की मसि यहीं,
करो त्रेता युग में कुछ बास।[६]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ३६३।

२. 'क्वासि', पृष्ठ ८६।

३. 'सरस्वती', दिसम्बर १९१८, पृष्ठ ३०२।

४. 'उर्मिला', पृष्ठ ३६४।

५. 'नवीन' जी के छन्दों को कसौटी पर कसने के लिए निम्नलिखित दो पुस्तकों का आश्रय लिया गया है—(क) श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु',—'छन्द : प्रभाकर'; (ख) डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल—'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना'।

६. 'उर्मिला', पृष्ठ १।

प्रस्तुत काव्य में निम्नलिखित छंद प्राप्य हैं—

(१) सार छन्द—देवि, उर्मिले, तेरी अकथित गाथा गाता हूँ मैं;
किमथाह चरिताम्बुधि-मज्जन के हित पाता हूँ मैं;
अति प्रगल्भ बलवती लहर है, थाह न पाता हूँ मैं;
हृदय-शिला पर तब चरणों को, देवि, बिठाता हूँ मैं।[1]

(२) सुमेरु छन्द—थकित-सी, कल्पने, सुप्रदक्षिणा यह—
हुई सम्पूर्ण, लो अब दक्षिणा यह—
चलो देखें पुरी सुविचक्षणा यह—
जनक नृप रक्षिता, शुभ लक्षणा यह।[2]

(३) मन्दाक्रान्ता छन्द—ले आए हैं सरल जग की स्नेह की ये पिटारी,
आ बैठी हैं जनकपुर की वाटिका में विहारी,
क्यों जाता है, पथिक, अब तू दूसरी ठौर ? आ, रे,
सारे त्रेता युग मधुर की माधुरी है यहाँ, रे।[3]

(४) कुंकुम छन्द—ओ आँसू तुम बरस पड़ो, यह—
प्यासा है कागद मेरा,
प्यासी कलम, हृदय प्यासा है,
प्यासों का है यह डेरा।[4]

(५) शुद्धगा छन्द—मथ सृष्टि-तत्व को किसने
करुणा नवनीत निकाला ?
किसने रस-दान दिया यह
नित नया, अतीत, निराला ?[5]

(६) दोहा—जल बरसत, कसकत हृदय, भारी-भारी होय,
बरसावत मद रंग कोउ, घन चूनरी निचोय।[6]

(७) सोरठा—हाल हीन, रव हीन, रीती परी मृदंग यह,
करहु याहि खपनि, भरि उद्घोष गभीर मृदु।[7]

---

१. 'उर्मिला', पृष्ठ ५।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. वही, पृष्ठ १५।
४. वही, पृष्ठ १७०।
५. वही, पृष्ठ ३४४।
६. वही, पृष्ठ ४०५।
७. वही, पृष्ठ ४६६।

कवि ने पंचम सर्ग का निर्माण दोहों से ही किया है जिनमें कतिपय सोरठे भी आ गए हैं।

(ख) प्राणार्पण— छन्दों के दृष्टिकोण से, 'प्राणार्पण' अधिक परिष्कृत है। 'उर्मिला' के समान उसके छन्द ढीले-ढाले नहीं हैं। 'प्राणार्पण' की लय अथवा तर्ज 'राधेश्याम रामायण' की तर्ज से कुछ मिलती है।

'प्राणार्पण' के प्रथम सर्ग में दूर-दूर मात्राओं के छः चरण से युक्त छन्द हैं। यों वर्ण की दृष्टि से इसमें २१ वर्ण भी मिलते हैं; फिर भी इसे स्रग्धरा नहीं कहा जा सकता। एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

> घटनाओं का यह चित्र नहीं, कोई कल्पना उड़ान नहीं,
> यह कोई कला-विलास नहीं, मेरा स्पन्दन निष्प्राण नहीं,
> जो-जो देखा है आँखों से, जो-जो झेला है इस तन पर,
> जो-जो भोगा है जीवन में, जो-जो बीती है इस पन पर,
> उसका यह किंचिन्मात्र यहाँ छोटा-सा दिग्दर्शन भर है,
> ये हैं मेरे पूजा-प्रसून, मेरी श्रद्धा का निर्झर है।[1]

इसके प्रत्येक चरण में ३२-३२ मात्राएँ है और प्रथम चरण में २१ वर्ण। द्वितीय सर्ग में भी मात्राओं के छः चरण से युक्त छन्द प्राप्त होते हैं। तृतीय सर्ग में ३०-३० मात्राओं के छः चरणों से युक्त छन्द मिलते हैं। वर्णों की संख्या यद्यपि अधिकतर २२ ही है; परन्तु किसी-किसी में अनियत संख्यक वर्ण प्राप्य हैं। उदाहरणार्थ—

	मात्रा	वर्ण
महाप्राण की हृदय-वेदना महाप्राण ही जान सके,	३०	२०
अतल सिन्धु की गहराई को, लघु वामन पग जान सके;	३०	२२
जिसने मानव की गुरुता में ध्रुव अच्युत विश्वास किया,	३०	२२
जिसने उस श्रद्धा के पीछे सतत हलाहल गरल पिया;	३०	२२
यदि नर को पशु बनते देखा वह नरवर गरोशशंकर,	३०	२३
तो सोचो उसकी आकुलता, ओ लघु प्राणी नर-तन-धर।	३०	२१

तृतीय सर्ग में ही एक छन्द और भी प्राप्य है जो कि ३२-३२ मात्राओं के छः चरण से युक्त है। वर्ण संख्या अनियत है।

चतुर्थ सर्ग में ३२ वर्णों वाले समवर्णिक दण्डक छन्द का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस सर्ग में प्रयुक्त दूसरा छन्द भी, समवर्णिक दण्डक छन्द प्रतीत होता है।

स्फुट-कृतियों के अन्य छन्द—कवि ने अपनी अन्य काव्य-कृतियों में निम्नलिखित छन्द भी प्रयुक्त किये हैं—

(क) चौपाई—'नवीन-दोहावली' में चौपाई भी प्राप्य हैं। एक दृष्टान्त देखिये—

---

१. 'प्राणार्पण', पृष्ठ ५।

कहा पन्थ की लीक खुरखुरी, कहा मृत्यु की भीति बापुरी,
जो तर स्मिति-प्रसाद-बल पाऊँ, हँसि हँसि जग-जंजाल उठाऊँ ।[1]

(ख) कुण्डली—यह छन्द, दोहा और रोला छन्दों से मिलकर बनता है। दोहे के दो और रोले के चार चरण मिलकर इसमें छः चरण हो जाते हैं और प्रत्येक चरण की २८ मात्राएँ मिलकर १४४ मात्राएँ हो जाती हैं। जिस शब्द से इसका आरम्भ होता है, प्रायः उसी शब्द से उसका अन्त भी किया जाता है। 'नवीन' जी की 'कुण्डली' देखिये—

कहा करो ? यह बेदना, समुझि परै नाँहि नेक,
तकि तकि कैं कोऊ दे रह्यो संशय-बाण अनेक,
संशय बाण अनेक हिये में कसकि रहे ये,
घाव गहर गम्भीर तीर के टसकि रहे ये,
भरि-भरि आवत है कोमल क्षत विक्षत छाती,
बूंद-बूंद नहीं चलीं सिघौसी संचित थाती,
कहहु कौन सी मरहम, व्रण में यहाँ भरौं मैं ?
हैं ये गहरे घाव, बतावहु कहा करौं मैं ?[2]

मुक्त छन्द—हिन्दी में मुक्त छन्द का प्रवर्तन महाप्राण निराला ने किया। शेक्सपियर ने भी अपनी कविता में शून्य वृत्त की उद्भावना की थी।[3] 'नवीन' जी की इस छन्द में लिखित कविता के दृष्टान्त दर्शनीय हैं। यह कविता सन् १९२७ में लिखी गई थी—

स्वामिनि तुम्हारी छवि
देखी आज
गह्वर के गभीर कल नीर बीच
झिलमिल सी—
निष्ठुर सी—
स्वामिनि तुम्हारी छवि।[4]

सन् १९५९ की एक कविता भी दर्शनीय है—

अच्छा है, वे तुमसे
निज सम्बन्धित बात नहीं कहते;
करो प्रशंसा उनकी
कि है आत्म-विश्वास उन्हें इतना !

---

१. 'नवीन-दोहावली' पृष्ठ १० वीं रचना।

२. 'नवीन-दोहावली', ९वीं रचना।

३. "Shakespeare was the first who, to shun the pains of continual rhyming, invented that kind of writing which we call blank verse."—J. Dryden, 'Dramatic Poetry and other Essays', Page 186.

४. साप्ताहिक 'मतवाला', तुम्हारी छवि, २२ जनवरी, १९२७, पृष्ठ ६०४।

हाँ, पर, एक खटक है—
कि जब गोपनीयता रहे इतनी—
तो फिर, संग चलने में,
क्या कोई शुचि रुचि रह जाती है ?[१]

छन्द-दोष—कवि ने अपने छन्दों का उचित परिष्कार नहीं किया; इसलिए उनमें दोष भी विद्यमान हैं। 'उर्मिला' में अनेक छन्द-भंग पाये जाते हैं। 'प्राणार्पण' में गतिभंग का दोष आ गया है—

हो गया कुंकुमों से अपने अभिशाप ग्रस्त कानपुर नगर।[२]

'क्वासि' में भी गति-भंग दोष का एक दृटान्त द्रष्टव्य है—

कि उन सुपनों के हुए हैं स्थूल ही नव संस्करण ये।

यहाँ पर प्रथम शब्द 'कि' दीर्घ होना चाहिये था। मात्रा दोष का भी एक दृटान्त देखिये—

जीवन-ज्योति लुप्त है अहा,
सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ।[३]

उपरिलिखित पंक्तियों में दो-दो मात्राओं का अभाव है क्योंकि समग्र कविता १६ पंक्तियों वाली पंक्तियों से युक्त है। इस प्रकार कवि ने छन्दों को अपने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। छन्दों में आवेग को बाँधा जाता है, इसलिए आवेग की महत्ता कम नहीं होती। 'निराला', 'नवीन' आदि कवियों ने छन्दों के सहारे नहीं, प्रत्युत् अपनी रचना के अन्तःकरण से आवेग को जन्म दिया है। इस प्रकार के व्यक्तियों से छन्द के कठोरतापूर्वक अनुवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

निष्कर्ष—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "शर्मा जी की भावुकता और उनकी काव्य शक्ति के बीच उच्च कोटि का सामंजस्य थोड़ी ही रचनाओं में मिलता है।"[४] श्री उदयशंकर भट्ट ने भी कहा है कि "उनके काव्य में परिष्कार का अभाव है। यदि उनमें साधना-शक्ति होती तो उनकी कवित्व शक्ति अवश्य ही प्रोज्ज्वल हो उठती। उनका काव्य तो उस उद्यान के समान है जिसमें पुष्प व कण्टक, दोनों ही मिलते हैं। कहीं-कहीं काव्य की चमक दृष्टिगोचर होती है अन्यथा परिश्रम अधिक प्रतीत होता है। उनकी अन्तिम दिनों की रचनाओं में परिश्रम अधिक दिखाई पड़ता है।"[५]

'नवीन' जी के भाव-पक्ष के समक्ष, उनका शिल्प-पक्ष दुर्बल पड़ गया है। डॉ० नगेन्द्र

---

१. 'आजकल', दुराव, जून, १९५६, पृष्ठ ३।

२. 'प्राणार्पण', पृष्ठ १२।

३. 'कुंकुम', पृष्ठ १२।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ३।

५. श्री उदयशंकर भट्ट—नई दिल्ली से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक २४-५-१९६१) से ज्ञात।

ने लिखा है कि "उनके काव्य का महत्व असम है—कहीं स्तर काफी ऊँचा है कहीं अत्यन्त सामान्य। उसमें कलात्मक सौष्ठव कम है।"[1]

'नवीन' जी ने प्रधानतया अपने काव्य का माध्यम गीत ही बनाया। उनके पास गीति-काव्य के योग्य, भाव-प्रवण हृदय अवश्य था परन्तु भाषा के परिमार्जित रूप ने उनका साथ नहीं दिया। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि (उनकी) भाषा 'एक भारतीय आत्मा' की भाषा की भाँति ही ऊबड़-खाबड़ है, उसमें साहित्यिक सुरुचि नहीं है।[2]

वास्तव में, 'नवीन' जी के व्यक्तित्व की 'घर-फूँक मस्ती' और राष्ट्रीय जीवन को देखते हुए, उनसे कला-साधना की आशा एवं अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "राजनीतिक संघर्षों से फुरसत पाने पर वे कविता लिखते हैं।"[3] ऐसी स्थिति में, वे अपने काव्य का यथोचित परिष्कार नहीं कर सके और उसे स्पष्ट नहीं बना सके।

---

१. डॉ० नगेन्द्र का मुझे लिखित (दिनांक २५-८-१९६२ का) पत्र।
२. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ ३९२।
३. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ ४७६।

नवम अध्याय

निष्कर्ष

वृहत्त्रयी

कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सम्यक् एवं भव्य झांकी के तीन आधारभूत तत्व हैं — क) युग-तत्व; (ख) व्यक्ति-तत्व; (ग) काव्य-तत्व।

इन्हीं तीन महान् एवं विशद उपादानों से उनका सांगोपांग रूप निर्मित होता है और निखर-उभर कर हमारे समक्ष आता है। इन्हीं उपकरणों के अवगाहन से, निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है। पैठकर ही मोती निकाले जा सकते हैं।

युगतत्व—'नवीन' जी ने अपने युग को 'संक्रान्ति-काल' कहा है। 'यथा गुण तथा नाम' के अनुसार, कवि ने अपने युग को 'त्रिशंकु-काल', 'सन्धि-काल' और 'द्वापर' की संज्ञा भी प्रदान की है। संक्रान्ति-काल में युग, पुरातन को अतिलंघित करके, नूतन के द्वार को खटखटाता है। इस युग में प्राचीन और नवीन का समन्वय होता है। पुरातन जाते-जाते अपनी प्रतिच्छाया छोड़ देता है और नूतन, अपनी नवल किरणों को विकीर्ण करने लगता है। ऐसे काल-क्षणों में पुनरुत्थान एवं जागृति की सजग समीर, अग-जग को अभिनव परिवेश की गन्ध प्रदान करने लगती है।

समन्वय का सात्विक-सूत्र ऐसे काल-कलन में अतीव ध्यानाकृष्ट योग्य है। समन्वय का विश्लेषण करना भी अत्यावश्यक है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की इस विषय में मर्मस्पर्शी 'सूक्ति' है—समन्वय का मतलब है कुछ झुकना, कुछ दूसरों के लिए वाध्य करना।[1] प्रत्येक सन्धि-युग में यह समन्वय सक्रिय रहता है। भगवान् तथागत बुद्ध, तुलसीदास आदि ने इसके अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किये। 'नवीन' के संक्रान्ति-काल के लोकनायक और 'शिरीष' के सदृश्य 'अनासक्त योगी' एवं 'अवधूत' बापू ने भी यही कार्य किया। 'नवीन' में भी समन्वय है परन्तु अपने ढंग का।

'नवीन' का युग असि तथा मसि का युग था। उसमें संस्कृति के पुनर्जागरण-काल के मूल्य और राष्ट्रीय-चेतना की वह्नि के समन्वित प्रभावों का प्रोज्ज्वल चित्र आत्मस्थ था। वह अत्यन्त संवेदनशील तथा विद्युतकम्पनों से परिप्लावित काल-खण्ड था। 'नवीन' ने जिस समय अपने कवि-जीवन तथा राष्ट्रार्पित व्यक्तित्व की पँखुड़ियों को खोला; उस समय, साहित्य तथा राजनीति, दोनों के ही वरेण्य-क्षेत्रों में, 'नव' का 'रव' छा रहा था और 'गत' का 'मत', इतिहास के पृष्ठों में विलीन होने के लिए उत्सुक था।

राजनीति में तिलक-युग की परिसमाप्ति और गान्धी-युग की सुगन्धि सर्वत्र छा रही थी। साहित्य में द्विवेदी-युग के 'स्थूल' का स्थान छायावाद का 'सूक्ष्म' ग्रहण करने के लिए कटिबद्ध होने लगा। साहित्य तथा राजनीति की दो महत्वपूर्ण कड़ियाँ और युगान्तरकारी अध्याय, इस समय कंगन खोल रहे थे। काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अपने नीड़-निर्माण में रत थीं। गान्धीवाद का आत्मिक-बल एवं जन-स्फुरण, समग्र भारत में उड्डीयमान् होने लगा।

---

१. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृष्ठ १०५।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस संक्रान्ति-काल के साहित्यिक-क्षेत्र विषयक पक्ष के सम्बन्ध में सर्वथा सटीक टिप्पणी दी है। सन् १३ से सन् २० तक का समय इस स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति के अधिक गाढ़ा होकर छायावाद की विशिष्ट काव्य-शैली के रूप में परिवर्तित और परिणत होने का समय कहा जा सकता है।[1] परिणामस्वरूप, 'नवीन' के काव्य में जहाँ एक ओर स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ अपना घर बनाने लगीं; वहाँ दूसरी ओर गान्धीवादी युग-चेतना से भी वह अभिसिंचित होने लगा। ये दोनों युग, उसमें अपनी समन्वित छवि बिखेरने लगे।

'नवीन' ने अपने आपको 'संक्रान्ति-काल' का प्राणी कहा है। यह संक्रान्ति-काल का सुदृढ़-सूत्र 'नवीन' के जीवन तथा काव्य को समझने-बूझने की समर्थ-कुंजी है। इस सूत्र को पकड़े बिना, 'नवीन' दर्शन का प्रसाद प्राप्त नहीं हो सकता। कवि-जीवन पर ही यह चरितार्थ नहीं होता है; प्रत्युत् यह कवि को अत्यन्त प्रिय था क्योंकि उसमें उसका समग्र राष्ट्रीय-साहित्यिक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता था। यह उसकी आत्मा की आवाज़ थी। 'नवीन' ने जहाँ-तहाँ इस तत्व को आश्रय दिये हैं और उसी के रंग में ही सराबोर होकर, अपनी 'उर्मिला' में, राम के त्रेता-युग को भी संक्रान्ति-काल घोषित किया है और लक्ष्मण एवं विभीषण से उसके महत्व की मूर्ति बनवाई है।

'नवीन' के 'त्रिशंकु-काल' के गरिमामय सूत्र 'समन्वय' का सम्बन्ध कवि के 'स्व' से ही है, 'पर' से नहीं। वे संक्रान्ति-काल की प्रतिमूर्ति थे। राजनीति तथा साहित्य, दोनों क्षेत्रों में इसे भली भाँति परखा जा सकता है। 'नवीन' में तिलक-युग, तथा गान्धी युग, दोनों का ही समन्वय प्राप्त होता है। तिलक-युग की ओजस्विता, उष्णता एवं अनल-लहरी, कवि को कुछ तो प्रत्यक्ष ही प्राप्त हुई और कुछ परोक्ष। लोकमान्य तिलक ने बालकृष्ण पर हाथ रखकर, अपनी अनेक विरासत भी संस्पर्श के माध्यम से दे दी थी। कुछ तत्व, कवि में, गणेश जी के माध्यम से आये जिनकी परम्परा भी अपना आदि स्रोत, सिंहनाद उद्घोषक तिलक में, अपना रूप सँवारती थी। गान्धी-युग ने कवि को यौवन और उन्मेष प्रदान किया। वह गर्जना के स्वर को आध्यात्मिक मूल्यों में बाँधने लगा। कवि के अनल-गान तथा गरल-पान की रचनाओं में, इन दो, स्वतन्त्रता संग्राम के जनक तथा उन्नायक युग-पुरुषों तथा उनके काल की समस्त चेतना को, वाणी का वर्चस्व प्राप्त हुआ है।

'नवीन' ने, अपने युग की दोनों प्रकार की, सामाजिक तथा राष्ट्रीय-क्रान्ति का पान किया था। कवि की राष्ट्रीय-रचनाओं में इनका स्वरूप अपनी गाथा गा रहा है। सांस्कृतिक पुनर्चेतना के तत्वों को भी अपनत्व प्रदान करने के कारण, कवि की वाणी को सांस्कृतिक-स्तवन में ही शाश्वत तथा मनोहारी प्रश्रय-स्थल मिले।

साहित्यक-क्षेत्र में भी, कवि ने अपने समन्वय को अपने काव्य में विद्यमान रखा। उसमें भी, संक्रान्ति-काल के सदृश्य पुरातन तथा नूतन का गठ-बन्धन है। जहाँ एक ओर कवि ने महात्मा गान्धी, गणेशंकर विद्यार्थी तथा विनोबा भावे सदृश्य समकालीनों पर अपनी पुष्पांजलियाँ

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'अवन्तिका', छायावाद का आरम्भ कब हुआ ?, जनवरी १९५४, पृष्ठ १६१।

समर्पित कीं; वहाँ वह उर्मिला के परित्यक्त एवं उपेक्षित आख्यान की काव्यात्मक अभिव्यक्ति में भी निष्ठापूर्वक रमा। जहाँ उसने मुक्तक, प्रगीत और मुक्त-छन्द की अधुनातन काव्य-पद्धतियों को अपनाकर, समय के डग के साथ अपने भी पग मिलाये; वहाँ पद, दृष्टकूट, दोहा, चौपाई, सोरठा, कुण्डलियाँ लिखकर, अपने प्राचीनता के मोह को भी प्रदर्शित किया। एक ओर वह पदार्थवादी-दर्शन, भौतिक-शास्त्र एवं अणु-विज्ञान की काव्यात्मक टिप्पणियाँ करता है; वहाँ दूसरी ओर अपने जीवन-दर्शन को उपनिषद् एवं वेदान्त के चिर प्रेरणास्पद नीर से पोषित करता है। वह गीता के गीत गाता है तो भूमिदान-यज्ञ की भी सांस्कृतिक-छवि दिखलाता है। इस प्रकार 'नवीन' में युग-धर्म बोल उठा है।

'नवीन' ने युग की वाणी को अपनी कविता का सुहाग बनाया। युग की इस भावपरक एवं काव्योत्प्रेरक भूमिका में, कवि ने गणेश जी सदृश्य 'घोर अन्धकार में आत्म-ज्ञान-दीप-बाती' को प्रज्वलित करनेवाले, युग-द्रष्टा का संरक्षण एवं सम्बर्द्धक आसव प्राप्त किया। कवि की काव्य-कलिकाएँ अपने पल्लव प्रस्फुटित करने लगी और जीवन की उत्कटता राष्ट्रीय-पथ पर अग्रसर हो गई।

'प्रताप' की तेजस्विता तथा प्रखरता को, 'नवीन' के राष्ट्रीय-योद्धा के जीवन में उत्कर्ष प्राप्त हुआ। वे आजीवन योद्धा बने रहे। उन्होंने परतन्त्रता से युद्ध किया; परिस्थितियों से लोहा लिया; सामाजिक बन्धनों से लड़ते रहे और आर्थिक विषमता की तीक्ष्ण डाढ़ों को उखाड़ते रहे। उन्होंने हिन्दी के लिए अपनी कमर कसी और अन्त में रोगों से भी वर्षों तक युद्ध करते रहे। बहिर्जगत् का यह युद्ध, उनके अन्तर्जगत् में भी, अतर्द्वन्द्व का रूप धारण कर लेता था। राष्ट्रीय-संग्राम के दिनों में उनके प्रणयी मन तथा कर्त्तव्योन्मुख आत्मा में जो कारागृह के भीतर संघर्ष चला करता था; उसकी झाँकी भी उनके प्रेम-काव्य में देखी जा सकती है। अपनी वृद्धावस्था में, लौकिक तथा अलौकिक संघर्ष में, कवि का मन-पंछी अपार्थिव की ओर ही उन्मुख हो गया था। 'नवीन' के बहिर्द्वन्द्व एवं अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति ही उनका कर्मठ जीवन एवं प्रभविष्णु काव्य है।

इस युग-संघर्ष की भीषण बेला तथा उत्तेजना में, कवि के बहिर्द्वन्द्व तथा अन्तर्द्वन्द्व की संयोजनकारी-सूत्र अत्यन्त परिपक्व एवं ग्राह्य-शक्ति-सम्पन्न बना रहा। 'नवीन' जी की काव्यानुभूतियों एवं प्रेरणा-स्रोत के अनुशीलनार्थ भी, उनके युग-तत्व को समझना अत्यावश्यक है। वे खरी तथा यथार्थ अनुभूतियों के कवि थे और ये सब स्फुरण, स्पन्दन, कम्पन तथा भावनाएँ, उन्हें अपने युग, समाज तथा जीवन से ही प्राप्त हुईं। 'नवीन' जी उन कवियों में से हैं जिनके व्यक्तित्व को समझ लेने पर, उनका काव्य-तत्व अपने आप ही, अपनी अन्तःभूमियों के अवगुण्ठन खोल देता है।

व्यक्ति-तत्व—'नवीन' जी का व्यक्ति-तत्व उनके युग-तत्व की ही उपज है। युग ने ही उनके व्यक्ति को गढ़ा और दोनों का प्रतिबिम्ब काव्य में दिखाई पड़ा। इस अपराजय-योद्धा में मालवा की मस्ती के साथ उत्तरप्रदेश की कर्मठता, अपना विचित्र मिश्रण बनाती है। बालकृष्ण के वैष्णवी बाल्य-संस्कार, उसे अमित-निधि प्रदान करते हैं। ये संस्कार उसके काव्य, संगीत तथा दर्शन की बृहत्त्रयी को प्राणान्वित करते हैं। वैष्णव-गीतों तथा वातावरण ने 'नवीन' के कवित्व को स्फुरित किया; काव्य-संगीत को

शास्त्रीय तथा परिपाटीगत रूप से संयोजित किया और भक्ति तथा अध्यात्मपरक रचनाओं के मूल को उत्प्रेरित किया। ये ही संस्कार कभी गान्धी की ओर उन्मुख हो जाते हैं और कभी विनोबा की ओर। इन्हीं से ही कभी उसकी भक्ति उमड़कर उर्मिला के चरणाम्बुजों में जा विराजती है और कभी गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान को महिमामय रूप प्राप्त होता है जिसमें कवि का श्रद्धा-निर्भर झर-झर करके सतत प्रवहमान रहता है।

कवि की बाल्य-दरिद्रता एवं विधुर-जीवन, जहाँ उसे 'हम अनिकेतन' का गायक बनाते हैं, 'मस्त फकीर' तथा 'जोगी' की दुनिया में ले जाते हैं; वहाँ शृंगारिक रचनाओं के भी हृदय खोलते हैं। कवि के यौवन का उन्मेष तथा वयः प्राप्ति से उत्पन्न चिन्तनपरक दृष्टिकोण भी, उसके काव्य-व्यक्ति-तत्व पर अपने अमिट चिह्न छोड़ गये।

'नवीन' के व्यक्ति-तत्व के तीन सूत्र हैं—भावुकता, करुणा एवं विद्रोह। भावुकता ने उसके समग्र काव्य पर अपना आसन जमाया है। इसी कारण उसका शिल्प-पक्ष भी कमजोर हो गया। उसकी भावुकता कभी गरीबों, आर्त्तों तथा पीड़ित व्यक्तियों का पक्ष लेती; कभी अन्याय या अनाचार के विरुद्ध ललकार बनकर उद्घोषित हो जाती और कभी विनम्रता एवं श्रद्धा के रूप में शान्त प्रतिमा बन जाती। भावुकता के कारण ही, कवि कभी ईश्वर को चुनौती देने लगता और कभी सुकवि की किसी मर्मस्पर्शी रचना को सुनकर, उसके चरणों में गिर पड़ता। यही भावुकता राष्ट्रीय-गीत को अनल-गीत में परिणत कर देती और रहस्यवादी प्रवृत्तियों को भक्ति एवं रोचक अभिव्यक्ति में। इसी भावुकता के कारण भाषा अनगढ़ हो जाती, छन्द उच्छृंखल बन जाते और कलात्मक परिष्कृति मन मसोस कर रह जाती। वास्तव में भावुकता को कवि-व्यक्तित्व का सर्वप्रमुख तथा संचालनकारी-सूत्र मानना चाहिये। यह उसके मनोवृत्तियों का सिरमौर है और सभी ज्ञात-अज्ञात कृत्यों, क्रियाशीलता तथा प्रतिक्रियाओं में बैठी रहती है। यह रूप बदल-बदल कर भी आती दृष्टिगोचर होती है। उत्साह के क्षेत्र में पहुँचकर तेजस्वी बन जाती; ओज की दिशा में उमड़कर प्रखर बन जाती; रति के प्रति अपनी अनुनय-विनय भरी वेदना उड़ेलती और अणु-विज्ञान से अपनी असहमति प्रकट करती। गद्य के क्षेत्र में पहुँचकर सीमोल्लंघन कर जाती और जीवन की कठोर तथा संघर्षरत भूमिका में औचित्यानौचित्य के बन्धन को अधिक आश्रय नहीं देती। यही भावुकता सिंहासनों को ठुकराती और कुटीरों को गले लगाती। राजदूतत्व तथा मन्त्रि-पद को ठुकराकर, 'हम अलख निरंजन के वंशज' गाने में ही आत्म-तुष्टि मानती। यही भावुकता, बड़े-बड़े से टकराने में, भय उत्पन्न नहीं होने देती और जीवन को खेल समझकर, उसमें जूझते रहने की उत्प्रेरणा प्रदान करती। भावुकता का उत्स ही उनकी 'करुणा' तथा 'विद्रोह' की अन्य वृत्तियों में चिर विद्यमान रहता।

करुणा ने कवि-व्यक्तित्व को अमिट रंगावेष्टित किया है। वह ओजस्वी रचनाओं में दीन-हीन व्यक्तियों तथा पराभूत भारत की स्थिति से उत्पन्न शोक की तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में विद्यमान रहती है। प्रिय के प्रति निवेदनों में अनुनय-विनय तथा दार्शनिक काव्य में भक्ति की आत्मदीनता तथा समर्पण के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उसका गहरा पुट उसके प्रबन्ध-काव्यों में भी आँका जा सकता है।

कवि ने आजीवन विद्रोह किया। उसकी उर्मिला, लक्ष्मण, राम आदि सभी विद्रोह-

तत्व की प्रशंसा करते हैं और उसे जीवन में वरेण्य मानते हैं। इस जन्मजात विद्रोही तथा मस्तमौला ने गौरांग-महाप्रभुओं के विरुद्ध विद्रोह किया। न्याय तथा निष्ठा के प्रश्न पर 'नवीन', विप्लव करने में कभी भी आगा-पीछा नहीं देखते थे। सामाजिक अनाचार तथा आर्थिक दुरवस्था से उनका व्यक्ति और कवि जूझता ही रहा। गान्धी जी के परम अनुयायी होने पर भी, हिन्दी के प्रश्न पर, कवि उनसे भी विद्रोह कर बैठा। नेहरू जी के निष्ठापूर्ण अनुगत होने पर भी, राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर, उनसे भी अपनी स्पष्ट तथा प्रखर असहमति प्रकट कर दी। 'नवीन' की कहानी ही विद्रोह की जबानी सुनने को मिलती है। काव्य के कला-पक्ष में भी उनके विद्रोह ने 'कूचा' ही अलग बना लिया है जिसका 'रंग' ही नया है।

'नवीन' के व्यक्तित्व में भी उनके 'संक्रान्ति-काल' के 'समन्वय' का सूत्र कार्यरत है। वे विरोधी गुणों के विचित्र तथा अनूठे समुच्चय हैं। ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी, दोनों ही रूप उनमें देखे जा सकते हैं। बलिवेदी के गायक तथा मधुवादी काव्य-प्रवृत्तियों के पोषक के रूप, उनमें द्रष्टव्य हैं। वे विनीत तथा उद्धत, श्रद्धालु तथा विरोधी, विनम्र एवं प्रखर, सभी रूपों में सामने आये। वे प्रणय तथा चिन्तन, दोनों के आवरणों को खोलते हैं। मधुपान तथा गरल-पान, दोनों को ही उन्होंने एक-सा ममत्व प्रदान किया। वे झुककर भी चले और ललकार भी उठे। उन्होंने प्रेम के आगे 'मत्था' टेका और बन्दूक के सामने छाती खोल दी। उनकी छाती चौड़ी थी परन्तु हृदय संवेदनशील। उनकी बाहुएँ बलिष्ठ थी परन्तु अन्तःकरण करुणार्द्र। वे प्रेय से श्रेय की ओर बढ़े। ससीम में असीम को ढूँढ़ा। पार्थिव को अपार्थिव की दीप्ति प्रदान की। उनका कवि-व्यक्तित्व समन्वय की मंजूषा है। उन्होंने वियोग में योग के दर्शन किये। प्राणार्पण में, सार्वभौमिक मानवता के अनूठे रूप को पिरोया। स्थूल में, सूक्ष्म के समन्वय की साधना की। आकर्षण तथा समर्पण की गाँठ बाँधी। रति-निष्ठा से यति बन गये।

हम कह सकते हैं कि रति तथा यति, मसि एवं असि को पचाकर समरसता का निदर्शन करने वाला ऐसा व्यक्तित्व हिन्दी में शताब्दियों के बाद उत्पन्न हुआ। वह अपनी दो ही सानी रखता है—उधर 'कबीर' और इधर 'निराला'। युग के बड़वानल को जितने पौरुष तथा मस्ती के साथ 'नवीन' ने पिया; वह एक निराली ही कहानी है; जिसे इतिहास भूलने का साहस नहीं कर सकता। विषपान को कवि ने अपना युग-धर्म एवं आत्म-कर्त्तव्य माना। गरीबी, दुःख, विपत्ति, कुटिल-नियति, दमन, दासत्व, सामाजिक असन्तोष, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, प्रणय असफलता, वियोग-व्यथा, अहि आलिंगित जीवन' के क्षण, शारीरिक कष्ट आदि के हलाहल को वे सस्मित पान कर गये। उन्होंने अग्नि-पान किया और हाथों से अग्नि को दबोच दिया। उनके हृदय की प्रणयाग्नि उन्हें सालती रही और आत्माग्नि की तृप्ति के लिए उनका 'हंसा' निर्मुक्त गगन में अपने डैने फैलाकर, 'क्वासि' तथा 'कस्त्वं कोऽहम्' की ध्वनि को गुंजायमान् करने लगता था। उन्होंने मन तथा आत्मा, दोनों की टीस तथा टोह को सहन-वहन किया। उन्होंने रुदन-गायन, दोनों को ही, अपना सहयोगी बनाया। वे विजय-पराजय दोनों में ही झूमते रहे। उन्होंने सब कुछ समर्पण कर दिया; अपनी मस्ती के लिये, राष्ट्र-माता के लिये, हिन्दी-भारती के लिये और वाणी की आराधना के लिये। वे झुके नहीं। उन्होंने सिर दिया परन्तु सार नहीं दिया। कबीर की भाँति, उन्होंने सब कुछ लुटाकर,

'भौन लगी आग' की स्थिति को उत्पन्न कर और अनिकेतन की वीतरागी वृत्ति ग्रहण कर, चौराहे पर खड़े हो गये। वह एक ऐसा चौराहा था जहाँ उनकी राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी, पत्रकारिता, काव्य की महिमामयी निधि तथा ममतामय मानव की विह्वलता अपने आप ही एकत्रित हो जाती थी। वे राष्ट्रीय-संग्राम के जीवन्त तथा घनीभूत प्रतिरूप थे और थे कविता की साकार प्रतिमा। इस गरल-संगीत के प्रणेता, हलाहल धर्म के प्रवर्तक और हिन्दी के नीलकण्ठ ने, युग के हलाहल का पान करके, उसे प्राकृत बनाकर, काव्य-कुम्भ में उड़ेल दिया। इसीलिए कवि यह गा सका—

उन्नत होकर बनते मनोवेग प्रबल शक्ति,
संयम ही से खिलती हिय की रागानुरक्ति,
तुम्हें नहीं देती है शोभा यह द्वेष भक्ति,
तुमने तो रक्खा है अपना चिर धीर नाम,
राको, हे, राको, निज क्रोध-अनल एक याम!
× × ×
तुम तो हो नीलकण्ठ, विकट हलाहल धारी।[१]

यह गरल-वेदी का गायक, विषपान करके भी अपने व्यक्तित्व को अमृतमय ही बनाये रखा। उसका भौतिक व्यक्तित्व ऋतुराज तथा रसराज से समन्वित था और अमृतमयी दीप्ति से भास्वर। उसका व्यक्तित्व हिन्दी की श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न कवियों की पंक्ति की शोभा को द्विगुणित कर सकता था। कवि, चिर-नवीन बना रहा। उसके जीवन के त्रिजत्व प्राप्ति कर लेने पर भी, उसका काव्य-तत्व चिर नवीन तथा चिरकालिक है। उसका काव्यरूपी यशः शरीर ही युग-युगान्तर तक अपनी वाणी को निःसृत करता रहेगा।

काव्य-तत्व– युग तथा व्यक्ति-तत्व के दाम्पत्य जीवन ने ही काव्य-तत्व को जन्म दिया है। श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने लिखा है कि "कवि 'नवीन' मोटे रूप से तीन भागों में विभक्त होता है, राष्ट्रीय जागरण का गायक, प्रणय-गीतों का प्रणेता और लोकोत्तर तृषा की अकुलाहट का आकलनकर्ता। नवीन जी का राष्ट्रीय-कवि, कर्मभूमि के घात-प्रतिघातों की संवेदना से जन्मा, उनका प्रेमगीतगायक उनकी मनोभूमि के रंगीन सौन्दर्य बोध की उपज है और उनका 'कस्त्वं कोऽहम् बाला श्रेयस प्रिय 'हंसा' उनकी अवचेतन श्रद्धा-भक्ति परम्परा से उद्भूत हुआ है।[२]

इस प्रकार 'नवीन' जी की काव्यधारा राष्ट्रीय, प्रेम एवं दार्शनिक प्रवृत्तियों में से प्रवेश करके बहती है। इनके अतिरिक्त, उनके प्रबन्ध काव्यों में, कवि का प्रबन्धकार अपनी प्रतिभा विकीर्ण करता है। इस प्रकार कवि ने गीत एवं प्रबन्ध-काव्य के दो रूपों को अपनी वाणी का वर्चस्व प्रदान किया। 'नवीन' जी के काव्य में अनुभूति तत्व की प्रधानता है। उसमें संगीत तथा सूक्ति की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। उनका भाव-पक्ष जितना समृद्ध एवं प्रखर है; उतना शिल्प-पक्ष नहीं। 'नवीन' जी के राजनैतिक जीवन, कार्यव्यस्तता,

---

१. 'स्मरण-दीप', २०वीं कविता।

२. 'आकाशवाणी वार्ता', इन्दौर, प्रसारण-तिथि ५-१२-१९६०।

समयाभाव एवं भौतिक संघर्षों ने उन्हें काव्य-साधना करने के अवसर प्रदान नहीं किये। इसीलिए, उनके काव्य में परिष्कार का पक्ष दुर्बल रह गया। कवि ने यद्यपि थोड़ा परिमार्जन यत्र-तत्र करने का प्रयास किया था; परन्तु वह सागर का नौका-संतरण ही कहलावेगा। वास्तव में भाषा, अलंकार, छन्दादि को कवि ने कभी अपना इष्ट नहीं माना। वह बात कहना जानता था और कह देता था। यही उसका अभीष्ट था। साज-सज्जा की अपेक्षा, कवि ने भावों के प्रेषण को ही अधिक महत्व प्रदान किया। इस तथ्य के होते हुए भी, कवि की अनगढ़ तथा फक्कड़तामयी भाषा तथा शैली की अपनी दीप्ति है जिसमें नैसर्गिकता, आर्जव तथा प्रभावोत्पादकता परिप्लावित है। उनमें ओज की प्रगल्भता अपने उत्कर्ष पर है। 'नवीन' जी जीवन तथा प्रत्यक्ष प्रेरणाओं के कवि रहे हैं; अतएव, उन्होंने अपने काव्य में उसके व्यावहारिक तथा वास्तविक रूप को ही स्थान दिया है, जिसके फलस्वरूप, उनकी भाषा तथा शैली भी देशज शब्दों एवं उर्दू शैली से ओत-प्रोत हो गई है। कवि उत्तरोत्तर संस्कृत एवं संस्कृतमयी शब्दावली की ओर उन्मुख होता चला गया; जिसके परिणामस्वरूप उसकी दार्शनिक अभिव्यक्ति के समान, उसकी भाषा-योजना भी संस्कृतनिष्ठ होती चली गई। अपने युग-धर्म की माँग ने भी कवि को संस्कृतमयी भाषा, चिन्तनपरक रचनाओं, विश्व मानवता-मयी कृतियों तथा गाम्भीर्य की ओर उन्मुख किया।

इस प्रकार 'नवीन' जी के काव्य-तत्व में क्रमशः विकास तथा प्रौढ़ि के दर्शन होते हैं और कवि ने अपने काव्य की परिणति अध्यात्म-विषयक कृतियों में की। उनका काव्य, हृदय से आत्मा की ओर, सूक्ति से संगीत की ओर और गीतों से प्रबन्ध की ओर उन्मुख होता है। उनकी काव्य-साधना का पाट पर्याप्त विस्तृत एवं प्रशस्त है जिसमें अनेक सोपानों के दर्शन किये जा सकते हैं।

महत्त्रयी

कवि के, हिन्दी वाङ्मय के प्रदेय, गरिमा तथा साहित्य में स्थान निर्धारण के हेतु, हमें; तीन उपादानों के आधार पर, उसका अनुशीलन करना, उचित प्रतीत होता है—(क) गरिमांकन (ख) महत्वांकन; (ग) मूल्यांकन।

उपरिलिखित तीन तत्व ही उसके काव्य-श्री तथा नूतन योगदान की भली भाँति विवेचना करने में समर्थ हो सकेंगे। 'वृहत्त्रयी' ने जहाँ उसके काव्य व्यक्तित्व की पीठिका तथा काव्य-विश्लेषण का अंकन किया है; वहाँ 'महत्त्रयी' उसकी गरिमा-महिमा, ऐतिहासिक मूल्य, हिन्दी काव्य को अभिनव देन और 'नवीन' के कवि-व्यक्तित्व के गौरव-सूत्रों को उद्घाटित करने का प्रयास करती है।

गरिमांकन—कवि के काव्य की गरिमा तथा महिमा के अंकन के हेतु, उसे, दो वर्गों में विभाजित करना समुचित प्रतीत होता है— (१) 'नवीन' का प्रदेय; (२) 'नवीन' द्वारा नव प्रवर्तन।

(१) **'नवीन' का प्रदेय**—'नवीन' जी के हिन्दी-काव्य के प्रदेय के विश्लेषण के समय, अनेक विषय अपने महिमा-गाथा कहते उभर-निखर कर आते हैं। 'नवीन' ने बहुविध रचनाओं का निर्माण किया जिनमें मानव-जीवन की नाना प्रकार की वृत्तियों, चित्रों, घटनाओं और वृत्तों को स्थान मिला है। वे राष्ट्रीय-काव्य के पुरस्कर्ता हैं; यौवन के मदभरे गायक हैं

और रहस्य को गूँथने वाले चिन्तक कलाकार। उनका प्रबन्धकार, नूतन साज-सामग्री को अपने आख्यानों में स्थान प्रदान करता है। इस प्रकार उनका सतत सर्जनाशील व्यक्तित्व, हिन्दी वाङ्मय की शाश्वत सेवा में आजीवन रत रहा।

'नवीन' जी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक रचनाओं ने हिन्दी में नूतन भाव-भूमिकाओं को जन्म दिया है। वे योद्धा तथा कवि दोनों थे; अतएव, इस काव्य में युग की लहरें अपना क्रोड़ पाती हैं। 'नवीन' जी का राष्ट्रीय-काव्य एक ओर क्रान्तिकारियों एवं उग्रपन्थियों की वाणी के ओज को अपने में आत्मसात् करता है; तो दूसरी ओर गान्धी जी के अपार्थिव मूल्यों को भी अपना स्नेह प्रदान करता है। कवि के प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं, प्रत्युत् प्रत्यक्ष-भोक्ता होने के कारण, उसके राष्ट्रीय काव्य में जीवन के स्पन्दन आये हैं और वाणी का जो उभार मिलता है, वह हिन्दी के राष्ट्रीय-काव्य में अपनी सानी नहीं रखता। कवि ने अपने काव्य में घटनाओं तथा तथ्यों को प्रतिक्रियात्मक एवं भावपरक रूप प्रदान करके, उसको अत्यधिक सामयिकता के मोह से वंचित कर दिया है जो कि शाश्वत-काव्य के लिए अत्यावश्यक है। उसकी राष्ट्रीयता भावुकतामयी है और उसमें वस्तुपरक बिम्ब न आकर, प्रवृत्तिपरक प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं।

हिन्दी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा में कवि ने नवीन अध्याय को संलग्न किया है जो कि आशावादिता, उत्कटता, ओजस्विता, क्रान्ति तथा विप्लव के सुदृढ़ पृष्ठों से संयुक्त है। 'नवीन' के राष्ट्रीय-काव्य की अवहेलना करना, एक युग तथा उसकी मार्मिक काव्यात्मक धरोहर से काव्य-श्री को वंचित करना है। कवि ने राजनीति की धारा की अपेक्षा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को अधिक प्रश्रय दिया है; जिसके कारण उसके काव्य में स्थायित्व तथा उच्चतर मूल्यों के तत्व प्राप्त होते हैं। इसी उत्स से ही, उसका स्वातन्त्र्योत्तर विश्वमानवतावादी रूप एवं महर्षि विनोबा के व्यक्तित्व की सांस्कृतिक व्याख्या आदि के अवयव उत्पन्न हुए हैं।

कवि के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-काव्य की सर्वाधिक महान् उपलब्धि है 'प्राणार्पण'। इसका अनेक दृष्टियों से कवि-जीवन में महत्व है। कवि, प्रायः अपने राष्ट्रीय काव्य अथवा कारागृह-प्रसूत रचनाओं में देश की राजनीतिक उथल-पुथल के प्रत्यक्ष-चित्रण से विरक्त रहा है। इस काव्य ने कवि को राष्ट्रीय जन-जीवन के स्पन्दन का प्रत्यक्ष अनुगायक प्रमाणित कर दिया है। युग-चेतना का जितना सम्यक्, विस्तृत एवं प्रभावपूर्ण आकलन इस कृति में हुआ है; वह उसके काव्य में ही नहीं, अपितु उस युग की अत्यल्प कृतियों में हो पाया है। हुतात्मा गणेश जी के महिमा-मण्डित व्यक्तित्व पर चढ़ाये समग्र साहित्यिक प्रसूनों में, प्राणार्पण का प्रसून सर्वाधिक प्रभावपूर्ण तथा सुवास-युक्त है। युग की पृष्ठभूमि एवं गणेश जी के व्यक्तित्व का ऐसा प्रखर, गम्भीर, उदात्त एवं भव्य विश्लेषण अन्यत्र दुर्लभ है। यह कवि 'नवीन' की, हिन्दी काव्य को दूसरी महान् देन हैं। यह इस परिपाटी की सिरमौर कृति है। विषय तथा काव्य, दोनों ही दृष्टियों से इसका हिन्दीकाव्य के इतिहास में अपना पृथक् तथा वन्दनीय स्थान है।

'नवीन' जी का प्रेम-काव्य अपने युग की छायावादी प्रवृतियों के अनुकूल है। उसमें विप्रलम्भ-शृंगार-रस का प्रधानत्व है जिसके कारण वे वियोग के सुष्ठु-कलास्रष्टा हैं। 'नवीन' जी ने प्रेम, रूप, सौन्दर्य, यौवन, विरहानुभूति आदि के जो मांसल एवं मर्मस्पर्शी चित्र पदान किये हैं; वे हिन्दी की शृंगार-परम्परा की श्रीवृद्धि ही करते हैं। उन्होंने प्रणय को भी अपनी जीवन्त अनुभूति से मण्डित किया है, जिसके कारण वह जीवन की धड़कनों से आपूर्ण है।

'नवीन' जी के दार्शनिक काव्य में उनका भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं काव्य-परम्परा का रूप ही समृद्ध हुआ है। उनकी दार्शनिक रचनाएँ उन्हें ईश्वरवादी, भक्त एवं भावुक दार्शनिक के रूप में ही प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने निवृत्ति मार्ग की अपेक्षा, प्रवृत्ति मार्ग को ही अपनाकर, अपने जीवन-दर्शन की सामाजिक उपादेयता तथा आधारभूमि की भी शोभा बढ़ाई है। उनका दार्शनिक-काव्य हमारे अध्यात्मपरक काव्य-साहित्य की सम्पदा को विपुल बनाता है और आधुनिक काव्य के इतिहास में अपनी निराली छाप छोड़ जाता है।

'नवीन' जी के मरण-गीत आधुनिक हिन्दी काव्य ही क्या, समग्र हिन्दी वाङ्मय की चिर वन्दनीय रत्न-मंजूषा है। आधुनिककाल में किसी भी कवि ने उनके जैसे आस्थामय एवं गम्भीर प्रतिपादनामय गीत नहीं लिखे। 'नवीन' जी का यह हिन्दी-भारती को सर्वथा नूतन, मौलिक एवं प्रौढ़ प्रदेय है जिसकी समकक्षता सम्भव नहीं।

'उर्मिला' नवीन जी का इकलौता महाकाव्य है। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र की काव्यगत उपेक्षा तथा विस्मृत रूप की सुन्दर तथा महान् व्यंजना की है। उर्मिला का जैसा विस्तृत, सांगोपांग एवं नूतन उद्भावनाओं से युक्त चित्र 'नवीन' ने प्रदान किया है, वह अन्यत्र अप्राप्य है। राम-वनयात्रा का सांस्कृतिक अनुदर्शन कर, कवि ने इस काव्य की पीठिका को सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों से भी परिपुष्ट कर दिया है। उर्मिला की सरस अवतारणा, मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं, नूतन चरित्र-सृष्टि, हास-परिहास के दृश्य, राम-रावणवाद की अभिनव व्याख्या, ललित प्रकृति-चित्रण एवं कल्पना-वैभव की दृष्टि से, राम-काव्य की परम्परा में इसका अनुपमेय स्थान है। इसने राम-कथा के अंगों की सम्पूर्ति की है। एतदर्थ, इसे 'पूरक-काव्य' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसमें राम-सीता की कथा न होकर उर्मिला-लक्ष्मण की गाथा है। रामायणी कथा को कवि ने नहीं ग्रहण किया, उसके प्रमुख अंशों का ही सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। यह काव्य अद्भुत मौलिकता तथा विशिष्टताओं से परिप्लावित है। 'उर्मिला', जहाँ 'नवीन' काव्य की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है और कवि के यशःपताका एवं चिरन्तन काव्य-वैभव की अक्षयवाटिका है; वहाँ यह हिन्दी काव्य की महती तथा सारगर्भित उपलब्धि है। इधर के कतिपय वर्षों में प्रकाशित प्रबन्धकृतियों में उसने अपना अप्रतिभ स्थान बना लिया है। यह रचना कवि की वाणी का वरदान है जो कि युग-युगान्तरों तक हिन्दी काव्य-संसार में गुंजायमान रहेगा और सुवास फैलाता रहेगा। 'नवीन' का एक मात्र यह प्रदेय ही, उनको हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में शोभायमान करने के लिए पर्याप्त है।

'नवीन' ने अपने शास्त्रीय राग-रागिनियों से बद्ध गीतों के द्वारा विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास , मीराबाई, नन्ददास आदि की परिपाटी की आभा भी बढ़ाई है। उनके प्रगीत, आधुनिक हिन्दी प्रगीतों के वाङ्मय में अपना अद्वितीय स्थान बनाते हैं। उनके प्रगीतों की सहज आत्माभिव्यंजना एवं संगीत पक्ष का मार्दव, उनकी सुष्ठु उपलब्धि है। उनकी, हिन्दी के प्रौढ़ तथा मार्मिक गीतकारों में, परिगणना की जा सकती है।

'नवीन' ने हिन्दी के शब्द-कोश की अभिवृद्धि की है और उसे सर्वसाधारण तक गम्य बनाने के लिए, पर्याप्त स्थानीय एवं देशज शब्दों को प्रयोग किये हैं। यह भी उनकी पृथक् उपलब्धि ही मानी जावेगी।

राष्ट्रीय-काव्यधारा का यह पुरस्कर्त्ता कवि, अपने काव्य में खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा के समन्वित प्रयोग को दर्शाकर, इन दोनों भाषाओं के सेतु का कार्य सम्पन्न करता है। इससे उसके मूल्यग्राही व्यक्तित्व तथा समन्वयकारी प्रवृत्तियों के दर्शन प्राप्त होते हैं। उसने नूतन मनोवृत्ति के साथ ही साथ, प्राचीन मनोसंस्कारों की भी विवेचना की है। आधुनिक युग में अभिव्यक्ति के प्राचीन माध्यम एवं छन्द अपनाकर, कवि ने अपनी अनुपमेय विशेषता का ही उद्घाटन किया है। इस प्रकार 'नवीन' जी ने हिन्दी भण्डार की श्रीवृद्धि में बहुमूल्य, मर्मस्पर्शी एवं चिरन्तन प्रदेय दिया है जो कि हमें गौरवान्वित ही करता है।

(२) 'नवीन' द्वारा नव प्रवर्तन—'नवीन' जी मौलिक प्रतिभा-सम्पन्न और सर्वतोमुखी विधान के स्रष्टा कवि थे। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने अनजाने में ही अनेक नूतन पथों को गढ़ा, मार्गों को बनाया, पौधों को लगाया और धाराओं को निनादित किया।

वर्तमान हिन्दी काव्य में जो आधुनिक विभूतियों—यथा, महात्मा गान्धी, प्रेमचन्द आदि पर प्रबन्ध-काव्य लिखे जा रहे हैं; इस परिपाटी के मूल में हम 'नवीन' जी के 'प्राणार्पण' काव्य को रख सकते हैं और तदुपरान्त इस परम्परा का मूल्यांकन किया जा सकता है। कई समीक्षकों ने आधुनिक हिन्दी काव्य में 'नाशवाद', 'विप्लववाद', 'प्रगतिवाद' एवं 'हालावाद' के प्रवर्तन का श्रेय 'नवीन' जी को ही प्रदान किया है।

'नवीन' जी ने राष्ट्रीय-संग्राम के उत्तेजना प्रधान क्षणों में विद्रोहमयी कविताओं का सृजन किया था। उनकी इस प्रकार की, कई कविताओं में विध्वंस का तत्व प्रखरतापूर्वक विद्यमान है। उन्होंने हिन्दी में 'नाशवाद' की इस काव्य-धारा को जन्म प्रदान किया। इस प्रसंग में, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि " 'नवीन' की कविता में राष्ट्रवाद का क्रन्दन गहरा हो गया है और नजरूल के नाशवाद का प्राथमिक हिन्दी रूप भी हमें इन्हीं की रचना में मिलता है।"[१]

आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति एवं विप्लव के गीत जितनी तेजस्विता तथा प्रभावोत्पादकता के साथ 'नवीन' जी ने गाये, उसकी सानी नहीं दिखाई पड़ती। हिन्दी में थे विप्लववाद के संस्थापक हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी ने लिखा है कि "यह ('नवीन' जी) प्रगतिवादी क्रान्तिधारा के प्रवर्तक हैं।"[२]

'नवीन' जी की क्रान्तिपरक रचना में सामाजिक तथा आर्थिक, दोनों ही क्षेत्रों में, क्षोभ एवं परिवर्तन की वृत्ति, प्रखरतम रूप में दृष्टिगोचर होती है। इसी आधार पर ही उन्हें 'प्रगतिवाद' का भी उन्नायक माना गया है। श्री जानकीवल्लभ शास्त्री ने लिखा है कि " 'नवीन' जी ने आर्थिक वितरण की अनुचित पद्धति पर भी दृष्टि फेंकी है और देश की गरीबी को देखकर ऐसा स्वर भी फूँका है जिससे यह मालूम हो कि वह वर्ग-युद्ध चाहते हैं। अगर आज के प्रगतिवाद का आधार और कारण आर्थिक है तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उसका

---

१. 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा', पृष्ठ १२५।

२. डॉ० उदयनारायण तिवारी—'हिन्दी भाषा तथा साहित्य', आधुनिक काल, पृष्ठ १७०।

पहला बीज हिन्दी में 'नवीन' ने बोया।''[1] श्री देवीशरन रस्तोगी ने भी लिखा है कि ''प्रगतिवाद का पहला सोपान विप्लववाद था। उनकी 'विप्लव-गान' नामक कविता इसी प्रथम सोपान की प्रतिनिधि रचना है। उनकी 'जूठे पत्ते' नामक रचना की भी प्रगतिवादी काव्य-धारा के विकास में ऐतिहासिक महत्व है।''[2]

हिन्दी में 'हालावाद' के प्रवर्तन का श्रेय बच्चन को दिया जाता है। परन्तु ऐतिहासिक क्रम से, 'नवीन' ने ही सर्वप्रथम मधुवाद की काव्य में अवतारणा की। उनकी 'साकी' नामक कविता और 'उर्मिला' के कतिपय अंश इस तथ्य के साक्षी हैं। इन रचनाओं में मधुवाद का प्रौढ़ रूप भी पाया जाता है। डॉ० राजेश्वर गुरु ने कवि के जीवनकाल में ही लिखा था कि ''हिन्दी के आलोचक यदि क्षमा करें तो मेरा यह दावा है कि हिन्दी में मधुवाद के उन्नायक बच्चन नहीं, नवीन हैं। जब शायद बच्चन के किशोर हाथ प्याला थामने में हिचकते या सकुचाते थे; तब नवीन का कवि कहता था—'कूजे दो कूजे में बुझनेवाली मेरी प्यास नहीं'।''[3] कवि की मृत्यु के पश्चात्, अपने एक संस्मरण में डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने भी लिखा है कि ''यही नहीं, बच्चन के जिस हालावाद ने दो दशकों तक पाठकों को मदमस्त बनाया, उसका सर्वप्रथम उत्स नवीन के उफनाते प्याले से ही छलका था।''[4] डॉ० बच्चन ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में उनका विश्लेषण अध्ययन योग्य है—

''१९३२ में मेरी कविताओं का एक संग्रह 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, तब तक हाला, प्याला, मधुबाला, मधुशाला के प्रतीकों के प्रति मेरे मन में कोई आकर्षण न था। मेरे मन में उस समय जो भावनाएँ हिलोरें मार रही थीं, उनके लिए मेरे इन प्रतीकों के चुनाव में नवीन जी के उपर्युक्त गीत (साकी) ने कितनी शह दी होगी, इसका अनुमान लगाना मेरे लिए कठिन है। शायद नवीन जी से प्रेरणा ले, अथवा स्वतः सम्प्रेरित हो, श्री भगवतीचरण वर्मा भी ऐसे गीत रच रहे थे—'बस मत कह देना अरे पिलाने वाले, हम नहीं विमुख हो वापस जाने वाले'। द्विवेदी-मेले के कुछ ही महीने बाद मैंने 'रुबाइयात उमर खैयाम' का अनुवाद किया और उसके बाद ही 'मधुशाला' और 'मधुबाला' के कतिपय गीतों की रचना की। तथाकथित हालावाद का मधु चक्र प्रवर्तन करने के लिए हिन्दी के छुट भैये समालोचकों ने मुझे जितनी गालियाँ दी हैं, काश, उनमें से कुछ वे नवीन जी और भगवतीचरण वर्मा के लिए भी सुरक्षित रखते क्योंकि इस मामले में पेशदस्ती का काम इन्हीं मेरे दोनों अग्रजों ने किया था।''[5]

इन सब तथ्यों के होते हुए भी, 'नवीन' जी ने मधुवाद के प्रवर्तक होने का कभी भी

---

१. श्री जानकीवल्लभ शास्त्री—'साहित्य दर्शन', हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय-धारा, पृष्ठ १२०-१२१।

२. 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', पृष्ठ ३२३।

३. साप्ताहिक 'नवराष्ट्र', कोमल अभिव्यंजना के कवि नवीन, दीपावली-विशेषांक, सन् १९५७।

४. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२, पृष्ठ ९।

५. डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—'नए पुराने झरोखे', पृष्ठ २१।

दावा नहीं किया। उन्होंने अपनी 'साकी' कविता को अपनी मस्ती में ही लिखा है जो कि उनके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग थी।[१]

'नवीन' जी अपनी प्रवृति के अनुसार, अपने को किसी वाद के कठघेरे में नहीं बाँधना चाहते।[२] प्रगतिवादी दर्शन से उनका मतभेद था।[३] श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के मतानुसार, 'नवीन' अपनी प्रवृत्ति में तो प्रगतिशील हैं, किन्तु सिद्धान्त में नहीं।[४]

इस प्रकार 'नवीन' जी ने अपनी तपोभूत लेखनी तथा भावुक हृदय से हिन्दी-वाङ्मय को जो अक्षय धरोहर दी है; वह चिर अभिनन्दनीय है।

---

१. "उन्होंने जब अपनी कविता 'साकी'—प्याले दो प्याले में भरने वाली मेरी प्यास नहीं—लिखी थी; सो मैंने भी उस पर एक 'पैरोडी' लिखी थी जो 'जयाजी प्रताप' में ही छपी। इस हालावादी कविता के लिखने के पश्चात् ही जब वे एक बार ग्वालियर आये थे, तब मेरी उनसे इस कविता के विषय में बातचीत हुई थी। मैंने उनसे कहा था कि 'वास्तव में हालावाद के प्रवर्तक तो हिन्दी में आप हैं'। इस पर उन्होंने मुझसे अपनी असहमति प्रकट करते हुए, कहा था कि मैं 'हालावाद के प्रवर्तक होने का कोई दावा नहीं करता। इस वाद के प्रवर्तक होने से मुझे कौन बड़ा भारी श्रेय प्राप्त हो जायेगा ? साथ ही मैंने यह कविता 'वाद' के रूप में या उससे वशीभूत होकर नहीं लिखी, प्रत्युत् अपनी नैसर्गिक भावनाओं के कारण और मस्ती में ही लिखी थी'। मेरी उनसे यह चर्चा ग्वालियर के 'जयाजी प्रताप' कार्यालय में ही हुई थी।"—'जयाजी प्रताप' के भूतपूर्व सम्पादक और इन्दौर सम्भाग के वर्तमान राजस्व-आयुक्त श्री युधिष्ठिर भार्गव से हुई प्रत्यक्ष भेंट (दिनांक ११-१२-१९६१) में ज्ञात।

२. "और फिर, मैं यह भी नहीं जान पाया हूँ कि मैं कौन वादी हूँ। हमारे सौभाग्य से हमारे आलोचना-शास्त्र ने बड़ी उन्नति की है। परिश्रमी, अध्यवसायी, विद्वान् विचारकों ने वर्तमान हिन्दी-साहित्य में अनेकानेक वादों के दर्शन हमें कराये हैं। मुझ, जैसे अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाक या चक्षुरुन्मीलित यैःआलोचकैः महानुभावैः; तेभ्यः श्रीगुरवेभ्यो नमः। उन महानुभावों की आलोचना-तत्व-दीपिकाओं के प्रकाश में हम देख सके हैं कि हमारे काव्य-साहित्य में छायावाद है, मायावाद है, फ्रायडीय जायावाद है, रोमांचवाद है, पलायनवाद है, वर्ग-संघर्षोत्तेजक प्रगतिवाद है, पूंजीवादी-शोषण-समझौतावाद है, सामन्तवाद है, प्राकृतिक सूक्ष्म सौन्दर्यवाद है, प्रगति-प्रतिगति सीमान्तवाद है, तितली-रंग-झाँई वाद है, आध्यात्मिकवाद है, आदर्शवाद है, यथार्थतावाद है, और, और भी न जाने-क्या-वाद हैं। इन सब वादों की चलनी में मेरे गीत साफ छन जायेंगे, यह मैं जानता हूँ।"—'अपलक', भूमिका, पृष्ठ—ख।

३. "मेरा निवेदन है कि प्रगतिशीलता के नाम पर जहाँ इस प्रकार के नग्न रूप का नृत्य अपने राग-द्वेषादि मनोविकारों का ऐसा अचैल प्रदर्शन हो रहा हो, वहाँ साहित्य का वास्तविक मूल्यांकन कैसे हो सकता है ?"—'क्वासि', भूमिका, पृष्ठ ७।

४. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—'नया हिन्दी साहित्य', पृष्ठ १५०।

महत्वांकन

सामान्य अध्ययन—श्री दिनकर ने लिखा है कि "आपके क्रान्ति गान और आपके रस-गीत मरनेवाले नहीं हैं। उनके भीतर रूढ़ारूढ़ भारत के मन का ताप भरा हुआ है। उनके भीतर छायावाद-युग की वह कोमल किरण चमकती है जो एक अल्हड़, निर्भीक और अलमस्त कवि के निश्छल हृदय पर पड़ी थी; एक ऐसा कवि, जिसे बनाव-सिगार और पच्चीकशी के लिए अवकाश नहीं था; जो अपने उमड़ते हुए भावों से, रातोंरात मुक्त हो जाने को इसलिए अधीर होकर लिखता था कि सुबह फिर समरांगण की पुकार उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।"[१]

वास्तव में 'नवीन' जी के कवि-व्यक्तित्व में विभिन्न प्रवृत्तियों ने अपने आँखें खोली थी। स्वच्छन्दतावादी काव्य-वृत्तियों के युग में उनका कवि-जीवन अपना सूत्र पात पाता है। डॉ० केसरीनारायण शुक्ल के मतानुसार, "द्विवेदी-युग की आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के विरोध से कल्पना और अनुभूति को उत्तेजना मिली। यही स्वच्छन्दतावाद है। स्वच्छन्दतावाद प्रधानतया कल्पनामय मनोदृष्टि है।"[२] कवि के गीतिकाव्य-तत्व में छायावादी काव्य-पद्धति के प्रचुर उपादान प्राप्त होते हैं। एक दृष्टान्त पर्याप्त है—

मैं हूँ तन्मय तान-तरलता,
उत्कंठा की हूँ अविरलता,
अचल अनवरत नेह-ग्रन्थि की,
'मैं हूँ उलझी हुई सरलता'।[३]

तुलनात्मक अध्ययन—'नवीन' जी ने ४५ वर्ष तक काव्य साधना की। उन्होंने अधुनिक हिन्दी-काव्य के तीन युगों को पार किया। इस दृष्टिकोण से, वे अपने काव्य में, अपने समकालीनों से कई विभेद रखते हैं। उनकी, समकालीनों से तुलना करने पर, यह तथ्य प्रकट हो सकता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा 'नवीन' जी का काव्य, साम्य एवं वैषम्य के रूप प्रस्तुत करता है। दोनों ने ही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के कपाट खोले हैं। दोनों ने ही आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के लेख से प्रेरणा ग्रहण करके, उर्मिला की काव्यगत उपेक्षा का निवारण किया। दोनों ही महातमा गान्धी एवं आचार्य विनोबा भावे से प्रभावित हुए। दोनों ने ही महर्षि विनोबा को परिपक्व कृतियों के रूप में अपनी भावाञ्जलियाँ अर्पित की हैं।

इन सब साम्य के होते हुए भी, दोनों में वैषम्य अधिक हैं। गुप्त जी की राष्ट्रीय रचनाओं में जहाँ प्रसाद गुण तथा सादगी दृष्टिगोचर होती है, वहाँ 'नवीन' में ओज तथा प्रखरता। 'साकेत' में जो काव्यात्मक उत्कर्ष, मानवीय पक्षों की संवेदना, कलात्मक सौष्ठव तथा प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते हैं, उनका 'उर्मिला' में अभाव है। 'उर्मिला' में नवीन ने उसके चरित्र को जो विशदता, नूतन रेखाएँ एवं प्रमुखता प्रदान की हैं, वह साकेत

---

१. 'बट-पीपल', पृष्ठ ३५।

२. 'आधुनिक काव्य धारा', वर्तमान काव्य की भावना, वर्तमान युग, पृष्ठ २०७।

३. 'रश्मिरेखा', पृष्ठ ५०।

की सीमाओं में नहीं दिखाई पड़ती। साकेत ने जो ऐतिहासिक तथा महिमामय स्थान बनाया, वह 'उर्मिला' के भाग्य में ही नहीं लिखा था। गुप्त जी ने गान्धीवाद के व्यावहारिक पक्ष को अपनाया; परन्तु 'नवीन' जी ने गान्धीवाद का भावनामय रूप में आकलन किया, उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का उद्‌घाटन किया। गुप्त जी ने भूमिदान यज्ञ के व्यावहारिक पक्षों को बड़ी सरसता के साथ अपने काव्य में बाँधा है; परन्तु 'नवीन' जी ने उसके प्रवर्तक के व्यक्तित्व तथा सन्देशों को सांस्कृतिक मूल्यांकन की वाणी प्रदान की है।

गुप्त जी साधना के कवि हैं और 'नवीन' जी प्रतिभा के। दोनों के वैष्णव होते हुए भी, राम-भक्ति की मात्रा गुप्त जी में अधिक है; परन्तु 'नवीन' के काव्य पर वैष्णव प्रभाव गुप्त जी से अंकित हुए हैं। गुप्त जी में मर्यादा का प्राधान्य है, 'नवीन' जी में मस्ती का। दोनों ने ही सांस्कृतिक भूमिका को काफी महत्व प्रदान किया है; परन्तु उसका जितना संगठित तथा समाजोपयोगी उद्‌घाटन गुप्त जी कर सके, 'नवीन' जी से सम्भव नहीं था। 'नवीन' जी ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया, जबकि गुप्त जी की सहानुभूति ही इस दिशा में थी। एक ने अपने कर्मों से और दूसरे ने अपनी लेखनी से राष्ट्रीय-संग्राम में डटकर हिस्सा लिया। 'नवीन' जी में ये दोनों रूप ही घुल-मिल गये हैं। राजनैतिक व्यस्तता ने 'नवीन' के मार्ग में काफी रोड़े अटकाये; अन्यथा उनका काव्य भी यथा-समय गुप्त जी के साहित्य की भाँति समादृत होता। हिन्दी काव्य के इतिहास में जो स्थान गुप्त जी ने बनाया; वह 'नवीन' जी नहीं बना पाये। कवि का राष्ट्रीय संघर्ष ही इसमें प्रमुख कार्यकारी रहा।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी, 'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' जी—बहुत कुछ अंशों में एक ही नौका में संतरण करते हैं। दोनों ही राष्ट्रीय संघर्ष में जूझे, कारागृह की यात्राएँ कीं, घर-गृहस्थी के सुख को तिलांजलि दी और सरस्वती के साथ ही साथ भारतमाता की भी पूर्ण अर्चना की। दोनों ने राष्ट्रवाद को सर-माथे पर लिया।

मस्ती ने हिन्दी को दो प्रतिभाएँ दीं—एक 'एक भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी, दूसरा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'। माखनलाल चतुर्वेदी, गन्धीजी द्वारा दी गई नई संग्राम की आध्यात्मिकता के रंग में रंग गए; जोगी के गीत सुनाने लगे और साक्षात्कृत साधक की दिनोदिन उदात्तता की ओर बढ़ चले। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने संग्राम को संग्राम माना, यौवन को आवेश का अधिष्ठान माना। ऐसा व्यक्ति विद्रोही कहलाता है क्योंकि उसका रक्त, सीमाओं को नहीं जानता, बन्धनों को नहीं मानता। दोनों कवि बहुत दूर तक रूमानी थे, पर एक का रूमान उसी जमाने में (और आज भी) दुरूह हो जाता था तो दूसरे का स्पष्ट चित्र सामने रखता था। एक की प्यास तृप्ति की प्रकृति-धर्मानुगामिनी थी तो दूसरे की प्रचण्ड बुभुक्षा। 'नवीन' ने प्रकट मानव का रूप धारण कर, जब प्रेम की रागिनी छेड़ी या विद्रोह का शंख फूंका तो वह महाभारत के श्रीकृष्ण की भाँति नर और नारायण की एकात्मकता पा गये।[1]

डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "भाव-चित्रण में एक 'भारतीय आत्मा' सिद्धहस्त हैं। इसी आदर्श का पालन 'नवीन' ने भी किया था किन्तु उनमें

---

१. 'राष्ट्रवाणी', सम्पादकीय, स्वर्गीय 'नवीन' जी, जून १९६०, पृष्ठ २-३।

रहस्यवाद की अपेक्षा भावावेश का प्राधान्य है। साधारण शब्दों में जैसे ज्वालामुखी का अग्निप्रवाह है।"[1] उक्त दोनों समीक्षकों ने दोनों की ही भाषा को ऊबड़-खाबड़ बताया है।[2]

'एक भारतीय आत्मा' का राष्ट्रवाद जहाँ वस्तुपरक एवं रहस्यमय है, वहाँ 'नवीन' का भावपरक। चतुर्वेदी जी में 'नवीन' का ओज उतने अंशों में प्राप्त नहीं। राष्ट्रीय प्रतीकों की जितनी योजना चतुर्वेदी जी ने की; उतनी 'नवीन' ने नहीं। 'नवीन' का कवि चिर सरस तथा सुगम्य बना रहा, परन्तु चतुर्वेदी जी में दुरूहता की मात्रा अधिक है। 'नवीन की अपेक्षा चतुर्वेदी जी अधिक सूक्ति-प्रधान हैं। दोनों के गीत सुन्दर हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी लिखा है कि "उनके (एक भारतीय आत्मा के) मुक्तकों में प्रगीतात्मक सौष्ठव रहता है, जो साधारणत: सूक्ति-प्रिय कवियों में नहीं देखा जाता। यही बात 'नवीन' जी के सम्बन्ध में भी लागू होती है।"[3]

चतुर्वेदी जी की अपेक्षा 'नवीन' में प्रगीतात्मक सौन्दर्य अधिक है। संगीतमयता तथा उसके शास्त्रोक्त आधार को जितना 'नवीन' ने ग्रहण एवं प्रस्तुत किया; उतना 'एक भारतीय आत्मा' ने नहीं। दोनों में वैष्णव-संस्कार हैं, परन्तु 'नवीन' में ये संस्कार अधिक उभर कर आये हैं। 'नवीन' का कवि, सदा-सर्वदा स्पष्ट तथा प्राय: सरल रहा है; परन्तु चतुर्वेदी जी का कवि, कई स्थानों पर उलझ गया है। उर्दू के प्रभाव को दोनों ने ग्रहण किया; परन्तु यह प्रभाव 'नवीन' की अपेक्षा 'एक भारतीय आत्मा' पर अधिक परखा जा सकता है। 'नवीन' अपने जीवन के उत्तरकाल में इस प्रभाव से मुक्त हो गये थे; परन्तु 'एक भारतीय आत्मा' पर यह आज भी विद्यमान है। संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के प्रति जितनी निष्ठा तथा रूझान 'नवीन' में दृष्टिगोचर होती है; उतनी चतुर्वेदी जी में नहीं। 'एक भारतीय आत्मा' का काव्य 'वक्रोक्ति' का काव्य है, जबकि 'नवीन' का 'रूपक' का।

काव्य-प्रकर्ष एवं अनुपात के दृष्टिकोण से, 'नवीन' चतुर्वेदी जी से आगे ही दीखते हैं। दोनों को ही प्रकाशन-प्रमाद से स्नेह रहा; इसलिए दोनों की ही कृतियाँ समय पर प्रकाशित नहीं हुईं। 'एक भारतीय आत्मा' का कवि-व्यक्तित्व सिर्फ मुक्तककार ही बना रहा, जबकि 'नवीन' मुक्तककार के अतिरिक्त, प्रबन्धकार भी थे। चतुर्वेदी जी ने प्रबन्धकाव्य का सृजन नहीं किया; जबकि 'नवीन' ने महाकाव्य तथा खण्डकाव्य का निर्माण किया। गणेश जी दोनों के ही इष्टदेव थे; परन्तु जहाँ 'एक भारतीय आत्मा' की अभिव्यक्ति स्फुट मुक्तक-कविताओं तक ही सीमित रह गई, वहाँ 'नवीन' ने खण्ड-काव्य के संगठित कृति के रूप में उनके व्यक्तित्व की गरिमा का आकलन किया।

'एक भारतीय आत्मा' की अपेक्षा 'नवीन' का कवि-व्यक्तित्व तथा काव्य-शैलियाँ, अधिक व्यापक एवं प्रशस्त हैं। 'उर्मिला' की महती उद्भावना तथा 'प्राणार्पण' की सी भाषा का चतुर्वेदी जी में नितान्त अभाव है। दोनों की प्रसिद्धि का आधार राष्ट्रीयता है, परन्तु दोनों

---

१. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', निवेदन, पृष्ठ १०-११।

२. वही, पृष्ठ ३६९।

३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', विज्ञप्ति, पृष्ठ ४।

में ही प्रेमपद्य के उद्घाटन का प्राधान्य है। पद्य के अतिरिक्त, दोनों ने ही गद्य में भी काम किया। दोनों ही निबन्धकार, कहानीकार, गद्य-काव्य लेखक तथा सुन्दर वक्ता रहे हैं। 'नवीन' की अपेक्षा 'एक भारतीय आत्मा' का गद्य, अधिक बहुमुखी तथा प्रशस्त है। 'एक भारतीय आत्मा' नाटककार भी हैं। 'एक भारतीय आत्मा' की वक्तृत्व-कला जहाँ अलंकारमयी पीयूष-वाणी रही है; 'वहाँ नवीन' में ओज, सिंहनाद तथा प्रभावोत्पादकता की। एक में कवित्व की प्रधानता है; दूसरे में वीरत्व की। 'नवीन' जी जितने समय तक परिस्थितियों में तथा राजनीति में सक्रिय रहे; उतने चतुर्वेदी जी नहीं।

इस प्रकार राष्ट्रीय-संस्कृति काव्य के इन दो अग्रदूतों के कवि-व्यक्तित्व में साम्य के साथ वैषम्य भी हैं। दोनों ने पत्रकार के आदर्श भी प्रस्तुत किये। 'प्रभा' तथा 'प्रताप' का दोनों ने ही सम्पादन किया। जहाँ 'एक भारतीय आत्मा' ने 'प्रभा' का प्रवर्तन किया ; वहाँ 'नवीन' जी ने उसका उन्नयन। 'प्रताप' में 'नवीन' को ही अधिक ख्याति मिली। 'नवीन' जी द्वारा लिखे अग्रलेखों को जितना अन्य पत्रों में दायित्व प्राप्त हुआ; उतना चतुर्वेदी जी को नहीं।

दोनों ही राष्ट्रीय-कवियों ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की श्रीवृद्धि की है। 'नवीन' में 'एक भारतीय आत्मा' की अपेक्षा राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक पक्ष को अधिक विस्तार मिला है। 'नवीन' की अपेक्षा 'एक भारतीय आत्मा' में सामयिकता अधिक है। 'नवीन' की सांस्कृतिक भूमिका ने उन्हें सामयिक नहीं बनने दिया। 'एक भारतीय आत्मा' के राष्ट्रीय-काव्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन घटनाओं की सूचनाएँ आवश्यक हैं; परन्तु 'नवीन' के लिए आवश्यक होती हुई भी उतनी आवश्यक नही हैं। दोनों ही कवियों ने तिलक तथा गणेश जी से प्रभावित होकर भी, क्रान्ति व विद्रोह के अनुपात में अन्तर उपस्थित कर दिया है। 'नवीन' का कवि इस दिशा में अधिक ग्राह्यशक्ति सम्पन्न है। 'नवीन' समाज तथा अर्थ की समस्याओं की ओर भी मुड़े परन्तु 'एक भारतीय आत्मा' ने इस दिशा में, अपना अधिक विस्तार नहीं किया। इस प्रकार 'एक भारतीय आत्मा' में राष्ट्रवाद की सघनता की प्रधानता है ; जबकि 'नवीन' में उसके ओज तथा सांस्कृतिक-पक्ष की।

सियारामशरण गुप्त एवं 'नवीन' जी, दोनों ही ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा में अवगाहन किया। गुप्त जी ने उसके सांस्कृतिक पार्श्व को सघनता प्रदान की ; 'नवीन' ने राष्ट्रीय रूप को। इस धारा के अन्तर्गत 'नवीन' को गुप्त जी की अपेक्षा अधिक ख्याति प्राप्त हुई। दोनों ही महात्मा गान्धी, गणेशशंकर विद्यार्थी तथा विनोबा से प्रभावित हुए। दोनों ने ही प्रबन्ध एवं मुक्तक-काव्य का सृजन किया। 'उर्मिला' जैसी कृति गुप्त-साहित्य में दुर्लभ है।

गुप्त जी के विषय में डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, "हिन्दी में गान्धी जी के तत्व-चिन्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति केवल एक ही कवि में मिलती है और वास्तव में वही एक ऐसा कवि है जो अपनी सात्विक भावना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना सका है।"[१] 'नवीन' में गान्धीवाद का भाव-पक्ष ही आ पाया है। गणेश जी पर लिखित दोनों के खण्डकाव्यों में, बलिदान की महिमा तथा चरित्र-काव्य का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। 'आत्मोत्सर्ग' में

---

१. डॉ० नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ ३६।

जहाँ घटना-विस्तार, प्रबन्धात्मकता तथा सात्विकता के दर्शन होते हैं, वहाँ 'प्राणार्पण' में उदात्तता, ओज, व्यक्तित्व की महिमा तथा संस्कृत-निष्ठ भाषा की सम्पदा मिली है। गुप्त जी तथा नवीन जी, दोनों ने अपने काव्य में करुणा को काफी महत्व प्रदान किया है; परन्तु 'नवीन' जी में यह करुणा विद्रोह का भी रूप धारण कर लेती है। गुप्त जी की कला जहाँ चिन्तनमय है; वहाँ 'नवीन' की कला गीतिमय। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता के क्षेत्र में, भले ही काव्य-साधना गुप्त जी में अधिक हो, परन्तु 'नवीन' का प्रभाव तथा ओज, अविस्मरणीय है।

'दिनकर' और 'नवीन' में क्रान्ति, राष्ट्रीयता, ओज तथा अनल-गान का स्वर प्रायः एक समान है। भाव-पक्ष में दोनों समकक्ष हैं; परन्तु कला-पक्ष 'दिनकर' का अधिक प्रौढ़ है। डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा के मतानुसार, "'दिनकर' के काव्य में 'नवीन' से अधिक ज्वाला है। वे क्रान्ति का विविध रूपों में आह्वान करते हैं।"[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "रामधारीसिंह 'दिनकर' का काव्य इन दोनों ('नवीन' तथा 'एक भारतीय आत्मा') से बहुत पीछे का है; किन्तु परिमाण में और काव्य-प्रकर्ष में भी कदाचित् उनसे आगे बढ़ गया है। यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि कवि 'नवीन' और माखनलाल, देश-सेवा के व्यावहारिक कार्य और उससे उत्पन्न होनेवाली अशान्तियों में व्यस्त रहते हैं, जबकि 'दिनकर' का रास्ता अधिक सुगम और निरापद है।"[2] 'दिनकर' की 'उर्वशी' को जो सम्मान थोड़े ही समय में मिल गया; वह 'उर्मिला' को अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इन सब तथ्यों के रहते हुए भी, 'दिनकर' को 'नवीन' ने अपनी दिशा में प्रभावित किया है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान तथा 'नवीन' का काव्य भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धरातल पर आ मिलता है। सुभद्रा जी में जहाँ सरलता तथा प्रसाद गुण की प्रधानता है; वहाँ 'नवीन' में ओज तथा आवेग की। 'विप्लव-गायन' तथा 'पराजय-गीत' के समान, सुभद्रा जी की 'झाँसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा हो वसन्त' को भी ख्याति मिली; यद्यपि दोनों की ख्याति में 'नवीन' का पक्ष अग्रणी है। दिनकर के समान, सुभद्रा जी भी कवि से प्रभावित हुई हैं।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के अग्रणी कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सियारामशरण गुप्त, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य के साथ 'नवीन' के काव्य की तुलना कर लेने के पश्चात्, हमें छायावादी काव्य-धारा की ओर भी उन्मुख होना चाहिये; जिसकी 'बृहत्त्रयी' में प्रसाद, निराला और पन्त के नाम आते हैं।

'प्रसाद' तथा 'नवीन', दोनों ने सांस्कृतिक विषयों को अपने काव्य का विषय बनाया और प्रेम तथा यौवन के गीत गाये। सांस्कृतिक विषयों को जितना विस्तार तथा शालीनता के साथ प्रसाद उद्घाटित कर सके हैं; वह 'नवीन' के वश की बात नहीं थी। 'प्रसाद' पर राष्ट्रवाद का परोक्ष प्रभाव पड़ा और उनके काव्य की वह पृष्ठभूमि बनकर आया है। 'नवीन' की ख्याति का ही वह मूलाधार है।

---

१. डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा—'हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव', पृष्ठ २३६।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ४।

'प्रसाद' तथा 'नवीन' के प्रेम-काव्य तथा शृंगारिक रचनाओं में समानता होते हुए भी, विषमता अत्यधिक है। दोनों के असफल प्रणय-आख्यान ने इस सूत्र को जन्म दिया। दोनों ने ही यौवन-पक्ष को मांसलता प्रदान की। दोनों ने ही प्रेम की परिणति अध्यात्म में की है। दोनों ने ही विरहानुभूति का काव्यमय शृंगार किया है। 'प्रसाद' ने जितनी काव्य-प्रतिभा, माधुर्य तथा प्रभविष्णुता इस दिशा में उद्घाटित की; वह 'नवीन' में नहीं है। 'आँसू' जैसी कृति 'नवीन' के काव्य में अनुपलब्ध है। दोनों के काव्य में प्रकृति-चित्रण एवं गीति-काव्य की प्रधानता है। इस दिशा में 'प्रसाद' का कला-पक्ष जितना परिमार्जित है; उतना 'नवीन' का नहीं। 'नवीन' ने शास्त्रीय संगीत के पक्ष को जितनी प्रमुखता तथा अभिव्यक्ति प्रदान की है; वह 'प्रसाद' में, उतने अनुपात में, नहीं आ पाई है।

मुक्तककार के अतिरिक्त, दोनों का प्रबन्धकार भी साहित्य की श्री-वृद्धि करता है। 'कामायनी' की भाषा के दर्शन कहीं-कहीं 'उर्मिला' में भी हो जाते हैं। दोनों ही भौतिकतावाद, विज्ञान, नवयुग की चेतना आदि के प्रभावों को अपने महाकाव्यों में व्यक्त करते हैं। गान्धीवादी चेतना ने दोनों महाकाव्यों को प्रभावित किया है; परन्तु 'नवीन' को अधिक। दोनों ही पार्थिववाद और विज्ञान का विरोध करते हैं और बुद्धि की अपेक्षा जीवन में श्रद्धा के महत्व को निरूपित करते हैं। 'कामायनी'-सा महाकाव्यत्व, विराट् जीवन-दर्शन तथा प्रौढ़ कवित्व-शक्ति, 'उर्मिला' में अनुपलब्ध है। दोनों की मौलिकता वन्दनीय है।

'निराला' तथा 'नवीन' दोनों ही, कुछ क्षेत्रों में काफी निकट दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों ने ही गरल तथा उपेक्षा-पान किया है। दोनों का ही व्यक्तित्व तथा पौरुष, अनिर्वचनीय है। दोनों की ही मस्ती, फक्कड़ता तथा निरालापन अपनी धरोहर है। दोनों ने ही विद्रोह को अपने जीवन तथा काव्य में मूर्तिमान् किया। दोनों की ही कविताओं में ओज तथा तेजस्विता के दर्शन होते हैं। दोनों ने ही मुक्तक तथा प्रबन्ध-काव्यों की सृष्टि की है। दोनों ने ही संस्कारों के रूप में अपने संगीत-प्रेम को प्राप्त किया। दोनों के संगीतज्ञ होने तथा गायक के रूप में, दो मत नहीं हो सकते।

'निराला' की भाषा का ओज 'नवीन' में है। 'नवीन' के अनल-गायन की ओजस्विता का अनुपात 'निराला' के गीतों में नहीं मिलता। 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' की भाषा, 'नवीन' के 'प्राणार्पण' में देखी जा सकती है। फिर भी 'निराला' भाषा की दिशा में 'नवीन' से आगे बढ़ गये हैं।

इन दोनों कवियों में यह अन्तर दृष्टिगोचर होता है कि 'निराला' साहित्यिक परम्पराओं व शैलियों के अधिक समीप थे। भाषा तथा छन्दों में अधिक परिमार्जन एवं लयात्मकता थी। 'नवीन' के छन्दों में उतने ही प्रखर वेग के होते हुए भी, उनकी शब्दावली में अनेक स्थानों पर अप्रचलित प्रयोग भी मिलते हैं; यद्यपि ये अपने विशेष-व्यक्तित्व के परिचायक हैं। 'निराला' जी ने हिन्दी काव्य को जितना प्रभावित किया; उतना 'नवीन' ने नहीं। दोनों ने ही प्रायः एक साथ ही काव्य-लेखन प्रारम्भ किया था; परन्तु 'निराला' ने जो साहित्यिक तथा परम्परागत कड़ी में अपना स्थान बनाया, उससे 'नवीन' अपने को दूर ही रखे रहे।

पन्त तथा 'नवीन' ने प्रेम, प्रकृति तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति के क्षेत्र में कार्य सम्पन्न किये हैं। 'नवीन' जी पन्त से वरिष्ठ थे। दोनों ने ही गीति-काव्य की कड़ियाँ खोलीं;

परन्तु 'पन्त'-सा माधुर्य तथा गीति-काव्य-शिल्प 'नवीन' के काव्य में अपनी उपस्थिति नहीं पाता।

उपरिलिखित कवियों के अतिरिक्त, 'नवीन' के काव्य की तुलना महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा एवं बच्चन से की जा सकती है।

'नवीन' तथा 'महादेवी वर्मा' के गीति-काव्य, विरहानुभूति एवं करुणावाद की स्थिति समान होते हुए भी, पर्याप्त वैषम्यमयी हैं। 'नवीन' के रहस्यवाद में दार्शनिकता का उतना अधिक रूप नहीं दिखाई देता; जितना महादेवी जी का। 'नवीन' का शास्त्रीय संगीत पक्ष अधिक पुष्ट है, परन्तु महादेवी वर्मा का काव्य-सौरस्य उच्चतर है। करुणा की छाया से दोनों का काव्य अभिभूत है।

'नवीन तथा भगवतीचरण वर्मा की क्रान्ति, मस्ती तथा मधुवादी प्रवृत्तियों में सादृश्य है। क्रान्ति तथा मस्ती के क्षेत्र में 'नवीन' आगे हैं। दोनों ने आर्थिक विषमताओं की ओर भी ध्यान दिया है। 'नवीन' में जहाँ आक्रोश है, वहाँ भगवती बाबू में प्रभविष्णुता। 'नवीन' के मधुवाद का वर्मा जी तथा बच्चन ने काफी सम्बर्द्धन किया।

'नवीन' तथा 'बच्चन' का क्षेत्र प्रेम तथा मधुवाद में समान दिखाई पड़ने पर भी असमान है। 'बच्चन' के प्रणय में नवीनता है। 'नवीन' ने जहाँ भावना को प्रधानता दी, वहाँ बच्चन ने उसके प्रभाव-पक्ष को। 'नवीन' के मधुवाद के बीज को वट-वृक्ष में परिणत करने का श्रेय 'बच्चन' को ही है। हिन्दी के आधुनिक कवियों के अतिरिक्त, 'नवीन' की तुलना अन्य भाषा के कवियों से भी की जा सकती है।

'नवीन' तथा माइकेल मधुसूदन दत्त में सांस्कृतिक तथा वैचारिक असमानता होते हुए भी, 'उर्मिला' में वही मौलिकता, नूतन दृष्टिकोण तथा अभिनव प्रसंगोद्भावनाएँ हैं जो कि 'मेघनाद-वध' में उपलब्ध हैं। 'नवीन' ने विधानात्मक पार्श्व को अपनी उर्वर कल्पना-शक्ति से परिपक्व किया और मधुसूदन ने निधानात्मक पक्ष को उद्घाटित करके, हमारी अन्ध-श्रद्धा तथा विवेक-बुद्धि को सजग, सतर्क तथा सन्तुलित कर दिया।

अंग्रेजी कवियों में, 'नवीन' 'शेली' के निकट हैं। शेली का ओज, काव्य-प्रवाह तथा प्रभविष्णुता 'नवीन' के राष्ट्रीय-काव्य में प्राप्त हैं। शेली की क्रान्तिमयी वाणी का वर्चस्व, 'नवीन' का भी पाथेय रहा है। शेली की कविता 'ओड टू वेस्ट विण्ड' की काव्य-गति तथा तेजस्विता 'नवीन' में है। शेली के 'शोकाकुल विचारों को प्रकट करने वाले गीत' उर्मिला के विषाद में देखे जा सकते हैं। 'नवीन' जी किसी भी रोमेण्टिक कवि के द्वारा विशेष रूप से प्रभावित नहीं हुए, क्योंकि उनकी काव्य-परम्परा तथा चिन्तन का स्रोत, अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवि न होकर, एक ओर कालिदास, भवभूति, कबीर, सूर व मीरा है तो दूसरी ओर उपनिषद्, वेदान्त एवं गीता।

'नवीन' और 'बायरन', के प्रेमकाव्य एक-दूसरे के निकट आते हैं। बायरन की प्रणयानुभूति का लालित्य 'नवीन' में है। बायरन[1] के ही समान 'नवीन' ने अपनी समस्त

---

१. सभ्य और शिक्षित लोग अपने अपराधों पर आवरण डाले रहते हैं, किन्तु बायरन अपनी सभी भावनाओं का चित्रण अपनी कविताओं में करता था। यही उसकी विशेषता थी।

भावनाओं का चित्रण अपनी कविताओं में किया, उन पर कोई आवरण नहीं डाला। उसके समान,[1] जीवन के निराशा पक्ष को 'नवीन' ने भी अपने अन्तिम वर्षों की कविताओं में व्यक्त की है। इसके बावजूद भी, 'नवीन' की निराशा से आशा उद्भूत होती दृष्टिगोचर होती है। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में 'बायरन' ने लिखा था—

मेरे दिन पीली पत्तियों में हैं,
प्रेम के पुष्प और फल सब नष्ट हो चुके हैं,
पश्चात्ताप, घाव और व्यथा ही,
एक मात्र मेरी है।[2]

'नवीन' जी ने भी अपनी एक अन्तिम कविता में लिखा था—

लो बीत चली वासन्ती बेला जीवन की,
धूमिल हो चली ललित-स्मृति कल्पित फूलों की,
विहँसा होगा उद्यान कभी मन-आँगन में—
अब तो है स्मृति केवल जीवन की भूलों की।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'नवीन' के कवि-व्यक्तित्व के निकट हिन्दी में जहाँ 'एक भारतीय आत्मा' तथा 'निराला' दिखाई देते हैं; वहाँ अँग्रेजी में 'शेली' एवं 'बायरन'। वास्तव में उनका कवि-व्यक्तित्व अपनी उपमा आप ही बना है।

'नवीन' जी में प्रसाद और पन्त के सदृश्य काव्य-प्रतिभा थी। गुप्त जी के समान प्रबन्ध की उद्भावना शक्ति से वे आपूर्ण थे। चतुर्वेदी जी की राष्ट्रवादी सघनता को वे अपने अन्तःकरण में महसूस करते थे। महादेवी की रहस्यानुभूति की प्रीति उनके अन्तस् को प्रदीप्त कर चुकी थी। डॉ० देवराज ने उनकी भाषा-शैली में निराला का ओज पाया है।[4] श्री सूर्यनारायण व्यास ने उनमें, पन्तजी की कोमलता, प्रसाद जी की प्रौढ़ता और निराला जी की दार्शनिकता देखी है।[5]

विशिष्ट अध्ययन—इन सब तथ्यों के होते हुए भी, कवि के मार्ग में जो राजनीति आई; उसने हमारे कवि की साधना, कला-क्षमता तथा साहित्यिक परम्परा को निगल लिया। यदि वे प्रसाद व पन्त के समान, सिर्फ साहित्य की सेवा ही में रत रहते; तो आज हमारे समीक्षकों को, कवियों में महत्व तथा स्थान-निर्धारण के बँटवारे में, 'नवीन' को काफी अंश प्रदान करना पड़ता।

---

१. "बायरन की मानसिक वेदनाओं का परिचय उसकी कविताओं में मिलता है। जीवन के पिछले समय, वह अपने जीवन से हताश हो गया था।"—श्री विनोदशंकर व्यास, 'योरोपीय साहित्यकार', पृष्ठ १५६-५७ और १५८।

२. श्री विनोदशंकर व्यास—'योरोपीय साहित्यकार', पृष्ठ १५८।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', ३ जुलाई, १९६०, पृष्ठ २३।

४. डॉ० देवराज—'युग-चेतना', जनवरी, १९५५, पृष्ठ ७०।

५. 'वीणा', कविवर नवीन की कविता, मार्च, १९३४, पृष्ठ ४०५।

वे मूलतः कवि थे और यही उनकी बाल्य-अभिलाषा रही थी।[1] साहित्यवालों ने उनको राजनीति का आदमी समझा और राजनीति ने, उनकी कवि सुलभ भावुकता के छिद्र को पकड़कर, अपने क्षेत्र में असफल प्रमाणित कर दिया। इन दोनों के मध्य, हमारा कवि झूलता ही रह गया। नियति की इस विचित्र तथा निर्मम लीला का क्रूर पात्र, इस ढंग से, शायद ही कोई बन पाया हो। श्री भगवतीचरण वर्मा ने उनके जीवन-काल में लिखा था कि "यह नवीन का दुर्भाग्य रहा है कि उनका जीवन राजनीति की धारा में बिखर गया। भावना-प्रधान प्राणी होने के नाते देश-कल्याण और जन-हित पर उन्होंने अपने आपको समर्पित कर दिया।...नवीन में प्रबन्ध-काव्य लिखने की क्षमता हैं, पर उनकी, अपने को बटोर कर बैठने की क्षमता को राजनीति खा गई।...'नवीन' का व्यक्तित्व मुख्यतः कलाकार का व्यक्तित्व है, वह राजनीतिज्ञ का व्यक्तित्व नहीं है।"[2]

अब राजनीति के बादल छँट चुके हैं, श्रद्धांजलि के कुसुम मुकुलित हो गये हैं और उनका काव्य-व्यक्तित्व अपने तेजस्वी रूप में मुस्करा रहा है।

मूल्यांकन

युग-द्रष्टा एवं युग-स्रष्टा—'नवीन' जी के काव्य के मूल्य तथा महत्ता की कहानी, उनके युग-प्रेरक कवि-व्यक्तित्व में अन्तर्हित है। उन्होंने अपने सम-सामयिक कवियों और काव्य-प्रवाह को गहराई से प्रभावित किया है। उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एवं प्रभाव-सूत्र, हमारी आधुनिक-काव्य की विविध गतिविधियों में झाँक उठा है।

भगवतीचरण वर्मा,[3] 'दिनकर',[4] बच्चन,[5] अंचल[6] आदि कवियों ने उनके प्रभाव की

---

१. "मेरी तो जीवन में केवल एक अभिरुचि, कवि बनने की रही है और ईश्वर ने मेरी इस अभिरुचि को पूर्णरूप से विकसित भी किया।"—('नवीन') 'युगारम्भ', कार्तिक, सं० २०११, पृष्ठ १०।

२. श्री भगवतीचरण वर्मा—'आजकल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिसम्बर, १९५७, पृष्ठ ७-८ तथा १६।

३. "पर सत्य तो यह है कि मैं नवीन को ही अपने से सबल और समर्थ एक मात्र कवि मानता हूँ। न जाने क्यों, नवीन की कविताओं के प्रति मुझमें प्रारम्भ से ही ईर्ष्या तक पहुँचने वाली रुचि रही है। उनमें भावना का जो मुक्त प्रवाह रहा है, उनमें ओजस्विता की जो प्रखरता रही है, उसने मुझे सदा से प्रभावित किया।...'नवीन' की कविताओं से मैं कितना प्रभावित हुआ हूँ, यह बतलाना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।"—'आजकल', दिसम्बर, १९५७, पृष्ठ ८९।

४. 'वट-पीपल', पृष्ठ ३५।

५. 'नए-पुराने झरोखे', पृष्ठ २१।

६. "विदेशी कवियों में मुझे शेली, कीट्स और बायरन के अतिरिक्त ओडेन, स्पेण्डर और डेलुई की कविताएँ प्रभावित करती हैं। हिन्दी कवियों में 'निराला' और 'नवीन' ने मुझे सबसे अधिक प्रेरणा दी है।"—श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल—'मैं इनसे मिला', पृष्ठ १७६।

स्पष्टोक्ति की है। उनके क्रान्ति-गीतों ने भारत के वायुमण्डल को ही नहीं, प्रत्युत् हिन्दी की राष्ट्रीय-वीणा को भी झंकृत कर दिया था; जिसके फलस्वरूप उसमें से अनेक स्वर-झंकृतियों ने जन्म लिया। मधुवाद की प्रतिक्रिया में विजयवाद आया।[1] श्री 'अंचल' ने अपनी एक कविता में 'नवीन' के युग-प्रेरक कवि-व्यक्तित्व की अभिव्यंजना की है—

हैं होठ-होठ पर नाच रहे तेरे उच्छ्वास सुरभि-श्यामल,
हैं कण्ठ-कण्ठ में गूँज रहो तेरे गीतों की ध्वनि-चंचल।
है वक्ष-वक्ष में धधक रही तेरे विस्फोटों की ज्वाला,
ओ रे कुर्बानी के गायक! प्रति युवक तुम्हें पढ़ मतवाला।
कितनों के बन्धन तोड़ चुकी हुंकार तुम्हारी सेनानी!
अक्षय-यौवन का सागर प्रति अंजलि में हो देते दानी!
यह कैसी लासानी ममता, है मृत्यु काँपती जिसके डर,
है पड़ी तुम्हारी कवितायें मेरी शैया के इधर-उधर।।[2]

डॉ० बच्चन ने सर्वथा ठीक लिखा है कि " 'नवीन' जी के अपनी कविताओं की थोड़ी-सी उपेक्षा करने के कारण हिन्दी कविता का पिछले ४०-४५ वर्ष का इतिहास ही अधूरा और विकृत हो गया है।......छायावाद के आध्यात्मिक आतंक में इस उल्लास की ('नवीन' जी के उल्लास) कद्र नहीं की गई, पर इन पंक्तियों को, इन भावनाओं ने कितनों की मनो-ग्रन्थियों को खोला होगा। छायावाद-युग को इसके उल्लास, समाज में इसकी आवश्यकता तथा काव्य में इसकी अभिव्यक्ति को समझना होगा। तब हम देखेंगे कि प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी के साथ हमें नवीन को भी खड़ा करना होगा। बिना नवीन की काव्य-देन को समझे, छायावादी-युग की व्याख्या अधूरी होगी और एक शक्तिशाली कवि के प्रति अन्याय भी होगा।"[3]

युग-पुरुष की अर्चना—'नवीन' जी के साहित्य में स्थान-निर्धारण एवं काव्य के प्रमुख पक्ष के विषय में विभिन्न धारणाएँ एवं अनेक मत हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा के मतानुसार, बालकृष्ण शर्मा हिन्दी के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं।[4] श्री 'किशोर' के कथनानुसार, हमारे नवीन, मिलिन्द, प्रेमी, हृदय आदि ऐसे कवि हैं, जिन्हें हिन्दी के उच्चकोटि के कवियों में सहर्ष-स्थान दिया जा सकता है।[5] श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने लिखा है कि स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी काव्याकाश के अनमोल नक्षत्र हैं।[6] डॉ० सावित्री सिन्हा ने लिखा है कि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्र के यौवन के कवि हैं—उनकी कविता में दर्शन के भव्य संस्कार, यौवन के ओज और रस में पग कर एक विचित्र काव्यास्वाद की सृष्टि करते हैं।[7] श्री सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि

---

१. 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर', पृष्ठ ३२९-३३० तथा ३५७-३५८।
२. 'विक्रम', कविवर 'नवीन' के प्रति, अक्तूबर, १९४२, मुखपृष्ठ।
३. 'नये-पुराने झरोखे', पृष्ठ ३७।
४. 'सरस्वती', जून, १९६०, पृष्ठ ३९४।
५. 'निकुंज', मुझे भी कुछ कहना है, पृष्ठ ४।
६. आकाशवाणी-वार्ता, इन्दौर, प्रसारण-तिथि ५-१२-१९६०।
७. 'भारतीय वाङ्मय', हिन्दी, पृष्ठ ५९६।

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओं में राष्ट्र के प्रति एक विशेष आह्वान की भावना का सन्निवेश रहा है। उन्होंने हमें भाव और कर्म, दोनों ही दृष्टि से एक नूतन सन्देश प्रदान किया है। व्यक्तित्व को दवाकर रखने की अपेक्षा वह उसके प्रकटीकरण में अधिक विश्वास रखते हैं।[1] 'नवीन' जी को दिनाङ्क ८ दिसम्बर, १९५९ ई० को, दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रदत्त 'अभिनन्दनपत्र' में कहा गया था कि साहित्य में आपकी प्रसिद्धि एक ऐसे कवि की प्रसिद्धि रही है जो प्रचारक नहीं, शुद्ध कलाकार है; जो मनुष्यों को सुधारने के लिए नहीं, उन्हें लोकोत्तर आनन्द देने को गान करता है; जिसने शरीर, समाज को और मन, अपनी कल्पना को दे रखा है; जो केवल दृश्य ही नहीं, अदृश्य वास्तविकता का भी विश्वासी है, अतएव, उसका सारा क्रिया-कलाप उस एक दिशा की ओर उन्मुख है जिस दिशा में 'क्वासि ?' की चिरन्तर टेर गूँज रही है।[2]

'नवीन' जी के कवि-व्यक्तित्व के मूल्यांकन में भी विभिन्न मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं। डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने उन्हें सन्त-कवियों की परम्परा की कोटि में रखा है[3] तो श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा उन्हें भारत की सर्वश्रेष्ठ भक्ति-परम्परा का आधुनिक कवि मानते हैं।[4]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि श्री बालकृष्ण शर्मा, श्री 'भारतीय आत्मा' और श्री 'दिनकर', वीर रस के स्वदेश-प्रेमी कवि हैं।[5] डॉ० नगेन्द्र ने उन्हें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियों के अन्तर्गत रखा है।[6] उन्होने लिखा है कि 'नवीन' जी न छायावादी हैं और न स्वच्छन्दतावादी, उनके काव्य का प्रमुख स्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक ही है।[7] डॉ० सावित्री सिन्हा,[8] श्री हंसराज अग्रवाल,[9] श्री सुरेशचन्द्र गुप्त,[10] श्री देवीशरण रस्तोगी,[11] प्रो० अनन्त,[12] डॉ० इन्द्रनाथ मदान,[13] श्री नलिनविलोचन शर्मा[14] आदि समीक्षक उन्हें इसी श्रेणी का कवि मानते हैं।

---

१. 'काव्यानुशीलन', हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ २४६।

२. 'अभिनन्दन-पत्र', दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिनांक ८-१२-१९५९ ई०।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', २० मई, १९६२, पृष्ठ ८।

४. 'वीणा', अगस्त-सितम्बर, १९६०, पृष्ठ ५२२।

५. 'हिन्दी साहित्य--बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ३।

६. 'आधुनिक हिन्दी-काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ १९-३६।

७. डॉ० नगेन्द्र का मुझे लिखित (२५-८-१९६२ का) पत्र।

८. 'भारतीय वाङ्मय', पृष्ठ ५६९।

९. 'हिन्दी साहित्य की परम्परा', पृष्ठ ५७०।

१०. 'हिन्दी काव्यानुशीलन', पृष्ठ २४६।

११. 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', पृष्ठ ३२२।

१२. 'हिन्दी साहित्य के सहस्र वर्ष', पृष्ठ ३००।

१३. 'काव्य-सरोवर', पृष्ठ ९।

१४. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली'।

कतिपय समीक्षकों ने 'नवीन' जी को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के अन्तर्गत— 'माखनलाल चतुर्वेदी स्कूल' में परिगणित किया है। डॉ० प्रभाकर माचवे माखनलाल जी को उनका 'काव्यगुरु' मानते हैं।[१] डॉ० धर्मवीर भारती ने भी 'नवीन' जी को इसी 'स्कूल' का कवि माना है।[२] श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि सब मिलाकर 'नवीन' माखनलाल स्कूल के एक अतिरंजित यौवन हैं। यही कवि अपने गीतिकाव्य में कुछ कोमल-सरस होकर भी आया है, मानो कठिन तह में मर्मर संगीत बजा हो।[३] श्री सत्यनारायण त्रिवेदी ने लिखा है कि कुछ लोग नवीन जी को छायावादी कवियों की श्रेणी में रखते हैं। इस कथन की सत्यता पर विचार करना यहाँ उचित नहीं प्रतीत होता। किन्तु हमें ऐसा लगता है कि 'नवीन' जी सभी 'वादों' और 'स्कूलों' से ऊपर थे अथवा, दूसरे शब्दों में वह स्वयं अपने आपही में एक 'वाद' थे। यदि उन्हें किसी के साथ रखा भी जा सकता है तो वह माखनलाल जी चतुर्वेदी हैं, न कि प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी और बच्चन।[४]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'नवीन' जी को 'स्वच्छन्द-धारा' के अन्तर्गत रखा है।[५] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि छायावाद की मूलधारा से पृथक् किन्तु विश्वासों में सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी फक्कड़ कवि बालकृष्ण शर्मा की उद्दाम आवेगों वाली कविताएँ इसी काल में लिखी गईं।[६] डॉ० भगीरथ मिश्र के मतानुसार, काव्य के क्षेत्र में नवीन जी स्वच्छन्दतावादी हैं—भाषा, छन्द, भाव, सबमें ये स्वच्छन्दता के प्रेमी हैं।[७] श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ ने भी उनके स्वच्छन्दतावादी भावों की चर्चा की है।[८]

डॉ० मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि 'नवीन' जी का काव्य प्रायः रोमांसवादी है। इसी के साथ उनके रहस्यवादी गीत भी संग्रथित हैं और राष्ट्रवाद तथा बलिदान से सम्बन्धित कविताएँ भी।[९] उन्होंने रोमांस को ही वीरत्व का प्रेरक एवं रहस्यवाद के रूप में परिवर्तित पाया है।[१०] 'नवीन' जी के रोमेण्टिक रूप की चर्चा डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय[११] एवं श्री शिवदान सिंह चौहन ने भी की है।[१२]

---

१. 'व्यक्ति और वाङ्मय', पृष्ठ ११३-११४।
२. 'आलोचना', अप्रैल, १९५२, पृष्ठ ८८।
३. 'संचारिणी', पृष्ठ २१४-२१५।
४. साप्ताहिक 'आज', २९ मई, १९६०, पृष्ठ ९।
५. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ७२१।
६. 'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ ४७६।
७. 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास', पृष्ठ २२०।
८. 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास', पृष्ठ ३०७।
९. डॉ० मुंशीराम शर्मा, कानपुर का मुझे लिखित (दिनांक ६-९-६२ का) पत्र।
१०. वही, (२२-८-१९६२ का) पत्र।
११. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ २०८।
१२. 'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष', पृष्ठ १०२।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने उन्हें छायावादी कविता करने में कुशल माना है।[1] डॉ० बच्चन ने लिखा है कि "जिसे हम छायावाद-युग कहते हैं, उसमें नवीन जी का प्रमुख स्थान है। उन्हें अलग कर छायावाद की जितनी व्याख्या की गई है, मेरी समझ में, वह अपूर्ण है। नवीन जी की रचनाओं के प्रकाश में आने पर यह बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी।"[2] डॉ० रामअवध द्विवेदी[3] तथा श्री भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी[4] ने भी क्रमशः छायावाद-युग एवं 'प्रसाद प्रवर्तित सुकुमार-युग' में उनका विवेचन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'नवीन' जी के कवि-व्यक्तित्व के स्थान को विभिन्न वादों, स्कूलों एवं काव्य-धाराओं में रखा गया है।

वास्तव में उन्हें सन्त या भक्ति-परम्परा का कवि मानना उचित नहीं। उन्होंने न तो किसी को अपना 'काव्य गुरु' ही बनाया[5] और न उन्हें 'माखनलाल स्कूल' में ही रखा जा सकता है। कवि के मस्ती भरे, राष्ट्रवादी एवं प्रखर यौवन के विस्तार को एक 'स्कूल' के यौवन की सीमाओं में परिमित कर देना, कवि तथा समग्र युग के साथ न्याय नहीं करना है। हिन्दी के नीलकण्ठ, प्रणयानुभूति के ऋतुराज एवं काव्य के यौवन को कौन बाँध सका है ? यदि हम आजकल 'स्कूल' की भाषा में ही बहुत अधिक सोचने लग गये हों और वनराज को पिञ्जर-बद्ध करने पर उतावले हो गये हों, तो इससे श्रेयस्कर यही रहेगा कि हम 'गणेश-स्कूल' का ही उन्हें सदस्य बना दें जिसके, इस तथाकथित—'माखनलाल स्कूल' के प्रवर्तक भी, सदस्य हैं और इन दोनों के अतिरिक्त, 'सनेही' जी, भगवतीचरण वर्मा आदि भी इसकी राष्ट्रीय काव्य धारा-परम्परा की सीमाओं में आ जाते हैं। इस दिशा में, मेरा निवेदन है कि 'नवीन' जी मूलतः स्वच्छन्दतावादी कवि हैं, परन्तु उनके काव्य का 'प्रमुख-स्तर' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक ही माना जा सकता है।

वस्तुतः 'नवीन' जी किसी मतवाद के क़ायल नहीं थे।[6] डॉ० बच्चन ने लिखा है कि " 'नवीन' जो को वाद के बन्धन में बाँधना ठीक नहीं होगा, वे जीवन से बँधे थे।"[7] वे युग-धर्म

---

१. 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास', पृष्ठ ४६७।

२. 'नए पुराने झरोखे', पृष्ठ ३७।

३. Hindi Literature, page 204-205.

४. 'हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार', पृष्ठ ३४३।

५. "मेरे ऊपर किसी व्यक्ति-विशेष का प्रभाव नहीं, जिससे कि हमें साहित्यिक प्रेरणा प्राप्त हुई हो या प्रोत्साहन मिला हो—('नवीन')।"—'युगारम्भ', कार्तिक, सं० २०११, पृष्ठ १०।

६. "मेरा सदा से यह विचार रहा है और आज भी है कि साहित्य किसी वाद-विशेष की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता।"—'साहित्य समीक्षांजलि', भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है, पृष्ठ १८६।

७. डॉ हरिवंशराय 'बच्चन' का मुझे लिखित (दिनांक २८-८-१९६२ का) पत्र।

से प्रभावित होकर भी, उससे ऊपर उठ गये थे।"[१] वे युग के होते हुए भी, युग-युग के बन गये।

कवि-व्यक्तित्व के मूल्यांकन की दिशा में, नियति के क्रूर-व्यंग्य के मूलतत्व की भी अवहेलना नहीं की जा सकती, जिसके एक पार्श्व का उद्घाटन श्री भगवतीचरण वर्मा ने, कवि की मृत्यु के पूर्व और दूसरे पार्श्व का विश्लेषण डॉ० बच्चन ने, कवि की मृत्यु के पश्चात् किया है।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने लिखा था कि "मैं अपने ईर्द-गिर्द देखता हूँ, हर जगह 'महान् कवि' और 'महान् कलाकार' भरे पड़े हैं। उन महान् कवियों और कलाकारों में अपने को महान् कहलवाने की कला है। उनके आगे-पीछे 'महान् आलोचक' घूमते हैं और वे 'महान् आलोचक' उनके समर्थन का बल प्राप्त किये हुए हैं। बहुत कुछ लिखा जा रहा है उनके ऊपर, एक अजीब संघर्ष है, कशमकश है। और इन संघर्षों के बीच, इन छोटी-छोटी ईर्ष्याओं के बीच, कुछ अपने में खोये हुए, बच्चों की तरह सरल दुनिया के दुःख-सुख पर अपने अस्तित्व को बिखेरते हुए, अपनी क्षमता और प्रतिभा से निपट अनजान कलाकार भी मौजूद हैं। ऐसे कलाकारों में मैं पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को सर्वप्रथम मानता हूँ।"[२]

इसी मूल-सूत्र के दूसरे पक्ष की कड़ियाँ खोलते और कविवर 'नवीन' का मूल्यांकन करते हुए, डॉ० बच्चन ने लिखा है कि "खड़ीबोली हिन्दी कविता का इतिहास बीसवीं शताब्दी की आयु का इतिहास है। इतने कम समय में जिन कवियों की साधना ने हिन्दी कविता को भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं की समकक्ष ही नहीं, विश्व कविता के मानचित्र में एक सम्मान्य स्थान की अधिकारिणी बनाया, उनमें प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है—प्रकाशन की ओर से उदासीन न रहते तो इस श्रेणी में 'नवीन' का भी स्थान होता।"[३]

अन्त में, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के सारगर्भित तथा सन्तुलित शब्दों में हम कह सकते हैं कि " 'नवीन' जी का हमारे साहित्य में सम्मानित स्थान है। उनकी कुछ महत्तर रचनाएँ उन्हें सच्चे कवि के आसन पर बैठा देती हैं।"[४]

राष्ट्रवाद के वैतालिक, प्रेम-भक्ति काव्य के रसखान, दार्शनिक काव्य के नचिकेता एवं फक्कड़ता के इस महाकवि 'नवीन' की काव्य-वाणी, इतिहास के मानसरोवर को सदा-सर्वदा तरंगायित करती रहेगी और युग-युगान्तरों का शृंगार। अपराजेय योद्धा, 'राष्ट्रभाषा' के

---

१. 'साहित्य, युग-धर्म के प्रभाव से न तो अस्पष्ट रहता ही है और न रखा जा ही सकता है। फिर भी साहित्य में, युग-धर्म का वही तत्व श्रेयस्कर है, जो शाश्वत, सनातन चिर कल्याणकर होता है। मानव एक युग का नहीं, युग-युग का, कल्पों एवं मन्वन्तरों का संचित सांस्कृतिक प्रतीक है। अतः साहित्यकारों को युग-विशेष के क्षणिक आवेश से पूर्णतः अभिभूत नहीं होना चाहिये ('नवीन')।"—'साहित्य-समीक्षांजलि', पृष्ठ १८६।

२, 'आजकल', दिसम्बर, १९५७, पृष्ठ ७।

३. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'यह मतवाला—निराला', ११ फरवरी, १९६२, 'निराला' स्मृति-अंक, पृष्ठ ६।

४. 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ३।

'दधीचि,' एवं युग-निर्माता 'नवीन' का यह वन्दनीय रूप, हमारे वाङ्मय की शाश्वत धरोहर है—

मैं देवदूत, मैं अग्निदूत हूँ मनःपूत चिर बलिदानी,
नवजीवन का उन्नायक मैं अंगारों की मेरी वाणी;
मम नासा-रन्ध्रों से निकली मेरे निःश्वासों की ज्वाला,
मेरी वाणी में वज्र घोष, मेरे नयनों में उजियाला।[1]

---

१. 'पुष्करिणी', 'कस्त्वं ? कोऽहम् ?', पृष्ठ ३०८।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

कविता-तालिका

विशेष—प्रस्तुत-परिशिष्ट में नवीन जी की समग्र उपलब्ध कविताओं की, उनकी रचना-तिथि के क्रमानुसार, सूची प्रस्तुत की जा रही है। जिन कविताओं पर लेखन-तिथि अनुपलब्ध है, वहाँ अनुमानित तिथि (अ०) दी गई है।

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
१	सूर्य के प्रति	उज्जैन	सन् १९१५	अप्रकाशित-असगृहीत
२	आवाहन	कानपुर	सन् १९१८ (अ०)	प्रथम प्रकाशित कविता, असंगृहीत
३	तारा	,,	,,	असंगृहीत
४	दर्शन	,,	,,	,,
५	विरहाकुल	,,	,,	,,
६	संयोग	,,	सन् १९१९ (अ०)	,,
७	मुरली की तान	,,	,,	,,
८	कुतुबमीनार	,,	सन् १९२० (अ०)	,,
९	मिलन	,,	,,	,,
१०	आन्तरिक तन्त्री	,,	,,	,,
११	मेरा—कहाँ ?	,,	,,	,,
१२	दीप-निर्वाण	,,	,,	,,
१३	समर्पण	,,	,,	,,
१४	स्वागत	,,	,,	,,
१५	सूखे आँसू	,,	सन्१९२१ (अ०)	कुंकुम
१६	आकुल की उपासना	,,	,,	यौवन-मदिरा
१७	सन्ध्या के प्रकाश में	,,	,,	असंगृहीत
१८	आँख मिचौनी	,,	,,	,,
१९	स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी की मृत्यु पर	,,	,,	,,
२०	गृहागत	,,	,,	,,
२१	विदा	,,	सन् १९२२ (अ०)	,,
२२	करुणाकोर की भीख	,,	,,	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
२३	विस्मृता उर्मिला	लखनऊ जेल	नवम्बर, दिसम्बर, १६२२	उर्मिला
२४	जाने पर	कानपुर	सन् १६२३ (अ०)	कुंकुम
२५	आगमन की चाह	,,	,,	यौवन-मदिरा
२६	तुम्हारे सामने	,,	,,	,,
२७	कुली के चरणों में	,,	,,	असंगृहीत
२८	सावधान	,,	१६२३ (अ०)	कुंकुम
२६	रक्षा-बन्धन	,,	,,	,,
३०	द्वन्द्व-युद्ध	,,	सन् १६२४ (अ०)	कुंकुम
३१	उफान	,,	,,	असंगृहीत
३२	चिता के फूल : आँसू	,,	,,	,,
३३	लेजिस्लेटिव कौंसिल में हिन्दी	,,	,,	,,
३४	विप्लव-गायन	,,	१६२५ (अ०)	कुंकुम
३५	आकांक्षे	,,	,,	,,
३६	पान	,,	,,	,,
३७	अये	,,	,,	,,
३८	दीपमाला	,,	,,	,,
३६	ओझल झाँकी	,,	१६२५ (अ०)	,,
४०	ऋषि दयानन्द की पुण्य स्मृति में	,,	,,	,,
४१	बड़े दादा	,,	,,	,,
४२	विश्वव्यापी	,,	सन् १६२६ (अ०)	यौवन-मदिरा
४३	तुम्हारी छवि	,,	,,	असंगृहीत
४४	परीक्षा के प्रश्न-पत्र	,,	,,	कुंकुम
४५	घुन	,,	,,	यौवन-मदिरा
४६	आवृत्त	,,	,,	,,
४७	जाह्नवी के प्रति	,,	१६२७ (अ०)	कुंकुम
४८	एक कहानी	,,	,,	,,
४६	वैताल तान	,,	,,	,,
५०	अपूर्ण यात्रा	,,	,,	,,
५१	सखी	,,	१६२८ (अ०)	,,
५२	बेबसी	,,	,,	,,
५३	अंचल का छोर	,,	,,	,,
५४	हिय की कसक	,,	,,	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
५५	प्रतिबन्ध	कानपुर	१९२९ (अ०)	कुंकुम
५६	यांचासोवा	,,	,,	,,
५७	झरोखे की रानी	,,	,,	,,
५८	पराजय-गीत	,,	,,	,,
५९	मृदंग-चंग	,,	,,	,,
६०	निमन्त्रण	,,	,,	,,
६१	दीपावली	,,	,,	,,
६२	निगोड़ी हवा	,,	,,	,,
६३	प्रलाप	,,	,,	,,
६४	गीत	,,	,,	,,
६५	तुम्हारा पनघट	,,	,,	,,
६६	दो पत्र	,,	,,	,,
६७	स्वगत	,,	,,	,,
६८	व्याकुल	गाजीपुर जेल	२ जनवरी, १९३०	यौवन-मदिरा
६९	तन मन से तुमको प्यार किया है	कानपुर	६ नवम्बर, १९३०	प्रलयंकर
७०	पराजय	,,	नवम्बर, १९३०	यौवन-मदिरा
७१	चिन्ता	गाजीपुर जेल	५-१२-१९३०	,,
७२	उस पार	,,	६-१२-३०	,,
७३	नैना	,,	१०-१२-३०	नवीन-दोहावली
७४	नहीं-नहीं	,,	,,	यौवन-मदिरा
७५	दिग्-भ्रम	,,	१२-१२-१९३०	क्वासि
७६	इकतारा	,,	,,	,,
७७	हिंडोला	,,	१३-१२-३०	रश्मिरेखा
७८	नैया	,,	,,	नवीन-दोहावली
७९	मनोरथ	,,	१५-१२-१९३०	यौवन-मदिरा
८०	अनुरोध	,,	१८-१२-३०	नवीन-दोहावली
८१	उस दिन	,,	,,	यौवन-मदिरा
८२	निमन्त्रण	,,	१९-१२-३०	,,
८३	सिगार	,,	,,	,,
८४	मनुहार	,,	२२-१२-३०	क्वासि
८५	आँसू के प्रति	,,	२३-१२-३०	यौवन-मदिरा
८६	दुपहरी	,,	२४-१२-३०	,,
८७	खोज	,,	३०-१२-३०	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
८८	१९३० के वर्ष की समाप्ति पर	गाजीपुर जेल	३१-१२-६०	प्रलयंकर
८९	शिखर पर	,,	१९३० (अ०)	कुंकुम
९०	प्रजल्पना	कानपुर	,,	,,
९१	यौवन-मदिरा	,,	,,	,,
९२	प्रश्नोत्तर	,,	,,	यौवन-मदिरा
९३	पत्र-व्यवहार	,,	,,	,,
९४	उन्माद	,,	,,	,,
९५	प्यासा	गाजीपुर जेल	१-१-३१	,,
९६	नाविक	,,	८-१-३१	,,
९७	खिचड़ी	,,	९-१-३१	प्रलयंकर
९८	घड़ियाल बजाने वाले	,,	१०-१-३१	यौवन-मदिरा
९९	विस्मृत तान	,,	,,	क्वासि
१००	मेरी टूटी गाड़ी	,,	११-१-३१	यौवन-मदिरा
१०१	वह बाँकी झाँकी	,,	१२-१-३१	,,
१०२	रुनझुन	,,	१५-१-३१	,,
१०३	माँग	,,	,,	,,
१०४	वेणी	,,	२०-१-३१	,,
१०५	वसंत-बोध	,,	६-२-३१	,,
१०६	वायु से	,,	८-२-३१	क्वासि
१०७	माघ-मेघ	,,	११-२-३१	,,
१०८	संशय-दैन्य	,,	२०-२-३१	नवीन-दोहावली
१०९	रस फुहियाँ	,,	२४-२-३१	रश्मिरेखा
११०	घाव	,,	,,	नवीन-दोहावली
१११	फागुन	,,	२६-२-३१	क्वासि
११२	कुण्डल	,,	३-३-३१	यौवन-मदिरा
११३	पन्थ	,,	९-३-६१	,,
११४	किमिदम्	कानपुर	७-४-३१	,,
११५	टूटी वीणा	रेल पथ, कानपुर-चिरगाँव	४-६-३९	,,
११६	सो जाने दो	रेलपथ, वनारस-कानपुर	२४-८-३१	,,
११७	फिर से	कानपुर	१०-६-३१	,,
११८	एक घूँट	रेलपथ इटावा-इलाहाबाद	२५-९-३१	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
११९	जोगी	रेलपथ—इटावा-कानपुर	२८-९-३१	रश्मिरेखा
१२०	ऊजड़ धाम	कानपुर	७-१०-३१	यौवन-मदिरा
१२१	आओ	,,	१२-१०-३१	,,
१२२	अरी मानस की मदिर	,,	१३-१०-३१	रश्मिरेखा
१२३	हिलोर	,,	,,	,,
१२४	तड़पन	,,	२७-१०-३१	यौवन-मदिरा
१२५	बढ़े चलो	,,	७-११-३१	,,
१२६	दिवाली	,,	९-११-३१	,,
१२७	प्रथम प्यार का चुम्बन	,,	२१-११-३१	रश्मिरेखा
१२८	भिक्षा	,,	२४-११-३१	क्वासि
१२९	विष-पान	,,	७-१२-३१	प्रलयंकर
१३०	क्रान्ति	,,	२०-१२-३१	,,
१३१	पत्र	गाजीपुर जेल	सन् १९३१	यौवन-मदिरा
१३२	साकी	कानपुर	,,	रश्मिरेखा
१३३	असमर्थ	,,	,,	यौवन-मदिरा
१३४	प्रज्वलित वह्नि	,,	,,	,,
१३५	नारी	,,	,,	,,
१३६	अकुलाहट	,,	सन् १९३२ (अ०)	असंगृहीत
१३७	रुन झुन-झुन	फैजाबाद जेल	,,	रश्मिरेखा
१३८	सखी की सुध	,,	,,	प्रलयंकर
१३९	मत तोड़ो गहरा सपना	,,	१०-८-३२	यौवन-मदिरा
१४०	डुबकी	,,	१२-८-३२	,,
१४१	हे क्षुरस्य धारा पथगामी	,,	२४-९-३२	प्रलयंकर
१४२	शरद् निशा	कानपुर	१४-१०-३२	यौवन-मदिरा
१४३	एक बार तो देख	फैजाबाद जेल	३१-१०-३२	प्रलयंकर
१४४	अपना मृदु गोपाल	,,	१-११-३२	,,
१४५	अज्ञान	,,	२४-११-३२	यौवन-मदिरा
१४६	अरे मुरली वाले	,,	,,	,,
१४७	पुकार	,,	२७-११-३२	,,
१४८	अरी धधक उठ	कानपुर	१९३२ (अ०)	,,
१४९	थकित प्रतीक्षा	,,	,,	,,
१५०	छेड़ो न	,,	,,	,,
१५१	प्रणय-लय	,,	,,	,,
१५२	पावस-पीड़ा	फैजाबाद जेल	सन् १९३३	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
१५३	सम्भाषण	अलीगढ़ जेल	सन् १६३३	प्रलयंकर
१५४	घनश्याम	बरेली जेल	२३-१-३३	यौवन-मदिरा
१५५	मंद-ज्योति	"	२६-१-३३	"
१५६	वसन्त	"	३०-१-३३	"
१५७	तीर-कमान	फैजाबाद जेल	२२-८-३३	"
१५८	भिखारी	"	२६-८-३३	अपलक
१५९	निमन्त्रण	कानपुर	सन् १६३४ (अ०)	असंगृहीत
१६०	श्रान्त	अलीगढ़ जेल	१७-१-३४	अपलक
१६१	छोटे की स्मृति में	"	२०-१-३४	यौवन-मदिरा
१६२	पथ-निरीक्षण	अलीगढ़ जेल	२१-१-३४	प्रलयंकर
१६३	मर-मर हम फिर उठ आए	"	२३-२-३४	सिरजन की ललकारें
१६४	भैरव नटनागर	कानपुर	८-४-३४	प्रलयंकर
१६५	संस्मरण वेदना	"	१८-११-३४	यौवन-मदिरा
१६६	भ्रमजाल	"	१६३४ (अ०)	"
१६७	बिन्दिया	"		"
१६८	निद्रोत्थित नेह	"		"
१६९	भोली सूरत	"		"
१७०	अग्निकायर सम्वाद	"		"
१७१	वसन्त बहार	"	६-२-१६३५	रश्मिरेखा
१७२	धरती के पूत	शाजापुर	२१-२-३५	प्रलयंकर
१७३	किरकिरी	कानपुर	अप्रैल, १६३५	यौवन-मदिरा
१७४	निवेदन	"	मई, १६३५	"
१७५	कह लेने दो	"	१४-५-३५	रश्मिरेखा
१७६	बुझ चली	"	जलाई ३५	यौवन-मदिरा
१७७	मिल गये जीवन-डगर में	रेलपथ कानपुर-इलाहाबाद	११-७-३५	रश्मिरेखा
१७८	काँव-काँव	झाँसी	अक्टूबर ३५	यौवन-मदिरा
१७९	गीत	रेलपथ कानपुर-इलाहाबाद	१२-११-३५	"
१८०	बन्धनों की स्वामिनी तुम	कानपुर	दिसम्बर ३५	"
१८१	क्या ?	"	१६३५ (अ०)	"
१८२	हियरार भेरी	"	"	"
१८३	मिलन साथ यह इतनी क्यों	"	"	"
१८४	एकाधित्य	"	"	"

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
१८५	कृपा-कोर	कानपुर	१९३५ (अ)	यौवन-मदिरा
१८६	पिला दो	,,	,,	,,
१८७	पार्थिव	,,	जनवरी ३६	,,
१८८	अस्तित्व मेरा	रेलपथ, इलाहाबाद-कानपुर	२४-१-३६	,,
१८९	अनल-गान	कानपुर	मार्च, ३६	प्रलयंकर
१९०	कमला नेहरू की स्मृति में	,,	१८-३-३६	क्वासि
१९१	आज हुलसे प्राण	,,	मई, ३६	अपलक
१९२	कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?	,,	,,	क्वासि
१९३	मान कैसा ?	,,	७-५-३६	,,
१९४	कुहू की बात	,,	,,	रश्मिरेखा
१९५	ओ प्रवासी	रेलपथ चिरगाँव-कानपुर	५-६-३६	क्वासि
१९६	दोलाचल वृत्ति	कानपुर	जुलाई, ३६	सिरजन की ललकारें
१९७	सजन मेरे सो रहे हैं	,,	अगस्त, ३६	क्वासि
१९८	क्वासि ?	,,	२८-११-३६	,,
१९९	सुन लो प्रिय	,,	३-४-३७	अपलक
२००	मधुर गान			
२०१	कस्त्वं ? कोऽहम् ?	,,	जुलाई, ३७	सिरजन की ललकारें
२०२	जूठे पत्ते	,,	३१-७-३७	प्रलयंकर
२०३	नरक विधान	,,	१४-९-३७	,,
२०४	नवीन-दोहावली	रेलपथ चिरगाँव-कानपुर-उरई	१८-११-३७	नवीन-दोहावली
२०५	जीवन डगरिया	कानपुर	१९३७ (अ०)	,,
२०६	कागज की नाव	,,	३०-९-३८	स्मरण-दीप
२०७	थकित	,,	,,	अपलक
२०८	सायुज्य याँचा	,,	३-१०-३८	,,
२०९	फिर वही	,,	६-१०-३८	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
२१०	मग में	कानपुर	८-१०-३८	अपलक
२११	दुई का सोच	,,	२३-१०-३८	स्मरण-दीप
२१२	मान छोड़ा	रेलपथ, हरदोई-कानपुर	१-१२-३८	क्वासि
२१३	हम अलख निरंजन के वंशज	कानपुर	२-१२-३८	प्रलयंकर
२१४	षट् सिंहावलोकन	,,	७-१२-३८	अपलक
२१५	अगणिता तव दीपमाला	,,	१०-१२-३८	क्वासि
२१६	प्रिय मैं आज भरी भारी सी	लखनऊ	१५-१२-३८	,,
२१७	अनिमन्त्रित	कानपुर	१६३८ (अ०)	,,
२१८	उड्डीयमान	,,	६-१-३६	,,
२१६	तुम युग-युग की पहिचानी सी	,,	५-१२-३६	,,
२२०	स्वप्न मम बन आये साकार	,,	२०-४-३६	अपलक
२२१	गहन तमिस्रा की परिखा	बरेली जेल	२२-४-३६	प्रलयंकर
२२२	मेरे चाँद	रेलपथ कानपुर-उज्जैन	१-५-३६	अपलक
२२३	प्रिय ! लो डूब चुका है सूरज	कानपुर	२६-६-३६	रश्मिरेखा
२२४	मेघ-आगमन	,,	,,	क्वासि
२२५	डोले वालो	,,	,,	,,
२२६	पावस-पीड़ा	,,	१-७-३६	रश्मिरेखा
२२७	साज लेंगे जोग री	,,	२८-७-३६	,,
२२८	अभिशाप	,,	१-८-३६	क्वासि
२२६	वरं देहि	,,	६-८-३६	अपलक
२३०	आराइयाँ	लखनऊ	१५-८-३६	स्मरण-दीप
२३१	बहुरंगी	कानपुर	,,	,,
२३२	गंभीर भेद का भरम	,,	२७-८-३६	,,
२३३	कौन सा यह राग जागा	,,	,,	अपलक
२३४	सन्ध्या वन्धन	,,	२६-८-३६	रश्मिरेखा
२३५	प्रिय, जीवन-नद अपार	,,	१०-६-३६	क्वासि
२३६	विदेह	,,	,,	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
२३७	क्या न सुनोगे विनय हमारी	कानपुर	२१-१२-३९	अपलक
२३८	बयालीसवें वर्षान्त में	,,	२६-१२-३९	सिरजन की ललकारें
२३९	बस-बस, अब न मथो यह जीवन	,,	८-१-४०	अपलक
२४०	हम नूतन पिय पाए	रेलपथ लखनऊ-कानपुर	१७-२-४०	क्वासि
२४१	आये नुपूर के स्वन झन-झन	कानपुर	२१-३-४०	सिरजन की ललकारें
२४२	समा गई मादकता मन में	,,	२३-३-४०	अपलक
२४३	अस्थिर बने रहे तुम तारे	,,	,,	रश्मिरेखा
२४४	हम अनिकेतन	,,	१-४-४०	,,
२४५	विनय	,,	४-८-४०	स्मरण-दीप
२४६	फिर गूँजे नव स्वर प्रिय	,,	,,	क्वासि
२४७	ओ हिरनी की आँखोंवाली	,,	१८-८-४०	स्मरण-दीप
२४८	जग में महामृत्यु की फाँसी	नैनी जेल	३-७-४१	मृत्यु-धाम
२४९	चेतन भी मृण्मय है	,,	२-८-४१	,,
२५०	क्या है यह अन्धकार	,,	३-८-४१	,,
२५१	झाँक सके आर-पार	,,	८-८-४१	,,
२५२	मृत्यु-बन्ध	,,	९-८-४१	,,
२५३	क्या तुम जाग रहे हो प्रहरी	,,	१५-८-४१	,,
२५४	कैसा है मृत्यु-धाम	,,	२४-८-४१	,,
२५५	भाई, आज बजी शहनाई	,,	१-९-४१	,,
२५६	गहन सघन अन्धकार	,,	१-१०-४१	,,
२५७	सृजन झाँझ	,,	९-१०-४१	,,
२५८	अविरल चेतना की धार	,,	१६-१०-४१	,,
२५९	मरघट-घाट	,,	१९-१०-४१	,,
२६०	मिट गए हैं चित्र मेरे	कानपुर	१०-१२-४१	,,
२६१	प्रियतम, तब हम हर चरणों में	,,	२१-१२-४१	,,
२६२	यह प्याला मैं पी न सकूँगा	नैनी जेल	१९४१ (अ०)	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
२६३	पहेली	नैनी जेल	१६४१ (अ)	मृत्यु-धाम
२६४	हमारे साजन की अजब अदा	,,	,,	,,
२६५	कैसा मरण सन्देशा आया	,,	,,	,,
२६६	प्रश्नोत्तर	,,	,,	,,
२६७	ओ तुम प्राणों के बलिहारी	,,	,,	प्राणार्पण
२६८	नयन-निमन्त्रण	कानपुर	३-१-४२	स्मरण-दीप
२६९	मृतिका के गुड़ियों के गीत	,,	११-१-४२	,,
२७०	अब कब तक खोजेंगे साजन	,,	१३-१-४२	क्वासि
२७१	वे क्षण	,,	१६-१-४२	स्मरण-दीप
२७२	विचलित विश्वास	रेलपथ काशी से कानपुर	२६-१-४२	,,
२७३	तुम हो गए पराए	रेलपथ फफूँद से कानपुर	३१-१-४२	,,
२७४	हम परित्याग के आदी हैं	कानपुर	६-३-४२	,,
२७५	उपालम्भ	,,	४-५-४२	नवीन-दोहावली
२७६	पै न ढरै घनश्याम	,,	५-५-४२	,,
२७७	सखि वन-वन घन गरजे	,,	२५-६-४२	अपलक
२७८	हम तो ओस-बिन्दु सम ढरकें	,,	५-७-४२	क्वासि
२७९	कैसे निशि के सपने	,,	२५-७-४२	मृत्यु-धाम
२८०	नैशयाम कल्पमान	,,	३०-८-४२	क्वासि
२८१	तुम मेरी आँखों की पुतली	उन्नाव जेल	१२-६-४२	स्मरण-दीप
२८२	गरल पियो तुम, गरल पियो	,,	१-१०-४२	प्रलयंकर
२८३	अपलक-चमक भरो	,,	१३-१०-४२	अपलक
२८४	तुम इसे पहचानते हो	,,	११-११-४२	रश्मिरेखा
२८५	बिथा या हिय की बरनि न जात	,,	२-१२-४२	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
२८६	नयन स्मरण अम्बर में	उन्नाव जेल	४-१२-४२	रश्मिरेखा
२८७	कलिका इक बबूल पर फली	,,	१०-१२-४२	क्वासि
२८८	ठिठुरे हैं निकल प्राण	,,	३१-१२-४२	रश्मिरेखा
२८९	उड़ चला	कानपुर	१९४२ (अ०)	क्वासि
२९०	पिंजर-बद्ध सिंह उवाच	,,	,,	प्रलयंकर
२९१	गड़गड़ाहट गगन भर में	,,	,,	,,
२९२	फिर वही	,,	,,	स्मरण-दीप
२९३	विस्मरण	उन्नाव जेल	३-१-४३	अपलक
२९४	आ जाओ प्रिय, साकार बने	,,	१९-१-४३	,,
२९५	बिन्दु सिन्धु छोड़ चली	,,	२२-१-४३	,,
२९६	प्रतीक्षा	,,	२३-१-४३	नवीन-दोहावली
२९७	प्रिय मम मन आज श्रान्त	,,	३०-१-४३	क्वासि
२९८	मेरे परिपन्थी	,,	६-२-४३	रश्मिरेखा
२९९	ओ सदियों में आनेवाले	,,	२-३-४३	प्रलयंकर
३००	दिन पर दिन बीत चले	,,	४-३-४३	क्वासि
३०१	राग-विराग	,,	५-३-४३	नवीन-दोहावली
३०२	अनवास	,,	६-३-४३	,,
३०३	प्यार बना मेरा अभिशाप	,,	१८-३-४३	स्मरण-दीप
३०४	हमारी क्या होली क्या फाग	,,	२१-३-४३	रश्मिरेखा
३०५	नयनन नीर भरे	,,	२२-३-४३	अपलक
३०६	प्राणधन, मेरी कौन बिसात ?	,,	२७-३-४३	,,
३०७	आ जा, रानी विस्मृति आ जा	,,	२८-३-४३	रश्मिरेखा
३०८	अब यह रोना धोना क्या	,,	२९-३-४३	स्मरण-दीप
३०९	मत मुँहमोड़, अरे बेदर्दी सखे	,,	५-४-४३	रश्मिरेखा
३१०	निराशा क्यों हिय मथित करे	,,	,,	अपलक
३११	तुम नहि जानत हो	,,	८-४-४३	रश्मिरेखा
३१२	मेरे अम्बर में निपट अंधेरा छाया	,,	,,	स्मरण-दीप
३१३	तू मत कूके कोयलिया	उन्नाव जेल	८-४-४३	रश्मिरेखा
३१४	सखि सूना सब संसार हुआ	,,	९-४-४३	सिरजन की ललकारें
३१५	घन गर्जन क्षण	,,	,,	अपलक
३१६	इति श्री	,,	१०-४-४३	,,
३१७	तरुवर आज हुए अनुरागी	,,	११-४-४३	रश्मिरेखा

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	शेष
३१८	विद्रोही	उन्नाव जेल	१२-४-४३	प्रलयंकर
३१६	गरजे मेरे सागर पहाड़	,,	२२-४-४३	,,
३२०	मेरे साथी अज्ञात नाम	बरेली जेल	३०-५-४३	,,
३२१	रोको, हे, रोको	,,	३१-५-४३	स्मरण-दीप
३२२	क्या परवश, डगमग पग मानव	,,	८-६-४३	प्रलयंकर
३२३	घूँट हलाहल	,,	११-६-४३	,,
३२४	वर्षा लोके	,,	१३-६-४३	रश्मिरेखा
३२५	ऐसा क्यों हमें अधिकार	,,	१८-६-४३	प्रलयंकर
३२६	यह है विप्लव का पथ भाई	,,	२३-६-४२	,,
३२७	धूमिल तव चित्र, प्राण	,,	१०-७-४३	रश्मिरेखा
३२८	ये आए ! ये आए	,,	१७-७-४३	प्रलयंकर
३२६	सुनो सुनो ओ सोने वालो !	,,	२६-७-४३	,,
३३०	ओ मजदूर, किसान उठो	,,	,,	,,
३३१	धन्य सभी रूसी जनगण	,,	४-८-४३	,,
३३२	आकांक्षा का शव	,,	८-८-४३	स्मरण-दीप
३३३	तुम चिरकाल हँसो फूलो	,,	६-८-४३	रश्मिरेखा
३३४	अंगारों की झड़ियाँ	,,	१३-८-४३	स्मरण-दीप
३३५	कारा में सातवीं रक्षा पूर्णिमा	,,	१५-८-४३	प्रलयंकर
३३६	यह है द्वापर, यह है द्वापर	,,	२४-८-४३	सिरजन की ललकारें
३३७	हंसिनि उड़ि अकाश	,,	२५-८-४३	नवीन-दोहावली
३३८	है निज वश तन, पूर्ण स्ववश मन	,,	५-६-४३	सिरजन की ललकारें
३३६	तुम निःसाधन	,,	६-६-४३	नवीन-दोहावली
३४०	मानव की क्या अन्तिम गति-विधि	,,	८-६-४३	सिरजन की ललकारें
३४१	पिंजर-बद्ध नाहर	,,	६-६-४३	नवीन-दोहावली
३४२	राजेश्वर मानव	,,	१४-६-४३	सिरजन की ललकारें
३४३	धधक उठो अब, ओ	,,	२८-६-४३	,,
३४४	वैश्वानर	,,		
३४५	लो यह नाता टूट रहा है	,,	८-१०-४३	स्मरण-दीप
३४६	व्यवहारवादिता	,,	७-११-४३	सिरजन की ललकारें

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
३४७	विहँस उठो, प्रियतम तुम	बरेली जेल	१८-११-४३	रश्मिरेखा
३४८	आई यह अरुणा	,,	२०-११-४३	,,
३४९	सुकुमारी			
३५०	क्यों उलझे मन	,,	२३-११-४३	,,
३५१	तिमिर भार	,,	२४-११-४३	अपलक
३५२	यह रहस्य उद्घाटन रत मन	,,	५-१२-४३	सिरजन की ललकारें
३५३	यह प्रवास आयास	,,	६-१२-४३	नवीन-दोहावली
३५४	मरुथल का मृग	,,	,,	क्वासि
३५५	पाती	,,	७-१२-४३	,,
३५६	४६ वें वर्षान्त के दिन	,,	८-१२-४३	अपलक
३५७	अस्तित्व नाव	,,	९-१२-४३	,,
३५८	प्राण, तुम्हारी हँसी लजीली	,,	१०-१२-४३	रश्मिरेखा
३५९	मैं तुमको निज गीत सुनाऊँ	,,	११-१२-४३	,,
३६०	भीग रही है मेरी रात	,,	१२-१२-४३	,,
३६१	क्या है तव नयनों के पुर में	,,	१३-१२-४३	,,
३६२	मेरे प्रियतम, मेरे मंगल	,,	१४-१२-४३	,,
३६३	नरक के कीड़े	,,	१७-१२-४३	प्रलयंकर
३६४	तुम सत्-चित् अवतार, रे	,,	१९-१२-४३	क्वासि
३६५	सजन करो संतत रस-वर्षण	,,	२०-१२-४३	अपलक
३६६	प्राण तुम्हारे कर के कंकण	,,	२१-१२-४३	,,
३६७	गीत	,,	,,	प्रलयंकर
३६८	प्रिय, तुममय कर दो मम तन-मन	,,	२३-१२-४३	अपलक
३६९	क्यों थके तन, क्यों थके मन ?	,,	,,	सिरजन की ललकारें
३७०	खोलें ये बन्द-द्वार	,,	२५-१२-४३	क्वासि
३७१	मेरे अतीत की ज्योति लहर	,,	२८-१२-४३	प्रलयंकर
३७२	हम हैं मस्त फकीर	,,	२९-१२-४३	अपलक
३७३	क्या मैं कर सकता हूँ कृत को अकृत	,,	३०-१२-४३	सिरजन की ललकारें
३७४	मेरे प्राणाधिक	,,	१-१-१९४४	नवीन-दोहावली
३७५	कार्य्य कारण शून्यता	,,	८-१-४४	सिरजन की ललकारें

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
३७६	ढरक ढरक मत गिर, रे दृग जल	बरेली जेल	६-१-४४	अपकल
३७७	सतत-प्रवासी	,,	११-१-४४	नवीन-दोहावली
३७८	मस्त रहो	,,	,,	प्रलयंकर
३७९	कवि जी	,,	१२-१-४४	स्मरण-दीप
३८०	उड़ गए तुम निमिष भर में	,,	१५-१-४४	अपलक
३८१	बज उठा असह लय का	,,	१६-१-४४	क्वासि
३८२	गागर में सागर	,,	२१-१-४४	स्मरण-दीप
३८३	चेतन-वीणा	,,	२२-१-४४	क्वासि
३८४	भूल-भुलैया	,,	३०-१-४४	सिरजन की ललकारें
३८५	प्रिय बल दो	,,	१-२-४४	,,
३८६	सजल नेह-घन-भीर रहे	,,	२-२-४४	रश्मिरेखा
३८७	तुम मेरी लोल लहर	,,	६-२-४४	क्वासि
३८८	हिम में सदा चाँदनी छाई	,,	८-२-४४	रश्मिरेखा
३८९	अरे तुम हो काल के भी काल	,,	९-२-४४	प्रलयंकर
३९०	जीवन-प्रवाह	,,	१३-२-४४	सिरजन की ललकारें
३९१	ध्यान तुम्हारा धरा करे है	,,	१४-२-४४	अपलक
३९२	तेरा मेरा नाता क्या है ?	,,	१७-२-४४	,,
३९३	फागुन में सावन	,,	१८-२-४४	रश्मिरेखा
३९४	प्रियतम, तव अंगराग	,,	२१-२-४४	,,
३९५	मेरे आँगन खंजन आए	,,	२३-२-४४	क्वासि
३९६	प्राण, तुम मेरे हृदय दुलार	,,	२७-२-४४	रश्मिरेखा
३९७	स्मरण-कण्टक	,,	१-३-४४	,,
३९८	आज क्रान्ति का शंख बज रहा	,,	८-३-४४	,,
३९९	आज है होली का त्योहार	,,	९-३-४४	,,
४००	विनिपात	,,	१९-३-४४	सिरजन की ललकारें
४०१	पहेली मानव	,,	२९-३-४४	नवीन-दोहावली
४०२	एकाकीपन	,,	,,	सिरजन की ललकारें
४०३	यात्रा-पथे	,,	८-४-४४	नवीन-दोहावली
४०४	यथार्थवादी	,,	,,	सिरजन की ललकारें

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
४०५	तुम मम मन्दार सुमन	बरेली जेल	१०-४-४४	रश्मिरेखा
४०६	बढ़ रहा है भार मेरा	,,	११-४-४४	अपलक
४०७	चिन्ता	,,	१५-४-४४	प्रलयंकर
४०८	काल्पनिक अवसर	,,	२२-४-४४	रश्मिरेखा
४०९	क्यों रोते हो यार	,,	२३-४-४४	प्रलयंकर
४१०	ओ तुम अविचल वीर	,,	२५-४-४४	,,
४११	ओ मेरे मधुराधर	,,	१-५-४४	रश्मिरेखा
४१२	नास्तिक का आधार	,,	,,	सिरजन की ललकारें
४१३	द्विधा-लोप	,,	२-५-४४	स्मरण-गीत
४१४	ज्वाल मौन हाहाकार	,,	३-५-४५	,,
४१५	जागो, मेरे प्राण-पिरीते	,,	६-५-४४	रश्मिरेखा
४१६	स्मरण-विहंगम	,,	९-५-४४	स्मरण-दीप
४१७	मेरा क्या काल कलन ?	,,	१०-५-४४	अपलक
४१८	मेरा मन	,,	१२-५.४४	रश्मिरेखा
४१९	ज्वर झांक रहा है	,,	१८-५-४४	अपलक
४२०	अपनी-अपनी बाट	,,	२४-५-४४	नवीन-दोहावली
४२१	क्या बतलाएँ रोने वाले	,,	११-६-४४	स्मरण-दीप
४२२	उत्सी देधुरि में लोका	,,	१२-६-४४	प्रलयंकर
४२३	भावी की चिन्ताएँ	,,	१६-६-४४	क्वासि
४२४	सुन्दर	,,	१८-६-४४	सिरजन की ललकारें
४२५	पुलकित मम रोम-रोम	,,	३-७-४४	क्वासि
४२६	सैनिक ! बोल !!	,,	१७-७-४४	प्रलयंकर
४२७	मैं तो सजन आ ही रही थी	,,	४-८-४४	क्वासि
४२८	प्राणधन, यह मदमत्त बयार	,,	६-८-४४	रश्मिरेखा
४२९	उमंगें सावन के धराधर	,,	९-८-४४	स्मरण-दीप
४३०	तव मृदु मुसकान प्राण	,,	१२-८-४४	रश्मिरेखा
४३१	आओ, प्रिय हृदय लगो	,,	१३-८-४४	अपलक
४३२	मम मन पंछी अकुलाया	,,	१६-८-४४	रश्मिरेखा
४३३	मेरे भौन लगी आग	,,	१७-८-४४	अपलक
४३४	तुम हँसते से प्राण	,,	२३-८-४४	स्मरण-दीप
४३५	केन्द्र-बिन्दु	,,	२४-८-४४	,,
४३६	यह विराग-विवाद क्यों	,,	१२-९-४४	क्वासि
४३७	ढरक बहो मेरे रस निर्झर	,,	१०-१०-४४	रश्मिरेखा

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
४३८	तुम न आना अतिथि बनकर	बरेली जेल	१०-१०-४४	अपलक
४३६	दग्ध हो रहे हैं मेरे जन	,,	सन् १६४४	प्रलयंकर
४४०	मेरे जननायक की वाणी	,,	१६४४ (अ०)	असंगृहीत
४४१	मानव तव चरण बन्द्य	,,	,,	,,
४४२	सिरजन की ललकारें मेरी	,,	,,	सिरजन की ललकारें
४४३	नौका निर्वाण	,,	,,	,,
४४४	अर्ध-नारी नट	,,	,,	,,
४४५	तुम हो	,,	,,	,,
४४६	एक नीम	कानपुर	सन् १६४५ (अ०)	असंगृहीत
४४७	ओ तुम मेरे प्यारे जवान	बरेली जेल	६-२-४५	प्रलयंकर
४४८	ओ चिरन्तन यान मेरे	कानपुर	११-५-४५	अपलक
४४६	कितनी दूर पधारे हो	,,	११-६-४५	स्मरण-दीप
४५०	दूभर-सा कटता है			
४५१	तुम बिन जीवन, प्रियतम	,,	२५-११-४५	क्वासि
४५२	मेरी प्राण-प्रिया	रेलपथ, दिल्ली-कानपुर	१३-३-४६	अपलक
४५३	आओ साकार बनो	कानपुर	६-६-४६	क्वासि
४५४	मेरे स्मरण-दीप की बाती	,,	११-७-४६	,,
४५५	कित्वै तिहारे देश	,,	१७-८-४६	नवीन-दोहावली
४५६	फिर आ गई दिवाली	,,	२५-१०-४६	स्मरण-दीप
४५७	मेरी यह सतत टेर	,,	२०-१२-४६	अपलक
४५८	हिन्दुस्तान हमारा है	नई दिल्ली	सन् १६४७(अ०)	असंगृहीत
४५६	बोल, अरे, दो पग के प्राणी	,,	२६-३-४७	सिरजन की ललकारें
४६०	तुमने कौन व्यथा न सही है ?	कानपुर	२६-६-४७	अपलक
४६१	मातृ-वन्दना	दिल्ली	सन् १६४८ (अ०)	असंगृहीत
४६२	मैं निज भार वहन कर लूँगा	कानपुर	२८-४-४८	स्मरण-दीप
४६३	विस्मरण-खेल	,,	२६-४-४८	,,
४६४	मेरे मधुमय स्वप्न रंगीले	,,	३-५-४८	क्वासि
४६५	दान का प्रतिदान क्या, प्रिय	,,	४-५-४८	अपलक
४६६	प्राणों के पाहुन	,,	६-५-४८	क्वासि

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
४६७	मैं सोता था	दिल्ली	सन् १९४९ (अ०)	असंगृहीत
४६८	तुम्हीं तुम	,,	,,	,,
४६९	गान-निरत मम मन खग	मसूरी	१८-४-४९	क्वासि
४७०	त्रिशंकुमति	दिल्ली	१९४९ (अ०)	असंगृहीत
४७१	यह तप का ध्रुवतारा	,,	सन् १९५० (अ०)	,,
४७२	कौन गीत तुम आज लिखोगे ?		,,	,,
४७३	हम चिर नूतन	,,	सन् १९५१ (अ०)	,,
४७४	अहो मन्त्रद्रष्टा, हे ऋषिवर	,,	१-५-५३	विनोबा-स्तवन
४७५	उड़ान	दिल्ली	२-५-५३	,,
४७६	जल चुकी है वर्तिका	,,	६-५-५३	,,
४७७	अस्थि-पंजर	,,	८-५-५३	,,
४७८	महाप्राण के स्वन	,,	१५-५-५३	,,
४७९	ईशावास्योपनिषत् बोला	,,	२२-५-५३	,,
४८०	इस धरती पर लाना है	,,	९-६-'५३	,,
४८१	जीवन-सपना	,,	सन् १९५४ (अ०)	असंगृहीत
४८२	आओ अमराई में आज	,,	१७-५-५४	स्मरण-दीप
४८३	अदृष्ट चरण-वन्दना	कानपुर	२६-७-६४	प्रलयंकर
४८४	जीवन-पुस्तक	दिल्ली	५-९-५४	,,
४८५	मृण्मय चिन्मय	,,	सन् १९५५ (अ०)	असंगृहीत
४८६	तुम युग-परिवर्तक कालेश्वर	,,	,,	,,
४८७	मुझसे बोले, उत्तंगशृंग वाले पर्वत	,,	,,	,,
४८८	कहो, कब हो सकेगा दग्ध, यह जीवन सजल सावन	,,	,,	,,
४८९	भरत-खण्ड के तुम हे जन-गण	,,	१८-१-५५	प्रलयंकर
४९०	द्वन्द्व समुच्चय	कानपुर	२०-५-५५	सिरजन की ललकारें
४९१	मेरे मन	,,	२१-५-५५	,,
४९२	निज ललाट की रेखा	,,	२२-६-५५	,,
४९३	दुराव	,,	,,	,,
४९४	वृकोदरी ज्वाला	,,	,,	,,
४९५	पिंजर मुक्ति-युक्ति	,,	२३-६-५५	,,
४९६	यों शूल-युक्त, यों अहि आलिंगित है जीवन	,,	३०-६-५५	,,

क्रम-संख्या	रचना-शीर्षक	रचना-स्थल	रचना-तिथि	विशेष
४६७	करुणा-घन	कानपुर	७-७-५५	सिरजन की ललकारें
४६८	हे ज्योतिर्मय	दिल्ली	८-८-५५	,,
४६६	बीत चली वासन्ती बेला	रेल-पथ, बम्बई दिल्ली	सन् १६५६	असंगृहीत
५००	जीवन-वृत्ति	,,	,,	असंगृहीत एवं अन्तिम उपलब्ध कविता

परिशिष्ट—२

ग्रन्थ-रचना-सूची

(अ) श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियाँ और उनका प्रकाशन काल—

(क) पद्य प्रकाशित

(१) कुंकुम (स्फुट काव्य-संग्रह)—	विद्यार्थी प्रकाशन मन्दिर, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी मार्ग, कानपुर (उ० प्र०), प्रथम संस्करण, जनवरी, सन् १९३९।
(२) रश्मिरेखा (स्फुट काव्य-संग्रह)—	साधना प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, अगस्त, १९५१ ई०।
(३) अपलक (स्फुट काव्य-संग्रह)—	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सितम्बर, १९५१ ई०।
(४) क्वासि (स्फुट काव्य-संग्रह)—	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सितम्बर, १९५२ ई०।
(५) विनोबा-स्तवन (स्फुट काव्य-संग्रह)—	साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी. प्रथम संस्करण, सं० २०१०।
(६) उर्मिला (प्रबन्ध-काव्य)—	अतरचन्द्र कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, जनवरी, १९५७ ई०।
(७) प्राणार्पण (खण्ड-काव्य)—	सरस्वती प्रेस, प्रयाग, सन् १९६२।
अप्रकाशित	
(८) सिरजन की ललकार या नुपूर के स्वन— (दार्शनिक काव्य-संग्रह)	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से सन् १९६३-६४ में प्रकाशित होने की सम्भावना।
(९) नवीन-दोहावली (दोहा-संग्रह)—	वही।
(१०) यौवन-मदिरा या पावस-पीड़ा (लघु प्रेमकाव्य-संग्रह)	वही।
(११) प्रलयंकर (राष्ट्रीय काव्य-संग्रह)—	वही।
(१२) स्मरण-दीप (प्रेम-काव्य-संग्रह)—	वही।
(१३) मृत्यु-धाम या सृजन-झाँझ (मरण-गीत-संग्रह)	वही।
(ख) गद्य—	
(१४) हमारी संसद्-रचयिता—	श्री एम० अनन्त शयनम् अय्यंगार तथा पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मैकमिलन एण्ड कम्पनी, बम्बई, सन् ५७।

(ब) अन्यत्र संकलित कविताएँ—

[प्रस्तुत सूची में, उन काव्य-संकलनों एवं ग्रन्थों के नाम दिये जा रहे हैं जिनमें नवीन जी की विविध कविताओं को स्थान प्रदान किया गया है।]

(१) अर्चना के फूल—(महातमागान्धी पर लिखित कविताओं का संग्रह) सम्पादक, डॉ० राकेश गुप्त, यूनिवर्सल प्रेस, प्रयाग; 'महामानव के प्रति' (पृ० ४-६)।

(२) आधुनिक हिन्दी-काव्य— सम्पादक, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा एवं डॉ० रामकुमार वर्मा, सरस्वती पब्लिसिंग हाऊस, प्रयाग, पंचम संस्करण, सं० २००६; 'विप्लव-गायन' (पृ० ३९५-३९७); 'नंगे भूखों का यह गाना' (पृष्ठ ३९७-४०८); 'कब मिलेंगे ध्रुव-चरण वे ?' (पृष्ठ ४०८-४०९); कुहू की बात (पृष्ठ ४०९-४१०); साजन मेरे सो रहे हैं (पृ० ४१०-४११); लिख विरह के गान (पृ० ४१२-४१४); हिय-रार मेरी (पृ० ४१४-४१५)।

(३) आधुनिक काव्य-संग्रह— सम्पादक, डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१३, सप्तम संस्करण, पराजय गीत (पृ० ९६-९८)।

(४) आकाशवाणी-काव्य-संगम—भाग १ पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली, अप्रैल, १९५७, जन-तारिणि, मन-दैन्यहरणि हे (पृ० ७५-७६)।

(५) आकाशवाणी-काव्य-संगम—भाग २ पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली, अक्टूबर, १९५७, गायन-स्वन भर दो (पृ० ६९-७०)।

(६) कवि भारती— सम्पादक, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्री बालकृष्ण राव और डॉ० नगेन्द्र, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), सं० २०१०, यह हिन्दुस्तान हमारा है (पृ० २८० से २८३); पराजय गीत (पृ० २८३-२८७); सुन्दर (पृ० २८७-२८९); मानव की क्या अन्तिम गति विधि (पृ० २९०-२९५); अग्नि दीक्षा काल में (पृ० २९५-२९६); ढुल मुल (पृ० २९६-३०४); भ्रम-जाल (पृ० ३०४-३०९); आकांक्षा का शव (पृ० ३१०-३११); कलिका इक बबूल पर फूली (पृ० ३११-३१२); ओ हिरणी की आँखोंवाली (पृ० ३१२-३१४)।

(७) कविताएँ १९५४— सम्पादक, श्री अजितकुमार तथा श्री देवीशंकर अवस्थी, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम

संस्करण १९५५ ई०, पंख खोल पंख तोल (पृ० ६६-६७)।

(८) कवियों की झाँकी— छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, सन् ५१, विप्लव गायन (पृ० ३५८-३५९); जगत उबारो (पृ० ३५९-३६०)।

(९) काव्यसरोवर— सम्पादक, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पंजाब विश्व विद्यालय, प्रथम संस्करण, सन् १९५०, विप्लव गायन (पृ० ५१-५४); छेड़ो न (पृ० ५५-५६)।

(१०) काव्य-धारा— सम्पादक, श्री शिवदानसिंह चौहान तथा श्री गोपालकृष्ण कौल, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली सन् १९५५, रहस्य उद्घाटन (पृ० ६६-७६);

(११) गान्धी अभिनन्दन-ग्रन्थ— सम्पादक, श्री सोहन लाल द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग; द्वितीय संस्करण, १९४६, हे क्षुरस्य धारा पथगामी (पृ० २१)।

(१२) निकुंज—(ग्वालियर राज्य वर्तमान कवि हृदय) सम्पादक श्री रामकिशोर शर्मा 'किशोर' साहित्यिक मित्र-मण्डल ग्वालियर, सन् ३२, नौका निर्वाण (पृ० १०-११); छेड़ो न (पृ० १२-१३); साकी (पृ० १३-१५); क्या करते हो मोल (पृ० १५-१६); विप्लव गायन (पृ० १६-१८)।

(१३) परिचय— सम्पादक, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, साहित्य सदन, चिरगाँव, प्रथमावृत्ति, सं० १९८३।

(१४) पुष्करिणी— सम्पादक, श्री 'अज्ञेय', साहित्य सदन चिरगाँव, प्रथमावृति, सं० २०१६ वि०, हम हैं मस्त फकीर (पृ० २८१); हम अनिकेतन (पृ० २८२-२८३); जागो प्राण पिरीते (पृ० २८३); माघभेद्य (पृ० २८४); प्रिय लो डूब चुका है सूरज (पृ० २८४-२८५); चेतन वीणा (पृ० २८६); प्रिय मैं आज भरी भारी सी (पृ० २८६-२८८) डोलेवालो (पृ० २८८-२८९); मैं तो सजन आ ही रही थी (पृ० २८९-२९०); ओ हिरनी की आँखोंवाली (पृ० २९०-२९३; कलिका इक बबूल पर फूली (पृ०२९३-२९४); हम तो ओस-विन्दु सम ढरके (पृ० २९४); पराजय गीत (पृ०

२६५-२६६); गणेशशंकर चतुर्थ आहुति (पृ० २६७-२६८); त्रिशंकुपति (पृ० २६८-२६६); क्या मैं कर सकता हूँ कृत का अकृत (पृ० २६६-३०१); कस्त्वं ? कोऽहम् (पृ० ३०१-३१०); जल चुकी है वर्तिका (पृ० ३१०-३११)।

(१५) भारतीय कविता— साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १६५६, अहो मन्त्र द्रष्टा, हे ऋषिवर (पृ० ५६५-५७०)।

(१६) मुन्शी अभिनन्दन ग्रन्थ— सम्पादक, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री बलवन्त भट्ट, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ, समिति, नई दिल्ली, कौन गीत तुम आज लिखोगे (पृ० ४४५-४४६)।

(१७) राष्ट्रीय कविताएँ— संकलनकर्ता, श्री विद्यानिवास मिश्र, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण जुलाई, १६५८ ई०; विप्लव गायन (पृ० ८६)।

(१८) राजधानी के कवि— सम्पादक, श्री गोपालकृष्ण कौल तथा श्री रामावतार त्यागी, निर्माण-प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् १६५३, हिय में सदा चांदनी छाई (पृ० १-३); मरुथल का मृग (पृ० ३-५); सृजन वीणा (पृ० ६)।

(१६) रूपाम्बर— सम्पादक, 'श्री अज्ञेय', तथा श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण; सन् १६६०; कलिका बबूल पर फूली (पृ० ११६-१२०)।

(२०) साहित्य-चयन— सम्पादक, श्री जैनेन्द्रकुमार, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, सन् १६५०, विप्लव गायन (पृ० १५५-१५८); शिखर पर (पृ० १५६)।

(२१) सौहार्द्र सुमन— (एशिया के महाकवि श्री योन नागची के भारत आगमन पर समर्पित)—हिन्दी क्लब, कलकत्ता, १ दिसम्बर, १६३५ ई०; दुलमुल (पृ० ३३-३४)।

(२२) संकेत— सम्पादक श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' नीलाभ प्रकाशन, प्रयाग, निज ललाट की रेख (पृ० २३५-२३८)।

(२३) हिन्दी के वर्तमान कवि और उनका काव्य— सम्पादक, पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' काशी पुस्तक भंडार, बनारस, प्रथम संस्करण जून, १९५४, बस, बस अब न मथो यह जीवन (पृ० १११-११२)।

(२४) हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेम-गीत— सम्पादक, श्री क्षेमचन्द्र सुमन, हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, मत मुँह मोड़ अरे बेदरदी (पृ० ८०-८१)।
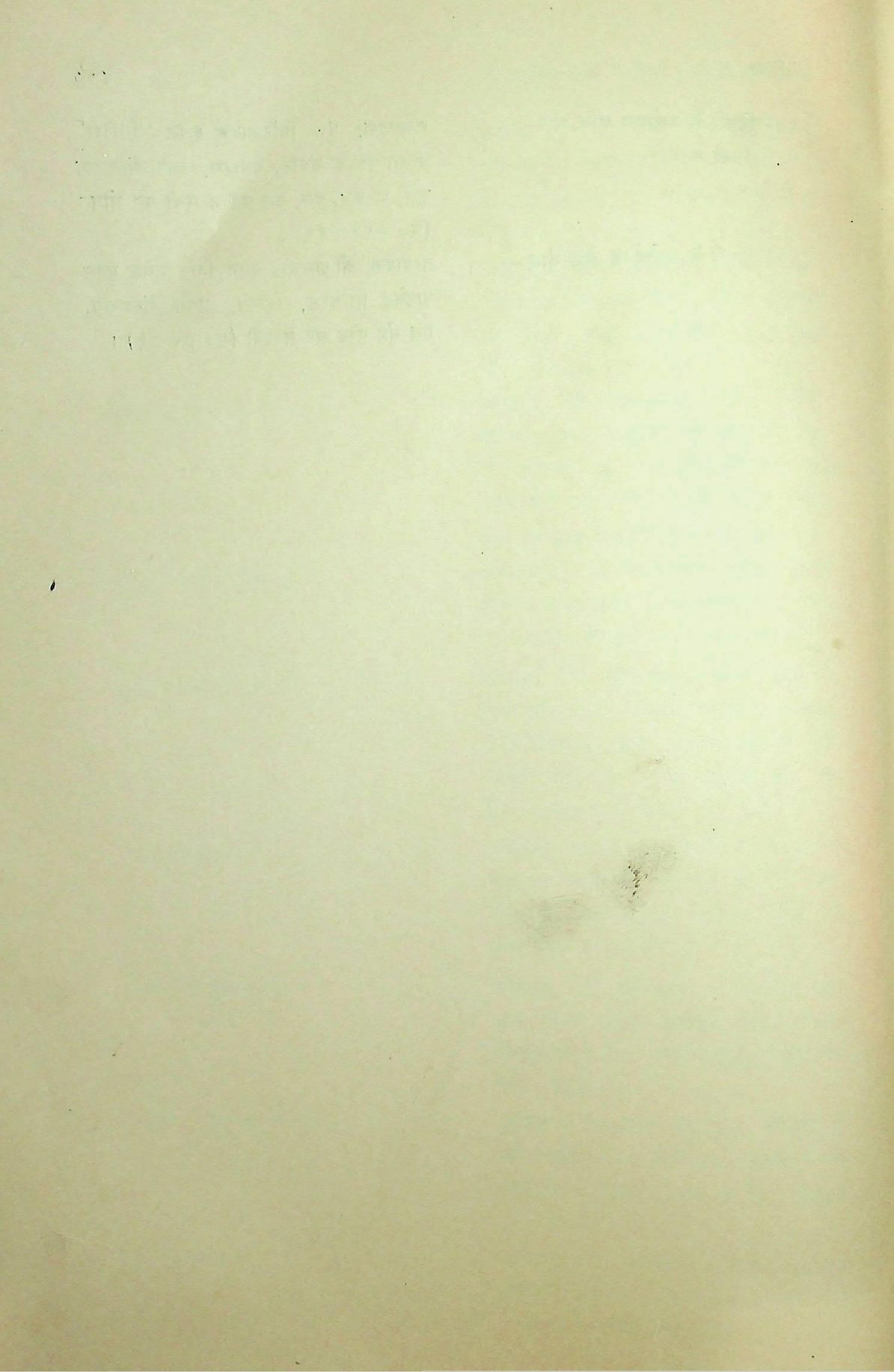
परिशिष्ट—३

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की गद्य रचनाएँ

['नवीन' जी की स्व-रचित-काव्य-कृतियों की भूमिकाओं आदि के गद्यांशों के अतिरिक्त अन्य प्राप्त रचनाओं की सूची]—

(क) गद्य-काव्य—

(१) निशीथ चिन्ता— 'प्रभा', १ नवम्बर, १६२०, पृ० ३०४।

(२) कमला भाभी— पण्डित नेहरू अभिनन्दन-ग्रन्थ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथमावृत्ति, तिथि १४ नवम्बर, १६४८, पृष्ठ २६-३०।

(ख) कहानियाँ—

(३) सन्तू— सरस्वती, जनवरी, १६१८, पृष्ठ ४२-४५।

(४) अभिसार वीणा— प्रतिभा, मार्च, १६१८, पृष्ठ ३७२-३७६।

(५) गोई जीजी — श्री शारदा, १२ अक्तूबर, १६२०, पृ० २८-३३।

(६) बावली— प्रभा, १ जून, १६२२, पृ० ४२२-४२६।

(७) मेरा छोटे— प्रभा, मार्च, १६२३, पृष्ठ १६२-१६७।

(८) हाड़ का कंकाल— साप्ताहिक 'प्रताप'।

(ग) आत्मकथा एवं संस्मरण—

(९) मेरी अपनी बात— नवशक्ति, सन् १६३६।

(१०) राष्ट्रपति के दर्शन— (मौलाना अब्दुल कलाम आजाद पर लिखित लेख) साप्ताहिक 'प्रताप', २० जुलाई, १६४५।

(११) हा ! विश्वम्भर नाथ— साप्ताहिक 'प्रताप', १८ दिसम्बर, १६४५, पृष्ठ २।

(१२) पूजनीय अरोड़ा जी— श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा अभिनन्दन-ग्रन्थ, १३-१२-१६५०, पृष्ठ ४-५।

(१३) वे, जिन्होंने अलख जगाया— बालमकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थ, सं० २००७, पृष्ठ ४०३-४०६।

(१४) एण्ड आई वात्सो रेन— क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर, हीरक जयन्ती विशेषांक-पत्रिका, सन् १६५२, पृ० ८२-८६।

(१५) श्री मैथिलीशरण गुप्त— संस्मरण, साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', अगस्त, सन् १६५२।

(१६) जवाहर भाई— वही।

(१७) एकाराधनानिष्ट मैथिलीशरण गुप्त— राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृष्ठ ३५२-३५५ ।

(१८) प्रेमचन्द-एक स्मृति-चित्र— आजकल, अक्तूबर, १९५२ ।

(१९) दीनबन्धु रफी अहमद किदवई— वही, जनवरी, १९५५, पृ० २६-२९ ।

(२०) पुण्यश्लोक गणेश जी— वही, मार्च, १९५५, पृ० १४-१७ ।

(२१) दादा साहब मावलंकार— त्रिपथगा, मार्च, १९५६, पृष्ठ ९२-९३ ।

(घ) निबन्ध एवं आलोचना—

(२२) माननीय पण्डित मोतीलाल नेहरू — प्रभा, जनवरी, १९२०, पृष्ठ ४६-४८ ।

(२३) श्री मैथिलीशरण स्वर्णजयन्ती— काव्यकलाधर, अप्रैल, १९३६, पृष्ठ ३३७-३३९ ।

(२४) हिन्दुस्तानी का प्रचार घातक है— आगामी कल, मई, १९४४, पृष्ठ ३२ ।

(२५) हम किधर जा रहे हैं ?— विन्ध्यवाणी, ११ अप्रैल, १९४९, पृष्ठ ३ ।

(२६) स्वाध्याय और सत्साहित्य सृजन— वीणा, जून, १९५०, पृष्ठ ४६९-४७१ ।

(२७) सन्त-कवि भाई वीरसिंह अभिनन्दन-ग्रन्थ, दिल्ली, सन् १९५४, पृ० १७३-१८६ ।

(२८) ब्रज-साहित्य की महत्ता और उपयोगिता ब्रजभारती, फाल्गुन, सं० २०१६-१७, पृष्ठ ९-१० ।

(२९) कौन कहता है कि तुमको खा सकेगा काल साप्ताहिक 'प्रताप', २२ मार्च, १९४९, पृष्ठ ११-१५ ।

(३०) हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली दैनिक 'जनसत्ता', ८ सित०, १९५३ पृ० २ ।

(३१) भारतीय संविधान की भाषा-विषयक नीति का विरोध क्यों ? वही १० सित०, १९५३ पृ० २ ।

(३२) कुछ विचारणीय प्रश्न वही २३-९-१९५६ पृ० २ ।

(३३) राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति हमारा कर्त्तव्य— ब्रजभारती, फाल्गुन, २०१६ १७ । पृष्ठ ५१-५२ व ६१-६४ ।

(ङ) कतिपय प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियाँ एवं लेख—

(३४) दैनिक प्रताप की १३ एवं १९ जनवरी, १९२१ की सम्पादकीय टिप्पणियाँ ।

(३५) पधारो देव— महात्मागान्धी पर लिखित लेख, साप्ताहिक 'प्रताप' ।

(३६) राखी— वही ।

(३७) पतन— वही, ९ अगस्त, १९३१ ।

(३८) तराजू के पलड़े से — वही, अगस्त, १९३१ ।

(३९) वे— वही ।

(४०) मिरची की धूनी और तमाचा वही ।

(४१) परिहास में कच्चे — श्री सियाराम शरण गुप्त पर लिखित लेख, साप्ताहिक प्रताप, सियारामशरण गुप्त अंक ।

(४२) आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी— साप्ताहिक प्रताप, सन् १९३९।

(४३) गुण्डागिरी रोकने में यह नपुंसकता कैसी ? सम्पादकीय टिप्पणी, साप्ताहिक प्रताप, ३० अप्रैल, १९३९।

(४४) लेखनी सन्यास— सम्पादकीय टिप्पणी, सारथी, १७ अगस्त, १९४२।

(च) भूमिकाएँ

(४५) श्री जवाहर-दोहावली— दोहा-संग्रह, नागरी निकेतन, आगरा, प्रथम, संस्करण, १९३९ ई०, कवि श्री श्यामसुन्दर दीक्षित की कृति की भूमिका।

(४६) ज्वाला— काव्य-संग्रह, कवि श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की कृति की भूमिका 'ज्वाला की लपट'; १० जुलाई, १९२९ ई०।

(४७) अर्चना— काव्य-संग्रह, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग, प्रथमावृत्ति, सं० १९९८ वि०, कवि श्री भगवन्तशरण जौहरी की कृति की भूमिका-प्रवेश (पृ० १-४)।

(४८) वीर-वचनावली— काव्य-संग्रह, भाई वीरसिंह अभिनन्दनग्रन्थ-समिति, नई दिल्ली, सन् १९५१ ई०, भाई वीरसिंह की कृति की भूमिका 'कवि-परिचय'।

(४९) चेतना— काव्य-संग्रह, कवि श्री बाबूराम पालीवाल की कृति की भूमिका।

(५०) महात्मा गान्धी— पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना व प्रसार मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, प्रथमावृत्ति, नवम्बर, १९५५, भूमिका गान्धी-दर्शन (पृ० १-१२)।

(छ) कतिपय विशिष्ट साहित्य-पत्र

(५१) अपने जीवन सम्बन्धी मान्यता के विषय में प्रकाश डालनेवाला, श्री बाबूराव विष्णुपराडकर जी को लिखित ६-३-१९२९ का पत्र, 'पराडकर जी और पत्रकारिता', पृष्ठ ८७ पर प्रकाशित।

(५२) अपनी साहित्यिक मान्यता के विषय में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा गया पत्र, विशाल भारत, अक्तूबर, १९३७ ई०, पृष्ठ ४७१ पर प्रकाशित।

(५३) अपनी साहित्यिक मान्यता के विषय में श्री प्रभागचन्द्र शर्मा को लिखित पत्र, आगामी कल, जनवरी, १९४२ में प्रकाशित।

(५४) अपना जीवन-विश्लेषण करने वाला, श्री दामोदरदास भालानी को लिखित (दिनांक ४-१-१९४८ का) पत्र, अप्रकाशित।

(५५) अपनी काव्य-रसग्राहीवृति का निरूपक, श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव को लिखित (दिनांक ४ जून १९५४ का) पत्र, अप्रकाशित।

(५६) अपनी विचारधारा के प्रतिपादक, श्री रामनारायण सिंह मधुर को लिखित दो पत्र, साप्ताहिक 'आज', २६ मई, १९६०, पृष्ठ १० पर प्रकाशित।

(ज) आकाशवाणी वार्ता

(५७) हिन्दी साहित्य की समस्याएँ— रेडियो संग्रह, जुलाई-सितम्बर, १९५३।

(५८) विनोबा— आकाशवाणी प्रसारिका, जुलाई-सितम्बर १९५४।

(५९) भाई वीरसिंह— आकाशवाणी प्रसारिका, अप्रैल-जून, १९५७।

(झ) विशिष्ट साहित्यिक भाषण

(६०) नागपुर साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत आयोजित कवि सम्मेलन के सभापति-पद से दिया गया कवि का अध्यक्षीय अभिभाषण, काव्य-कलाधर, अप्रैल, १९३६।

(६१) कारागृह से मुक्ति के पश्चात्, पत्रकार द्वारा सम्मानित किये जाने पर कवि का कानपुर में भाषण, सन् १९४५, आगामी कल, अप्रैल १९४५, पृष्ठ ५ पर प्रकाशित।

(६२) संयुक्त प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पंचम अधिवेशन में हिन्दी के पक्ष एवं हिन्दुस्तानी के विरोध में दिया गया कवि का भाषण, ३१ मार्च १९४५ ई०, वीणा, अप्रैल १९४५, पृ० २२२ पर प्रकाशित।

(६३) उत्तरप्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी, के सप्तम अधिवेशन में कवि का अध्यक्षीय भाषण—'राष्ट्रभाषा, संस्कृति का अविच्छेद्य अंग है'; 'वीणा', नवम्बर १९४७, पृष्ठ १७-२२ पर प्रकाशित।

(६४) ब्रजसाहित्य मण्डल के सहारनपुर के षष्ठ अधिवेशन में कवि का अध्यक्षीय भाषण, ब्रज-भारती, अंक ३-४, स० २००६।

(६५) मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन में कवि का अध्यक्षीय भाषण, विक्रम, दिसम्बर, १९५२, पृष्ठ ७-९ पर प्रकाशित।

(६६) उत्तरप्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बस्ती अधिवेशन में कवि का अध्यक्षीय भाषण, सं० २०११ की कार्य-विवरण पुस्तिका में प्रकाशित।

(६७) निखिल भारत बंग-साहित्य सम्मेलन के ३२वें अधिवेशन (आगरा) के तत्वावधान में आयोजित, हिन्दी साहित्य एवं कवि-सम्मेलन के सभापति पद से दिया गया कवि का अध्यक्षीय अभिभाषण, साहित्य सन्देश, दिसम्बर १९५६, पृ० २४९-२५१ पर प्रकाशित।

Constituent Assembly Debates

	Subject	Date	Name of book.	Pages.
	1947			
1.	Presentation of credentia and signing of register.	20th to 25th Jan. 1947.	The constituent Assembly debates Vol. II, 1947.	267
2.	Interim Report on fundamental rights.	28th April to 2nd May 1947.	„ Vol. III, 1947	453
3.	Election changes from Bengal and Punjab.	14th to 31st July 1947.	„ Vol. IV, 1947	543-544
4.	Report on the Principles of a model provincial constitution.	„	„	583-584
5.	Resolution re : National Flag.	„	„	753-754
6.	Incidents connected with the flag Hoisting ceremony in certain parts of India.	14th August to 30th August, 47	„ Vol. V, 1947.	26-27 and 33
7.	Report of the Union power committee.	„	„	46 and 76-79
8.	Rehabilitation of refugees from Pakistan.	18th Nov. 47.	„ Vol. I No. 2, 1947	65
9.	Dishonouring the Indian Union Flag.	19th Nov. 47.	„ Vol. No. 3, 1947	157
10.	Press (special powers) Bill (Hindi speech)	„	„	265-268
11.	Quantity of Iron, steel and cement in Indian Union.	20th Nov. 47	„ No. 4	303
12.	Measures for Protection of Border Areas.	25th Nov. 47	Vol. I No. 7	569.
13.	The Railway Budget General discussion.		„	629-631
14.	Motion for adjournment of re-announcement to decontrol Sugar and consequent rise in prices.	25th Nov. 1947	Vol. I No. 7	981

	Subject	Date	Name of book.	Page.
15.	Motion re. : food policy of the Government of India.	25th Nov. 1947	Vol. I No. 7	1635-37& 1674
16.	Motion to reduce demand for Ministry of Industry and supply-Removal of control over cloth-yarn and other than food.	,,	,,	1310
17.	Question re. : National Museum and Library for India.	,,	,,	1597-58
18.	Consumption of Petrol.	,,	,,	962
19.	Control of Khandsari and Gur.	,,	,,	1438
20.	Cow-dung gas plant.	,,	,,	931
21.	Development of Industries	,,	,,	929
22.	Evacuation of Hindus from N. W. F. Province.	,,	,,	1520
23.	Resolution Re. : organisation of a National Militia.	27th Nov. 1947	,, No. 9	811-812
24.	Explanation of Misunderstanding.	,,	,,	817
25.	Armed Forces (special powers)	11th Dec. 47	Vol. III No. 1	1735-1738 39-40
26.	Exemptions to members of constituent Assembly Provisions of Arms Act.	12th Dec. 1947	,, ,, No. 2	1800
27.	Manufacture of Vegetable Ghee.	,,	,,	943
	1948.			
28.	Arrest of Shri V. D. Tripathi.	27th Jan. 48	Vol. VI, 1948	2-3
29.	Arrangements for Evacuation of Non-Muslims left in Bahawalpur state.	28th Jan. 1948	,,	1
30.	Draft constitution Article 8-A.	4th Nov. 48 to 8th Jan. 49.	VII-1948-49	573
31.	Motion (General Discussion)	,,	,,	45-214-15 and 272-75

	Subject	Date	Name of book.	Page.
32.	Motion re. : preparation of Electoral rolls.	4th Nov. 48 to 8th Jan. 49.	VII-1948-49	1372-73
33.	Programme of business.	„	„	19-21
	1949.			
34.	Addition of para 4-A to constituent Assembly Rules (schedule).	16th May to 16th June 49.	Vol. No. VIII 1949.	363 &366
35.	Hindi Numerals on car Number plates.	„	„	745-46.
36.	Ratification of common Wealth decision.	16th May to 16th June 49.	Vol. No. VIII 1949	11,14,20, 37,38 & 40
37.	Report of Advisory Committee on minorities.	„	„	275-76
38.	Draft constitution Article 24.	30th July to 18th Sept. 49	„ IX 1949	1197,1274, 1275,1281, 1283 & 1284
39.	Article 294.	„	„	667.
40.	New Part XIV-A (Language).	„	„	1313-14, 1317,1353, 1399,1400, 1432,1435, 1463, & 1467.
41.	Draft Constitution First schedule.	6th to 17th Oct. 49.	„ X 1949	317
42.	Draft constitution Amendments of Articles.	14th to 16th Nov. 49.	XI 1949	484,501, 502, 509, 512, 522, 526, 527, 551-52,562-63, 581-590 595
43.	Third Reading.	„	XI 1949	690-667, 69
44.	Government of India Act (Amendment) Bill.	„	„	932.

Lok Sabha Debates

	Subject	Date	Name of book.	Page.
	1953			
1.	Law Minister's speech re. : speaker's certificate on India Income, tax (Amendment) Bill.	Ist May 1953	Lok Sabha Debates Vol. 9 IV V.	5545-5553
2.	Vindhya Pradesh Legislative Assembly (Prevention of disqualification) Bill-Motion to consider.	11-5-53	Lok Sabha Debates Vol. IV-V.	6356-63
3.	Special Marriage Bill-Motion to Join the Joint committee of the Houses.	14-12-53	,, X	2062 & 2065
4.	,, ,,	16-12-53	,,	2300
	1954			
5.	Demands for grants-1954-55 Broad-casting, Motion to reduce the Demand-Music Policy and work of Light Music Units of A. I. R.	8-4-54	,, Vol. III	4372-75
6.	Programme policy of AIR	,,	,,	4366-67
7.	Ministry of Information and Broad-casting.	,,	,,	4360-77
8.	Motion to reduce the Demand-Music Artistis servicing committee.	,,	,,	4375-77
9.	Delimitation commission (Amendment) Bill-Motion to consider.	18-12-54	Vol. IX	3341-44
10.	Resolution Re : Removal of speaker.	,,	,,	3285-86
	1955			
11.	Insurance (Amendment) Bill Motion to consider.	6-12-55	Vol. IX	1572.
12.	,, ,,	7-12-55	,,	1642-1643.
13.	Report of states Re-organisation commission.	14-12-55	Vol. X	2586.
	1956			

	Subject	Date	Name of book.	Page.
14.	Proceedings of Legislatures (Protection of Publication) bill by Shri Feroze Gandhi.	23-3-56	Vol. II	3552
15.	,, ,,	5-4-56	Vol. III	4630-4634
16.	,, ,,	,,	,,	
	(Amendment to refer to select committee)	,,	,,	4630-4634
17.	Calling attention to Matter of urgent Public importance. Government policy with regard to Algeria.	22-5-56	Vol. V	9106

परिशिष्ट ४

सन्दर्भ-ग्रन्थ

(१) संस्कृत-ग्रन्थ

(१) अथर्ववेद

(२) अभिनव गुप्त— ध्वन्यालोकलोचन ।

(३) अग्निपुराण

(४) आनन्दवर्द्धन— ध्वन्यालोक

(५) इशावास्योपनिषद्

(६) ऋग्वेद

(७) कठोपनिषद्

(८) कालिदास— मेघदूत

(९) कुन्तक— हिन्दीवक्रोक्ति जीवित:

(१०) चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा द्वारा अनूदित—रामायण

(११) जगन्नाथ— रसगंगाधर

(१२ तैत्तरीय उपनिषद्

(१३) दण्डी— काव्यादर्श

(१४) भामह— काव्यालंकार

(१५) रूद्रट— काव्यालंकार

(१६) राजशेखर— काव्यमीमांसा

(१७) वामन— हिन्दी काव्यालंकार सूत्र

(१८) विश्वनाथ— साहित्य-दर्पण

(१९) मित्र द्वारा सम्पादित— उत्तररामचरित

(२०) श्रीमद्भगवद्गीता

(२१) हेमचन्द्र— काव्यानुशासन

(२) हिन्दी-ग्रन्थ

(२२) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' सन्दर्भ सर्वस्व

(२३) ,, वैदेही वनवास

(२४) ,, हिन्दी भाषा और साहित्य विकास

(२५) अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी समाचार-पत्रों का इतिहास

(२६) अनन्त— हिन्दी साहित्य के सहस्र वर्ष

(२७) अज्ञेय— पुष्करिणी

(२८) अजितप्रसाद— कविताएँ १९५४

(२९) आकाशवाणी काव्य संगम भाग १

(३०) आकाशवाणी काव्य संगम	भाग २
(३१) आरसीप्रसाद सिंह	संचयिता
(३२) आशा गुप्ता—	खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना
(३३) आज का भारतीय साहित्य	
(३४) इन्द्रनाथ मदान—	काव्य सरोवर
(३५) इन्द्रपाल सिंह —	हिन्दी साहित्य चिन्तन
(३६) उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन	बाली अधिवेशन, सं० २०११ का कार्य-विवरण
(३७) उदयभानुसिंह	महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग
(३८) उमाकान्त—	मैथलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता
(३९) उदयशंकर भट्ट—	राका
(४०) ,,	विसर्जन
(४१) ,,	भक्त पंचरत्न (सम्पादित)
(४२) उग्र	व्यक्तिगत
(४३) उपेन्द्रनाथ अश्क	संकेत
(४४) उदयनारायण तिवारी—	हिन्दी भाषा तथा साहित्य
(४५) एकोत्तरशती	
(४६) ऋषि जैमिनी कौशिक-कला—	माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी
(४७) कमलाकान्त पाठक—	मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य
(४८) कन्हैयालाल—	काँग्रेस के प्रस्ताव
(४९) कवियों की झाँकी—	
(५०) कामिल बुल्के—	रामकथा
(५१) केशवदेव उपाध्याय—	नवीन दर्शन
(५२) केसरी नारायण शुक्ल—	आधुनिक काव्यधारा
(५३) केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'—	ज्वाला
(५४) कुंजबिहारी वाजपेयी—	तस्वीर तुम्हारी हूँ
(५५) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—	राष्ट्रीय वीणा
(५६) ,,	त्रिशूल तरंग
(५७) गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ—	
(५८) गोविन्द राम शर्मा—	हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य
(५९) गोपालशरण सिंह—	जगदालोक
(६०) गुरुभक्त सिंह—	नूरजहाँ
(६१) गुलाबराय—	सिद्धान्त और अध्ययन
(६२) गंगाप्रसाद पाण्डेय—	महादेवी का विवेचनात्मक गद्य
(६३) चतुरसेन शास्त्री—	हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

(६४) चन्द्रबली पाण्डेय— हिन्दी की हिमायत क्यों ?
(६५) जयशंकर प्रसाद— झरना
(६६) ,, लहर
(६७) ,, कामायनी
(६८) ,, काव्य कला तथा अन्य निबन्ध
(६९) ,, आँसू
(७०) जवाहरलाल नेहरू— मेरी कहानी
(७१) ,, हिन्दुस्तान की समस्याएँ
(७२) ,, राष्ट्रपिता
(७३) जगन्नाथप्रसाद 'भानु'— छन्दः प्रभाकर
(७४) जावड़ेकर— आधुनिक भारत
(७५) जानकीवल्लभ शास्त्री— साहित्य-दर्शन
(७६) तुलसीदास— कवितावली
(७७) ,, बरवै रामायण
(७८) ,, विनयपत्रिका तथा रामचरित मानस
(७९) दयानन्द सारस्वती— सत्यार्थ-प्रकाश
(८०) दशरथ ओझा— समीक्षा-शास्त्र
(८१) देवव्रत शास्त्री— गणेशशंकर विद्यार्थी
(८२) ,, साहित्यकारों की आत्मकथा
(८३) देवीशरण रस्तोगी— हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास
(८४) देवीप्रसाद धवन 'विकल'— साहित्यकार निकट से
(८५) देवराज— छायावाद का पतन
(८६) दौलतराम गुप्त द्वारा सम्पादित— तिलक वियोग में शोकाश्रु
(८७) दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक विवरण सन् ५९-६०
(८८) ,, ,, अभिनन्दन-पत्र दिनांक ८-१२-५९
(८९) धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित— हिन्दी साहित्य-कोष
(९०) धीरेन्द्र वर्मा और रामकुमार वर्मा आधुनिक हिन्दी काव्य
(९१) नन्ददुलारे वाजपेयी— हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी
(९२) ,, आधुनिक साहित्य
(९३) ,, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन-ग्रन्थ (सम्पादित)
(९४) नगेन्द्र— वन बाला
(९५) ,, साकेत—एक अध्ययन
(९६) ,, विचार और विवेचन

(९७) नगेन्द्र—	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ
(९८) ,,	विचार और विश्लेषण
(९९) ,,	अरस्तू का काव्य-शास्त्र
(१००) ,,	हिन्दी ध्वन्यालोक (सम्पादित)
(१०१) ,,	भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा
(१०२) नलिनविलोचन शर्मा द्वारा सम्पादित—	चतुर्दश भाषा निबन्धावली
(१०३) नरेन्द्र देव—	राष्ट्रीयता और समाजवाद
(१०४) नरेशचन्द्र चतुर्वेदी—	हिन्दी साहित्य विकास और कानपुर
(१०५) ठाकुरप्रसाद सिंह—	महामानव
(१०६) पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—	मैं इनसे मिला, दूसरी किस्त
(१०७) परमेश्वर द्विरेफ—	मीरा
(१०८) ,,	युगस्रष्टा : प्रेमचन्द
(१०९) पट्टाभिसीतारमय्या—	काँग्रेस का इतिहास
(११०) पुत्तूलाल शुक्ल—	आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द योजना
(१११) पं० नेहरू—	
(११२) प्रकाशचन्द्र गुप्त—	हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा
(११३) ,,	नया हिन्दी साहित्य
(११४) ,,	साहित्य धारा
(११५) प्रभाकर माचवे—	व्यक्ति और वाङ्मय
(११६) ,,	हिन्दी साहित्य की कहानी
(११७) प्रतिपाल सिंह—	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य
(११८) प्रभागचन्द्र शर्मा—	आकाशवाणी वार्ता, इन्दौर, प्रसारण-तिथि ५-१२-१९६०
(११९) —	प्रेमधन सर्वस्व भाग १
(१२०) प्रेमशंकर—	प्रसाद का काव्य
(१२१) प्रेमनारायण टण्डन—	द्विवेदी मीमांसा
(१२२) बलदेवप्रसाद मिश्र	साकेत सन्त
(१२३) बनारसी चतुर्वेदी—	रेखाचित्र
(१२४) ,,	अमरशहीद रामप्रसाद बिस्मिल (सम्पादित)
(१२५) ,,	गणेश स्मारक ग्रन्थ (सम्पादित)
(१२६) बाबूराम पालीवाल—	चेतना
(१२७) —	बालमकुन्द स्मारक ग्रन्थ
(१२८) बालेश्वर प्रसाद सिंह	स्वराज्य दर्शन (सम्पादित)
(१२९) बैजनाथसिंह 'विनोद'	द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र
(१३०) भगवन्तशरण जौहरी—	अर्चना
(१३१) भवानीशंकर शर्मा द्विवेदी—	हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार

(१३२) भगवतीशरण वर्मा—	मधुकण
(१३३) —	भारतीय वाङ्मय
(१३४) भारतभूषण अग्रवाल—	डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध
(१३५) —	भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १
(१३६) —	भाई वीरसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ
(१३७) महात्मा गान्धी	मेरे समकालीन
(१३८) महात्मा गान्धी	
(१३९) महावीरप्रसाद द्विवेदी—	रसज्ञ-रंजन
(१४०) महादेवी वर्मा—	यामा
(१४१) ,,	सान्ध्य-गीत
(१४२) माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित—	जायसी ग्रन्थावली
(१४३) माखनलाल चतुर्वेदी—	हिमकिरीटिनी
(१४४) ,,	माता
(१४५) ,,	समर्पण
(१४६) ,,	युगचरण
(१४७) ,,	अमीर इरादे गरीब इरादे
(१४८) मेहताबसिंह क्षत्रिय द्वारा सम्पादित—	स्वराज्य वीणा
(१४९) मैथिलीशरण गुप्त—	स्वदेश संगीत
(१५०) ,,	वीरांगना
(१५१) मैथिलीशरण गुप्त—	मेघनाद वध
(१५२) ,,	साकेत
(१५३) ,,	रूबाइयात उमर खय्याम
(१५४) ,,	वकसंहार
(१५५) ,,	भूमिभाग
(१५६) —	मिश्र बन्धु विनोद
(१५७) —	मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ
(१५८) रघुवीरशरण मित्र—	जननायक
(१५९) रवीन्द्रनाथ ठाकुर—	प्राचीन साहित्य
(१६०) रवीन्द्रसहाय वर्मा—	हिन्दी काव्य पर आंग्ल-प्रभाव
(१६१) रघुवंश लाल गुप्त—	रवि बाबू के कुछ गीत
(१६२) रामकिशोर शर्मा किशोर	निकुंज
(१६३) रामेश्वरलाल खण्डेलवाल तरुण—	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य
(१६४) रामसागर त्रिपाठी	मुक्तक काव्य और बिहारी
(१६५) रामवृक्ष 'बेनीपुरी'—	विद्यापति की पदावली
(१६६) रामनारायण माथुर—	काव्यांजलि
(१६७) रामलाल सिंह—	आधुनिक निबन्ध

(१६८) रामदहिन मिश्र—	काव्य-दर्पण
(१६९) —	राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ
(१७०) —	राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ
(१७१) रामानन्द तिवारी	पार्वती
(१७२) रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित —	जायसी ग्रन्थावली
(१७३) ,,	गोस्वामी तुलसीदास
(१७४) ,,	हिन्दी साहित्य का इतिहास
(१७५) रामविलास शर्मा	प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ
(१७६) रामधारी सिंह 'दिनकर'—	मिट्टी की ओर
(१७७) ,,	पन्त; प्रसाद और मैथिलीशरण
(१७८) ,,	संस्कृति के चार अध्याय
(१७९) ,,	वट-पीपल
(१८०) रामचरित उपाध्याय द्वारा सम्पादित —	राष्ट्र भारती
(१८१) रामअवध द्विवेदी—	हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा
(१८२) रामकुमार वर्मा—	चित्तौड़ की चिता
(१८३) ,,	विचार-दर्शन
(१८४) ,,	कबीर का रहस्यवाद
(१८५) ,,	आधुनिक काव्य-संग्रह
(१८६) रामबहोरी शुक्ल व भगीरथ मिश्र—	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास
(१८७) राजेन्द्रप्रसाद—	आत्मकथा
(१८८) ,,	बापू के कदमों में
(१८९) रांगेय राघव —	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य
(१९०) लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'—	जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त
(१९१) लक्ष्मीनारायण दुबे—	साहित्य के चरण
(१९२) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—	हिन्दी साहित्य का इतिहास
(१९३) लक्ष्मीशंकर व्यास —	पराड़कर जी और पत्रकारिता
(१९४) लक्ष्मीकान्त वर्मा—	नयी हिन्दी कविता के प्रतिमान
(१९५) विनोबा भावे--	साहित्यिकों से
(१९६) विश्वनाथप्रसाद मिश्र—	वाङ्मय विमर्श
(१९७) ,,	हिन्दी का सामयिक साहित्य
(१९८) विश्वनाथ गौड़—	आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद
(१९९) विश्वभरनाथ उपाध्याय—	आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा
(२००) विजयेन्द्र स्नातक तथा क्षेमचन्द्र सुमन—	हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति
(२०१) विजयेन्द्र स्नातक—	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
(२०२) विनोदशंकर व्यास—	योरोपीय साहित्यकार

(२०३) —	वीर वचनावली
(२०४) सद्गुरुशरण अवस्थी—	हिन्दी गद्य-गाथा
(२०५) ,,	साहित्यतरंग
(२०६) सुधीन्द्र—	हिन्दी कविता में युगान्तर
(२०७) ,,	साहित्य समीक्षांजलि (सम्पादित)
(२०८) सुमित्रानन्दन पन्त—	ग्रन्थि
(२०९) ,,	गुंजन
(२१०) ,,	ज्योत्स्ना
(२११) ,,	पल्लव
(२१२) ,,	आधुनिक कवि, भाग २
(२१३) ,,	स्मृति-चित्र
(२१४) सुरेशचन्द्र गुप्त—	हिन्दी काव्यानुशीलन
(२१५) ,,	आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त
(२१६) सुधाकर पाण्डेय—	हिन्दी साहित्य और साहित्यकार
(२१७) सुखसम्पत्ति राय—	भारतवर्ष और उसका स्वातन्त्र्य-संग्राम
(२१८) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—	परिमल
(२१९) ,,	अनामिका
(२२०) ,,	अपरा
(२२१) सूर्यनारायण त्रिपाठी—	रहिमन-शतक (संगृहीत)
(२२२) काशी नागरी प्रचारिणी सभा	सूर-सागर
(२२३) सियारामशरण गुप्त—	आत्मोत्सर्ग
(२२४) —	सेठ गोविन्दास अभिनन्दन ग्रन्थ
(२२५) सोमनाथ गुप्त—	हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास
(२२६) —	सौहार्द्र सुमन
(२२७) संसदीय काँग्रेस दल, दिल्ली—	वार्षिक विवरण सन् ६०-६१
(२२८) श्रीराम शर्मा—	संघर्ष और समीक्षा
(२२९) —	श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ
(२३०) —	स्वतन्त्रता की झंकार
(२३१) शम्भूनाथ सिंह—	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास
(२३२) शम्भूनाथ पाण्डेय—	आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद
(२३३) शिवकुमार शर्मा—	हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ
(२३४) शिवदान सिंह चौहान—	काव्यधारा
(२३५) शिवनारायण मिश्र—	राष्ट्रीय वीणा
(२३६) शिवपूजन सहाय—	शिवपूजन रचनावली
(२३७) शैल कुमारी—	आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना
(२३८) शकुन्तला दुबे—	काव्य-स्रोतों के मूल-रूप और उनका विकास

(२३९) — शंकर सर्वस्व
(२४०) शान्तिप्रिय द्विवेदी — संचारिणी
(२४१) — शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ—
(२४२) श्यामसुन्दर लाल दीक्षित— जवाहर-दोहावली
(२४३) हजारीप्रसाद द्विवेदी— हिन्दी साहित्य की भूमिका
(२४४) " हिन्दी साहित्य
(२४५) हरिवंद राय 'बच्चन'— मधुशाला
(२४६) " प्रणयपत्रिका
(२४७) " नये पुराने झरोखे
(२४८) हरिकृष्ण प्रेमी— आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि माखनलाल चतुर्वेदी
(२४९) हरदेव बाहरी— हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास
(२५०) हंसराज अग्रवाल— हिन्दी साहित्य की परम्परा
(२५१) क्षेम— छायावाद के गौरव चिह्न
(२५२) त्रिलोचन पाण्डेय— साकेत: दर्शन
(२५३) ज्ञानवती दरबार— भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा

(३) बंगला-ग्रन्थ

(२५४) ब्रजेन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय तथा सजनीकान्त दास द्वारा सम्पादित मेघनाद वध
(२५५) रवीन्द्रनाथ ठाकुर— गीतांजलि

(4) **English Books**

256. A. K. Desai. Social Back-ground of Indian Nationalism.
257. Arbindo. The Renaissance in India.
258. Altekar. Position of women in Hindu civilization.
259. Aptey. Sanskrit English Dictionary.
260. Balraj Madhok. A study in Indian Nationalism.
261. Contemporary thought of India.
262. Constituent Assembly Official Debates Reporters.
263. Dutta and Sarakar. Text Book of Modern History, Part III.
264. Dean Inge. Personal Religion and life of Devotion.
265. Dryden. Dramatic Poetry and other essays.
266. E. H. Car. Nationalism.
267. Edith Bonet. Literature and Life.

268. Ernest Rhys. Lyric Poetry.
269. Ensyclopaedia Britannica Vol. XX.
270. Enscyclopaedia of Religion and Ethics.
271. Feuerbatch and end of classical German Philosophy.
272. Gurumukh Nihal Singh. Land Marks in Indian Constitutional and national development.
273. Henry Tomas. Living Biographies of Famous men.
274. Hole Brook Jackson. Readers and critics.
275. Hudson. An Introduction to the study of Literature.
276. Ishwari Prasad and Subedar. A History of Modern India.
277. Jadunath Sarkar. A short History of Aurangzeb.
278. Jawaharlal Nehru. Discovery of India.
279. John Key. Indian Mutiny.
280. J. Middleton Mury. The problem of style.
281. John Drink water. The Lyric.
282. Abercrombie. The Epic and Essay.
283. L. S. Harris. Nature of English Poetry.
284. Mayor. Sexual life in Ancient India. Vol. I.
285. Mahendra Kumar Sarkar. Hindi Mystic sm.
286. N. C. Ganguly. Raja Ram Mohan Roy.
287. Oxford English Dictionary.
288. Parliamentary Debates. Official Reports.
289. Pacal. The German Ideology.
290. Rabindra Nath Tagore. Gitanjali.
291. R. R. Bhatnagar. The Rise and growth of Hindi Journalism.
292. R. Palme Dutt. India Today and To-morrow.
293. Ram Awadh Dwivedi. Hindi Literature.
294. R. W. Livingstone. Selected Passages.
295. S. Johnson. Lives of English Poets.
296. S. R. Sharma. The making of Modern India.
297. S. H. Butcher. The poetics of Aristotle.
298. S. N. Gupta. The Cultural Heritage of India.
299. T. S. Eliot. What is a classic.
300. The complete poetical works of percy Bysshe Shelley edited by Thomas Hutchinson 1952.

301- The Pocket book of quotations.
302. The Oxford dictionary of Quotations.
303. T. Edwards. The new dictionary of thoughts.
304. Vinay Kumar Sarkar. Creative India.
305. W. P. Ker. Epic and Romance.
306. W. M. Dixon. English Epic and Heroic Poetry.
307. World and the Individual.
308 World Dictionary.

परिशिष्ट—५

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) हिन्दी-पत्र

(क) दैनिक-पत्र

(१) अर्जुन ✓ Delhi	सन् १९४३
(२) आज ✓ Banaras	१३-५-६१
(३) जागरण	११-१२-५९
(४) नव भारत टाइम्स ✓ Delhi	२६-६-६०
(५) नव भारत	२६-३-५८, ८-१२-१९६३
(६) नव जीवन	३०-७-५१, १२-११-५१, ३०-११-५१
(७) नवराष्ट्र	२४-७-६० (नवीन परिशिष्टांक)
(८) नई दुनिया	१६ मई १९६० (दीपावली विशेषांक)
(९) प्रताप ✓ Kanpur	२३-६-३४, ४-५-६०, ५-५-६०, ६-५-६०, २९-४-६२ आदि
(१०) प्रयाग-पत्रिका	२३-५-६७ (नवीन परिशिष्टांक)
(११) सैनिक ✓ आगरा	७-११-६१ (दीपावली विशेषांक)
(१२) हिन्दुस्तान ✓ Delhi	१८-७-५८, १०-१२-५९, २५-३-६२

(ख) अर्द्ध साप्ताहिक-पत्र

(१३) प्रणवीर	९-३-२५

(ग) साप्ताहिक-पत्र

(१४) अभ्युदय	४ जून, १९४५
(१५) आज ✓ Banares	२६ मई, १९६०
(१६) ग्राम्या	२४ जुलाई, १९६०, १५ अगस्त १९६०
(१७) धर्मयुग ✓ Bombay	सन् ६१
(१८) नवराष्ट्र (रायपुर)	दीपावली विशेषांक सन् ५७
(१९) नवयुग काँग्रेस अंक	
(२०) प्रताप ✓ कानपुर	सन् १९१३ से १९६३ ई० के विभिन्न सम्बन्धित स्फुट अंक
(२१) प्रहरी	१९-१०-६० (दीपावली विशेषांक)
(२२) फक्कड़	३१-३-५१
(२३) भविष्य	सन् १९२०

(२४) मतवाला	८-१-२७, २२-१-२७
(२५) मध्यप्रदेश सन्देश	४-८-६२
(२६) योगी	२ अप्रैल १६६०
(२७) रामराज्य	१ जून १६४५ (पत्रकार अंक) १६ मार्च, १६५३, १५ अगस्त १६६० (स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक)
(२८) रणभेरी	२६ जुलाई, १६३०,२५ अगस्त १६३०
(२९) विन्ध्य-वाणी	११ अप्रैल, १६४६
(३०) सारथी	१७ अगस्त १६४२
(३१) सैनिक	जवाहर विशेषांक
(३२) हिन्दुस्तान	अगस्त, १६५२, १६ दिसम्बर ५६,६ सितम्बर, १६५६, १५ मई १६६०, ३ जुलाई १६६०, (नवीन स्मृति अंक) १० जुलाई १६६०, १४ अगस्त १६६० (स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक) १३ अगस्त १६६१ (स्वतन्त्रता दिवस अंक), २४ सितम्बर १६६१, २० मई १६६२, ८ जुलाई ६२
(घ) पाक्षिक-पत्र	
(३३) हलचल	१७-५-५५
(ङ) मासिक-पत्र	
(३४) अवन्तिका	जनवरी, १६५४, अक्तूबर, १६५६
(३५) अजन्ता	अगस्त १६५५
(३६) आजकल	मई १६४७ सितम्बर, अक्तूबर, १६४७, मार्च १६४८, अक्तूबर १६४८, मई १६४६, अगस्त ४६, अक्तूबर ५२, जनवरी १६५५, मार्च १६५५, अक्तूबर ५५ नवम्बर ५५, दिसम्बर ५५, फरवरी ५६, जून ५६, अक्तूबर ५६, अप्रैल ५७, दिसम्बर ५७, फरवरी ५८, जून ६०, मार्च ६१, सितम्बर ६२,
(३७) आगामी कल	जनवरी ४२, मई १६४४, अप्रैल १६४५, जुलाई १६४५; मार्च १६४६, जून १६४६
(३८) आशा—	जून २७, जुलाई २७, अगस्त २७, सित० २७, फरवरी २८, जून २८, सित० २८, अक्तूबर १६२८
(३९) इन्दु—	जनवरी १६२७
(४०) कल्पना—	जून १६६०, सितम्बर ६०

(४१) कादम्बिनी — नवम्बर १९६०
(४२) काव्य-कलाधर — जुलाई १९३५, अप्रैल १९३६
(४३) कृति — अप्रैल १९६०, मई ६०
(४४) कौमुदी — दिसम्बर ४६
(४५) चिन्तन — जून-जुलाई ६१ (नवीन विशेषांक)
(४६) जागृति — सितम्बर ६१
(४७) जागरण — ३१ अक्तूबर, १९३२
(४८) जीवन साहित्य — मई १९६०,
(४९) ज्योत्स्ना — जनवरी ६२, (कांग्रेस अंक)
(५०) त्यागभूमि — आश्विन सं० १९८५, कार्तिक सं० १९८५, मार्गशीर्ष सं० १९८५, पौष सं० १९८५, फाल्गुन सं० १९८५ चैत्र, सं० १९८५ वैशाख, सं० १९८६ आषाढ़, सं० १९८६, श्रावण संवत १९८६, भाद्र पद सं० १९८६,
(५१) नर्मदा — अक्तूबर १९६१, अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी स्मृति अंक, अगस्त १९६३, 'नवीन' स्मृति अंक।
(५२) नया समाज — जनवरी १९५२
(५३) नई धारा — जुलाई १९६२
(५४) नवनीत — अक्तूबर १९६०
(५५) प्रभा — खण्डवा (सन् १९१३-१९१५) और कानपुर (सन् १९२०-१९२६) के प्रायः समग्र अंक।
(५६) प्राच्य भारती — जुलाई-अगस्त, १९६२ (अरविन्द विशेषांक),
(५७) प्रतिभा — नवम्बर १९१७, दिस० १९१७, मार्च १८, अप्रैल १८, जुलाई १८, जून १९१९, अगस्त १९, जून १९२०, अक्तूबर १९२०
(५८) ब्रज भारती — संख्या ३-४ सं० २००६ मार्गशीर्ष सं० २०१६ फाल्गुन सं० २०१६-१७ (नवीन स्मृति अंक)
(५९) माधुरी — १५ नवम्बर १९२३, जनवरी १९२६, फरवरी २६, चैत्र सं० १९८८
(६०) युगारम्भ — कार्तिक संवत २०११
(६१) युग चेतना — जनवरी १९५५
(६२) युगान्तर — २८ नवम्बर १९४३
(६३) राष्ट्र वाणी — जून १९६०
(६४) राष्ट्र भारती — जून १९६०, अप्रैल १९६१
(६५) रसवंती — सित० १९६२

(६६) विश्वबन्धु	कुम्भाक
(६७) विशाल भारत	जुलाई १६२८, जुलाई १६३२, अक्तूबर ३७, दिसम्बर १६३७, जून ६०, जनवरी ६२, फरवरी-मार्च ६२,
(६८) विक्रम	अप्रैल, १६४२, मई १६४२, अक्तूबर १६४२ दिसम्बर १६४४, फरवरी १६५१, मई १६५१, दिस० १६५२, मार्च १६५४, अप्रैल १६५४
(६६) विश्व-मित्र	नवम्बर १६३३, दिसम्बर १६३३, रजत-जयन्ती विशेषांक सन् १६१७-१६४२
(७०) वीणा	मार्च १६३४, अक्तूबर १६३४, मार्च १६३५, अप्रैल १६३६, नवम्बर १६३७, जून १६४०, जुलाई १६४२, मार्च १६४४, अप्रैल १६४५, अगस्त १६४५, नवम्बर १६४६, नवम्बर ४७, जून १६५०, जुलाई १६५०, फरवरी १६५२, अप्रैल-मई ५२, मध्यभारत विशेषांक जून १६५२, जून १६५३, जून १६६०, अग०-सित० ६० (नवीन विशेषांक)
(७१) सरस्वती	जुलाई १६०८, जुलाई १६१३, जुलाई १६१८, अप्रैल १६१८, दिस० १६१८, अगस्त १६२०, फरवरी १६२१, मई १६२२, हीरक जयन्ती विशेषांक सन् १६००-१६५६, मई १६६०, जून १६६०, जुलाई ६०
(७२) सप्त-सिन्धु	अप्रैल १६६१
(७३) समाज	अप्रैल १६५४
(७४) साहित्य-सन्देश	जून १६५२
(७५) सुधा	नवम्बर १६३१
(७६) श्री शारदा	अक्तूबर १६२०, मार्च १६२१, अक्तूबर १६२१, नवम्बर १६२१
(७७) हिन्दी प्रचारक	अप्रैल १६५४
(७८) हिन्दी मनोरंजन	मार्च-अप्रैल १६२७
(७९) हंस	सितम्बर १६३१ नवम्बर १६३१, अक्तूबर १६४१ (कवितांक)
(८०) हिमप्रस्थ	जुलाई १६६०

(८१) त्रिपथगा — मार्च १९५६, जून १९६०, अप्रैल १९६१

(च) त्रैमासिक पत्र

(८२) आलोचना — अप्रैल, १९५२, अक्तूबर १९५६

(८३) आकाशवाणी प्रसारिका — जुलाई-सित० १९५४, जुलाई-दिसम्बर १९५५, अप्रैल-जून १९५७

(८४) जनपद — जनवरी १९५३

(८५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका — छठा भाग सन् १९०२ अंक प्रथम सं० २०१७

(८६) राष्ट्र वीणा — जुलाई १९६०

(८७) रेडियो संग्रह — जुलाई-सितम्बर १९५३

(८८) सम्मेलन पत्रिका — आश्विन-मार्गशीर्ष शक १८८२

(८९) साहित्य — अप्रैल, १९६०

(९०) संस्कृति — जून-जुलाई १९६०

(छ) वार्षिक-पत्र

(९१) आकाशवाणी विविधा — सन् १९६०

(९२) राजकीय हमीदिया महाविद्यालय मुखपत्रिका, भोपाल (म० प्र०) — अगस्त १९६०

ENGLISH MAGAZINES

(93) Banaras Hindu University Journal, Silver Jublee Number, 1942.

(94) Christ Church College, Kanpur Diamond Jublee Number, 1952. 1957-58.

(95) Hindi Review, June 1959.

(96) The Leader, 21-2-1924.

(३) विविध

(क) व्यक्तिगत सूचनाएँ एवं संस्मरण (ख) विभिन्न व्यक्तिगत-पत्र (ग) नवीन जी के प्रकाशित एवं अप्रकाशित पत्र आदि ।
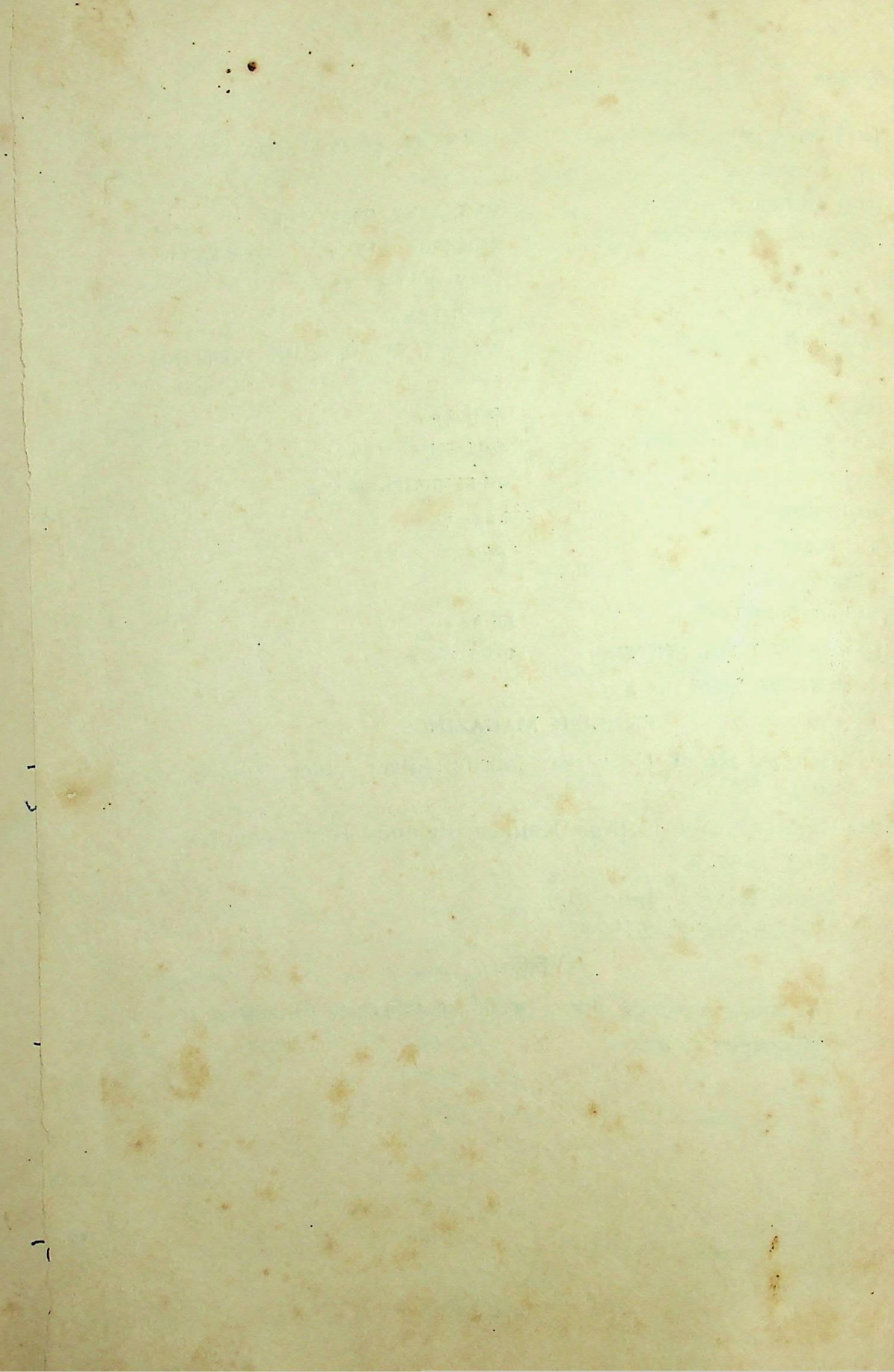
① Ramesh K. Sharma,
c/o Pt. Shri Ram Sharma,
Editor, Vishal Bharat
BALKABASTI AGRA - 2

② c/o Shri R.K. Sharma
8, New flats, Modern School
Barakhambha Rd.
~~N.D~~ New Delhi
(or)
c/o Shri O.D. Agnihotri
(Dy. C. O. P. S.)
N. Rly
22 A Railway Colony
Sardar Patel Marg
(Kitchner Rd.)
New Delhi Tel. 33265